महावीर वाणी

(तीसरा भाग)

भगवान श्री रजनीश

: सकलन :

मा धर्म ज्योति

: सपादन :

स्वामी आनंद हरीश

रजनीश फाउन्डेशन, पूना

१९७६

: प्रकाशक :
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउन्डेशन
श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगांव पार्क, पूना–१

© रजनीश फाउन्डेशन, पूना

प्रथम सस्करण ९७६
प्रतियाँ
मूल्य : ८ ै

: मुद्रक
श्री. मु. श. किर्लोस्कर
किर्लोस्कर प्रेस
वीर सावरकरनगर,
पूना ४११००९



महावीर वाणी

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला के अंतर्गत २५ अगस्त से
११ सितम्बर, १९७३ तक पाटकर हॉल, बम्बई में
'महावीर वाणी' पर भगवान श्री रजनीश
द्वारा दिये गये अठारह प्रवचनों का
संकलन

पूर्वाभास

आइये हम फिर अवलोकन करें
महावीर-वाणी का
रजनीश-वाणी के दर्पण में
अवगाहन करे
महावीर के शब्द-सरोवर मे
एवं
रजनीश की प्रवचन-सरिता मे

एक प्रतीक्षा, एक अतराल के उपरांत
हम आ पहुँचे हैं अब
महावीर वाणी के तीसरे सोपान पर
अर्थात् महावीर वाणी की यात्रा का
अंतिम पड़ाव

प्रस्तुत प्रवचनमाला भगवान श्री रजनीश की
पांडित्यपूर्ण भाष्य या टीका नही है
महावीर के सूत्रों पर
प्रत्युत
स्वयं महावीर ने रजनीश-तूलिका मे
अपनी कृतियों को नया रग, नया रूप
नयी छवि प्रदान की है
फलतः
महावीर के ये प्राचीन सूत्र
पचीस सौ साल की लंबी यात्रा पूरी कर

उपस्थित हैं
अब
अपने नये अर्थ मे, अभिनव स्वरूप में
अधुनातन मानवीय ज्ञान-विज्ञान
एवं
भौतिक सस्कृति के सामयिक संदर्भ में

भगवान श्री के प्रवचनामृत को
बुद्धि के अंजलि मे ही न ग्रहण करे
बल्कि बहने दे इसे निर्बाध
हृदय की अतल गहराइयों की ओर
ताकि मूल स्वर अनसुना न रह जाये
मूल स्वर
अर्थात् भगवान श्री रजनीश का
या कहें एक नये महावीर का
प्रेमपूर्ण आमंत्रण
करुणाजन्य पुकार
जीवन को जानने की, जीने की
जीवन के आमूल रूपातरण की
और हम फिर न चूक जायें इस सुअवसर को
जिसे हमने अपने पूर्व जन्मों में
महावीर, बुद्ध, कृष्ण के समसामयिक रहकर चूका है

महावीर वाणी का पाठ
केवल बौद्धिक औत्सुक्य और कौतुहल का आहार न हो
निर्मित कर ले हम इसमे अपना जीवन-पथ एवं साधना-पथ भी
ताकि नये तीर्थंकर का श्रम
सार्थक हो, सफल हो, सुफल हो

महावीर वाणी के तीन खंडों की ये श्रृंखला
एक यात्रा-पथ है

पदार्थ से परमात्मा तक की
ऊर्जा से चैतन्य तक की
संसार से सन्यास तक की

प्रस्तुत प्रवचनमाला महावीर के जिन सूत्रों पर दी गयी
वे हैं क्रमश:
लोकतत्त्व-सूत्र, पूज्य-सूत्र, ब्राह्मण-सूत्र
भिक्षु-सूत्र, मोक्षमार्ग-सूत्र

पुस्तक का सर्वाधिक सरस पक्ष
भगवान श्री का प्रिय पात्र मुल्ला नसरुद्दीन
जो अपने नये कारनामों के साथ
पुन: प्रस्तुत है आपके हास्यपूर्ण मनोरंजन हेतु
और महावीर के किसी गूढ सूत्र को
भले ही आप सर फोड़कर भी न समझ पायें
मुल्ला की एक छोटी-सी बेहूदगी
बात को सीधे गले के नीचे उतार देती है.

११ दिसबर, १९७६
श्री रजनीश आश्रम,
पुणे (महाराष्ट्र)

स्वामी आनंद हरीश

अनुक्रम

महावीर वाणी

लोकतत्त्व-सूत्र : १

पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हॉल, बम्बई . दिनांक २५ अगस्त १९७३.

धम्मो अहम्मो आगास, कालो पुग्गल जन्तवो।
एस लोगो त्ति पन्नतो, जिणेहि वरदसिहि॥
गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाहलक्खण॥

बत्तणालक्खणो कालो,
जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दसणेण च,
सुहेण य दुहेण य॥

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये छह द्रव्य हैं। केवल दर्शन के धर्त्ता जिन भगवाने ने इन सबका लोक कहा है।

धर्म द्रव्य का लक्षण गति है; अधर्म द्रव्य का लक्षण स्थिति है, सब पदार्थों को अवकाश देना – आकाश का लक्षण है।

काल का लक्षण वर्तना (बरतना) है, और उपयोग अर्थात् अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से सुख से तथा दुख से जाना पहचाना जाता है।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो जीवन के सम्बन्ध में प्रश्न न उठाता हो, जिसकी कोई जिज्ञासा न हो, जो पूछता न हो। मनुष्य और पशु में यही भेद भी है। पशुओं ने जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लिया है। कोई प्रश्न पशु की चेतना मे नही उठता, कोई जिज्ञासा नहीं जगती। लेकिन, आदमी जैसा है, उतना होने से राजी नही है। आदमी जानना भी चाहता है – 'मैं क्या हूँ, क्यो हूँ, कौन हूँ?' प्रश्न करना मनुष्य होने की पहचान है। इसलिए जिस मनुष्य में अभी प्रश्न नही उठा, वह अभी पशु के जीवन से ऊपर नही उठा। और जिस मनुष्य के जीवन में जिज्ञासा का जन्म नही हुआ, अभी उस मनुष्य का मनुष्य की तरह जन्म भी नही हुआ। इसलिए कठिन है खोजना ऐसा मनुष्य – जो प्रश्न न पूछ रहा हो – जिसके लिए जीवन एक जिज्ञासा न हो।

प्रश्न सभी पूछते हैं, लेकिन कुछ लोग दूसरो के उत्तर को अपना उत्तर मान लेते है और अटक जाते है, और कुछ लोग जब तक अपना उत्तर नही खोज लेते तब तक अथक श्रम करते है। जो दूसरो का उत्तर स्वीकार करके रुक जाते हैं, उनमें प्रश्न का जन्म तो हुआ, लेकिन प्रश्न की भ्रूण हत्या हो गई, एबॉर्शन (गर्भ-पात) हो गया। प्रश्न का बीज तो पैदा हुआ, लेकिन उन्होने – इसके पहले कि बीज अंकुरित होता और वृक्ष बनता – उसकी हत्या कर दी।

हत्या की विधि है – उधार उत्तर को स्वीकार कर लेना। ध्यान रहे, प्रश्न आपका है – और जब तक आप अपना उत्तर न खोज लेंगे, तब तक वह हल नही होगा। प्रश्न दूसरे का होता, तो दूसरे के उत्तर से हल भी हो जाता। प्रश्न आपका, उत्तर दूसरे का – इन दोनों में कही कोई मिलन नही होता। इसलिए जब भी आप दूसरों के उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, तो आपने जल्दी ही प्रश्न की गर्दन घोंट ली। आपने प्रश्न को पूरा काम न करने दिया। प्रश्न तो तभी पूरा काम कर पाता है, जब वह जीवन की खोज और प्यास बन जाता है; जब प्रश्न जीवन से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह जानना कि 'जीवन क्या है', जिस दिन जीवन से भी

ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, उस दिन साधना का जन्म होता है। जिस दिन आप इस खोज के लिए जीवन को समर्पित करने को राजी हो जाते हैं, उस दिन आप जिज्ञासु न रहे, मुमुक्षु हो गये। उस दिन प्रश्न सिर्फ बौद्धिक न रहा, बल्कि आपके रोएँ-रोएँ का हो गया; आपके समग्र जीवन का हो गया। और जिस दिन भी प्रश्न इतना गहन हो जाता है कि हमारी श्वास-श्वास पूछने लगती है, उस दिन उत्तर दूर नही है।

और ध्यान रहे, जिस भाँति प्रश्न भीतर से आता है, उसी भाँति उत्तर भी भीतर से ही आएगा। प्रश्न बाहर से नही आते। और बाहर से जो प्रश्न आते है, उनका कोई भी मूल्य नहीं है, उन्हें बाहर के उत्तरो से ही निपटाया जा सकता है। लेकिन जो प्रश्न आपकी ही श्वासों से और आपकी ही गहनता से उठते हैं, जो आपकी ही अन्तरात्मा से जगते हैं, उन प्रश्नो के उत्तर भी आपकी अन्तरात्मा में ही छिपे हैं। और जहाँ से प्रश्न आया है, उसी गहराई में खोजने से उत्तर भी उपलब्ध होगा। धर्म और दर्शन का यही फ़र्क है। दर्शन है – प्रश्नों की बौद्धिक खोज। और धर्म है – प्रश्नों की जीवन्त खोज।

बौद्धिक खोज का अर्थ है – आपकी बुद्धि मात्र संलग्न है, आप पूरे-के-पूरे सलग्न नही हैं। एक खण्ड जीवन का खोज में लगा है, लेकिन पूरा जीवन – पूरा जीवन दूर है।

धार्मिक खोज का अर्थ है – केवल बुद्धि ही नही, आपका हृदय भी – हृदय ही नहीं, आपकी देह भी – आपकी समग्र आत्मा भी, आप जो भी है अपनी पूर्णता में, वह पूरी-की-पूरी खोज में लग गई है। और जिस दिन खोज अखण्ड होती है, पूरी होती है, उस दिन उत्तर दूर नही है।

महावीर ने जो भी कहा है, वे एक दार्शनिक के वचन नही है, एक फिलॉसफर के वचन नही है – प्लाटो या अरस्तू या कान्ट और हीगल के वचन नही हैं। महावीर ने जो भी कहा है, वे एक धार्मिक, अनुभूति को उपलब्ध व्यक्ति के वचन हैं। महावीर ने जो भी कहा हैं, सोचकर नही कहा है, देखकर कहा है।

इस भेद को ठीक से समझ लें, क्योंकि यह बहुत मौलिक है। सोचकर बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन सोचकर जो कहा जाता है, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति प्रेम के सम्बन्ध में बहुत-सी बाते सोचकर कह सकता है। शास्त्र उपलब्ध है, प्रेम पर लिखे हुए काव्य उपलब्ध हैं; प्रेम की कथाएँ, प्रेम के विश्लेषण उपलब्ध हैं; जिन्होंने प्रेम को जाना है, उनके शब्द उपलब्ध हैं – वे सब पढ़े जा सकते हैं, और आप भी प्रेम के सम्बन्ध में कोई धारणा बना सकते हैं, पर वह बुद्धि की होगी। लेकिन अगर आपको प्रेम का अपना

निजी अनुभव नहीं है, तो आप जो भी कहेंगे, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक हो नहीं सकता। उसका ठीक मालूम पड़ना बहुत ऊपरी होगा – तार्किक होगा, शब्दगत होगा। क्योंकि जिसने प्रेम नहीं जाना, वह प्रेम के सम्बन्ध में क्या कह सकता है ?

प्रेम की कोई फिलॉसफी नहीं हो सकती, प्रेम का सिर्फ़ अनुभव हो सकता है। लेकिन, तब बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो जान लेता है प्रेम को, उसे कहना मुश्किल हो जाता है। जो प्रेम को न जाने, उसे कहना बहुत आसान है, क्योंकि उसे उस कठिनाई का पता ही नहीं है जो कि अनुभव से पैदा होती है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, वह दूसरे के शब्द दोहरा सकता है, और सोच सकता है कि बात पूरी हो गई। जिसने प्रेम को जाना है, उसके सामने एक बड़ा कठिन, दुर्गम सवाल खड़ा हो जाता है कि जो उसने जाना है, उसे कैसे शब्दों में प्रविष्ट करे। क्योंकि जो जाना है, वह विराट् है, और शब्द बहुत क्षुद्र हैं। जो जाना है, वह आकाश की भाँति है, और शब्द छोटी मटकियों की भाँति है। प्रेम के उस बड़े सागर को शब्दों की मटकियों में भरना – उस सागर को गागर में डालना – अति कठिन है – असंभव है।

महावीर जो भी कह रहे हैं, वह उनका जाना हुआ है। वह उन्होंने सोचा नहीं है, वह उन्हें ध्यान से उपलब्ध हुआ है – विचार से नहीं। और, विचार और ध्यान की प्रक्रियाएँ विपरीत हैं।

महावीर इस बोध के पहले बारह वर्ष तक मौन में रहे। तब उन्होंने सब विचार करना छोड़ दिया। तब उन्होंने सारी बुद्धि को तिलान्जलि दे दी। तब उन्होंने चिन्तना एक तरफ हटा दी। वे सिर्फ़ मौन होते चले गए। बारह वर्ष लम्बा समय है। निश्चित ही, मौन होना कठिन है। और महावीर को बारह वर्ष लगते हैं, तो आप सोच सकते हैं, साधारण व्यक्ति को कितने जीवन लग जायेंगे।

चुप होना कठिन है, क्योंकि चुप होना एक तरह की मृत्यु है। आप जीते ही विचार में हैं। और जब विचार चलता रहता है तो आप को लगता है कि आप हैं; जब विचार बिखरने लगते हैं, खोने लगते हैं, तब आप भी खोने लगते हैं। और जब विचार के सब बादल खो जाते हैं और शून्य रह जाता है, तो भीतर वह शून्य महामृत्यु जैसा मालूम होता है। उस महामृत्यु के लिए जो तैयार होता है, वह ध्यान में प्रवेश पाता है। और ध्यान के बाद ही अनुभव है। विचार से कोई अनुभव नहीं होता। विचार तो अनुभव में बाधा है। जब आप सोचने लगते हैं, तब आप अनुभव से टूटते जाते हैं। जब आप सोचते नहीं, केवल होते हैं, तब आप अनुभव से जुड़ते हैं।

तो महावीर बारह वर्ष तक अपने विचार को काटते हैं, छोड़ते हैं। एक-एक ग्रन्थि – विचार की एक-एक गाँठ खोलते हैं। और जब विचार की सब गाँठें खुल जाती है, सब बादल खो जाते हैं – सिर्फ़ खाली आकाश रह जाता है स्वयं का – तब अनुभव शुरू होता है। उस अनुभव से जो वाणी प्रगट हुई है, उस महावीर-वाणी पर ही हम विचार करने जा रहे हैं। इसे सोचेंगे आप तो भूल में पड़ जाएँगे। सोचना कम, हृदय को खोलना ज्यादा, ताकि यह ऐसे प्रवेश कर सके भीतर, जैसे बीज जमीन में प्रवेश कर जाता है। जमीन बीज के सम्बन्ध में अगर विचार करने लगे, कि पहले सोच लूं, समझ लूं कि इस बीज को गर्भ देना है कि नहीं देना, तो जमीन कुछ भी न सोच पायेगी। क्योंकि बीज में फूल प्रगट नहीं है; बीज में कोई वृक्ष भी प्रगट नहीं है। होगा – वह सम्भावना है। अभी वास्तविक नहीं है। अभी सब भविष्य में छिपा है। लेकिन जमीन बीज को स्वीकार कर लेती है। बीज टूट जाता है भीतर जाकर। जमीन उसे पचा लेती है। बीज मिट जाता है, खो जाता है। और जब बीज खो जाता है बिलकुल और जमीन को पता भी नहीं चलता कि मुझसे अलग कुछ है, तो बीज अकुरित होता है। तब एक नए जीवन का जन्म होता है, और एक वृक्ष पैदा होता है।

महावीर के वचनों को अगर आप सोच-विचार में उलझा लेंगे, तो वे आप के भीतर उस जगह तक नहीं पहुँच पाएंगे, जहाँ हृदय की भूमि है। आप सोचना मत। आप सिर्फ हृदय की ग्राहक भूमि में उनको स्वीकार कर लेना। अगर वे व्यर्थ है, अगर वे निर्जीव है, तो कोई अकुर पैदा न होगा, बीज यूं ही मर जायेगा। अगर वे सार्थक है, अगर अर्थपूर्ण हैं, अगर उनमें कोई छिपा जीवन है, अगर उनमें छिपी कोई विराट् सम्भावना है, तो जिस दिन आप भीतर उन्हें पचा लेंगे, हृदय में जब वे मिल कर एक हो जाएगे, और जब आपको याद भी न रहेगा कि वह विचार महावीर का है या आपका, जब यह विचार आपका ही हो जायेगा, आपमें घुलकर एक हो जायेगा, पिघल जायेगा जाकर भीतर – तब आपको पता चलेगा कि इस विचार का अर्थ क्या है। क्योंकि तभी आपके भीतर इस विचार के माध्यम से एक नये जीवन का जन्म होगा; एक नई सुगन्ध, एक नया अर्थ, एक नये क्षितिज का उद्घाटन होगा।

विचार के साथ हम दो तरह का व्यवहार कर सकते हैं: एक तो आलोचक का व्यवहार – कि वह सोचेगा, काटेगा, विश्लेषण करेगा, तर्क करेगा। आपको मना नहीं करता। अगर आपको महावीर के साथ आलोचक होना है तो आप हो सकते हैं। लेकिन, तब जो महावीर दे सकते हैं, उससे आप वंचित रह जाएंगे। दूसरा है ग्राहक का, प्रेमी का, भक्त का व्यवहार। भक्त सोचता नहीं, वह सिर्फ़ रिसेप्टिव, सिर्फ़ संवेदनशील होता है, वह स्वीकार कर लेता है। वह हृदय में

छिपा लेता है और प्रतीक्षा करता है उस दिन की, जिस दिन इस बीज में से अंकुर पैदा होगा। तभी, जो महावीर कहते है, उसका पूरा अर्थ प्रगट होता है।

यहाँ मैं आपको समझाने की कोशिश करूँगा कि महावीर का प्रयोजन क्या है। लेकिन उस कोशिश से आप अर्थ को न जान पाएंगे। उस कोशिश से तो इतना ही हो सकता है कि आप राजी हो जायें और हृदय को खुला छोड़ दें। द्वार-दरवाजे खोल दें, ताकि किरण भीतर प्रवेश कर जाये। मेरी कोशिश आपके हृदय का दरवाजा खोलने की होगी, आपकी बुद्धि को समझाने की नहीं। अर्थ तो तभी प्रगट होगा, जब बीज आपके भीतर प्रविष्ट हो जाएगे और आप उन्हें पचा लेंगे।

ध्यान रहे, किसी चीज का आहार कर लेना ही काफी नहीं है, उसको पचाना भी जरूरी है। इसलिए महावीर को दो तरह के लोग अपने भीतर लेते हैं। पंडित भी अपने भीतर लेता है, लेकिन वह पचा नहीं पाता है। वह जो आहार कर लेता है वह अनपचा रह जाता है। इसलिए पंडित का मस्तिष्क बोझिल होता चला जाता है उस अनपचे आहार से। उसका अहंकार प्रगाढ़ होता चला जाता है। उसकी आत्मा तो खाली ही बनी रहती है, लेकिन उसकी स्मृति भरती चली जाती है।

ज्ञानी भी आहार करता है विचार का, लेकिन उसे पचाने की कोशिश करता है। और जब तक वह खून न बन जाये, अपना न हो जाये — जब तक बहने न लगे रग-रग में, जब तक जीवन का एक भाग न हो जाए, तब तक वह चैन नहीं लेता।

अगर आपको पंडित की तरफ यात्रा करनी हो तो आलोचक की दृष्टि से सोचना, और अगर आपको ज्ञानी की तरफ यात्रा करनी हो तो एक भक्त के भाव में सोचना।

जैसा हमारा जीवन है, वहाँ कोई चाहिये, जो हमें झकझोर दे। और हमारी यात्रा को पलट दे। जैसा हमारा जीवन है, वहाँ कोई चाहिये, जो हमें एक जोर का धक्का दे, एक शॉक हमें लगे और हमारी यात्रा कि दिशा बदल जाए।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन शिकागो से एक सन्ध्या एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस डिब्बे में वह था, उस डिब्बे में एक और वृद्ध महिला भी थी। बस, वे दो ही थे। गाड़ी को छूटे पाँच-सात मिनट हुए होंगे कि वृद्ध महिला को ख्याल आया कि जो यात्री साथ में है, वह रो रहा है। सोचा उसने कि किसी प्रियजन से बिछुड़ना हुआ होगा। उसने बोलना उचित न समझा।

नसरुद्दीन अपने माथे को पैरों में झुकाए, हाथों में दबाये रोए चला जा रहा है। उसकी हिचकियाँ उसके पूरे शरीर को हिला रही हैं। रात हो गई, वृद्धा सो गई, लेकिन सुबह जब फिर जागी तो देखा कि वह अब भी रोए चला जा रहा है। आँसू

पोंछता है, फिर हिचकियाँ आ जाती हैं, फिर थोड़ी देर रुकता है, फिर रोने लगता है। वृद्धा ने सोचा कि मैं अजनबी हूँ, और पता नहीं कितने दुख में है यह आदमी। मेरा बीच में बोलना, या कुछ कहना कहीं दुख को और न बढ़ा दे, कहीं घाव को और न छेड़ दे।

दूसरा दिन भी बीत गया, और तीसरे दिन की सुबह होने लगी। तब तो वृद्धा को भी सम्हालना मुश्किल हो गया अपने को। तो वह पास आई। उसने नसरुद्दीन के सिर को थपथपाया और कहा कि "क्या हो गया है ? मुझे कुछ कहे, शायद कहने से ही भार कुछ हल्का हो जाये।" तो नसरुद्दीन ने कहा कि "मत पूछें। सोच कर ही मन और दुखी होता है। इट इज नाउ दि थर्ड डे दैट आइ हैव बीन ट्रैव्हलिंग आन दि रॉंग ट्रेन – तीन दिन हो गये हैं और मैं गलत गाड़ी पर सवार हूँ।"

... इस गाड़ी से कभी भी उतरा जा सकता था... !

नसरुद्दीन पर आपको हँसी आ सकती है, लेकिन आप यह मत भूल जाना कि करीब-करीब वैसी ही अवस्था आपकी भी है। तीन दिन ही नही, न-मालूम कितने जन्मों से आप गलत गाडी पर सवार है। रो भी रहे हैं – ऐसा भी नहीं कि नही रो रहे हैं – बुरी तरह रो रहे है; हिचकिया बंधी है, आँखे गीली है; सुख कही दिखाई नही पड़ता, दुख ही दुख है – फिर भी गाड़ी में बैठे हुए हैं। और जिससे दुख हो रहा है, जिससे गलत दिशा में जा रहे है, उसे पूरा सहयोग भी कर रहे है।

इसे थोडा ठीक-से अपनी तरफ देखेंगे तो ख्याल में आ जायेगा कि जहाँ-जहा आप गलत जा रहे हैं, वही-वही आपकी ऊर्जा सहयोग कर रही है; जो-जो जीवन मे गलत है, उसी-उसी के आप सहयोगी और साथी है। और जीवन मे जो-जो श्रेष्ठ है, जहाँ से यात्रा का रुख बदल सकता है, पूरे जीवन का ढंग बदल सकता है, उस तरफ आपका कोई सहयोग नही है। उसे आप सुन भी लेते हैं, तो भी वह आप के जीवन की मूलधारा नही बन पाती। मूलधारा तो आप की गलत ही बनी रहती है। फिर इस गलत मूलधारा के बीच जो आप ठीक भी सुन लेते हैं, उसकी भी आप जो व्याख्या करते हैं, वह भी गलत को सहयोग देने वाली होती है। क्योंकि व्याख्या आप करेंगे।

इसलिए मैंने कहा कि आप सोचना-विचारना मत। महावीर की तरफ एक सहानुभूति, एक प्रेम के रुख की ज़रूरत है। क्योंकि जो भी आप सोचेंगे, वह 'आप' सोचेंगे। और चूंकि 'आप' गलत हैं। इसलिए आपके निर्णय के ठीक होने का कोई उपाय नही है। अगर आपके निर्णय ठीक हो सकते, तो आप खुद कभी के महावीर हो गये होते। तब आपको महावीर को सुनने और समझने की कोई ज़रूरत नही थी। जिसे पश्चिम के सौंदर्य-शास्त्री सिम्पेथेटिक पार्टिसिपेशन कहते हैं – एक सहानुभूतिपूर्ण मिलन, एक रेपर्ट – जहाँ आप लड़ नहीं रहे हैं, बल्कि उन्मुक्त हैं – समझने को, जीने को, नये कोण को देखने को राज़ी हैं।

महावीर का मिज़ाज आपसे बिलकुल अलग है। यह आदमी बिलकुल और ढग का है। इसकी यात्रा अलग है। यह किसी और ही ट्रेन में सवार है। इसकी दिशा भिन्न है। तो जैसे आप हैं, अगर वहीं से आप सोचेंगे, तो आप महावीर को चूक जायेंगे। जैसे महावीर हैं, अगर उनके रुख में आप झुकने को राजी होंगे, तो ही आप समझ पायेंगे।

इसलिए धर्मों ने श्रद्धा का बड़ा मूल्य माना है। इसलिये नहीं कि सन्देह व्यर्थ है। सन्देह उपयोगी है – पर धर्म की दिशा में नहीं, विज्ञान की दिशा में उपयोगी है। सन्देह बहुमूल्य है अगर पदार्थ को समझना हो, क्योकि पदार्थ के साथ किसी सहानुभूति की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि अगर पदार्थ को समझना हो, और सहानुभूति हो, तो आप समझ ही न पायेंगे। अगर एक वैज्ञानिक पदार्थ को समझने में सहानुभूति रखता हो, तो वह पदार्थ को समझ नहीं पायेगा, क्योंकि वह निर्पेक्ष नही रह जायेगा। उसके पक्षपात जुड़ जायेंगे। उसे तो पूरी तरह निर्पेक्ष, तटस्थ होना चाहिए – कोई सहानुभूति नही, जैसे वह है ही नही; उसे जरा भी प्रविष्ट नही होना चाहिए पदार्थ को समझने में। उसे तो सिर्फ़ एक निरीक्षक होना चाहिए। जिससे उस का कोई भी सम्बन्ध नहीं तो ही विज्ञान और वैज्ञानिक सफल हो पाता है।

ठीक उल्टी है बात धर्म की। वहां अगर आप बहुत तटस्थ हैं, दूर खड़े हैं, सिर्फ़ निरीक्षक है, तो आप प्रवेश ही न कर पायेंगे। धर्म में तो तब प्रवेश हो पायेगा, जब आप अति सहानुभूति से भरे हों। जैसे माँ अपने बच्चे को गोद में ले लेती है, अगर महावीर के वचनों को कैसे ही आप हृदय के पास ले सकेंगे, तो ही आपका सम्बन्ध महावीर से जुड़ पायेगा। और एक बार सम्बन्ध जुड़ जाए, तो आपका मिज़ाज बदल जाता है, आपके होने का ढंग बदल जाता है। फिर महावीर की बातें समझ में आनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपकी आँखों की दिशा, आपकी आँखों का ढँग, आपके देखने का ढँग, आपके होने का ढँग – सब बदल जाता है। इसके पहले कि महावीर आपके साथी बन सकें, आपको उनका साथी बन जाना बहुत जरूरी है और इसके पहले कि आपकी समझ में आ सके,आपकी समझ का पूरा ढँग बदल जाना जरूरी है।

जैसे आप है, वैसे ही महावीर को समझने का कोई उपाय नही है। इसलिए महावीर को मानने वालो की कोई कमी नही है, लेकिन समझने वाला मुश्किल से कोई दिखाई पड़ता है। जो मानने वाले हैं, वे भी सोचने वाले हैं। उन्होंने भी महावीर की व्याख्या कर रखी है अपने हिसाब से।

अपने को पोंछ कर, अपने मिटा कर जो समझने चलेगा, वही केवल समझ पायेगा।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें।

ये प्राथमिक सूत्र थोड़े कठिन होंगे, क्योंकि महावीर अपने अनुभव को एक ढांचा दे रहे हैं, एक व्यवस्था दे रहे हैं। वह व्यवस्था समझ में आ जाये तो फिर बाद का प्रवेश बहुत आसान है।

'...धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव – ये छह द्रव्य है। केवल दर्शन के धर्ता जिन भगवानो ने इन सबको 'लोक' कहा है...।'

पहली बात : महावीर और जैनो के बाकी तेईस तीर्थंकर किसी शास्त्र मे विश्वास नही करते – किसी वेद, किसी कुरान, किसी बाइबल में उनका विश्वास नही है। क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि अनुभव शब्द में संरक्षित नहीं किया जा सकता। इसलिए मूल स्रोत सदा व्यक्ति है, शास्त्र नही।

जैसे हिन्दू-धारणा है, वेद पर उसका भरोसा है। मूल विश्वास उसका वेद पर है, शास्त्र पर है। जो वेद कहता है, वह ठीक है। और, अगर कोई व्यक्ति कुछ कहता हो, और वह वेद के विपरीत चला जाता हो, तो व्यक्ति गलत होगा, वेद गलत नही होगा। लेकिन महावीर की दृष्टि बिलकुल उल्टी है। महावीर कहते है, भरोसा व्यक्ति का है और, अगर व्यक्ति कुछ कहता हो, और वह वेद के विपरीत चला जाता हो, तो वेद गलत है, व्यक्ति गलत नही है।

इस फ़र्क को ठीक-से समझ लें।

शास्त्र मृत है, व्यक्ति जीवित है। मृत पर बहुत भरोसा उचित नही है। और मृत का अगर कोई मूल्य भी है, तो वह भी इसीलिए है कि वे किसी जीवित व्यक्ति के वचन हैं। लेकिन शास्त्र कितना ही प्राचीन हो, और कितना ही मूल्यवान हो, किसी भी जीवित व्यक्ति के अनुभव को गलत करने के काम नहीं लाया जा सकता।

महावीर व्यक्ति पर जितना भरोसा करते है, उतना पृथ्वी पर किसी दूसरे व्यक्ति ने नही किया है। व्यक्ति की चरम मूल्यवत्ता महावीर को स्वीकार है। वेद जैसे कीमती शास्त्र को भी महावीर कह देते है, छोड देना होगा, अगर वह व्यक्ति के अनुभव के अनुकूल न हो। उनके लिये जीवित व्यक्ति चरम-मूल्य है, अनन्य इकाई है।

यह बडी क्रान्तिकारी धारणा है। यह मन को भी बड़ी चोट पहुँचाती है। और मजे की बात तो यह है कि जैन भी इस धारणा के अनुकूल नहीं चल पाये। जैन भी अब महावीर के वचन पर भरोसा करते हैं। अगर किसी व्यक्ति का अनुभव महावीर के वचन के विपरीत जाता है, तो वे कहते है कि यह व्यक्ति गलत है। अब महावीर का वचन भी वेद बन गया है। इसलिए जैन हिन्दू-धर्म का एक हिस्सा होकर रह गये है। अब उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। हो नही सकता। क्योंकि महावीर की मौलिक धारणा ही नष्ट हो गई है। महावीर की धारणा यह है कि व्यक्ति का सत्य

चरम है। महावीर बार-बार कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूँ यह उनका अनुभव है जो 'केवल ज्ञान' को उपलब्ध हुए हैं। किसी शास्त्र की गवाही महावीर नहीं देते। हमेशा गवाही व्यक्तियों की है।

'केवल दर्शन, के धर्ता जिन भगवानों ने इसको 'लोक' कहा है।'

और भी कुछ बातें इसमें ख्याल ले लेनी जरूरी हैं।

'केवल दर्शन, का अर्थ है, जो उस अवस्था को उपलब्ध हो गये है जहाँ मात्र ज्ञान रह आता है और जानने को कुछ भी नहीं बचता। हम जब भी कुछ जानते हैं, तो कुछ जानते है – कोई ऑब्जेक्ट।

आप यहाँ बैठे है, मैं आपको देख रहा हूँ, तो मैं आपको जान रहा हूँ। फिर आप यहाँ से हट जाएँ और जानने को कुछ भी न बचे, सिर्फ़ मेरा जानने वाला रह जाए – सो न जाए, मूर्छित न हो जाए – होश में हो, जानने को कुछ भी न बचे और सिर्फ़ जानने वाला बच जाए, मन के पर्दे पर से सारी तस्वीरें खो जाएँ, सिर्फ़ चेतना का प्रवाह बच जाए, तो उस अवस्था को महावीर 'केवल ज्ञान' कहते हैं। शुद्ध-ज्ञान – मात्र-ज्ञान। जो ऐसे मात्र-ज्ञान को उपलब्ध हो जाते है, उनको महावीर 'जिन' कहते हैं। जिन का अर्थ है, जिन्होंने जीत लिया, जिन्होंने जीवन की परम विजय उपलब्ध कर ली, जिनको जीतने को अब कुछ भी न बचा। और ऐसे जिनों को महावीर 'भगवान' कहते हैं।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के लिए 'भगवान्' का वही अर्थ नही है, जो हिन्दुओ के लिए है, ईसाइयों के लिए है, मुसलमानों के लिए है। महावीर की 'भगवान्' की बड़ी अनूठी अवधारणा है।

तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी है :

एक तो महावीर कहते है, उतने ही भगवान् है, जितनी आत्माएँ है। भगवान् एक नही हैं। एक भगवान् की धारणा बहुत डिक्टेटोरियल है, बहुत तानाशाहीपूर्ण है। महावीर कहते है, प्रत्येक आत्मा भगवान् है। जिस दिन पता चल जायेगा, उस दिन प्रगट हो जायेगी। जब तक पता नही चला है, तब तक वृक्ष बीज में छिपा है।

अनन्त भगवानों की धारणा है महावीर की। अनन्त जितने जीव है। चींटी में जो जीव है, वह भी छिपा हुआ भगवान् है। आज नही कल, वह भी प्रगट होगा वृक्ष में जो है, वह भी भगवान् है। आज नही कल, वह भी प्रगट होगा। समय की भर देर है। एक घड़ी आयेगी, जब, वह छिपा है, वह प्रगट हो जायेगा।

अनन्त भगवानों की धारणा दुनिया में कही भी नहीं है। और इस धारणा के पीछे भी व्यक्ति का मूल्य है। महावीर को यह ख्याल दुखद मालूम पड़ता है कि एक ब्रह्म है, जो सबका मालिक है। यह बात ही तानाशाहीपूर्ण मालूम पड़ती है। यह बात महावीर को उचित नहीं मालूम पड़ती कि 'उस एक' में ही सब खो जायेंगे।

यह भी बात उचित नहीं मालूम पड़ती कि 'उस एक' ने सबको बनाया है। 'वह एक' सृष्टा है, यह बात बेहूदी है।

महावीर कहते हैं कि अगर मनुष्य की आत्मा बनाई गई है तो वह आत्मा ही न रही, वस्तु हो गई। जो बनाई जा सकती है, वह आत्मा कैसे हो सकती है। महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है वह वस्तु होगी, आत्मा नहीं। इसलिए अगर किसी परमात्मा ने आत्माएँ बनाई हैं, तो वे सब वस्तुएँ हो गई। फिर हम परमात्मा के हाथ की गुड्डियाँ हो गये, हमारा कोई मूल्य न रहा।

महावीर सृष्टा की धारणा को अस्वीकार कर देते है। वे कहते हैं, कोई सृष्टा नहीं है। क्योंकि अगर कोई सृष्टा है तो आत्मा का मूल्य नष्ट हो जाता है। आत्मा का मूल्य ही यही है कि वह असृष्ट है, अनक्रिएटेड है। उसे बनाया नहीं जा सकता। जो भी बनाई जा सकती है, वह वस्तु होगी, यन्त्र होगी – कुछ भी होगी – लेकिन वह जीवन चेतना नहीं हो सकती।

थोड़ा सोचें। जीवन चेतना अगर बनाई जा सके, तो उसका मूल्य, उसकी गरिमा, उसकी महिमा – सब खो जायेगी। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई सृष्टा परमात्मा नही है। फिर महावीर कहते है, जो बनाई जा सकती है, वह नष्ट भी की जा सकती है।

ध्यान रहे, जो भी बनाया जा सकता है, वह मिटाया जा सकता है। तो अगर कोई परमात्मा है आकाश में, जिसने कहा बन जाओ और आत्माएँ बन गई, और वह किसी भी दिन कह दे कि मिट जाओ और आत्माएँ मिट जाएँ, तो यह मजाक हो गया, जीवन के साथ व्यंग हो गया। इसलिए महावीर कहते हैं, न तो आत्मा बनाई जा सकती है और न मिटाई जा सकती है। जो न बनाया जा सकता और जो न मिटाया जा सकता, उसको महावीर 'द्रव्य' कहते हैं – सब्सटेन्स।

महावीर की परिभाषा को समझ लेना आप। द्रव्य उसको कहते है, जो न बनाया जा सकता और न मिटाया जा सकता है। जो है। इसलिए महावीर कहते हैं, जगत् में जो भी मूल द्रव्य हैं, वे है सदा से। उनको किसी ने बनाया नही है, और उनको कभी कोई मिटा भी नही सकेगा।

आधुनिक विज्ञान महावीर से राजी है। जैनो की वजह से महावीर का विचार वैज्ञानिको तक नही पहुँच पाता, अन्यथा आधुनिक विज्ञान जितना महावीर से राजी हो सकता है, उतना किसी से भी राजी नही हो सकता। अगर आइंस्टीन को महावीर की बात समझ आ जाती तो आइंस्टीन महावीर की जितनी प्रशंसा कर सकता था, उतनी प्रशंसा और कोई भी नहीं कर सकता। लेकिन जैनों के कारण बड़ी कठिनाई है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। महावीर की पच्चीससौवीं वर्ष गाँठ आती है। वे मुझसे कहने लगे कि 'किस भाँति हम इसको मनाएँ कि सारे जगत को महावीर के ज्ञान का प्रसाद मिल जाए ?' तो मैंने उनको कहा कि 'आप जब तक हैं, तब तक बहुत मुश्किल है। आप ही उपद्रव हैं, आप ही बाधा हैं।'

महावीर विराट हो सकते हैं, लेकिन जैनों का बड़ा संकीर्ण घेरा है। और जैनों की संकीर्ण बुद्धि के कारण महावीर की जो तस्वीर दुनिया के सामने आती है, वह बड़ी संकीर्ण हो जाती है। महावीर का खुल कर अध्ययन भी नहीं हो पाता। बंधी लकीरों वाले लोग कुछ भी नही खोज सकते। महावीर की पुनः खोज की ज़रूरत है, लेकिन तब बँधी लकीरें तोड़ देनी पड़ेंगी।

महावीर जिसको 'द्रव्य' कहते हैं, विज्ञान आज उसे 'एलिमैन्ट' कहता है। वह कभी नष्ट नही होता और कभी बनाया भी नही जाता। वह रूपान्तरित होता है, बनता है बिगड़ता है। लेकिन बनना और बिगड़ना सिर्फ़ रूप का होता है, मूल तत्त्व न तो बनता है और न बिगडता है। इस तरह के छह द्रव्य महावीर ने कहे हैं।

पहला द्रव्य है–धर्म, दूसरा – अधर्म, तीसरा – आकाश, चौथा – काल, पाँचवाँ – पुद्गल, छटवाँ – जीव। परमात्मा की कोई जगह नहीं है, ये छह मूल द्रव्य हैं। ये छह सदा से हैं और सदा रहेंगे। और जो कुछ भी हमें बीच में दिखाई पड़ता है वह इन छह का मिलन और बिछुड़न है, इनका आपस में जुड़ना और अलग होना है। सारा संसार संयोग है, ये छह मूल द्रव्य हैं।

अनन्त आत्माएँ हैं और हर आत्मा परमात्मा होने की क्षमता रखती है, इसलिए महावीर की परमात्मा की धारणा को ठीक-से समझ लें। महावीर कहते हैं आत्मा की तीन अवस्थाएँ है : एक अवस्था है आत्मा की – बहिर् आत्मा। जब चेतना बाहर की तरफ़ बहती रहती है। दूसरी अवस्था है आत्मा की – अन्तरात्मा। जब चेतना भीतर की तरफ़ बहती है।

वासना में बहती है बाहर को तरफ़, विचार में बहती है बाहर की तरफ़, तब आप बहिर् आत्मा हैं – आत्मा की निम्नतम् अवस्था। ध्यान में बहती है भीतर की तरफ़, मौन में बहती है भीतर की तरफ़, तब आप अन्तरात्मा हैं – आत्मा की दूसरी अवस्था। और आत्मा की तीसरी अवस्था है, जब चेतना कहीं भी नहीं बहती – न बाहर की तरफ, न भीतर की तरफ। जब चेतना सिर्फ़ होती है 'जब चेतना बहनी बन्द हो जाती है, जब कोई गति और कोई कम्पन नहीं रह जाता, तो वह आत्मा की तीसरी अवस्था है – समाधि। इस तीसरी अवस्था में आत्मा का नाम परमात्मा है।

बहिर् आत्मा से अन्तरात्मा, अन्तरात्मा से परमात्मा। और अनन्त आत्माएँ हैं, इसलिए अनन्त परमात्मा हैं। और कोई आत्मा किसी में लीन नहीं होती, क्योंकि

प्रत्येक आत्मा अपने में स्वतन्त्र द्रव्य है। लेकिन अन्तिम अवस्था में कोई भेद नही रह जाता – दो आत्माओं में कोई भेद नही रह जाता, कोई दीवार नहीं रह जाती, कोई अन्तर नही रह जाता, किसी तरह का विवाद-विरोध नहीं रह जाता और फिर भी प्रत्येक आत्मा निजी होती है, इनडिविजुअल होती है।

ये छह द्रव्य भी महावीर के बड़े अनूठे है, इनकी व्याख्या समझने-जैसी है :

'धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति'। बहुत अनूठी दृष्टि है। महावीर कहते हैं, जिससे भी गति होती है, वह धर्म है, और जिससे भी गति रुकती है, वह अधर्म है। जिससे भी विकास होता है, वह धर्म है; जिससे भी अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता की तरफ़ पहुँचती है, वह धर्म है; और जिससे भी विकास रुकता है, वह अधर्म है।

अधर्म को महावीर कहते है, स्थिति का तत्व – रोकने वाला; और धर्म को महावीर कहते हैं, गति का तत्व – बढाने वाला। दोनों है, आप पर निर्भर है कि आप किस तत्व के साथ अपने को जोड लेते है – अगर आप अधर्म के साथ अपने को जोड लेते है, तो आप रुक जाते है। जन्मो-जन्मो तक रुके रह सकते है। अगर आप धर्म के साथ अपने को जोड़ लेते है, तो बढने शुरू हो जाते है।

एक मछली है, तैरने की क्षमता है उसमे, लेकिन वह भी पानी का सहारा न ले तो तैर न पायेगी। क्षमता है, पानी का सहारा ले तो तैर पायेगी। आपकी क्षमता है परमात्मा होने की, लेकिन धर्म का सहारा लें तो तैर पायेंगे, अधर्म का सहारा ले तो रुक जायेंगे। अगर आप बहिर्-आत्मा होकर रह गये है, तो उसका कारण है कि आपने कहीं अधर्म का सहारा ले लिया है।

यह भी सोचने-जैसी बात है कि महावीर बुराई को अधर्म नही कहते। जो भी रोक लेती है बात, वही अधर्म है। तब बुरे की व्याख्या भी नई हो जाती है। तब बुरे का अर्थ, अशुभ का अर्थ, पाप का अर्थ बड़ा नया हो जाता है। जीवन में जहाँ-जहाँ रोकने वाले तत्व है, और उनके साथ आपका जो गठबन्धन है, वही अधर्म है।

धर्म खोलेगा, मुक्त करेगा, स्वतन्त्र करेगा, बन्धनो को काटेगा। नाव बधी है किनारे से, उसे किनारे की खूटियो से अलग करेगा। और जैसे-जैसे किनारे की खूटियाँ हटती जायेंगी, नाव मुक्त होती जायेगी गति करने को। कहाँ-कहाँ हम बंधे हैं?

जो-जो हमारी वासनाएँ है, वे-वे हमारी खूंटियाँ हैं – नदी के किनारे जिनसे हमारी नाव बधी है। और खूटियो को हम मजबूत रखते हैं कि कहीं खूंटियाँ टूट न जायें। खूंटियो को हम बल देते हैं, ताकि खूंटियाँ कमजोर न हो जायें। हम अपने बन्धनों को पोषण देते हैं। जो हमें बाँध रहा है, जो हमारा कारागृह है, उसे ही हम जीवन समर्पित कर रहे हैं। जिससे हम अटक गए हैं, उसे हम सहारा समझ रहे हैं।

और जब तक हमें यह दिखाई न पड़ जाये कि क्या सहारा है और क्या बाधा है – जब तक यह साफ न हो जाये, तब तक कोई गति नही हो सकती है ।

अगर महावीर अपने राजमहल को छोड़ कर चले जाते है, तो आप यह मत सोचना कि राजमहल में कुछ बुराई है – जिसकी वजह से वे राजमहल छोड़ कर चले जाते है। धन, वैभव छोड़ देते है – तो आप यह मत सोचना कि धन, वैभव में कोई बुराई है । महावीर को दिखाई पड़ता है कि वे खूटियाँ हैं, और जब तक उनके इर्द-गिर्द मैं हूँ, तब तक धर्म के तत्व के साथ मेरा सम्बन्ध नही हो पायेगा। मैं गति नही कर पाऊँगा ।

अगर ठीक-से समझें तो महावीर धन को नही छोड़ते, धन से अपने को छुड़ाते हैं । बुनियादी फर्क है । धन छोड़ना बहुत आसान है, धन से अपने को छुड़ाना बहुत कठिन है । क्योंकि धन को छोड़कर आप भाग सकते है, लेकिन तत्काल आप दूसरा धन पैदा कर लेंगे, जिसको आप पकड़ लेंगे । धन कुछ रुपयों-सिक्कों में बन्द नही है, जहाँ भी सुरक्षा है, वही धन है, और जहाँ भी भविष्य का आश्वासन है, वही धन है ।

धन का मतलब क्या है ?

धन का मतलब है कि मेरे पास अगर एक हजार रुपये है, तो कल मेरा सुरक्षित है । कल मुझे भूखा नही मरना पड़ेगा । रहने को मकान होगा, भोजन होगा, कपडे होंगे – मै कल के लिए सुरक्षित हूँ । धन की इतनी पकड़ भविष्य की सुरक्षा के लिए है । अगर अचानक आपको पता चल जाए कि कल सुबह दुनिया नष्ट हो जाने वाली है, तो धन पर आपकी पकड़ इसी वक्त छूट जायेगी; कजूस-से-कंजूस आदमी धन लुटाता हुआ दिखाई पड़ेगा ।

अगर दुनिया कल सुबह खत्म हो रही हो तो धन का मूल्य क्यों खतम होता है ?

धन का मूल्य है भविष्य की सुरक्षा में, अगर भविष्य ही नही, तो धन का कोई मूल्य नही । आप धन छोड़ सकते है, लेकिन भविष्य की सुरक्षा आपके साथ अगर लगी है, तो आप नया धन पैदा कर लेंगे ।

तो एक आदमी धन को छोड देता है, पुण्य को पकड़ लेता है । फिर पुण्य धन हो जाता है । फिर वह सोचता है कि पुण्य मेरे पास है तो स्वर्ग मुझे मिलेगा । आपके लिहाज से वह आदमी और भी बड़े भविष्य का इन्तजाम कर रहा है । आपतो मरने तक भविष्य का उपयोग कर सकते हैं, वह मरने के बाद भी पुण्य का उपयोग कर सकता है । वह जिस करेन्सी को इकट्ठा कर रहा है, वह जीवन के उस तरफ भी चलती हैं। आपके नोट उस तरफ नही चलेंगे । इसलिए साधु-संन्यासी गृहस्थियों को समझाते है कि 'क्या धन को पकड़ रहे हो, क्षणभंगुर है ! पुण्य को पकड़ो, जो कि सदा साथ रहेगा ।'

लेकिन, यह बड़े मजे की बात है कि 'पकड़ो जरूर।' उनका कहना कुल इतना ही है कि 'तुम गलत धन को पकड़ रहे हो, ठीक धन को पकड़ो। तुम जिस धन को पकड़ रहे हो, यह मौत तक काम देगा, मौत के बाद तुम मुश्किल में पड़ोगे। हमने ठीक धन पकड़ा है। तुमने गलत बैंक का सहारा लिया है, हमने ठीक बैंक का सहारा लिया है।' लेकिन सहारे हैं।

धन को छोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि आप नया धन पैदा कर लेंगे। जिस मन में असुरक्षा है, वह धन को पैदा कर ही लेगा। धन, असुरक्षित मन की संतान है। फिर वह धन किसी भी तरह का हो सकता है।

महावीर ने धन नहीं छोड़ा, धन से अपने को छुड़ाया। यह प्रक्रिया अलग है। महावीर का धन पर ध्यान नहीं है, अपने पर ध्यान है : कि जो-जो चीज मुझे पकड़ती है, उसकी पकड़ मेरे ऊपर क्यों है। वह पकड़ मेरी न रह जाए।

ध्यान रहे, धन आपको पकड़े हुए भी नहीं है, आप ही धन को पकड़े हुए हैं। इसलिए असली सवाल धन छोड़ने का नहीं है, असली सवाल अपनी पकड़ छोड़ने का है। इसलिये यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी पकड़ छोड़ दे। ऐसा हुआ है। और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन छोड़कर भी पकड़ न छोड़े। यह रोज हो रहा है।

बारीक है दोनों के बीच मार्ग। महावीर छुड़ा रहे हैं अपनी पकड़। जहाँ-जहाँ पकड़ है, वे छोड़ रहे हैं। जहाँ-जहाँ सहारा है, उसे छोड़ रहे हैं। अनुभव में आ रहा है कि सब सहारे बाधा बन गये हैं। उन्हीं सहारों की वजह से नाव रुकी है।

धर्म है, गति का तत्त्व। विज्ञान को बड़ी कठिनाई थी सौ साल पहले, तो विज्ञान ने एक तत्त्व 'ईथर' की कल्पना की थी। विज्ञान की कठिनाई यह थी कि सूर्य की किरणें आती हैं, यात्रा होती है, तो कोई-न-कोई तत्त्व चाहिए – जिस पर सूर्य की किरणें यात्रा करती हैं। तो ईथर परिकल्पित था : कि कोई-न-कोई तत्त्व होना चाहिये, नहीं तो किरणें कैसे यात्रा करेंगी। तो ये जो शून्य महाकाश है, इसमें कोई तत्त्व होना चाहिये। उस तत्त्व का कोई पता नहीं था। ईथर परिकल्पित था। अब ईथर की मान्यता क्षीण हो गई है। लेकिन, कहीं-न-कहीं विज्ञान के चित्त में यह बात घूमती ही रहती है कि अगर कोई चीज यात्रा कर रही है, तो माध्यम जरूरी है। एक नदी बह रही है, तो दो किनारे जरूरी हैं। उन दो किनारों के माध्यम के बिना नदी नहीं बह पायेगी।

डार्विन ने सिद्ध किया मनुष्य विकास कर रहा है, लेकिन डार्विन को ख्याल नहीं है, जो महावीर को ख्याल है। अगर मनुष्य विकास कर रहा है, तो गति हो रही है। तो गति की एक धारणा, और गति का एक मूल द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा गति

नहीं होगी । मनुष्य यात्रा कर रहा है । मनुष्य पशु से मनुष्य हो गया है, या बन्दर से मनुष्य हो गया है । डार्विन के हिसाब से जीवन का तत्त्व पहला नदियों के किनारे लगी पत्थर पर जो काई होती है, वह है । हरी काई, वह जीवन का पहला तत्त्व है । उस हरी काई से आप तक यात्रा हो गई । आप तक ही नहीं, महावीर तक भी यात्रा हो गई ।

तो महावीर कहते हैं, यह जो इतना एवोल्यूशन हो रहा है, इतनी गति हो रही है, इस गति के लिये गति का एक तत्त्व चाहिए । उसे वे 'धर्म' कहते हैं । और जो उस गति के तत्त्व को पहचान लेता है अपने जीवन में, और उसका संगी-साथी हो जाता है, उसमें अपने को छोड़ देता है, वह विकास की चरम अवस्था पर पहुँच जाता है । वह चरम अवस्था परमात्मा है । इसलिए धर्म वहाँ समाप्त हो जाता है, जहाँ आप परमात्मा होते हैं । वहाँ यात्रा पूरी हो जाती है । मंजिल आ गई ।

अगर एक पत्थर को आप रास्ते पर पड़ा देखते हैं तो आप कभी भी नहीं सोचते कि 'वह क्यो रुका है ? आपमें और पत्थर में फ़र्क क्या है ? पौधे और पत्थर में फ़र्क क्या है ?'

पौधा बढ रहा है, गतिमान है – पत्थर अगतिमान है – रुका है, ठहरा है । उसकी अगति के कारण ही उसकी चेतना कुंद है । उसमें भी परमात्मा छिपा है, लेकिन उसने अधर्म को बडे जोर से पकड रखा है । इतने जोर से पकड रखा है कि उसमें कोई भी गति नही हो रही है ।

गति के दो बिन्दु हम ख्याल में ले लें । एक पत्थर-जैसी अवस्था – बन्द, सब तरफ से – कुछ प्रवेश नही करता – कोई प्रवाह नही है – सब ठहरा हुआ – फ्रोजेन, जमा हुआ – और फिर एक तरल अवस्था महावीर की – जहाँ कुछ भी ठहरा हुआ नही – कुछ भी अटका हुआ नही – कुछ भी रुका हुआ नहीं – जीवन्त प्रवाह है, मात्र प्रवाह है ।

'अधर्म और धर्म ।' हम आमतौर से सोचते हैं अधर्म को अनीति की भाषा में, धर्म को नीति की भाषा मे । महावीर धर्म को सोचते है विज्ञान की भाषा में, नीति की भाषा में नही । इसलिए जो चीज भी आपको परमात्मा की तरफ ले जा रही है, वह धर्म है ।

यह भी प्रत्येक व्यक्ति को सोचने-जैसा है कि 'क्या उसे परमात्मा की तरफ ले जायेगा ।' जरूरी नही है कि दूसरा जिस ढंग से परमात्मा की तरफ जा रहा है, उसी ढंग से आप भी जा सकेंगे; क्योंकि दूसरा अलग बिन्दु पर खड़ा है और आप अलग बिन्दु पर खड़े हैं; दूसरा अलग स्थिति में खड़ा है, आप अलग स्थिति में खड़े हैं । और कभी-कभी दूसरे के पीछे चल कर आप उलझन में पड़ जाते हैं । और ऐसा भी नहीं

है कि दूसरा गलत रहा हो, अपने लिए ठीक रहा हो । इसलिए धर्म बड़ी व्यक्तिगत खोज है ।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लगड़ा-लगड़ा के चल रहा था । रास्ते पर एक मित्र मिल गया, और मित्र ने कहा, "यही तकलीफ मुझे भी थी । दाँत मैंने निकलवा दिये, तब से बिलकुल चंगा हो गया हूँ !"

नसरुद्दीन ने सोचा, 'कोई हर्ज तो है नही । दाँत निकलवाने में क्या हर्ज ।' दाँत निकलवा दिये । लंगड़ाना तो जारी रहा, मुँह और खराब हो गया ! दूसरा मित्र मिल गया । मित्रो की कोई कमी तो है नही ! उसने कहा कि "दाँत निकलवाने से कुछ होने वाला नही । तकलीफ यही मुझे भी थी, अपेन्डिक्स निकलवा दी, तब से बिलकुल चंगा हो गया हूँ !"

मुल्ला ने सोचा कि अपेन्डिक्स का कोई उपयोग तो है नही, निकलवा दी । हालत और खराब हो गई, कमर और झुक गई । तीसरा मित्र मिल गया, उसने कहा कि "क्या कर रहे हो ? अपेन्डिक्स और दांतो से कुछ होने वाला नही । टॉन्सिल्स असली तकलीफ है। मैंने निकलवा दिए, तब से बिलकुल जवान हो गया हूँ ।"

मुल्ला ने टॉन्सिल्स भी निकलवा दिए, कुछ लाभ न हुआ । लेकिन एक दिन पहला मित्र मिला, और देखा कि मुल्ला बिना लंगड़ाए शान से चल रहा है । उसने कहा कि "अरे, मालूम होता है कि दाँत निकलवा दिए, फायदा हो गया ।"

मुल्ला ने कहा कि "दाँत निकलवाने से भी नही हुआ, अपेन्डिक्स निकलवाने से भी नहीं हुआ, टॉन्सिल्स निकलवाने से भी नही हुआ — जूते में एक कील थी, उसको निकलवाने से सब ठीक हो गया . . . !"

. . .मित्रो से सावधान ! गुरुओं से सावधान ! हो सकता है उनको दाँत निकलवाने से लाभ हुआ हो । कोई उनकी गलती नही है । लाभ हो सकता है । तकलीफ क्या थी, इस पर निर्भर है ।

आप अपनी तकलीफ पहचान लें — अपनी स्थिति, अपना बिन्दु — वही से यात्रा होगी । आप — जहाँ से महावीर बोल रहे है, वहाँ से यात्रा नही कर सकते; जहाँ से मैं बोल रहा हूँ, वहाँ से यात्रा नही कर सकते; जहाँ से कोई भी बोल रहा हो, वहाँ से यात्रा नही कर सकते — आप तो यात्रा वही से करेंगे, जहाँ आप खड़े हैं ।

इसलिए अपने जीवन में एक सतत निरीक्षण चाहिए कि 'क्या है जो मुझे रोक रहा है ? क्या है जिससे मैं क्रुद्ध हो गया हूँ, पत्थर हो गया हूँ ? क्या है जिससे मैं जड़ हो गया हूँ ? और क्या है जो मुझे खोलेगा ? और क्या मुझे खोलता है ?

तब आपको किसी गुरु के पीछे चलने की जरूरत न होगी । तब आप अपने गुरु हो जायेंगे । और जब व्यक्ति अपना गुरु हो जाता है, और शान्त निरीक्षण करता

है अपनी जीवन स्थिति का, तो बहुत कठिन नही होता धर्म को जान लेना – कि धर्म क्या है ?

आप अगर खुद ही निरीक्षण करेंगे, तो आप पायेंगे कि क्रोध आपको बाँधता है, रोकता है, जड़ कर देता है, मूर्छित करता है, होश खो जाता है, आप रुग्ण हो जाते हैं, अस्थायी रूप से आप पागल हो जाते है । मनौवैज्ञानिक इसे टेम्परेरी मेडनेस् कहते हैं । पागल स्थायी रूप से होता है क्रोध में, आप अस्थायी रूप से हो जाते हैं ! बाकी हो आप वही जाते है ।

. . .तब आप नीचे गिर रहे हैं, बहिर्-आत्मा हो रहे है, । जब आप किसी के प्रति दया और करुणा से भरते हैं, तो ठीक उल्टी घटना घटती है – क्रोध से उल्टी । तब आप खुलते है – बंधते नही, मुक्त होते है । खूंटी टूटती है, नाव खुलती है, आप बहते हैं ।

जब भी आप करुणा के क्षण में होते है, तब आप पाते है शरीर का बोझ खो गया । जब आप क्रोध में होते है, तो सारी जमीन आपको नीचे की तरफ खींचती है । जब आप क्रोध में होते हैं, तब आप वजनी हो जाते है । जब आप करुणा में होते हैं, तब आप हल्के हो जाते है ।

अपने ही भीतर निरन्तर कसना है और खोजना है कि 'क्या मुझे मुक्त करता है और क्या मुझे बाधता है ? क्या है अधर्म और क्या है धर्म ?' ये प्रत्येक व्यक्ति को रोज-रोज कस कर जानने की बाते हैं । इनके कोई बंधे सूत्र वेद में उपलब्ध नही हैं । यही महावीर का आग्रह है कि कोई किताब नही है जो आपके लिए काम दे देगी । किसी किताब के सहारे चल कर आपके भटकने की सम्भावना ज्यादा है – बजाय पहुँचने के; क्योकि हर किताब किसी व्यक्ति का निजी अनुभव है । और व्यक्ति भिन्न-भिन्न है । और धर्म का प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्राथमिक अनुभव अलग-अलग होता है ।

गुर्जियेफ के पास लोग पहुँचते थे, तो गुर्जियेफ कभी-कभी बडी हैरानी की बातें खड़ी कर देता था जो हम सोच भी नही सकते कि धर्म हो सकती है । एक आदमी गुर्जियेफ के पास पहुँचता है जिसने कभी सिगरेट नही पी, और एक आदमी पहुँचता है जो सिगरेट का आदी है और सिगरेट नही छोड़ सकता । तो जो सिगरेट का आदी है, उसको गुर्जियेफ कहेगा कि 'सिगरेट बन्द', और जिसने सिगरेट कभी नही पी, और जो दुश्मन है, जो कहता है कि 'पी लूं तो मुझे उल्टी हो जाये', उसको कहेगा कि 'तू शुरू कर !' हम सोच भी नहीं सकते कि इसका क्या प्रयोजन है ! आदत बाँधती है – फिर वह चाहे सिगरेट पीने की हो, और चाहे सिगरेट न पीने की हो । आदत अधर्म है ।

तो गुर्जियेफ बड़ी उल्टी बात कह रहा है । वह जिसने कभी सिगरेट नहीं पी है, जो कहता है 'मैंने कभी सिगरेट नहीं पी, अगर कोई दूसरा भी पी रहा हो तो मेरे भीतर मतली खड़ी हो जाती है, उल्टी होने लगती है', उसे गुर्जियेफ कहता है – तू पी; क्योंकि तू भी एक आदत में कुन्द है, और यह भी एक आदत में कुन्द है । इसको भी इसकी आदत के बाहर लाना है, तुझे भी तेरी आदत के बाहर लाना है । आदत अधर्म है।

गुर्जियेफ को महावीर का कोई पता नहीं था, नहीं तो वह बड़ा खुश हुआ होता । लेकिन क्या आपको पता है कि महावीर को मानने वालों को यह ख्याल है कि 'आदत अधर्म है ? नही, वे कहते है कि 'अच्छी आदतें धर्म हैं, बुरी आदते अधर्म है ।'

अच्छी और बुरी आदत का बड़ा सवाल नहीं है । आदत आपको जड़ बनाती है, तरलता खो जाती है । फिर आदत कुछ भी हो – चाहे रोज सुबह उठकर सामयिक करने की हो, या सिगरेट पीने की हो – अगर आदत है ।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि 'आज ध्यान नही किया तो अच्छा नहीं लग रहा ।' और जो आदमी सिगरेट पीता है, अगर वह न पिये तो उसे भी अच्छा नहीं लगता, तो फर्क क्या हुआ ? मगर सिगरेट न पीने वाले से हम कहेंगे – 'हिम्मत रखो, डटे रहो,' और ध्यान करनेवाले से हम कहेंगे कि 'नही, ध्यान करना चाहिए था !' मगर यह ध्यान करनेवाला भी एक आदत का गुलाम हो रहा है, एक आदत इसके आस-पास घेरा बाँध रही है ।

बडे मजे की बात है, लोग मेरे पास आते है, वे कहते हैं – 'ध्यान से कुछ आनन्द तो नहीं आता, लेकिन अगर न करें तो तकलीफ होती है ।' वही तो सिगरेट पीने वाले की भी तकलीफ है । वह भी कहता है 'सिगरेट पीने से कुछ मिल नही रहा है, लेकिन न पियें तो बेचैनी होती है ।'

आदत का अर्थ यह है कि कुछ करने की एक यान्त्रिक व्यवस्था बन गई है । उस यान्त्रिकता में चलो तो ठीक लगता है, उस यान्त्रिकता से हटो तो गलत लगता है ।

अयान्त्रिक होना, नॉन-मैकेनिकल होना, धार्मिक होना है । कोई आदत पकड़े ना, कारागृह न बने । और आदत से चेतना सदा मुक्त रहे । चेतना कभी आदत के नीचे न दबे, सदा आदत के ऊपर हावी रहे, और हमारे हाथ में हो ।

इसका यह मतलब नही है कि आप ध्यान न करें, इसका मतलब सिर्फ इतना है कि ध्यान भी आदत न बने । नहीं तो प्रेम भी आदत हो जाता है, ध्यान भी आदत हो जाता है ।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई थी तो वह छाती पीट-पीटकर रो रहा था । मित्रों ने सलाह दी कि 'ऐसा भी क्या है, छह महीने में सब घाव भर जायेगा, तुम फिर किसी के प्रेम में गिरोगे, फिर तुम शादी करोगे, ऐसा मत ज़ार-ज़ार होके रोओ ।

सभी घाव भर जाते हैं, सिर्फ समय की बात है।' मुल्ला ने कहा– "छह महीने। और आज रात मैं क्या करूँगा ?"

वे पत्नी के लिए रो भी नहीं रहे हैं। एक आदत है।

तो सेक्स भी आदत हो जाती है, प्रेम भी आदत हो जाती है। पर धर्म की फिकर इस बात की है कि कोई आदत न हो, आप मुक्त हों। कोई भी चीज बाँधती न हो, किसी चीज का व्यसन न हो। ऐसी मुक्ति आपको धर्म की दिशा में ले जायेगी। और व्यसन कुछ भी हो – धार्मिक व्यसन हो, कि रोज जाकर धर्म की चर्चा सुननी, कि रोज मन्दिर जाना है – नही कह रहा हूँ कि रोज मन्दिर मत जायें। लेकिन रोज मन्दिर जाना आदत बन जाये, तो मुर्दा बात हो गई, आप यंत्र की भाँति जाते हैं और आते हैं, कोई परिणाम नहीं होता।

महावीर का यह सूत्र बड़ा विचारणीय है : 'धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति।' तो जहाँ-जहाँ आप गत्यात्मक हैं, डायनैमिक हैं, वहाँ-वहाँ धर्म है। लेकिन जैन साधुओं को देखें, उनसे ज्यादा अगति में लोगों को पाना कठिन है। जैन साधु को कोई गत्यात्मक नही कह सकता : कि उसमें गति है। उसमें गति है ही नही। ढाई हजार साल पहले जो जैन साधु की लक्षणा थी, वही अब भी है। ढाई हजार साल में समय जैसे बहा ही नहीं, चीजें जैसे बदली ही नही। वह अभी भी वही जी रहा है, जहाँ वह ढाई हजार साल पहले था। सब-कुछ बदल गया है, लेकिन वह अपनी आदतो से जकड़ा है, वह वही खड़ा है। और फिर वह सूत्र रोज पढ़ता है कि 'धर्म का लक्षण है, गति।' अगर धर्म का लक्षण है गति, तो जैन साधू से ज्यादा क्रान्तिकारी व्यक्तित्व दूसरा नही होना चाहिये। उसे तो रुकना ही नही चाहिये। उसे तो जीवन के प्रवाह में गतिमान होना चाहिये। लेकिन वह ठहरा हुआ है जड की तरह, पत्थर की तरह। और जो साधू जितना ज्यादा पथरीला हो, उतने अनुयायी कहते हैं कि 'तपस्वी है।' और अगर उसमें जरा-सी भी हलन-चलन दिखाई पड़े, जरा-सा कुछ अंकुरित होता दिखाई पड़े, तो वह विद्रोही है, तो वह आदमी ठीक नही है, तो वह मार्ग से च्युत हो गया। अगर गति दिखाई पड़े तो मार्ग से च्युत है, अगर अगति दिखाई पड़े तो बिलकुल ठीक है।

हम सब अगति के पूजक हैं, हम सब अधर्म के पूजक हैं, इसलिए हम सब ऑर्थोडॉक्स हैं। ध्यान रहे, अगर महावीर की बात हमारे ख्याल में आ जाय तो ऑर्थोडॉक्स धर्म जैसी कोई चीज नही हो सकती– या हो सकती है ? जो ऑर्थोडॉक्स होगा, रूढ़ होगा, वह अधर्म होगा। धर्म तो सिर्फ क्रांतिकारी ही हो सकता है। धर्म का कोई रूप जड़ नही हो सकता। धर्म प्रवाहमान होगा, उसमें गति होगी।

मैं तो कहता हूँ कि 'धर्म, याने क्रान्ति।' और जिस दिन धर्म क्रान्ति नहीं रहता उस दिन सम्प्रदाय बन जाता है। और जैसे ही सम्प्रदाय बनता है, वैसे ही व्यर्थ बोझ और कारागृह हो जाता है।

धर्म का लक्षण है, गति। अधर्म का लक्षण है, स्थिति – स्टेटिक – ठहरे होना। आप अगर ठहरे है, तो अधार्मिक हैं; चाहे रोज मन्दिर जा रहे हों, चाहे रोज पूजा कर रहे हों – अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं। अगर गति कर रहे हैं, नदी की तरह बह रहे हैं – तालाब की तरह बन्द नहीं हैं – रोज सागर की तरफ जा रहे हैं,और भयभीत भी नहीं हैं कि कल क्या होगा – कल का आनन्दपूर्ण स्वीकार है, स्वागत है – तो आप धार्मिक हैं। लेकिन हमारा मन स्थिति पकड़ता है। इसे थोड़ा समझ लें।

हमारा मन सदा स्थिति को पकड़ता है, क्यों? क्योंकि मन के लिए वह सुविधापूर्ण है। जब भी कुछ नई बात होती है, तो मन को असुविधा होती है। क्योंकि मन को नई बात सीखनी पड़ती है। जब भी कोई नई घटना घटती है, तो मन को फिर से समायोजित होना पड़ता है, री-एड्जेस्टमेन्ट करना पड़ता है। इसलिए मन हमेशा आदतें पसन्द करता है। क्योंकि आदतो के साथ कुछ नया नहीं है, सब पुराना है, इसलिए पुराने की धारा में आप बहे चले जाते हैं, नये से आपको अड़चन होती है।

मन नये को पसन्द नही करता। जब आप कोई नई बात सुनते हैं, तो आप फौरन पायेंगे कि भीतर रेजिस्टेन्स है, भीतर विरोध है। जब आप कोई पुरानी बात सुनते हैं, जो आप पहले से ही जानते हैं, और मानते हैं, तो आप बिलकुल स्वीकार कर लेते हैं, कि बिलकुल ठीक है – इसलिए नही कि बिलकुल ठीक है, बल्कि इसलिए कि आप आदी हैं, आपको पता है कि ऐसा है। मन को कुछ सीखना नही पड़ता। मन सीखने का दुश्मन है। सीखने मे प्रवाह है। मन चाहता है – सीखो मत; जहाँ हो, वहीं ठहरे रहो।

पशुओ को देखे, पशु कुछ भी नही सीखते। सीखने की कोई सम्भावना ही नही पशु में। बामुश्किल, थोडा-बहुत सर्कस के लिए उनको राजी किया जा सकता है। बाकी, वह भी बामुश्किल बिलकुल स्थिति है।

अगर अधर्म का आप अर्थ समझते है, तो पशु पक्के अधार्मिक है; क्योंकि जहाँ उनके बाप-दादे थे, वही वे हैं, जहाँ उनके बाप-दादो के बाप-दादो थे वहीं वे हैं। कही कोई फर्क नही हुआ है। बन्दर दस साल पहले जैसे था, अभी भी ठीक वैसे ही है। बन्दर बड़ा पक्का अनुयायी है अपने बाप-दादों का। प्राचीन का अनुयायी है। वही पुरानी उसकी धारणा है। वह कभी नहीं बदलता। कोई उपद्रव नही, कोई क्रान्ति नही किसी तरह का कोई परिवर्तन नही।

आपके हिसाब मे तो बन्दर ही धार्मिक होना चाहिये, पर महावीर के हिसाब मे वह अधर्म में जी रहा है। आदमी बदलता है। आदमी बदलता है, इसलिए आदमी है। आदमी गति करता है, सीखता है, नया अनुसंधान करता है, आविष्कार करता है, खोजता है, नये क्षितिज खोलता चला जाता है – और आदमी हमेशा तैयार है, अपने पुराने को छोड़ने, काटने, बदलने को।

इसलिए मैं कहता हूँ, महावीर की दृष्टि वैज्ञानिक है। विज्ञान कभी भी दावा नहीं करता कि जो हम जानते है, वह ठीक है। वह कहता है, अभी तक जो जानते हैं, । उस हिसाब से ठीक है। कल जो हम जानेंगे, उस हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए महावीर कभी भी नही कहते कि 'यही ठीक है।' वे कहते हैं कि 'इसके विपरीत भी ठीक हो सकता है, इससे भिन्न भी ठीक हो सकता है। यह मेरी दृष्टि है, और दृष्टियाँ भी हैं, उनसे मेरी दृष्टि गलत भी हो सकती है।'

एक प्रवाह है जीवन – सीखने का, जानने का। हम ज्ञान को पकड़ते हैं, जानने मे बचना चाहते हैं। ज्ञान मुर्दा चीज है। मैंने आपसे कुछ कहा, आपने उसे पकड़ लिया, आपने कहा कि 'बिलकुल ठीक है।' लेकिन जानने की प्रक्रिया से आप नहीं गुजरे। ज्ञान को हम पकड लेते हैं, जानने से हम बचते हैं। क्योंकि जानना बडा कष्टपूर्ण है – जैसे कोई खाल उतरवाता हो। पुराना सब उतरता है, नए में प्रवेश करना पड़ता है।

इसलिए आप देखेंगे कि हमारे तथाकथित धर्मो में युवक उत्सुक नहीं होते, बूढ़े उत्सुक होते है। होना उलटा चाहिए। महावीर ने जब अपने जीवन का रूपान्तरण किया था, तब वे जवान थे। लेकिन मेरे पास जैन भी आते है, वे कहते है कि अभी तो काफी समय बाकी है, और ये बातें तो अन्तिम समय की है, । अभी कुछ संसार को देख ले, फिर आखीर में . .

. असल मे मरता हुआ आदमी सीखने मे बिलकुल असमर्थ हो जाता है। तब सब जड़ हो जाता है, सब ठहर गया होता है। उस ठहराव में आदमी धार्मिक हो जाते है, क्योंकि जिसको हम धर्म कहते है, वह खुद एक ठहराव हो गया है।

अगर धर्म जीवित हो तो जवान उत्सुक होगे, अगर धर्म मुर्दा हो तो बूढ़े उत्सुक होगे। मन्दिर में कौन इकट्ठे हैं, इससे पता चल जायेगा कि मन्दिर जिन्दा है या मर गया है। अगर मन्दिर में बूढ़े इकट्ठे हैं तो मन्दिर मर चुका है, बहुत पहले मर चुका है। बूढ़ो से मेल खाता है। अगर मन्दिर में जवान इकट्ठे हैं तो मन्दिर अभी जिन्दा है। इसका यह मतलब नहीं है कि बूढ़े मन्दिर न जाएँ। इसका मतलब यह है कि अगर मन्दिर जवान हो तो बूढ़ो को जवान होना पड़ेगा, और अगर मन्दिर बूढ़ा हो, तो उन जवानों को बूढा होना पड़ेगा। तभी तालमेल बैठ सकता है।

महावीर का धर्म, युवा का धर्म है। एक बड़ी क्रान्ति महावीर ने की। हिन्दू-विचार था कि धर्म अन्तिम बात है। चौथे चरण में जीवन के संन्यास, पहले पूरे संसार का अनुभव। 'ब्रह्मचर्य'– शिक्षण का काल, फिर 'गृहस्थ'– भोग का समय, फिर 'वानप्रस्थ'– संन्यास की तैयारी का समय – और फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र में, आखिरी पच्चीस वर्ष में 'संन्यास।'

यह हिन्दू-धारणा थी। हिन्दू-धारणा दो चीजों पर टिकी थी : चार वर्ण और चार आश्रम । महावीर ने दोनो तोड़ दीं। महावीर ने कहा, जन्म से कोई वर्ण नही होता। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते है। इन शूद्रों में से कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण हो पाता है। वह ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नही होता।

महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा बड़ी अनूठी है। महावीर किसको ब्राह्मण कहते है? जिसको ब्रह्म का अनुभव हो गया हो। तो जन्म से कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है, जन्म से सभी शूद्र होते हैं।

महावीर ने वर्ण की धारणा तोड़ दी थी, कि कोई ऊँचा-नीचा नही है जन्म से। और महावीर ने चार आश्रम की धारणा भी तोड़ दी, और कहा ऐसी कोई बात नही है कि मरते समय धर्म। धर्म तो तब, जब जीवन अपनी पूरी ऊर्जा पर है, युवा है। जब जीवन अपने पूरे शिखर पर है। जब काम-वासना पूरे प्रवाह में है, तब उसको बदलने का जो मजा है, और जो रस है, वह रस बुढ़ापे में नहीं हो सकता। क्योंकि बुढ़ापे में तो सब चीजें अपने-आप उदास होकर क्षीण हो जाती है।

वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होता है? पचहत्तर वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होगा? शरीर शिथिल हो गया, इन्द्रियाँ काम नही करती, रुग्ण देह कुरूप हो गई, कोई आकर्षित भी नही होता, अब सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब आप विदा हो, तब आप कहते हैं कि 'अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूँ,' तो आप भी बड़े ग़जब के आदमी है।

जब सारे शरीर का रोआँ-रोआँ वासना से भरा हो,और जब शरीर का एक-एक कोष्ठ मांग कर रहा हो, जब शरीर की सारी जीवन चेतना एक ही तरफ बहती हो — काम की तरफ, तब कोई ठहर जाए, ट्रेन से उतर जाए — तब जो चरम अनुभव होता है — जीवन के प्रवाह को बदलने का, वह वृद्धावस्था में नही हो सकता। इसलिए महावीर ने युवको को संन्यास दिया।

महावीर पर बहुत नाराज़ थे लोग। नाराजगी की बहुत-सी बातों में सबसे बड़ी नाराजगी इसलिए थी कि महावीर ने युवको को संन्यास दिया। आपको पता है,'युवकों के संन्यास का मतलब क्या होता है?' युवकों के संन्यास का मतलब होता है, सारी गृहस्थी का जाल अस्त-व्यस्त हो जायेगा। बाप बूढ़ा है, वह युवक पर निर्भर है; पत्नी नई घर में आई है, वह युवक पर निर्भर है; छोटे बच्चे हैं, वे युवक पर निर्भर हैं।

समाज का पूरा जाल चाहता है कि आप पचहत्तर साल के बाद संन्यास लें। समाज में इससे बड़ी बगावत नहीं हो सकती थी कि युवक संन्यासी हो जाये। क्योंकि इसका मतलब था कि समाज की पूरी व्यवस्था अराजक हो जाये। महावीर अनार्किस्ट है, अराजक हैं। लाखो युवक सन्यासी हुए, लाखो युवतियाँ संन्यासिनी हुईं। आप सोच सकते हैं, उस समय के समाज का पूरा जाल कैसा अस्त-व्यस्त हो गया होगा।

सब तरफ कठिनाई खड़ी हो गई होगी । सब तरफ अड़चन आ गई होगी । लेकिन महावीर ने कहा कि यह अड़चन उठाने-जैसी है । क्योंकि जब ऊर्जा अपने उद्दाम वेग में हो, तभी क्रान्ति हो सकती है, और तभी छलाँग हो सकती है । जैसे-जैसे ऊर्जा शिथिल होती है, वैसे-वैसे छलाँग मुश्किल होती जाती है । फिर आदमी मर सकता है, समाधिस्थ नहीं हो सकता । शिथिल होती हुई इन्द्रियों के साथ कुछ भी नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर ही तो यात्रा का रथ है ।

महावीर ने युवकों को सन्यास दिया, उसका कारण था – धर्म गति है, और युवक गतिमान हो सकता है । बूढ़ा गतिमान नहीं हो सकता । हिन्दुओं ने एक समाज पैदा किया था, जो स्टेटिक है, जो ठहरा हुआ है तलाब की तरह । हिन्दुओं के इस समाज में कभी कोई लहर नहीं उठी, इसलिए हिन्दू माफ नहीं कर पाये महावीर को । आप हैरान होंगे कि उनकी नाराज़गी का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हिन्दुओं ने महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया, अपने किसी शास्त्र में ।

और ध्यान रहे, यह आखिरी बात है । अगर मैं आपसे प्रेम करूँ, यह एक सम्बन्ध है । आपसे घृणा करूँ, यह भी एक सम्बन्ध है । क्योंकि मेरा नाता जारी रहता है । लेकिन मैं आपसे न प्रेम करूँ, न घृणा करूँ – उपेक्षा करूँ तो यह आखिरी बात है । क्योंकि जब भी हम किसी को घृणा करते हैं, तब भी मूल्य देते हैं ।

महावीर के साथ हिन्दुओं ने आखिरी उपाय किया । उनकी उपेक्षा की । उनके नाम की भी चर्चा नहीं उठाई । जैसे यह आदमी हुआ ही नहीं । इसे भूल ही जाओ । इसकी चर्चा भी खतरनाक है । इसकी चर्चा चलाये रखने का मतलब है कि वे बिन्दु जो उसने उठाये थे, जारी रहेंगे ।

महावीर की बिलकुल जैसी घटना घटी ही नहीं । अगर सिर्फ हिन्दू-ग्रन्थ उपलब्ध हों, तो महावीर गैर-ऐतिहासिक व्यक्ति हो जायेंगे । महावीर का कोई उल्लेख नहीं है । आदमी बड़ा खतरनाक रहा होगा, जिस वजह से इसकी इतनी उपेक्षा करनी पड़ी । इतना अराजक रहा होगा कि समाज ने इसका नाम भी संरक्षित करना उचित नहीं समझा ।

बड़ी क्रान्ति यह थी कि युवक – जब ऊर्जा प्रवाह में है – तभी धार्मिक हो सकता है । युवा-चेतना धार्मिक हो सकती है – क्योंकि त्वरा चाहिए, वीर्य चाहिए, क्षमता चाहिए ।

'सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का लक्षण है ।' आकाश – यानि अवकाश देने की क्षमता । स्पेस । यह भी बहुत सोचने-जैसा है । महावीर कहते हैं, सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का लक्षण है । आप जो भी करना चाहें, आकाश आपको अवकाश देता है करने को । आप चोरी करना चाहें, तो चोरी । आप पत्थर होना चाहें

तो पत्थर। आप परमात्मा होना चाहें, तो परमात्मा। आकाश आपको सभी तरह के अवकाश देता है।

यह जो हमारे चारो तरफ घिरी हुई स्पेस है, यह आपको कुछ भी बनाने के लिए जोर नहीं डालती। यह बिलकुल तटस्थ है। यह आपसे कहती नहीं कि आप ऐसे हो जाएँ। आप जैसे हो जाएँ, इसे स्वीकार है। और यह आपको पूरा सहारा देती है। आकाश किसी का दुश्मन नही है, और आकाश किसी का मित्र भी नही है। आकाश अवकाश की क्षमता है।

तो आप जो भी हैं, अपने कारण हैं। कोई आपको दबा नही रहा है, और कोई आपको बना नही रहा है। हिन्दू-धारणा भिन्न थी। हिन्दू-धारणा थी कि आप ऐसे हैं—क्योंकि परमात्मा, नियति, भाग्य। आपकी विधि में कुछ लिखा है, इसलिए आप ऐसे हैं, इसलिए आप परतन्त्र है। महाबीर कहते है, आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं। परमात्मा घेर रहा है सब को, हिन्दू-धारणा में। महावीर की धारणा में आकाश सबको घेर रहा है। और आकाश आपको कुछ भी बनाने के लिये उत्सुक नही है। आप जो बनना चाहते हैं, आकाश राजी हैं।

एक बीज बरगद का वृक्ष बन जाता है, तो आकाश बाधा नही देता। उसे जगह देता है। रिसेप्टिव है, ग्राहक है। एक बीज गुलाब का पौधा बन जाता है। आकाश उसे गुलाब होने की सुविधा देता है।

आकाश बिलकुल तटस्थ सुविधा का नाम है। जो हमें घेरे हुए हैं, वह कोई परमात्मा नही है—जिसकी अपनी कोई धारणा है कि हमें क्या बनाएं? कोई भाग्य हमे घेरे हुए नही है। हमारे अतिरिक्त हमारा कोई भी भाग्य नही है। यह बड़ी कठिन बात है। यह स्वतन्त्रता भी है, और एक महान जिम्मेवारी भी।

निश्चित ही, जहाँ भी स्वतन्त्रता होगी, वहाँ रिस्पॉन्सिबिलिटी, वहाँ उत्तरदायित्व हो जायेगा। परमात्मा के साथ एक खतरा है कि आप परतन्त्र है, लेकिन एक लाभ भी है कि आप जिम्मेवार नही हैं। फिर आप पाप भी कर रहे हैं, तो वही जिम्मेवार है, फिर आप नर्क में भी पडते है, तो वही जिम्मेवार है; फिर जो भी हो रहा है, वही जिम्मेवार है। परतन्त्र जरूर हैं, लेकिन परतन्त्रता में एक लाभ है, एक सौदा है, वह यह कि आपकी कोई जिम्मेवारी नही, कोई चिन्ता नही। आप निश्चिन्त है। उसकी जो मर्जी। उसकी बिना मर्जी के पत्ता भी नही हिलता।

महावीर परमात्मा की जगह आकाश की धारणा को स्थापित करते हैं। वे कहते हैं, पत्ता अपनी ही मर्जी से हिलता है, और किसी की मर्जी से नही। आकाश की अपनी कोई मर्जी नहीं है आपको हिलाने-डुलाने की। आकाश सिर्फ अवकाश देता है। पत्ता हिलना चाहता है, तो अवकाश देता है; पत्ता ठहरना चाहता है, तो ठहरने के लिए सुविधा देता है।

निरपेक्ष अस्तित्व है चारों ओर । यह अस्तित्व आपको न तो खींच रहा है,और न आपको धक्के दे रहा है । आप जो भी कर रहे हैं, उसके लिये आपके अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं है । आप परम स्वतन्त्र हैं । लेकिन तब चिन्ता पैदा हो जाती है । क्योंकि तब उसका अर्थ हुआ – अगर गलत हो रहा है, तो मैं जिम्मेवार हूँ, उसका अर्थ हुआ – अगर मैं दुख पा रहा हूँ तो मैं जिम्मेवार हूँ । तब जिम्मेवार परमात्मा नही है ।

इसलिए बहुत बड़ी संख्या में महावीर के अनुयायी नहीं बन सके; क्योंकि लोग चिन्ता छोडना चाहते है, चिन्ता पकड़ना नही चाहते ।

गुरु के पास लोग आते है कि 'मेरा बोझ आप ले लो।' और ये महावीर खतरनाक आदमी है, ये सारे संसार का बोझ आप पर रखे दे रहे है । गुरु के पास आप जाते हैं, उसके चरणों में सिर रखते है कि 'सम्हालो ! बस, अब आप ही हो । आपकी जो मर्जी । वैसा ही ।' कि आप आकाश में बैठे परमात्मा को समर्पण करते है ।

समर्पण क्या करेगे आप ? आपके पास है क्या समर्पण करने को – सिवाय दुख और उपद्रव के ? जब आप कहते है कि 'आपकी ही मर्जी' तो आप छोड क्या रहे हो – बीमारियां, उपाधियां, उपद्रव, पागलपन !

. लेकिन एक लाभ है । हो परमात्मा या न हो, जब आप अनुभव करते है कि किसी पर छोड़ा, तो आप निश्चिन्त हो पाते है ।

महावीर की प्रक्रिया बिलकुल उलटी है । महावीर कहते है कि धार्मिक व्यक्ति अति चिन्ता से भर जायेगा । इसे समझ लें, क्योंकि यह बिलकुल विपरीत बात है । समर्पण नहीं है महावीर की धारणा में – संकल्प है । महावीर कहते है कि धार्मिक व्यक्ति ही चिन्तित होगा, अधार्मिक व्यक्ति चिन्तित होता ही नही । और यह बात सच है । धार्मिक चिन्ता से बडी चिन्ता और नही हो सकती, क्योकि धार्मिक चिन्ता का अर्थ है कि मै जो भी हूँ, मै जिम्मेवार हूं । और कल मैं जो भी होऊँगा, मैं ही जिम्मेवार होऊँगा । इसलिए एक-एक कदम फूक-फूककर रखना है; और किसी पर दायित्व नही डाला जा सकता; और किसी के कंधों पर बोझ नही रखा जा सकता; और दोष दूसरो को नहीं दिये जा सकते । सब दोष मेरे है ।

खतरा है । भारी चिन्ता का बोझ सिर पर हो जायेगा । अकेला हो जाऊँगा मैं । कोई सहारा नही रहेगा । इसलिए महावीर कहते है, असहाय है आदमी । हिन्दू भी कहते हैं, आदमी असहाय है । लेकिन हिन्दू कहते है आदमी असहाय है, इसलिए परमात्मा का सहारा खोजो । महावीर कहते हैं, आदमी असहाय है और दूसरा कोई सहारा है नहीं, इसलिए अपने सहारे खड़े होने की चेष्टा करो ।

निश्चित ही तब महाचिन्ता घेरेगी । पर ध्यान रहे, इस चिन्ता झेलने को जो राजी है, उसके आनन्द का मुकाबिला कोई भी नही कर सकता । क्योंकि इसी चिन्ता से विकास है । इसी चिन्ता और संघर्ष से निखार है । इसी चिन्ता से फौलाद जन्मेगा – इसी आग से । कोई सहारा नहीं इस असहाय अवस्था में ही खड़े रहने की हिम्मत, साहस आत्मा का जन्म बनेगी । और एक ऐसी घड़ी आयेगी कि जब किसी सहारे की कोई जरूरत भी नही रह जायेगी, आकांक्षा भी नहीं रह जायेगी । आदमी अपने ही पैरो पर पूरी तरह खड़ा हो जायेगा ।

महावीर कहते है, जब भी कोई आत्मा अपनी अवस्था में पूरी तरह खड़ी हो जाती है, जब बाहर के सहारे की कोई जरूरत नही होती, तब सिद्ध की अवस्था है । जब तक बाहर का सहारा चाहिये, तब तक संसार है । इसलिए महावीर की धारणा में भक्ति की कोई गुंजाइश नही है । मगर जैन बडे अद्‌भुत लोग है । वे महावीर के सामने हाथ जोड़े खडे हैं । वे उन्ही की पूजा-प्रार्थना कर रहे हैं । जबकि महावीर कहते हैं, भक्ति का कोई उपाय नही है ।

महावीर से कोई सहारा नही मिल सकता । अगर सहारा चाहिए तो दूसरी जगह जाना पड़ेगा । कृष्ण के पास जाना पड़ेगा । कृष्ण कहते है । अर्जुन, छोड सब, मेरी शरण आ । वह अलग मार्ग है, अलग पद्धति है । महावीर कहते है । छोड़ मुझे, और अपने पैरो पर खड़ा हो ।

महावीर कभी कृष्ण की बात नही कह सकते । और जैनो ने कृष्ण को अगर नर्क में डाल रखा है तो उसका कारण है । उसका कारण है महावीर की दृष्टि बिलकुल विपरीत है । महावीर कहेगे यह बात ही उपद्रव की है कि कोई किसी की शरण जाये । यह तो खतरा है । यह तो इस आदमी की आत्मा का हनन है । अगर कही अर्जुन महावीर के पास गया होता तो वे कहते कि 'तू भी किस के चक्कर में पड़ गया है !' और कृष्ण कह रहे है – "सर्व धर्मान् परित्यज्य, माम् एकम् शरणम् व्रज ।" सब धर्म-वर्म छोड़, मेरी शरण आ । महावीर कहते कि 'सब शरण छोड़, निज शरण बन ।' महावीर का वचन है – "अशरण बन ।" और जब तू अशरण बन जायेगा, तभी तू सिद्ध हो सकता है ।

इसका अर्थ यह नही है कि कृष्ण के मार्ग से लोग नही पहुँच पाते । उस मार्ग से भी पहुँचते हैं । ज्यादा लोग उसी मार्ग से पहुंचते है । लेकिन महावीर का मार्ग अनूठा है । जिनमें साहस है, उनके लिए महावीर का मार्ग चुनौती है । जिनमें थोड़ी हिम्मत है, जिनमें थोड़ा पुरुषार्थ है, उनके लिए महावीर का मार्ग है ।

कृष्ण का मार्ग स्त्रैण है । स्त्री-चित्त के लिए है, समर्पण । महावीर का मार्ग पौरुषेय है । पुरुष चित्त के लिये है, संकल्प । लेकिन पुरुष बहुत कम है, स्त्रियाँ बहुत

ज्यादा हैं। पुरुषों में भी स्त्री-चित्त ज्यादा हैं; क्योंकि आदमी इतना कमजोर और भयभीत है कि उसके मन की आकांक्षा है – 'कोई सहारा मिल जाये।'

इसलिए तो इतने गुरु पैदा हो जाते है दुनिया में। कितने गुरु हैं? कोई उपाय नहीं है। ये गुरु नहीं हैं, ये आपकी खोज है किसी सहारे की। इसलिए एक गधे को भी खड़ा कर दो, शिष्य मिल जायेंगे। इसमें गधे की कोई खूबी नहीं है, ये आपके सहारे की खोज है। तो उसको भी शिष्य मिल जायेंगे। एक पत्थर को भी रख दो, उस पर भी सिन्दूर लगा दो, थोड़ी देर बाद आप देखोगे, कोई आदमी फूल रख के उसके सामने सिर झुका रहा है। सिर झुकाने की जरूरत है किसी की। यह पत्थर मूल्यवान नहीं है, यह पत्थर जरूरत की पूर्ति है।

महावीर का मार्ग अकेले का है – एकाकी का। जिनमें साहस है,केवल उनके लिए है। जिनमें हिम्मत है अकेले होने की, उनके लिए है।

'आकाश का लक्षण है, अवकाश देना। काल का लक्षण है, वर्तना।'

समय : समय का अर्थ है – चलना,वर्तन होना। समय पर कोई दोष मत दें कभी। लोग समय को दोष देते रहते है। लोग कहते है, समय बुरा है। जैसे आकाश जगह देता है आपको दिशाओ में, वैसे ही समय भी आपको जगह देता है भविष्य और अतीत की दिशा में। आइंस्टीन ने तो अभी सिद्ध किया कि समय भी आकाश का ही एक अंग है, वह भी एक दिशा है। चार दिशाएँ आकाश की है। ये दो दिशाएँ भी आकाश की है। फर्क इतना ही है कि इनमें आगे-पीछे की यात्रा है।

समय भी आपको अवकाश देता है। समय भी आपके ऊपर जोर नही डालता। लेकिन इधर मै सुनता हूँ, जैन भी कहते हुए सुने जाते है कि 'यह 'पंचम-काल' है। इसमें कोई 'तीर्थंकर' नही हो सकता। इसमें कोई 'सिद्ध' नही हो सकता। इसमें कोई 'केवल ज्ञान' को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह काल ही खराब है।'

समय खराब नहीं होता समय तो सिर्फ शुद्ध परिवर्तन है। आप समय पर बोझ डालते हैं और खुद निश्चिन्त हो जाते है। आप निश्चिन्त होना चाहते हैं तीर्थंकर होने की चिन्ता से। क्योकि तीर्थंकर अगर हुआ जा सकता था, तो आपको भी बेचैनी होगी कि 'मै क्यों नहीं हो रहा हूँ।' अगर कोई आदमी घोषणा कर दे कि वह तीर्थंकर है, तो आप सब मिल कर सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि 'नही, तुम तीर्थंकर नहीं हो सकते, यह काल ही तीर्थंकर होने का नहीं है। यह बात ही गलत है।'

आप असल में किस बात से लड़ रहे हैं, आपको पता नहीं है। मन बड़ा चालाक है। आप इस बात से लड़ रहे हैं कि 'अगर तीर्थंकर हुआ ज. सकता है, तो फिर मैं तीर्थंकर क्यों नहीं हो सकता ? वह अड़चन है।

नीत्से ने लिखा है कि 'अगर कही कोई ईश्वर है, तो फिर मुझे बड़ी अड़चन हो जायेगी कि फिर मै ईश्वर क्यो नही हूँ ?' इसलिए दो ही उपाय है : एक उपाय नीत्से का है। वह कहता है, ईश्वर है ही नही, और निश्चिन्त हो जाता है। दूसरा उपाय महावीर का है। तर्क दोनो का एक है। महावीर ईश्वर होने की कोशिश में लग जाते है, और ईश्वर हो जाते हैं। चिन्ता एक ही है। नीत्से कहता है – "इफ देयर इज गॉड, देन हाऊ आई केन रिमेन बीदाऊट बीइंग ए गॉड। देअरफॉर देअर इज नो गॉड – अगर ईश्वर है, तो मै ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूँ। इसलिए कोई ईश्वर नही है।" महावीर भी कहते है कि अगर ईश्वर है तो मै ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूँ, इसलिए ईश्वर होके रहते है, ईश्वर हो जाते है।

तो एक चिन्ता पैदा होती है। हम कह देते है कि यह तो काल ख़राब है – कलयुग है, पंचम काल है, समय ख़राब है। खुद ख़राब होने के लिए सुविधा चाहते हैं, इसलिए कहते है, समय ख़राब है। सुविधा मिल जाती है। क्योंकि समय सुविधा देता है। आप ख़राब होना चाहते हैं, समय ख़राब होने की सुविधा देता है। आप महावीर होना चाहें समय आपको वह भी सुविधा देता है। समय पर कोई पक्षपात नही है। समय जीवन प्रवाह की शुद्ध धारा है। ये सारे तत्त्व निष्पक्ष है।

'और उपयोग अर्थात अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, सुख से तथा दुख से पहचाना जाता है।'

अन्तिम तत्त्व है, जीवात्मा। जैसे आकाश का लक्षण है – अवकाश, और काल का लक्षण – वर्तन, और धर्म का लक्षण – गति, और अधर्म का लक्षण – अगति, वैसे जीव का लक्षण – अनुभव।

जैसे-जैसे आपके अनुभव की क्षमता प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे आप आत्मा बनने लगते है। जितनी आपके अनुभव की क्षमता कम होती है, उतने आप पदार्थ के करीब होते है और आत्मा से दूर होते है। और अन्तिम अनुभव है, शुद्ध अनुभव – जब अनुभव करने को कुछ भी नही बचता, सिर्फ अनुभोक्ता रह जाता है – द एक्सपीरियन्सर। सब खो जाता है, सिर्फ शुद्ध ज्ञाता, अनुभोक्ता बचता है। वह अन्तिम क्षमता है।

एक पत्थर में और आप में फर्क क्या है ?

सुबह होगी, सूरज निकलेगा, पत्थर खिल नही जायेगा, और नही कहेगा कि 'कितनी सुन्दर सुबह है।' आप खिल सकते है। जरूरी नही कि आप खिलेंगे, सौ में से निन्यानबे आदमी भी नही खिलते। सूरज उगता रहे, उन्हें मतलब ही नहीं कब उगता है, कब डूबता है। फूल खिलते रहें, उन्हें मतलब नही, कब वसन्त आती है, कब पतझड़। उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। वे भी अपने में बन्द एक पत्थर की तरह जी रहे है।

चेतना का लक्षण है अनुभव, सूरज सुबह उगता है, आपके भीतर भी कुछ उगता है। एक अनुभव प्रगाढ़ हो जाता है। आप जानते हैं कुछ हो रहा है। फूल खिलता है, आप के भीतर भी कुछ खिलता है। पत्थर पड़ा रहता है, जैसे कुछ भी नही हुआ।

सुख है, दुख है, ज्ञान है, बोध है – सब जीवन के लक्षण हैं। जिस मात्रा में बढ़ते चले जायें, उतनी जीवन की गहराई बढ़ती चली जाती है। जीवन उस दिन परम गहराई पर होता है, जब हम पूरे जीवन का अनुभव उसके शुद्धात्म रूप में कर लेते हैं। उसे ही महावीर सत्य कहते हैं। वह जीवन का परम अनुभव है। सुख, दुख प्राथमिक अनुभव हैं, आनन्द परम अनुभव है। इसे हम आगे विस्तार से समझने की कोशिश करेंगे।

लोकतत्त्व-सूत्र : २

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, बम्बई २६ अगस्त, १९७३

नाण च दंसण चेव,
चरित्त च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य,
एय जीवस्स लक्खण ।।
सद्दऽधयार उज्जोओ,
पहा छायाऽऽतवे इ वा।
वण्ण-रस-गंध-फासा,
पुग्गलाण तु लक्खण ।।
जीवाऽजीवा य बन्धो य
पुण्ण पावाऽऽसवा तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो,
सन्तेए तहिया नव ।।
तहियाण तु भावाण,
सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दहन्तस्स,
सम्मत्तं न वियाहियं ।।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग अर्थात् अनुभव – ये सब जीव के लक्षण हैं ।

शब्द, अन्धकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप (धूप), वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श – ये सब पुद्गल के लक्षण हैं।

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष – ये नौ सत्य-तत्व हैं।

जीवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व में सद्गुरु के उपदेश से, अथवा स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धान करना, सम्यक्त्व कहा गया है ।

चेतना का लक्षण है, उपयोग या अनुभव। अनुभव को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अस्तित्व तो पदार्थ का भी है। राह पर पड़े हुए पत्थर का भी अस्तित्व है, एग्जिस्टेन्स है, लेकिन उस पत्थर को अपने अस्तित्व का कोई बोध नही है, कुछ पता नही है कि 'मैं हूँ।' उसे अनुभव नही है।

अस्तित्व के बोध का नाम 'अनुभव' है – और यही चैतन्य में और अजीव में, आत्मा में और पदार्थ में भेद है। अस्तित्व दोनो का है – पदार्थ का भी और आत्मा का भी, लेकिन आत्मा के साथ एक नये तत्व का उद्‌भानैर्व होता है, एक नया आयाम खुलता है कि आत्मा को यह भी पता चलता है कि 'मैं हूँ।'

होने में कोई फर्क नही है। पत्थर भी है, आत्मा भी है, पर आत्मा को यह भी पता है कि 'मै हूँ।' और यह बहुत बड़ी घटना है। इस घटना के इर्द-गिर्द ही जीवन की सारी साधना, जीवन की सारी यात्रा है। आत्मा को यह तो पता है कि 'मैं हूँ', पर जिस दिन यह भी पता चल जाता है कि 'मैं क्या हूँ', उस दिन यात्रा पूरी हो जाती है।

पदार्थ को पता नही है कि वह है। आत्मा को यह तो पता है कि 'मैं हूँ', लेकिन यह पता नही है कि 'मै कौन हूँ।' और परमात्मा उस अवस्था का नाम है, जहाँ तीसरी घटना भी घट जाती है जहाँ यह भी पता है कि 'मै कौन हूँ।'

तो अस्तित्व की तीन स्थितियां हुई एक, कोरा अस्तित्व – बोधहीन; दूसरा, भरा हुआ अस्तित्व – अनुभव से, और तीसरा, परिपूर्ण विकसित अस्तित्व – जहाँ यह भी अनुभव हो गया कि 'मै कौन हूं, मै क्या हूँ।'

और ऐसा नही है कि ये अवस्थाएँ पत्थर, आदमी और परमात्मा की है, आप इन तीनो अवस्थाओं में भी बराबर डोलते रहते हैं। किसी क्षण में आप पत्थर की तरह होते है, जहाँ आप तो होते है पर आपको अपने होने का पता नहीं होता। किसी क्षण में आप आदमी की तरह होते हैं, जहाँ आपको अपने होने का भी बोध होता है। और किसी क्षण में आप परमात्मा को भी छू लेते है, जहां आपको यह भी पता होता है कि 'मैं कौन हूँ।'

तो ये तीनों अस्तित्व की ही अवस्थायें नहीं है, चेतना इन तीनों में निरन्तर डोलती रहती है। किसी-किसी क्षण में आप परमात्मा के बिलकुल करीब होते हैं। कुछ क्षणों में आप मनुष्य होते हैं। बहुत अधिक क्षणों में आप पत्थर ही होते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाल बनवाने एक नाई की दूकान पर गया है। दाढ़ी पर साबुन लगा दी गई है, गले में कपड़ा बाँध दिया गया है – और नाई बिलकुल तैयार ही है काम शुरू करने को कि एक लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा – "शेख़, तुम्हारे घर में आग लगी है।" नसरुद्दीन ने कपड़ा फेंका, भूल गया अपना कोट उठाना भी, चेहरे पर लगी हुई साबुन और उस लड़के के पीछे भागा घबड़ा के। लेकिन पचास कदम के बाद अचानक ठहर गया, और कहा कि " मैं भी कैसा पागल हूँ! क्योंकि पहले तो मेरा नाम शेख़ नहीं, मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है; और दूसरा, मेरा कोई मकान नहीं जिस में आग लग जाये!"

ऐसे क्षण आपके जीवन में भी हैं। आपको भी न तो अपने नाम का पता है और न अपने घर का पता है। न तो आपको पता है कि आप कौन हैं और न आपको पता है कि आप कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं। न आप अपने मूल स्रोत से परिचित हैं और न अपने अन्तिम पड़ाव से परिचित हैं। और नाम जो आप जानते हैं कि आपका है, वह बिलकुल काम-चलाऊ है – दिया हुआ है। राम की जगह अगर कृष्ण नाम आपको दिया जाता, तो भी काम चल जाता। और अगर कृष्ण की जगह मोहम्मद नाम आपको दिया जाता, तो भी काम चल जाता। नाम दिया हुआ है, नाम कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इस झूठे नाम को हम मानकर जी लेते हैं कि मैं हूँ। और एक घर बना लेते है, जो कि घर नहीं है। क्योंकि जो छूट जाये, उसे घर कहना व्यर्थ है। और जिसे बनाना पडे, वह मिटेगा भी। उस घर की तलाश ही धर्म की खोज है, जो हमारा बनाया हुआ नहीं है और जो मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उस घर में प्रविष्ट न हो जायें – जिसे महावीर 'मोक्ष' कहते है; जिसे शंकर 'ब्रह्म' कहते हैं; जिसे जीसस ने 'किंगडम ऑफ गॉड' कहा है – तब तक जीवन एक बेचैनी और दुख की एक यात्रा रहेगी।

महावीर जीव का पहला लक्षण कहते हैं, अनुभव – यह बोध कि 'मैं हूँ।' यह पहला लक्षण है, यह यात्रा की शुरुआत है। लेकिन, अगर यह भी अनुभव में आ जाये कि 'मैं कौन हूँ?' तो यात्रा पूरी हो गई तो यह यात्रा का अन्त है।

'ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग – ये सब जीव के लक्षण है।'

थोड़ा-थोड़ा इन लक्षणों के सम्बन्ध में समझ लें, क्योंकि आगे हम विस्तार से इन की बात कर पायेंगे।

ज्ञान से महावीर का अर्थ है, जानने की क्षमता – सामग्री नहीं, क्षमता; इनफ़र्मेशन नहीं, सूचनाओं का संग्रह नहीं, क्योंकि सूचनाओं का संग्रह तो यन्त्र भी

कर सकता है । आप के मस्तिष्क में जो-जो सूचनाएँ इकठ्ठी हैं, वे तो टेपरिकॉर्ड पर भी इकठ्ठी की जा सकती हैं । और वैज्ञानिक कहते हैं, आपका मस्तिष्क टेपरिकॉर्ड से कुछ भिन्न नहीं है इसलिए आपके मस्तिष्क को अगर चोट पहुँचाई जाये, तो आपकी स्मृति खो जायेगी। आपके मस्तिष्क से कुछ स्मृतियाँ बाहर भी निकाली जा सकती हैं, जिनका आपको फिर कभी भी पता नही चलेगा । और आपके मस्तिष्क में ऐसी स्मृतियाँ भी डाली जा सकती है, जिनका आपको कभी कोई अनुभव न हो ।

नवीनतम खोजें कहती हैं कि मेमोरी ट्रान्सप्लांट भी की जा सकती है । एक आइंस्टीन जब मरता है तो उसके साथ उसकी स्मृतियों का पूरा-का-पूरा संग्रह भी नष्ट हो जाता है । यह बड़ा भारी नुकसान है । अब विज्ञान कहता है कि दस-बीस वर्ष के भीतर हम इस नुकसान से बचने में सफल हो जायेंगे । जहाँ मरते हुए आइंस्टीन को तो मरने देंगे, लेकिन उसकी स्मृति को बचा लेंगे; उसके मस्तिष्क में जो उसकी स्मृतियों का तानाबाना है, उसे बचा लेगे और एक नवजात बच्चे में उसे ट्रान्सप्लांट कर देंगे । वह बच्चा उन स्मृतियो के साथ ही बड़ा होगा । और जो उसने कभी नही जाना है, वह भी उसे लगेगा कि मैं जानता हूँ । अगर आइस्टीन की पत्नी सामने आ जाये तो वह कहेगा, यह मेरी पत्नी है; जिसे उसने कभी देखा भी नही । क्योंकि अब स्मृति आइस्टीन की काम करेगी ।

छोटे प्रयोग इसमें सफल हो गये है, पशुओ पर प्रयोग सफल हो गये हैं । इसलिये आदमी पर इन प्रयोगो की सफलता वहुत दूर नही है ।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि महावीर पहले व्यक्ति है मनुष्य जाति के इतिहास में जिन्होने स्मृति को पदार्थ कहा. जिन्होने स्मृति को चेतना नहीं कहा; जिन्होने कहा, स्मृति भी सूक्ष्म पदार्थ है ।

आपके मस्तिष्क का खास जगह अगर इलेक्ट्रिकली स्टिम्युलेट किया जाये, विद्युत से उत्तेजित किया जाये, तो खास स्मृतियाँ पैदा होनी शुरू हो जाती है । जैसे आपके मस्तिष्क में बचपन की स्मृतियाँ किसी कोने में पड़ी है, उनको विद्युत से जगाया जाये, तो आप तत्काल बचपन में वापिस चले जायेंगे और सारी स्मृतियाँ सजीव हो उठेंगी । उत्तेजित करना बन्द कर दिया जाये, स्मृति बन्द हो जायेगी । फिर से उत्तेजित किया जाये, तो फिर से वही स्मृति वापिस लौटेगी, फिर से वही कथा वापिस दुहरेगी । जैसे टेपरिकॉर्ड पर आप एक ही बात को कितनी ही बार सुन सकते हैं, वैसे ही हर बार उसी जगह को उत्तेजित करने पर वही स्मृति फिर लौटने लगेगी ।

मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है, इसलिए स्मृति भी शरीर की ही प्रक्रिया है, शरीर का ही हिस्सा है – आणविक है, लेकिन है पदार्थ ही ।

ज्ञान का अर्थ स्मृति नही है । ज्ञान का अर्थ, स्मृति को भी जानने वाला जो तत्त्व है भीतर, उससे है । इसे ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है । आप

जो जानते हैं, उससे ज्ञान का सम्बन्ध नही है । अगर आप अपने जानने को भी जानने में समर्थ हो जायें, तो ज्ञान का सम्बन्ध शुरू होगा ।

. . .आपके मन में एक विचार चल रहा है । आप चाहे तो दूर खड़े होकर इस विचार को चलते हुए भी देख सकते हैं । अगर यह सम्भव न होता, तो ध्यान का कोई उपाय ही न था । ध्यान इसलिए सम्भव है कि आप अपने विचार को भी देख सकते है । और जिसको आप देख रहे है, वह पराया हो गया, क्योंकि आप देखने वाले हो गये ।

तो महावीर का ज्ञान से अर्थ है – जानने की क्षमता, सग्रह नही जानने का, ज्ञान का सग्रह नही – ज्ञान की प्रक्रिया के पीछे साक्षी का भाव । वही चेतना का पता चलेगा । अन्यथा अगर स्मृति ही मनुष्य की चेतना हो, तो बहुत जल्दी मनुष्य को पैदा किया जा सकता है । तब कोई कठिनाई नही है । स्मृति तो पैदा की जा सकती है । कम्प्यूटर है, उनकी स्मृति आदमी से ज्यादा प्रगाढ़ है । और आदमी से तो भूल भी हो जाये, कम्प्यूटर से भूल होने की भी कोई सम्भावना नही है ।

आज नही कल, हम मनुष्य मे भी बेहतर मस्तिष्क विकसित कर लेगे । कर ही लिया है । लेकिन, फिर भी एक कमी रह जायेगी, इस बात की कोई सम्भावना नही है कि कम्प्यूटर ध्यान कर सके । कम्प्यूटर विचार कर सकता है – और आप से अच्छा विचार कर सकता है, नवीनतम कम्प्यूटर उस जगह पहुँच गये है । मै एक आकडा पढ रहा था कि अगर दुनिया के सारे गणितज्ञ (समझ ले दस हज़ार गणितज्ञ) एक सवाल को हल करने मे लगे, तो जिस सवाल को दस हजार गणितज्ञ दस हज़ार वर्ष में हल कर पायेंगे, उसे कम्प्यूटर एक सेकेंड में हल कर दे सकता है ।

तो स्मृति की क्षमता तो बहुत विकसित हो गई है यन्त्र के पास । आदमी की स्मृति का यन्त्र तो आउट ऑफ डेट है । उसका कोई बहुत मूल्य नही रह गया । लेकिन, इतना सब करने के बाद भी, कि दस हज़ार आइन्स्टीन का काम, जो कि दस हजार वर्ष में हो पाता, कम्प्यूटर उसे एक सेकेंड में कर सकता है, कोई कम्प्यूटर एक महावीर का काम जरा भी नही कर सकता । क्योंकि महावीर का काम स्मृति से सम्बन्धित नही है महावीर का काम तो स्मृति के पीछे जो साक्षी है, वह जो विटनेस है, जो स्मृति को भी देखता है, उससे सम्बन्धित है । कम्प्यूटर साक्षी नही हो सकता । वह अपने को बाँट नही सकता, कि खुद खड़े होकर देख सके भीतर क्या चल रहा है । हम बाँट सकते है । वह जो बाँटने की कला है, उससे ही ज्ञान का जन्म होता है ।

तो महावीर कहते है, आत्मा का लक्षण है – ज्ञान, दर्शन । जो पहली झलक है स्वयँ की, उसका नाम ज्ञान है । और जब हम उस झलक को सारे जगत और अस्तित्व के साथ सयुक्त करके देखने में समर्थ हो जाते है, गेस्टाल्ट पैदा हो जाता है, अपनी झलक के साथ जब सारे जगत की झलक का भी हमें बोध हो जाता है ।

ध्यान रहे, जो भी मैं अपने सम्बन्ध में जानता हूं, उससे ज्यादा मैं किसी के सम्बन्ध में नही जान सकता। मेरा अपने सम्बन्ध में जो ज्ञान है, फैलकर जगत के सम्बन्ध में ज्ञान बनता है। अगर आप कहते हैं कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है, तो उसका अर्थ यही हुआ कि आपको अपनी आत्मा का कोई अनुभव नही है। अगर आपको अपनी आत्मा का अनुभव हो, तो पहला ज्ञान तो यही होगा कि आत्मा है। दर्शन यह होगा कि सभी तरफ आत्मा है। जिस क्षण अपने भीतर जाने हुए तत्त्व को फैलाकर आप कॉस्मिक, जागतिक कर लेंगे, उस क्षण दर्शन की स्थिति निर्मित हो जायेगी।

किसी पशु के पास दर्शन नहीं है, क्योंकि ज्ञान भी नहीं है। पशु अपने से पीछे खड़ा नही हो सकता। स्मृति तो पशु के पास है। आप का कुत्ता आपको पहचानता है। आप की गाय आपको पहचानती है। स्मृति तो पशु के पास है वृक्षों के पास भी स्मृति है ..

अभी वैज्ञानिक प्रयोग करते है कि अगर आप वृक्ष के पास रोज प्रीतिपूर्ण ढग से जायें, तो वृक्ष का रिस्पॉन्स, उसका उत्तर भिन्न होता है। अगर आप क्रोध से भर कर जायें, घृणा से जायें, तो उसका उत्तर भिन्न होता है। जब आप प्रेम से वृक्ष के पास खडे होते है, तो वृक्ष खुलता है। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध है कि जब प्रेम से कोई वृक्ष को थपथपाता है, तो वृक्ष भीतर सवेदित होता है। वृक्ष भी अपने मित्र को और अपने शत्रु को पहचानता है। शत्रु करीब आता है तो वृक्ष वैसे ही सिकुड़ता है, जैसे आप सिकुड जायेंगे। अगर कोई छुरा लेकर आपके पास आये तो आप भीतर सिकुड जायेंगे बचने की आकांक्षा में। वृक्ष भी सिकुडता है। और जब कोई मित्र करीब आता है, तो वृक्ष भी फैलता है।

अब जाना गया है कि वृक्ष के पास भी स्मृति है। लेकिन, ध्यान सिर्फ मनुष्य के पास है। और जब तक कोई ध्यान को उपलब्ध न हो जाये, तब तक मनुष्य होने की पूरी गरिमा को उपलब्ध नहीं होता। सिर्फ मनुष्य शरीर में जन्म लेने से कोई मनुष्य नही हो जाता। सिर्फ सम्भावना है कि मनुष्य हो सकता है। द्वार खुला है लेकिन यात्रा करनी पडेगी। मनुष्य कोई जन्म के साथ पैदा नही होता। मनुष्यता एक उपलब्धि है, एक अर्जन है। और इस अर्जन की जो दिशा है, वह ज्ञान और दर्शन है।

महावीर के इस सूत्र को ठीक से समझें।

(ज्ञान का अर्थ है, पहली बार उसकी झलक पाना जो सबसे गहराई मे मेरे भीतर साक्षी की तरह छिपा है।) फिर इस झलक को जागतिक सम्बन्ध में जोड़ना और जो भीतर देखा है उसे बाहर देख लेना दर्शन है। और फिर जो भीतर देखा है, उसे जीवन में उतर जाने देना, चारित्र्य है। वह जो भीतर देखा है और बाहर पहचाना है, वह

जीवन भी बन जाये,सिर्फ बौद्धिक झलक न रहे। क्योंकि आप कह सकते हैं कि मैं आत्मा हूँ, ऐसी मुझे झलक मिल गई है, लेकिन आपका आचरण कहेगा कि आप शरीर हैं, आपका व्यवहार कहेगा कि आप शरीर है; आपका ढंग, उठना, बैठना कहेगा कि आप शरीर हैं; आपकी आँखें, आपकी नाक, आपकी इन्द्रियाँ खबर देंगी कि आप शरीर है। तो सिर्फ बौद्धिक झलक से कुछ भी न होगा। वह आपका आचरण भी हो जाये—हो ही जायेगा, अगर आपका ज्ञान वास्तविक हो, और ज्ञान दर्शन बने, तो आचरण अनिवार्य है। उसे महावीर 'चारित्र्य' कहते है।

किसी पशु के पास चारित्र्य नही है—हो नही सकता, क्योंकि ज्ञान के बिना दर्शन नहीं, दर्शन के बिना चारित्र्य नही।

मनुष्य की क्षमता है कि वह जैसा देखे, वैसा ही जी भी सके। और ध्यान रहे, इस जीने में चेष्टा नही करनी पड़ती। यह जरा जटिल है। जैन साधुओंने पूरी स्थिति को उल्टा कर दिया है, कि पहले चारित्र्य। महावीर पहले चारित्र्य का उपयोग नही करते, महावीर कहते है—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य। जैन साधु से पूछें, वह कहता है चारित्र्य पहले। जब चारित्र्य पहले होगा—ज्ञान के पहले, दर्शन के पहले, तो झूठा और पाखण्डी होगा। क्योंकि जो मैंने, जाना नही है, उसे मै जी कैसे सकता हूँ? जो मैंने देखा नही है, वह वस्तुत मेरा आचरण कैसे बन सकता है? हाँ, थोप सकता हूँ, जबरदस्ती कर सकता हूँ अपने साथ।

आदमी हिंसा करने में कुशल है—दूसरो के साथ भी, अपने साथ भी। तो आप चाहे तो अहिंसक हो सकते है, मगर वह अहिंसा झूठी होगी और भीतर हिंसा उबलती होगी। आप चाहे तो आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकते है, वह थोथा होगा, भीतर कामवासना भरी होगी।

महावीर जो कह रहे है, वह बिलकुल वैज्ञानिक बात है। पहले झलक ज्ञान की—अपने होने की—फिर दर्शन। अपने होने और दूसरो के होने के बीच का पूरा तारतम्य अगर ख्याल में आ जाये, तभी मै अहिंसक हो सकता हूँ, अगर मुझे पता चले कि मैं तो आत्मा हूँ और पता चले कि आप आत्मा नही है, तो अहिंसक होने की कोई जरूरत नही है। जिस दिन मुझे लगता है कि जैसा मेरे भीतर है, वैसा ही आपके भीतर भी है, जिस दिन मेरा भीतर और आपका भीतर एक होने लगते है, जिस दिन मै आप में अपने को ही देख पाता हूँ और मुझे लगता है कि आप को पहुँचाई गई चोट खुद को ही पहुँचाई गई चोट होगी, उस दिन अहिंसा का जन्म हो सकता है।

महावीर चीटी पर भी पैर रखने में हिचकिचाते है, सम्हल कर चलते है, इसलिए नहीं कि चीटी को दुख हो जायेगा, चींटी का दुख महावीर का अपना ही दुख होगा। कोई चीटी की फिकर नही कर सकता इस जगत में, सब अपनी ही फ़िकर करते हैं।

लेकिन जिस दिन अपना इतना फैलाव हो जाता है कि चींटी भी उसमें समाहित हो जाती है, तो उसे 'दर्शन' कहेंगे। महावीर को लगा कि जो मैं हूँ, वही सबके भीतर है। यह प्रतीति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब आचरण में उतरनी शुरू हो जाती है। उतरेगी ही।

ध्यान रहे, जब आचरण को जबरदस्ती लाना पड़ता है, तब आप व्यर्थ की चेष्टा में लगे हैं। तब ज्यादा-से-ज्यादा एक हिपोक्रेट, एक पाखण्डी आदमी पैदा हो जायेगा जो बाहर कुछ होगा और भीतर कुछ होगा – ठीक उल्टा होगा, और बड़ी बेचैनी में होगा; क्योंकि उसके जीवन की व्यवस्था सहज नहीं हो सकती; उसके भीतर से कुछ बह नहीं रहा है ; अहिंसा भीतर से नहीं आ रही है, ऊपर से थोपी जा रही है। तो एक बड़े मजे की घटना घटेगी, एक तरफ वह अहिंसा थोप लेगा और दूसरी तरफ से हिंसा शुरू हो जायेगी। क्योंकि हिंसा भीतर है और उसे बहाव चाहिये। किसी झरने को रोक दें पत्थरों से, तो झरना दूसरी तरफ से फूटना शुरू हो जायेगा। तो झरना बूंद-बूंद रिसने लगेगा, बहुत जगह से फटने लगेगा। झरना नहीं रह जायेगा, बूंद-बूंद झरने लगेगा।

जो लोग आचरण को ऊपर से थोप लेते हैं, उनका दुराचरण बूंद-बूंद होकर झरने लगता है। और ऐसे ढंग से झरता है कि वे खुद भी नहीं पहचान पाते। मवाद हो जाती है भीतर, सब सड जाता है, सिर्फ ऊपर शुभ्र-आवरण होता है।

महावीर चारित्र्य उसे कहते हैं, जो ज्ञान और दर्शन के बाद घटता है। ज्ञान बदलता है तो कर्म अनिवार्यरूपेण बदल जाता है। वह उसकी छाया है।

तो महावीर कहते हैं – 'ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और अनुभव – ये जीव के लक्षण हैं।'

'तप' भी महावीर का समझने-जैसा शब्द है। हम आमतौर से तप का अर्थ समझते हैं – अपने को तपाना; सताना। इससे बडी कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती यह भ्रान्ति पुरानी है, लेकिन परम्परागत है। और जैन साधु निरन्तर अपने को तपाने और सताने में गौरव अनुभव करते हैं। लेकिन तप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है – अल्केमिकल।

मनुष्य की जीवन-ऊर्जा एक तरह की अग्नि है। और अगर हम ठीक-से समझें तो जिन लोगों ने भी जीवन को समझने की कोशिश की है, वे मानते हैं कि जीवन एक प्रगाढ अग्नि का नाम है। हेराक्लीतु ने यूनान में यही बात कही – करीब-करीब महावीर के समय में – कि अग्नि जीवन का मौलिक तत्त्व है। और अब विज्ञान कहता है कि 'विद्युत्' जीवन का मौलिक तत्त्व है। लेकिन 'विद्युत्' अग्नि का ही एक रूप है, या 'अग्नि' विद्युत् का ही एक रूप है।

आपके शरीर में प्रतिपल अग्नि पैदा हो रही है। आप एक दिये की भांति हैं। जैसे दिया जलता है, वैसे ही आपका जीवन जलता है। और ठीक वैज्ञानिक हिसाब से भी जो कुछ दिये में घटता है, वही आप में घटता है।

जब एक दिया जल रहा है, तो वह क्या कर रहा है? वह आसपास जो ऑक्सीजन है, प्राणवायु है, उसको अवशोषित कर रहा है। वह प्राणवायु ही दिये में जल रही है। इसलिए कभी ऐसा हो सकता है कि तूफान आ रहा हो और आप सोचे कि 'दिया बुझ न जाए', तो उसे एक बर्तन से ढक दें। हो सकता था कि तूफान दिए को न बुझाता, लेकिन आपका बर्तन दिए को बुझा देगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की ऑक्सीजन थोड़ी ही देर में समाप्त हो जायेगी। और जैसे ही ऑक्सीजन समाप्त होगी, दिया बुझ जायेगा।

ऑक्सीजन के बिना अग्नि नही हो सकती। आप भी यही कर रहे हैं। श्वास लेकर, जीवन के दिये को ऑक्सीजन दे रहे हैं। आपकी श्वास बन्द हुई कि आप भी बुझ जायेंगे। तो वैज्ञानिक तो कहते हैं कि जीवन ऑक्सीडाइजेशन है। विज्ञान की भाषा में वे ठीक कहते है। सारा जीवन ऑक्सीजन पर निर्भर है। आप ऑक्सीजन को जला रहे हैं। और जब जल जाती है ऑक्सीजन, तो कार्बन-डाई-ऑक्साइड को बाहर फेंक रहे हैं। एक क्षण को भी हवा में ऑक्सीजन तिरोहित हो जाये, जीवन पृथ्वी पर तिरोहित हो जायेगा।

ऑक्सीजन जब भीतर जलती है, तो जीवन की ज्योति पैदा होती है।

यह जो जीवन की ज्योति है, इसके दो उपयोग हो सकते हैं : एक उपयोग है काम वासना में इस जीवन की ज्योति को बाहर निष्कासित करना।

... और ध्यान रहे। जीवन जब भर जाता है भीतर, अगर आप उसका कोई भी उपयोग न करे तो बोझिल हो जायेंगे परेशान हो जायेंगे। प्रवाह रुक जाये तो बेचैनी हो जायेगी

कामवासना का इसलिए इतना आकर्षण है। क्योंकि कामवासना जीवन की बढ़ी हुई शक्ति को बाहर फेंकने का उपाय है। आप जब खाली हो जाते हैं, तो फिर श्वास लेकर जीवन को भरने लगते हैं। फिर जीवन इकठ्ठा हो जाता है। फिर आप खाली हो जाते हैं।

'तप' ठीक इसी से सम्बधित दूसरी प्रक्रिया है। वह जो जीवन की अधिक उर्जा भीतर इकठ्ठी होती है, उस उर्जा को काम वासना में न बहने देने का नाम 'तप' है। उस गर्मी को, उस अग्नि को बाहर न जाने देना और भीतर की तरफ़ उर्ध्वगामी करने का नाम तप है। वह जो जीवन की ज्योति है, वह भीतर की तरफ बहने लगे — बाहर की तरफ नही, दूसरे की तरफ नही।

कामवासना का अर्थ है – दूसरे की तरफ, साधना का अर्थ है – अपनी ही तरफ़। अन्तर्यात्रा पर जीवन की ऊर्जा बहने लगे, वह जो अग्नि जीवन की पैदा हो रही है, वह बाहर न जाये, बल्कि भीतर उसकी यात्रा शुरू हो जाये, तो तप है। अग्नि की अन्तर्यात्रा का नाम तप है। उसके वैज्ञानिक उपाय हैं कि वह कैसे भीतर बहना शुरू हो सकती है।

ध्यान रहे, जो चीज बाहर बह सकती है, वह भीतर भी बह सकती है। जो चीज भी बह सकती है, उसकी दिशा भी बदली जा सकती है। अगर बहाव है पूरब की तरफ, तो पश्चिम की तरफ भी हो सकता है। सिर्फ प्रक्रिया का पता होना चाहिये कि वह पश्चिम की तरफ कैसे हो जाये। हमारी सारी जीवन-ऊर्जा बाहर बह रही है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। उसकी पत्नी ने कहा कि "नसरुद्दीन, अगर तुम पहले मर जाओ तो मरने के बाद सम्पर्क साधने की कोशिश करना। मैं जानना चाहती हूँ कि ये हिन्दू जो कहते हैं कि आत्मा फिर से जन्म लेती है, यह सच है या नहीं? अगर मैं मरूँ तुमसे पहले तो मैं कोशिश करूँगी तुमसे सम्पर्क साधने की।"

नसरुद्दीन मरा पहले। सालभर उसकी विधवा पत्नी राह देखती रही। कुछ हुआ नहीं। कोई खबर न मिली। फिर धीरे-धीरे बात ही भूल गई। एक दिन अचानक साँझ को वह चाय बनाती थी चौके में कि नसरुद्दीन की आवाज आई। फातिमा घबड़ा गई। नसरुद्दीन ने कहा, "घबड़ा मत, वायदे के अनुसार तुझे खबर करने आया हूँ। मेरा जन्म हो गया है। और दूसरे खेत में देख, एक खूबसूरत गाय खड़ी है। सफेद काला रंग है।"

पत्नी को थोड़ी हैरानी हुई कि 'गाय की चर्चा उठाने की क्या जरूरत है?' पर उसने बात टाली। उसने कहा, "कुछ और अपने सम्बन्ध में कहो – प्रसन्न तो हो, आनन्दित तो हो?" नसरुद्दीन ने कहा, "बहुत आनन्दित हूँ, थोड़ा मुझे गाय के सम्बन्ध में और बताने दे। बड़ी प्यारी और आकर्षक गाय है, उसकी चमड़ी बड़ी चिकनी और कोमल है।" पत्नीने कहा कि "छोड़ो भी गाय की बकवास, गाय से क्या लेना-देना है। मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जानने को आतुर हूँ, और तुम एक मूर्ख गाय के सम्बन्ध में कहे चले जा रहे हो।" नसरुद्दीन ने कहा, "क्षमा कर, आइ फरगॉट टु टेल यू दैट नाउ आइ एम ए बुल इन पंजाब – मैं भूल गया बताना कि मैं एक बैल हो गया हूँ, साँड हो गया हूँ पंजाब में।" साँड की उत्सुकता गाय में ही हो सकती है।

जीवन कामवासना है, जैसा जीवन हम जानते हैं। पुरुष उत्सुक है स्त्री में, स्त्री उत्सुक है पुरुष में। तप का अर्थ है – यह उत्सुकता अपने में आ जाये, दूसरे से हट जाये। जब तक यह उत्सुकता दूसरे में है – महावीर कहते हैं – तब संसार है।

जिस दिन यह सारी उत्सुकता अपने मे लौट कर वर्तुल बन जाती है, उस दिन तप शुरू हो जाता है। तप कहना उचित ही है, क्योकि अति कठिन है यह बात – दूसरे से हटाकर उत्सुकता अपने में ले आना। होनी तो नही चाहिये कठिन, क्योंकि दूसरे में भी हम उत्सुक अपने लिए ही होते हैं। गहरे मे तो उत्सुकता अपने लिए ही है। घूम कर, दूसरे के द्वारा अपने में लौटते है।

उपनिषद् कहते है कि कोई पति, पत्नी को प्रेम नही करता, पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई मा बेटे को प्रेम नही करती, बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। प्रेम तो हम अपने को ही करते है, लेकिन हमारा प्रेम वाया – किसी से होकर आता है। जब हमारा प्रेम किसी से होकर आता है, तो उसका नाम अब्रह्मचर्य है। और जब हमारा प्रेम किसी से होकर नही आता है, सीधा अपने में ठहर जाता है, तब वह तपश्चर्या है, ब्रह्मचर्य है।

तप शब्द चुनना जरूरी था, क्योकि जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को बाहर जाने से रोकता है, तो उत्तप्त होता है; सारा जीवन एक नई अग्नि से भर जाता है। वह अग्नि बड़े अद्भुत काम करती है, जीवन की पूरी कीमिया को बदल देती है। जीवन का एक-एक कोष्ठ उस अग्नि के प्रवाह से बदल जाता है। अलकेमिस्ट कहते हैं कि लोहा सोना हो जाता है, अगर अग्नि पास हो। तप उसी अग्नि का नाम है, जिसमें आपकी साधारण धातु लोहा स्वर्ण बन जायेगी। जो कचरा है वह जल जायेगा।

उपनिषदो ने नचिकेत-अग्नि की बात कही है। वह इसी अग्नि की चर्चा है। कठोपनिषद् में नचिकेता पूछता है यम से कि किस भाँति उस परम तत्व को पाया जा सकता है, जो मृत्यु के पार है। तो नचिकेता को यम कहता है कि तीन तरह की अग्नियो से गुजरना जरूरी है, और चूँकि तू पहला बालक है पूछने वाला, इसलिए वे अग्नियाँ तेरे ही नाम से पहचानी जायेंगी; नचिकेत-अग्नियाँ कही जायेंगी वे तीनो अग्नियाँ। महावीर उन्ही तीन अग्नियो की प्रक्रिया को तप कहते हैं।

दूसरे से अपने पर लौटना पहली अग्नि है। दूसरे से अपने पर लौटना, दूसरे को खोना, छोड़ना – पहली अग्नि है। दूसरी अग्नि मे स्वयँ को भी छोड़ना है। पहली अग्नि में दूसरा जल जायेगा, सिर्फ मैं बचूगा। लेकिन मैं का कोई उपयोग नही है, जब तू खो जाये। वह तू का ही संदर्भ है, उसका ही अटका हुआ हिस्सा है। दूसरी अग्नि में मुझे भी जल जाना है, मैं भी न बचू, शून्य रह जाए। और तीसरी अग्नि में शून्य का भी भाव न रह जाये; इतनी शून्यता हो जाये कि यह भी भाव न रहे कि अब मैं शून्य हो गया, कि अब मै निरअहंकारी हो गया।

इन तीन अग्नियो का नाम तप है। और इस तप से जो गुजरता है वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जिसे महावीर ने 'मुक्ति' कहा है; परम स्वतन्त्रता, 'मोक्ष' कहा है।

'वीर्य और उपयोग – यें सब जीव के लक्षण है ।'

वीर्य का अर्थ है – पुरुषार्थ, और वीर्य का अर्थ 'काम-ऊर्जा' भी है । काम-ऊर्जा के सम्बन्ध में एक बात ख्याल में ले ले कि काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं । एक तो शारीरिक हिस्सा है, जिसे हम वीर्य कहते हैं। महावीर उसे वीर्य नहीं कह रहे । और दूसरा उस शारीरिक हिस्से वीर्य के साथ, सीमेन के साथ जुड़ा हुआ आन्तरिक हिस्सा है, महावीर उसे ही वीर्य कह रहे है । जैसे शरीर और आत्मा है, वैसे ही प्रत्येक वीर्य-कण भी शरीर और आत्मा है । इसीलिए तो वीर्यकण भीतर जाकर नये बच्चे का जन्म हो जाता है । प्रत्येक वीर्यकण दो हिस्से लिए हुए है । एक तो उसकी खोल है, जो शरीर का हिस्सा है । और दूसरा उसके भीतर छिपा हुआ जीव है, वह उसकी आत्मा है ।

इस भीतर छिपे हुए के दो उपयोग हैं : एक उपयोग है नये शरीर को जन्म देना, और दूसरा उपयोग है कि यह वीर्य की खोल तो पड़ी रह जाये और वह जो वीर्य के भीतर की जीवन-धारा है, वह ऊर्ध्वमुखी हो जाए स्वयँ के भीतर । तो स्वयँ का नया जन्म हो जाता है, स्वयँ का नया जीवन हो जाता है ।

मनुष्य दो तरह के जन्म दे सकता है : एक तो बच्चों को जन्म दे सकता है, जो उसके शरीर की ही यात्रा है; और दूसरा अपने को जन्म दे सकता है, जो उसकी आत्मा की यात्रा है । अपने को जन्म देना हो तो वीर्य में छिपी हुई ऊर्जा को देह से मुक्त करके ऊर्ध्वमुखी करना पड़ता है ।

महावीर ने बड़े अद्भुत सूत्र खोजे है कि कैसे वह वीर्य-ऊर्जा मुक्त हो सकती है; कैसे खोल पड़ी रह जाये शरीर में और उसके भीतर की छिपी हुई शक्ति अन्तर्मुखी हो जाये । इसलिए जोर इस बात पर नही है कि कोई वीर्य का सग्रह करे, जोर इस बात पर है कि वीर्य से शक्ति को कैसे मुक्त करे ।

महावीर उसमें सफल हो पाये, इसलिए हमने उन्हे 'महावीर' कहा । इसी कारण उनका नाम 'महावीर' पड़ा । नाम तो वर्धमान था उनका, लेकिन जब वे इस वीर्य की ऊर्जा को मुक्त करने में सफल हो गये, तो यह इतने बडे संघर्ष और इतनी बड़ी विजय की बात थी कि हमने उन्हें 'महावीर' कहा । वर्धमान नाम को तो लोग धीरे-धीरे भूल ही गये, महावीर ही नाम रह गया ।

महावीर ने कहा है कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा विजय का क्षण उस समय होता है, जब वह अपने जीवन को ही अपने नये जन्म का आधार बना लेता है; अपने को ही पुनर्जीवित करने के लिए अपने जीवन की प्रक्रिया को मोड़ दे देता है और अपनी जीवन शक्ति का मालिक हो जाता है ।

इसे महावीर 'पुरुषार्थ' कहते हैं ।

'शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण रस, गन्ध और स्पर्श – ये पुद्गल के लक्षण है।'

महावीर अति वैज्ञानिक हैं अपने दृष्टिकोण में। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक का नहीं, वैज्ञानिक का है। इसलिए शकर से वे राजी नहीं होंगे कि जगत माया है, कि जगत् असत्य । इसलिए वे उन लोगो से भी राजी नही होंगे जो कहते हैं कि एक ही ब्रह्म है और सब स्वप्न है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारा सिद्धान्त सवाल नही है; जीवन को परखो, सिद्धान्त को जीवन पर थोपो मत। जीवन ही निर्णायक है, तुम्हारा सिद्धान्त निर्णायक नही है। तो महावीर कहते है कि जीवन को देख कर तो साफ पता चलता है कि जीवन दो हिस्सो में बँटा है · एक चैतन्य और एक अचैतन्य, एक आत्मा और एक पदार्थ।

महावीर सिद्धान्तवादी नही है, ठीक प्रयोगवादी हैं। वे कहते हैं जीवन को देखो, तर्क का सवाल नही है। और तर्क से भी आदमी पहुँचता कहाँ है?

शकर बड़ी कोशिश करते है सिद्ध करने की कि जगत् असत्य है, लेकिन कुछ असत्य सिद्ध हो नही पाता। शकर से भी पूछा जा सकता है कि अगर जगत् असत्य है तो इतनी चेष्टा भी क्या करनी उसको असत्य सिद्ध करने की? जो जगत् है ही नही उसकी चर्चा भी क्यो चलानी? इतना तो शकर को भी मानना पडेगा कि जगत् है जरूर, भले ही असत्य हो। पदार्थ की सत्ता है, उसे इन्कार नही किया जा सकता। और महावीर का एक और दृष्टिकोण भी समझ-लेने-जैसा है।

महावीर कहते है दुनिया में दो तरह के लोग है। एक वे जिनको हम ब्रह्मवादी कहते है, जो कहते हैं – ब्रह्म है, पदार्थ नही है। दूसरे वे जो बिल्कुल इनका ही शीर्षासन करता हुआ रूप है, जो कहते हैं – ब्रह्म नही है, पदार्थ है। पर दोनो ही मोनिस्ट है, दोनो ही एकवादी है। एक तरफ मार्क्स, दिदरो, एपीक्यूरस, चार्वाक जैसे लोग हैं – जो कहते है कि सिर्फ पदार्थ है, ब्रह्म नही है; ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है। ठीक इनके विपरीत खडे हुए शकर और अद्वैतवादी हैं, बर्कले तथा और-और लोग हैं – जो कहते है कि पदार्थ असत्य है, ब्रह्म सत्य है। लेकिन दोनो मे एक बात पर सहमति है कि एक ही सत्य हो सकता है। और महावीर कहते है कि दोनों यथार्थ से दूर हैं, दोनो अपनी मान्यता को थोपने की कोशिश मे लगे हैं। और दोनो मे ज्यादा भेद नही है। भेद इतना ही है कि उस एक तत्त्व को शकर कहते हैं 'ब्रह्म' और मार्क्स कहता है 'पदार्थ' 'मैटर'। दोनो में और कोई भेद नही है।

महावीर कहते हैं मेरा कोई सिद्धान्त नही है थोपने को। मैं जब जीवन को देखता हूँ तो पाता हूँ कि वहाँ दो है : वहाँ 'पदार्थ' है और 'चैतन्य' है। शरीर में भी झांकता हूँ तो पाता हूँ कि दो हैः पदार्थ है और चैतन्य है। और दोनो में कोई

भी एकता नहीं है; और दोनो में कोई भी समता नही है; और दोनो में कोई तालमेल नहीं है । दोनों बिलकुल विपरीत हैं, क्योंकि पदार्थ का लक्षण है 'अचेतना' और, जीव का लक्षण है 'चेतना' । ये चैतन्य के भेद हैं, जो महावीर कहते हैं इतने स्पष्ट हैं कि इसे झुठलाने की सारी चेष्टा निरर्थक है । इसलिए महावीर दोनों को स्वीकार करते हैं ।

महावीर पदार्थ को जो नाम देते हैं, वह बडा अद्भुत है । वैसा नाम दुनिया की किसी दूसरी भाषा में नही है । और दुनिया के किसी भी तत्त्वचितक ने पदार्थ को पुद्गल नही कहा है – पदार्थ कहा है, मैटर कहा है, और हजार नाम दिये हैं । लेकिन पुद्गल शब्द अनूठा है, इसका अनुवाद नही हो सकता किसी भी भाषा में ।

पदार्थ का अर्थ है – जो है । मैटर का भी अर्थ है – मैटीरियल – जो है, जिसका अस्तित्व है । लेकिन पुद्गल बडा अनूठा शब्द है । पुद्गल का अर्थ है – जो है और नही होने की क्षमता रखता है; जो नही होकर भी नही नही होता । पुद्गल का अर्थ है– प्रवाह । महावीर कहते हैं –पदार्थ कोई स्थिति नही है, बल्कि एक प्रवाह है ।

पुद्गल में जो शब्द है 'गल', वह महत्त्वपूर्ण है । उसका अर्थ है, जो गल रहा है । आप देखते हैं पत्थर को, पत्थर लगता है – है, लेकिन महावीर कहते हैं – गल रहा है । क्योंकि यह भी कल मिटकर रेत हो जायेगा । गलन चल रहा है, परिवर्तन चल रहा है । है नही पत्थर, पत्थर भी हो रहा है । नदी की तरह बह रहा है । पहाड भी हो रहे हैं ।

जगत में कोई भी चीज ठहरी हुई नही है । पुद्गल गत्यात्मक शब्द है । पुद्गल का अर्थ है – मैटर इन प्रॉसेस, गतिमान पदार्थ । महावीर कहते हैं, कोई भी चीज ठहरी हुई नही है, बह रही हैं सब चीजें । पदार्थ न तो कभी पूरी तरह मिटता है, और न पूरी तरह कभी होता है । वह सिर्फ बीच में है, प्रवाह में है ।

आप देखें अपने शरीर को : बच्चा था, जवान हो गया, बूढ़ा हो गया । एक दफा आप कहते हैं – बच्चा है शरीर, एक दफा कहते हैं – जवान है, एक दफा कहते हैं – बूढा है, लेकिन बहुत गौर से देखें, शरीर कभी भी 'है' की स्थिति में नही है – सदा हो रहा है । जब बच्चा है शरीर, तब भी वह 'है' की स्थिति में नही है, तब वह जवान हो रहा है । जब जवान है शरीर, तब भी वह 'है' की स्थिति में नही है, तब वह बूढ़ा हो रहा है । शरीर हो रहा है, एक नदी की तरह बह रहा है ।

पुद्गल का अर्थ है, प्रवाह । पदार्थ एक प्रवाह है । पदार्थ न तो कभी पूरी तरह होता है कि आप कह सकें कि 'है' और न पूरी तरह कभी मिटता है कि आप कह सकें कि 'नहीं है'। पदार्थ दोनों के बीच में सधा है – है भी, नही है भी । बड़ी

गहरी दृष्टि है, महावीर की। और अब विज्ञान भी राजी है महावीर से। क्योंकि विज्ञान भी कहता है कि पदार्थ भी हमें ठहरा हुआ दिखाई पड़ता है, ठहरा हुआ है नही ।

आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं, वह भी गतिमान है, उसके भी इलेक्ट्रॉन्स घूम रहे हैं। बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि आप गिर नहीं पाते हैं, सम्हले हुए हैं। जैसे बिजली का पंखा अगर बहुत तेजी से घूमे, तो आपको उसकी तीन पखुड़ियाँ दिखाई नही पड़ती। पंखा इतनी तेजी से घूम रहा है कि बीच की खाली जगह दिखाई नही पडती। इसके पहले कि खाली जगह दिखाई पड़े, पंखुडी आ जाती है और आपको पूरा एक गोला, घूमता हुआ वर्तुल दिखाई पड़ता है।

अगर बिजली का पंखा उतनी गति से घुमाया जा सके, जितनी गति से आपकी कुर्सी के इलेक्ट्रॉन्स घूम रहे हैं, तो आप बिजली के पंखे पर बड़े मजे से बैठ सकते हैं – जैसे कि आप कुर्सी पर ही बैठे हैं। आपको पता भी नही चलेगा कि नीचे कोई चीज़ घूम रही है। क्योंकि गति इतनी तेज होगी कि आपको पता चलने के पहले दूसरी पखुडी आपके नीचे आ जायेगी। बीच के खड्डे में आप गिर न जायेंगे। क्योंकि गिरने मे जितना समय लगता है, उससे कम समय पंखुड़ी के आने में लगेगा। आप सम्हले रहेंगे।

अब विज्ञान कहता है कि हर चीज़ घूम रही है, हर चीज गतिमान है। वह जो पत्थर का टुकड़ा है, वह भी ठहरा हुआ नही है, वह भी बह रहा है। वह अपने भीतर ही बह रहा है। महावीर का पुद्गल शब्द बड़ा सोचने-जैसा है। आज से पच्चीस सौ साल पहले महावीर ने कहा – पुद्गल, कि पदार्थ गतिमान है, गत्यात्मक है; जगत में कोई चीज़ ठहरी हुई नही है। बहुत बाद में एडिंग्टन ने कहा, अभी तीस साल पहले कहा कि मनुष्य की भाषा में एक शब्द गलत है, और वह है–रेस्ट : कोई चीज़ ठहरी हुई नही है; सब चीजें चल रही हैं। महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले, पदार्थ के लिए जो शब्द दिया, वह है – पुद्गल। और पुद्गल का अर्थ है – रेस्टलेसनेस।

इसलिए एक और बात समझ लेनी जरूरी है : जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, रेस्ट इज नॉट पॉसिबॅल। जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, तब तक रेस्टलेसनेस है। तब तक बेचैनी रहेगी ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से मुक्त होकर ही कोई शान्त हो सकता है। क्योंकि शरीर का स्वभाव परिवर्तन है। इसके पहले कि आप ठहरें, शरीर बदल जाता है। अभी स्वस्थ है, अभी बीमार पड़ जाता है।

शरीर प्रतिपल बदल रहा है। अगर ठीक से कहें तो शरीर स्वस्थ कभी भी नही होता। जिसको आप स्वास्थ्य कहते हैं, वह भी स्वास्थ्य नहीं है। शरीर स्वस्थ हो ही नही सकता ठीक अर्थों में, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है। इसलिए हमने

जो शब्द चुना है – स्वास्थ्य, वह बड़ा अर्थपूर्ण है। उसका अर्थ है, स्वयं में स्थित हो जाना। शरीर कभी स्वयं में स्थित नहीं होता, वह हमेशा बह रहा है। और उसे हमेशा पर की जरूरत है – भोजन चाहिये, श्वास चाहिये, वह हमेशा पर-निर्भर है।

यह जो महावीर का शब्द है पुद्गल, यह पूरे जगत में चेतना को छोड़कर सभी पर लागू है। सिर्फ चेतना पुद्गल नहीं है। बुद्ध ने चेतना के लिए भी पुद्गल शब्द का प्रयोग किया है। बुद्ध कहते हैं कि चेतना भी बदल रही है। यहाँ बुद्ध और महावीर का बुनियादी भेद है। महावीर ने पदार्थ को पुद्गल कहा है, बुद्ध ने आत्मा को भी पुद्गल कहा है। बुद्ध कहते हैं कि पदार्थ ही नहीं बदल रहा है, आत्मा भी बदल रही है। इसलिये आत्मा के लिए अपवाद करने की क्या ज़रूरत है? वे कहते हैं सब चीजें बदल रही हैं। जैसे साँझ हम एक दिया जलाते हैं और सुबह उस दिये को बुझाते हैं, तो सुबह हम कहते हैं कि हम उसी दिये को बुझा रहे हैं, जिसे सांझ हमने जलाया था। पर बुद्ध कहते हैं कि नहीं, वह दिया जो सांझ जलाया था, वह रातभर बदलता रहा – ज्योति बदलती रही, धुआँ बनती रही, नई ज्योति आती रही; दिये की ज्योति तो एक प्रवाह थी। तो तुमने जो दिया जलाया था, उसे तुम बुझा नहीं सकते। वह तो न-मालूम कब का बुझ गया, सुबह तो सिर्फ उसकी सतति बची है, उसकी संतान बची है, उसकी धारा बची है। वह किसी दूसरी ज्योति को जन्म दे गया है। तो सुबह तुम उसकी संतान को बुझा रहे हो, उसको नहीं बुझा रहे, जिसे तुमने सांझ जलाया था।

बुद्ध कहते हैं, जगत् में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, सभी पुद्गल है। लेकिन महावीर की बात ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। कारण है। और कारण यह है कि जगत् में हर चीज विपरीत से बनी है। अगर सभी-कुछ परिवर्तन है, तो परिवर्तन को नापने और जानने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर परिवर्तन पता चलता है तो ज़रूर कोई तत्त्व होना चाहिये जो परिवर्तित न होता हो। नहीं तो परिवर्तन का पता किसको चलेगा? परिवर्तन के विपरीत कुछ होना ज़रूरी है।

जगत् में विपरीत के बिना कोई उपाय नहीं है। अगर जगत् में सिर्फ अंधेरा हो तो आपको अंधेरे का पता नहीं चल सकता, या कि चल सकता है? प्रकाश के बिना कैसे अंधेरे का पता चलेगा? पता चलने के लिये विपरीत चाहिये। अगर सिर्फ़ जीवन हो और मृत्यु न हो, तो आपको जीवन का पता नहीं चलेगा। जीवन का पता मृत्यु के साथ ही चल सकता है। सिर्फ प्रेम हो, घृणा न हो, तो आपको प्रेम का पता नहीं चलेगा। सिर्फ मित्रता हो, शत्रुता न हो, तो आपको मित्रता का पता नहीं चलेगा। द्वन्द्व है जीवन।

तो महावीर कहते हैं कि अगर किसी को पता चल रहा है कि सब प्रवाह है, तो एक बात पक्की है कि वह खुद प्रवाह नहीं हो सकता; क्योंकि प्रवाह को जानने

के लिए प्रवाह से बाहर किसी का खड़ा होना जरूरी है । लगता है नदी बह रही है, क्योंकि आप खड़े हैं । अगर आप भी बह रहे हों, तो नदी बहती हुई नहीं मालूम पड़ेगी ।

इसे ऐसा समझें :

आइस्टीन कहा करता था कि अगर दो ट्रेने शून्य आकाश में चलाई जायें, और दोनों एक ही गति से, एक साथ, समानान्तर चल रही हो, तो कैसे पता चलेगा कि चल रही है ? जहाँ आसपास कुछ भी नहीं है – क्योंकि वृक्ष हो तो पता चल जायेगा कि चल रही है – और शून्य आकाश में दो ट्रेनें एक साथ चल रही हों – समानान्तर, दोनो बराबर एक गति से चल रही हों, तो दोनो ट्रेनों के यात्रियो को पता नही चल सकता कि ट्रेनें चल रही हैं। क्योकि आप खिड़की के बाहर मुंह निकाल लें, तो उस तरफ जो आदमी था, वह सदा वही है, वही खिड़की, वही नम्बर । आप कभी पता नही लगा सकते कि ट्रेनें चल रही है, क्योंकि चलने का पता तभी चलता है, जब कोई चीज ठहरी हो। इसलिए जब एक ट्रेन खड़ी रहती है और एक ट्रेन चल रही होती है, तो कभी-कभी खडी ट्रेन में बैठे लोगो तक को शक हो जाता है कि उनकी ट्रेन चल पड़ी है। और जब एक ट्रेन पचास मील प्रति घण्टा की रफ्तार से विपरीत दिशा में जा रही हो, और फिर एक दूसरी ट्रेन उसके करीब से गुजरती हो, जो पचास मील की रफ्तार से दूसरी दिशा में जा रही है, तो जब वे दोनो करीब होती हैं, तो उनकी रफ्तार सौ मील होती है – एक-दूसरे की तुलना में । इसलिए जब एक ट्रेन आपके करीब से गुजरती है, तो आपको लगता है कि आपकी ट्रेन – अगर चल रही है, तो बहुत तेजी से चलने लगी है । क्योकि दूसरी ट्रेन पचास मील की रफ्तार से पीछे जा रही है, आपकी पचास मील की रफ्तार से आगे जा रही है । दोनो ट्रेनें एक-दूसरे की तुलना में सौ मील की रफ्तार से चल रही हैं ।

वृक्ष खड़े हैं किनारे पर, उनकी वजह से आपको पता चलता है कि आपकी ट्रेन चल रही है । किसी दिन वृक्ष तय कर ले और साथ चल पड़े, तो थोड़ी देर में आप समझ जायेंगे कि आपकी ट्रेन चल नही रही है ।

गति की प्रतीति हो रही है, क्योकि कही कुछ गति से विपरीत है । जीवन की सब प्रतीतियां विपरीत पर निर्भर हैं । पुरुष को अनुभव होता है क्योकि स्त्री है; स्त्री को अनुभव होता है, क्योकि पुरुष है – विपरीत, द पोलर अपोज़िट ।

ध्रुवीय विपरीतता है, विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुँचा है । अभी विज्ञान साफ नहीं हो पा रहा है, लेकिन विज्ञान मे एक नई धारणा पैदा हुई है। वह धारणा है एन्टी-मेटर की, कि पदार्थ है तो विपरीत-पदार्थ भी चाहिये । यह बहुत अनूठी बात है है, और उस आदमी को नोबॅल प्राइज भी मिला है जिसने ये अनूठी बात कही है कि एन्टी-मेटर भी होना चाहिये । और उसने एक और अजीब बात कही है कि समय बह रहा है अतीत से भविष्य की तरफ, तो समय की एक विपरीत धारा भी चाहिये, जो भविष्य से अतीत की तरफ बह रही हो । नहीं तो समय बह नही सकता ।

यह बहुत अजीब धारणा है, और यह धारणा बहुत घबड़ाने वाली है। हीजेनबर्ग का कहना है कि कहीं-न-कहीं कोई जगत् होगा, इसी जगत के किनारे, जहाँ समय उल्टा बह रहा होगा। जहाँ बूढ़ा आदमी पैदा होगा, फिर जवान होगा, फिर बच्चा होगा, और फिर गर्भ में चला जायेगा। और हीजेनबर्ग को नोबेल प्राइज मिला है, क्योंकि उसकी बात तात्विक है।

जगत् में विपरीतता होगी ही, यह एक शाश्वत नियम है। इसलिए बुद्ध की बात किसी और अर्थ में अर्थपूर्ण भले हो, पर वैज्ञानिक अर्थों में महत्त्वपूर्ण नहीं है। महावीर ठीक कह रहे है कि जगत् में विपरीतता है; वहाँ बाहर पुद्गल है और यहाँ भीतर अपुद्गल, एन्टी-मैटर है। वहाँ सब चीजें बाहर बह रही है – पदार्थ में, और यहाँ भीतर कुछ भी नही बह रहा है, सब ठहरा हुआ है।

इस ठहरी हुई स्थिति का अनुभव 'मुक्ति' है। और इस बहते हुए के साथ जुड़े रहना 'संसार' है। ससार का अर्थ है, बहाव।

'शब्द, अन्धकार, प्रकाश, प्रभा, छाया. आतप, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श – ये सब पदार्थ के लक्षण है।'

'जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष – ये नौ सत्य-तत्व है।

पहले छह जीव के लक्षण कहे हैं महावीर ने। वे मैटाफिजिकल है। फिर पदार्थ के दस लक्षण कहे। जगत्, जागतिक रूप से इन तत्वो में समा गया है। अब जिन नौ तत्वो की बात हम कर रहे हैं, वे नौ तत्व – साधक, साधक के आयाम, और साधक के मार्ग के सम्बन्ध में है। एक-एक साधक एक-एक जगत् है अपने भीतर। विराट् है जगत्, फिर वह विराट् एक-एक मनुष्य के भीतर छिपा है। उस मनुष्य को साधना की दृष्टि से जिन तत्वों में विभक्त करना चाहिये, वे नौ तत्व हैं।

'जीव', 'अजीव' – यह पहला विभाजन है। अजीव पुद्गल है, जीव चैतन्य है। जीव, अर्थात् जिसके पास अनुभव की क्षमता है। यह जो अनुभव की क्षमता है, यह सात स्थितियों से गुज़र सकती है। उन सात स्थितियों का बड़ा मूल्य है, इसलिए महावीर ने उनको भी 'तत्त्व' कहा है – तत्त्व है नही। वे सात स्थितियाँ है – बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सबको एक-एक करके बारीकी से समझना जरूरी है, क्योंकि महावीर का पूरा-का-पूरा साधना-पथ इन सात की समझ पर निर्भर होगा।

'जीव' और 'अजीव' दो विभाजन हुए जीवन के : पदार्थ और परमात्मा। पदार्थ से परमात्मा तक जाने की, मुक्त होने की सात सीढ़ियाँ हैं, या परमात्मा से पदार्थ तक उतरने की भी सात सीढ़ियाँ हूं। इन सात सीढ़ियों की महावीर ने बड़ी अनूठी व्याख्या की है।

'बन्ध'. महावीर कहते है, बन्ध भी एक तत्त्व है – बॉन्डेज, परतन्त्रता। और किसी ने भी परतन्त्रता को तत्त्व नही कहा है। महावीर कहते हैं, परतन्त्रता भी एक तत्त्व है। इसे समझें, क्या इसका अर्थ है? आप वस्तुतः स्वतन्त्र होना चाहते है? सभी कहेंगे 'हाँ', लेकिन थोड़ा गौर से सोचेंगे तो कहना पड़ेगा 'नही'।

एरिक फ्रोम ने अभी एक किताब लिखी है, किताब का नाम है – फियर ऑफ फ्रीडम; स्वतन्त्रता का भय। लोग कहते जरूर है कि हम स्वन्तत्र होना चाहते है, लेकिन कोई भी स्वतन्त्र होना नही चाहता। थोड़ा सोचें, सच में आप स्वतन्त्र होना चाहते है? खोजते तो रोज आप परतन्त्रता है – और जब तक परतन्त्रता न मिल जाये तब तक आश्वस्त नही होते। रोज खोजते है – कोई सहारा, कोई आसरा, कोई शरण, कोई सुरक्षा।

एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। वह सोचता है कि धन होगा, तो मै स्वतन्त्र हो जाऊँगा। क्योकि जितना धन होगा, उतनी शक्ति होगी। लेकिन होता उलटा है जितना धन होता है, उतना वह परतन्त्र होता है। अमीर आदमी से, गरीब आदमी खोजने बहुत मुश्किल है। उनका खयाल होता है कि पैसोकी मालकियत उनके पास है, लेकिन पैसा उनका मालिक हो जाता है। उन्हें एक कौडी भी छोडना मुश्किल हो जाता है, एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है।

रॉकफैलर लन्दन आया तो एक होटल में ठहरा। उसने आते ही पूछा कि 'सबसे सस्ता कमरा कौन-सा है?' अखबारों में फोटो उसका निकला था। मैनेजर पहचान गया। उसने कहा कि 'आप रॉकफैलर मालूम होते है, और आप सस्ता कमरा खोजते है? आपके बेटे यहाँ आते है तो सबसे कीमती कमरा खोजते है।' तो रॉकफैलर ने ठडी सास भरकर कहा कि "दे आर मोर फॉर्च्युनेट, दे हैव ए रिच फॉदर, आइ ऐम नॉट सो – मै इतना भाग्यशाली नही हूँ, मै एक गरीब बाप का बेटा हूँ। वे मौज उड़ा रहे हैं, वे एक अमीर बाप के बेटे हैं।"

धन स्वतन्त्रता देता है, ऐसा हमारा ख्याल है – देता नही, देता तो परतन्त्रता है। एक सम्राट को लगता है कि वह स्वतन्त्र है, क्योंकि इतनी शक्ति उसके पास है। लेकिन जितनी शक्ति इकट्ठी होती है, उतना व्यक्ति परतन्त्र हो जाता है, उतना घिर जाता है, उतना मुश्किल में पड़ जाता है।

प्रेम में हमें लगता है कि प्रेम से स्वतन्त्रता मिलेगी – मिलनी चाहिये, लेकिन मिलती नही। जिसके भी प्रेम में आप पड़ते है, परतन्त्रता शुरू हो जाती है। पत्नी पति को बाधने की कोशिश में लगी है, पति पत्नी को बांधने की कोशिश में लगा है। दोनों के हाथ एक - दूसरे की गर्दन पर हैं। दोनो कोशिश में लगे हैं कि दूसरे को किस भांति बिलकुल वस्तु की तरह, बिलकुल पदार्थ की तरह कर दे। और दोनों सफल हो जाते हैं, एक-दूसरे को गुलाम बना लेते है। इसलिए बहादुर-से-बहादुर पति जब

घर की तरफ आता है, तब देखें, तब उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं । तब वह तैयारी करने लगता है कि अब क्या करना है । क्योंकि जिससे भी हम प्रेम करते हैं, वही परतन्त्रता शुरू हो जाती है ।

प्रेम का मतलब हुआ कि हमने अपने को जरा भी शिथिल छोड़ा कि दूसरे ने हम पर कब्जा किया । हमने जैसे ही अपने अस्त्र-शस्त्र हटाकर रखे कि दूसरा हम पर हावी हुआ । और आप भी इसी कोशिश में लगे हैं कि आप हावी हो जायें । बाप बेटे पर हावी होने की कोशिश में लगा है, बेटे बाप पर हावी होने की कोशिश में लगे हैं ।

हमारे पूरे जीवन की चेष्टा यही है कि हम मालिक हो जायें । लेकिन आखिरी परिणाम यह होता है कि हम न मालूम कितने लोगों के गुलाम हो जाते हैं । निश्चित ही, कहीं गहरे में हम स्वतन्त्रता से डरते हैं । थोड़ी देर सोचें कि आप अगर अकेले रह जायें पूरी पृथ्वी पर, तो क्या आप पूरे स्वतन्त्र होंगे ? क्योंकि तब कोई भी आपको परतन्त्र करनेवाला नहीं होगा, तो कोई उपाय ही नहीं होगा । भोजन की सब सुविधा हो – सब हो, तो क्या आप अकेले होना पसन्द करेंगे पृथ्वी पर ? जीवन का सारा रस चला जायेगा । पूरी तरह स्वतन्त्र होंगे, लेकिन रस बिलकुल खो जायेगा ।

स्वतन्त्रता में हमारा रस ही नहीं है, इसलिए लोग मोक्ष की बातें तो सुनते हैं, लेकिन मोक्ष को खोजने नहीं जाते । महावीर कहते हैं कि बंध, परतन्त्रता हमारे जीवन का एक तथ्य है । हम बन्धन चाहते हैं – कोई बांध ले । फिर बड़े मजे की बात है कि कोई न बाधे, तो हमें बुरा लगता है, और कोई बाधे, तो बुरा लगता है ।

एक फिल्म अभिनेता से उसका एक मित्र पूछ रहा था कि 'तुम जरूर थक जाते होओगे, क्योंकि जहाँ भी तुम जाते हो, वहीं इतनी भीड़ घेर लेती है, लोग हस्ताक्षर मांगते है, धक्कम-धुक्की होती है – तुम जरूर थक जाते होओगे ? तुम जरूर ऊब गये होओगे ?' तो उस फिल्म अभिनेता ने कहा कि "जरूर ऊब गया हूँ, लेकिन इससे भी एक बुरी चीज है, और वह यह है कि कोई न घेरे और कोई हस्ताक्षर न मांगे – उससे यह बेहतर है ।"

मैं एक कॉलिज में शिक्षक था । एक दिन एक युवती ने आकर मुझसे कहा कि 'एक युवक उसे कभी चिट्ठियाँ फेंकता है लिखकर, कभी कंकड़ मारता है ।' वह बहुत नाराज थी। मैंने उससे कहा, "तू बैठ, और तू इस तरह सोच कि तू छह साल कॉलेज में रहे, कोई तुझे कंकड़ न मारे, कोई चिट्ठी न फेंके, तो फिर क्या हो ?" वह थोड़ी बैचेन हो गई । उसने कहा कि "आप किस तरह की बातें करते है, वह ज्यादा दुखद होगा ।" तो मैंने कहा, "फिर फेंकने दे चिट्ठी । और तू जो यहाँ कहने आई है तो उसमें सिर्फ़ तेरा क्रोध ही नहीं, तेरा गौरव और गरिमा भी मालूम हो रही है, तेरे चेहरे पर शान भी है कि कोई तुझे पत्थर भी मारता है, कोई चिट्ठी भी फेंकता

है। तू फिर से सोचकर, इस पर ध्यान करके आना कि तू इसका रस भी ले रही है या नहीं ले रही है? क्योंकि मैं उन लड़कियों को भी जानता हूँ, जिनकी तरफ कोई नही देख रहा है, तो वे परेशान है।"

सुना है मैंने कि एक स्त्री ने – जो पचास साल की हो गई और विवाह नहीं कर पाई (क्योंकि कोई बांधने नहीं आया, कोई बंधने नहीं आया) – एक दिन सुबह-सुबह फायर ब्रिगेड को फोन किया बड़ी घबराहट में कि 'दो जवान आदमी मेरी खिड़की में घुसने की कोशिश कर रहे हैं, शीघ्रता करें।' तो फायर ब्रिगेड के लोगों ने कहा कि 'क्षमा करें, आपसे भूल हो गई, यह तो फायर ब्रिगेड डिपार्टमेन्ट है, आप पुलिस स्टेशन को खबर करें।' उस स्त्री ने कहा कि 'पुलिस स्टेशन से मुझे मतलब नही, मुझे फायर ब्रिगेड डिपार्टमेन्ट से ही मतलब है।' तो उन्होने पूछा कि 'क्या मतलब है? हम क्या कर सकते है?' उस स्त्री ने कहा कि 'बड़ी सीढ़ी ले आएँ, वे लोग छोटी सीढ़ी से घुसने की कोशिश कर रहे हैं। बड़ी सीढ़ी की जरूरत है।'

पचास साल जिसे किसी ने ककड़ न मारा हो, चिठ्ठी न लिखी हो, उसकी हालत ऐसी हो ही जायेगी।

आदमी बंधने के लिये आतुर है। न बंधे तो मुसीबत में पड़ता है। लगता है मैं बेकार हूँ, मेरे जीवन का कोई अर्थ नही है। बांध ले कोई तो लगता है कि बन्धन हो गया, कैसे छुटकारा हो? आदमी एक उलझन है, और उलझन का कारण यह है कि वह चीजों को साफ-साफ नही समझ पाता कि क्या, क्या है?

पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बंध हमारे भीतर एक तत्त्व है। हम बंधना चाहते हैं; और जब तक हम बंधना चाहते है, तब तक दुनिया में कोई भी हमें मुक्त नही कर सकता।

मजे की बात तो यह है कि हम अगर बंधना चाहते हैं, तो जो हमें मुक्त करने आयेगा, हम उसी से बंध जायेंगे। महावीर से बंधे हुए लोग हैं। वह बंध-तत्त्व काम कर रहा है। वे कह रहे है कि हम जैन है। आपके जैन होने का क्या मतलब है? महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गये, आप क्यो पीछा कर रहे है?

इधर मैं देखता हूँ, जब मैं महावीर पर बोलता हूँ तो दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं; जब मैं लाओत्से पर बोलता हूँ, – दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं। लाओत्से से आपका कोई बन्धन नहीं है, बंध-तत्त्व महावीर से लगता है। तब आप दिखाई नही पडते, आपका कोई रस नही है लाओत्से में। आप वहीं दिखाई देते हैं, जहाँ आपका बन्धन है। जहाँ आपकी गर्दन बंधी है, वहाँ आप चले जाते हैं। गुलाम हैं।

महावीर आपको मुक्त करना चाहते है, लेकिन इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। महावीर क्या करेंगे, अगर आप बंधना चाहते हैं। महावीर कहते हैं, अपने पैर पर खड़े हो जाओ – आप कहते है, 'आप ही हमारी शरण हैं।' महावीर कहते हैं, कोई किसी का सहारा नही, कोई किसी का आसरा नही – आप कहते हैं कि 'आपके बिना यह भव-सागर से कैसे पार हो ?' और वे कह रहे हैं कि हमारे ही कारण डूब रहे हो भव-सागर में।

दूसरे के कारण आदमी डूबता है, अपने कारण उबरता है। कोई गुरु उबार नही सकता। लेकिन आपने डूबना पक्का कर रखा है। आपकी पूरी चेष्टा यही है कि किसी तरह डूब जाये।

इस भीतर के बंध-तत्त्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है। और जब तक बंध की वृत्ति काम कर रही है, तब तक मोक्ष से आपका कोई सम्पर्क नही हो सकता, तब तक मुक्ति की हवा भी आपको नही लग सकती। आप पहचानें इस मानसिक बात को कि आप जहाँ भी जाते है, वहाँ जल्दी से बधने को आतुर हो जाते हैं। स्वतन्त्र रहना कष्टपूर्ण मालूम पडता हैं, मुक्त रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, क्यो. . . ?

क्योंकि अकेले रहना कष्टपूर्ण मालूम पडता है। अकेले में आप बैठ नही पाते – अखबार खोल लेते हैं, किताब खोल लेते है, रेडिओ खोल लेते है, टेलिविजन चला देते हैं – कोई नही मिलता, तो होटल, क्लब, रोटरी, लायंस – सब इन्तजाम हैं, वहाँ भागे जाते है, क्यो ? थोडी देर अकेले होने में इतनी अड़चन क्या है ? अपने साथ होने में इतना दुख क्या है ? दूसरे का साथ क्यों इतना जरूरी है. . . ?

. . अकेले में डर लगता है, भय लगता है। अकेले में जीवन की मूल समस्या सामने खडी हो जाती है। अगर ज्यादा देर अकेले रहेंगे तो सवाल उठेगा, 'मैं कौन हूँ ?' भीड़ में रहते हैं तो पता रहता है कि मै कौन हूँ। भीड़ याद दिलाती रहती है – आपका नाम, आपका गाँव, आपका घर, आपका पेशा – भीड़ याद दिलाती रहती है। अकेले मे भीड़ याद नहीं दिलाती।

और भीड़ के दिये हुए जितने लेबॅल है, वे भीड़ के साथ ही छूट जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति बन्धन से मुक्त होना चाहता है, उसे एकान्त में रस लेना चाहिए, अकेले में रस लेना चाहिये, अपने में रस लेना चाहिये। धीरे-धीरे दूसरे की निर्भरता छोड़नी चाहिए। उस जगह आ जाना चाहिए, जहाँ अगर मैं अकेला हूँ तो पर्याप्त हूँ।

अगर कोई व्यक्ति अकेले में पर्याप्त है, तो बन्धन का तत्त्व गिर गया। अगर कोई अकेले में पर्याप्त नही है, तो वह बंधेगा ही, तो वह खोजेगा ही कुछ-न-कुछ, उसे कोई-न-कोई डूबने के लिए सहारा चाहिये। तब एक सुविधा है कि जब दूसरा हमें डुबाता है, तो हम दोष दूसरे को दे सकते हैं, तब हमें दूसरे में दोष दिखाई पडते है। लेकिन

हम दूसरे की तलाश क्यों करते हैं ? और जब आप एक गलत आदमी से मैत्री बना लेते हैं, या विवाह कर लेते है एक गलत स्त्री से, तो आप सोचते हैं – गलती हो गई, गलत स्त्री से विवाह कर लिया । लेकिन आपको पता नही है कि आप गलत स्त्री से ही विवाह कर सकते हैं । ठीक स्त्री की आप तलाश ही न करेंगे ।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक बार एक ठीक स्त्री की तलाश करते-करते अविवाहित मरा । उसने पक्का ही कर लिया था कि जब तक पूर्ण स्त्री न मिले, तब तक मैं विवाह न करूँगा । फिर जब वह बूढा हो गया, नब्बे साल का हो गया, तब किसी ने पूछा कि 'आप इतने वर्षो से तलाश कर रहे हैं पूर्ण स्त्री की, क्या आपको पूर्ण स्त्री मिली ही नही इतनी बड़ी पृथ्वी पर ?' उसने कहा, "पहले तो बहुत मुश्किल था, पहले तो मिली नही, फिर मिली भी . ।"

तो उस आदमी ने पूछा, "आपने विवाह क्यो नही कर लिया ?" तो उस आदमी ने कहा कि "वह भी वर्षों से पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी । तब हमें पता चला कि यह असम्भव है मामला ।"

वह भी अविवाहित ही मरी होगी, उसका कुछ पता नही है ।

हम जो हैं, उसी को हम खोजते हैं । वही हमें मिल भी सकता है । तो जो भी आपको मिल जाये, वह आपकी ही खोज है, और आपके ही चित्त का दर्शन है उसमें । अगर आपने गलत स्त्री खोज ली है, तो आप गलत स्त्री खोजने में बडे कुशल हैं । और आप दूसरी भी खोजेंगे तो ऐसी ही गलत स्त्री खोजेंगे । आप अन्यथा नही खोज सकते, क्योंकि आप ही खोजेंगे ।

जो भी है हमारे चारो तरफ – दुख, चिन्ता, पीड़ा – वे सब हमारे ही उपाय हैं । और आप चकित होंगे जानकर कि अगर आप के दुख आपसे छीन लिये जाये, तो आप राज़ी नही होंगे । क्योंकि वे आपने ही खड़े किये हैं । उनका कुछ कारण है ।

मेरे पास लोग आते है, वे अपनी चिन्ताएँ बताते हैं । मै उनसे कहता हूँ कि आप बताते तो ज़रूर है, लेकिन आप चिन्ताएँ बताते वक्त ऐसे लगते हैं, जैसे कि बडा भारी काम कर रहे हैं, कि कोई बडी उपलब्धि कर ली है आपने !

लोग चिन्ताओ में भी रम लेते हैं । लोग अपने दुख को बड़े रस से सुनाते है । आप ऊबते है, वे नही ऊबते । उनकी दुख कथा आप सुनें, वे कितना रस लेते हैं । पश्चिम में तो पूरा धन्धा खड़ा हो गया है साइको-एनालिसिस का । वह पूरा धन्धा इस बात पर निर्भर है कि लोग अपना दुख सुनाने में रस लेते हैं । और अब कोई राज़ी नही है सुनने को, किसी के पास समय नही है । तो प्रोफेशनल सुननेवाला चाहिए । वह जो साइको-एनालिस्ट है, वह प्रोफेशनल सुननेवाला है । वह पैसा लेता है ।

वह बड़े ग़ौर से सुनता है। लेकिन पता नही कि वह ग़ौर और उसका ध्यान, सिर्फ दिखावा भी हो सकता है।

मैंने सुना है कि एक दिन फ्रायड को उसके एक युवक शिष्य ने पूछा कि "मैं तो थक जाता हूँ, दो-चार-पाँच मरीजों को सुनने के बाद, और आप शाम को भी ताजे दिखाई पड़ते हैं।" फ्रायड ने कहा, "सुनता ही कौन है? सिर्फ चेहरे का ढंग होता है कि हाँ, सुन रहे हैं। मगर वह आदमी हल्का होकर ठीक भी हो जाता है।"

दुख की चर्चा करने में रस आता है, क्योंकि उससे लगता है कि आप महत्त्वपूर्ण हैं; कुछ आपकी जिन्दगी में भी हो रहा है।

मैंने सुना है कि एक स्त्री एक डॉक्टर के पास गई। और जाकर डॉक्टर से उसने कहा कि "कोई-न-कोई ऑपरेशन कर ही दें।" डॉक्टर ने कहा, "लेकिन तुझे कोई ज़रूरत ही नही है, तू बिलकुल स्वस्थ है।" उसने कहा, "वह तो सब ठीक है, लेकिन जब भी स्त्रियाँ मिलती हैं – कोई कहती है उसका अपेन्डिक्स का ऑपरेशन हो गया है, किसी का टॉन्सिल का हो गया है, मेरा कुछ भी नहीं हुआ है। तो जिन्दगी बेकार ही जा रही है – कुछ भी कर दें, चर्चा के लिए ही सही।"

आदमी अपनी बीमारी मे, अपने दुख में, अपनी पीडा मे, अपनी चिन्ता में रस ले रहा है। महावीर उस रस को ही बन्ध कहते हैं।

'पुण्य', 'पाप' महावीर की पुण्य और पाप की बड़ी अलग धारणा है। महावीर पुण्य, पाप को भी पौद्गलिक कहते हैं, मैटीरियल कहते हैं। वे कहते हैं, जब आप पाप करते है तब आप की चेतना के पास खास तरह के परमाणु इकठ्ठे हो जाते है, जब आप पुण्य करते हैं तब खास तरह के परमाणु इकठठे हो जाते है। इसलिए महावीर कहते हैं। पुण्य करने से कोई मुक्त नही होगा, क्योंकि पुण्य भी परमाणुओ को इकठ्ठा करता है। पुण्य करने से अच्छा शरीर मिल सकता है, पुण्य के परमाणु होंगे। और पाप करने से बुरा शरीर मिल सकता है, पाप के परमाणु होंगे।

महावीर कहते है – पाप है, जैसे लोहे की हथकड़ियाँ; और पुण्य है, जैसे सोने की हथकडियाँ। लेकिन सोने की हथकडियो को लोग हथकडियाँ नही कहते, उनको आभूषण कहते हैं। जब आपको किसी स्त्री को बाँधना हो, तो सोने की हथकड़ी भेंट मत करना, उनको लोग आभूषण कहते हैं। सोना जिस तरह बांध लेता है, उस तरह लोहा कभी भी नही बाध सकता, क्योंकि लोहे में कोई रस पैदा होता नही मालूम होता। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य भी बाधता है।

बुरे कर्म तो बाधते ही है, अच्छे कर्म भी बाध लेते हैं। और हर कर्म पौद्गलिक है – यह बड़ी क्रान्तिकारी धारणा है। महावीर कहते हैं जब तुम शुभ कर्म करते हो

तो तुम्हारे पास शुभ परमाणु इकठ्ठे होते हैं । वस्तुत, तुम्हारी चेतना के आस-पास अच्छे तत्त्व इकठ्ठे हो जाते हैं । इसलिए तुम्हे अच्छा लगता है । जैसे चारों तरफ फूल खिले हों और किसी को अच्छा लगे, ऐसा ही पुण्य करते वक्त अच्छा लगता है । पाप करते वक्त बुरा लगता है, जैसे कोई दुर्गन्ध के बीच बैठा हो ।

तो जब आप चोरी करते हैं तो मन को बुरा लगता है, झूठ बोलते हैं तो मन को बुरा लगता है, क्रोध करते हैं तो मन को बुरा लगता है; उस बुरे लगने का कारण है कि आप गलत, विकृत, दुर्गन्धयुक्त, परमाणुओं को अपने पास बुला रहे हैं, निमन्त्रण दे रहे हैं । और जब आप किसी पर दया करते हैं, किसी पर करुणा प्रगट करते हैं, किसी गिरे हुए को उठने का सहारा दे देते हैं – कोई छोटा-सा कृत्य भी – कि एक बूढ़े आदमी को देखकर मुस्करा देते हैं, (जिसको देखकर अब कोई नही मुस्कराता) तो आपके भीतर एक हल्कापन छा जाता है; आप उड़ने लगते हैं, पख निकल आते हैं ।

यह जो आपको उडने का हल्कापन मालूम होता है, यह जो ग्रेव्हिटेशन कम हो जाता है, कशिश कम हो जाती है, यह जो प्रसादयुक्त अवस्था है, इसको महावीर 'पुण्य' कहते हैं ।

महावीर के हिसाब से – जिसे करने पर आपको हल्कापन मालूम होता हो, नम्रता मालूम होती हो, खिलते हो आप, फूल की तरह बनते हो – वह पुण्य है; और जिससे आप भारी होते हों, पथरीले होते हो, डूबते हो, और जिससे बोझिलता बढ़ती हो – वह पाप है । जो नीचे लाता हो, डुबाता हो, वजन देता हो, वह पाप है; और जो ऊपर ले जाता हो, हल्का करता हो, आकाश में खोलता हो, वह पुण्य है ।

अगर आपका धर्म भी आपको भारी करता है, सीरियस करता है, तो पाप है । अगर आपका धर्म आपको उत्सव देता है, आनन्द देता है, नृत्य देता है, तो ही पुण्य है । पुण्य का लक्षण है कि आप हल्के हो जायेंगे, बच्चे की तरह नाचने लगेंगे; पाप का अर्थ है, आप भारी हो जायेंगे, बैठ जायेंगे पत्थर की तरह ।

अपने साधु सन्यासियो को जाकर गौर से देखें, क्या उनके जीवन में उत्सव है ? और जिनके जीवन में उत्सव ही नही है, उनके जीवन में मोक्ष तो फिर बहुत दूर है । अभी पुण्य भी जीवन में नही है । क्या आपका साधु हँस सकता है ? बच्चे की तरह किलकारी ले सकता है ? नाच सकता है ? प्रफुल्लित हो सकता है. . .?

. . .नही, वह भारी है । और न केवल खुद भारी है, अगर आप उसके पास हँसते हुए पहुँच जायें, तो वह अपमान अनुभव करता है । वह आपको भी भारी करता है । तो जब आप मन्दिर में पहुँचते है, तो आप जूते ही बाहर नही उतारते सब हल्कापन भी बाहर रख देते है उतारकर । एकदम गम्भीर होकर, रीढ़ को सीधी करके, आँखें भारी करके, नीचे करके आप अन्दर प्रवेश करते हैं ।

मन्दिर में जिन्दा आदमी के लिये कोई जगह नहीं मालूम होती, मरे-मराये लोग वहां इकट्ठे हैं। इसलिए अगर मन्दिर में बच्चे आ जायें, तो सबको लगता है कि डिस्टर्ब कर रहे हैं। सच्चाई उल्टी है। बच्चे मन्दिर में पुण्य ला रहे हैं। और अगर आप भी बच्चों की तरह कूद सकें, और नाच सकें, और गीत गा सकें, तो ही — तो ही मन्दिर पुण्य के तत्त्व देगा।

मैं निरन्तर कहता हूं कि कभी एक बगीचे में पुण्य के तत्त्व हो सकते हैं — कभी एक नदी के किनारे भी, कभी एक पहाड़ के एकान्त में भी। जरूरी नहीं है कि मन्दिर में ही हों। क्योंकि मन्दिर पर गम्भीर लोगों ने बड़े पुराने दिनों से कब्जा कर रखा है। गम्भीर लोग एक लिहाज से खतरनाक हैं, क्योंकि जहां भी गम्भीर लोग हों, वे हल्के-फुल्के लोगों को निकालकर बाहर कर देते हैं।

इकनामिक्स का एक नियम है कि जब भी बुरे सिक्के चलन में हों तब अच्छे सिक्के चलन के बाहर हो जाते हैं। रद्दी नोट अगर आपके खीसे में पड़ा हो, तो पहले आप रद्दी नोट को चलायेंगे कि असली को? रद्दी पहले चलायेंगे, असली को आप छिपाकर रखेंगे। रद्दी हमेशा असली को चलन के बाहर कर देता है।

गम्भीर लोग प्रफुल्लता को सदा चलन के बाहर कर देते हैं। और उन्होंने ऐसी हालत पैदा कर दी है कि प्रफुल्लता पाप मालूम होने लगी है। अगर आप हंसते हैं, तो आप पापी हैं। आपको एक रोती हुई लम्बी शक्ल चाहिये, तो ही आप पुण्यात्मा मालूम होंगे।

महावीर कहते हैं, पुण्य का तत्त्व प्रफुल्लित करनेवाला तत्त्व है। और यह निश्चित रूपसे सही है। और इससे ज्यादा सही और कोई बात नहीं हो सकती। अगर आपने जीवन में कभी भी कोई हल्कापन अनुभव किया है, तो आप समझ लेना कि वहां पुण्य का तत्त्व आपने आकर्षित किया था। अगर आपको भारीपन अनुभव होता है, बोझिलता अनुभव होती है, तो उसका मतलब है कि शरीर वजनी हो रहा है, आत्मा ताकत खो रही है, शरीर ज्यादा भारी होकर आत्मा पर छा रहा है।

प्रफुल्लता की तलाश, पुण्य की तलाश है। और ध्यान रहे, जो खुद प्रफुल्लित रहना चाहता है, वह दूसरे को प्रफुल्लित करेगा; क्योंकि प्रफुल्लता सकामक है। अगर यहां इतने लोग रो रहे हों, तो आप प्रफुल्लित नहीं हो सकते अकेले। आप दब जायेंगे। तो जो आदमी आनन्दित होना चाहता है, वह दूसरे को दुख नहीं देना चाहेगा; क्योंकि आनन्दित होने की बुनियादी शर्त ही यह है कि आनन्द चारों तरफ हो, तो ही आप आनन्दित हो पायेंगे। और जो आदमी दुखी होना चाहता है, वह अपने चारों तरफ दुखी चेहरे पैदा करेगा; क्योंकि दुख के बीच ही दुखी हुआ जा सकता है।

जब धर्म जन्म लेता है तो नाचता हुआ होता है, और जब धर्म सम्प्रदाय बनता

है तो मुर्दा हो जाता है। और उसके आसपास बैठे हुए लोग वैसे ही हो जाते हैं, जैसे जब घर में कोई मर जाता है और पड़ोस के लोग आकर आस-पास बैठ जाते है। मन्दिरों में, मस्जिदो में, गिरजाघरो में, गुरुद्वारों में बैठे हैं लोग – जैसे लाश के आस-पास लोग बैठे हो।

महावीर के पास जो प्रफुल्लता रही होगी, वह महावीर की मूर्ति के पास नहीं बची होगी। जरा महावीर का चेहरा देखें – जाकर अपने ही मन्दिर की मूर्ति में जरा गौर से देखें। यह चेहरा बिलकुल हल्का है; इस चेहरे पर लेशमात्र भी बोझ नहीं है, यह छोटे बच्चे की भाँति बिलकुल निर्दोष है; इस पर कोई भार नही, कोई चिन्ता नही। महावीर इसीलिए नग्न भी खड़े हो गये। छोटा बच्चा ही नग्न खडा हो सकता है।

नही कह रहा हूँ कि आप नग्न खड़े हो जाये तो छोटे बच्चे हो जायेंगे। कुछ पागल भी नग्न खडे हो जाते हैं। अगर आप नग्न खडे हो और आपको पता हो कि आप नग्न खड़े हैं, तो आप छोटे बच्चे नही हैं।

महावीर इतने हल्के हो गये, कि नग्न खड़े हो गये। उन्हे पता भी नही चला होगा कि वे नग्न है। और उनकी नग्नता का दूसरो को भी पता नही चलता कि वे नग्न है। एक निर्दोष, एक इनोसेंस, एक कुवाँरापन भीतर आ गया, जहाँ सब बोझ गिर गये।

महावीर कहते हैं – पुण्य हल्का करनेवाला तत्त्व है, पाप बोझिल करनेवाला तत्त्व है। लेकिन, ध्यान रहे, पुण्य मे ही कोई मुक्त नही हो जायेगा। पुण्य तो पाप से मुक्त करेगा। एक घडी आती है, जब आदमी को पुण्य से भी मुक्त हो जाना पड़ता है; क्योंकि वह कितना भी हल्का करता हो, फिर भी थोडा तो भार उसमे होता ही है। तत्त्व है तो उसमें थोडा तो बोझ होता ही है। आपने कितना ही पतला कपडा पहन रखा हो, मलमल पहन रखी हो ढाका की, तो भी थोडा-सा बोझ तो उसमें है ही। उतना बोझ भी मोक्ष के लिए बाधा है।

तो महावीर कहते है, पहला पड़ाव है – पाप से मुक्ति, पाप के तत्त्वो से छुटकारा; और दूसरा पड़ाव है पुण्य मे मुक्ति का, और तीसरा पड़ाव नही है, मंजिल है आखिरी; क्योंकि वहाँ फिर कुछ भी नही बचता – जिससे छटना है।

'आस्रव' का अर्थ है – बुलाना, निमन्त्रण देना, आने देना। आप खुले होते हैं कुछ चीजो के प्रति। एक खूबसूरत स्त्री पास से निकलती है, तो आपके भीतर एक दरवाजा खुल जाता है। साथ में पत्नी हो तो बात अलग है। तो आप दरवाजे को पकडे रहते हैं, खुलने नही देते हैं। पत्नी न हो तो दरवाजा एकदम-से खुल जाता है।

'आस्रव' का अर्थ है – आपकी वृत्ति खुलने की, पाप की तरफ। जहाँ-जहाँ गलत है, वहाँ-वहाँ आप एकदम-से खुल जाते है। शराब की दुकान हो, भीतर कोई कहने लगता है, चलो।

'आस्रव' का अर्थ है, पाप की तरफ खुलने की वृत्ति। वह हमारे भीतर है। हम सब आस्रव में जी रहे है। यह हो सकता है कि सबके आस्रव की अपनी-अपनी शर्ते हो।

मैंने सुना है, एक साधु अपनी आजीविका के लिए एक छोटी-सी नाव चलाता था, इस किनारे से उस किनारे तक नदी के। एक दिन एक स्मगलर ने उससे कहा कि "यह सोने का इतना पाट है, इसको ले चल उस पार, मै सौ रुपये दूंगा।" साधु ने कहा कि "भूलकर ऐसी बात मत करना। मै किसी पाप में नही उतर सकता। मै सिर्फ आजीविका के लिए, दो पैसे कमाने के लिये नाव चलाता हूँ।"

स्मगलर नाव मे चढ आया। उसने कहा कि "मै हजार रुपये दूंगा।" साधु ने कहा कि "छोड, रुपयो की बात ही छोड। तू रुपयो से मुझे प्रलोभित न कर पायेगा।" स्मगलर ने कहा कि "मै तुझे दस हजार दूंगा।"

जैसे ही उसने कहा दस हजार दुगा, साधु ने उसे जोर से धक्का दिया और नीचे गिरा दिया। उस आदमी ने कहा, "तू सीधी तरह बात क्यो नही करता?" साधु ने कहा कि "तू बिलकुल मेरे करीब आया जा रहा है, मेरे आस्रव के करीब आया जा रहा है। दस हजार...! मेरा दरवाजा खुला जा रहा है। तू हट, भाग यहां से।"

हर एक की सीमा है। हम सबने सीमायें बाध रखी है। कोई पाँच रुपये पर प्रलोभित हो जाता है, कोई पचास रुपये पर, कोई पाँच सौ पर, कोई पचास लाख पर। पर इससे कोई फर्क नही पड़ता, क्योंकि मतलब इतना ही है कि आपके आस्रव का दरवाज़ा अपनी एक शर्त रखे हुए है। और जब भी आप बेचैन होते है, तो उसका मतलब है दरवाजा खुलने के करीब है। बहुत-सी स्त्रियो के पास से आप बिलकुल शान्त गुजर जाते है। उसका मतलब है कि उनकी स्थिति आपका दरवाजा खोलने के लिए काफी दस्तक नही है। जिस स्त्री के पास आप बेचैन होने लगते है, उसका अर्थ है कि दरवाजा खुलना चाहता है। बेचैनी का मतलब है कि भीतर अब कुछ खुलना चाहता है, और बाहर से भीतर कुछ प्रवेश करना चाहता है।

हम किस चीज़ के प्रति खुले है, इसका निरन्तर ध्यान रखना जरूरी है। अगर हम पाप के प्रति खुले है तो पाप इकठ्ठा होता चला जायेगा; अगर हम पुण्य के प्रति खुले है तो पुण्य इकठ्ठा होता चला जायेगा। जिस तरफ आप खुले है,

उसकी आप तलाश करते हैं। हर आदमी अपने ही आस्रव के लिए खोज कर रहा है। अगर आप चोर हैं, तो बहुत जल्दी आप चोरो से मिल-जुल जायेंगे; अगर आप धार्मिक हैं तो बहुत जल्दी आप धार्मिक लोगो की तलाश कर लेंगे; अगर आपके जीवन में साधुता की तरफ खुलाव है, तो आप किसी साधु को खोज लेंगे, सत्संग करने लगेंगे; अगर आप बेईमान हैं, तो आपके आस-पास बेईमान इकठ्ठे हो जायेंगे।

आप जो भी भीतर से है, आप उसी तरफ सरक रहे है। हर आदमी अपना जगत खोज लेता है। जरूरी नहीं कि आप महावीर के गाव में होते, तो महावीर के पास जाते। बहुत-से लोग नहीं गये। महावीर से कुछ लेना-देना नही मालूम पड़ा।

मैं एक मकान में रहता था आठ वर्ष तक। मेरे मकान के ऊपर ही एक प्रोफेसर रहते थे। आठ वर्ष! जब वे चलते थे, तो ठीक उनके पैर की आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी। नीचे हम बात करते थे, तो उसकी आवाज उन तक जाती होगी। लेकिन कभी नमस्कार भी होने का कोई सम्बन्ध नही बना। फिर उनका ट्रान्सफर हो गया। वे कही प्रिन्सिपल होकर चले गये। कोई दो वर्ष बाद मैं उनके कालेज में बोलने गया, नये गाव में। वे एकदम रोने लगे मुझे सुनकर। कहने लगे, "आठ वर्ष तक ठीक मैं आपके मकान के उपर...

... सम्बन्ध बनता है तब, जब भीतर कुछ खुलता हो। आप किस तरफ़ खुले है, इसे ध्यान रखना। महावीर आस्रव को एक तत्व कहते हैं – खुलेपन को। अगर आप पाप की तरफ खुले हैं, तो जीवन नीचे उतरता चला जायेगा। और लक्षण यह होगा कि आप भारी होते जायेंगे, दुखी होते जायेंगे, चिन्तित होते जायेंगे, विक्षिप्त होते चले जायेंगे; अगर आप पुण्य की तरफ खुले हैं, तो जीवन हल्का होता जायेगा, आप प्रफुल्लित होने लगेंगे, जीवन एक गीत बन जायेगा, अनजाने फूल खिलने लगेंगे और अनूठी सुगन्ध आपको घेर लेगी।

'संवर'. महावीर कहते है आस्रव है आने देना, संवर है रोकना। बाहर से भीतर आने देना एक बात है, और भीतर से बाहर जाने देना दूसरी बात है। बहुत-सी ऊर्जा आपकी निरन्तर बाहर जा रही है – अकारण सिर्फ अज्ञान में। उसे संवरित कर लेना, उसे रोक लेना – वह भी एक तत्त्व है।

... आप रास्ते पर चले जा रहे हैं। जो भी आस-पास विज्ञापन लगे है, पढ़ते जा रहे हैं – किसलिए? और जो भी आप पढ़ रहे हैं, वह आपको अछूता नहीं छोड़ेगा। वह आपके भीतर जा रहा है, तो आस्रव हो रहा है। कुछ भी कचरा भीतर जा रहा है। 'पनामा सरस सिगरेट छे'– उसको भी पढ़े जा रहे हैं।

उसको भीतर लिए जा रहे हैं। वह भरता जा रहा है। वह काम करेगा, क्योंकि आस्रव हो रहा है। और जब आप पढ़ रहे हैं, तो आपकी ऊर्जा बाहर जा रही है; आपकी चेतना बाहर जा रही है; आपकी शक्ति बाहर जा रही है।

छोटे-से कृत्य में भी शक्ति का अपव्यय हो रहा है। इसलिए महावीर कहते हैं कि जमीन पर चार कदम देखकर साधु चले। ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है, चार कदम काफी हैं। जब चार कदम चल लेंगे, तो आँखें चार कदम और देख लेंगी। जमीन पर देख कर चलें, कई कारणों से : जमीन पर जब आप देखकर चलते हैं, तो आप हैरान होंगे – आपकी आँखें थकेंगी नही। और कही भी आप देखकर चलेगे तो आपकी आँखें थकेगी। क्योंकि जमीन जीवन-दात्री है, उसमें से हम पैदा हुए हैं। शरीर भी एक वृक्ष है, जो जमीन से पैदा हुआ है। मिट्टी शरीर के कण-कण में है।

जब आप जमीन पर देखकर चलते है, तो जो ऊर्जा जमीन की ओर जाती है, वह वापस लौट आती है – द्विगुणित होकर वापिस लौट आती है। जब आप घास पर देख कर चलते हैं, तो ऊर्जा वापिस लौट आती है। आदमी के कृत्यों को देखकर मत चलें; और आदमी को मत देखें। आदमी से थोड़ा बचें। आदमी खतरनाक है। उसकी छोटी छोटी बात भी आपको बाहर ले जा रही है।

लेकिन हम ऊर्जा नष्ट करने में लगे हैं। हमें संवरित करने का ख्याल ही नही है। संवर का सुख हमें पता ही नहीं है। महावीर कहते हैं कि संवर का एक सुख है। शुद्ध ऊर्जा जब भीतर होती है, जब आप उसका कोई उपयोग नहीं करते, जब ऊर्जा सिर्फ होती है, तब ऊर्जा उबलती है, तब ऊर्जा नाचती है – जब ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो रहा है, तब सिर्फ शक्ति का शुद्ध आनन्द – संवर है। और जो व्यक्ति आस्रव से बचेगा और संविरत करने में लगेगा अपनी ऊर्जा को – वह शक्तिशाली होता चला जायेगा। उसके पास वीर्य होगा, उसके पास पुरुषार्थ होगा, उसके पास साहस होगा। अगर वह आदमी आपकी आँख में आँख डाल देगा, तो आपके भीतर कुछ हिल जायेगा। लेकिन आपकी आँख तो खर्च हो चुकी है। वह वैसे ही है, जैसे चला हुआ कारतूस होता है। उससे आप किसी को देखें भी, तो उसके भीतर कही कुछ नही होता।

. . . आप एक प्रयोग करें। सात दिन तक सिर्फ़ जमीन पर देखकर चलें और सात दिन बाद जब आप किसी की तरफ देखेंगे, तो आपको अनूठा अनुभव होगा। अगर आप सात दिन तक जमीन पर देखकर चलते रहें, और फिर सात दिन के बाद जो आदमी आपके आगे चल रहा हो, उसके सिर के पीछे दोनों आँखें गड़ाकर कहें कि 'पीछे लौटकर देख', तो वह आदमी उसी वक्त पीछे लौटकर देखेगा। क्योंकि अब आप के पास शक्ति है। हमेशा करने की जरूरत नहीं है,

एकाध ऐसा प्रयोग करके देख लेना, हमेशा करनेकी ज़रूरत नही है । क्योंकि उसमें भी शक्ति, नष्ट होती है।

अगर महावीर – जैसे व्यक्तियो के पास लोग जाकर सम्मोहित हो जाते है, तो ऐसा नही है कि महावीर उन्हें सम्मोहित कर रहे हैं । महावीर का क्या प्रयोजन हो सकता है ? लेकिन महावीर इतनी ऊर्जा से भरे है कि स्वभावत· उस विराट-ऊर्जा की तरफ लोग चुम्बक की तरह खिंचे चले जाते है । आपको भला लगता है कि आप सम्मोहित हो गये, हिप्नोटाइज हो गये, महावीर ने कुछ खीच लिया, लेकिन महावीर खीच नही रहे है । लेकिन सवरित ऊर्जा आकर्षित करती है, मैगनेटिक हो जाती है ।

'निर्जरा' और 'मोक्ष'।

निर्जरा महावीर का विशेष शब्द है – और बड़ा बहुमूल्य शब्द है । निर्जरा का अर्थ है . वे जो हमने जन्मो-जन्मो मे कर्म इकठ्ठे किये है, वे जो हमने जन्मो-जन्मो मे बध किये है – पाप किये है, पुण्य किये हैं – वे हमारे चारो तरफ वैसे इकठ्ठे हो गये है, जैसे कोई यात्री चले रास्ते पर और उसके वस्त्रों पर धूल इकठ्ठी हो जाए । अगर उन वस्त्रो मे धूल को झाड़ दें, तो उस धूल के झड़ जाने का नाम निर्जरा है ।

निर्जरा का अर्थ है, वह जो हमने जन्मो-जन्मो में इकठ्ठा किया है, वह सब झड जाये, हम फिर से खाली हो जायें, शून्य हो जाये । निर्जरा का अर्थ है, हमने जो सग्रह किया है, वह सब झड़ जाए । बड़े सूक्ष्म सग्रह है हमारे हमारा ज्ञान, हमारी स्मृति, हमारे कर्म, हमारे जन्मों-जन्मो के संस्कार, वे सब इकठ्ठे है । निर्जरा में वे गिरने शुरू हो जाते है । निर्जरा की प्रक्रिया ही महावीर का योग है, कि वे कैसे गिरें ?

आस्रव बदले । गलत के द्वार को खुला न रखे, शक्ति को व्यर्थ मत जाने दे; जब जरूरी हो तभी जाने दे, संवर करें। और भी बहुत इकठ्ठा है, पुराना इकठ्ठा है । नया इकठ्ठा होना बन्द हो जायेगा, अगर आस्रव और संवर का ध्यान रहे । लेकिन जो पुराना रखा है, उसके प्रति साक्षी का भाव रखें, उसे सिर्फ देखें, उसे शक्ति मत दें ।

एक आदमी आपको गाली देता है । जैसे ही वह गाली देता है, आपको भी गाली देने की इच्छा होती है । इस इच्छा को देखें; यह इच्छा पुरानी आदत है । यह पुराना सस्कार है । जब-जब आपको गाली दी गई है, आपने भी गाली दी है । यह सिर्फ उसकी लकीर है । इसे देखें, इसे काम मत करने दें । क्योंकि अगर आप गाली दे रहे है, तो आप ऊर्जा भी बाहर भेज रहे हैं । फिर नया सस्कार बन रहा है, फिर नया कर्म बन रहा है ।

महावीर एक जंगल में खड़े है। एक ग्वाला आया और उसने कहा कि 'मैं जरा जल्दी में हूँ, मेरी गायें यह बैठी हैं यहाँ, तुम जरा ध्यान रखना।' उस ग्वाले को यह पता नहीं है कि वे मौन में हैं। और उन्होंने सुना भी नहीं, उन्होंने 'हाँ-हूँ' कुछ भी नही कहा। ग्वाला जल्दी में था, जल्दी चला गया। साँझ को लौटकर जब वह आया, तो महावीर वही मौन खड़े थे। उन्होने 'हाँ-ना' कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने 'हाँ-ना' कहना तो बन्द कर दिया था। उन्होंने तो बाहर के सब सम्बन्ध शिथिल कर दिये थे, सब सेतु तोड़ डाले थे। गायें अपने-आप उठकर जंगल की तरफ चली गई थी। वह ग्वाला आया और उसने देखा कि गायें वहाँ नहीं हैं। उसने पूछा, "कहाँ है मेरी गायें ?" महावीर को चुपचाप खड़ा देखकर उसने समझा कि आदमी चालबाज है। बताता क्यों नहीं है कि मेरी गायें कहाँ है ? जब महावीर चुपचाप ही खड़े रहे, तो उसने सोचा कि 'हो सकता है, यह आदमी पागल हो ! किस तरह का आदमी है ? न आँख खोलता है, न बोलता है ! मैंने गलत आदमी से कह दिया।' तो वह गया जंगल में अपनी गायो को खोजने। वह जब गायो को जंगल में खोज रहा था, तब गायें जगल से चर कर साँझ हो जाने के कारण वापिस लौट आईं थीं। जब वह आदमी लौटकर आया, तो उसने देखा कि गायें महावीर के पास इकठ्ठी है। उसने सोचा कि 'यह आदमी तो गायो को लेकर भागने का इरादा रखता है। इसने पहले गायें छिपा दी थी और अब गायें निकाल ली हैं। अब अन्धेरा हुआ, अब यह गायें लेकर भाग जाता।' तो उसने उनकी अच्छी पिटाई की। और उनको बोलते-सुनते न देखकर उसने कहा, "क्या तुम बहरे हो ?" और उसे इतना गुस्सा आया कि उसने दो लकड़ियाँ उठाकर उनके कान में ठोक दी। महावीर सब देखते रहे। वह आदमी चला गया।

बड़ी प्यारी कथा है कि इन्द्र को पीड़ा हुई। शुभ को पीड़ा होगी ही, इतना ही मतलब है। दिव्य जो है, उसको पीड़ा होगी ही, किसी को अकारण सताये जाने पर। तो कथा है कि इन्द्र आया, और उसने महावीर के अन्तस्तल में, क्योंकि ऊपर से तो वे चुप थे, कहा कि 'दुख होता है, अकारण आपको सताया गया।' महावीर ने भीतर कहा कि 'अकारण कुछ भी नहीं होता है, मैंने कभी-न-कभी कुछ किया होगा, यह उसका फल है। अच्छा हुआ, निर्जरा हो गई; एक सम्बन्ध छूटा, एक झंझट मिटी। उस आदमी को जो करना था, वह कर गया।' इन्द्र ने कहा कि 'हमें कुछ कहें, हम कुछ इन्तजाम करें, कोई प्रतिबन्ध करें।' तो महावीर ने कहा, 'तुम कुछ मत करो। क्योंकि मैं तुमसे कुछ भी करने को कहूँ, तो वह कहना एक नया बंध हो जाएगा — एक नया कर्म। फिर मुझे उससे भी निबटना पड़ेगा। तुम मुझे छोड़ो। पुराना लेन-देन चुक जाये, इतना काफी है। मुझे कोई नया लेन-देन शुरू नहीं करना है; मैं व्यापार सिकोड़ रहा हूँ, समेट रहा हूँ।

निर्जरा का अर्थ है : वह जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाये । जब कोई गाली दे, तो उसे देख लेना । ताकि जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाये । धीरे-धीरे एक क्षण आता है, जब सब संस्कार झर जाते हैं । ऐसी निर्जरा की अवस्था के पूरे होने पर जो बच रहता है वह मोक्ष है, वह मुक्त अवस्था है – जहाँ चेतना पर कोई भी बन्धन नहीं, कोई भी बोझ नहीं, कोई कन्डीशनिंग नहीं, कोई संस्कार नहीं ।

'ये नौ सत्य तत्व हैं । ऐसे सत्य तत्त्वों के सम्बन्ध में सद्‌गुरु के उपदेश से या स्वयं अपने ही भाव से श्रद्धान करना (श्रद्धा करना) सम्यकत्व कहा गया है ।'

सम्यकत्व का अर्थ है : समसंतुलित हो जाना – टोटली बलेंसड । यह घटना दो तरह से घट सकती है : सद्‌गुरु के उपदेश से, या अपने ही प्रयास से ।

सद्‌गुरु के उपदेश का क्या अर्थ है ? सद्‌गुरु का मतलब है कि जिसने स्वयं जाना हो । पंडित के उपदेश से यह घटना नहीं घट सकती । जिसने स्वयं जाना हो, उसके उपदेश से घट सकती है। लेकिन सद्‌गुरु के उपदेश से भी नहीं घटेगी, अगर आप उपदेश लें ही न, अगर कुछ आपमें प्रवेश ही न करे । तो वर्षा के पानी की तरह आपके शरीर पर गिर कर उपदेश विदा हो जायगा, धूल में खो जायेगा ।

वर्षा का पानी गिरता है । अगर आप उसे आकाश से सीधे ही ले ले अपने मुँह में, तो वह शुद्ध होता है । और अगर जमीन पर गिर जाए, तो अशुद्ध हो जाता है। पंडितो से सुनना, जमीन पर गिरे हुए पानी को इकठ्ठा करना है; और महावीर जैसे व्यक्ति से सुनना, सीधे आकाश से गिरी शुद्ध बूँद को मुँह में ले लेना है ।

सद्‌गुरु का अर्थ है : जिसने स्वयं जाना है, जो दूसरो के जाने हुए को नहीं कह रहा है; जिसकी अपनी प्रतीति, अपना दर्शन है; जिसका अपना साक्षात्कार है – उसके उपदेश से यह घटना घटती है । लेकिन उसके उपदेश को लेने की तैयारी हो, मन खुला हो, हृदय के द्वार उन्मुक्त हों, तो ही श्रद्धा घटित होती है । सुनकर ही घटित हो जाती है, अगर सुननेवाला तैयार हो । इसलिए महावीर ने सुननेवालो को अलग ही नाम दिया । उन्होंने सुननेवालो को 'श्रावक' कहा है ।

सभी सुननेवाले श्रावक नहीं होते हैं । यहाँ इतने लोग सुन रहे हैं, सभी श्रावक नहीं हैं । जो श्रावक है, वह सुनकर ही श्रद्धा को उपलब्ध हो जाएगा । श्रावक का अर्थ है : जो इतना हार्दिक रूप से सुन रहा है, इतनी सहानुभूति से सुन रहा है, इतने प्रेम से सुन रहा है कि उसके भीतर कोई भी विरोध, कोई रेजिस्टेन्स नहीं है, कोई बचाव नहीं है । वह सब तरह से बह जाने को राजी है । गुरु जहाँ ले जाये उस धारा में बह जाने को राजी है । गुरु चाहे मौत में ही क्यों न ले जाये, तो भी वह जाने को राजी है। ऐसे सरल भाव से सुनी गई बात से श्रद्धा का जन्म होता है । और या फिर अपने ही प्रयास से ।

सौ में से एक व्यक्ति अपने प्रयास से भी कर सकता है। लेकिन उसका अपना प्रयास भी इसलिए सफल होता है कि पिछले जन्मों में सद्गुरु के पास उसने कुछ जाना है; उसे कुछ झलक मिल गई है, कोई सम्पर्क मिल चुका है।

जैसे जन्म अपने ही द्वारा नहीं मिलता, माँ-बाप से मिलता है; वैसे ही श्रद्धा भी वस्तुतः अपने ही द्वारा नहीं मिलती, वह भी सद्गुरु से ही मिलती है। कोई आदमी जैसे अपने को ही जन्म देने की कोशिश करे कि मैं अपना ही माँ-बाप भी बन जाऊँ, तो बहुत मुसीबत होगी, बहुत झंझट होगी। शायद यह हो भी नहीं सकता है। वैसे ही ज्ञान का जन्म भी, जहाँ ज्ञान घटा हो, उस आदमी के निकट आसानी से हो जाता है।

यह इसलिए नहीं कि गुरु आपको ज्ञान दे देता है। ज्ञान कुछ दी जानेवाली चीज नहीं है। पर गुरु कैटेलिटिक एजेन्ट है, गुरु उत्प्रेरक तत्त्व है। उसकी मौजूदगी में घटना घट जाती है। घटना तो आपके भीतर ही घटती है, घटना आपसे ही घटती है, पर उसकी मौजूदगी आपको हिम्मत और साहस दे देती है। उसकी मौजूदगी में आप निर्दोष हो पाते हैं। उसकी मौजूदगी में उसका संगीत आपको शान्त कर पाता है। उसकी उपस्थिति आपको उठा लेती है उन ऊँचाइयों पर, जिन पर आप अपने ही बल नहीं उठ सकते। उन ऊँचाइयों पर सत्य का दर्शन हो जाता है। उस सत्य के दर्शन की स्थिति को 'सम्यकत्व' कहा है।

ऐसा व्यक्ति संतुलित हो जाता है, सम्यक् हो जाता है। और जो व्यक्ति सम्यकत्व को उपलब्ध हो गया, उसके जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई हट गई; दिशा बदल गई, यात्रा का रुख बदल गया। संसार की तरफ उसने पीठ कर ली, और मोक्ष की तरफ उसका मुँह हो गया।

आज इतना ही।

लोकतत्त्व-सूत्र : ३

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, बम्बई : दिनांक २७ अगस्त, १९७३.

नाणेण जाणइ भावे,
दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ,
तवेण परिसुज्झइ ।।

नाणं च दसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता,
जीवा गच्छंति सोग्गइं ।।

मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारित्र्य से भोग-वासनाओं का निग्रह करता है, और तप से कर्ममलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप – इस चतुष्टय अध्यात्ममार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सद्गति पाते हैं।

ज्ञान का कोई शिक्षण सम्भव नही है। शिक्षण सूचनाओं का हो सकता है। ज्ञान का उद्भावन होता है, आविर्भाव होता है। ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नही है, जो बाहर से भीतर डाली जा सके। ज्ञान जीवन की उस धारा का नाम है, जो भीतर से बाहर की ओर आती है। सूचनाए बाहर से भीतर की ओर आती हैं, ज्ञान भीतर से बाहर की ओर आता है। इसलिए कोई विद्यालय, कोई विद्यापीठ ज्ञान नहीं दे सकता; सूचनाए दे सकता है, इनफॉरमेशन्स दे सकता है। कोई शास्त्र, कोई गुरु ज्ञान नहीं दे सकता, सूचनाएं दे सकता है। जो भी दिया जा सकता है, वह ज्ञान नहीं होगा — इस मौलिक बात को ठीक से ख्याल में ले लें।

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। उसे लेकर ही आप पैदा हुए हैं। जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो, ऐसे ज्ञान आप में छिपा है। इसलिए ज्ञान को पाने के लिए कुछ और नही करना, सिर्फ बीज को तोडना है। बीज मिट्टी में खो जाए, मिट जाये, तो ज्ञान का अंकुरण शुरू हो जायेगा।

ज्ञान को हम लेकर ही पैदा होते हैं। ज्ञान हमारे होने की आन्तरिक स्थिति है। जो बीज की खोल है, वह बाधा है। इसलिए ज्ञान को पाने की प्रक्रिया नकारात्मक है, निगेटिव है। कुछ तोडना है, कुछ पाना नहीं है; कुछ मिटाना है, कुछ बनाना नही है; कुछ गिराना है, निर्मित नहीं करना है। अस्मिता टूट जाये, 'मैं' का भाव छूट जाए, तो ज्ञान का जन्म हो जाता है।

महावीर ने कहा है: अहंकार के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नही। और जिस ज्ञान को हम बाहर से भीतर की तरफ ले जाते हैं, वह भी हमारे अहंकार को ही मजबूत करता है। अहंकार टूटना चाहिये, उल्टा मजबूत होता है। जितना हम जानने लगते हैं, जितना हमें ख़याल आता है कि मैं जान गया, उतना ही 'मैं' मजबूत हो जाता है। जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमारे अहंकार का भोजन बन जाता है। महावीर जिसे ज्ञान कहते हैं, वह अहंकार की मृत्यु पर घटित होता है — इस फ़र्क़ को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। और हमारे 'मैं' कि कोई सीमा नही है। हम कहते हैं कि 'परमात्मा असीम है', हम कहते हैं कि 'आत्मा असीम है', हम कहते हैं, 'सत्य असीम है', लेकिन वे सब सुने हुए शब्द हैं। हमारी अपनी अनुभव की तो बात इतनी है कि 'अहंकार असीम है।' और अहंकार असत्य है।

मैंने सुना है, जनरल दीगॉल एक रात अपने बिस्तर पर सोये हैं। मैडम दीगॉल ने आधी रात कहा — "माई गॉड, इट इज सो कोल्ड — हे भगवान, रात बहुत सर्द

है।" दीगॉल ने करवट बदली और कहा – " मैडम, इन बेड यू कैन कॉल मी चार्ल्स – बिस्तर में तुम मुझे चार्ल्स कहकर बुला सकती हो।"

पत्नी कह रही है – ' हे भगवान, रात बड़ी सर्द है ', और दीगॉल ने समझा कि ' हे भगवान ' पत्नी उनसे कह रही है !

अहंकार असीम है।

मैंने सुना है यह भी कि जनरल दीगॉल ने एक बार अमरीका के प्रेसिडेन्ट जॉन्सन को कहा कि फ्रान्स को बचाने के लिए परमात्मा से मुझे सीधे आदेश प्राप्त हुए थे : " आई रिसीव्ड डाइरेक्ट आर्डर फ्रॉम दी डिवाइन टू सेव फ्रान्स।" जॉन्सन ने कहा, " स्ट्रैंज, बिकाज़ आई डोन्ट रिमेम्बर टू हैव गिवेन एनी ऑर्डर्स टू यू ! मैंने कभी कोई आज्ञाएं तुम्हें भेजी नही !

हर आदमी अपने अहंकार में बड़ा विस्तीर्ण है, बड़ा असीम है। एक ही असीम तत्व हम जानते हैं – वह है ' अस्मिता ', वह है ' अहंकार'– और उससे बड़ा झूठ कुछ भी नही है; क्योंकि मनुष्य के होने की जो शुद्धता है, वहाँ ' मैं ' का कभी कोई अनुभव नहीं होता। जितना अशुद्ध होता है मनुष्य, उतना ही ' मैं ' का अनुभव होता है। जैसे-जैसे शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे ' मैं ' तिरोहित होता चला जाता है। परम शुद्धि की अवस्था में ' मैं ' बिलकुल भी नही बचता। जैसे सोने से कचरा जल जाता है अग्नि में, वैसा ही जीवन से अहंकार जल जाता है। अहंकार की खोल है बीज के चारों तरफ, अंकुर भीतर छिपा है।

इसका यह मतलब नही कि अहकार व्यर्थ ही है; बीज की खोल भी सार्थक है। क्योंकि वह जो भीतर अंकुर छिपा है – वह, अगर बीज की खोल न हो तो हो भी नही सकता। इसलिए बीज की खोल जरूरी है एक सीमा तक – क्योंकि रक्षा करती है, बचाती है। लेकिन एक सीमा तक जो रक्षा करती है, वही फिर बाधा बन जाती है। फिर अगर खोल इन्कार कर दे टूटने से, मिटने से, तो भी बीज मर जायेगा।

तो अहंकार बिलकुल जरूरी है जीवन के बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए। जो बच्चा बिना अहंकार के पैदा हो जाये, वह बच नहीं सकेगा, क्योंकि जीवन संघर्ष है। उस सघर्ष में ' मैं ' का भाव चाहिये। अगर ' मैं ' का कोई भाव न हो तो वह मिट जायेगा। उसे दूसरे ' मैं ' मिटा देंगे। उसे ' मैं ' चाहिये – यह प्राथमिक जरूरत है। लेकिन एक सीमा पर यह ' मैं ' इतना मजबूत हो जाये, कि जब इसे छोड़ने का क्षण आए तब भी हम इसे छोड़ न सकें, तो खतरा हो गया। फिर जो सीढ़ी थी, वह बाधा बन जायेगी। फिर जिसका सहारा लिया था, वह गुलामी हो गई।

अहंकार जरूरी है प्राथमिक चरण में, और अन्तिम चरण में टूट जाना जरूरी है। इसलिए जैसे ही बच्चा पैदा हो, हम उसे अहंकार सिखाना शुरू करते हैं। लेकिन अगर कोई मरते वक्त भी अहंकार में मर जाये, तो बीज खोल में ही मर गया, अंकुरित नही हो पाया; न उसने आकाश जाना मुक्त, न सूर्य का प्रकाश जाना। वह अंकुर छिपा-छिपा अन्धेरे में ही मर गया। अवसर खो गया।

जन्म के साथ तो अहंकार जरूरी है, और मृत्यु के पहले अहंकार का खो जाना जरूरी है। और जिस व्यक्ति का अहंकार मृत्यु के पहले खो जाता है, उस की मृत्यु, महावीर कहते है, मोक्ष बन जाती है।

मरते हम सब है। लेकिन, अगर अहंकार के साथ मरते है तो नये जीवन में फिर प्रवेश करना होगा, क्योकि जीवन से अभी परिचय नही हो पाया। फिर नया जीवन – ताकि जीवन से हम परिचित हो सके। अगर अहंकार के साथ ही ही हम मर गये, खोल के साथ ही मर गये तो फिर हमें बीज में ही जन्म लेना पड़ेगा। अगर खोल टूट गई और खुला आकाश मोक्ष का, मुक्ति का हमें अनुभव हो गया, और जीवन खोल से मुक्त होकर आकाश की तरफ उड़ने लगा, तो फिर दूसरे जन्म की कोई जरूरत न रह जायेगी। शिक्षण पूरा हो गया; अवसर का लाभ उठा लिया गया; जो हम हो सकते थे – हो गये; जो होना हमारी नियति थी, वह पूर्ण हो गई; अर्थ, अभिप्राय, सिद्धि उपलब्ध हो गई। फिर दूसरे जन्म की कोई भी जरूरत नही।

अहकार मर जाये मृत्यु के पहले, तो मोक्ष उपलब्ध हो जाता है।

अब हम सूत्र को ले।

महावीर कहते है – 'मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है।'

दो बातें एक तो 'मुमुक्षु-आत्मा' को समझ लेना जरूरी है। दो तरह के लोग है · एक जो कोरी जिज्ञासा करते रहते हैं। उस जिज्ञासा के पीछे कोई प्राण नही होता। वे कुछ करना नही चाहते, वे सिर्फ़ पूछते रहते हैं। पूछकर जान भी लें तो उनके जीवन में कोई अन्तर नहीं आता, सिर्फ़ जानकारी बढ़ जाती है। वे जो भी इकट्ठा करते हैं, स्मृति में इकट्ठा करते हैं। उनका जीवन उससे रूपान्तरित नही होता। ऐसी आत्माओं को महावीर ने जिज्ञासु आत्माएँ कहा है।

जिज्ञासा शुभ है, बुरी नही है। लेकिन सिर्फ़ जिज्ञासा आत्मघातक है। एक आदमी पूछता ही रहे, पूछता ही रहे... और इकट्ठा करता रहे जन्मों-जन्मों तक, तो भी कोई रूपान्तरण नहीं होगा। आनन्द का कोई अनुभव जानकारी इकठ्ठी करने से नहीं होता। जानकारी से सिर्फ़ इतना ही हो सकता है कि वह आदमी जानकारी के अहंकार से और भी मूर्च्छित हो जाये। इसलिए पंडित

अज्ञानियों से भी ज्यादा गहन अन्धकार में भटक जाते है । ज्ञान का अहंकार, इस जगत में बड़े-से-बड़ा अहंकार है; धन का अहंकार भी उतना बड़ा नहीं है । इसलिए ज्ञान का अहंकार बचाने के लिए आदमी धन भी छोड़ सकता है, यश भी छोड़ सकता है, पद भी छोड सकता है । सब छोड़ सकता है, लेकिन ज्ञान का अहंकार अगर बच जाये तो ।

इस मुल्क में ब्राह्मणो के साथ वैसा हुआ है । ब्राह्मण के पास न तो धन था, न पद था, लेकिन सम्राट भी उसके पैर छूते थे । ज्ञान का अहंकार मजबूत था । धनी भी उसके पैर छूते थे । धनी भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने निर्धन हैं, और सम्राट भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने शक्तिहीन है । तो ब्राह्मण गरीब रहकर भी प्रसन्न था; दीन रहकर भी प्रसन्न था, झोपड़े में रहकर भी प्रसन्न था । इसलिए भारत में कोई क्रान्ति नही हो सकी । क्योकि क्रान्ति हमेशा ब्राह्मणो के द्वारा होती है । भारत के ब्राह्मण बड़े सन्तुष्ट थे । क्रान्ति का कोई उपाय नही था । शूद्र क्रान्ति नही करते, क्योंकि क्रान्ति का खयाल ही उनको आता है, जिनके पास बड़ी बौद्धिक बेचैनी होती है ।

मार्क्स ब्राह्मण है, लेनिन ब्राह्मण है, ट्राटस्की ब्राह्मण है, माओ ब्राह्मण है । ये सब इन्टलेक्चुअल्स है । ये सब बुद्धिवादी लोग है । भारत में माओ और मार्क्स, लेनिन और ट्राटस्की पैदा नही हो सके, क्योंकि भारत का सम्राट और धनी भी ब्राह्मण के चरण छू रहा था । व्यवस्था इतनी प्रीतिकर थी, ब्राह्मण के अहकार की इतनी पोषक थी कि क्रान्ति का कोई सवाल ही नही था । रूस में भी अब क्रान्ति होनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो भारत ने किया था वही अब रूस भी कर रहा है । रूस में बुद्धिजीवी का बहुत आदर है । यूनीवर्सिटि का प्रोफेसर, लेखक, कवि, संगीतज्ञ परम आदृत है । उसके आदर में कोई कमी नहीं है । और जब तक वह आदृत है, तब तक कोई उपद्रव नही हो सकता ।

ज्ञान का अहंकार सूक्ष्मतम है । और महावीर के हिसाब से जिज्ञासा, मात्र कोरी जिज्ञासा, सिर्फ आपको अहंकार से भर देगी । इसलिये मुमुक्षा चाहिए । जिज्ञासा काफी नही है । मुमुक्षा का अर्थ है कि में जानने में उत्सुक नहीं हूँ । और अगर मैं जानना भी चाहता हूँ, तो अपने को रूपान्तरित करने के लिए जानना चाहता हूँ । जानना मेरे लिए उपाय है, लक्ष्य नहीं । जानकर ही मै राजी न हो जाऊँगा, जानकर मैं अपने को बदलना चाहूँगा । जीवन में मुझे रूपान्तरण करना है, वह मेरा लक्ष्य है । जीवन में मुझे शुद्धि लानी है, मुक्ति लानी है, वह मेरा लक्ष्य है । जीवन में कही कोई कलुष न रह जाये, कोई कषाय न रह जाये, जीवन में कोई बन्धन न रह जाये, जीवन में कुछ दुख का कांटा न रह जाये, वह मेरा लक्ष्य है । मैं जानना चाहता हूँ तो सिर्फ इसलिए जानना चाहता हूँ कि कैसे मेरे जीवन में

रूपान्तरण हो सके। जिज्ञासु के लिए ज्ञान साध्य है – मुमुक्षु के लिए ज्ञान साधन है, मुक्ति लक्ष्य है।

यहाँ बुद्ध का उल्लेख कीमती है। बुद्ध निरन्तर कहते थे – एक आदमी को तीर लगा और वह गिर पड़ा। गाँव के लोग इकठ्ठे हो गये। वे उसका तीर खींचना चाहते हैं। बुद्ध भी उस गाँव से गुजरते थे। वे भी वहाँ पहुँच गये। लेकिन वह आदमी कहता है, "तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाये कि तीर किसने मारा? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाए कि तीर किस दिशा से आया? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाये कि तीर विषाक्त है या नही?" बुद्ध ने कहा, "पागल, तीर को पहले निकल जाने दे, फिर तू सब जिज्ञासाएँ कर लेना। क्योंकि तेरी जिज्ञासाएँ इतनी लम्बी हैं कि अगर उन को तृप्त करने की कोशिश की जाए तो हो सकता है, इसके पहले कि तेरी जिज्ञासाएँ पूरी हों, तेरे जीवन का दिया बुझ जाए ।"

फिर तो बुद्ध ने इस घटना को आधार बना लिया। फिर तो वे लोगो से कहते थे – 'मत पूछो कि ईश्वर क्या है? मत पूछो कि आत्मा क्या है? सिर्फ इतना ही पूछो कि दुख से कैसे निवृत्ति हो, तीर से कैसे छुटकारा हो?' जीवन बिंधा है तीरों से, जीवन जल रहा है प्रतिपल, और हम जिज्ञासाएँ कर रहे है बचकानी! परमात्मा की बातें बड़ी तात्त्विक लगती हैं, लेकिन बुद्ध कहते हैं, जरा भी तात्त्विक नही है। तत्त्व की बात तो इतनी है कि तुम दुखी हो। तुम क्यो दुखी हो, और कैसे दुख का निवारण हो जाये, तुम इतना ही पूछो। तत्त्व की बात तो इतनी है कि तुम कारागृह में पड़े हो। तुम इतना ही पूछो कि कहाँ है द्वार, कहाँ है चाबी, कि तुम कारागृह के बाहर हो जाओ। कैसे जीवन मुक्त हो सके उस उपद्रव से, जिसमें हम घिरे हैं, जिस पीडा और सताप में हम पड़े हैं, कैसे इस अन्धेरे से जीवन प्रकाश में आ सके, वही बात तात्त्विक है।

तो मुमुक्षु और जिज्ञासु में एक बुनियादी फ़र्क़ है, और फ़र्क़ कीमती है। क्योंकि जिज्ञासा के रास्ते पर अगर कोई चलता रहे तो दर्शन में प्रवेश कर जायेगा – फिलॉसफी मे। अगर मुमुक्षा के रास्ते पर कोई चले तो धर्म में प्रवेश करेगा, फिलॉसफी में नहीं। धर्म बहुत व्यावहारिक है, वास्तविक है, वैज्ञानिक है। व्यर्थ की बकवास से धर्म का कोई सम्बन्ध नही है।

...तो मुमुक्षा होनी चाहिये। आपके प्रश्न बुद्धि से न उठें, जीवन के अनुभव से उठें, तो मुमुक्षा बन जाते हैं। कोई मेरे पास आता है, वह पूछता है, 'ईश्वर है या नहीं?' मैं पूछता हूँ कि 'तुम्हारे जीवन के किस अनुभव से यह प्रश्न उठ रहा है। अगर ईश्वर है तो तुम क्या करोगे, अगर नहीं है तो तुम क्या करोगे?' वह आदमी कहता है, 'मैं बस जानना चाहता हूँ – है या नही।'

हो, तो भी यह आदमी ऐसा ही रहेगा, जैसा है। नहीं हो तो भी यह ऐसा ही रहेगा, जैसा है।

क्या फ़र्क़ पड़ता है, एक आदमी जैन दर्शन में विश्वास करता है, एक आदमी हिंदू दर्शन में विश्वास करता है; एक आदमी इस्लाम में विश्वास करता है, एक आदमी ईसाईयत में विश्वास करता है? इनके दर्शन अलग-अलग हैं, फिलॉस्फीज अलग-अलग हैं, लेकिन ये आदमी बिलकुल एक-जैसे हैं। किसी को भी गाली दो, वह क्रोध करेगा — भला ईश्वर हो उसके दर्शन में या न हो, भला वह मानता हो कि आत्मा बचती है मृत्यु के बाद या न मानता हो, भला वह मानता हो कि पुनर्जन्म होता है या न मानता हो। एक गाली से परीक्षा हो जायेगी कि ये चारों आदमी एक-जैसे हैं।

...क्या फ़र्क़ है हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन में...?

...फ़र्क़ बातचीत में होगा, अन्तस्तल में ज़रा भी फर्क नहीं है। आदमी को भीतर खोदो, बिलकुल एक-जैसा है। बस, ऊपर चमड़ी-चमड़ी के फ़र्क़ हैं।

मुमुक्षा का अर्थ है कि जो मैं जानना चाहता हूँ, उससे मैं जीवन को बदलने का काम लूँगा; वह मेरे लिए एक उपकरण होगा, उससे मैं नया आदमी बनूँगा। अन्यथा ज्ञान भी मूर्छा बन जायेगा, शराब की तरह हो जायेगा। बहुत लोग ज्ञान का उपयोग शराब की तरह ही करते हैं। उसमें अपने को भुलाये रखते हैं। शराब का मतलब ही इतना है, जिसमें हम अपने को भुला सकें, और जिसमें भुलाकर अकड़ पैदा हो जाये। तो पंडितों की अकड़ आप देखते हैं! ब्राह्मण जैसी अकड़ दुनियाँ में कहीं भी देखी नहीं जा सकती। और अकड़ इतनी स्वाभाविक हो गई है, खून में मिल गई है कि उसे पता भी नहीं चलता कि अकड़ है।

जितने हम मूर्छित होते हैं, उतना अहंकार मजबूत होता है।

सुना है मैंने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन गया शराब घर में। एक गिलास शराब उसने बुलाई, लोग चकित हुए देखकर कि वह क्या कर रहा है। थोड़ी-सी शराब उसने अपने कोट के खीसे में डाली और बाकी पी गया। फिर दूसरा गिलास... तब लोग और चौंककर देखने लगे कि वह क्या कर रहा है। फिर उसने थोड़ी-सी शराब खीसे में डाली गिलास से और बाकी पी गया।

...ऐसे पाँच गिलास!... और हर बार...

सभी उत्सुक हो गये कि वह कर क्या रहा है? पाँच गिलास पी जाने के बाद उसकी रीढ़ सीधी हो गई और अकड़ के खड़े होकर उसने कहा, "नाऊ आई केन डिफीट एनी बॉडी इन दिस प्लेस — अब किसी को भी मैं चारों खाने चित्त कर सकता हूँ, कोई है?"

दुबला-पतला नसरुद्दीन, किसी को भी चित्त वह कर नहीं सकता। लेकिन बेहोशी अहंकार को मजबूत कर देती है। और तभी चमत्कार की घटना घटी कि उसके खीसे से एक चूहा बाहर निकला, और उसने कहा, "दि सेम गोज फॉर एनी रॉटेन कैट टू – कोई भी सड़ी बिल्ली हो, उसके लिए भी यही चुनौती है।"

आदमी ही नहीं, चूहा भी, होश में हो तो बिल्ली से डरता है। क्योंकि अपनी अवस्था जानता है। बेहोश हो जाये, तो बिल्ली को भी चुनौती देता है।

अहंकार मूर्छा के साथ घना होता है, जागृति के साथ पिघलता है। जितना जागा हुआ व्यक्ति होगा, उतना निरहंकारी हो जायेगा; जितना सोया हुआ व्यक्ति होगा, उतना अहंकार से भर जायेगा।

मुमुक्षु की खोज अहंकार को भरने की नहीं है। ज्ञान उसके लिए शराब नही है, ज्ञान उसके लिए जीवन रूपान्तरण की प्रक्रिया है। वह उतना ही जानना चाहेगा, जितने से जीवन बदल जाये। वह उतने में ही उत्सुक होगा, जिसको व्यवहार में लाया जा सके।

. . इसलिए महावीर कहते हैं, मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से तत्त्वों को जानता है। जिन तत्त्वो की हमने बात की : छह महातत्त्व, फिर नौ तत्त्व, मुमुक्षु-आत्मा इन तत्त्वों को समझने की कोशिश करता है। सिर्फ इसलिए कि इनके द्वारा कैसे मैं अपने जीवन को नया कर सकूं, कैसे मेरा नया जन्म हो सके?

यह ध्यान में बना रहे, तो ज्ञान आपके लिए मूर्छा नहीं बनेगा, मुक्ति बन जायेगा। अगर यह ध्यान से उतर जाये, तो आप ज्ञान का अम्बार लगाये जा सकते हैं, जैसे कोई धन का अम्बार लगाता है। फिर तिजोरी जैसे बड़ी होने लगती है, उस आदमी की अकड़ वैसे बढ़ने लगती है। आपका ज्ञान बढ़ने लगेगा, आपकी अकड़ बढ़ने लगेगी।

ज्ञान अकड़ न बने यह ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए हमने इस देश में ज्ञान का मौलिक लक्षण किया कि जिससे विनम्रता बढ़ती जाये, वही ज्ञान है। नहीं तो उसे ज्ञान कहना व्यर्थ है; वह ज्ञान के नाम पर शराब है। और जब कोई व्यक्ति मुमुक्षा की दृष्टि से, अपने को बदलने की दृष्टि से ज्ञान की खोज करता है तो शीघ्र ही उसे दर्शन होना शुरू हो जाता है। उसे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। वह जो-जो अनुभव करता है, जो-जो समझता है, जिस-जिस बात की अन्डरस्टैन्डिंग पैदा हो जाती है – वह-वह उसकी प्रतीति भी बनने लगती है। होना भी यही चाहिये। क्योंकि जिस बात को मैं ठीक-से समझ लूं, वह मेरे अनुभव में आ जानी चाहिये।

आपने कितनी बार सुना है कि 'क्रोध पाप है, क्रोध बुरा है, क्रोध जहर है, क्रोध पागलपन है।' यह आपने सुना है, लेकिन यह आपका दर्शन नहीं बन पाया। क्योंकि क्रोध तो आप किये ही चले जाते हैं। यह सुना है, यह ज्ञान नही बन गया। अगर दूसरे को समझाना हो, तो आप समझा सकते हैं। पांडित्य दूसरे के लिए है, अपने लिए नही। आप तो अभी भी क्रोध किये चले जायेंगे। तो यह समझ दर्शन नही बन पायेगी, क्योंकि यह समझ ही नहीं है। सिर्फ कचरे की तरह आपने मस्तिष्क में शब्द भर लिए हैं। उनको आप दोहरा सकते हैं ग्रामोफोन के रिकॉर्ड की तरह, लेकिन आपका अन्तस्तल बिलकुल अछूता है।

अगर सच में ही आपने अनुभव किया हो कि 'क्रोध जहर है।' वह आपकी प्रतीति और आपका ज्ञान बना हो; आपने जीवन के अनुभव में परखा हो और निरीक्षण किया हो। क्रोध करके देखा हो; आँख बन्द करके ध्यान किया हो कि क्रोध का जहर फैल रहा है शरीर में, मन में धुआँ उठ रहा है। मैं उसी हालत में हूँ जिसमें मैं पहले था, या कि बेहोश हूँ? मेरा मन धुंधला है या प्रखर और साफ है? मेरे भीतर धुआँ घिर गया है, सब चीजें अस्त-व्यस्त हो गई हैं — या चीजें सम्यक् रूप से अपनी जगह पर हैं और मैं सुव्यवस्थित हूँ? मैं सम्यक् हूँ या असम्यक् हो गया हूँ? अगर इसकी प्रतीति हो जाये, तो दर्शन शुरू हो जाता है। तब आप ऐसा नही कहेंगे कि शास्त्र कहते हैं कि 'क्रोध जहर है।' तब आप कहेंगे कि मैं जानता हूँ कि क्रोध जहर है। और जिस क्षण आप जानते हैं कि क्रोध जहर है, उसी क्षण क्रोध करना असम्भव होने लगता है। क्योंकि कौन जहर को जानकर पीता है? कौन पत्थर को पत्थर जानकर रोटी की तरह खाता है?

ज्ञान क्रान्ति बन जाता है। लेकिन ज्ञान तभी क्रान्ति बनता है, जब समझ दर्शन में रूपान्तरित होने लगे। तो जो सुना है सद्गुरु से, (जैसा महावीर ने कहा है कि सद्गुरु के उपदेश से) जिस व्यक्ति में आपको लगा है कि कोई क्रान्ति घटी है, उससे जो सुना है, उसे अपने जीवन के अनुभव के साथ जोड़ने का नाम 'साधना' है।

सुना, और वह सुना हुआ ही रह गया, कान का हिस्सा बनकर रह गया, तो व्यर्थ चला गया। व्यर्थ ही नहीं चला गया, हानिकर भी हो गया। क्योकि अब आप बकवासी हो जायेंगे, आप उस सुने हुए को बोलने लगेंगे, आप उसे दूसरो से कहने लगेंगे।

हमारी हालत ऐसी ही है, जैसे कोई हमें बताए कि यहाँ हीरे की खदान है और हम चले जाएँ बाजार में और लोगों को समझाएँ कि जाओ, वहाँ हीरे की खदान है, और खुद भिक्षा माँगें!

क्या कोई आपका भरोसा करेगा कि आपको हीरे की खदान का पता है ? आप भिक्षा माँग रहे हैं और जो आपको दो पैसे दान दे देता है, उसको आप समझा रहे हैं कि तू जा, हीरे की खदान फलाँ जगह है, करोड़ों के हीरे वहाँ पड़े हैं ।

अगर आपको हीरे की खदान पता चलेगी, तो पहला काम यह करेंगे आप, कि किसी और को पता न चल जाये । पहली जरूरत यह हो जायेगी मन में कि यह किसी और को तो पता न चले कि यहाँ हीरों की खदान है । और इसके पहले कि किसी और को पता चले, खदान खाली कर लेंगे । कि आप बाजार में लोगों को समझाते फिरेंगे ?

मुमुक्षु और जिज्ञासु में यही फ़र्क है । मुमुक्षु को जैसे ही पता चलता है कि यहाँ हीरे हैं, वह खोदने में लग जाता है । और जिस दिन हीरा उसके पास होता है और हीरे की चमक उसके जीवन में आ जाती है, उस दिन लोग उससे खुद ही पूछने लगते हैं कि क्या हो गया, क्या मिल गया ? कौन-सा रस, कौन-सा नया द्वार, कौन-सा संगीत तुम्हारे जीवन में आ गया, जिसकी सुगन्ध, जिसकी ध्वनि दूसरे को भी छूती है ।

'मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है ।'

और अनुभव जब तक न हो, तब तक श्रद्धा नहीं होती । लोग कहे जाते हैं – 'श्रद्धा करो', लेकिन श्रद्धा कैसे हो सकती है जब तक कि अपना अनुभव न हो । कोई कहता है कि 'शक्कर मीठी है', सुनकर कैसे श्रद्धा हो ? और जानकर कैसे अश्रद्धा होगी ? जिस दिन शक्कर कोई मुँह में रख देगा और मीठे का अनुभव होगा, तो श्रद्धा हो जायेगी । मुँह में मीठे का अनुभव हो रहा हो, तो फिर आपसे कोई नहीं कहेगा कि 'श्रद्धा करो' कि 'शक्कर मीठी है ।'

समझ दर्शन बने, अनुभव बने, तो अनुभव श्रद्धा बन जाती है ।

दुनियां में श्रद्धा की कमी नहीं है, दुनिया में मुमुक्षा की कमी है । लोग जिज्ञासु हैं । और इस जिज्ञासा को बढ़ाने में शिक्षा ने बड़ा साथ दिया है, क्योंकि हमारा पूरा शिक्षाशास्त्र जिज्ञासा पर खड़ा है, मुमुक्षा पर नहीं । यही पूरब और पश्चिम की शिक्षा व्यवस्था का भेद है । पूरब में शिक्षा मुमुक्षा के आधार पर खड़ी थी : 'वह सीखो, जिससे जीवन बदलता हो ।' आज की शिक्षा इस आधार पर खड़ी है कि 'वह सीख लो, जिससे आजीविका चलती हो ।' जीवन बदलने का कोई सवाल नहीं है – जीवन चल जाये, इतना भर काफी है । सुविधा मिल जाये, धन मिल जाये – जीवन चल जाये । आजीविका आधार है, जीवन नहीं ।

पूरब की पूरी चेष्टा थी कि बच्चा जब पहले दिन गुरुकुल जाये, तो मुमुक्षा के भाव से जाये । वहाँ से बदलकर लौटने का ख़याल हो । वहाँ से नया आदमी होकर

लौटे, वहाँ से द्विज होकर लौटे। गुरु के पास जा रहा है, वहाँ से नया होकर लौटे। वहाँ से कुछ बातें सीखकर आ जाये, यह मूल्यवान नहीं था। मूल्यवान यह था कि वहाँ से बीइंग का, वहाँ से अस्तित्व का नया अनुभव लेकर आये। क्योंकि वह नया अनुभव ही उसके जीवन की आधारशिला बनेगा, और उस आधारशिला के सहारे ही कभी मोक्ष तक भी उठा जा सकेगा।

मुमुक्षा से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से श्रद्धा का जन्म है। आपसे महावीर नहीं कहते कि आप मान लो कि मोक्ष है। वे आपसे नहीं कहते कि संसार दुख है, यह मान लो। वे कहते हैं, इसे अनुभव करो। और सभी अनुभोक्ताओं का अनुभव एक ही निष्कर्ष पर ले जाता है। सभी अनुभव करनेवालों का सार सदा एक होगा। बातचीत करनेवालों में कभी भी कोई तालमेल नहीं हो सकता – यह ज़रा सोचने-जैसी बात है।

दुनिया में हज़ारों तरह की फिलॉस्फीज़ हैं, लेकिन विज्ञान एक तरह का है। आखिर क्या कारण है कि फिलॉस्फीज़ इतनी हों, और विज्ञान एक हो? कारण सीधा है। क्योंकि फिलॉस्फीज़ अक्सर बातचीत है, कहीं कोई अनुभव नहीं है जहाँ कि दो व्यक्ति मिल सकें। विज्ञान अनुभव है, प्रयोग है : मिलना ही पड़ेगा। तो दुनिया में कहीं भी विज्ञान की खोज हो, सारी दुनिया के वैज्ञानिक, आज नहीं कल, उससे राज़ी हो जायेंगे : होना ही पड़ेगा। अगर सत्य है, तो राज़ी होना ही पड़ेगा। और कसौटी अनुभव है। आप इनकार नहीं कर सकते, आप यह नहीं कह सकते कि मैं मुसलमान हूँ, मेरे घर पर पानी सौ डिग्री पर भाप नहीं बनता; तुम हिन्दू हो, तुम्हारे घर पर बनता होगा।

मुसलमान हो कि हिन्दू, तिब्बत में हो कि इंग्लैण्ड में, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा : पानी तो सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। लेकिन यह प्रयोग है, इससे राज़ी होना पड़ेगा। इसे चार आदमी कर सकते हैं। और उनके अनुभव में जब एक ही बात आयेगी, तो कोई उपाय नहीं है इनकार करने का। लेकिन कोई आदमी कहता है कि 'ईश्वर के चार हाथ हैं' और कोई आदमी कहता है, 'चार नहीं, अनन्त हाथ हैं'; और कोई कहता है, 'सिर्फ दो हाथ हैं' और कोई कहता है कि 'ईश्वर के हाथ हैं ही नहीं, वह निराकार है', तो इसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिसकी बात की जा रही है, उसको अनुभवगत बनाना असम्भव है – कल्पना-जन्य है, विचार-जन्य है।

महावीर बहुत ही व्यावहारिक हैं। वे कहते हैं जो अनुभवगम्य हो सके, वही श्रद्धा बन सकेगी। इसलिए आकाश की बातों में मत भटको, जीवन के आधार से चलना शुरू करो। आधार है : मुमुक्षा, मुक्ति की खोज। मुक्ति की खोज उसी की होगी, जिसको बन्धन अनुभव हो रहा है।

(गुर्जियेफ कहा करता था : अगर किसी करागृह में लोग बन्द हों, और भूल गये हो कि यह कारागृह है, तो स्वभावत: निकलने की कोई चेष्टा वे नहीं करेंगे कि जेल से बाहर निकल जायें। क्योंकि जेल है ही कहाँ ? कारागृह में रहनेवाले अगर यह समझ रहे हों कि यही घर है, तो उनकी चेष्टा यही होगी कि इस घर को कैसे सुन्दर बनायें ? कैसे इसकी दीवालों पर रंग रोगन करें, कैसा फर्नीचर जमायें ? कैसा सजायें इस घर को ? और अगर कोई उनसे कहे कि बाहर आ जाओ, तो वे नाराज होंगे। कोई उनसे कहे कि बाहर खुला आकाश भी है, इन अन्धेरी कोठरियो में मत रहो, तो वे प्रसन्न नहीं होंगे। क्योंकि जिन्हें तुम अन्धेरी कोठरियाँ कह रहे हो, वह उनके जीवन का सार-सर्वस्व है, वह उनका घर है।

मुमुक्षा का अर्थ है, आपको यह अनुभव होना शुरू हो गया कि जीवन बन्धन है, पीड़ा है, संताप है, दुख है। इस अनुभव से दो यात्राएँ शुरू हो सकती हैं। अनुभव हो जाये कि जीवन दुख है, तो आप अपने को बेहोश करने कि कोशिश कर सकते हैं, ताकि दुख भूल जाए। सभी लोग यही कर रहे हैं। कोई काम-वासना में डूब रहा है, कोई शराब में डूब रहा है, कोई संगीत में, कोई फिल्म में – कोई कही और कोई कही और, कोई जुआ खेल रहा है, कोई रेस में जाकर दांव लगा रहा है। ये सब भूलने के लिए उपाय है – कही, जहाँ मुझे अपनी याद न रहे।)

बड़े मजेकी बात है। घोड़ोकी दौड़ में आदमी कितने उत्सुक रहते है – कोई घोडा आदमी की दौड़ मे इतना उत्सुक नही है ! घोड़ों को आदमी की दौड़ में कोई भी रस नही है। एक धेला भी देने को घोड़ा राजी न होगा। आदमी इतना घोड़े की दौड़ में रस ले रहा है, जरूर कही आदमी मे कोई विकृति है। वह कहीं भी अपने को भुलाने की कोशिश कर रहा है। कही कोई उत्तेजना, जहाँ थोड़ी देर को अपनी याद न रहे। घोड़ोंकी दौड़ हो, तो वह रीढ को सीधा करके बैठ जाये और देखने लगे। घोड़ा इतना ज्यादा ध्यान में हो जाये कि अपना विस्मरण हो जाये, फारगेटफुल्नेस हो जाये। उत्तेजना, किसी भी तरह की उत्तेजना चाहिये।

आदमी ने हजार-हजार तरह की उत्तेजनाएँ खोजी हैं। यूनान में शेरों के सामने, सिहो के सामने आदमियो को फेंक देते थे, और जब सिह आदमियों को चीरेगा, फाड़ेगा, तो लाखो लोग बैठकर देखेंगे, आनन्द लेंगे। क्या रस रहा होगा ? कोई बहुत फ़र्क़ नही पड़ा है आदमी में। अभी भी जब दो पहलवान लड़ते हैं और आप बैठकर गौर से देखते हैं, तो क्या देखते हैं ? या फिल्म में जब कोई खून, हत्या और भाग-दौड़ होती है, तो आप क्यों इतने उत्सुक हो जाते हैं ? या दुनिया में जब युद्ध चलता है, तो आपकी प्रसन्नता क्यों बढ़ जाती है ? प्रसन्नता बटनी,

चाहिये युद्ध के चलने से, पर आप प्रसन्न हो जाते हैं ! सुबह जल्दी ब्रह्म मुहूर्त में उठने लगते है । यह क्या हो रहा है ?

उत्तेजना आपको अपने में आने से रोकती है, वह आपको बाहर ले जाती है । उत्तेजना में आप दूसरे में डूब जाते है, खुद को भूल जाते है । कोई-न-कोई उत्तेजना चाहिये । ऐसा भी हो सकता है कि आप उत्तेजना में प्रसन्न न होते हों, दुखी होते हों । समझ ले कि आपके सामने सिह किसी को फाडकर खा रहा हो और आपकी आँखो से आँसू झर रहे हो, तो वह आँसुओ का झरना भी अपने को भूलना ही है । उस आँसू गिरने में भी वह सिह और आदमी प्रमुख हो गये है, आप अपने को भूल गये है ।

मैंने सुना है कि एक यहूदी बुढ़िया को उसका बेटा पहली दफा फिल्म दिखाने ले गया । वह फिल्म एक पुरानी रोमन कथा पर आधारित थी । उसमें जब वह अनिवार्य दृश्य आया, जिसमें ईसाइयो को रोमन सम्राट फेंकता है सिहो के सामने, तब बुढ़िया के आँखो से आँसू बहने लगे । उसके मुंह से चीत्कार निकलने को थी कि उसके बेटे ने पूछा, 'इतना क्यों परेशान हो रही हो ?' बुढ़िया कहा कि 'देखो, बेचारे आदमियो को सिह किस तरह फाड़कर खा रहे है ।' बेटेने कहा कि 'वे आदमी नही है, ईसाई है ।'

यहूदी थी बुढ़िया । 'वे आदमी नहीं हैं, ईसाई है' – बुढ़िया ने कहा, 'अच्छा' । तब उसने अपने आँसू पोछ लिये । वह प्रसन्नता से देखने लगी । लेकिन दो ही मिनट बाद फिर उसके आँसू बहने लगे । फिर जब चीत्कार निकलने को थी तो उसके लडके ने पूछा कि 'अब क्या मामला है ?' तो बुढिया ने कहा कि 'देखो, वह बेचारा सिह खड़ा है और उसको एक भी आदमी खाने को नही मिला ।' पहले वे बेचारे आदमी थे जिनको सिह खा रहा था, लेकिन अब एक बेचारा अकेला सिह खड़ा है, उसको कोई आदमी नही मिला । अब वह उसके लिए रो रही है !

आदमी चाहे रोए और चाहे हंसे – जब तक दूसरे पर ध्यान है, तब तक अपना विस्मरण है । इसीलिए ट्रैजडी का भी उतना ही रस है । बडे मजे की बात है कि दुनिया में इतनी ट्रैजडी है, इतना दुख है, फिर भी आप दुखान्त नाटक देखने जाते हैं !

ध्यान रहे, दुखान्त नाटक ज्यादा चलते है सुखान्त नाटक के बजाए । यह बड़ी अजीब बात है । दुनिया में काफी दुख है । अभी आपको दुख का अनुभव नही हुआ है कि आप दुखान्त नाटक देखने जा रहे है ? लेकिन, अगर कहानी में दुख न हो और दुख पर कहानी का अन्त न हो, तो उतनी उत्तेजना पैदा नही होती – क्यो ?

अगर कहानी बिलकुल सुखान्त हो तो उसमें रस ज्यादा नही आता, क्योंकि सुख दूसरे को मिल रहा हो तो हमें कोई रस नही आता । दुख दूसरे को मिल रहा

हो, तो ही हमें रस आता है। इसलिए दुनिया में नब्बे प्रतिशत कहानियाँ दुखान्त लिखी जाती हैं, केवल दस प्रतिशत सुखान्त लिखी जाती हैं। और वह दस प्रतिशत भी बाजार में टिक नहीं पाती हैं, दुखान्त कहानियो के मुकाबले।

आदमी अजीब है। अगर दुख का उसे अनुभव हो तो वह उसे भूलने की कोशिश करता है। वह जीवन के ढंग को बदलने की कोशिश नही करता, ताकि वह दुख से ऊपर उठ जाये, और वे कारण मिट जायें, जिनसे दुख पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति दुख को मिटाने की तैयारी करता है, भुलाने की नही, तो मुमुक्षा का जन्म होता है, तो मोक्ष की खोज शुरू हो जाती है।

दर्शन से श्रद्धा और श्रद्धा से चारित्र्य। श्रद्धावान ही चारित्र्य को उपलब्ध होता है। जब अपना अनुभव बता देता है कि क्या सही है और क्या गलत है, और जब अपने अनुभव पर भरोसा प्रगाढ़ हो जाता है, तो चरित्र बदलना शुरू हो जाता है। जो सही है, उस दिशा में चरित्र अपने-आप बहने लगता है। वैसे ही, जैसे पानी ढाल की तरफ बहने लगता है। जो गलत है, उस तरफ से जीवन अपने-आप मुडना शुरू हो जाता है। गलत की तरफ से मुडना पड़ता है हमें, क्योकि हमारे जीवन में कोई श्रद्धा और कोई अनुभव नहीं है। सही को लाने की कोशिश करनी पड़ती है, क्योंकि हमारे जीवन मे कोई श्रद्धा नही है।

मुमुक्षा हो, ज्ञान हो, दर्शन हो, श्रद्धा हो, तो चारित्र्य ऐसे आता है जैसे छाया आपके पीछे आती है। उसको लाना नही पड़ता। आप रुक-रुककर पीछे देखते नही कि छाया आ रही है, कि नही आ रही है? आती है—श्रद्धा की छाया है, चारित्र्य।

अश्रद्धावान दुष्चरित्र हो जाता है, श्रद्धावान चरित्र को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन श्रद्धा का आप अर्थ समझ लेना, महावीर का अर्थ श्रद्धा का क्या है? श्रद्धा कोई ऐसी बात नही है कि आपने मेरी बात मान ली तो श्रद्धा हो गई। जब तक वह आपके अनुभव से मेल न खा जाये, तब तक श्रद्धा न होगी। तो महावीर की बात आप सुन रहे हैं, उसे थोडा जीवन में प्रयोग करना। जहाँ-जहाँ लगेगा कि महावीर जो कहते है, वह आपके जीवन से मेल खाता है, वही-वही श्रद्धा का जन्म होगा। जहाँ-जहाँ श्रद्धा का जन्म होगा, वही-वही चरित्र की छाया पीछे चलने लगेगी।

ठीक के विपरीत जाना असम्भव है, लेकिन सभी लोग ठीक के विपरीत चले गये है। यूनान में बहुत पुराना विवाद था, सुकरात ने उठाया था। सुकरात ने कहा कि 'ठीक के विपरीत जाना असम्भव है।' सैंकड़ो वर्ष तक विवाद चला, और सैंकड़ो दार्शनिकों ने कहा कि सुकरात की बात ठीक नही है, क्योंकि हमें पता है कि ठीक क्या है, फिर भी हम ठीक के विपरीत जाते है। अनुभव तो यही कहता है कि सबको मालूम है कि 'ठीक क्या है?' आपको मालूम नही है कि ठीक क्या

है ?' आपको बिलकुल मालूम है कि ठीक क्या है, फिर भी आप ठीक के विपरीत जाते हैं । लेकिन ये सुकरात, महावीर, बुद्ध, कृष्ण – ये सब उल्टी बातें कहते हैं । ये कहते हैं कि ठीक के विपरीत जाना असम्भव है ।

ज्ञान चारित्र्य है । तब जरूर कहीं-न-कहीं कोई भूल-चूक हो रही है, हमारे शब्दों में कहीं कोई अड़चन हो रही है । हम जिसको ठीक का ज्ञान कहते हैं, वह ज्ञान ही नहीं है, सिर्फ़ जानकारी है । वही अड़चन हो रही है । आपको भी पता है कि सत्य बोलना चाहिये । आपको इसका बोध है । लेकिन यह सुना हुआ बोध है । किसी ने आपको कहा है . पिताने कहा है, गुरुने कहा है, शास्त्र से पढ़ा है । हवा है चारों तरफ़ कि सत्य बोलना चाहिये, लेकिन जब कठिनाई आती है तो आप जानते हैं कि झूठ बोलकर बचा जा सकता है । वह अनुभव आपका वही है कि सत्य बोलकर फसेंगे, झूठ बोलकर बचेंगे । और सभी बचना चाहते हैं । वह बचाव असल में अपना ज्ञान यही है कि झूठ बोलकर बचा जा सकता है ।

सभी शास्त्र और सभी तीर्थंकर कहते रहें, इससे क्या फर्क पड़ता है । सब तीर्थंकर जगत् के मिलकर भी आपके एक छोटे-से अनुभव के मुकाबले कमजोर हैं, आपका अनुभव सच है । आपको पता है कि झूठ बोलकर बचूंगा । पहले भी झूठ बोलकर बचे हैं , पहले भी सच बोलकर फंसे हैं । अनुभव आपका यही है । यही आपका ज्ञान है । आपके वास्तविक शास्त्र में लिखा है कि 'झूठ ही धर्म है ', क्योंकि वही बचाव है । लेकिन आपकी अवास्तविक बुद्धि में लिखा है कि ' सत्य धर्म है ', वही परम श्रेय है । इन दोनो में कोई ताल-मेल नहीं है । अपने ही शास्त्र से आप चलते हैं । आपका आचरण आपके ही ज्ञान की छाया की तरह चलता है । महावीर का आचरण महावीर के ज्ञान की छाया है । महावीर का ज्ञान आपमें छाया पैदा नहीं कर सकता । महावीर की छाया आपके पीछे कैसे चल सकती है ? वह उनके ही पीछे चलेगी ।

यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि हम जिसे ठीक जानना कहते हैं, वह जानना ही नहीं है, ठीक तो बहुत दूर है । हमारी सारी कठिनाई इस बात में है कि हमारे मस्तिष्क सुशिक्षित कर दिये गये हैं, और हमारी चेतना अशिक्षित रह गई है । तो एक अर्थ में हमें सभी कुछ मालूम है और एक अर्थ में हमें कुछ भी मालूम नहीं है । इसलिए जिस व्यक्ति को मोक्ष के मार्ग पर जाना हो, पहले तो अपने इस ज्ञान के झूठे खयाल से मुक्ति पानी जरूरी है । उसे एक दफा अज्ञानी हो जाना जरूरी है । उसे यह ठीक-ठीक माफ कर लेना चाहिये कि मेरा ज्ञान क्या कहता है, नहीं तो धोखा हो रहा है ।

महावीर का ज्ञान आप अपना ज्ञान समझ रहे हैं तो धोखा हो रहा है । तो आप भटकेंगे । आपका ज्ञान क्या है ? आपके पास अपना एक छोटा-सा शास्त्र, निजी-शास्त्र, प्रत्येक को बनना चाहिये । उसमें अपना ज्ञान लिखना चाहिये शुद्ध

कि यह मेरा ज्ञान है कि 'झूठ धर्म है ।' क्योंकि धर्म वही है जो रक्षा करे। झूठ रक्षा करता है । अपना छोटा-सा शास्त्र, निजी – और तब आप पायेंगे कि आपका चरित्र हमेशा आपके शास्त्र की छाया है । तब आपको कभी कोई भूल-चूक नहीं मिलेगी । जो आपके शास्त्र में लिखा है, वही आपका जीवन होगा । लेकिन शास्त्र आपके पास महावीर का है और चरित्र अपना है । इसमें बड़ी अड़चन है । और आप बड़े धोखे में पड़े हैं । और तब प्रश्न उठता है कि जानने से क्या होगा ? ज्ञान तो लिया, लेकिन जीवन तो बदलता नहीं । तो महावीर की बात समझ में नही आयेगी ।

अगर जानने से जीवन न बदलता हो, तो उसका एक ही अर्थ हुआ कि जाना नही है । उस जानने को छोड़े और जानने की कोशिश में लगें । जानने की कोशिश में वही लगेगा, जिसे अज्ञान का बोध हो रहा है । आप सब ज्ञानी हैं, अज्ञान का बोध तो आपको होता ही नही है, तो जानने का कोई सवाल ही नही उठता । और जब तक सम्यक् ज्ञान न हो, तब तक सम्यक् चरित्र नही हो सकता है ।

चरित्र एक कडी है, जिसके पहले कुछ अनिवार्य कड़ियाँ गुजर जानी चाहिये । जब तक वे अनिवार्य कड़ियाँ न गुजर जायें, चरित्र की कड़ी हाथ में नही आती । लेकिन आप झूठा कागजी चरित्र पैदा कर सकते है, आप आवरण बना सकते हैं, आप पाखण्डी हो सकते हैं, आप चेहरे ओढ सकते हैं । और चेहरे कभी-कभी इतने गहरे हो जाते हैं, इतने पुराने हो जाते हैं कि आपको लगता है, यही असली चेहरा है ।

रिलके, एक कवि ने अपने बचपन का एक सस्मरण लिखा है । उसने लिखा है : मै छोटा था और मेरे पिता को सास्कृतिक गतिविधियो में बड़ी रुचि थी । नाटक, कविता, संगीत – और घर में निरन्तर कलाकार ठहरते थे । एक बार एक नाटक मंडली घर में ठहरी । उन दिनों अभिनेता चेहरे ओढ़कर अभिनय करते थे नाटक में । घर में जो नाटक मडली ठहरी थी, उसके पास बड़े अजीब-अजीब चेहरे थे ।

तो यह छोटा बच्चा रिलके एक दिन उनके कमरे में घुस गया, जब कि सब लोग खाना खाने मे लगे थे । वह उनके सजावट के कमरे में पहुँच गया । उसने सोचा कि 'मैं भी एक चेहरा ओढ़कर देखूँ।' तो उसने एक भयकर – बच्चो को बडा रस होता है भयंकर मे – राक्षस का चेहरा लगा लिया और उसे ठीक से बाँध लिया । फिर उसके ऊपर एक पगड़ी बाँध ली, ताकि उसके कोरे ढक जायें । वह चेहरा उसके चेहरे पर बिलकुल ठीक आ गया । उसने एक तलवार उठा ली नकली – छोटे बच्चों की कल्पना बड़ी प्रगाढ़ होती है – और वह बिलकुल भूल ही गया और जोश में आ गया । जोश इतना आ गया उसे कि उसने तलवार चला दी । तलवार चलाने से पास की टेबल

पर रखी हुई कुछ शीशियाँ नीचे गिर गईं, उनका रंग नीचे बिखर गया, तो वह घबड़ा गया कि कोई आ न जाये। शीशियाँ जमाने में वह बिलकुल भूल ही गया कि 'मैं कौन हूँ ?' और जब सब जमाकर सब ठीक हो गया तो वह वहाँ से भागा, कि कहीं मैं पकड़ न लिया जाऊँ। लेकिन वह चेहरा उतारना भूल गया। जब अपने कमरे में पहुँचा तो आइने में उसे खुद का चेहरा दिखाई पड़ा, तो उसने चीख मार दी। वह घबड़ा गया कि यह क्या हो गया ? बेहोश होकर गिर पड़ा। लोग दौड़े हुए आये। परिवार के लोग इकट्ठे हो गये। परिवार के सब लोग हंसने लगे, देखकर उसका नाटक।

लेकिन रिलके ने लिखा है : मेरी पीड़ा को कोई भी नहीं समझा। उनकी हंसी देखकर मैं और घबड़ाने लगा। उनकी हंसी देखकर मुझे और भी भरोसा होने लगा कि कुछ गड़बड़ हो ही गई है; अब इस चेहरे से कोई छुटकारा नहीं दिखाई पड़ता। मुझे यह स्मरण ही न रहा कि 'मैं अलग हूँ और यह चेहरा अलग है।'

और जिन्दगी में सभी उपद्रव बचपन से ही शुरू होते हैं, क्योंकि बचपन से ही बच्चों को चेहरे ओढ़ने पड़ते हैं। बाप बताता है, 'कब हसो'— हंसने की भी आज्ञा बाप देता है। इसकी भी आज्ञा माँ देती है कि कब हसो, कब मत हंसो। तो जब बच्चे को हंसी आती है, तब वह उसको रोक लेता है। तब उसे दूसरा चेहरा ओढना पड़ता है, जो उसका नहीं है।

बच्चे की हसी के वक्त अलग होंगे आपकी हसी से, क्योंकि आपके सोचने के ढग और उसके सोचने के ढग बिलकुल अलग है। वह बूढ़ा नहीं है। वह किन्हीं और चीजों पर हसता है, जिन पर आप हस ही नहीं सकते। और आप जिन चीजों पर हसते है, उसकी समझ मे भी नही आ सकता है कि उसमें हसी की क्या बात है ?

एक छोटे बच्चे को उसकी माँ ने कहा कि एक मेहमान घर मे आ रहा है, ध्यान रखना, उनकी नाक की बात मत उठाना . . .

क्योंकि नाक उन मेहमान की थी ही नहीं; ऑप्रेशन हो गया था। माँ परेशान थी कि यह बच्चा एकदम पूछ न ले कि उनकी नाक का क्या हुआ ? मेहमान कहीं अड़चन मे न पड़े।

. . तो माँ ने समझा दिया कि नाक की बिल्कुल बात ही मत उठाना। ध्यान रखना, सब कुछ कहना, नाक की भर बात मत उठाना।

बच्चा और भी उत्सुक हो कर बैठ गया कि मामला क्या है ? अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ है। और जब वह आदमी आया तो उस बच्चे ने कहा कि 'माँ, नाक तो है ही नहीं, चर्चा किस बात की करनी, नाक होती तो चर्चा भी हो सकती थी!'

बच्चे का जगत अलग है, उसके सोचने का गणित अलग है । हम उसको बता रहे हैं – कब हसो, कब रोओ; कैसे उठो, कैसे बैठो; क्या करो, क्या न करो । हम उसको झूठ सिखा रहे हैं । हम उसको चेहरे दे रहे हैं । मजबूरी है, वह कमजोर है – उसे हमारी बात माननी ही पड़ेगी । वह हम पर निर्भर है । और जब वह चेहरे ओढ़ने में कुशल होने लगेगा, तब हम कहेंगे बड़ा सुसंस्कृत है, बड़ा मैनरली है । हमारी दृष्टि मे तब बच्चा उतना अधिक शिष्ट होने लगा, जितने अधिक वह चेहरे ओढ़ने लगा । फिर वर्षों के बाद उसे याद भी नही रहेगा कि उसका असली चेहरा कहाँ है ? फिर यहीं चेहरे उसकी जिन्दगी हो जायेंगे । वह हंसेगा तो उसकी हंसी ऊपर से झूठी, चिपकाई हुई होगी । वह रोएगा तो उसके रोने में कोई रुदन नही होगा । वह कहेगा आप को देखकर – 'बड़ी प्रसन्नता हो रही है', और उसे कोई प्रसन्नता नही हो रही होगी ।

सब झूठा हो जायेगा ।

हम सब झूठ में खड़े है, समाज एक महा-असत्य है । और बचपन में इतने चेहरे ओढ़ाये जाते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि हमारा कोई असली चेहरा भी है । आइने में सदा यही चेहरे देखे है, इन्ही से हमारी पहचान हो गई है ।

आप जानकर हैरान होंगे कि अगर किसी व्यक्ति को तीन महीने गहन ध्यान कराया जाये और आइना न देखने दिया जाये, तो तीन महीने बाद आइने में देखकर वह खुद को पहचानने में कठिनाई अनुभव करेगा कि यह चेहरा मेरा है । क्योंकि सब पर्ते उतर जायेंगी और एक नये ही चेहरे का आविर्भाव हो जायेगा ।

जापान मे जो भी साधक गुरु के पास ध्यान सीखने आता है, गुरु उसे कहता है . "फाइन्ड आऊट योअर ओरिजनल फेस – अपना मूल चेहरा खोजो ।" बस, यही ध्यान है ।

महावीर कहते है कि जब ज्ञान श्रद्धा बन जाता है, जब अनुभव श्रद्धा बन जाता है, तो चरित्र अपने-आप पीछे आता है । अगर आपके ज्ञान के पीछे आपका चरित्र न आ रहा हो, तो आप चरित्र को दोष देना बन्द करो, आप ज्ञान को दोष देना शुरू करो ।

लेकिन आपके साधु-सन्यासी आपको समझा रहे है कि चरित्र आपका खराब है, ज्ञान तो बिलकुल ठीक है । यही बुनियादी भूल हो रही है । मनुष्य के मन को समझने में इससे बड़ी भूल नही हो सकती । साधु-संन्यासी समझा रहे हैं कि चरित्र ठीक करो, ज्ञान तो तुम्हारा ठीक है । क्योंकि तुम्हे कंठस्थ है शास्त्र । चरित्र ठीक करो । साधु-सन्यासी भी अपना चरित्र ठीक करने में लगे हैं । ज्ञान उनका भी ठीक है ।

चरित्र को ठीक करना ही नही पड़ता, सिर्फ़ ज्ञान को ठीक करना पड़ता है। जब ज्ञान ठीक हो जाता है, तब चरित्र एकदम-से ठीक होने लगता है। चरित्र का ठीक होना सिर्फ लक्षण है, ज्ञान के ठीक हो जाने का।

जीवन की क्रान्ति ज्ञानपर निर्भर है, चरित्र पर निर्भर नहीं है। इसीलिए दुनिया इतनी चरित्रहीन है, चूंकि सभी लोग चरित्र को ठीक करने में लगे हैं। जिस दिन दुनिया ज्ञान को ठीक करने में लगेगी, उस दिन चरित्र अपने-आप आ जायेगा।

महावीर ज्ञानी हैं, नैतिक चरित्र के उपदेशक नही। लेकिन बड़ी भ्रान्ति है। पश्चिम में, पूरब में सब तरफ बड़ी भ्रान्ति है। एक तो महावीर को लोग बहुत कम जानते हैं, क्योंकि उनके आस-पास जो लोग उन्हे घेरे हैं, उन्होंने महावीर की प्रतिष्ठा ऐसी कर दी है कि वह जानने योग्य मालूम नही पड़ते। जैन साधुओं को देखकर कौन महावीर को मानना चाहेगा? इनको देखकर ऐसा लगता है कि 'परमात्मा न करे कि ऐसा कभी अपने जीवन मे हो जाये : ऐसी रुग्णता, ऐसी उदासी, ऐसी कठोरता, ऐसा सब जड़-भाव, और जिन्दगी से ऐसी लड़ाई। अहोभव का खो जाना, उत्सव का बिलकुल विनष्ट हो जाना, मुर्दे की तरह जीना, लाश की तरह तैरना – कोई देखकर जैन-साधुओं को – जैनियों को छोड़कर, क्योंकि उनको तो कुछ भी दिखाई नही पड़ रहा है, उनके पास एक चश्मा है – दुनिया में किसीको भी जैन साधु को दिखाओ, उनको लगेगा कि पैथॉलॉजिकल है, कुछ रुग्ण है। कही-न-कही कोई गड़बड हो गई है। शरीर भी खराब है, मन भी ठीक नही है। और दुष्ट है, जिसका हमें खयाल भी नही आ सकता।

किसी जैन को ख़याल भी नही आ सकता कि जैन साधु दुष्ट है। क्योंकि उन्हे हिंसा का एक रस है, वह चाहे दूसरे को सताने मे लगे और चाहे ख़ुद को सताने में लगे, उसमें कोई फ़र्क नही पड़ता। सताने का मजा है। कुछ लोग दूसरे को सताते हैं, कुछ लोग अपने को सताते हैं।

ध्यान रहे, अक्सर ताकतवर दूसरों को सताते है, कमज़ोर अपने को सताने लगते है। क्योंकि दूसरे को सताने में ख़तरा है। दूसरे को सताने जाइयेगा तो झंझट है, क्योंकि दूसरा भी बैठा नहीं रहेगा। इसलिए जो कमज़ोर है, कायर है, नपुंसक है, वे दूसरो को सताने का मज़ा तो ले नहीं सकते, उनके लिए सिर्फ एक ही रास्ता है कि अपने को सताओ। भूखा रखो, नगा रखो, बीमार रखो – सब तरह से अपने को सताओ और मज़ा लो।

कठोरता, क्रूरता और हिंसा छिपी हुई दिखाई पड़ेगी। लेकिन उसमें जैन को अहिंसा दिखाई पड़ रही है। उसका कुल कारण चश्मा है। किसी मनस्विद् से पूछो –

दुनियाभर के सारे मनस्विद् भी इकट्ठे हो जायें, तो मैं जो कह रहा हूँ, यही गवाही वे भी देंगे कि यह आदमी रुग्ण है, बीमार है, पैथॉलॉजिकल है। अपने को सता रहा है, मैसोचिस्ट है।

दो तरह की वृत्तियाँ हैं हिंसा की : दूसरे को सताने की और अपने को सताने की। अहिंसक वही है, जो किसी को भी नहीं सता रहा है — न दूसरे को, न अपने को। सताने की धारणा ही जिसकी गिर गई है। लेकिन वह आपको साधु ही नहीं मालूम पड़ेगा, जो अपने को नहीं सता रहा है। आप कहेंगे, 'यह साधु कैसा है? यह आराम से बैठा है, अपने को भी नहीं सता रहा है।'

"तपश्चर्या करो कुछ, कुछ उपवास करो, कुछ भूखे रहो, कुछ मर कर दिखाओ..."

साधु आराम से शान्त बैठा हो, प्रसन्न हो, आनन्दित हो, तो आपको शक हो जायेगा कि यह आदमी साधु नहीं है। क्योंकि हमने कठोरता और हिंसा को साधना का अंग बना लिया है।

महावीर की बात बिलकुल अन्यथा है। महावीर के शरीर को देखकर कोई भी नहीं कह सकता कि यह आदमी पैथॉलॉजिकल है, बीमार है। महावीर के चेहरे की प्रसन्नता को देखकर कोई नहीं कह सकता है कि इन्होंने अपने को सताया है। सताये हुए आदमी का चेहरा नहीं दिखता महावीर का। महावीर का चेहरा उस प्रफुल्लित व्यक्ति के चेहरे जैसा दिखता है, जो अपने को और दूसरों को सताना भूल ही गया है।

मगर महावीर की यह प्रतिमा दुनिया के सामने प्रगट नहीं हो पा रही है। कारण यही है कि महावीर ने जो बातें कहीं, महावीर ने जो विचार दिया, उस विचार की बड़ी ही भ्रान्त व्याख्या हो गई। होने की सम्भावना थी; उसमें बीज थे। महावीर नग्न खड़े हो गये।

पश्चिम में मनस्विद् कहते हैं कि कुछ लोगों को नग्न खड़े होने में सुख मालूम पड़ता है कि कोई उनको नंगा देख ले। ये वे ही लोग हैं जिनकी कामवासना विकृत हो गई है। इनको इतने में ही रस आ जाता है कि कोई इनको नग्न देख ले। तो ऐसे आदमी को महावीर में रस आ जायेगा। वह कहेगा कि यह तो बिलकुल ठीक है। धर्म की आड़ मिलती है तो मैं नग्न खड़ा हो जाऊँ। और लोग उल्टे पूजा भी करते हैं।

आदमी को अपने को सताने में विजय का रस मिलता है, कि मैं जीत रहा हूँ, मैं मालिक हूँ। आखिर दूसरों को सताने में आपको क्या रस मिलता है? यही रस

न कि कमजोर आपसे बदला नही ले सकता, कि आप मालिक हैं; वह कमजोर और आप ताकतवर हैं? आदमी जब अपने को सताता है, तब भी उसके अहंकार को मजा आता है कि 'मै ताकतवर हूँ। देखो, पन्द्रह दिन से भूखा हूँ, उपवास किया है; सारा शरीर ताकत लगा रहा था, कह रहा था कि भूख लगी है, लेकिन मैंने एक न सुनी।'

यह कौन है, जो एक नही सुन रहा है? यह दुष्ट अहंकार है। नही तो शरीर जब कह रहा है कि भूख लगी है, तो चाहे दूसरे का शरीर कह रहा हो, चाहे अपना शरीर कह रहा हो – फ़र्क क्या है? एक आदमी बैठा है, वह कहता है कि भूख लगी है, तो आप कहते है कि खाना नही खाने देंगे, और आपका शरीर कह रहा है कि भूख लगी है, और आप कहते है कि नहीं, खाना खाने नही देंगे, क्योंकि मैंने व्रत लिया है। यह व्रत कौन ले रहा है..?

सब व्रत अहंकार के हिस्से हैं। क्योंकि व्रत से मजा आ रहा है कि मैं पन्द्रह दिन उपवास करके दिखा दूँगा। इस शरीर को दिखा दूंगा करके। यह शरीर है कौन? यह आपका यन्त्र भर है। आप वैसा ही पागलपन कर रहे है, जैसे कोई गाडी को चलाता रहे और कहे कि पेट्रोल नही दूंगा, चखा दूँगा मजा बिना पेट्रोल के चलाकर।

बिलकुल पागलपन की बात कर रहे हैं। गाडी को पेट्रोल नही देने से गाड़ी क्या चखेगी मजा, मजा आप ही चख रहे हैं। लेकिन कोई भी आदमी अगर गाडी के साथ ऐसा व्यवहार करे, तो आप कहेंगे – यह पागल है। लेकिन शरीर के साथ ऐसा व्यवहार करनेवाले लोग पूज्य हो जाते हैं, महात्मा हो जाते हैं। आप भी उनके पागलपन में सहभागी हैं। एक पार्टनर-शिप चल रही है, साझेदारी चल रही है।

महावीर का चरित्र तो श्रद्धा का अपरिहार्य परिणाम है। और श्रद्धा, अनुभव की अनुसंगी है। अनुभव ज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान मुमुक्षा के बीज से जन्मता है।

'चारित्र्य से भोग-वासनाओं का निग्रह हो जाता है, और तप से कर्म-मल रहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।'

बड़े मजे की बात है। महावीर तप को चरित्र के बाद रखते हैं। सब से पहले मुमुक्षा, ज्ञान, अनुभव और श्रद्धा, फिर चरित्र, और फिर तप। जब व्यक्ति के जीवन से वासनाएँ क्षीण हो जाती है, तब चरित्र का जन्म होता है। जब गलत की ओर जाने की बात रुक जाती है, जब गलत की तरफ जाती हुई ऊर्जा ठहर जाती है, तभी तप का जन्म होता है। क्योंकि तप महा-ऊर्जा में पैदा होता है। वह अग्नि जो आपको

जलाकर निखार दे, उस अग्नि के इकट्ठे होने के पहले चरित्र का पैदा हो जाना जरूरी है। क्योंकि जिन के पास ऊर्जा ही नही है, जिनके पास ईंधन ही नहीं है, वे भीतर की अग्नि को जला नही पायेंगे।

असल में चरित्रहीन पापी नही है, सिर्फ मूढ है; चरित्रहीन सिर्फ नासमझ है। वह उस ऊर्जा को नष्ट कर रहा है, जिस ऊर्जा से महातप पैदा हो सकता है, जिससे वह निखरकर नये जन्म को पा सकता है। अमृत जिससे झर सकता है, उसे वह व्यर्थ खो रहा है। वह सिर्फ मूढ है।

इसलिए महावीर कहते हैं, वह सिर्फ अज्ञानी है। पापी पर दया करो, वह सिर्फ अज्ञानी है। उसको दंड देने की व्यवस्था मत करो, क्योंकि वह सिर्फ भूल कर रहा है। दोष है उसकी समझ में। वह लुटा रहा है चीजें, जिनसे वह बहुमूल्य को खरीद सकता है। जिनसे वह अमूल्य वस्तुओं को खरीद सकता था, उनको वह क्षुद्र चीजों में लुटा रहा है। लेकिन हमें दिखाई नही पडता।

चरित्र कोई नैतिक लक्ष्य नही है महावीर के लिये, आध्यात्मिक रूपान्तर का अनिवार्य अंग है। और चरित्र इसलिए मूल्यवान है कि वह आपकी शक्तियों को संरक्षित कर देगा। आपकी शक्तियाँ बच रहेंगी, संग्रहीत हो जायेंगी। और एक सीमा पर संग्रह — जैसा कि विज्ञान का नियम है कि क्वांटिटी, संख्या एक सीमा पर जाकर क्वालिटेटिव, गुणात्मक परिवर्तन बन जाती है — वैसे ही एक सीमा पर शक्ति के संग्रह में भी गुण का रूपान्तरण हो जाता है।

यह थोड़ा समझ लेना चाहिये कि यह जैसा विज्ञान का सिद्धान्त है, वैसा अध्यात्म का भी सिद्धान्त है। आप पानी को गरम करते है। निन्यानबे डिग्री तक गर्म करो पानी भाप नही बनता, सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। सौ डिग्री पर सीमा आ गई, इवेपोरेटिंग पॉइंट आ गया। सौ डिग्री पर फर्क क्या पड़ रहा है? सिर्फ एक डिग्री गर्मी बढ रही है, और कुछ भी नही हो रहा है। लेकिन सौ डिग्री पर गर्मी आते ही पानी अचानक भाप बनना शुरू हो जाता है, क्रान्ति शुरू हो जाती है। पानी अपना रूप छोड़ने लगता है पुराना, और नया रूप लेने लगता है।

गर्मी की एक खास मात्रा पर पानी भाप बनता है। गर्मी की एक खास मात्रा पर हर चीज बदलती है। गर्मी को नीचे गिराते जायें, एक सीमा पर आकर पानी बर्फ बन जायेगा। लोहा भी भाप बनकर उड़ता है गर्मी की एक सीमा पर। गर्मी की एक सीमा पर हरेक चीज बदलती है। इसका मतलब यह हुआ कि सारी बदलाहट के पीछे गर्मी है, अग्नि है।

ऐसी कोई भी बदलाहट नही है, जो बिना गर्मी के हो जाये – चाहे पदार्थ की, चाहे जीव की। जब आप प्रेम से भरते हैं, तो आपको पता है कि आप एक खास तरह की गर्मी से भर जाते है ? इसलिए हम प्रेम को उष्ण कहते हैं, वार्म कहते हैं। और जब कोई आदमी ठंडा होता है, जिसमें प्रेम बिलकुल नही है, तब हम उसको कोल्ड कहते है, ठडा कहते है। एक तरह की गर्मी है जो प्रेम में आपको परिव्याप्त कर लेती है। सम्भोग के क्षण मे आप उत्तप्त हो जाते हैं पूरी तरह से। आप इतने उत्तप्त हो जाते है कि एक नये व्यक्ति का जन्म आपसे हो पाता है।

अभी तो पश्चिम के एक विचारक ने बड़ी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना की है। शायद उसकी प्रस्तावना स्वीकृत हो जाये, क्योंकि बात कीमती, वैज्ञानिक और प्रयोगसिद्ध मालूम होती है। बहुत पुराने शास्त्र दुनिया के कहते है कि गर्भ के समय में स्त्री के साथ सम्भोग न किया जाये। पर अब तक उसके लिये कोई वैज्ञानिक आधार नही था। लेकिन अभी पश्चिम के वैज्ञानिक ने आधार दिया है। उसने कहा है कि सम्भोग के क्षण में इतना उत्ताप पैदा होता है कि वह उत्ताप बच्चे के कोमल तन्तुओ को नष्ट कर देता है। इसलिए सम्भोग अगर गर्भ की अवस्था में किया जाये तो बच्चे विकलाग पैदा होते हैं, और मस्तिष्क उनका क्षीण होता है।

दो कारणों से : एक तो उत्ताप बढ़ जाता है स्त्री के शरीर में, और बच्चे के नये जन्मते हुए स्नायु इतने कोमल होते हैं कि जरा-सी गर्मी से वे जल जाते है। और दूसरा, स्त्री के शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। क्योंकि सम्भोग के क्षण मे श्वास जोरो से चलने लगती है। जैसे दौड़ रहे हैं। और श्वास जब जोरो से चलने लगती है तो भीतर ऑक्सीजन जलने लगती है। ऑक्सीजन जलती है तो और जोर से श्वास लेनी पड़ती है। सम्भोग के क्षण में स्त्री बड़े जोर से श्वास लेती है। उसका पूरा खून उत्तप्न हो जाता है। उस उत्तप्त खून के क्षण में बच्चेके स्नायु भी जलते है और ऑक्सीजन की कमी की स्थिति में बच्चे का आई. क्यू., उसका बुद्धिमाप नीचे गिर जाता है।

इस वैज्ञानिक के हिसाब से दुनिया में जो बढ़ती जाती मानसिक बीमारी का कारण है, उनमें एक बुनियादी कारण यह है कि सारी दुनिया में अब – सारे धर्मों के हिसाब को छोडकर – लोग गर्भ के समय भी सम्भोग कर रहे है।

यह बड़े मजे की बात है कि कोई पशु गर्भ के समय सम्भोग नही करता, सिर्फ़ आदमी को छोडकर। पशु गर्भ के समय सम्भोग नहीं करते, सिर्फ मनुष्य करते हैं। इसलिये मनुष्य से ज्यादा विकृत पशु पैदा भी नही होते। यह बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि कोई भी रूपान्तरण – ऊर्जा का गर्मी का, फायर का – अग्नि का रूपान्तरण है।

तप अन्तिम रूपान्तरण है, जहाँ व्यक्ति शरीर से अपने सारे सम्बन्ध छोड़ देता है, जहाँ आत्मा सब तरह के कर्म-मल से अलग हो जाती है । एक महागर्मी की जरूरत है । उस गर्मी के पहले चरित्र को घटना घट जानी चाहिये । क्योंकि दुश्चरित्र का मतलब है, लीकेज । उसके जीवन से ऊर्जा इधर-उधर भटक रही है — जैसे नाव में छेद हो, या बाल्टी मे छेद हो और आप उसमें पानी भर रहें हों । जब पानी में होती है बाल्टी तो बिलकुल भरी मालूम पड़ती है । जैसे ही ऊपर उठाने लगते हैं, पानी नीचे बहने लगता है । जब तक ऊपर उठकर आती है बाल्टी, तब तक पानी एक बूंद भी नही बचता । सब पानी छेदो से बह जाता है ।

मरने के समय में आपकी बाल्टी बिलकुल खाली होती है । दुख मृत्य का नही है, दुख खाली जीवन का है, जो मरने के क्षण में हाथ आता है । होना तो उलटा चाहिये । अगर जीवन में चरित्र की आधारशिला निर्मित की होती, तो मृत्यु के समय में आप सबसे ज्यादा भरे हुए होते । और जो व्यक्ति भरा हुआ मर सकता है, उसका फिर कोई जन्म नही होता । जो खाली मरता है, वह फिर भरने की आकांक्षा से मरता है, फिर नया जन्म शुरू हो जाता है ।

जब आपकी खाली बाल्टी आ जायेगी कुएँ के पाट पर, स्वभावत आप फिर से बाल्टी को पानी में डालेगे । क्योकि भरने के लिये तो सारी चेष्टा थी । लेकिन उसी बाल्टी को पानी मे डाल रहे है, जिसके छिद्रों ने पानी को बहा दिया । फिर वही होगा । बाल्टी के छेद 'दुश्चरित्रता' हैं । बाल्टी के छेदो का भर जाना, रुक जाना, बन्द हो जाना 'चरित्र' है ।

यह बहुत मजे की बात है कि जितना भी चरित्रवान व्यक्ति हो, वह ऊर्जा नही खोता । चरित्रता से ऊर्जा बढती है, और दुश्चरित्रता से ऊर्जा खोती है । तो जिस काम को भी करके आपको लगता हो कि आप और भी शक्तिशाली हो गये, उस काम को आप चरित्र समझना; और जिस काम को करके आपको लगता हो कि आप थक गये और टूट गये, आप उस काम को दुश्चरित्र समझना ।

मोटी धारणाओ में मत पडना; क्योकि मोटी धारणाएँ तो सभी समाजो में अलग होती हैं । एक बात यहाँ चरित्र हो सकती है भारत में, वही बात पाकिस्तान में दुश्चरित्र हो सकती है । इतनी दूर जाने की जरूरत नही है : आपके घर में जो बात चरित्र हो सकती है, वही बात पड़ोसी के घर में दुश्चरित्र हो सकती है ।

तो इन बातो से कोई सम्बन्ध नही है महावीर का । महावीर का सम्बन्ध उस चरित्र से है, जो ऊर्जा को बचाता है । तो आप कहीं भी हों दुनिया में, एक ही बात ख्याल रखने की है, कि मेरी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ तो नहीं खोती है ? मै उसका व्यर्थ तो अपव्यय नहीं करता हूँ ?

पर यह बोध भी, क्रमशः, कड़ी-कड़ी ही पैदा होगा ।

'और तप से कर्ममल-रहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है ।'

और जब ऊर्जा पूरी इकठ्ठी होती है, तो एक बिन्दु आता है, एक इवेपोरेटिंग पॉइंट आता है, जहाँ इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि जो भी व्यर्थ है, वह जल जाता है । असार जल जाता है और सिर्फ शुद्धतम शेष रह जाता है । उस अग्नि से गुजर कर जो बच रहता है, वही मुक्ति है, वही मोक्ष है ।

'ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप — इस चतुष्टय अध्यात्ममार्ग को प्राप्त होकर, मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सद्‌गति को पाते हैं ।'

मुक्त हो जाना ही एकमात्र लक्ष्य है सारे जीवन की दौड़ का ऊहापोह का । लेकिन मोक्ष का विज्ञान है: मुमुक्षा से शुरू करें, ज्ञान को अनुभव बनाएँ, अनुभव श्रद्धा बनेगी, श्रद्धा से चारित्र्यका जन्म होगा । चरित्र के जन्म पर ऊर्जा इकठ्ठी होनी शुरू होगी और आप एक झील बन जायेंगे शक्ति की । एक मात्रा पर, उस मात्रा का कोई माप नहीं है, क्योंकि किसी वैज्ञानिक ने अभी तक उसे मापने की कोशिश नहीं की कि अन्तर-ऊर्जा किस बिन्दु पर मोक्ष में प्रवेश करा देती है । लेकिन मैं समझता हूँ कि आज नहीं कल, हम उसको भी माप सकेंगे ।

विज्ञान विकसित हो रहा है और धीरे-धीरे गहरा हो रहा है । अब तक विज्ञान बहुत-सी चीजें माप नहीं पाता था, अब उसने मापना शुरू कर दिया है । अब रात आपकी नींद मापी जा सकती है कि कब गहरी है और कब हल्की है; कब स्वप्न चल रहा है, कब नहीं चल रहा है । क्योंकि मस्तिष्क की तरंगें बदल जाती हैं । जब स्वप्न चलता है, तब तरंगें और होती हैं; जब नहीं चलता, तब और होती हैं । जब गहरी, प्रगाढ़ निद्रा होती है, तो तरंगें और होती हैं । तो पूरी रात ग्राफ बनता रहता है कि आपने कब स्वप्न लिया । अब तो इस बात की भी पकड़ आ गई है कि कब आपके भीतर काम-वासना से भरा हुआ स्वप्न चल रहा है । क्योंकि जब काम-वासना भीतर होती है, तो गर्मी बदल जाती है ।

आपने छोटे बच्चों को देखा होगा, रात में कई बार उनकी जननेन्द्रिय सक्रिय हो जाती है ? पुरुषों की भी होती है, मरते दम तक होती है । रात नींद में कम-से-कम दस बार, सामान्य स्वस्थ व्यक्ति की जननेन्द्रिय सक्रिय हो जाती है । जब भी सक्रिय होती है, तभी उसके शरीर का सारा-का-सारा गर्मी का तल बदल जाता है । उसकी श्वास बदल जाती है । वह सब ग्राफ पर आ जाता है ।

इस बात की सम्भावना बढ़ती जाती है कि हम चरित्र के भी ग्राफ ले सकें । क्योंकि जैसे-जैसे ऊर्जा भीतर इकठ्ठी होती है, भीतर रासायनिक परिवर्तन हो रहे

ह, उन परिवर्तनों को मापने का कोई-न-कोई उपाय खोजा जा सकता है। और तब एक डिग्री भी तय की जा सकती है कि ऊर्जा के अमुक डिग्री तक पहुँच जाने पर व्यक्ति की चेतना पदार्थ से छूट जाती है, मुक्त हो जाती है ।

गर्मी की एक खास डिग्री, और व्यक्ति शरीर और संसार से अलग हो जाता है । उस अलग होने की घटना का नाम मोक्ष है ।

आज इतना ही ।

लोकतत्त्व-सूत्र : ४

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; २८ अगस्त, १९७३

तत्थ पंचविहं नाणं,
सुयं आभिनिबोहियं ।
ओहिनाणं तु तइय,
मणनाण च केवलं ।।[1]

नाणस्सावरणिज्ज,
दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं,
आउकम्मं तहेव य ।।

नामकम्म च गोत्तं च,
अतरायं तहेव च ।
एवमेयाइं कम्माइं,
अट्ठेव उ समासओ ।।

श्रुत, मति, अवधि, मनःपर्याय और केवल – इस भांति ज्ञान पांच प्रकार का है ।

ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय – इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाये हैं ।

मनुष्य जाति के इतिहास में महावीर ने ज्ञान का पहला विभाजन किया है। ज्ञान के कितने आयाम हो सकते हैं, कितनी दिशाएँ हो सकती है, ज्ञान कितने प्रकार का हो सकता है, या होता है – महावीर का वर्गीकरण प्रथम है। अभी पश्चिम में इस दिशा में काफ़ी काम हुआ है। महावीर ने पाँच प्रकार के ज्ञान बताए हैं। इस सदी के प्रथम चरण तक सारी मनुष्यता मानकर चलती थी कि ज्ञान एक ही प्रकार का है। वैज्ञानिक ज्ञान का एक ही रूप स्वीकार करते थे। लेकिन अब वैज्ञानिकों ने भी महावीर के पहले तीन ज्ञान स्वीकार कर लिए हैं। और वह दिन ज्यादा दूर नहीं है, जब बाद के दो ज्ञान भी स्वीकार करने पड़ेंगे।

ज्ञान के इस वर्गीकरण को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। मनुष्य की चेतना का यह पहला वैज्ञानिक निरूपण है। पहले तीन ज्ञान सामान्य मनुष्य में भी हो सकते हैं – होते हैं। चौथा ज्ञान साधक के जीवन में प्रवेश करता है, और अन्तिम, पाँचवां ज्ञान केवल सिद्ध के जीवन में होता है। इसलिए पश्चिम के मनोवैज्ञानिक पहले तीन ज्ञानों को स्वीकार करने लगे हैं; क्योंकि उनकी झलक सामान्य मनुष्य के जीवन में भी मिल सकती है। साधक की चेतना में क्या घटित होता है, और सिद्ध की चेतना में क्या घटित होता है – अभी देर है कि इस सम्बन्ध में जानकारी साफ़ हो सके; लेकिन महावीर की दृष्टि बहुत साफ़ है।

पहला ज्ञान, महावीर कहते है, 'श्रुति', दूसरा 'मति', तीसरा 'अवधि'। श्रुति ज्ञान : जो सुनकर होता है, जिसका हमें स्वयं कोई अनुभव नहीं है। हमारा अधिक ज्ञान, श्रुति-ज्ञान है। न तो हमारी अन्तरात्मा को उसकी कोई प्रतीति है, और न हमारी इन्द्रियों को उसका कोई अनुभव है। हमने सुना है, सुनने से वह हमारी स्मृति का हिस्सा हो गया है। इसे ही जो ज्ञान मानकर रुक जाता है, वह ज्ञान के पहले चरण पर ही रुक गया। यह तो ज्ञान की शुरुआत ही थी। जो सुना है, जब तक देखा न जा सके; जो सुना है, जब तक जीवन न बन जाये; जो सुना है, जब तक जीवन की धारा में प्रविष्ट न हो जाये, तब तक उसे ज्ञान कहना औपचारिक रूप से ही है। हमारा अधिक ज्ञान इसी कोटि में समाप्त हो जाता है। और मजा यह है कि हम इसी ज्ञान को समझ लेते हैं, पूर्णता हो गई।

श्रुति-ज्ञान को जिसने पूरा ज्ञान समझ लिया, वह पंडित हो जाता है, ज्ञानी कभी भी नहीं हो पाता। स्कूल हैं, कॉलेज हैं, गुरु हैं, शास्त्र हैं – इनसे जो भी हमें

मिलता है, वह श्रुति-ज्ञान ही हो पाता है । वह श्रुति है । कान आपका पूरा अस्तित्व नहीं है; और कान से जो स्मृति में चला जाये, वह जीवन का एक बहुत क्षुद्र हिस्सा है, वह सिर्फ़ रिकॉर्डिंग है । सुना आपने कि 'ईश्वर है ।' ये शब्द कान में चले गये, स्मृति के हिस्से बन गए; बार-बार सुना तो स्मृति प्रगाढ़ होती चली गई; इतनी बार सुना कि आप यह भूल ही गये कि यह सुना हुआ है ।

एडौल्फ हिटलर कहा करता था : किसी भी असत्य को बार-बार दुहराते चले जाओ, सुननेवाले की फ़िकर मत करो, सुनाए चले जाओ, तो आज नहीं कल सुननेवाला भूल जायेगा कि जो कहा जा रहा है वह असत्य है ।

जिन्हें हम सत्य मानकर जानते हैं, उनमें बहुत से इसी तरह के असत्य हैं जो इतनी बार कहे गये हैं कि आपको ख़याल भी नहीं रहा कि वे असत्य हो सकते हैं । और असत्य से कोई अड़चन भी बहुत नहीं आती । सच तो यह है, सत्य से अड़चन आनी शुरू होती है । असत्य बडा कन्विनिएन्ट, सुविधापूर्ण है ।

फेड्रिक नीत्शे ने तो बडी अनूठी बात कही है । उसने कहा यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य के जीवन में सत्य आयेगा, वैसे-वैसे मनुष्य को जीवन में कठिनाई होगी; क्योंकि मनुष्य जीना ही असत्य के सहारे है । वह उसका पोषण है ।

नीत्शे ने यह भी कहा है : इसलिए किसी के असत्य मत तोड़ो । उसको बेचैनी मत दो; उसको कष्ट मत दो । और अगर तुमने तोड़ भी दिये उसके असत्य, तो वह नये असत्य गढ़ लेगा । और नये असत्यो को बजाए पुराने असत्य ज्यादा सुविधापूर्ण होते हैं, क्योंकि उन्हें गढ़ना नही पड़ता । और वे हमें वसीयत में मिलते हैं, सुनकर मिलते हैं । उन पर भरोसा मज़बूत होता है ।

आज दुनिया में जो बेचैनी है, नीत्शे का कहना है कि यह बेचैनी इसी कारण है कि पुराने सत्य सब असत्य मालूम होने लगे हैं, जैसे कि वे थे । सब असत्य प्रगट हो गए, और नये असत्य खोजना बड़ा कठिन हो रहा है । और आदमी बड़ी दुविधा में पड़ गया है । नीत्शे की बात में थोड़ी सचाई है । जैसा आदमी है – रुग्ण, विक्षिप्त, वह असत्य के सहारे ही जीता है । और अगर उसे पता चल जाये कि यह असत्य है, तो कठिनाई शुरू हो जाती है । असत्य के सहारे वह जीता है तभी तक, जब तक उसे लगता है ये असत्य सत्य हैं । तब तक बड़ी शान्ति होती है ।

ध्यान रहे, अगर आप सन्तोष की खोज कर रहे हैं, सिर्फ़ बेचैनी से बचना चाहते हैं, तो असत्य भी काम दे सकते हैं । लेकिन अगर आप मुक्ति की खोज कर रहे हैं, तो असत्य काम नही दे सकते । चाहे फिर सत्य कितना ही पीड़ादायी हो उसके अनुभव को उपलब्ध होना ही पड़ेगा ।

श्रुति-ज्ञान निन्यानबे प्रतिशत असत्य है; क्योंकि जिनसे हम सुनते हैं, उनका जीवन असत्य है। लेकिन परखा हुआ है वह असत्य ज्ञान। हजारों साल से काम दे रहा है!

...इसे हम ऐसा समझें :

आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं। तो आप उस स्त्री को कहते हैं कि 'बस, तेरे अतिरिक्त इस जगत् में न तो कोई सुन्दर है, न कोई प्रेम का पात्र है। बस, तेरे अतिरिक्त मेरे लिए कोई भी नही है।' और आप भी जानते हैं कि यह सत्य नही है। क्योंकि यही बात आप पहले दूसरी स्त्रियो से भी कह चुके हैं। और यह भी आप जानते हैं कि यही बात आप और स्त्रियो से भी कहेंगे। क्योकि अभी जीवन का अन्त नही हो गया है। लेकिन यह असत्य बड़ा मधुर है, और कहने में बड़ा उपयोगी है। और वह स्त्री भी जानती है कि यह बात बिलकुल सही तो नही हो सकती, लेकिन फिर भी इस पर भरोसा करती है; क्योकि सुनने में यह प्रीतिकर है। और इस असत्य के सहारे आपका प्रेम खड़ा होता है।

यह प्रेम कितनी देर चल सकता है...?

और जब यह प्रेम टूटता है, तो आप यह नही देखते कि हमने एक असत्य के सहारे इसको खड़ा किया था। आप समझते है कि 'जो पात्र हमने चुना था, वह ही गलत था। बात तो जो हमने कही थी, वह ठीक थी, लेकिन व्यक्ति जो हमने चुना वह गलत था। हम अब दूसरे व्यक्ति को चुनकर वही ठीक बात फिर से कहेंगे।'

आप दूसरे से भी कहेंगे, और तीसरे से भी कहेगे। और हर बार यह बात कारगर होगी। क्योंकि मन असत्य मे पला है। अगर प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहे कि तू मुझे सुन्दर मालूम पड़ती है तुलनात्मकरूप से : जितनी स्त्रियो को मैं जानता हूँ, उनमें तू सबसे सुन्दर मालूम पड़ती है, लेकिन और स्त्रियाँ भी सुन्दर हो सकती हैं, जिन्हें मैं जानता नही हूँ—तो कविता नष्ट हो जायेगी। तो प्रेम खड़ा ही नहीं हो पायेगा। वह स्त्री कहेगी कि आप कोई गणित का हिसाब कर रहे हैं : रिलेटिव, सापेक्ष? आप कहे कि कल हो सकता है मुझे तुझसे अच्छी स्त्री मिल जाये, तो मैं उससे प्रेम करूँगा, तो प्रेम खड़ा ही नही होगा।

सत्य के आधार पर प्रेम को खड़ा करना बड़ा मुश्किल है; असत्य के आधार पर प्रेम खड़ा हो जाता है, फिर टूटता है। टूटेगा ही! आप रेत के भवन बना सकते हैं, लेकिन उन्हे गिरने से नही बचा सकते। आप ताश के महल खड़े कर सकते हैं, लेकिन हवा का छोटा-सा झोका उन्हें गिरा जायेगा।

पर हमारी पूरी जिन्दगी ऐसे असत्यों पर खड़ी है। माँ सोचती है कि उसका बेटा उसे सदा प्रेम करेगा। बाप सोचता है, बेटा उसकी सदा मानेगा। लेकिन

इस बाप ने भी अपने बाप की कभी नहीं मानी । इसे इसका ख़्याल ही नहीं है कि सत्य क्या है ? एक घड़ी आएगी ही, जब बेटे को अपने बाप को इनकार करना पड़ेगा । और जो बेटा अपने बाप को इनकार न कर सके, वह ठीक अर्थों में जीवित ही नहीं हो सकता । जैसे माँ के गर्भ से अलग होना ही पड़ेगा बेटे को, वैसे ही बाप की आज्ञा के भी गर्भ के बाहर जाना पड़ेगा ।

मैंने सुना है कि एक बहुत प्रसिद्ध यहूदी फकीर जोसुआ मरा । वह बड़ा सात्विक, शीलवान, शुद्धतम व्यक्ति जैसे हो, वैसा व्यक्ति था । स्वर्ग में उसके स्वागत का आयोजन हुआ । बडे बैण्ड-बाजे, बड़ा नृत्य, बड़ा संगीत, बड़ी सुगन्ध, बडी फुलझड़ियाँ, पटाखे – लेकिन वह स्वागत में सम्मिलित नही होना चाहा । उसने अपनी आँखें छुपा लीं, जैसे कोई बडी गहरी पीड़ा उसे हो । और वह रोने लगा । बहुत समझाया, लेकिन वह राजी नहीं हुआ । तो फिर उसे ईश्वर के सामने ले जाया गया । और ईश्वर ने उससे कहा .

" जोसुआ, यह स्वागत तेरे योग्य है । तूने जीवन ऐसा जिया है – पवित्र, कि स्वर्ग में द्वार पर तेरा स्वागत हो । यह जरूरी है । तू इतना चिन्तित और बेचैन क्यो है ? तेरी जिन्दगी में कही कोई कलुष नही, कहीं कोई दाग नही; तेरे जैसा शुद्ध व्यक्ति मुश्किल से कभी पृथ्वी से स्वर्ग आता है । इसलिए स्वर्ग प्रसन्न है; उस प्रसन्नता में सम्मिलित हो ।"

जोसुआ ने कहा, " और तो सब ठीक है, लेकिन एक पीड़ा मेरे मन में है । जरूर मेरे जीवन में कोई पाप रहा होगा, अन्यथा यह नही होता कि मेरा बेटा . . . जोसुआ यहूदी है . . . मेरी सारी चेष्टा के बावजूद, मेरे उदाहरण के बावजूद, मेरे जीवनके बावजूद ईसाई हो जाता । वह पीड़ा मेरे मन में है ।"

ईश्वर ने कहा कि " तू मत भयभीत हो, तू मत चिन्तित हो, मैं तुझे समझ सकता हूँ : आई केन अन्डरस्टैंड यू, बिकाज दि सेम वाज डन बाइ माइ ओन सन, जीसस – वह मेरा बेटा जो जीसस है, वही उपद्रव उसने भी किया, वह भी ईसाई हो गया ।"

बेटे एक सीमा पर जाकर बाप से पृथक होंगे ही । अनिवार्य है । लेकिन न बेटा इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है, न बाप इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है । माँ सोचती है, बेटा उसे सदा प्रेम करता रहेगा । अगर बेटा माँ को सदा प्रेम करता रहे, जैसे उसने बचपन में किया था, तो बेटे का जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा । एक सीमा पर माँ के घेरे के बाहर उसे जाना ही पड़ेगा । जब वह किसी स्त्री को चुनेगा, तब माँ फीकी पड़ती जायेगी, सम्बन्ध औपचारिक रह जायेगा । क्योंकि जीवन की धारा आगे की तरफ़ जाती है, पीछे की तरफ नहीं ।

अगर बेटा माँ को प्रेम करता चला जाये, तो धारा उल्टी हो जायेगी । माँ बेटे को प्रेम करेगी, यह बेटा भी अपने बेटे को प्रेम करेगा; क्योंकि प्रेम की धारा

पीछे की तरफ नहीं बहती। पीछे की तरफ तो मधुर सम्बन्ध बाकी रह जायें, इतना काफ़ी है। वह भी नहीं हो पाता। लेकिन हर माँ यही भरोसा करेगी, इसलिए हर माँ दुखी होगी, हर बाप पीड़ित होगा। पीड़ा का कारण बेटा नहीं है, पीड़ा का कारण एक असत्य का आधार है। और ऐसा नहीं कि बुरे बेटे का बाप दुखी होता है, भले बेटे का बाप भी दुखी होता है।

महावीर के पिता अगर जिन्दा होते तो दुखी होते। महावीर के पिता से महावीर ने कहा कि 'मैं संन्यस्त हो जाना चाहता हूँ।' उन्होंने कहा – 'बस, अब यह बात दोबारा मत उठाना। जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक यह बात अब दोबारा मत उठाना। मेरी मौत पर ही तू संन्यासी हो सकता है।'

सोचें, अगर महावीर न मानते और सन्यासी हो जाते, तो बाप छाती पीटकर रोता। बुद्ध के बाप रोए। बुद्ध घर से जब चले गये, तो वे पीड़ित हुए, दुखी हुए। बुद्ध ज्ञान को भी उपलब्ध हो गये, महासूर्य प्रगट हो गया . . .लेकिन बाप अपनी ही पीड़ा से परेशान है। और जब बुद्ध वापिस लौटे तो बाप ने कहा कि 'देख, बाप का हृदय है यह, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूँ, वापिस लौट आ! छोड़ यह भिखारीपन, हमारे कुल में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ। शर्म आती है, तेरी खबरें सुनता हूँ कि तू भीख माँगता है तो सिर झुक जाता है। क्या है कमी, जो तू भीख माँगता है? और हमारे कुल में कभी किसी ने भीख नहीं माँगी, तू कुल को डुबानेवाला है।'

तो ऐसा नहीं है कि आप का बेटा दुष्ट हो जाये, पापी, हत्यारा हो जाए, तो आप दुखी होंगे। बुद्ध हो जाए, तो भी दुखी होंगे। बाप और बेटे के बीच फासला निर्मित होगा ही। बेटा बाप की आकांक्षाओं के पार जाएगा। लेकिन इस सत्य पर हम जीवन को खड़ा नहीं करते, हम असत्य पर खड़ा करते हैं। और असत्य सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अन्त में कष्ट लाते हैं, लेकिन सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर आप अपने ज्ञान की जाँच करेंगे, तो पायेंगे उसमें निन्यानबे प्रतिशत असत्य के आधार हैं। वे सुने हुए हैं।

हमारा ज्ञान करीब-करीब अज्ञान है। महावीर इस ज्ञान को श्रुति-ज्ञान कहते हैं, जो कि सुनकर सीख लिया है दूसरों से, उधार। यह बहुत मूल्यवान नहीं है; यह संसार के लिए उपयोगी है। बाजार में इसकी जरूरत है, क्योंकि बाजार झूठ पर खड़ा है। वहाँ आप सच्चे होने लगेंगे, तो आप असुविधा में पड़ जायेंगे, और बाजार के बाहर फेंक दिये जायेंगे।

लेकिन, इस ज्ञान को ही हम धर्म के जगत में भी ले जाना चाहते हैं। किसी ने वेद पढ़ा है, किसी ने गीता, किसी ने कुरान, किसी ने महावीर के वचन, वह तो

पढ़कर ही समझ लेता है कि सब जान गया । यह तो पहला चरण भी नहीं है । और इसे जो ज्ञान समझ लेगा, उसके आगे के चरण उठने असम्भव हो जायेंगे ।

दूसरे ज्ञान को महावीर कहते है 'मति' । और आप जानकर हैरान होगे कि सुने हुए ज्ञान को वह पहला ज्ञान कहते है । मति का अर्थ है, इन्द्रियों से जाना हुआ । इसको वे श्रुति से ऊपर रखते हैं । यह जरा चिन्ता की बात मालूम होगी : मन से सुना हुआ नीचे रखते हैं, इन्द्रियों से जाने हुए को उपर रखते हैं । क्योकि, अन्ततः इन्द्रियों से जाना हुआ, सिर्फ़ कानो से सुने हुए से ज्यादा बहुमूल्य, ज्यादा जीवन्त है । आँखें देखती हैं, हाथ छूते हैं, जोभ स्वाद लेती है – इनसे जो जाना हुआ है, वह ज्यादा वास्तविक है । लेकिन, हम इन्द्रियों को भी अशुद्ध कर लिए हैं अपने सुने हुए ज्ञान के कारण । वह उसमें भी बाधा डालता है । आप जो देखते हैं, वह आप वही नही देखते हैं, जो मौजूद है । आप उसकी भी व्याख्या कर लेते हैं ।

हमारी इन्द्रियों का ज्ञान भी हमने अशुद्ध कर लिया है । आप व्याख्या कर लेते हैं। आप वही नहीं देखते, जो है; आप वही देखते है, जो आप देखना चाहते हैं; वही छूते हैं, जो आप छूना चाहते हैं। वही आपकी समझ में इन्द्रियाँ भी पकड़ती है ।

इन्द्रियो के सम्बन्ध में हम जो भी चुनाव करते है, वह भी परिशुद्ध नही है । जैसे कि आप बाज़ार में गये, अगर आप भूखे हैं तो आपको होटल और रेस्टॉरेन्ट दिखाई पड़ेंगे; भूखे नही हैं तो बिलकुल दिखाई नही पड़ेगे, आप उनके बोर्ड नही पढ़ेंगे । तो जो दिखाई पड़ रहा है, वही आप नही देखते; आप जो देखना चाहते हैं, वही आप को दिखाई पड़ेगा । एक स्त्री बाजार में निकलती है, तो उसे आभूषणो की दुकानें, हीरे-जवाहरात की दुकानें दिखाई पड़ती हैं ।

मैंने सुना है कि एक पुलिस स्टेशन पर एक आदमी को पकड़कर लाया गया, जो बुर्का ओढ़कर रास्ते पर चल रहा था । वह किसी दूसरे राष्ट्र का जासूस था । लेकिन उसने बुर्का ओढ़ रखा था और कपड़े उसने पूरे स्त्रियो के पहन रखे थे । पुलिस ऑफिसर ने उस आदमी से, जो उसे पकड़कर लाया था, पूछा कि 'तुमने इसे पहचाना कैसे कि यह आदमी स्त्री नही है ?' उसने कहा कि 'यह रास्ते से चला जा रहा था, हीरे-जवाहरातों की दुकानें थी, उन पर इसने एक नजर भी नही डाली तो मुझे शक हो गया कि यह स्त्री नही हो सकती, बुरके के अन्दर कोई और है ।'

नसरुद्दीन घर में सफाई कर रहा था । मक्खियाँ घर में काफ़ी थी । पत्नी और वह दोनों मक्खियां मार रहे थे । उसने चार मक्खियां मारी और आकर कहा कि 'दो स्त्रियाँ हैं और दो पुरुष ।' उसकी स्त्री ने कहा कि तुम भी गजब के खोजी हो गये । तुम मक्खियों को पहचाने कैसे कि कौन नर है, कौन मादी ? तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'दो आइने पर बैठी थी, जरूर स्त्रियाँ होंगी ।'

आप क्या देखते हैं, क्या सुनते हैं, क्या छूते हैं – वह भी चुनाव है। गहरे में आप व्याख्या कर रहे हैं। इसलिए आप अगर एक ही किताब को हर वर्ष बार-बार पढ़ें तो अलग-अलग अर्थ निकालेंगे, क्योंकि अर्थ निकालनेवाला बदल जायेगा।

इसलिए हमने इस देश में यह तय किया था कि गीता या उपनिषद् जैसी किताबें सिर्फ पढ़कर रख न दी जायें, उनका पाठ किया जाए – बार-बार पाठ किया जाये। क्योंकि जो अर्थ आपको दिखाई पड़ेगा, वह गीता का नहीं, आपकी समझ उस समय जैसी होगी वैसा वह अर्थ होगा।

इसलिए एक व्यक्ति अगर गीता को दस वर्ष बार-बार पढ़े और विकासमान व्यक्ति हो, तो हर बार नये अर्थ खोज लेगा, अर्थ की गहराई बढ़ती चली जायेगी। और अनन्त जन्मों में पढ़ने के बाद ही कृष्ण का अर्थ उसकी पकड़ में आ सकेगा, जब उसकी अपनी ख़ुद की गहराई उतनी हो जायेगी। उसके पहले गीता का अर्थ पकड़ में नहीं आ सकता।

लेकिन महावीर इन्द्रिय, शुद्ध इन्द्रिय ज्ञान को ऊँचाई पर रखते हैं। पंडित से ऊँचाई पर रखते हैं बच्चे को, क्योंकि बच्चे का इन्द्रिय ज्ञान ज्यादा शुद्ध है। वह चीज़ों को सफाई से देखता है। अभी उसके पास कोई बुद्धि नहीं है कि जल्दी से व्याख्या करे कि क्या गलत, क्या ठीक? अभी वह सिर्फ़ देखता है। एक छोटे बच्चे की आँख चाहिए, तो आप के ज्ञान में एक वास्तविकता आ जायेगी।

ध्यान रहे, सब धर्म आमतौर से 'श्रुति' से उलझे हुए हैं और विज्ञान 'मति' पर चला गया है। विज्ञान इन्द्रिय पर भरोसा करता है, शब्दों पर नहीं। वैज्ञानिक कहता है: जो दिखाई पड़ता है, वही भरोसे योग्य है; जो अनुभव में आता है, वही भरोसे योग्य है।

चार्वाक की पूरी परम्परा का जोर यही था कि जो प्रत्यक्ष है, वही भरोसे योग्य है। 'इस सुने हुए से क्या अर्थ कि वेद में लिखा है कि परमात्मा है! परमात्मा को प्रत्यक्ष करके बताओ; अगर वह सामने है, तो ही माना जा सकता है। .. छुआ जा सके, देखा जा सके!'

चार्वाक के कहने में भी अर्थ है। उसका जोर दूसरे ज्ञान पर है। और पहले ज्ञान से दूसरा ज्ञान जरूर कीमती है। इसलिए पश्चिम में विज्ञान का जन्म हुआ, क्योंकि वे इन्द्रियवादी हैं। पूरब में विज्ञान का जन्म नहीं हो सका, क्योंकि हम श्रुति से अटके रह गये। हमने इन्द्रिय ज्ञान की कोई फ़िकर नहीं की: कि इन्द्रिय ज्ञान को प्रगाढ़ किया जाये, शुद्ध किया जाये; और इन्द्रिय से जो जाना जाता है, उसे सत्य के क़रीब लाया जाये। विज्ञान की सारी कोशिश यही है कि चीजें ठीक-से देखी जा सकें। सारे प्रयोग, सारी प्रयोगशालाएँ एक ही काम कर रही हैं कि जो इन्द्रियाँ जानती हैं, उसको और शुद्धता से कैसे जाना जा सके।

महावीर 'मति' को दूसरे नम्बर पर रखते हैं। अभी पश्चिम में एक नया आन्दोलन चलता है, एनकाउण्टर ग्रुप्स् ऑफ सेन्सिटिविटी ट्रेनिंग – संवेदनशीलता का प्रशिक्षण : कि लोग संवेदनशीलता को बढ़ाएँ। अगर महावीर को पता चले तो वे कहेंगे कि अच्छा है; 'श्रुति' से 'मति' बेहतर है। पश्चिम में सैंकड़ो प्रयोग-शालाएँ काम कर रही हैं, जहाँ लोग जाते हैं और अपनी इन्द्रियों की संवेदना को बढ़ाते है।

आपको पता भी नही कि इन्द्रियो की सवेदना आपकी मर चुकी है। जब आप किसी को छूते हैं – सच में छूते हैं? क्या आपकी जीवन-ऊर्जा आपके हाथ से बहती है? उस व्यक्ति में प्रवेश करती है; उसको छूती है? या बस, हाथ हाथ में ले लेते है?

अगर आप पचास लोगो के हाथ हाथ में लें, तो आप पचासों हाथ अलग-अलग अनुभव करेंगे, अगर आप सचेत हैं तो। किसी का हाथ बिलकुल मुर्दा मालूम पड़ेगा कि यह आदमी मिलना नही चाहता है। हाथ तो उसने हाथ में दे दिया है, लेकिन ख़ुद को पीछे खीच लिया है। कि सिर्फ़ हाथ है वहाँ, आत्मा नही है। किसी आदमी का हाथ तटस्थ मालूम पड़ेगा, कि ठीक है वह हाथ तक आया है, लेकिन वह आपमें प्रवेश नही करेगा, वह वही हाथ पर खड़ा रहेगा। जैसे दो व्यक्ति अपनी-अपनी सीमाओ पर, अपने-अपने घर के घेरे में खड़े हैं। किसी व्यक्ति के हाथ से लगेगा कि उसके हाथ से ऊर्जा ने एक छलाँग ली है और वह आप में प्रवेश कर गया है। उसने आपका हाथ ही नही छुआ, आपके हृदय तक अपने हाथ को फैला दिया है।

अलग-अलग हाथ अलग-अलग स्पर्श देगा। लेकिन यह भी उसको ही देगा, जिसके पास स्पर्श के बोध की क्षमता है। वह क्षमता हमारी मर गई है। हमें किसी चीज में कुछ पता ही नही चलता। हमें ख़याल ही नही आता कि हम चारो तरफ़ प्रतिक्षण अनन्त संवेदनाओ से घिरे हैं, लेकिन उनका हम अनुभव नहीं कर रहे।

कभी आराम से कुर्सी पर बैठकर ही अनुभव करें कि कितनी संवेदनाएँ घट रही हैं : कुर्सी पर आपके शरीर का दबाव, कुर्सी का आपको स्पर्श; जमीन पर रखे आपके पैर; हवा का झोंका जो आपको छू रहा है; फूल की गन्ध जो खिड़की से भीतर आ गई है; चौके में बर्तनो की आवाज, बनते हुए भोजन की गन्ध जो आपके नासापुटो को छू रही है; छोटे बच्चे की जो किलकारी आपको छूती है और आल्हादित कर जाती है, किसी का चीत्कार, किसी का रोना जो आपको भीतर कम्पित कर जाता है।

अगर रोज कोई पन्द्रह मिनट चुप बैठकर अपने चारों तरफ की संवेदनाओं का ही अनुभव करे तो भी बड़े गहरे ध्यान को उपलब्ध होने लगेगा।

इन्द्रियाँ द्वार हैं – अद्भुत द्वार हैं, और उनसे हम जीवन में प्रवेश करते हैं।

लेकिन हमारी इन्द्रियाँ बिलकुल मुर्दा हो गई हैं। द्वार बन्द हैं, हम उनको खोलते ही नहीं। हैरानी की बात है कि हमारी इन्द्रियाँ पशुओं से कमजोर हो गई हैं। कुत्ता आपसे ज्यादा सूंघता है, आश्चर्य की बात है यह। घोड़ा मीलों दूर से गन्ध ले लेता है, हम नहीं ले पाते। ध्वनि, पशु हमसे ज्यादा गहराई से सुनते हैं।

साँप को आपने नाचते देखा होगा। मदारी बजाता है अपनी बांसुरी या तुरही और साँप नाचता है। और वैज्ञानिक कहते हैं, साँप के कान नहीं हैं तो साँप सुन नही सकता। यह बड़ी मुश्किल की बात है। हजारों साल की यह धारणा है कि साँप संगीत से आन्दोलित होता है। और वैज्ञानिक कहते है कि साँप को कान हैं ही नहीं, इसलिए सवाल ही नही उठता आन्दोलित होने का। लेकिन वैज्ञानिक भी देखते हैं कि साँप बांसुरी को आवाज सुनकर नाचता है। तो मामला क्या है? खोज से पता चला कि साँप पूरे शरीर से सुनता है। कान नहीं हैं, फिर भी उसका रोआँ-रोआँ संगीत की ध्वनि से आन्दोलित होता है। उसके रोएँ-रोएँ से ध्वनि प्रवेश करती है। इसलिये उसके नाच की जो मस्ती है, वह आपके पास कितने ही अच्छे कान हों, तो भी नही है। लेकिन आप भी रोएँ-रोएँ से सुन सकते है; क्योंकि रोएँ-रोएँ से वायु प्रवेश करती है, और वायु के साथ ध्वनि प्रवेश करती है।

आश्चर्य न होगा कि किसी आदि समय में मनुष्य पूरे शरीर से सुनता रहा हो; क्योंकि आप सिर्फ़ नाक से ही श्वास नहीं लेते, आप पूरे शरीर से श्वांस लेते हैं। और अगर आपकी नाक खुली छोड़ दी जाये, और पूरे शरीर को लीप-पोतकर बन्द कर दिया जाये, तो भी आप तीन घंटे में मर जायेंगे। पूरे शरीर से श्वांस जा रही है भीतर। और अगर हवा पूरे शरीर से जा रही है भीतर, तो ध्वनि भी जा रही है; क्योंकि हवा ध्वनि को ले जानेवाली है। सिर्फ कान में ही ध्वनि नही जा रही है, पूरे शरीर में ध्वनि जा रही है।

थोड़ी कल्पना करें, अगर आपको पूरे शरीर से ध्वनि के सुनाई पड़ने का अनुभव हो, तो संगीत का जो आनन्द आप ले पायेंगे, और जो अनुभव, और जो ज्ञान आपको होगा, वह अभी आपको नही हो सकता। लेकिन थोड़ा तो आपको भी ख़याल होता है कि जब भी आप सगीत सुनते है तो आपके पैर नाचने लगते हैं, हाथ थपकी देने लगते हैं। उसका मतलब यह है कि हाथ भी सुन रहा है, पैर भी पकड़ रहा है। अगर कोई व्यक्ति संगीत को सुनकर नाचने लगे, उसका रोआँ-रोआँ नाचने लगे, तो उसे पूरा अनुभव होगा ध्वनि का। नही तो उसे पूरा ध्वनि का अनुभव नहीं होगा।

मति-ज्ञान का अर्थ है : हमारी इन्द्रियाँ परिशुद्ध हों, द्वार उन्मुक्त हों, और जीवन को भीतर लेने की हमारी तैयारी हो।

आप स्नान करते हैं, लेकिन आप व्यर्थ कर लेते हैं। मैं जैसा कहूँ, वैसा स्नान करें : फौवारे के नीचे खड़े हो जाएँ, सब विचार छोड़ दें, दुनिया को भूल जायें। तो जो मन्दिर में नहीं हो सकता, वह आपको स्नानगृह में हो सकता है। लेकिन सिर्फ़

पानी के स्पर्श को, जो आपके सिर पर गिर रहा है और शरीर पर जिसकी धाराएँ बही जा रही हैं, सिर्फ़ उसके स्पर्श का पीछा करें। पूरे शरीर से उसके स्पर्श को पीयें। रोएँ-रोएँ से पानी की ताजगी को भीतर जाने दें।

आप के शरीर में पचहत्तर प्रतिशत पानी है। तो जब पानी आपको बाहर से स्पर्श करता है, तब अगर आपका पूरा शरीर संवेदनशील हो तो भीतर का पानी भी आन्दोलित होने लगेगा। आप पानी ही हैं, पचहत्तर प्रतिशत। इसलिए पूरे चाँद की रात में आपको बहुत आनन्द मालूम होता है। आनन्द इसलिये मालूम होता है, क्योंकि आपके शरीर के भीतर का पच्चहत्तर प्रतिशत पानी सागर की तरह आन्दोलित होने लगता है। पूरे चाँद की रात में वह जो आपको अच्छा लगता है, वह अच्छा इसलिए लगता है कि आपके भीतर का पानी अभी भी सागर का हिस्सा है।

आप जानकर हैरान होंगे कि आपके शरीर के पानी में उतने ही तत्व हैं, जितने सागर के पानी में। वैसा ही नमक, वैसे ही केमिकल्स — ठीक उसी अनुपात में। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी का पहला जन्म मछली की तरह हुआ, वह पहली यात्रा है। अब आप बहुत विकसित हो गये हैं, लेकिन भीतर आपका जीवन अभी भी सागर की तरह है। वहाँ अब भी सागर है।

तो जब आप सागर के किनारे बैठे हैं, तब सागर के आन्दोलन को गौर से देखें और इतने लीन हो जायें कि आपके भीतर का सागर एक छलाँग लगाकर बाहर के सागर से मिलने लगे। तो आपको इन्द्रिय ज्ञान होगा।

महावीर उसे 'मति' कहते हैं। छोटे बच्चो को मति-ज्ञान होता है। जैसे-जैसे आप बड़े होते हैं, वैसे-वैसे भूलता जाता है। फिर तो उन्ही को होता है, जो ध्यान में प्रवेश करते हैं, जो फिर छोटे बच्चों की तरह हो जाते हैं। तब हवा का हल्का झोंका भी उन्हे स्वर्ग की खबर देता है; तब फूल की हल्की-सी सुगंध भी जीवन का नृत्य बन जाती है; तब दिये की लपटती-भागती लौ सारे प्राण को ऊर्जा का अनुभव बन जाती है — जब आपको मति ज्ञान होना शुरू होता है।

पश्चिम में चल रही ट्रेनिंग कि लोग अपनी इन्द्रियों को फिर सजग कर ले, हमें बहुत बचकानी मालूम पड़ेगी; क्योंकि वह हमारे ख़याल में नही है। तीन सप्ताह, चार सप्ताह के लिए लोग इकठ्ठे होते हैं किसी केंद्र पर और सब तरह से जीवन को अनुभव करने की कोशिश करते हैं। समुद्र की रेत पर आँख बन्द करके लेटते है, ताकि रेत का स्पर्श अनुभव हो सके; पानी के झरने में सिर झुकाकर बैठते हैं, ताकि पानी का अनुभव हो सके; आँख बन्द करके एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं, ताकि एक-दूसरे के शरीर के स्पर्श की प्रतीति हो सके।

दो प्रेमी भी एक-दूसरे के शरीर से बड़े ऑर्थोडॉक्स, बंधे-बंधाएँ ढंग से परिचित होते हैं। कभी आपने अपनी प्रेयसी को अपनी पीठ और उसकी पीठ मिलाकर देखा

है कि दोनों कैसा अनुभव करते हैं ? बड़ा भिन्न अनुभव होगा, अगर आप अपनी प्रेयसी की पीठ के साथ अपनी पीठ मिलाकर, आँख बन्द करके खड़े हो जायें। तो आपको पहली दफा एक नये व्यक्ति का अनुभव होगा, क्योंकि पीठ की तरफ से प्रेयसी बिलकुल भिन्न है।

लेकिन जब चीजें बंधी, रूटीन हो गई हैं। कभी आप अपने बच्चे को पास लेकर, उसके गाल को अपने गाल से लगाकर थोड़ी देर शान्त बैठे हैं ? क्योंकि बच्चा अभी शुद्ध है, अभी उसकी जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। अगर आप बैठ जाएँ अपने बच्चे के पास उसके गाल को अपने गाल से लगाकर, और अनुभव कर सकें, तो आपका बच्चा आपको भी जीवनदायी सिद्ध होगा। आपकी उम्र थोड़ी ज्यादा हो जायेगी।

यह अनुभव हुआ है कि कभी-कभी वृद्ध उम्र के लोग जब कम उम्र की लड़कियों से विवाह कर लेते हैं तो उनकी उम्र बढ जाती है। क्योकि कम उम्र की लड़की के साथ उनको भी अपनी उम्र नीचे लानी पड़ती है। उससे मिलने को, उससे सम्बन्ध बनाने को उन्हें नीचे उतरना पड़ता है; उनके शरीर की जो जड़ता है, उसे उन्हें नीचे लाना पडता है।

यह कुछ आश्चर्य न होगा कि बर्ट्रेन्ड रसॅल जैसा व्यक्ति नब्बे वर्ष की उम्र तक भी युवा रहा। क्योंकि अस्सी वर्ष की उम्र तक वह नए विवाह करता चला गया। अस्सी वर्ष की उम्र में बर्ट्रेन्ड रसॅल ने शादी की एक बीस वर्ष की लड़की से। वह जो युवापन है, वह जो ताजगी है इन्द्रियों की, वह बनी रही होगी।

रसॅल इन्द्रियवादी था। वह मानता था कि इन्द्रिय की जितनी शुद्धता हो जीवन में, और इन्द्रियों का जितना प्रगाढ अनुभव हो, उतना ही जीवन चरम पर पहुँचता है। पर महावीर ऐसा नही मानते। वे मानते हैं, जीवन के और आयाम हैं आगे।

लेकिन, हम तो 'श्रुति' पर ही अटक जाते हैं। हम 'मति' तक भी नहीं पहुँच पाते। पशुओं-जैसी शुद्ध इन्द्रियाँ चाहिए साधक के पास, तभी वह सिद्ध हो पायेगा। नहीं तो नही हो पायेगा। मगर हमारा तो उल्टा चल रहा है सारा हिसाब। हम साधक उसको कहते हैं, जो इन्द्रियों को मार रहा है, जो इन्द्रियों को दबा रहा है। अगर आपका साधु संगीत सुन रहा हो, तो आपको शक हो जायेगा कि बात क्या है ? अगर आपका साधु बहुत रस से भोजन कर रहा हो, तो आपको शक हो जायेगा कि मामला गड़बड़ है ! हमारी तो कोशिश ही यही है कि साधु इन्द्रिय को, जिह्वा को बिलकुल मार दे।

लेकिन, ध्यान रहे अगर कोई अपनी इन्द्रियों को मार देगा तो उसका मति-ज्ञान कुन्द हो जायेगा; तो उसके जानने की इन्द्रिय क्षमता-कम हो जायेगी।

और जितनी ही यह क्षमता कम होगी उतना ही उसके जीवन का विस्तार सिकुड़ जायेगा, सकुचित हो जायेगा ।

इसलिए साधु संकुचित हो जाता है, सिकुड़ जाता है । इसलिए साधु का जीवन आमतौर से आत्मघाती मालूम पड़ता है । वह सब तरफ से अपने को सिकोड़ता जाता है, सिकोड़ता जाता है – कुन्द होता जाता है, खुलता नहीं, मुक्त आकाश नहीं बनता ।

महावीर की बात समझने-जैसी है । महावीर कहते हैं : पहला ज्ञान 'श्रुति', दूसरा ज्ञान 'मति', तीसरा ज्ञान 'अवधि' । लेकिन तीसरा ज्ञान उसी को होगा, जिसका मतिज्ञान काफ़ी प्रगाढ़ हो । क्योंकि मनुष्य की प्रत्येक इन्द्रिय के पीछे छिपी हुई एक सूक्ष्म इन्द्रिय भी है । अवधि-ज्ञान उस सूक्ष्म इन्द्रिय का ज्ञान है . . . जैसे आप घटनाएँ सुनते हैं ।

हरकोस पश्चिम में बहुत प्रसिद्ध है – पीटर हरकोस । वह दूसरे महायुद्ध में गिर पड़ा । साधारण आदमी था; गिरने से बेहोश हो गया । सिर में चोट लगी, अस्पताल में भरती किया गया । जब अड़तालीस घंटे बाद वह होश में आया तो वह बड़ा चकित हुआ । उसे ख़ुद भी भरोसा नहीं आया कि उसकी कोई अन्तर-इन्द्रिय खुल गई है सिर में चोट लगने से – आकस्मिक, एक्सीडेन्टल ! वह जो नर्स उसके पास खड़ी थी, उसे उस नर्स के चित्त के भीतर क्या हो रहा है, वह समझ में आने लगा । वह थोड़ा बेचैन भी हुआ । उसने नर्स से पूछा कि 'क्या तुम अपने किसी प्रेमी से मिलने का विचार कर रही हो ?' उस नर्स ने कहा कि 'क्या मतलब ?' वह भी चौंक गई, क्योंकि उसका प्रेमी बाहर खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । वह इस मरीज को निबटाकर जल्दी से अपने प्रेमी के पास पहुंच जाना चाहती थी । इस मरीज को तो वह निबटा रही है, उसका मन तो प्रेमी के पास चला गया है ।

हरकोस को कोई उसके पास आये तो उसके भीतर की बात अनुभव में आने लगी । किसी की चीज़, किसी का रुमाल उसे दे दें, तो वह रुमाल का ख़याल करके उस आदमी का वर्णन करने लगा । दस साल तक तो वह परेशान रहा । क्योंकि बड़ी परेशानी की बात ही थी । कोई आदमी रास्ते से निकले और आपको उसके भीतर का थोड़ा-सा ख़याल आ जाये, या आप अपनी पत्नी को प्रेम कर रहे हों और आपको ख़याल आ जाये कि वह अपने किसी प्रेमी का विचार कर रही है, तो . . .?

अक्सर करते हैं । अक्सर पति-पत्नी किसी और का सोचते रहते हैं, लेकिन पकड़ में नहीं आता । क्योंकि सूक्ष्म-इन्द्रियां हमारी जड़ हैं । स्थूल-इंन्द्रियां हमारी जड़ हैं, तो सूक्ष्म-इन्द्रियां तो जड़ होंगी ही ।

जब स्थूल इन्द्रियां संवेदनशील हो जाती हैं तो उनके पीछे छिपी हुई सूक्ष्म इन्द्रियां गतिमान होती हैं । उन सूक्ष्म इन्द्रियों का जो अनुभव है, उसको महावीर अवधि-ज्ञान कहते हैं । टेलिपैथी, क्लेरव्हायंस सब अवधि ज्ञान हैं ।

पश्चिम में साइकिक साइंस अवधि-ज्ञान पर काम कर ही रही है बड़े जोर

से, और हजारों आयामखुल गये है। अनेक तरह के प्रामाणिक प्रयोग हो गये हैं, जिनसे पता चलता है कि आदमी के पास कुछ सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी हैं, जिनसे वह बिना देखे देख लेता है, बिना सुने सुन लेता है। आपको भी कभी-कभी इसकी झलक मिलती है, लेकिन आप उसको टाल देते हैं, आप उसका हिसाब नहीं रखते।

कभी आप बैठे हैं घर में अचानक आपको ख़याल अपने मित्र का आता है, और आप देखते हैं कि वह मित्र भीतर चला आ रहा है। ख़याल पहले आता है, मित्र दरवाज़े से बाद में भीतर आता है। आप सोचते है, संयोग की बात है। संयोग की बात नहीं है।

इस जगत में संयोग-जैसी बात होती ही नही। इस जगत में सब वैज्ञानिक है, सब कार्य-कारण से बंधा है। उस मित्र का दरवाज़े पर आना आपकी सूक्ष्म इन्द्रियो ने पहले पकड लिया, आपकी स्थूल इन्द्रियों ने बाद में पकड़ा।

कभी आपका कोई प्रियजन मर रहा हो, बहुत दूर हो – हज़ारों मील दूर, तो भी आपके भीतर कुछ पीड़ा शुरू हो जाती है। आप पकड़ नहीं पाते, क्योंकि आपको साफ़ नही है। अगर साफ़ हो जाये, और आप उस दिशा में काम करने लगें, तो आपकी पकड़ में आना शुरू हो जायेगा।

इसको अनुभव किया गया है कि जुड़वाँ बच्चे एक साथ बीमार पड़ते हैं, चाहे हज़ारो मील दूर हो। एक ही अंडे से पैदा हुए जुड़वाँ बच्चे एक साथ बीमार पड़ते हैं। यहाँ एक बच्चे को सर्दी हो, और दूसरा बच्चा पेकिंग में हो, तो उसको वहाँ सर्दी हो जायेगी। बड़ी हैरानी की बात है, क्योंकि मौसम अलग है, देश अलग है, हवा अलग है। अगर इसको इन्फेक्शन हुआ है, तो उसी दिन उसको इन्फेक्शन होने का कोई कारण नहीं है। यहाँ फ्लू चल रहा है, वहाँ फ्लू नही चल रहा है; लेकिन दोनो को एक साथ सर्दी पकड़ जायेगी।

वैज्ञानिक बडे चिन्तित थे कि यह कैसे होता है? लेकिन अब साइकिक खोज कहती है कि दोनों बच्चे इतने एक साथ पैदा हुए है, इतने एक-जैसे है; और उनकी सूक्ष्म-इन्द्रियाँ इतनी संयुक्त हैं कि एक में जरा-सा भी स्पंदन हो तो दूसरे को ख़बर मिल जाती है। एक बच्चे को सर्दी पकड़े तो दूसरे बच्चे की सूक्ष्म इन्द्रियाँ अनुभव करने लगती हैं कि सर्दी हो गई। उस कारण दूसरे को भी सर्दी हो जाती है। वह मानसिक सर्दी है, लेकिन हो जायेगी।

एक अंडे से पैदा हुए बच्चे क़रीब-क़रीब साथ-साथ मरते हैं। ज्यादा-से-ज्यादा फ़र्क़ तीन महीने का होता है। क्योंकि मृत्यु जब एक को घट जाती है, तो दूसरे की सूक्ष्म इन्द्रियों पर चोट पहुँच जाती है, वह मरने के क़रीब हो जाता है। आप कभी-कभी छोटे-छोटे प्रयोग करें, तो आपको अपनी सूक्ष्म इन्द्रियों का ख़याल आ सके।

सभी व्यक्तियों को तीन ज्ञान सम्भव हैं, आसानी से : श्रुति, मति, और अवधि।

इन तीन में कोई विशेषता नहीं है । इसलिए तीसरा ज्ञान देखकर जब आप चमत्कृत होते हैं, तो आप नासमझ हैं । तीसरे ज्ञान के कारण लोग महात्मा हो जाते हैं । लेकिन तीसरे ज्ञान से जीवन की स्थिति कोई उपर नहीं उठती ।

आप गये किसी महात्मा के पास, और उसने जाने से ही बता दिया कि 'आपका घर कैसा है, घर के सामने एक वृक्ष है – बस, आप गये ! अब आपने कहा कि मिल गये गुरु, सद्गुरु से मिलना हो गया !

इस आदमी ने थोड़ा-सा सूक्ष्म इन्द्रियों का प्रयोग किया है, जो कि कोई भी कर सकता है। आप प्रयोग न करें, यह बात और है । आपके पास भी रेडियो है, आप न टयून करें और न स्टेशन लगायें, तो लटकाये घूमते रहें ! इस आदमी ने टयून कर लिया, क्योंकि कोई बड़ी कला नहीं है । मगर इसके रेडियो से आवाज आनी शुरू हो गई, और आप रेडियो लटकाये घम रहे हैं !

अवधि-ज्ञान तक तीनों बाते बिलकुल सामान्य है, उसमें कुछ भी असाधारण नही है । लेकिन तीसरा ज्ञान हमें बहुत प्रभावित करता है । कभी आपने ख़याल किया कि तीसरा ज्ञान अक्सर अशिक्षित लोगों में ज्यादा होता है। ग्रामीण, गवार, गाव के लोगो मे ज्यादा होगा । आदिवासी, उनमें ज्यादा होगा । क्योंकि आप भूल ही गये है कि सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी होती हैं । आप तो सिर्फ़ बुद्धि से जी रहे है, श्रुत से । आपकी सारी युनिवर्सिटीज श्रुति-ज्ञान पर आधारित हैं । अभी कोई विश्वविद्यालय नहीं जो आपको मति-ज्ञान दे । जंगल में जो आदमी है उसको कोई बुद्धि की ट्रेनिग तो होती नही; और जंगल मे कोई सुविधा भी नही उसके पास कि बुद्धि से ज्यादा जी सके । उसको जीना पड़ता है सूक्ष्म में । शेर के हमला करने से पहले तो बुद्धि काम कर सकती है कि अब क्या करना है, लेकिन हमला कर देने के वाद करने को कुछ बचता नही । वह जो जंगल मे आदमी रह रहा है उसको इन्द्रियो से ही सजग नही रहना पड़ता, उसको सूक्ष्म इन्द्रियों से भी सजग रहना पड़ता है कि कहीं शेर की उसको आहट न मिल जाये । शेर हमला करे इसके पहले उसे सावधान हो जाना चाहिये, तो ही बचाव हो सकता है, नही तो बचाव नही हो सकता है ।

आस्ट्रेलिया में छोटा-सा एक क़बीला है, जिसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है । वह बड़ा चमत्कारी क़बीला है । उस क़बीले का हर आदमी आपको महात्मा मालूम पड़ेगा, मगर वह कबीला बिलकुल साधारण है । सिर्फ़, बहुत पुराना है ; सभ्यता से उसका सम्बन्ध नही है । बड़ी अजीब घटना उस कबीले में घटती एक वैज्ञानिक ने देखी । एक वैज्ञानिक वहाँ ठहरा हुआ था अध्ययन करने के लिए कि क्या मामला है ? . . .

ज्यादा वैज्ञानिक अध्ययन करने जायेंगे तो अध्ययन कर पायेंगे कि नहीं, इसमें तो शक है, लेकिन उनको जरूर बिगाड़ आयेंगे । क्योंकि उनमें भी शक पैदा कर

आयेंगे। और शक जहाँ आ गया, वहाँ अवधि से आदमी नीचे उतर जाता है। अवधि आस्था का तत्व है, भरोसे का।

...उस कबीले में कोई आदमी चिट्ठी नहीं लिखता। चिट्ठी लिखना वे जानते नहीं। भाषा, लिपि उनके पास नहीं। पोस्टमैन भी नहीं है, पोस्ट-ऑफिस भी नहीं है। लेकिन कभी-कभी मित्रों को, प्रियजनों को ख़बर भेजने की जरूरत पड़ती है। तो हर कबीले के गांव में एक छोटा-सा पौधा होता है – गांव के बीच। उस पौधे का उपयोग करते हैं वे मित्रों को सन्देश भेजने के लिये। अगर मां का बेटा दस मील दूर है और वह चाहती है कि वह जल्दी घर वापिस आ जाये, तो वह पौधे के पास जायेगी। और वहाँ जाकर अपने बेटे से बात करेगी, जैसा आप फोन के पास करते हैं। पौधे से वह कहेगी 'सुन, मेरी तबियत ख़राब है, तू जल्दी वापस आ जा, साँझ होते-होते तू वापस आ जाना।' और बेटा साँझ होते-होते वापस आ जायेगा। और बेटे से अगर आप पूछें तो वह कहेगा कि 'दोपहर में मुझे मेरी मां की आवाज सुनाई पड़ी कि मा कह रही है कि जल्दी घर आ जा, मेरी तबियत ख़राब है।'

इसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है, और वैज्ञानिक चकित हुए कि यह क्या मामला है?

मामला कुछ भी नहीं है। ये लोग सीधे-साधे पशुओं-जैसे लोग हैं।

मनुष्य की सूक्ष्म इन्द्रियाँ बड़ी शक्तिशाली हैं, बड़ी दूरगामी हैं; समय और स्थान की कोई बाधा नहीं है। प्राचीन समय में भी विज्ञान विकसित हुआ था, लेकिन सारा विज्ञान सूक्ष्म इन्द्रियों के आधार पर था। आधुनिक विज्ञान स्थूल इन्द्रियों के आधार पर है। प्राचीन समय में भी आदमी ने दूर संवाद की कला खोज ली थी। आज हमने भी खोज ली है, लेकिन वह बाह्य इन्द्रियों के आधार पर है। हमारे पास टेलिफोन हैं, रेडियो है, टेलिविज़न हैं – ये सब बाह्य इन्द्रियों का विस्तार हैं। प्राचीन समय में आदमी ने अन्तर-इन्द्रियों का विस्तार कर लिया था, और उनके आधार पर उसने बहुत-से काम कर लिए थे, जो हमारी पकड़ के बाहर हैं। जैसा कि हमारे यन्त्र उनकी पकड़ के बाहर हैं।

मनुष्य की हर इन्द्रिय के पीछे सूक्ष्म इन्द्रिय है। आँख के पीछे एक सूक्ष्म आँख है, जो भीतर छिपी है। उसे विकसित किया जा सकता है। आप थोड़े प्रयोग करें तो आपको ख़याल में आ जायगा। और हर सौ आदमी में से कम-से-कम तीस आदमी आसानी से सफल हो जायेंगे। इतने लोग यहाँ मौजूद हैं, इनमें से अनेक लोग सफल हो जायेंगे। सौ में से तीस आदमियों की अवधि-स्थिति अभी भी बिगड़ी नहीं है।

आप एक छोटा-सा प्रयोग करें। ताश के पत्ते हाथ में ले लें, आँख बन्द कर लें। गड्डी में से एक पत्ता निकालें, और सोचें मत – देखें कि यह पत्ता क्या है? राजा है

कि रानी है, कि जोकर है, कि क्या है ? सोचें मत, सोचने से तो बिगड़ जायेगा मामला । क्योंकि सोचने में तो आप अनुमान लगाने लगेंगे कि शायद राजा हो । तब आप दुविधा में पड़ जायेंगे, बेचैनी में पड़ जायेंगे । नहीं, आप सिर्फ़ आँख बन्द करके देखें । आँख बद करके देखें कि क्या है ? और सोचें मत । और जो चीज पहली दफा आए, उसका भरोसा करें, दूसरे का ध्यान मत करें । पहले ख़याल में आए कि जोकर, तो आँख खोलें और देखें ।

दो-चार दिन आप प्रयोग करें । आप चकित हो जायेंगे कि आप आँख बन्द करके ताश की गड्डी में से देख पाते है कि क्या है ?

यह सिर्फ़ इसलिए कह रहा हूँ, ताकि आपको ख़याल आ जाये कि सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी हैं । ख़याल आ जाये तो भरोसा हो जाये, भरोसा हो जाये तो काम शुरू हो जाये ।

तय कर ले अपने किसी मित्र से कि रोज़ रात के ठीक आठ बजे वह कलकत्ते से आपको संदेश भेजेगा; सिर्फ़ आँख बन्द करके बैठ जायेगा और एक वाक्य का संदेश भेजेगा । और ठीक आठ बजे आप रिसेप्टिव होकर बैठ जायेंगे कि कोई सन्देश आए तो उसे पकड़ लें । सोचें नही, जो भी वचन पहला आ जाये, वह कितना ही एबसर्ड और व्यर्थ क्यों न मालूम पड़े, उसे नोट कर लें । और एक तीन महीने इस प्रयोग को करें । आप चकित हो जायेंगे कि तीन महीने के भीतर आपको सूक्ष्म को पकड़ने की क्षमता, सूक्ष्म को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ गई है ।

गुर्जिएफ के पास जाकर अनेक स्त्रियों को, जब वे गुर्जिएफ से मिलने जाती थी, अनुभव होता था कि उनके सेक्स सेन्टर पर कोई चोट की गई है । कई स्त्रियाँ घबड़ा जाती थी कि यह क्या मामला है ? यह आदमी कुछ शैतान मालूम होता है । लेकिन मामला कुल इतना था कि जैसे हर इन्द्रिय के पीछे सूक्ष्म इन्द्रिय है, वैसे जननेन्द्रिय के पीछे भी सूक्ष्म इन्द्रिय है । उससे चोट की जा सकती है । और गुर्जिएफ सिर्फ़ इतना कह रहा है कि वह सूक्ष्म इन्द्रियों पर काम कर रहा है । उससे चोट की जा सकती है ।

कई बार अनजाने भी चोट हो जाती है, जब आपको पता भी नही होता । कोई स्त्री पास से गुजरती है, आप अचानक कामातुर हो जाते हैं; या कोई पुरुष पास से गुजरता है और स्त्री अचानक संकुचित हो जाती है । लगता है कि कुछ हो रहा है । कोई कुछ भी नहीं कर रहा होता, फिर भी लगता है कुछ हो रहा है । कभी अचानक भी होता है; क्योंकि अचानक कभी सूक्ष्म इन्द्रिय सक्रिय हो जाती है । वस्तुतः जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह अवधि-ज्ञान की भाषा में सूक्ष्म इन्द्रियों का सक्रिय हो जाना है ।

आप एक स्त्री से बिलकुल मोहित हो जाते हैं। जब आप मोहित हो जाते हैं तो सारी दुनिया आपको पागल कहती है। लोग पूछते हैं, क्या देखते हो उस स्त्री में? पर आपको कुछ दिखाई पड़ रहा है, जो औरों को दिखाई नहीं पड़ रहा। क्या दिखाई पड़ रहा है आपको? आपकी कोई सूक्ष्म इन्द्रिय उस स्त्री के सम्पर्क में सक्रिय हो जाती है। तब आप उस स्त्री को, जैसी वह ऊपर से दिखाई पड़ती है, वैसा नहीं देख रहे हैं, बल्कि वह जैसी भीतर है, वैसा आपको प्रतीत होने लगा है।

प्रेम की घटना अवधि ज्ञान की घटना है। महावीर कहते हैं, ये तीन ज्ञान सामान्य हैं। सारे चमत्कार तीसरे ज्ञान में आ जाते हैं। आप बीमार हैं और एक महात्मा के पास जाते हैं — चमत्कारी! और वह कहता है, 'जाओ, तीन दिन में ठीक हो जाओगे।' आप सोचते हैं कि उसने तीन दिन में ठीक हो जाओगे कहा, इसलिए मैं तीन दिन में ठीक हो रहा हूँ। बात बिलकुल दूसरी है: उसकी सूक्ष्म इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, और वह देखता है कि तीन दिन बाद तुम ठीक होनेवाले हो, इसलिए वह कहता है कि तीन दिन में ठीक हो जाओगे। और जब तुम तीन दिन में ठीक हो जाते हो, तो तुम सोचते हो कि चमत्कार हो गया, उस महात्मा ने ठीक कर दिया। लेकिन उस महात्मा को सिर्फ़ इतना बोध हुआ कि तीन दिन में तुम ठीक हो जाओगे। यह बोध आज नहीं कल वैज्ञानिक यन्त्रों से भी हो सकेगा।

रूस में ऐसे कैमरे विकसित किये जा रहे हैं, जो बीमारी कितने दिन में समाप्त हो जायेगी, इसका चित्र ले सकें। वे ठीक एक्स-रे जैसे हैं। बीमारी है, इसका पता चल सके; और बीमारी कितने देर में ठीक हो जायेगी, इसका पता चल सके; और बीमारी कितने दिन बाद शुरू होनेवाली है, इसका पहले से पता चल सके — इन तीनों दिशाओं पर रूस में काफ़ी काम हो रहा है। और सफलतापूर्वक काम हो रहा है। कोई भी बीमारी आपके जीवन में आये, उसके छह महीने पहले उसके फोटोग्राफ लिए जा सकते हैं। और अगर छः महीने पहले बीमारी का चित्र लिया जा सके, तो बीमारी आने के पहले ही आपका इलाज किया जा सकता है।

जो-जो मन भीतर से कर सकता है, वह-वह विज्ञान यन्त्र के सहारे बाहर से कर सकता है।

चौथे ज्ञान को महावीर कहते है, 'मन:पर्याय'। यहाँ से साधक की योगी होने की यात्रा शुरू होती है। 'मन:पर्याय' का अर्थ है: स्वयं के मन के भीतर जो पर्याय हैं, जो रूप हैं, उनका साक्षी-दर्शन। और जब कोई व्यक्ति अपने मन की पर्यायों का साक्षी-दर्शन करने में समर्थ हो जाता है, तो वह दूसरों के मन की पर्यायों का भी साक्षी दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने मन की पूरी पर्तों को देखने में समर्थ हो जाता है, तो उसको अपने पूरे पिछले जन्म दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं;

क्योंकि वे सब मन की पर्तों में मौजूद हैं। कोई भी स्मृति खोती नहीं, सब स्मृतियाँ संग्रहीत होती चली जाती हैं। उन सबको फिर से खोला जा सकता है, देखा जा सकता है।

मन की पर्यायों का जिसको अनुभव होने लगे . . . आपने गाली दी, तो मनः-पर्याय वाला व्यक्ति आपकी गाली की फ़िक्र नहीं करेगा, न आपकी फ़िक्र करेगा, वह भीतर देखेगा कि आपकी गाली से मेरे मन में कैसे रूप, कैसे फॉर्मस् पैदा होते हैं ? मेरे भीतर क्या होता है ? क्योंकि असली सवाल मैं हूँ, असली सवाल आप नहीं हैं। आप से क्या लेना-देना है ? आपने गाली दी, मैंने आँख बन्द की और देखा कि मेरे भीतर क्या होता है ?

(इस साक्षी-दर्शन से धीरे-धीरे बाहर से दृष्टि भीतर की तरफ मुड़ती है; हम मन के पीछे सरकते हैं। और जो व्यक्ति मन के पीछे सरकता है, उसे आत्मा का अनुभव शुरू होती है। 'मन:पर्याय' की अवस्था में आत्मा की पहली झलक मिलनी शुरू होती है। 'मैं कौन हूँ', इसका बोध शुरू होता है। और तब मन ऐसा दिखता है, जैसे आकाश में घिरे बादल हो, और मैं सूर्य हूँ, जो बादलों में छिप गया हूँ। इन बादलों के साथ हमारा इतना तादात्म्य है कि हम भूल ही जाते हैं कि हम इनसे अलग हैं। हम इनके साथ एक हो जाते हैं।

जब आप क्रोध से भरते हैं तो आपका क्रोध अलग नही रहता, आप क्रोध के साथ बिलकुल एक हो जाते हैं; आप क्रोधी हो जाते हैं। जब आप भूख से भरते हैं, तो आप भूखे हो जाते हैं। लेकिन मनःपर्याय वाला व्यक्ति जानेगा कि शरीर को भूख लगी है और मैं जान रहा हूँ। यह स्पष्ट भेद होगा। आपने गाली दी है, मन उद्विग्न हो गया, मैं जान रहा हूँ। मन का उद्विग्नता मेरी उद्विग्नता नहीं है; मन की बेचैनी मेरी बेचैनी नही है। मन एक यन्त्र है। मन परेशान है, मै परेशान नहीं हूँ।

लेकिन मन के इस घेरे के बाहर उतरना बड़ा साहस है, बड़े-से-बड़ा साहस है, क्योंकि हमारा पूरा जीवन ही मन का जीवन है। जो भी हम जानते हैं अपने बाबत, वह मन ही है। जो व्यक्ति मन के बाहर उतरता है, उसे लगता है कि मैं मरने की अवस्था में जा रहा हूँ।

ध्यान मृत्यु का प्रयोग है। ध्यान से मनःपर्याय पैदा होता है। लेकिन हम तो डरते हैं थोड़ा-सा भी बाहर निकलने में, क्योंकि मन के बाहर निकलने का मतलब है कि मैं खोया। मेरा सारा होना ही मन है। कभी-कभी एकाध कदम भी रखते हैं तो घबड़ाकर फिर वापस ले लेते हैं।)

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर कुछ बदमाशों ने हमला किया। दरवाजे उन्होंने सब बन्द कर दिये। मुल्ला के हाथ पैर-बाँध कर उसे खड़ा कर दिया और

उसके चारों तरफ़ चाक से एक लकीर खींच दी, और कहा कि 'इस घेरे के बाहर निकले कि समझना हत्या हो जायेगी। इस घेरे के बाहर भर मत निकलना।' उसकी पत्नी को घसीटकर दूसरे कमरे में ले गये। घण्टेभर बाद वे सब — मुल्ला खड़ा था अपने घेरे में — घर छोड़कर चले गये। पत्नी भीतर से अत्यन्त दयनीय अवस्था में — कपड़े फटे हुए, खून के दाग — बाहर भागी हुई आयी, और उसने नसरुद्दीन से कहा, 'यू मिज़रेबल कॉवर्ड, डू यू नो व्हाट दे वर डुइंग टू मी इन दैट रूम? — क्या कर रहे थे वे लोग उस कमरे में मेरे साथ? तुम अत्यन्त कायर हो।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'कायर, यू काल मी ए कॉवर्ड, एन्ड यू नो व्हॉट आई डिड, व्हेन दे वर विद् यू इन दि रूम? ऑन थ्री सेपरेट ऑकेजन्स, आई स्टेप्ड आउट ऑफ द सर्कल! — तुम्हें पता है कि मैंने क्या किया, जब वे तुम्हारे साथ कमरे में थे? तीन अलग-अलग मौकों पर घेरे के बाहर मैंने कदम रखा, और तुम मुझे कायर कहती हो।'

बस, ऐसे ही हम भी कभी-कभी मन के घेरे के बाहर जरा-सा कदम रखते हैं, और बड़ी बहादुरी समझते हैं, फिर भीतर खींच लेते हैं।... वे आदमी तो जा चुके और नसरुद्दीन अभी भी घेरे में खड़ा था।...और बहादुर भी अपने को समझ लेते हैं। डर है! डर क्या था नसरुद्दीन का — कि मौत न हो जाये, कि हत्या न कर दें वे लोग?

ध्यान में भी वही डर है। और गुरु से बड़ा हत्यारा खोजना मुश्किल है। इसलिये हमने तो उपनिषदों में गुरु को मृत्यु ही कहा है। और जब कठोपनिषद् में नचिकेता का बाप उससे कहता है नाराज होकर...। क्योंकि नचिकेता के पिता ने एक उत्सव किया है और वह दान कर रहा है। तो जैसा कि लोग दान करते हैं, मरी-मुर्दा चीजें — गायें, जिनका कि दूध सूख चुका है, वह दान कर रहा है; घोड़े, जो अब बोझ ढो नहीं सकते; रथ, जो अब चल नहीं सकते — वह उनका दान कर रहा है।

जैसा कि दानी दान करते हैं। जो उनके काम नहीं आता, वे उसे दान कर देते हैं।

क्वेकर समाज में एक नियम है कि दान उसी चीज का करना जो तुम्हें सबसे ज्यादा पसन्द हो, नहीं तो मत करना। नहीं तो उसका कोई मूल्य नहीं है। दान का मतलब ही तभी है, जब तुम वह चीज दान करो जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी हो। तो ही दान किसी मूल्य का है।

और मैं मानता हूँ कि क्वेकर समाज की समझ जो दान के सम्बन्ध में है, वैसी समझ दुनिया के किसी समाज में पैदा नहीं हुई। वे कहते हैं, हर सप्ताह एक चीज दान करना, लेकिन वही चीज जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी हो। तो उससे क्रान्ति घटित होगी।

हम भी दान करते हैं ! वह जो कचरा-कूड़ा इकट्ठा हो जाता है, उसको हम दान कर देते हैं ! और अक्सर दान की चीजें दूसरे लोग भी दूसरों को दान करते चले जाते हैं । क्योंकि वे चीजें किसी के काम की नहीं होती ।

. . . नचिकेता का पिता दान कर रहा है, नचिकेता पास में बैठा देख रहा है । उसे बड़ी हैरानी होती है । वह पूछता है कि 'ये गायें, जो अब दूध नहीं देती हैं, क्या फायदा है इनको दान करने में ?' बाप नाराज होता चला जाता है ।

बेटे सरल होते हैं । स्वभावत, क्योंकि अभी उनकी उम्र भी क्या है ? अभी नचिकेता भोला-भाला है । उसे चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं । बाप समझ रहा है कि वह दान कर रहा है, और बेटे को दिखाई पड़ रहा है कि 'कैसा दान ? यह गाय तो दूध दे ही नही सकती, उल्टे जिसको तुम दे रहे हो उस पर बोझ हो जायेगी। उसको घास का और इन्तजाम करना पड़ेगा, पानी और पिलाना पड़ेगा । यह बूढ़ी गाय देने से क्या फायदा ?' पर बाप उसको कहता है कि 'तू चुप रह, तू क्या जानता है ?' लेकिन उससे भी चुप रहा नही जाता । आखिर में वह पूछता है कि 'आप सभी-कुछ दान कर दोगे ?' बाप कहता है, 'हाँ, सभी-कुछ ।' तो वह पूछता है, 'मुझे किसे दान करोगे ? क्योंकि मैं भी तो आपका बेटा हूँ ।' बाप नाराजगी में कहता है कि 'तुझे मौत को दे दूंगा, यम को दे दूंगा ।'

बड़ी मीठी कथा है कठोपनिषद् में कि नचिकेता फिर मृत्यु को दे दिया जाता है । और मृत्यु से नचिकेता जीवन के गहरे-से-गहरे सवाल पूछता है, और जीवन की परम गुह्य साधना को लेकर वापस लौटता है । इस कथा में गहरा प्रतीक यह है कि बाप जब कहता है, तुझे मृत्यु को दे दूंगा, तब वह कहता है तुझे गुरु को दे दूंगा । क्योंकि गुरु का अर्थ ही मृत्यु है । गुरु से गुजर कर तू नया होकर लौट आयेगा ! नचिकेता नया होकर लौटता है । अमृत का तत्त्व सीखकर लौटना है ।

हमारा डर यही है । . . . ध्यान . . . ? समाधि . . . ? कि हम मर तो नहीं जायेंगे, मिट तो नहीं जायेंगे । हम अपने को बचाकर ध्यान करना चाहते हैं । तो ध्यान नहीं हो सकता । हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा, तोड़ना ही पड़ेगा, हटना ही पड़ेगा । मनःपर्याय केवल उन्हीं लोगों के जीवन में उतरता है, जो मन से दूर हट जाते हैं ।

क्या करें . . . ?

मन के साथ जहाँ-जहाँ तादात्म्य हो, वहाँ-वहाँ तादात्म्य न होने दें । क्रोध उठे – पूरा प्राण आपका कहेगा कि क्रोधी हो जाओ – उस समय भीतर शान्त बने रहें । क्रोध को घूमने दें चारों तरफ, दबाने की कोई जरूरत नहीं है । हाथ पैर फड़कें, फड़कने दें; मुट्ठियाँ बंधें, बंध जाने दें । क्रोध शरीर के खून को उत्तप्त कर दे; स्वाँस तेज चलने लगे, चलने दें । लेकिन भीतर केन्द्र पर अलग खड़े देखते रहें कि क्रोध घट

रहा है मेरे शरीर और मन में, लेकिन मैं पृथक हूँ, मैं अन्य हूँ। मैं अलग हूँ; मैं सिर्फ़ देखने वाला हूँ। जैसे यह किसी और को घट रहा है।

काम-वासना पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जायें; लोभ पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जायें; विचारों का झंझावात पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जाएँ। रात पड़े हैं बिस्तर पर, नींद नहीं आ रही है। विचार पकड़े हुए हैं। विचारों के कारण नींद में बाधा नहीं पड़ती; आप विचारों के साथ तादात्म्य कर लेते हैं, इससे बाधा पड़ती है। अब दोबारा जब ऐसा हो, रात नींद न आए और विचार पकड़े हो, तब और कुछ न करें, सिर्फ़ आँख बन्द किये इतना ही अनुभव करें कि 'मैं अन्य हूँ, ये विचार अन्य हैं'। जैसे आकाश में बदलियाँ चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं; जैसे रास्ते पर कारें चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं – मैं अपने घर में बैठा देख रहा हूँ।' सिर्फ़ देखते रहें; थोड़ी ही देर में आप पायेंगे – विचार खो गये, आप गहरी निद्रा में प्रवेश कर गये।

ध्यान की प्रक्रिया का अर्थ है : विचार से अपने को तोड़ लेना। विचार से टूटते ही व्यक्ति को 'मन पर्याय' की अवस्था शुरू हो जाती है। महावीर मनःपर्याय को चौथा ज्ञान कहते हैं। चौथा ज्ञान साधक को उपलब्ध होता है। और पाँचवें ज्ञान को महावीर कहते है, 'केवल'। मात्र-ज्ञान, जहाँ कुछ भी जानने को नहीं रह जाता। क्योंकि चौथे ज्ञान में मन की पर्यायें जानने को रहती हैं। और उन्हें जानते-जानते, साक्षी होते-होते मन की पर्यायें गिर जाती हैं, मन के रूपान्तर गिर जाते हैं; मन खो जाता है, आकाश खाली हो जाता है। उस खालीपन में सिर्फ़ सूर्य का प्रकाश रह जाता है, सिर्फ़ सूर्य रह जाता है। वह सिद्ध की अवस्था है। उस सिद्ध की अवस्था में जो जाना जाता है, वही सत्य है।

'श्रुति, मति, अवधि, मनःपर्याय और केवल – ये पाँच ज्ञान हैं।'

इस बात को ठीक-से समझ लें। महावीर का ज़ोर बड़ा अनूठा है। वे कहते है आप जैसे है, वैसी अवस्था में सत्य नहीं जाना जा सकता। इसलिए सत्य की खोज छोड़ो, अपनी अवस्था बदलो। आप जैसे है, उसमें तो असत्य ही जाना जा सकता है। आप असत्य को आकर्षित करते है।

'श्रुति' की अवस्था में असत्य ही जाना जा सकता है। 'मति' की अवस्था में इन्द्रिय-सत्य जाना जा सकता है – वस्तुओं का सत्य। 'अवधि' की अवस्था में सूक्ष्म इन्द्रियों का सत्य जाना जा सकता है। 'मनःपर्याय' की अवस्था में मन के जो पार है, उसकी झलक और मन के सब रूपान्तरणों का सत्य जाना जा सकता है। और 'केवल' की अवस्था में शुद्ध सत्य जाना जा सकता है। जो है – अस्तित्व, मात्र अस्तित्व। उसे हम परमात्मा कहें, या जो भी नाम देना चाहें : निर्वाण कहें, मोक्ष कहें।

महावीर ने ये पाँच ज्ञान कहे हैं। और मेरे जाने, किसी दूसरे व्यक्ति ने ज्ञान का इतना सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया है। और इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि इन पाँच के अतिरिक्त छठवाँ ज्ञान हो सकता है। इसकी कोई सम्भावना नहीं है। विज्ञान तीन तक पहुँच गया है, चौथे पर चरण रख रहा है। ध्यान पर पश्चिम में बड़े प्रयोग हो रहे हैं; चौथे ज्ञान पर चरण रखने की कोशिश की जा रही है। और आज नहीं कल, पाँचवें का भी स्मरण आना शुरू हो जायेगा। महावीर इस सदी के पूरे होते-होते, मन के सम्बन्ध में बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक सिद्ध हो सकते हैं।

'ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय – इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाये हैं।'

ये पाँच ज्ञान और इन पाँच ज्ञानों को ढक लेनेवाले; इस केवल को ढक लेनेवाले, इस शुद्ध ज्ञान को ढक लेनेवाले आठ कर्मों के रूप हैं।

महावीर की पकड़ ठीक विश्लेषक, वैज्ञानिक की पकड़ है। जैसे कि कोई निदान करता है मरीज का कि क्या बीमारी है, क्या कारण है, क्या उपाय है – ऐसे एक-एक चीज का वे निदान करते हैं। महावीर कवि नहीं हैं। उपनिषदों में जो काव्य है, वह महावीर की भाषा में नहीं हैं। महावीर बिलकुल शुद्ध गणित और वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति हैं। शायद इसीलिए महावीर का प्रभाव जितना पड़ना था उतना नहीं पड़ा; क्योंकि लोग गणित से कम प्रभावित होते हैं, काव्य से ज्यादा प्रभावित होते हैं; क्योंकि लोग कल्पना से ज्यादा प्रभावित होते हैं, सत्य से कम प्रभावित होते है। महावीर के कम प्रभाव पड़ने का एक कारण यह भी है – बुनियादी कारणों में से एक कारण यह भी है कि वे बिलकुल गणित की तरह चलते हैं।

लेकिन जिन्हें साधना के पथ पर जाना है, कविता उन्हें काम नहीं देगी। हाँ, अगर घर में बैठकर आँखें बन्द करके सपने देखने है तो बात अलग है। जिन्हें यात्रा तय करनी है, उन्हें तो नक्शे चाहिये – साफ। ख़तरों का पता चाहिए – खाई खड्डे कहाँ हैं, भटकाने वाले मार्ग कहाँ हैं? और क्या-क्या कारण है, जिनके कारण मैं संसार में खड़ा हूँ; और एक-एक कारण को कैसे अलग किया जा सके ताकि मैं संसार के बाहर हो जाऊँ – इसका साफ-साफ नक्शा चाहिये।

महावीर एक शुद्ध चिकित्सक की तरह व्यवहार कर रहे हैं, जीवन को विचारणा में। आठ, वे कहते है, मनुष्य की शुद्धता को रोक लेनेवाले कर्म-मल हैं। इनको, एक-एक को हम ख़याल में लें, समझ में आ जायेंगे।

जो चीज आपके ज्ञान को आवृत्त करती है, वही 'ज्ञानावरणीय' है। जो-जो चीजें आपके ज्ञान को रोकती हैं, ढाँकती हैं, और आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती

हैं, वे सभी चीजें ज्ञान पर आवरण हैं।

कौन-सी चीजें आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती हैं?

पहली तो बात यही कि आप अपने को अज्ञानी मानने को राजी नहीं होते। आप ज्ञानी हैं, यह आवरण हो गया -- खोज बन्द हो गई। यह बीमारी हो गई। यह ऐसा ही है, जैसे कि कोई बीमार आदमी कहे कि 'मैं स्वस्थ हूँ, कौन कहता है कि मैं बीमार हूँ?' अगर बीमार आदमी भी इसको एक तरह का आक्रमण समझ ले कि कोई उसे बीमार कहे, और वह लड़ने लगे कि 'कौन कहता है कि मैं बीमार हूँ? मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ; शर्म नहीं आती मुझे बीमार कहते हुए!' तो फिर उसके इलाज का कोई उपाय न रहा।

अज्ञानी यही कह रहा है। वह कहता है, 'कौन कहता है कि मैं अज्ञानी हूँ?' अगर कोई आपको बात को गलत सिद्ध करे, तो आप लड़ने को तैयार हो जाते हैं। गलत सिद्ध करने में क्या ख़तरा है? वह आपको सिद्ध कर रहा है कि आप अज्ञानी हैं, यही खतरा है।

दुनिया में लोग सत्य के लिये नहीं लड़ते; मेरी बात सत्य है, इसके लिये लड़ते हैं। ये इतने जो सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं, इतने अड्डे दिखाई पड़ते हैं, इनका झगड़ा कोई सत्य का झगड़ा नहीं है। सत्य के लिये क्या झगड़ा हो सकता है? झगड़ा इस बात का है कि जो मैं कहता हूँ वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं हो सकता।

मैंने सुना है कि एक सूफ़ी फ़कीर मरा। स्वर्ग पहुँचा, तो उसने परमात्मा से पहली प्रार्थना की कि 'सबसे पहले तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि स्वर्ग का पूरा विस्तार कितना है? और मैं पूरे स्वर्ग में एक भ्रमण करना चाहता हूँ, इसके पहले कि कहीं निवास बनाऊँ।'

तो परमात्मा ने कहा कि 'यह उचित नहीं है, यह नियम के विपरीत है। तुम सूफ़ी हो, तुम्हारी जगह तय है। स्वर्ग का वह हिस्सा जहाँ सूफी बसते हैं, तुम वहाँ चले आओ।'

पर उस सूफ़ी ने ज़िद बांध ली। उसने कहा कि 'चाहे मुझे नर्क भेज दें, लेकिन इसके पहले कि मैं अपनी जगह चुनूं, पूरे स्वर्ग को जितना है, एक बार देख लेना चाहता हूँ।

परमात्मा ने कहा, 'ऐसी भी ज़िद क्या करनी? कोई ऐसी ज़िद नहीं करता; क्योंकि सभी मानते हैं कि उनका स्वर्ग ही बस स्वर्ग है। जैनी आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते है; हिन्दू आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते है; मुसलमान आते हैं वे अपने स्वर्ग में चले जाते हैं। और सभी यही मानते है कि उनका स्वर्ग ही बस एकमात्र स्वर्ग है, और कोई स्वर्ग नहीं है। इसलिये तू कैसा आदमी है: यह बात

ही ठीक नही है; नियम के विपरीत है ! लेकिन तू नही मानता, और मुझे प्यारा है, इसलिये तुझे मौका देता हूँ । लेकिन किसी को बताना मत ।'

तो एक देवदूत साथ कर दिया गया उस फ़कीर के । उस देवदूत ने फ़कीर को दिखाया मुसलमानो का स्वर्ग, यहूदी और ईसाइयो के स्वर्ग – सब दिखाता चला गया । लेकिन सभी जगह वह कुछ फुस-फुसा फुस-फुसाकर बात करता था । आखिर उस सूफ़ी फकीर से नही रहा गया तो उसने पूछ ही लिया कि 'तुम इतने फुस-फुसाकर क्यो बात करते हो ?'

तो देवदूत ने कहा कि 'इसलिये, कि इन लोगों को पता न चल जाए । क्योंकि ये सब यही मानते है कि बस केवल वे ही स्वर्ग में हैं । अगर मुसलमान को पता चल जाए कि ईसाई भी स्वर्ग में है, तो वह उदास हो जायेगा । सब मजा ही चला जायेगा उसका । उसके लिये सब ईसाई नर्क में पड़े है । जैन को पता चल जाए कि हिन्दू भी चले आ रहे है स्वर्ग में, तो उसके पैर के नीचे की सारी भूमि खिसक जाए । ये लोग जो इतने आनन्दित दिखाई पड़ रहे है, इनका मजा ही यह है कि बस केवल हम ही स्वर्ग में हैं, बाकी सब नर्क में हैं ।

हर आदमी अपने सत्य को सत्य की सीमा समझता है । सोचता है, मै जो मानता हूँ वही ठीक है । और सारी दुनिया उसको मान ले, यह उसकी चेष्टा होती है । ऐसा व्यक्ति मतवादी होता है, और ऐसा व्यक्ति सदा अज्ञान में घिरा रह जाता है । ज्ञान की तरफ़ जानेवाले व्यक्ति को इस तरह के कर्म-मल को अपने आस-पास इकट्ठा नही करना चाहिए । उसे सदा विनम्र मुक्त और राजी होना चाहिए कि सत्य कही से भी आता हो, मैं खुला हूँ । सत्य कहाँ से आता है, इसका कोई सवाल नही । मै प्यासा हूँ, पानी गंगा का है कि यमुना का, इसका कोई सवाल नही है – पानी चाहिये । पानी किन हाथों से आया, इसका भी कोई सवाल नही ।

लेकिन, कुछ ना-समझ ऐसे हैं कि आम खाने जाते है और गुठलियाँ गिनकर जीवन बिता देते हैं। आम खाने का कभी मौका ही नही आता, गुठलियाँ गिनना ही काफ़ी हो जाता है ।

महावीर कहते हैं ज्ञानावरणीय उन सारी वृत्तियों को, जो आपके ज्ञान के प्रस्फुटन में बाधा है · आपका अहंकार, आपका मतवाद, आपके पक्षपात, आपका यह आग्रह कि यही ठीक है ।

अनाग्रही-चित्त चाहिये । इसलिए महावीर ने अनाग्रही-चित्त का एक पूरा दर्शन दिया, जिसे वे 'स्याद्वाद' कहते हैं । वे कहते है कि किसी भी चीज के सम्बन्ध में ऐसा मत कहो कि यही ठीक है, क्योंकि जगत् बहुत बड़ा है । और भी स्वर्ग हैं । दूसरा भी ठीक हो सकता है । विपरीत बात भी ठीक हो सकती है; क्योंकि

जीवन बड़ा जटिल है । यहाँ एक आदमी जो भी कहता है, वह आंशिक सत्य ही होगा, पूर्ण सत्य नहीं होगा ।

इसलिये भी महावीर का प्रभाव बहुत नहीं पड़ा, क्योंकि महावीर का विचार सम्प्रदाय बनाने वाला विचार नहीं है । सम्प्रदाय जिन्होंने बना लिया है उनके पीछे, वे बड़े चमत्कारी लोग हैं । महावीर के पीछे सम्प्रदाय बन नहीं सकता, बनना नहीं चाहिए । क्योंकि महावीर, सम्प्रदाय की जो मूल भित्ति है कि मैं ही ठीक हूँ, उसको तोड़ रहे हैं ।

वह सम्प्रदाय, जो कहे कि आप भी ठीक हैं, कैसे सम्प्रदाय बन सकता है ? मन्दिर कहे कि मस्जिद भी ठीक है, कोई हर्जा नहीं वहाँ भी चलें, तो मन्दिर का धन्धा टूट जायेगा । मन्दिर को तो कहना ही चाहिये कि सब गलत है । और जितनी ताकत से कहे कि मस्जिद गलत है, चर्च गलत है; और सुननेवाले को जितना विश्वास दिला दे कि सिर्फ मन्दिर ही सही है, सन्देह मिटा दे, तो ही कोई मन्दिर में आनेवाला है ।

ये सब दुकान का ही बात है । अगर दुकानदार ही कहने लगे कि जो माल मेरी दुकान पर है, वही और सब दुकानों पर भी है; जो दाम यहाँ है, वही दाम सभी जगह है; कहीं से भी लो, सब एक है – तो यह दुकान खो जायेगी । ये दुकान नहीं बच सकती । दुकानदार को तो कहना ही चाहिए कि माल तो सिर्फ यहीं है, बाकी सब नकल है !

महावीर अजीब दुकानदार हैं ! वे कहते हैं कि दूसरा भी ठीक हो सकता है । वे किसी को गलत कहते ही नहीं । उनकी चेष्टा ही यही है कि कोई कितना भी गलत क्यों न हो, उसमें भी थोड़ा सच तो जरूर होगा । उस सच को चुन लो । क्योंकि कोई भी बिलकुल झूठी बात टिक नहीं सकती, खड़ी नहीं हो सकती । खड़े होने के लिये भी थोड़ा तो सच का सहारा चाहिए । वे कहते हैं, इसलिये जब तुम किसी असत्य को भी चलते देखो, तो थोड़ी खोज करना, उसके पीछे जरूर कहीं कोई सत्य होगा । अन्यथा असत्य चल नहीं सकता । असत्य को भी चलने के लिये सत्य के ही पैर चाहिये, तो ही वह चल सकता है । तो तुम उस सत्य को पकड़ लो, असत्य की फ़िकर छोड़ दो । असत्य पर तुम जोर ही क्यों देते हो ।

महावीर से कोई आकर अगर पूछे – 'निर्वाण है या नहीं ?' तो महावीर कहते हैं : 'है भी और नहीं भी है ।' ऐसे आदमी का सम्प्रदाय बनाना मुश्किल है । क्योंकि यह आदमी कोई भी बात पक्की नहीं कहता । कभी कहता है, 'है', कभी कहता है, 'नहीं है ।'

सम्प्रदाय बनाने के लिये साफ़ बातें चाहिये । ऐसा नहीं कि महावीर की बातें ग़ैर-साफ़ हैं । उनकी बातें इतनी साफ़ हैं कि हम-जैसे अन्धों को उनमें सफाई दिखाई

नहीं पड़ती। हमारी आदतें हैं बंधी हुई चीजों को देखने की। महावीर का सत्य आकाश की तरह बड़ा है, पर हम आंगन की तरह छोटे-छोटे सत्यवाले लोग हैं।

तो महावीर कहते हैं कि निर्वाण है उसके लिये जो 'केवल' में पहुँच गया है। निर्वाण नहीं है उसके लिये जो अभी संसार में खड़ा है।

महावीर से कोई पूछता है – 'क्या संसार माया है?' क्योंकि मायावादी हैं, वे कहते हैं संसार माया है। तो महावीर कहते हैं – 'है भी, नहीं भी है।' क्योंकि जो संसार में खड़ा है उसके लिये संसार माया नहीं है, और जो संसार के पार उठ गया है उसके लिये संसार माया है। उसके लिये कुछ भी नहीं बचा संसार में, उसका स्वप्न टूट गया है। इन्द्रधनुष दूर से देखे जाने पर है, पास से देखे जाने पर नहीं है।

तो महावीर कहते हैं : सभी सत्य जो हम कहते हैं, आंशिक हैं, उनसे विपरीत भी सत्य हो सकता है। यह दृष्टि जिस व्यक्ति को है, ऐसा व्यक्ति अपने ज्ञान को आवृत करनेवाले कर्मों को काट देता है।

महावीर बड़े अद्भुत हैं। महात्मा गान्धी ने एक शब्द चलाया – सत्याग्रह। महावीर उससे भी राजी नहीं हैं। वे कहते हैं, सत्य का भी आग्रह नहीं; क्योंकि जहाँ आग्रह आया, वहाँ असत्य आ जाता है। महावीर कहते हैं – अनाग्रह।

लेकिन, हम तो असत्य का भी आग्रह करते हैं। क्योंकि मेरा असत्य मुझे आपके सत्य से भी ज्यादा प्रीतिकर मालूम पड़ता है। क्योंकि मेरा है। मेरे असत्य के लिये मैं लड़ता हूँ; मैं कहता हूँ, यही सत्य है। क्यों. . ? ऐसी लड़ाई भी क्या है . . ? क्योंकि अगर ये असत्य टूटता है, तो मैं टूटता हूँ। उसके सहारे ही मैं खड़ा हूँ। अगर मेरी सारी धारणाएँ गलत हो जाएँ, तो मैं गलत हो गया।

लेकिन जो व्यक्ति ज्ञान की खोज में निकला है, अगर वह तैयार है पूरी तरह से गलत होने को, तो वह पूरी तरह से सही हो जायेगा। उसकी यात्रा शुरू हो गयी।

महावीर कहते हैं, दूसरा है ज्ञान को आवृत्त करनेवाला – 'दर्शनावरणीय।' आपकी आँखों पर, आपके दर्शन पर भी पर्दा है। आप जो देखते हैं, उसमें आपकी व्याख्या प्रविष्ट हो जाती है।

मैंने सुना है, अमरीका का एक करोड़पति पिकासो के एक चित्र को खरीद कर ले गया। लाखों रुपये पिकासो के चित्र के दाम थे। उसने अपनी बैठकखाने में उस चित्र को लगाया। वह उस चित्र की बड़ी प्रशंसा किया करता था। जो भी उसके घर आता, वह उसे चित्र दिखाता कि देखो कैसा अद्भुत चित्र है, कितने रुपए खर्च किये हैं। एक दिन पता चला कि वह चित्र नकली है; पिकासो का बनाया हुआ नहीं है, किसी ने नकल की है।

बात खत्म हो गई। वह जो सुन्दर चित्र था, बहुमूल्य उसका सौन्दर्य खो गया, मूल्य खो गया। वह चित्र उसने उठाकर कबाड़खाने में डाल दिया।

इस आदमी को सच में सौन्दर्य दिखाई पड़ता था या सिर्फ़ ख़याल था? अगर इसने अपनी आँखों से चित्र का सौन्दर्य देखा होता तो यह कहता, 'क्या फ़र्क़ पड़ता है कि किसी ने नकल की है? चित्र सुन्दर है और बैठक में रहेगा। चित्र लाखों रुपये का है, चाहे नकल ही क्यों न हो। चित्र अपने-आप में सुन्दर है, और जिसने नकल की है वह पिकासो से बड़ा कलाकार है; क्योंकि पिकासो की नकल कर सका। शायद पिकासो भी अपने चित्र की नकल न कर सके। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

लेकिन चित्र उठाकर फेंक दिया गया, क्योंकि असली सवाल चित्र का नहीं था। पिकासो का है – इससे था। लेकिन कुछ महीने बाद पता चला कि वह धारणा गलत थी, चित्र पिकासो का ही है। चित्र उठाकर वापस बैठकखाने में लगा दिया गया। झाड़-पोंछ की गई उसकी फिर से, क्योंकि कचरा-कूड़ा उसपर जम गया था। और वह करोड़पति फिर से कहने लगा कि 'कैसा अद्भुत् चित्र है!'

आपकी आँखें हैं या क्या हैं? आप भी यही कर रहे हैं। . . . आप भी . . . यही कर रहे हैं!

अगर कोई बाँसुरी बजा रहा है, आपको पता है कि ऐसे ही कोई ऐरा-गैरा बजा रहा है, तो आप कहेंगे कि 'क्यों सिर खा रहे हो?' और अगर आपको पता चले कि कोई महान कलाकार है, तो आप बिलकुल रीढ सीधी करके बैठ जायेंगे कि 'क्या ग़जब का संगीत है!'

लोग शास्त्रीय संगीत सुनते रहते हैं! उनको बिलकुल पता नहीं कि क्या हो रहा है? लेकिन शास्त्रीय हो रहा है, तो शास्त्रीय सुनने से वे भी सुसंस्कृत मालूम होते हैं। वे भी सिर हिलाते हैं! . . . 'दर्शनावरणीय!'

आपके पास अपनी आँखें नहीं, अपने कान नहीं, अपने हाथ नहीं – एक्सपर्ट बता रहा है कि 'यह कीमती है, यह सुन्दर है, यह बहुमूल्य है।'

आपके हाथ में हीरा रख दिया जाये और बताया न जाये कि हीरा है, कह दिया जाए कि एक चमकदार कंकड़ है, आप उसे बच्चों को खेलने को दे देंगे। और एक दिन आपको पता चले कि एक्सपर्टस् कह रहे हैं कि 'कोहेनूर है' – छीन लेंगे बच्चे से, तिजोरी में बन्द करके रख लेंगे।

आपके पास अपनी कोई भी प्रतीति नहीं है; आपका दर्शन विशुद्ध नहीं है – अशुद्ध है, उधार है। आँखें अपनी हैं, और आँखों पर पर्दे किन्हीं और के हैं। सब चीजें ऐसी हैं। . . . सब चीजें ही . . . ऐसी हैं! मैं रोज देखता हूँ। आप रोज अनुभव करते होंगे, चारों तरफ यह घट रहा है।

मैं एक मित्र को एक मूर्ति दिखाने ले गया। मूर्ति महावीर की है, लेकिन कुछ अनऑर्थोडॉक्स है। जैसी होनी चाहिये महावीर की, वैसी नहीं है, कुछ भिन्न है। तो वे खड़े रहे। मैंने कहा कि 'झुको, नमस्कार करो।' उन्होंने कहा, 'क्या झुकने का है?' मैंने कहा, 'जरा नीचे देखो गौर से, महावीर का चिन्ह बना हुआ है। नीचे गौरसे देखा, और साष्टांग... सिर रख कर लेट गये!

आखिर आपके भीतर से अपना कुछ उद्भावन होता है कि नहीं होता? या सब दूसरों से संचालित है?

तो जिसकी दृष्टि अपनी नही है, निज की नही है, उसको महावीर कहते हैं, उसके दर्शन पर आवरण है।

अपनी आँखें खोजें। और अगर आपको एक पत्थर प्रीतिकर लगता हो, तो हीरे की तरह उसे अपनी तिजोरी में सम्हाल कर रखें; और अगर एक हीरा आपको साधारण लगता हो, तो कचरे में फेंक दें!

इतनी हिम्मत चाहिये। इतनी हिम्मत न हो तो आदमी कभी भी दर्शन की क्षमता को उपलब्ध नही होता। और जिसके पास आँख अपनी नही हैं, वह क्या अपने परमात्मा को खोज सकेगा! कोई उपाय नहीं है।

निजता मूल्यवान है।

तीसरे कर्म की एक प्रक्रिया है जो हमें चारों तरफसे घेरे है, उसे महावीर 'वेदनीय' कहते हैं। दुख के परमाणु हमारे चारों तरफ हैं। उनके कारण हम निरन्तर दुखी होते रहते हैं। कुछ लोग, आप जानते होंगे — कुछ क्या, अधिक लोग ऐसे होते हैं, जिनको आप सुखी कर ही नहीं सकते। आप कुछ भी करें, वे उसमें से दुख निकाल लेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन हर साल रोता था कि 'इस साल फसल खराब गई, इस साल वर्षा आ गई, इस साल धूप ज्यादा हो गई, इस साल जानवर चर गये, इस साल पक्षी आ गये। लेकिन, एक साल ऐसा हुआ अनहोना कि न पक्षी आए, न कीड़े लगे, न ज्यादा धूप पड़ी, न ज्यादा वर्षा हुई, न कम वर्षा हुई। फसल ऐसी अद्भुत हुई कि लोग कहने लगे कि 'हजारों वर्ष में ऐसा शायद ही हुआ हो।' बूढ़े-से-बूढ़े गाँव के कहने लगे — 'बड़ी अद्भुत फसल हुई है; कुछ भी सड़ा नही, कुछ भी गला नहीं, कुछ भी खराब नहीं हुआ।' लेकिन मुल्ला है कि अपने दरवाजे पर सिर लटकाए दुखी बैठा है। उसके पड़ोस के लोगों ने कहा कि 'नसरुद्दीन, अब तो खुश हो जाओ, अब तो कुछ भी उदासी का कारण नहीं है।' उसने कहा कि 'कारण क्यों नहीं है कुछ भी सड़ा-गला नहीं है, जानवरों को क्या खिलायेंगे?'

. . . 'वेदनीय' . . . दुख खोज ही लेंगे ! ऐसा हो ही नहीं सकता कि कहीं दुख न हो ।

हम सबके पास जन्मों-जन्मो से ऐसे वेदनीय परमाणु है, जो हमें उकसाते हैं कि खोजो दुख, दुख खोजो । और ऐसा असम्भव है कि आदमी को कहीं खोजने से दुख न मिल जायें । जीवन में दुख है — काफ़ी हैं. और अगर आप खोजने को उत्सुक हैं, तब तो कहना ही क्या !

हमारी हालत वैसी ही है, जैसे कभी आपके पैर में चोट लग जाती है, तो फिर दिनभर वही चोट लगती रहती है । आप सोचते होंगे, 'कैसा अजीब मामला है, दुनिया का नियम कैसा बेहूदा है कि जब चोट नहीं थी तो इसमें चोट नहीं लगती थी, अब चोट लगी है, एक घाव है, तो दिनभर चोट लग रही है ?'

आप गलती में है । दुनिया आपके घाव को कोई फ़िक्र नहीं करती । और न दरवाजे को कोई मतलब है कि आपके घाव में लगे; न कुर्सी को मतलब है, न टेबल को मतलब है । न बच्चे को मतलब है कि आपके घाव पर खड़ा हो जाये । किसी को कोई मतलब नहीं है आपके घाव से । लेकिन जब आपके पास घाव होता है, तो वेदनीय कर्म आपके घाव के आस-पास इकट्ठे हो जाते हैं । तब हर चीज़ छूती है, और बहुत दुख मालूम होते हैं । कल भी हर चीज़ छूती थी, लेकिन आपके पास दुख को पकड़ने की क्षमता नहीं थी, घाव नहीं था । कल भी लड़के ने पैर वहीं रख दिया था, लेकिन कुछ पता नहीं चला था । आज भी वहीं रख दिया है, लेकिन आज पता चलता है; क्योंकि आज घाव है ।

ध्यान रहे, आपके दुख कोई आपको दे नहीं रहा है, आप ले रहे हैं । दुनिया में कोई किसी को दुख दे नहीं सकता । यह हमें कठिन लगेगा । इससे उल्टा समझ लें तो आसानी हो जायेगी । क्या दुनिया में कोई किसी को सुख दे सकता है ? पत्नी पति को सुख देने की कोशिश कर रही है, पति पत्नी को सुख देने की कोशिश कर रहा है । और दोनों दुखी हैं, नर्क में मरे जा रहे हैं । . . . कोई किसी को सुख नहीं दे सकता है ' तो कोई किसी को दुख भी कैसे दे सकता है ।

मां-बाप बड़ी कोशिश कर रहे हैं बेटे को सुख देने की, और बेटा सोच रहा है : कब इनसे छुटकारा हो, कैसे छूटें इनके जाल से ।

. . . क्या मामला है . . . ?

कोई किसी को सुख दे नहीं सकता, न कोई किसी को दुख दे सकता है । इस जगत में दुख लिया जा सकता है, सुख लिया जा सकता है — दिया नहीं जा सकता । यह एक मौलिक सिद्धान्त है, आधारभूत । इसलिए अगर आप दुख में जी रहे हों,

तो समझना कि आप दुख लेने में बड़े कुशल हैं। और उस कुशलता का नाम वेदनीय-कर्म है।

आप कुशल हैं : आप सदा दुख लेने को उत्सुक हैं। एक आदमी आपकी दिनभर सेवा करे, आपको ख़याल भी नही आयेगा। और ज़रा आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दे कि बस, सब नष्ट हो गया। एक पत्नी आपको जीवनभर सेवा करती रहे, पैर दबाती रहे, कुछ पता नहीं चलता। कोई ख़याल भी नही, धन्यवाद भी आप कभी नहीं देते। और एक दिन कह दे कि 'नही, आज चाय मुझे नहीं बनानी, आप बनालें', तो सब जीवन नष्ट हो गया, सब गृहस्थी बरबाद हो गई। मन में तलाक के विचार आने लगते हैं।

नसरुद्दीन खड़ा था अदालत में जाकर और कह रहा था कि 'अब बस, अब बहुत हो गया, अब तो तलाक चाहिये।' उससे मजिस्ट्रेट ने पूछा कि 'बात क्या है?' नसरुद्दीन ने कहा कि 'बात हद से ज्यादा आगे बढ़ गई है। एक ही कमरा है रहने का और उसमें पत्नी ने तीन-तीन बकरियाँ पाल रखी हैं। इतनी गन्दगी हो रही है और इतनी बास आ रही है कि अब मर जायेंगे, या फिर तलाक। इन दोनो के अतिरिक्त अब और कोई उपाय नहीं है।' जज ने कहा कि 'बात तो समझ में आती है, हालत तो बुरी है, लेकिन खिड़कियाँ क्यों नही खोल देते कि बास जरा बाहर निकल जाये? नसरुद्दीन ने कहा, 'क्या कहा, खिड़कियाँ?— और मेरे पाँच सौ कबूतर उड़ जायें..!

.. खिड़कियाँ खोल नही सकते, क्योंकि पाँच सौ कबूतर ख़ुद रखे हुए हैं..!
...वेदनीय — कर्म..!

आदमी दुख को खोज रहा है। नही मिलता, तो भी तकलीफ होती है। अगर दिनभर कोई न मिले जो आपको क्रोध दिलाए, तो भी ऐसा लगता है कि कुछ खाली-खाली गया। कोई न मिले, जो आपको दुख दे, तो भी ऐसा लगता है कि आज कुछ हुआ नहीं। उस दिन सब बेरौनक मालूम पड़ता है।

आपके जीवन में जो घटता है, वह आपकी ग्राहकता है। महावीर का ज़ोर इस बात पर है कि आपके पास वेदनीय-कर्म हैं; आपने जन्मों-जन्मों में दुख पाया है, इकट्ठा किया है, उसके कारण आप दुखी होते चले जाते हैं। इस सिलसिले को तोड़ें। यह तभी टूटेगा, जब आप दूसरे को जुम्मा देना बन्द कर दें। यह कहना बन्द कर दें कि 'दूसरा मुझे दुख दे रहा है।' यह तभी टूटेगा, जब आप समझेंगे कि कि मैं दुख चुन रहा हूँ। तो जब भी आप दुखी हों, तत्काल निरीक्षण करें कि दुख आपने कैसे चुना? और उस चुनाव को बन्द करें। धीरे-धीरे चुनाव बन्द होता

जायेगा, सेतु टूट जायेंगे । और तब आप दूसरी प्रक्रिया भी सीख सकते हैं, कि सुख चुनें ।

जो आदमी दुख छोड़ने की प्रक्रिया सीख जाता है, वह सुख चुनने लगता है । वह गलत-से गलत स्थिति में से भी सुख निचोड़ ले सकता है । उसी को जीवन की कला आती है, वही जीवन का रस पी पाता है । वही जीवन को भोग पाता है, जो गलत-से-गलत स्थिति में से भी सुख चुन लेता है ।

मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे – बड़े परेशान । मैंने उनको कहा कि 'अच्छा ही हुआ कि महीने भर के लिए फ़ुरसत मिली ! वैसे तो शायद फ़ुरसत कभी मिलती नही । परमात्मा की अनुकम्पा है कि उसने बीमार किया, कि तुम बिस्तर पर पड़े हो ! अब बिस्तर का आनन्द लो ! अब क्यों परेशान हो रहे हो ? जा सकते नहीं दुकान पर, उठ सकते नही, कुछ कर सकते नहीं । और काफ़ी कर लिया, पचास साल से कर ही रहे हो, कुछ पाया भी नही । एक महीना बिस्तर में पड़े रहो शान्ति से तो क्या हर्ज है ? लोग इसी की तो आशा रखते हैं मोक्ष में कि पड़े हैं कोई काम नहीं, कोई झंझट नहीं ! मोक्ष नही चाहिए ? महीना भर के लिए मिला है, कम्पलसरी मिला है – लो ! कुछ पढो, कुछ संगीत सुनो, कुछ ध्यान करो । बहुत से काम आपाधापी में नही कर पाए हो, छूट गये है । फिजूल काम है – बच्चों से बात करनी है, पत्नी के पास बैठ जाना है । कुछ करो, आनन्द लो इतने दिन का – एक महीना मिल गया है अवकाश का !'

वह बोले कि 'नही, अभी कहाँ अवकाश । अभी बड़े काम उलझे हैं ।' पर मैं उनको कह रहा हूँ कि काम उलझे हैं तो उलझे है, तुम जा सकते नहीं, कोई उपाय है नहीं । मगर वे पड़े हैं अपने बिस्तर पर और दुकान पर चिन्ता खींच रही है, ऑफिस में चिन्ता खीच रही है ।

अगर आपको कोई अनिवार्य रूप से भी मोक्ष भेज दे, आप वापिस आ जायेंगे : 'काम बहुत बाकी है, अभी हम जा नही सकते !'

चौथे कर्म को महावीर कहते हैं, 'मोहनीय कर्म'। जब आप किसी से आकर्षित होते है, तो आपकी धारणा होती है कि आकर्षण का विषय आपको आकर्षित कर रहा है । महावीर कहते हैं, नही । सारे जीवन की प्रक्रिया आपसे पैदा होती है । आप आकर्षित हो रहे हैं, कोई आकर्षित कर नही रहा है ।

कहा जाता है कि लैला कुरूप थी, सुन्दर नही थी, और मजनूं आकर्षित था । कहा जाता है कि गाँव में सबसे कुरूप लड़की लैला थी और मजनूं दीवाने थे । मजनूं की दीवानगी इतनी ज्यादा थी कि अब जब भी कोई दीवाना होता है, तो लोग उसको मजनूं कहते हैं । सम्राट ने बुलाया मजनूं को और कहा कि 'तेरी दीनता, तेरा दुख, तेरा रुदन देखकर दया आती है । पागल, उस लड़की में कुछ भी नहीं है, तू नाहक

परेशान हो रहा है। और तुझ पर मुझे इतनी दया आने लगी है कि रात तुझे रोता हुआ निकलता देखता हूँ सड़कों से, चिल्लाता – लैला, लैला, कि मैंने गाँव की सब सुन्दर लड़कियाँ बुलाई हैं। लड़कियाँ खड़ी हैं, इनमें से तू चुन ले।' मजनूं ने कहा, 'लैला तो इनमें कहीं भी नहीं है।' सम्राट ने कहा, 'लैला बिलकुल साधारण है।' तो मजनू ने कहा, 'लेकिन आप कैसे पहचानेंगे? लैला को देखने के लिए मजनूं की आँख चाहिये। वही असाधारण है।'

निश्चित ही, मजनू के लिए लैला असाधारण है। लैला का सवाल नहीं है, मजनूं की आँख का सवाल है। आपको क्या चीज आकर्षित करती है, उसका सवाल है।

एक दिन नसरुद्दीन निकल रहा है सड़क से। पत्नी ज़रा पीछे रह गई। नसरुद्दीन ने सड़क से झुककर कुछ उठाया, फिर क्रोध से फेंका। पत्नी तब तक पास आ गई थी। नसरुद्दीन ने कहा कि 'अगर यह आदमी मुझे मिल जाये, तो इसकी गर्दन उतार लूँ।' तो उसकी पत्नी ने पूछा, 'मामला क्या है? कौन आदमी? यहाँ तो कोई है नहीं! उसने कहा, 'वह आदमी जो इस तरह थूकता है, जैसे अठन्नी मालूम पड़े... अगर मुझे मिल जाये, तो उसकी गर्दन उतार लूं...!'

...अठन्नी से कुछ लेना-देना नहीं है। अपना ही 'मोहनीय-कर्म'.. आपके भीतर का आकर्षण, मोह, लोभ – वह आपको पकड़े हुए है।

पाँचवें को महावीर कहते हैं, 'आयु'। महावीर कहते हैं, आयु जो उपलब्ध होती है, वह कर्मों के अनुसार उपलब्ध होती है। इसलिए उसे कम-ज्यादा करने की चेष्टा व्यर्थ है। और उसे ज्यादा करने की जो चेष्टा करता है, उससे उसकी उम्र ज्यादा नहीं हो पाती, नया जन्म निर्मित होता है।

महावीर कहते हैं, हर आदमी अपने कर्मों के अनुसार उम्र लेकर पैदा होता है। एक आदमी को सत्तर साल जीना है – लेकिन कोई आदमी सत्तर साल जीना नहीं चाहता। सात सौ साल भी कम मालूम पड़ते हैं। सात हजार साल भी कोई कहे, तो भी आप कहेंगे : 'क्या कुछ और नहीं बढ़ सकती?' यह जो बढ़ने की आकांक्षा है, इससे उम्र नहीं बढ़ती – महावीर कहते हैं – लेकिन नया जन्म बढ़ जाता है। यह शरीर तो सत्तर साल में गिरेगा, लेकिन अगर आप सात सौ साल जीना चाहते हैं, तो आपको और पन्द्रह-बीस जन्म लेने पड़ेंगे। क्योंकि आपकी वासना आपको जन्म दिलाती है।

आयु कर्म से उपलब्ध होती है। इसलिए आयु जितनी हो, उसको स्वीकृति चाहिये, तो नए जन्म की दौड़ बन्द हो जाती है। महावीर कहते हैं, न तो फ़िक्र करनी चाहिये कि ज्यादा जियूँ, न फ़िक्र करनी चाहिये कि कम जियूं। दोनों हालत में गलती हो रही है।

कुछ लोग जीवन से उदास हो जाते हैं । घर जल जाये,बैंक डूब जाये, या दीवाला निकल जाये – कुछ हो जाये तो वे कहते हैं, 'मर जायेंगे ।' वे अपनी उम्र कम करना चाहते हैं । लेकिन कर्मों से जितनी उम्र मिली है, वह भोगनी ही पड़ेगी । अगर किसी आदमी को सत्तर साल जीना हो और वह चालीस में मर जाये, तो वह जो तीस सालों का कर्म बाकी रह जायेगा वह उसे नए जन्म में ले जायेगा । किसी आदमी को सत्तर साल जीना है, और सात सौ की कामना रखता है, तो वह कामना उसे अगले जन्मों में ले जायेगी ।

महावीर कहते हैं कि आयु मिलती है पिछले जन्मों के कर्मों से । इसलिए जितनी आयु मिली है, उसको उतना स्वीकार कर लेना चाहिये । न मारने की अपने को चेष्टा करनी चाहिये, और न जिलाने की । साक्षी-भाव से जितनी है, वह हमारा पिछला ऋण है – चुक जाये । और सब शान्त हो जाये । जीवेषणा अगर बनी रहे, तो आदमी को खींचती चली जाती है । उस जीवेषणा के कारण अनन्त भव का भटकारा हो जाता है ।

यह जो आयु है, यह आपके हाथ में नहीं है, यह आपके पिछले कर्मों पर निर्भर है । यह बात बहुत दूर तक सही है, वैज्ञानिक रूप से भी सही है । हालांकि वैज्ञानिक राज़ी नहीं होंगे इस बात से । वे कहेंगे अगर हम आदमी को ठीक सुविधा दें, स्वस्थ रखने की व्यवस्था दें, इलाज दें, तो वह सत्तर साल जी सकता है । और उसको खाने-पीने न दें, इलाज न दें, तो चालीस साल में मर सकता है । महावीर कहते हैं, चालीस साल में वह मर सकता है, चालीस साल क्या चार दिन में मर सकता है, अगर गोली मार दें, ज़हर दे दें – लेकिन इससे उसका आयु-कर्म नहीं किया जा सकता । वह नये जन्म में उतने आयु-कर्म को पूरा करेगा । उससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है । वह जो उसका कर्म है, जितना उसने इकट्ठा किया है; जीने की जितनी वासना उसने इकट्ठी की है, उतनी वासना उसे पूरी करनी पड़ेगी । वह मोमेन्टम है, वह पूरा करना पड़ेगा ।

महावीर कहते हैं कि जीवन चलता है कार्य-कारण के नियम से । यहाँ जो भी इकट्ठा हो गया है, उसका प्रतिफल पूरा करना होगा । इसलिए उसे सहज स्वीकृति से जो जी लेता है, वह मुक्त हो जाता है ।

'नाम' . . । महावीर कहते हैं कि नाम, अहंकार, यश, पद, कुल, प्रतिष्ठा – ये सब भी कर्म हैं । एक आदमी ब्राह्मण के घर पैदा होता है, अच्छे घर में पैदा होता है, जहाँ ज्ञान का वातावरण है, शुभ मौजूद है । वह वहाँ इसलिए पैदा होता है कि पिछले जन्मों में, महावीर कहते हैं, वह विनम्र रहा होगा, शान्त रहा होगा । लेकिन ब्राह्मण का बेटा होकर वह अकड़ जाता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, शूद्र से ऊँचा हूँ – अब वह ऐसा इन्तजाम कर रहा है कि अगले जन्म में शूद्र हो जाये ।

नाम, कुल, आकार – मूर्त पर ज़ोर न दें, अमूर्त को ध्यान में रखें तो कर्म कटते हैं। मूर्त पर बहुत ज़ोर दें तो कर्म बढ़ते हैं। तो महावीर कहते हैं कि कुल की, नाम की, पद की, प्रतिष्ठा की चर्चा ही उठानी उचित नहीं है। इसलिए महावीर किसी से भी नहीं पूछते, जब उनके पास कोई दीक्षा लेने आता है, संन्यस्त होता है तो वे उससे नहीं पूछते : तू जाति से क्या है ? कुल से क्या है ? तेरा नाम क्या है ? धन कितना था परिवार में ? कुलीन घर से आता है कि अकुलीन घर से आता है ? नहीं, उसके मूर्त जीवन के सम्बन्ध में वे कुछ भी नहीं पूछते। झांकते हैं उसके अमूर्त जीवन में।

तो आप अपने आस-पास जो आकार हैं, उसपर ज़ोर न दें; क्योंकि आकार पर ज़ोर देंगे तो आकार निर्मित होते चले जायेंगे। निराकार जो भीतर छिपा है, उस पर ज़ोर दें। वह, आकारों कि जो प्रक्रिया है उसको काटने का उपाय है।

'गोत्र'..। गोत्र से महावीर का अर्थ है, वैषम्य का भाव : कि मैं ऊँचा हूँ, तुम नीचे हो। महावीर ने ऊँच-नीच के भाव को तोड़ने की बड़ी चेष्टा की, क्योंकि वे कहते हैं कि यह बहुत सूक्ष्म अहंकार है कि 'मैं ऊँचा हूँ।'

लेकिन उस धारणा में हम सभी जीते है। आपको कोई ऊँचा लगता है कोई नीचा लगता है; किसी को आप देखते हैं कि वह नीचे हैं, किसी को आप देखते हैं कि वह ऊपर है। और खुद को ऊपर होना चाहिए, इसकी चेष्टा में लगे रहते हैं।

महावीर कहते हैं जो ख़ुद ऊपर होने की चेष्टा में लगा है, प्रतिस्पर्धा में लगा है, वह अपने ही हाथों नीचे डूबता जा रहा है। जो बिलकुल सहज खड़ा हो जाता है और ऊँचे-नीचे के भाव को छोड़ देता है, गोत्र का भाव छोड़ देता है, वही केवल इस चक्कर से मुक्त हो पाता है।

लेकिन, आसान है अपने को ऊँचा समझना। इससे उल्टा भी आसान है, अपने को नीचा समझना भी आसान है।

एडलर ने पश्चिम में खोज की है कि मनुष्य में दो वृत्तियाँ हैं, एक सुपिरियारिटि कॉम्पलेक्स और इन्फिरियारिटी कॉम्पलेक्स – एक ऊँचे की भावना और एक नीचे की भावना। इन दोनों में से कोई भी आप पकड़ लेंगे। या तो अपने को ऊँचा समझेंगे या अपने को नीचा समझेंगे। कुछ लोग सदा अपने को ऊँचा समझते रहते हैं, कुछ लोग सदा अपने को नीचा समझते रहते है। इसी वजह से वे डरे रहते हैं, सिकुड़े रहते हैं, हमेशा भयभीत रहते हैं।

महावीर कहते हैं दोनों ही कर्म-मल हैं, दोनों भाव छोड़ दें। सिर्फ़ जानें अपने को कि मैं हूँ – न ऊँचा, न नीचा। किसी तुलना में अपने को न रखें, और किसी से अपने को तौलें भी नहीं; क्योंकि किसी से तौलने की जरूरत नहीं है, कम्पेरिजन का

कोई सवाल नहीं है। आप आप हैं, और आप-जैसा कोई भी नहीं है जगत् में। इसलिये तौलने का कोई उपाय नहीं है। तौल तो वहाँ हो सकती है जहाँ आप-जैसा कोई और हो।

तो कोई आपसे नीचा भी नही हो सकता, ऊँचा भी नही हो सकता। आप कह सकते है क्या, कि आम जो है, इमली से नीचा है? वैसा कहना पागलपन की बात है। हाँ, आप यह कह सकते है कि यह राजा आम है, ये साधारण आम से ऊँचा है। दो आमों में तुलना हो सकती है, एक आम और एक इमली में तुलना नही हो सकती।

महावीर कहते है प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय परमात्मा है -- यूनीक, बेजोड़। उसकी कोई तुलना नही है। इसलिये महावीर ने जब वर्ण का विरोध किया तो वह कोई सामाजिक-क्रान्ति नही थी, वह आध्यात्मिक विचारणा थी। गान्धी भी विरोध करते थे वर्ण का, केशवचन्द्र सेन भी विरोध करते थे, राम मोहन राय भी विरोध करते थे, लेकिन उनका विरोध सामाजिक धारणा थी। महावीर का विरोध बहुत आन्तरिक और गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि हर मनुष्य अद्वितीय है, कि तुलना का कोई उपाय नही है। और जब आप अपने को तौलते है, तो नाहक ही अपने को कर्म के जाल में डालते है। न तो अपने को ऊँचा, न तो अपने को नीचा -- दूसरे से तौलें ही मत, तो गौत्र का कर्म नष्ट होता है।

और अन्तिम आठवाँ है, 'अन्तराय'। अन्तराय बड़ा काम कर रहा है आपके जीवन में। एक मित्र मेरे पास आये, कहने लगे कि 'आप इम्पाला में क्यों चलते हैं?' मैंने कहा, 'किसी भक्त ने अभी तक रॉल्स रायस दी ही नही, और तो कोई कारण नही है इम्पाला में चलने का।' उन्होंने कहा कि 'नहीं, और तो आपकी बात सब मुझे समझ में आती है, बस ये इम्पाला में चलना . . . !

. . . अब ये 'अन्तराय' हो गया। इम्पाला में आपको चलने को कह नहीं रहा, इम्पाला आपको मिल जाये तो मत चलना! मेरे इम्पाला में चलने से उनको . . !

मेरी सब बात ठीक लगती है, लेकिन इम्पाला को वजह से सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। इम्पाला अन्तराय बन रही है। अन्तराय का मतलब बीच में व्यवधान बन रही है, और ऐसा नहीं कि इम्पाला ही बनती रही है, अजीब-अजीब चीजें बन जाती हैं।

मैं जबलपुर था, तो एक वकील हाईकोर्ट के, बड़े वकील, एक दिन मुझसे मिलने आये, और आकर उन्होंने कहा कि 'और सब तो ठीक है, आपकी बात सब समझ में आती है, लेकिन आप इतनी लम्बी बाँह का कुर्ता क्यो पहनते हैं?

. . . मेरा कुर्ता आपको . . . ? . . . मेरी बाँह है . . . !

तो उन्होंने कहा कि 'इससे मुझे बड़ी अड़चन होती है। आपको मैं सुनने भी आता हूँ, तो मेरा ध्यान आपके कुर्ते पर ही लगा रहता है कि आप इतना लम्बा कुर्ता क्यों पहनते हैं? कई दफा तो मैं आपका सुनना ही चूक जाता हूँ।'

अन्तराय का अर्थ होता है : कोई व्यर्थ की चीज जो सार्थक में बाधा बन जाये। और आप सब इस तरह ही जीते हैं। जीवन को जिन्हें खोजना है, उन्हें अन्तराय तोड़ने चाहिये। उन्हें जो ठीक लगे, उतना चुन लेना चाहिये; जो गलत लगे, उसकी बात ही क्या उठानी? उससे आपका लेना-देना क्या है? उससे आपको प्रयोजन क्या है?

एक मित्र मेरे पास आये। किसी सद्गुरु के पास हैं। और निश्चित ही, जिस गुरु के पास हैं, वह कीमती आदमी है। वे कहने लगे, 'बस एक बात सब खराब कर देती है। वे कभी-कभी गाली दे देते हैं। ज्ञानी को गाली तो नहीं देना चाहिये?'

मैंने कहा कि 'तुम्हे क्या पता कि ज्ञानी को गाली देनी चाहिये कि नही? सब ज्ञानियों का हिसाब लगाओ, फिर पता लगाओ कि कितने ज्ञानियों ने दी है गाली, कितनों ने नही दी। रामकृष्ण देते थे। किताब में नही लिखा है, क्योंकि किताब मे लिखना मुश्किल मालूम पड़ता है।... ठीक-से गाली देते थे, अच्छी तरह देते थे...! लेकिन किताब में यह बात नही लिखी है, क्योंकि किताब में कौन लिखे?'

कहने लगे, 'रामकृष्ण गाली देते थे? हद हो गई! मैं तो उनकी किताबें अब तक पढ़ता रहा!'

....अन्तराय खड़ा हो गया। अब वह देते थे कि नहीं देते थे, ये भी सवाल नहीं है! अभी तक किताब बड़े मजे से पढ़ रहे थे!

उनकी गाली से तुम्हे क्या लेना-देना? रामकृष्ण गाली देकर नर्क जायेंगे तो वह जायेंगे। इम्पाला में बैठकर कोई नर्क जायेगा तो वह जायेगा। इससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम अपने जीवन की चिन्ता करो!

तुम्हें वह चुन लेना चाहिये जो तुम्हारे लिए सार्थक मालूम पड़ता है। लेकिन बड़े अन्तराय भीतर हैं। अब ध्यान रहे, जो आदमी कहता है, इम्पाला परेशान कर रही है, वह जरूर इम्पाला में बैठना चाहता होगा। और तो परेशानी का कोई कारण नही हो सकता। कही-न-कही भीतर कोई रस इम्पाला में बैठने का अवश्य मौजूद होगा। उसे रस मेरी बात से ज्यादा गाड़ी में हो, तो समझ में आता है कि मामला क्या है? लेकिन उसे यह दिखाई नही पड़ेगा कि उसका रस उसे बाधा दे रहा है, उसे दिखाई पड़ेगा कि मेरा बैठना बाधा दे रहा है।

... मैंने उस वकील को कहा कि 'ऐसा करें, आप के मन में कोई वासना लम्बी बाँह का कुर्ता पहनने की है, उसे पूरा कर लें। उन्होंने कहा कि 'क्या बात करते हैं आप? कभी नहीं!' मैंने कहा कि 'आप इतने जोश में आते हैं, इतने जोर से इनकार करते हैं, उसका मतलब ही यह होता है कि है। नहीं तो इतने जोश में आने की क्या बात है? हँस भी सकते थे। आपके मन में कोई वासना है, लेकिन उसे पूरा करने को हिम्मत नहीं है।'

वे थोड़े चिन्तित हुए, हल्के हुए। कहने लगे, 'हो सकता है, क्योंकि मेरे बाप मुझे कुर्ता नहीं पहनने देते थे। बाप भी वकील थे, वे कहते थे कि टाई बांधो। आपने शायद ठीक नब्ज पकड़ ली है। मेरे बाप ने मुझे कभी कुर्ता नहीं पहनने दिया। फिर हाईकोर्ट का वकील हो गया तो हाईकोर्ट के ढग से जाना चाहिये, नियम से जाना चाहिये। शायद कुर्ता पहनने की कोई वासना भीतर रह गई है।'

तो मैंने कहा कि 'तुम उसकी फ़िक्र करो। मेरे कुर्ते से तुम्हें क्यों...?

तुम्हें मेरा कुर्ता चाहिये तो ले जाओ। और क्या कर सकता हूँ...?

आदमी हमेशा बाहर सोचता रहता है, लेकिन सब सोचने के मूल कारण भीतर होते हैं। ये अन्तराय बड़ा कष्ट देते हैं ... बड़ा कष्ट देते हैं — जिनसे कोई प्रयोजन नहीं है।

अब एक मित्र अफ्रीका से आये। वह कहने लगे कि 'वहाँ एक महात्मा आए थे। और तो सब ठीक था, लेकिन बीच में बोलते-बोलते वह कान खुजलाते थे...!'

... तुम्हें क्या मतलब उनके कान खुजलाने से...?

नहीं, जरा शिष्टाचारपूर्ण मालूम नहीं होता। अब अगर इस व्यक्ति का मनोविश्लेषण किया जाए तो कान खुजलाने से कहीं-न-कहीं कोई दबी बात पकड़ में आ जायेगी। कहीं कोई अड़चन इसे होनी चाहिये।

... अब ये महात्मा पर छोड़ो! महात्मा को कम-से-कम इतनी स्वतन्त्रता तो हो कि अपना कान खुजलाए तो कोई बाधा न दे! मगर वह भी नहीं, वह भी नहीं कर सकते आप।

अन्तराय से महावीर का अभिप्राय है, जिन व्यर्थ की बातों के कारण सार्थक तक पहुँचने में बाधा आ जाती है।

ये आठ कर्म हैं। और इन आठ के प्रति जो सचेत होकर इनका त्याग करने लगता है, वह धीरे-धीरे केवल-ज्ञान की तरफ उठने लगता है।

महावीर के पास अनेक लोग इसलिए आने से रुक गये कि वे नग्न थे। वह अन्तराय हो गया। मेरे शिविर में कई लोग आने से घबड़ाते हैं कि वहाँ कोई नग्न हो जाता है।

कोई नग्न होता है ! . . .आपको करे तो दिक्कत भी है । होनी तो तब भी नहीं चाहिये; क्योंकि कपड़ा ही तो छुड़ा कर ले गया । लेकिन कोई आपको करे तो भी आपको स्वतन्त्रता पर बाधा है; कोई खुद अपने कपड़े उतार कर रखे तो भी आपको बेचैनी होती है ।

जरूर नग्नता के साथ आपका कोई आन्तरिक उपद्रव है । या तो आप नग्न होना चाहते हैं और हो नही पाते, और या फिर दूसरो को नग्न देखकर आपके मन में कुछ बातें उठती हैं, जो आप चाहते हैं न उठें । लेकिन आन्तरिक घटना ही है पीछे कारण ।

एक नग्न स्त्री जा रही हो, तो आपको बेचैनी इसलिए नही होती है कि वह नग्न है, बेचैनी इसलिए होती है कि वह नग्न है, कहीं मैं कुछ कर न गुजरूं । आपको अपने पर भरोसा नही है, इसलिए नग्न स्त्री से आपको घबड़ाहट होती है कि कही मैं कुछ कर न गुजरूं । कही इतना पागल न हो जाऊँ नग्न देखकर उसे कि मुझे कुछ हो जाये । तो आप बजाय अपनी इस वृत्ति को समझने के, कानून बनाते हैं कि कोई नग्न नहीं हो सकता । और आपको कानून बनाने में लोग सहयोगी मिल जायेंगे, क्योंकि उनका भी रोग यही है । बराबर मिल जायेंगे । वे कहेंगे, आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं, कोई नग्न नहीं हो सकता ।

मैं एक छोटी-सी कहानी पढ़ रहा था । एक छोटे बच्चे को लेकर उसकी चाची समुद्र के किनारे घूमने गई है । वहाँ एक भिखमंगा अधनंगा बैठा है खुली धूप में । चाची उस भिखमंगे को देखकर एकदम घबड़ा गई, वह लड़के को खीचने लगी । लड़का कहने लगा, 'रुको भी तो, यह भिखमंगा कितनी मस्ती से बैठा है!' वह बोली, 'वहाँ देख ही मत ।' तो वह लड़का, जब उसको रोका गया, तो उसका और देखने का मन हुआ कि मामला क्या है ? इस तरह से पहले चाची ने कभी उसे खीचा नहीं ! लेकिन चाची उसे बदहवास खींच रही है, और वह लौट-लौटकर पीछे देख रहा है । चाची कह रही है कि 'तू शैतान है बिलकुल ।' लड़का कहता है, 'मगर वह कितनी मस्ती से बैठा हुआ है – झाड़ के नीचे, अधनंगा !'

फिर वे घर आ जाते हैं । चाची मां से बात करती है, दोनों परेशान हो जाती हैं । पुलिस को फोन करती हैं, पुलिस आ जाती है । वह लड़का बड़ा हैरान है कि उस आदमी ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, कुछ बोला भी नहीं, अपनी मस्ती में बैठा हुआ है – लेकिन यह क्या हो रहा है ? उसने कुछ भी तो नहीं किया है करने के नाम पर !

तो वह छत पर चला जाता है और देखता है कि पुलिस उस भिखमंगे को मार रही है डंडों से । उसकी जननेन्द्रिय पर जूते से चोट कर रही है । वह लड़का चीखता

है, रोता है, लेकिन उसकी समझ से बाहर है मामला। शाम को वह अपने बाप से पूछता है कि बात क्या है? उस आदमी को क्यों सताया गया? तो बाप कहता है कि वह बहुत बुरा आदमी है। वह लड़का कहता है कि 'उसने कुछ किया ही नही तो बुरा कैसे हो सकता है?' तो बाप कहता है कि 'तू अभी नहीं समझेगा, बाद में समझेगा। यह बात समझाने को नहीं है; उसने बहुत बुरा काम किया है।' उस लड़के ने कहा, 'पर उसने कुछ किया हो नहीं! मैं मौजूद था, और चाची झूठ बोल रही है!'

उस आदमी ने कुछ भी नहीं किया है, कुछ चाची को हुआ है। मगर यह लड़का कैसे समझ सकता है, क्योंकि यह अभी इतना बीमार नहीं हुआ। अभी यह नया-नया है इन पागलों की जमात में। अभी इसको दीक्षा नहीं हुई। अभी इसकी समझ के बाहर है।

...तो बाप कहता है कि 'वह बहुत बुरी बात थी और इसकी तू चर्चा मत उठाना, इसे बिलकुल भूल जा।' तो वह कहता है, 'पुलिस का मारना उस गरीब आदमी को निश्चित हो बुरा था।' तो बाप कहता है, 'पुलिस का मारना बुरा नही था नालायक, वह आदमी जो कर रहा था...!'

... और वह कर कुछ भी नही रहा था, सिर्फ़ अधनंगा बैठा था!

हमारे भीतर कुछ होता रहता है, उसको तो हम दबा लेते हैं और बाहर दोष खड़ा कर देते हैं।

अन्तराय पर जिसका ध्यान चला जाये, वह व्यक्ति धीरे-धीरे हल्का होने लगता है और उसका बोझ, उस की जंजीरें गिरने लगती हैं। जजीर आपने पकड़ रखी है। छोड़ दें, मुक्ति आपका स्वभाव है।

लोकतत्त्व-सूत्र : ५

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; २९ अगस्त, १९७३

किण्हा नीला य काऊ य,
तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा य,
नामाइं तु जहक्कम ।।

किण्हा नीला काऊ,
तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो,
दुग्गइ उववज्जई ।।

तेऊ पम्हा सुक्का,
तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो,
सुग्गइ उववज्जई ।।

कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल – ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं ।

कृष्ण, नील, कापोत – ये तीन अधर्म-लेश्याएं हैं । इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है ।

तेज, पद्म और शुक्ल – ये तीन धर्म-लेश्याएं हैं । इन तीनों से युक्त जीव सद्गति में उत्पन्न होता है ।

महावीर की उत्सुकता न तो काव्य में है, और न तर्क में। उनकी उत्सुकता है जीवन के तथ्य, जीवन की वैज्ञानिक खोज, आविष्कार में। इसलिए महावीर ने समाधि के कोई गीत नहीं गाए। और न ही महावीर ने जो कहा है उसके लिये कोई तर्क उपस्थित किये हैं। तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं, हर बात के लिये। और ऐसी कोई भी बात नही, जिसके पक्ष में या विपक्ष में तर्क उपस्थित न किये जा सकें। तर्क दुधारी तलवार है। तर्क मण्डन भी कर सकता है, खण्डन भी। लेकिन तर्क से कोई सत्य की निष्पत्ति नही होती।

काव्य अभिव्यक्ति है। जो अनुभव हुआ है, उसके आनन्द की झलक उसमें मिल सकती है। लेकिन आनन्द कैसे अनुभव हुआ है, उसका विज्ञान उससे निर्मित नही होता। अधिक शास्त्र तार्किक हैं: जिनको बुद्धि की खुजली है, उनके लिए उनमें रस हो सकता है। शेष शास्त्र काव्यात्मक हैं: जिन्हे अनुभव हुआ है, उन्हें उन शास्त्रों में अपनी अभिव्यक्ति मिल सकती है। बहुत थोड़े-से शास्त्र वैज्ञानिक हैं; उनके लिए हैं, जिन्हें न तो बुद्धि की खुजली की बीमारी है, और न जो पहुँच गये है। जो जीवन में उलझे हैं और मार्ग की तलाश कर रहे हैं।

महावीर उस तीसरे कोण से ही बोल रहे है।

मैंने सुना है, एक यहूदी पण्डित की मृत्यु हुई। वह ईश्वर के सामने उपस्थित किया गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि 'पृथ्वी पर तुम क्या कर रहे थे पूरे जीवन?' तो उस पण्डित ने कहा, 'मैं धर्म का, शास्त्र का, शास्त्र को सिद्ध करने वाले तर्कों का अध्ययन कर रहा था।' ईश्वर ने कहा, "मै खुश हूँ, मेरे आनन्द के लिए तुम कोई तर्क, 'ईश्वर है', इसके प्रमाण में उपस्थित करो।"

पण्डित ने जीवनभर तर्क किये थे, लेकिन ईश्वर को सामने पाकर उसकी बुद्धि अड़चन में पड़ गई। क्या तर्क उपस्थित करे ईश्वर के होने का? दो क्षण तो वह सोचता रहा, लेकिन जब कुछ सूझा नही, बुद्धि खाली मालूम पड़ी, तो उसने कहा कि 'बड़ी मुश्किल है, आपके कानो के योग्य मैं कुछ कह सकूँ, ऐसा खोज नहीं पाता। अच्छा तो यह हो कि आप खुद ही कोई तर्क उपस्थित करें।'

'यू परफॉर्म सम पॉइंट एण्ड आई विल से यू हाउ टू रिफ्यूज इट: आप ही कोई तर्क उपस्थित कर दें और मैं तरकीब बताऊँगा कि उसका खण्डन कैसे किया जा सकता है।'

ठीक-से समझें तो तर्क सदा खण्डनात्मक है, निषेधात्मक है। वस्तुतः बुद्धि का स्वभाव नकार है। इसे समझ लें, ठीक-से। बुद्धि का स्वभाव निगेटिव है, नकारात्मक है। जब बुद्धि कहती है, नहीं, तभी होती है। और जब आप कहते हैं, हाँ, तब बुद्धि विसर्जित हो जाती है, हृदय होता है। जब भी आपके भीतर 'हाँ' होती है, 'येस' होता है, तब हृदय होता है। और जब 'नही' होती है, 'नो' होता है, तब बुद्धि होती है। इसलिए जो व्यक्ति जीवन को पूरी तरह 'हाँ' कह सकता है, वह आस्तिक है; और जो व्यक्ति 'नही' पर जोर दिये चला जाता है वह नास्तिक है।

नास्तिक होने से इस बात का कोई सम्बन्ध नही कि वह ईश्वर को अस्वीकार करता है या नहीं करता। नास्तिक होने का अर्थ है कि 'नही' उसके जीवन की व्यवस्था है; 'ना' कहना उसका सुख है, 'हाँ' कहने में उसे अड़चन है, कठिनाई है।

इसलिए आप देखते हैं, जैसे ही बच्चे में बुद्धि आनी शुरू होती है वह इनकार करना शुरू कर देता है। जैसे ही बच्चा जवान होने लगता है,उसकी अपनी बुद्धि चलने लगती है, उसे 'ना' कहने में रस आने लगता है, 'हाँ' कहना मजबूरी मालूम पड़ती है।

बुद्धि का स्वभाव सन्देह है, हृदय का स्वभाव श्रद्धा है। तो कुछ लोग हैं जिनको तर्क की ही कुल-जमा बेचैनी है – पक्ष में या विपक्ष में। और कोई अन्तर नहीं पड़ता, जो तर्क पक्ष में है वही विपक्ष में हो सकता है। तर्क वेश्या है। वह कोई गृहणी नहीं है, कोई पत्नी नही है; किसी एक पति से उसका सम्बन्ध नही है। जो उसे पैसे दे, उसी के वह साथ है।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़े वकील डॉक्टर हरिसिंह गौड, जिन्होंने सागर विश्वविद्यालय की स्थापना की, प्रिवी कौन्सिल में एक मुकदमा लड़ रहे थे। भुलक्कड़ स्वभाव के आदमी थे। तो जो उनका सहयोगी वकील था, वह उनको सब सूचनाएँ दे देता था रास्ते में कि अदालत में क्या-क्या किस-किस सम्बन्ध में उनको विवाद करना है। एक दिन सहयोगी वकील बीमार था और हरिसिंग गौड भूल गये कि वे किसके पक्ष में हैं और किसके विपक्ष में। प्रिवी कौन्सिल में जाकर उन्होंने बोलना शुरू कर दिया।

न्यायाधीश भी चकित हुए, विरोधी वकील भी हैरान हुआ; क्योंकि वे अपने ही मुवक्किल के खिलाफ बोल रहे थे, और ऐसे तर्क दे रहे थे कि अब कोई उपाय ही न रहा। विरोधी वकील हैरान हुआ कि अब मैं क्या कहूँगा? उसको कहने को कुछ बचा ही नही। तभी असिस्टैन्ट को, सहयोगी वकील को खयाल आया कि वह तो

बीमार पड़ा है, लेकिन कुछ गड़बड़ न हो जाए, तो वह भागा हुआ आया। तब तक वे सब-कुछ बोल ही चुके थे अपने मुवक्किल के विपक्ष में पूरी तरह से। आकर उसने उनका कोट हिलाया और कान में कहा कि 'आप क्या कर रहे हैं ? यह अपना मुवक्किल है !' तो उन्होंने कहा कि 'कोई फ़िकर न कर।'

उन्होंने कहा, 'न्यायाधीश महोदय ! अब तक मैंने वह दलीलें दीं, जो मेरा विरोधी पक्ष का वकील देना चाहेगा, अब मैं उनका खण्डन शुरू करता हूँ।' और उन्होंने खण्डन किया। और जितनी प्रबलता से समर्थन किया था, उतनी ही प्रबलता से खण्डन भी किया।

वकील और वेश्या में बड़ा सम्बन्ध है। वेश्या अपना शरीर बेचती है, वकील अपनी बुद्धि बेचता है। उसके पास अपना कोई पक्ष नहीं है। जो भी पक्ष खरीद सकता है, वही उसका पक्ष है।

तर्क वेश्या है। इसलिए महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों की उत्सुकता तर्क में नहीं है। और मैंने कहा कि उनकी उत्सुकता काव्य में भी नहीं है; क्योंकि काव्य तो आखिरी फूल है। जब कोई व्यक्ति समाधि को उपलब्ध होता है, तो उससे जो गीत की स्फुरणा होती है, वह जो संगीत उससे बहने लगता है, वह जो उसके उठने-बैठने में काव्य आ जाता है, वह अन्तिम चीज है। उसका रस लिया जा सकता है। लेकिन उसका रस वे ही ले सकते हैं जो उस उस जगह तक पहुँच गये हैं। साधक के लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। बल्कि खतरा भी है।

सोलोमन के गीत हैं बाइबिल में। वे समाधिस्थ व्यक्ति के गीत हैं। लेकिन बड़ा खतरा हुआ है। सोलोमन ने अपनी उस परम समाधि को स्त्री-पुरुष के प्रतीक से प्रगट किया है। क्योंकि उससे बेहतर कोई प्रतीक हो भी नहीं सकता। जीवन में मिलन का जो आत्यन्तिक अनुभव हो सकता है साधारण मनुष्य को, वह दो प्रेमियों का मिलन है। इसलिए सोलोमन ने अपनी समाधि की पूरी अनुभूति को स्त्री और पुरुष के प्रेम से प्रगट किया है।

लेकिन खुद बाइबिल पर भक्ति रखने वाले लोग भी सोलोमन के गीतों से डरते हैं; क्योंकि लगता है कि वे गीत तो अत्यन्त पार्थिव हैं। लेकिन मजबूरी है। उस परम तत्त्व को भी अगर गीत में प्रगट करना हो तो इस जगत में गीत की जो भाषा है 'प्रेम', उसी में प्रगट करना पड़ेगा। इसलिए अनेकों को मीरा के गीत में काम-वासना की झलक मिल सकती है। क्योंकि मीरा कह रही है कि 'आओ, मेरी सेज पर सोओ। मैं तैयार बैठी हूँ, तुम कहाँ हो ? मैंने फूल बिछा दिये हैं, सेज तैयार है; दिया जला लिया है, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। और जब तक तुम आकर मेरी सेज पर मेरे साथ न सो न जाओगे, तब तक मुझे चैन नहीं आयेगा।'

यह भाषा प्रेमियों की है। इसलिए फ्रायड को माननेवाले लोग मीरा का अध्ययन करें तो उन्हें लगेगा कि जरूर कोई काम-वासना भीतर दबी रह गई है। गीत में अगर प्रगट करना हो उस परम सत्य को, तो भाषा प्रेम की ही चुननी पड़ेगी, और कोई उपाय नहीं। क्योंकि इस पृथ्वी पर निकटतम उस परम तत्त्व के, प्रेम ही आता है।

लेकिन तब ख़तरा है। और डर यह है कि पढ़ने वाले लोग समाधि की तरफ़ तो न झुकें, संभोग की तरफ़ झुक जाएँ। और डर यह है कि उनके मन में इससे उस परम का विचार तो पैदा न हो, लेकिन क्षुद्र वासना का जन्म हो जाए।

महावीर तर्क की चिन्ता नहीं करते। महावीर गीत की भी चिन्ता नहीं करते। महावीर आत्मिक जीवन का शुद्ध विज्ञान उपस्थित करना चाहते हैं। वह दिशा बिल्कुल अलग है। क्या अनुभव हुआ है, उसे प्रगट करना व्यर्थ है, उन लोगों के सामने जिन्हें कोई अनुभव नहीं हुआ। कैसे अनुभव हो सकता है, उसकी प्रक्रिया ही प्रगट करनी आवश्यक है। और अनुभव के मार्ग पर क्या-क्या घटित होगा, उसका नक्शा देना जरूरी है। क्योंकि अनन्त है यात्रा और कहीं से भी भटकाव हो सकता है। अनन्त हैं पहेलियाँ, अनन्त हैं मोड़, अनन्त पगडंडियों का जाल है, उसमें अगर नक्शा साफ न हो तो आप एक भूल-भुलैयाँ में भटक जायेंगे।

इसलिए महावीर की पूरी चेष्टा है, एक स्पिरिच्युअल मैप, एक आध्यात्मिक नक्शा निर्मित करने की : कि आपके हाथ में एक ठीक गाइड हो और आप एक-एक कदम पर जाँच कर सकें; और एक-एक पड़ाव को पहचान सकें कि यात्रा ठीक चल रही है, दिशा ठीक है। और जिस तरफ़ मैं जा रहा हूँ वहाँ अन्ततः मुक्ति उपलब्ध हो पायेगी। यह दृष्टि खयाल में रहे तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जायेगा। अब उनका हम सूत्र ले।

'कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल — ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम है।'

यह किताब ऐसी मालूम पडती है, महावीर के वचनों की — जैसे फिजिक्स की हो, केमिस्ट्री की हो, गणित की हो। इसलिए बहुत कम लोग इसमें रस ले पायेंगे। गीता का पाठ किया जा सकता है, एक महाकाव्य छिपा है। महावीर की बातें सीधी गणित की हैं, जैसे कि यूक्लिड थ्योरम लिख रहा हो ज्यामिति की।

कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल — ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम है। तो पहले तो समझ लें कि 'लेश्या' क्या है?' महावीर के कुछ ख़ास पारिभाषिक शब्दों में लेश्या भी एक है।

ऐसा समझें कि सागर शान्त है, कोई लहर नहीं है -- फिर हवा का एक झोंका आता है, लहरें उठनी शुरू हो जाती हैं। तरंगें उठती हैं, सागर डांवाडोल हो जाता है, छाती अस्त-व्यस्त हो जाती है, सब अराजक हो जाता है। महावीर कहते हैं: शुद्ध आत्मा तो शान्त सागर की तरह है; अशुद्ध आत्मा अशान्त सागर की तरह है, जिस पर लहरें-ही-लहरें भर गई हैं। उन लहरों का नाम 'लेश्या' है। मनुष्य की चेतना में जो लहरें है, उनका नाम लेश्या है। और जब सब लेश्याएँ शान्त हो जाती है, तब शुद्ध आत्मा की प्रतीति होती है। इन लेश्याओं में भी छह तरह की लेश्याओं का महावीर ने विभाजन किया है।

जिसको पतंजलि ने 'चित्त-वृत्ति' कहा है, उसको महावीर 'लेश्या' कहते हैं। चित्त की वृत्तियाँ, चित्त के विचार, वासनाएँ, कामनाएँ, लोभ, आकांक्षाएँ, अपेक्षाएँ -- ये सब लेश्याएँ है। अनन्त लेश्याओ से आदमी घिरा है। प्रतिपल कोई-न-कोई तरंग पकड़े हुए है।

और ध्यान रहे, जब सागर में तरंगें होती है तो आपको तरंगें ही दिखाई पड़ती है, सागर तो बिलकुल छिप जाता है। जब तरंगें नहीं होती, तभी सागर होता है, तभी सागर दिखाई पड़ता है। तो जितनी ज्यादा तरंगें होंगी चित्त की, उतना ही ज्यादा भीतर का जो गहन सागर है, वह अनुभव में नहीं आयेगा। और हम चित्त की तरंगों से ही उलझे रह जाते हैं, अटके रह जाते हैं, अन्तर्यात्रा नहीं हो पाती।

अनन्त है ये लेश्याएँ, अनन्त हैं ये तरंगें, लेकिन महावीर कहते हैं उनके छह रूप है। और छहों रूप बड़े वैज्ञानिक हैं। और अब विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है कि महावीर ने जिस ढंग से इन लेश्याओं का वर्गीकरण किया है, शायद वही एकमात्र आधार है वर्गीकरण करने का, और कोई आधार नही हो सकता।

महावीर ने रंग के आधार पर वर्गीकरण किया है। पश्चिम में रंग के ऊपर बड़ा गहन अध्ययन चल रहा है। और रंग के आधार पर कई चीजें पैदा हो रही हैं। कलर थिरैपी पैदा हुई है। रंग के द्वारा मनुष्य के चित्त की चिकित्सा, शरीर की चिकित्सा हो रही है, और अद्‌भुत परिणाम उपलब्ध होते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि आदमी के अन्तर्जगत में रंग की कोई बड़ी बहुमूल्य स्थिति है। मनोवैज्ञानिक कहते है कि अगर आप के कमरे को सब तरफ़ से लाल रंग दिया जाये, खून के रंग में -- सब चीजें लाल हों, प्रकाश लाल हो, फ़र्श लाल हो, दीवालें लाल हों -- तो आप तीन घण्टों में विक्षिप्त हो जायेंगे। क्योंकि लाल आपको उद्विग्न करेगा; रक्त को उत्तेजित करेगा, हृदय की धड़कन बढ़ जायेगी, ब्लड प्रेशर बढ़ जायेगा और मस्तिष्क पर बुरे परिणाम होंगे।

हरे को जब आप देखते हैं, मन शान्त हो जाता है । इसलिए जंगल में जाकर आपको लगता है, 'कैसी शान्ति है ।' उस शान्ति में ज्यादा हिस्सा हरे रंग का है। हरियाली मन को एक शीतलता से भर जाती है । लाल रंग उत्तेजना दे सकता है । इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि कम्यूनिस्टों ने और सभी क्रान्तिकारियों ने लाल झंडा चुना है । वह खून-खराबे का, उपद्रव का प्रतीक है ।

. . . आकस्मिक नहीं है, आकस्मिक इस जगत में कुछ भी नहीं होता । जिनका भरोसा खून पर, हत्या पर है, स्वाभाविक है कि वह लाल रंग को प्रतीक की तरह चुनें ।

इस्लाम ने हरा रंग चुना है अपने झंडे के लिए, उसका कारण है : 'इस्लाम' शब्द का अर्थ ही 'शान्ति' होता है । इसलिये शान्ति को खयाल में रख कर हरे रंग को चुना । यह दूसरी बात है कि मुसलमानों ने न हरे रंग के सबूत दिए और न शान्ति के। लेकिन इसमें मोहम्मद का क़सूर नहीं है। शब्द इस्लाम का अर्थ होता है शान्ति । इसलिए हरे रंग को चुना, क्योंकि हरा रंग गहरे रूप से शान्तिदायी है ।

रंग आपको चालित करते हैं, उत्तेजित करते हैं । पश्चिम में एडव्हेर्टिजमेन्ट की सलाह देनेवाले लोग इसकी भी सलाह देते हैं कि आप अपनी चीज़ें बेचें तो किस रंग के डिब्बे में बेचें; क्योंकि सभी रंगों के डिब्बे एक-से नहीं दिखते; क्योंकि सभी रंग अलग-अलग तरह से पकड़ते हैं । आप चकित होंगे कि बहुत बार ऐसा हुआ है कि कोई चीज़, जैसे कोई साबुन, पीले रंग के डिब्बे में बिक रहा था और उसकी बिक्री बाजार में कम थी । और फिर सलाहकारों ने सलाह दी कि रंग का उपद्रव हो रहा है; साबुन तो ठीक है लेकिन डिब्बे का रंग गलत है, इतना आकर्षक नहीं है कि लोगों को पकड़ ले । और जहाँ हज़ारों साबुन के डिब्बे रखे हों दुकान पर, वहाँ रंग ऐसा होना चाहिए जो आकर्षित कर ले, पकड़ ले, सम्मोहित कर ले — कि नौ सौ निन्यानबे डिब्बे पीछे छूट जाएँ और एक डिब्बे पर हाथ पहुँच जाये ।

. . . तो डिब्बे का रंग बदल देने से साबुन की बिक्री बढ़ गई । किताबों के कवर का रंग बदल देने से बिक्री बढ़ जाती है, घट जाती है । एक्सपर्ट जाकर बाजारों में जाँच करते रहते हैं कि स्त्रियाँ जो खरीदने आती हैं, सुपर-मार्केट में, वे किस रंग से आन्दोलित होती हैं । किस उम्र की स्त्री किस रंग से आन्दोलित होती है । तो जिस उम्र की स्त्री को बेचना हो चीज को, उसकी पसन्द के रंग का ख़याल रखना जरूरी है ।

आप जैसे कपड़े पहनते हैं, वे भी आपके चित्त की लेश्या की ख़बर देते हैं । कामुक आदमी एक तरह के कपड़े पहनेगा, काम-वासना से हटता हुआ आदमी दूसरे तरह के कपड़े पहनेगा । रंग बदल जायेंगे, कपड़े के ढंग बदल जायेंगे । कामुक आदमी

चुस्त कपड़े पहनेगा, गैर-कामुक आदमी ढीले कपड़े पहनना शुरू कर देगा। क्योंकि चुस्त कपड़ा शरीर को वासना देता है, हिंसा देता है।

सैनिक को हम ढोले कपड़े नहीं पहना सकते। ढोले कपड़े पहनकर सैनिक लड़ने जायेगा तो हारकर वापिस लौटेगा। साधु को चुस्त कपड़े पहनाना बिलकुल नासमझी की बात है, क्योंकि चुस्त कपड़े का कोई काम नहीं साधु के लिए। इसलिए साधु निरन्तर ढीले कपड़े चुनेगा — जो शरीर को छूते भर हैं, बांधते नहीं।

आपको ख़याल में नहीं होगा कि बहुत छोटी-छोटी बातें आपके जीवन को सचालित करती हैं; क्योंकि चित्त क्षुद्र चीजों से ही बना हुआ है। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुए हैं तो आप दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ने लगते हैं, एक साथ। अगर आप ढीले कपड़े पहने हुए हैं तो आपको चाल शाही होती है, एक सीढ़ी भी आप मुश्किल से एक दफे में चढते हैं। चुस्त कपड़े पहनकर आप में गति आ जाती है; ढोले कपड़े पहनकर एक सौम्यता आ जाती है, गति खो जाती है।

आप जो रंग चुनते हैं, वह भी खबर देता है आपके चित्त की। क्योंकि चुनाव अकारण नहीं है, चित्त चुन रहा है।

महावीर ने रग के आधार पर चित्त की तरगों के छह विभाजन किए हैं। तीन को महावीर कहते हैं, 'अधर्म-लेश्याएँ', जिनसे मनुष्य पतित होता है। और तीन को महावीर कहते हैं, 'धर्म-लेश्याएँ', जिनसे मनुष्य शुद्ध होता है, पवित्र होता है।

पहली लेश्या को महावीर कहते हैं, 'कृष्ण' — काली, दूसरी लेश्या को 'नील' — नीली। तीसरी लेश्या को 'कापोत' — कबूतर के कंठ के रंग की; चौथी लेश्या को 'तेज' — अग्नि के रंग की, सुर्ख लाल। पांचवीं को 'पद्म' — पीत, पीली, छठवी को 'शुक्ल' — शुभ्र, सफेद। ये छह लेश्याएँ हैं। इनमें प्रथम तीन 'अधर्म-लेश्याएँ' है और अन्तिम तीन 'धर्म-लेश्याएँ' हैं।

रंग से चुनने का कारण यह है कि जब आपके चित्त में एक वृत्ति होती है तो आपके चेहरे के आसपास एक ऑरा, एक प्रभामण्डल निर्मित होता है। इस प्रभामण्डल के अब तो चित्र भी लिए जा सकते हैं। तो आपके प्रभामण्डल का चित्र भी कह सकता है कि 'आपके भीतर क्या चल रहा है?' कारण हैं: क्योंकि आपका पूरा शरीर विद्युत का एक प्रवाह है। आपको शायद ख़याल न हो कि पूरा शरीर वैद्युतिक यन्त्र है।

स्केण्डेनेविया में ऐसा हुआ, कोई छह-सात वर्ष पहले, कि एक स्त्री छत से गिर पड़ी और उसके शरीर की वैद्युतिक-व्यवस्था गड़बड़ हो गई, शॉर्ट-सर्किट हो गई। तो वह स्त्री जिसको छुए उसे शॉक लगने लगे। उसके पति ने अदालत में

तलाक के लिए अर्जी दी, क्योंकि उस स्त्री के पास ही जाना कठिन हो गया। उसको छूते से शॉक लगेगा। और जब उस स्त्री के वैज्ञानिक परीक्षण किये गये तो बड़ी आश्चर्य की बात हुई : उस स्त्री के हाथ में पाँच कैंडल का बल्ब रखकर जलाया जा सकता था।

जो विद्युत वर्तुल की तरह घूमती है शरीर में, वह वर्तुल टूट गया, शॉर्ट-सर्किट हो गया कहीं। कहीं तार अस्त-व्यस्त हो गये और विद्युत शरीर के बाहर जाने लगी। ऐसे भी विद्युत शरीर के बाहर जाती है, लेकिन उसकी मात्रा बड़ी धीमी होती है।

आप पूरे जीवन विद्युत से जी रहे हैं। सारे जगत् का जो मूल आधार है, वह विद्युत-कण है, एलेक्ट्रॉन है। शरीर भी उसी पदार्थ से बना है। और सारे शरीर की यात्रा विद्युत की यात्रा है।

अभी स्त्रियों के सम्बन्ध में एक खोज पूरी हुई है। उस खोज ने स्त्रियो के मन के सम्बन्ध में बड़ी गहरी बातें साफ़ कर दी हैं, जो अब तक साफ़ नही थी। लेकिन खोज विद्युत की है—मनोवैज्ञानिक जिसे साफ़ नहीं कर पाता था।

हजारों साल से स्त्री एक समस्या रही है। वह किस तरह का व्यवहार करेगी किस क्षण में, अनिश्चित है। स्त्री अनप्रिडिक्टेबॅल है, उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। ज्योतिषी उससे बुरी तरह हार चुके हैं। अभी क्षणभर पहले वह प्रसन्न दिखाई पड़ रही थी, क्षणभर बाद एकदम अप्रसन्न दिखाई पड़ रही है। और पुरुष के तर्क में बिलकुल नही आता कि कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ—क्षणभर पहले बड़ी भली-चंगी थी, आनन्दित थी, और क्षणभर बाद दुखी हो गई! और आँसू बहने लगे छाती पीटकर रोने लगी! बड़ी बेबूझ मालूम होती है!

फ्रायड ने चालीस साल के अध्ययन के बाद कहा कि स्त्री के सम्बन्ध में कुछ कहने की सम्भावना नही है। और जिन लोगों ने कुछ कहा भी है, उनका कहा हुआ भी पक्षपातपूर्ण मालूम पड़ता है। वह उनकी दृष्टि है, उससे स्त्री की बात जाहिर नही होती।

बड़ी प्रसिद्ध घटना है. चेखव, टॉलस्टाय और गोर्की—रूस के तीन महालेखक, एक पार्क की बेंच पर बैठकर बात कर रहे हैं। बात स्त्री पर पहुँच गई। पुरुषों की बात अक्सर ही स्त्री पर पहुँच जायेगी, और बात करने को कुछ है भी नहीं। टॉलस्टाय बिलकुल बूढ़ा हो चुका था, लेकिन तब तक उसने स्त्रियों के बाबत कोई वक्तव्य नही दिया था। तो चेखब और गोर्की ने उससे कहा कि 'तुम कुछ कहो।' उसने कहा कि 'मैं कहूँगा, लेकिन जब मेरा एक पैर कब्र में हो और एक बाहर, तब मैं कहकर एकदम-से कब्र में चला जाऊँगा! क्योंकि अगर मैं सत्य कहूँ तो

अभी भी स्त्रियों से मैं जुड़ा हूँ, वे मेरी जान ले लेंगी, और असत्य मैं कहना नहीं चाहता !'

लेकिन बॉयोएनर्जी की खोज से एक नई बात पता चली है, और वह यह कि जैसे ही स्त्री की माहवारी शुरू होती है, उसके शरीर का विद्युत्-प्रवाह प्रति दस मिनट में सिकुड़ता है, कन्ट्रैक्ट होता है । और यह चलता है तब तक, जब तक कि माहवारी बन्द नहीं हो जाती – पैंतालीस-पचास साल तक । प्रति दस मिनट में स्त्री को भी पता नहीं चलता कि उसके पूरे शरीर की विद्युत् सिकुड़ती है, फिर फैलती है, फिर सिकुड़ती है, फिर फैलती है । इस हर दस मिनट के परिवर्तन के कारण उसका चित्त हर दस मिनट में परिवर्तित होता है ।

और यह जो संकुचन है, फैलाव है, यह बच्चे के लिए जरूरी है – बच्चे के विकास के लिए जरूरी है । बच्चा जब गर्भ में होता है तो यह संकुचित होना-फैलना बच्चे को एक तरह का आन्तरिक व्यायाम देता है । इससे बच्चा बढ़ता है । इसलिए माहवारी शुरू होने और माहवारी अन्त होने के बीच, तीस साल-पैंतीस साल, स्त्री का शरीर हर दस मिनट में एक झंझावात से गुजरता है । और यह झंझावात उसके चित्त को प्रभावित करता है । इसलिए जब स्त्री बहुत परेशान हो तो आप परेशान न हों, थोड़ी देर रुके, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें – वह झंझावात वैद्युतिक है । और स्त्री को भी अगर यह बात ख़याल में आ जाए, तो वह उस झंझावात से परेशान न होकर उसकी साक्षी हो सकती है ।

पुरुष के शरीर में ऐसा कोई झंझावात नही है । इसलिए पुरुष ज्यादा तर्क-युक्त मालूम होता है । एक सीमा होती है उसकी बंधी हुई । उसके बाबत भविष्य-वाणी हो सकती है कि वह क्या करेगा । उसके भीतर कोई झंझावात नहीं चल रहा है । विद्युत् की एक सीधी धारा है । इस विद्युत की सीधी धारा के कारण उसके चित्त की लेश्याओं का ढग सीधा-साफ़ है। स्त्री की चित्त की लेश्याएँ ज्यादा बड़ी तरंगें लेंगी, क्योंकि विद्युत सिकुड़ेगी-फैलेगी, सिकुड़ेगी-फैलेगी । यह संकुचन और फैलाव स्त्री को प्रतिपल झंझावात में और तरंगों में रखता है ।

महावीर ने रंगों के आधार पर विश्लेषण किया, शायद वही एकमात्र रास्ता है । जब भी चित्त में कोई वृत्ति होती है तो चेहरे के आस-पास उसकी रंग-आभा आ जाती है । आपको दिखाई नही पड़ती । छोटे बच्चों को ज्यादा प्रतीत होती है । आपको भी दिखाई पड़ सकती है, अगर आप थोड़े सरल हो जाएँ । जब कोई व्यक्ति सच में साधु-चित्त हो जाता है, तो वह आपकी आभा से ही आपको नापता है – आप क्या कहते हैं, उससे नहीं । वह आपको नहीं देखता, आपकी आभा को देखता है ।

अब एक आदमी आ रहा है । उसके आस-पास कृष्ण-आभा है, काला रूप

चारों तरफ़ है; उसके चेहरे के आस-पास एक पर्त है काली – तो वह कितनी ही शुभ्रता की बातें करे, व्यर्थ है, क्योंकि वह काली पर्त असली ख़बर दे रही है।

अब तो सूक्ष्म कैमरे विकसित हो गये हैं, जिनसे उसका चित्र भी लिया जा सकता है। और वह चित्र बतायेगा कि आपकी क्या भीतरी अवस्था चल रही है। और यह आभा प्रतिपल बदलती रहती है।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण और राम, और क्राइस्ट के चेहरों के आस-पास, सारी दुनिया के संतों के चेहरों के आस-पास हमने प्रभा-मण्डल बनाया है। हमारे कितने ही भेद हों – ईसाई में, मुसलमान में, हिन्दू में, जैन में, बौद्ध में – एक मामले में हमारा भेद नहीं है, कि सभी ने अपने जाग्रत महापुरुषों के चेहरों के आस-पास प्रभा-मण्डल बनाया है। वह प्रभा-मण्डल खबर देता है उस अंतस की घड़ी की – जहाँ, जब चेहरे के आस-पास श्वेत-आभा प्रगट होती है, शुभ्र-आभा प्रगट होती है।

हमारे चेहरे के आसपास सामान्यतया काली-आभा होती है, और या फिर बीच की आभाएँ होती हैं। प्रत्येक आभा भीतर की अवस्था की ख़बर देती है। अगर आपके आस-पास काला आभा-मण्डल है, ऑरा है, तो आपके भीतर भयंकर हिंसा, क्रोध, भयकर काम-वासना होगी। आप उस अवस्था में होंगे, जहाँ आपको खद भी नुकसान हो तो कोई हर्ज नही, दूसरे को नुकसान हो तो आपको आनन्द मिलेगा। ख़ुद को नुकसान पहुँचाकर भी अगर दूसरे को नुकसान पहुँचा सकें तो आप प्रसन्न होंगे। कृष्ण-लेश्या की अवस्था का आदमी ऐसा होगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी मरा, तो उसने अपने बेटों को पास बुलाया और उनसे कहा कि मेरी आख़िरी मर्ज़ी पूरी कर देना। लेकिन बड़े बेटे तो सब समझदार थे, बाप को भलोभाँति जानते थे कि वह उपद्रवी है। उन्होंने सोचा, बाप की आखिरी मर्जी कुछ ऐसी न हो कि हम उलझ जाएँ, फंस जाएँ जिन्दगीभर के लिये। तो, वे तो दूर ही बैठे रहे। छोटा बेटा नासमझ था; उसे कुछ पता नहीं था बाप की हरकतों का। वह पास आ गया।..और मरता बाप..। उसने कहा, 'पहले वचन दे कि मेरी बात तू पूरी करेगा।' उसने कहा कि 'मरते हुए पिता की बात पूरी नहीं करूँगा तो किसकी करूँगा? आप कहें!' तो बाप ने कहा कि 'तू ही मेरा असली बेटा है।'... उसके कान में कहा, 'एक काम करना, जब मैं मर जाऊँ तो मेरी लाश के टुकड़े करके मुहल्ले के लोगों के घरों में फेंक देना, और पुलिस में रिपोर्ट कर देना कि इन लोगों ने मार डाला। मेरी आत्मा को बड़ी प्रसन्नता होगी, जब मैं देखूँगा कि चले हैं हथकड़ियों में बंधे सब!'

. . . यह कृष्ण-लेश्या का आदमी है । इसको अपनी फ़िक्र नहीं है ।

पंचतन्त्र में बड़ी पुरानी कथा है कि एक आदमी भक्त था शिव का, और बड़े दिनों से प्रार्थना, बड़े दिनों से पूजा कर रहा था । आख़िर शिव ने कहा कि 'भाई तू क्यों पीछे पड़ा है, क्या चाहता है?'

आख़िर आपकी प्रार्थना-पूजा से निश्चित घबड़ा जाते होंगे . . .!

शिव के सम्बन्ध में एक और कथा है, कि भक्त इतनी ज्यादा पूजा-प्रार्थना करने लगे कि उन्होंने नाराज होकर कहा कि 'तुम जाओ, सब कबूतर हो जाओ ।' वह जो शिव की पिंडी के आस-पास कबूतर घूमते हैं, वे भक्त हैं पुराने ।

. . . इस आदमी ने जब बहुत परेशान कर दिया तो शिव ने पूछा, 'तू आख़िर चाहता क्या है?' उसने कहा कि 'बस, एक . . . कि जो भी मैं माँगू, वह सदा पूरा किया जाए ।' तो शिव ने एक बड़ी उलटी शर्त रख दी । उन्होंने कहा कि 'होगा पूरा, लेकिन जो भी तू माँगेगा, वह तेरे लिए तो पूरा होगा ही, उससे दो-गुना तेरे पड़ोसियों के लिए होगा ।'

उस आदमी ने कहा, 'मार डाला ! मतलब ही खत्म हो गया ! मैं माँगू महल, पड़ोसी को मिल जाएँ दो महल । मैं माँगू हीरा, पड़ोसियों को, सबको मिल जाएँ दो-दो हीरे । . . मतलब ही खो गया; बेकार कर दी सारी बात !'

बड़ा चिन्तित रहा । कई दिन तक कुछ भी नहीं माँगा । फिर सोचा कि किसी वकील से सलाह ले लूँ, कुछ तो रास्ता होगा । हर कानून से कोई-न-कोई रास्ता तो निकल ही आता है । वकील ने उसे बताया कि 'इसमें घबड़ाने की क्या बात है? तू ऐसी चीजें माँग कि पड़ोसी मुश्किल में पड़ जाएँ । तू कह कि मेरी एक आँख फोड़ दे भगवान, उनकी दोनों फूट जायेंगी ।'

वह आदमी नाचता हुआ घर लौटा । उसने कहा, 'ग़जब हो गया ! यह ख़याल ही नहीं आया ।' फिर तो सूत्र हाथ लग गया । फिर तो उसने कहा कि 'मेरी एक आँख फोड़ दे ।' उसकी एक आँख फूटी, पड़ोसियों की दोनों फूट गईं । इतने से मन न भरा – उसने कहा कि 'मेरे घर के सामने एक कुआँ खोद दे ।' उसके घर के सामने एक कुआँ खुदा, पड़ोसियों के सामने दो कुएँ खुद गये । अब जब लोग गिरने लगे कुओं में – अन्धे सारे पड़ोसी – तब उसके आनन्द की सीमा न रही ।

कृष्ण-लेश्या अपनी आँख फोड़ सकती है, अगर दूसरे की दो फूटती हों । अपने लाभ का कोई सवाल नहीं है, दूसरे की हानि ही जीवन का लक्ष्य है । ऐसे व्यक्ति के आस-पास काला वर्तुल होगा ।

महावीर कहते हैं, वह निम्नतम दशा है, जहाँ दूसरे का दुख ही एकमात्र सुख मालूम पड़ता है । ऐसा आदमी सुखी हो नहीं सकता, सिर्फ़ वहम में जीता है । क्योंकि

हमें मिलता वही है, जो हम दूसरों को देते हैं – वही लौट आता है। जगत् एक प्रतिध्वनि है।

इसलिए हमने यम को, मृत्यु को काले रंग में चित्रित किया है; क्योंकि उसका कुल रस इतना है कि कब आप मरें, कब आपको ले जाया जाए। आपकी मृत्यु ही उसके जीवन का आधार है, इसीलिए काले रंग में हमने यम को पोता है। आपकी मृत्यु उसके जीवन का आधार है – कुल काम इतना है कि आप कब मरें, प्रतीक्षा इतनी है।

यह जो काला रंग है, इसकी कुछ खूबियाँ, वैज्ञानिक खूबियाँ समझ लेनी जरूरी हैं। काला रंग गहन भोग का प्रतीक है। काले रंग का वैज्ञानिक अर्थ होता है:, जब सूर्य की किरण आप तक आती है, तो उसमें सभी रंग होते हैं। इसलिए सूर्य की किरण सफेद है, शुभ्र है। सफेद सभी रंगों का जोड़ है, एक अर्थ में। अगर आपकी आँख पर सभी रंग एक साथ पड़ें तो सफेद बन जायेंगे। छोटे बच्चों को स्कूल में सभी रंगो का एक वर्तुल दे दिया जाता है, जब उस वर्तुल को जोर से घुमाया जाता है, तो सभी रंग गडगड हो जाते हैं और सफेद बन जाता है।

सफेद सभी रंगो का जोड़ है। जीवन का समग्र स्वीकार सफेद में है – कुछ अस्वीकार नही है, कुछ निषेध नहीं है। काला सभी रगों का अभाव है, वहाँ कोई रंग नहीं है। जीवन में रंग होते हैं, मौत में कोई रंग नही होता। वहाँ कोई रंग नहीं है। जीवन रंगीन है, मौत रंग-विहीन है।

काला कोई रंग नहीं है, काला रंग का अभाव है। सभी रंगों के अभाव का नाम है 'काला'। और सभी रंगों के भाव का नाम है 'सफेद'। और इन दोनों के बीच में बाकी रंगों की सीढ़ियाँ हैं, वैज्ञानिक अर्थों में। पर पुराने प्रतीक बड़े कीमती मालूम पड़ते हैं। मृत्यु को हमने काला रंग दिया है, क्योंकि वहाँ जीवन की सब रंगीनी समाप्त हो जाती है। वहाँ कोई रंग नही बचता।

दुख का रंग भी काला है। कोई मर जाता है तो हम काले कपड़े पहनते हैं – सब जीवन का रंग शून्य हो जाता है। जब आप काले कपड़े पहनते हैं तो वैज्ञानिक रूप से क्या घटता है? सूर्य की किरणें जब काले कपड़े पर पड़ती हैं तो कोई भी किरण वापिस नही लौटती। काले कपड़े में सभी किरणें डूब जाती हैं। जब आपको आँख को काला कपड़ा दिखाई पड़ रहा है, तब उसका मतलब है कि उस कपड़े से आपकी आँख तक कोई भी किरण का हिस्सा वापिस नहीं आ रहा। काले कपड़े में सभी किरणें डूब गई हैं; आप तक कोई भी किरण नहीं आ रही है, इसलिए कपड़ा काला दिखाई पड़ रहा है।

ध्यान रहे, रंग आपको दिखाई पड़ते हैं उन किरणों से, जो आपकी आँखों

तक आती हैं। अगर आपको लाल साड़ी दिखाई पड़ रही है, तो उसका मतलब है कि उस कपड़े से लाल किरण वापिस आ रही है। प्रकाश पड़ रहा है कपड़े पर, और लाल किरण कपड़े से वापिस लौटकर आपकी आँख पर आ रही है। लाल कपड़े का मतलब है कि उसने सब रंग पी लिए, सिर्फ़ लाल को नहीं पिया – वह लाल वापिस लौट आया। पीले कपड़े का अर्थ है कि सब रंग पी लिए, पीला रंग नहीं पिया – पीला वापिस लौट आया।

तो जो आपको दिखाई पड़ता है लाल, वह बस रंग पी गया, सिर्फ़ लाल को उसने छोड़ दिया है – तो लाल किरण आपकी आँख पर आ रही है। सफेद कपड़े का अर्थ है, उसने सभी किरणें वापस लौटा दीं, कुछ भी नहीं पिया – इसलिए आपको सफेद दिखाई पड़ रहा है।

तो एक अर्थ में काला सभी रंगो का अभाव है, क्योंकि आँख तक कोई भी किरण नही आती। आँख के लिए सभी रंगो का अभाव हो गया। और सफेद सभी रंगों का भाव है, क्योंकि आँख तक सब किरणें आती है – एक अर्थ में। दूसरे अर्थ में सफेद कपड़े का अर्थ है : उसने सभी त्याग दिया, सभी किरणें वापिस लौटा दीं, कुछ भी लिया नही।

इसलिए महावीर ने सफेद को त्याग का प्रतीक कहा है और काले को भोग का प्रतीक कहा है। उसने सभी पी लिया, कुछ भी छोड़ा नही – सभी किरणों को पी गया। तो जितना भोगी आदमी होगा, उतना ही कृष्ण-लेश्या में डूबा हुआ होगा। जितना त्यागी व्यक्ति होगा, उतना ही कृष्ण-लेश्या से दूर उठने लगेगा।

दान और त्याग की इतनी महिमा लेश्याओं को बदलने का एक प्रयोग है। जब आप कुछ देते हैं किसी को, आपकी लेश्या तत्क्षण बदलती है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि अगर आप व्यर्थ की चीज देते है, तो लेश्या नही बदल सकती। कुछ सार्थक, जो प्रीतिकर है, जो आपके हित का था और काम का था, और दूसरे के भी काम पड़ेगा – जब भी आप ऐसा कुछ देते हैं, आपकी लेश्या तत्क्षण परिवर्तित होती है। क्योंकि आप शुभ्र की तरफ़ बढ़ रहे है, कुछ छोड़ रहे हैं।

महावीर ने अन्त में वस्त्र भी छोड़ दिये, सब छोड़ दिया। उस सब छोड़ने का केवल अर्थ इतना ही है कि कोई पकड़ न रही। और जब कोई पकड़ नहीं रहती तो श्वेत, शुक्ल, शुभ्र-लेश्या का जन्म होता है। वह अन्तिम लेश्या है; उसके पार लेश्याएँ नहीं हैं।

ये सबनतम लेश्या है, काली। तो काली निम्नतम स्थिति है, और शुभ्र श्रेष्ठतम स्थिति है।

'नील' दूसरी लेश्या है। जो व्यक्ति अपने को भी हानि पहुँचाकर दूसरे को हानि पहुँचाने में रस लेता है, वह कृष्ण-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुँचाकर दूसरे को हानि पहुँचाने की चेष्टा करता है, वह नील-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुँचाए, खुद को हानि पहुँचने लगे तो रुक जाये, लेकिन दूसरे को हानि पहुँचाने की चेष्टा करे, वैसा व्यक्ति नील-लेश्या में है।

नील-लेश्या, कृष्ण-लेश्या से बेहतर है। थोड़ा हल्का हुआ कालापन, थोड़ा नीला हुआ। जो लोग निहित स्वार्थ में जीते हैं, वे नील-लेश्या के व्यक्ति हैं। वह जो पहला आदमी, जिसके बारे में मैंने कहा कि मेरी एक आँख फट जाए, वह तो स्वार्थी भी नहीं है, वह तो स्वार्थ से भी नीचे गिर गया है। उसे अपने-आपकी भी फ़िकर नहीं है। उसे दूसरों की ही फोड़ने में रस है। वह तो स्वार्थ से भी नीचे खड़ा है।

नील-लेश्यावाला आदमी वह है, जिसे हम सेल्फिश कहते हैं, जो सदा अपनी चिन्ता करता है। अगर उसे खुद को लाभ होता हो तो आप को हानि पहुँचा सकता है। लेकिन खुद को हानि होती हो तो वह आपको हानि नहीं पहुँचायेगा। ऐसे ही आदमी को, नील-लेश्या के आदमी को हम दंड देकर रोक पाते हैं। पहले आदमी को दंड देकर नहीं रोका जा सकता। जो कृष्ण-लेश्यावाला आदमी है, उसे कोई दंड नहीं रोक सकते पाप से, क्योंकि उसे फ़िकर ही नहीं कि मुझे क्या होता है। दूसरे को क्या होता है, उसमें रस है। लेकिन नील-लेश्या वाले आदमी को पॅनिशमेन्ट, सजा देकर रोका जा सकता है। अदालत, पुलिस, भय – कि पकड़ा जाऊँ, सजा हो जाये, तो वह दूसरे की हानि करने से रुक सकता है।

तो ध्यान रहे, जो अपराधी इतनी अदालतों और कानून के बाद भी अपराध करते हैं, उनके पास निश्चित ही कृष्ण-लेश्या पायी जायेगी। और आप अगर डरते हैं अपराध करने से कि नुकसान न पहुँच जाए। और आप देख लेते हैं कि पुलिस-वाला रास्ते पर खड़ा है, तो रुक जाते हैं लाल लाइट देखकर। कोई पुलिसवाला नहीं है – नील लेश्या – कोई डर नहीं है, कोई नुकसान हो नहीं सकता, निकल जाओ एक सेकेंड की बात है!

मैंने सुना है कि एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र के साथ कार से जा रहा था। मित्र कार को भगाये लिए जा रहा है। और आखिर मोटर-साईकिल पर चढ़ा हुआ एक पुलिस का आदमी पीछा कर रहा है, जोर से साइरन बजा रहा है, लेकिन नसरुद्दीन का मित्र सुनता ही नहीं। दस मिनट के बाद मुश्किल से वह पुलिस का आदमी जाकर पकड़ पाया, और उसने कहा कि 'मैं गिरफ्तार करता हूँ, चार कारणों से – बीच बस्ती में पचास-साठ मील की रफ्तार से तुम गाड़ी चला रहे हो; तुम्हें प्रकाश की कोई फ़िकर नहीं है; रेड लाइट है तो भी तुम गाड़ी चलाए जा रहे

हो; जिस रास्ते से तुम जा रहे हो यह वन वे है, और इसमें जाना निषिद्ध है; और मैं दस मिनट से साइरन बजा रहा हूँ, लेकिन तुम सुनने को राजी नही हो।'

नसरुद्दीन, जो कार में मित्र की बगल में बैठा था, खिड़की से झुका और उसने कहा, 'यु मस्ट नॉट माइण्ड ऑफिसर, ही इज डेड ड्रंक।'

...वह पाँचवां कारण बता रहे हैं : इस पर ख़याल मत करिये, वह बिलकुल बेहोश है, शराब में धुत है, माफ करने योग्य है।

जब भी आप कुछ ग़लत करते हैं, तब आप शराब में धुत होते ही हैं; क्योंकि ग़लत हो ही नही सकता मूर्छा के बिना। लेकिन मूर्छा भी इतना ख़याल रखती है कि ख़ुद को नुकसान न पहुँचे, इतनी सुरक्षा रखती है। हममें से अधिक लोग कृष्ण-लेश्या में नही जीते, कभी-कभी कृष्ण-लेश्या में उतरते हैं। वह हमारे जीवन का रोजमर्रा का ढंग नहीं है। लेकिन कभी-कभी हम कृष्ण-लेश्या में उतर जाते हैं।

जब क्रोध आ जाये तो हम कृष्ण-लेश्या में उतर जाते हैं। और इसीलिए क्रोध के बाद हम पछताते है, और कहते है : 'जो मुझे नहीं करना था, वह मैंने किया; जो मैं नही करना चाहता था, वह मैंने किया।' बहुत बार हम कहते हैं, 'मेरे बावजूद यह हो गया।' यह आप कैसे कह पाते हैं, क्योंकि आपने ही किया ?...आप एक सीढ़ी नीचे उतर गये। जो आपके जीवन का ढांचा था; जिस सीढ़ी पर आप सदा जीते हैं, नील-लेश्या में, उससे जब आप नीचे उतरते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी और ने आप से करवा लिया। क्योंकि उस लेश्या से आप अपरिचित हैं। नील-लेश्या शुद्ध स्वार्थ है, लेकिन कृष्ण-लेश्या से बेहतर।

तीसरी लेश्या को महावीर ने 'कापोत' कहा है – कबूतर के कंठ के रंग की। नीला रंग और भी फीका हो गया, आकाशी रंग हो गया। ऐसा व्यक्ति ख़ुद को थोड़ी हानि भी पहुँच जाये, तो भी दूसरे को हानि नहीं पहुँचायेगा। ख़ुद को थोड़ा नुकसान भी होता हो तो सह लेगा, लेकिन इस कारण दूसरे को नुकसान नहीं पहुँचायेगा। ऐसा व्यक्ति परार्थी होने लगेगा। उसके जीवन में दूसरे की चिन्तना और दूसरे का ध्यान आना शुरू हो जायेगा।

ध्यान रहे, पहली दो लेश्याओं वाले लोग प्रेम नहीं कर सकते। कृष्ण-लेश्यावाला तो सिर्फ़ घृणा कर सकता है। नील-लेश्यावाला व्यक्ति सिर्फ़ स्वार्थ के सम्बन्ध बना सकता है। कापोत-लेश्यावाला व्यक्ति प्रेम कर सकता है, प्रेम का पहला चरण उठा सकता है; क्योंकि प्रेम का अर्थ ही है कि दूसरा मुझसे ज्यादा मूल्यवान है। जब तक आप ही मूल्यवान हैं और दूसरा कम मूल्यवान है, तब तक प्रेम नहीं है। तब तक आप शोषण कर रहे हैं। तब तक दूसरे का उपयोग कर रहे हैं। तब तक दूसरा एक वस्तु है, व्यक्ति नहीं। जिस दिन दूसरा भी मूल्यवान है, और कभी आपसे भी

ज्यादा मूल्यवान है, कि वक़्त आ जाय तो आप हानि सह लेंगे लेकिन उसे हानि न सहने देंगे। तो आपके जीवन में एक नई दिशा का उद्‌भव हुआ।

यह तीसरी लेश्या अधर्म की, धर्म-लेश्या के बिलकुल क़रीब है, यहीं से द्वार खुलेगा। परार्थ, प्रेम, दया, करुणा की छोटी-सी झलक इस लेश्या में प्रवेश करेगी। लेकिन, बस छोटी-सी झलक।

आप दूसरे पर ध्यान देते हैं, लेकिन वह भी गहरे में अपने ही लिये। आपकी पत्नी है, अगर कोई हमला कर दे तो आप बचायेंगे उसे – यह कापोत-लेश्या है। लेकिन आप बचा इसलिए रहे हैं कि वह आपकी पत्नी है। किसी और की पत्नी पर हमला कर रहा हो तो आप खड़े देखते रहेंगे!

'मेरे' का विस्तार हुआ, लेकिन 'मेरा' मौजूद है। और अगर आपको यह भी पता चल जाए कि यह पत्नी धोखेबाज है, तो आप हट जायेंगे। आपको पता चल जाए कि पत्नी का लगाव किसी और से भी है, तो सारी करुणा, सारा प्रेम, सारी दया खो जायेगी। इस प्रेम में भी एक गहरा स्वार्थ है कि पत्नी मेरी है, और पत्नी के बिना मेरा जीवन कष्टपूर्ण होगा; पत्नी जरूरी है, आवश्यक है। उस पर ध्यान गया है, उस को मूल्य दिया है – लेकिन मूल्य मेरे लिए ही है।

कापोत-लेश्या अधर्म की पतली-से-पतली, कम-से-कम भारी लेश्या है। लेकिन, अधर्म वहाँ है। हममें से कुछ लोग ही इस लेश्या तक उठ पाते हैं: कि दूसरा मूल्यवान हो जाये। लेकिन इतना भी जो कर पाते हैं, वह भी काफ़ी बड़ी घटना है। धर्म के द्वार पर आप आ गये, जहाँ से दूसरे जगत में प्रवेश हो सकता है। लेकिन आमतौर से हमारे सम्बन्ध इतने भी ऊँचे नहीं होते। नील-लेश्या पर ही होते हैं। और कुछ के तो प्रेम के सम्बन्ध भी कृष्ण-लेश्या पर होते हैं।

आपने दि सादे का नाम सुना होगा। फ्रान्स का एक बहुत बड़ा लेखक, जिसके नाम पर पूरा एक रोग पैदा हो गया – सैडिज्म। दि सादे जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता था, तो पहले उसे मारेगा, पीटेगा, कोड़े लगायेगा, नाखून चुभायेगा, कीलें चुभायेगा, लहूलुहान कर देगा – तभी उससे संभोग कर सकेगा, उससे प्रेम कर सकेगा। दि सादे का कहना था कि 'जब तक सताओ न, तब तक दूसरा व्यक्ति जगता ही नहीं। तो पहले उसे जगाओ, पहले उसे कोड़े मारो – उसका खून तेजी से बहने लगे और उत्तेजित हो जाए और विक्षिप्त हो जाए, तब जो रस है संभोग का, वह साधारणतया चुपचाप सम्भोग कर लेने में नहीं है।'

यह आदमी कृष्ण-लेश्या का आदमी है। इसका प्रेम भी हिंसा से आता है। और जब तक हिंसा तीव्र न हो जाए, तब तक इसे प्रेम में उत्तेजना मालूम नहीं होती।

जैसे आप भोजन करते हैं तो मिर्च के बिना स्वाद नहीं आता, वैसा दि सादे को जब तक मारपीट न कर ले तब तक कोई रस नहीं आता ।

लेकिन दूसरी तरह के लोग भी हैं । एक लेखक हुआ, मैसोच, वह उल्टा था । वह जब तक अपने को न पीट ले, खुद को न मार ले, तब तक वह प्रेम में नहीं उतर सकता था । तो प्रेमिका खड़ी देखेगी, वह खुद को मारेगा और प्रेमिका से भी कहेगा कि वह सहायता करे – मारे, पीटे, लहूलुहान कर दे, तब . . . ।

दो तरह के लोग हैं कृष्ण-लेश्या में : मैसोचिस्ट और सैडिस्ट, मैसोचिवादी और सादेवादी । अगर इन दोनों का मिलन हो जाये तो विवाह बड़ा सुखद होता है । एक स्वयं को दुख देनेवाला – स्वपीड़क, और एक दूसरे को दुख देनेवाला – परपीड़क । अगर ये पति-पत्नी हो जाएं तो इनसे अच्छा जोड़ा खोजना मुश्किल है । क्योंकि पति मारे तो पत्नी रस ले, या पत्नी पीटे तो पति रस ले । इसको कहते हैं, राम मिलाई जोड़ी । इनमें बिलकुल तालमेल है । दोनो कृष्ण-लेश्या में एक-दूसरे के परिपूरक हैं ।

कभी-कभी सौभाग्य से ऐसी जोड़ी भी बन जाती है – लेकिन, कभी-कभी । अक्सर तो ऐसा नही हो पाता, क्योंकि विवाह करते वक़्त हम और सब चीज़ों पर तो सोचते हैं, यह कभी नहीं सोचते कि इन दोनों में एक पीड़ा देनेवाला और एक पीड़ा लेनेवाला होना चाहिए, नही तो जिन्दगी कैसे चलेगी ।

अगर मनोवैज्ञानिक के हाथ में हमने दिया कि वह तय करे कि कौन-सा जोड़ा ठीक होगा, तो वह इस जोड़े को पहले तय करेगा कि यह जोड़ा बिलकुल ठीक रहेगा । इसमें कभी कलह नही होगी । कलह का कोई कारण नहीं है ।

यह जो कृष्ण-लेश्या है, इसमें प्रेम का भी जन्म हो तो वह भी हिंसा के ही माध्यम से होगा । ऐसे प्रेमियों की अदालतों में कथाएँ हैं, जिन्होंने अपनी प्रेयसी को मार डाला सुहागरात में ही ! . . .और बड़े प्रेम से विवाह किया था! थोड़ी-बहुत तो आपमें भी, सब में यह वृत्ति होती है – दबाने को, नाखून चुभाने को । वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्रों में इसको भी प्रेम का हिस्सा कहा है : दाँत से काटो । उसने प्रेमको जो प्रक्रिया बताई है : 'कैसे प्रेम करें ?' उसमें दाँत से काटना भी कहा है । नाखून चुभाओ, शरीर पर निशान छूट जाएँ – इनको लव मार्क्स, प्रेम के चिन्ह कहा है ।

यह वात्स्यायन अनुभवी आदमी था, बड़ी गहरी उसकी दृष्टि रही होगी; क्योंकि वह जानता है कि कृष्ण-लेश्यावाले लोग हैं, ये जब तक सताएँगे नहीं, तब तक इनको रस ही नहीं आ सकता । जब तक ये एक-दूसरे को परेशान नहीं करेंगे, मरोड़ेंगे-तोड़ेंगे नहीं, तब तक इनको रस नहीं आ सकता । उनका रस ही पीड़ा है ।

...छोटे बच्चे में भी जग जाता है, कोई बड़ों में ही जगता है, ऐसा नहीं। छोटा बच्चा भी, कीड़ा दिख जाये, फौरन मसल देगा उसको पैर से। तितली दिख जाए – पंख तोड़कर देखेगा, क्या हो रहा है? मेंढक को पत्थर मारकर देखेगा, क्या हो रहा है? कुत्ते की पूछ में डिब्बा बाँध देगा...छोटा बच्चा! वह भी पीडा में रस ले रहा है।

छोटा बच्चा भी आपका ही छोटा रूप है... बड़ा हो रहा है। आप कुत्ते के पूंछ में डिब्बा नहीं बाँधते, आप आदमियों की पंछ में डिब्बा बाँधते हैं – रस लेते हैं, फिर क्या हो रहा है? कुछ लोग उसको 'राजनीति' कहते है, कुछ लोग उसे 'व्यवसाय' कहते हैं, कुछ लोग उसको जीवन की 'प्रतिस्पर्धा' कहते है – लेकिन दूसरे को सताने में बड़ा रस आता है। जब दूसरे को बिलकुल चारो खाने चित कर देते है, तब आपको बड़ी प्रसन्नता होती है कि जीवन में कोई परम गुह्य की उपलब्धि हो गई।

आमतौर से जिसको हम विवाह कहते हैं, वह नील-लेश्यावाले व्यक्ति का लक्षण है। दूसरे से कोई मतलब नही है, प्रेम की कोई घटना नही है। इसलिए भारतीयों ने अगर विवाह पर इतना ज़ोर दिया और प्रेम-विवाह पर बिलकुल ज़ोर नही दिया, तो उसका बड़ा कारण यही है कि सौ में से निन्यानबे लोग नील-लेश्या में जीते हैं। प्रेम उनके जीवन में है ही नहीं, इसलिए प्रेम को कोई जगह देने का कारण नही। उनको जीवन में कुल एक स्त्री चाहिये, जिसका वे उपयोग कर सके – एक उपकरण...।

मुल्ला नसरुद्दीन का विवाह होने को था। लड़की दिखाई नही गई थी। पुराने जमाने की बात थी। फिर जिस दिन सगाई का मुहूर्त होने को था, उस दिन बाप और गाव के कुछ लोग नसरुद्दीन को सजा-धजाकर लड़कीवालो के गाव ले गये। पास ही गाव था। तब तक लड़की देखी नही गई थी, न लड़कीवालों का घर देखा गया था, न परिवार के लोग देखे गये थे। वहाँ लड़की भी सज-धजकर तैयार थी, उसकी सखियाँ भी सज-धजकर सब तैयार थी। कोई पन्द्रह-बीस युवतियाँ स्वागत के लिए वहाँ तैयार थी।

नसरुद्दीन के बापने ऐसे ही नसरुद्दीन से पूछा, वह जानता तो था कि यह लड़का कुछ तिरछा-तिरछा है, ऐसे ही पूछा कि 'क्या तू बता सकता है, नसरुद्दीन, कि इनमें से, बीस लड़कियों में से कौन-सी लड़की तेरी पत्नी होने वाली है?' नसरुद्दीन ने कहा, 'निश्चित!' उसने एक नज़र डाली और कहा कि 'यह लड़की।'

बाप हैरान हो गया। वह लड़की ठीक वही लड़की थी, जिससे शादी होनेवाली थी। उसने कहा कि 'हद कर दी, नसरुद्दीन! तूने कैसे पहचाना? क्योंकि तूने कभी देखा नही।' तो नसरुद्दीन ने कहा, 'इसका कारण है, अभी से उसको देखकर

मुझे घबड़ाहट हो रही है। यही मेरी पत्नी होनेवाली है, इसमें कोई शंका नहीं है। अभी से मेरा हृदय कंपित हो रहा है।'

कोई प्रेम का सम्बन्ध नहीं है, कोई प्रेम की बात नहीं है, उपकरण चाहिए। इसलिए विवाह एक लम्बी कलह है, जिसमें पति पत्नी का उपयोग कर रहा है, पत्नी पति का उपयोग कर रही है। बस दोनों साथ-साथ जी लेते हैं, इतना ही काफ़ी है कि साथ-साथ चल लेते हैं। साथ-साथ रहकर दोनो अकेले ही रहते हैं – अलोन टुगेदर। कोई मेल नहीं हो पाता, क्योंकि मेल तो सिर्फ़ प्रेम से ही हो सकता है।

'कापोत'.. आकाशी रंग की जो लेश्या है, उसमें प्रेम की पहली किरण उतरती है। इसलिए अधर्म के जगत् में प्रेम सबसे ऊँची घटना है – ज्यादा-से-ज्यादा धर्म की घटना है। और अगर आपके जीवन में प्रेम मूल्यवान है, तो उसका अर्थ है कि दूसरा व्यक्ति मूल्यवान हुआ। यद्यपि वह भी अभी आपके लिए ही है। इतना मूल्यवान नहीं है कि आप कह सकें कि मेरा न हो तो भी मूल्यवान है। अगर मेरी पत्नी किसी और के भी प्रेम मे पड जाए तो भी मैं खुश होऊँगा, क्योंकि वह खुश है। इतनी मूल्यवान नही है, उसके व्यक्तित्व का कोई इतना मूल्य नहीं है, कि मेरे सुख के अलावा किसी और का सुख उससे निर्मित होता हो, तो भी मै सुखी रहूँ।

फिर तीन लेश्याएँ हैं – 'तेज', 'पद्म' और 'शुक्ल'। तेज का अर्थ है, अग्नि की तरह सुर्ख़ लाल। जैसे ही व्यक्ति तेज-लेश्या में प्रवेश करता है, वैसे ही प्रेम गहन प्रगाढ़ हो जाता है। अब यह प्रेम दूसरे व्यक्ति का उपयोग करने के लिए नहीं है। अब यह प्रेम लेना नहीं है, अब यह प्रेम सिर्फ़ देना है, यह सिर्फ़ दान है। अब ऐसे व्यक्ति का जीवन प्रेम के इर्द-गिर्द निर्मित होता है।

यह जो लाल रंग है, इसके सम्बन्ध में कुछ बातें समझ लेनी चाहिये; क्योंकि धर्म की यात्रा पर यह पहला रंग हुआ। आकाशी, 'कापोत', अधर्म की यात्रा पर अन्तिम रंग था। लाल, 'तेज', धर्म की यात्रा पर पहला रंग हुआ। इसीलिए हिन्दुओं ने लाल को, गैरिक को संन्यासी का रंग चुना; क्योंकि धर्म के पथ पर वह पहला रंग है। हिन्दुओं ने साधक के लिए गैरिक रंग चुना है, ताकि उसके शरीर की पूरी आभा लाल से भर जाए। उसका आभा-मण्डल लाल होगा, उसके वस्त्र भी उसमें तालमेल बन जाएँ, एक हो जाएँ। उसके वस्त्रों और उसकी आभा में किसी तरह का विरोध न रहे; एक तारतम्य, एक संगीत पैदा हो जाए।

हिन्दुओं ने गैरिक को, लाल को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहाँ से मंजिल शुरू होती है। जैनों ने 'शुभ्र' को, सफेद को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहाँ मंजिल अन्त होती है, वहाँ मंजिल पूरी होती है।

दोनों सही और गलत हो सकते हैं। हिन्दू कह सकते हैं कि जो अभी हुआ नही, उस रंग को चुनना ठीक नहीं, प्रथम को ही चुनना ठीक है; क्योंकि साधक अभी यात्रा

शुरू कर रहा है, अभी मंजिल मिली नहीं । और जैन कह सकते हैं कि मंजिल को ही ध्यान में रखना उचित है । जो आज है वह मूल्यवान नहीं है, जो वस्तुतः कल होगा; अन्त में, वही मूल्यवान है । उसीपर नजर होनी चाहिये ।

दोनों सही हो सकते हैं, दोनों गलत हो सकते हैं । लेकिन, दोनों मूल्यवान हैं ।

हिन्दुओं ने लाल रंग चुना है, संन्यासियों के लिये । जैनों ने सफेद रंग चुना है । बौद्धों ने पीला रंग चुना है – दोनों के बीच । बुद्ध हमेशा मध्य-मार्ग के पक्षपाती थे, हर चीज में ।

ये तीन धर्म के रंग हैं – तेज, पद्म, शुक्ल । 'तेज' हिन्दुओं ने चुना है, 'शुक्ल' जैनों ने चुना है । 'पद्म', पीला, पीत-वस्त्र बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के लिए चुने हैं; क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि जो है वह मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे छोड़ना है, और जो अभी हुआ नहीं वह भी बहुत मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे अभी होना है – दोनों के बीच में साधक है ।

लाल यात्रा का प्रथम चरण है, शुभ्र यात्रा का अन्तिम चरण है – पूरी यात्रा तो 'पीत' की है । इसलिए बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए पीला रंग चुना है । तीनों चुनाव अपने-आप में मूल्यवान हैं; कीमती, बहुमूल्य हैं ।

यह जो लाल रंग है, यह आपके आस-पास तभी प्रगट होना शुरू होता है, जब आपके जीवन से स्वार्थ बिलकुल शून्य हो जाता है, अहंकार बिलकुल टूट जाता है । यह लाल आपके अहंकार को जला देता है । यह अग्नि आपके अहंकार को बिलकुल जला देती है । जिस दिन आप ऐसे जीने लगते हैं जैसे 'मैं नहीं हूँ', उस दिन धर्म की तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं । जितना आपको लगता है कि 'मैं हूँ', उतनी ही अधर्म की तरंगें उठती हैं । क्योंकि 'मैं' का भाव ही दूसरे को हानि पहुँचाने का भाव है । मैं हो ही तभी सकता हूँ, जब मैं आपको दबाऊँ । जितना आपको दबाऊँ, उतना ज्यादा मेरा 'मैं' मजबूत होता है । सारी दुनिया को दबा दूं पैरों के नीचे, तभी मुझे लगेगा कि 'मैं हूँ ।'

अहंकार दूसरे का विनाश है । धर्म शुरू होता है वहाँ से, जहाँ हम अहंकार को छोड़ते हैं । जहाँ से मैं कहता हूँ कि अब मेरे अहंकार की अभीप्सा, वह जो अहंकार की महत्त्वाकांक्षा थी, वह मैं छोड़ता हूँ । प्रतिस्पर्धा छोड़ता हूँ, संघर्ष छोड़ता हूँ – दूसरे को हराना, दूसरे को मिटाना, दूसरे को दबाने का भाव छोड़ता हूँ । अब मेरे प्रथम होने की दौड़ बन्द होती है । अब अगर मैं अन्तिम भी खड़ा हूँ, तो भी प्रसन्न हूँ ।

संन्यासी का अर्थ ही यही है कि जो अन्तिम खड़े होने को राजी हो गया । जीसस

ने कहा है : मेरे प्रभु के राज्य में वे प्रथम होंगे, जो यहां पृथ्वी के राज्य में अन्तिम खड़े होने को राजी हैं ।

ध्यान रहे, 'अन्तिम खड़े हैं', ऐसा नहीं कहा है – 'अन्तिम खड़े होने को राजी हैं।' अन्तिम तो बहुत लोग खड़े हैं, लेकिन वे खड़े नहीं रहना चाहते हैं वहां। मजबूरी है कि क्यू में कोई आगे जाने ही नहीं देता, ज्यादा ताकतवर लोग आगे खड़े हैं। क्यू से निकल नहीं पाते, इच्छा तो निकलने की है। दिल तो क्यू में आगे ही खड़े होने का है। लेकिन खड़े पीछे है, यह मजबूरी है। इस मजबूरीवाले को प्रभु के राज्य में प्रथम मौका मिल जायेगा, ऐसा नहीं है।

जीसस कहते हैं – जो अन्तिम खड़ा होने को राजी है। जो पहले की तलाश ही नहीं करता। जो चुपचाप पीछे खड़ा है, और पीछे सन्तुष्ट है। और हैरान है कि आगे होने की इतनी दौड़ क्यों चल रही है? क्या होगा..? आगे होकर क्या होगा?

संन्यासी का अर्थ है : जिसने महत्त्वाकांक्षा छोड़ दी, जिसने संघर्ष छोड़ दिया; जिसने दूसरे अहंकारों से लड़ने की वृत्ति छोड़ दी। इस घड़ी में चेहरे के आस-पास लाल, गैरिक रंग का उदय होता है। जैसे सुबह का सूरज जब उगता है, जैसा रंग उस पर होता है, वैसा रंग पैदा होता है। इसलिए संन्यासी अगर सच में संन्यासी हो, तो उसके चेहरे पर जो रक्ताभ, जो लाली होगी, जो सूर्य के उदय के क्षण की ताजगी होगी, वही खबर दे देगी।

'पद्म'.. । महावीर कहते हैं, दूसरी धर्म-लेश्या है – पीत। इस लाली के बाद जब जल जायेगा अहंकार... स्वभावतः अग्नि की तभी तक जरूरत है जब तक अहंकार जल न जाए।...जैसे ही अहंकार जल जायेगा, लाली पीत होने लगेगी। जैसे, सुबह का सूरज जैसे-जैसे ऊपर उठने लगेगा, वैसे लाल नहीं रह जायेगा, पीला हो जायेगा। स्वर्ण का पीत रंग प्रगट होने लगेगा। जब स्पर्धा छूट जाती है, संघर्ष छूट जाता है, दूसरों से तुलना छूट जाती है और व्यक्ति अपने साथ राजी हो जाता है, अपने में ही जीने लगता है – जैसे संसार हो या न हो कोई फ़र्क नहीं पड़ता – यह ध्यान की अवस्था है।

लाल रंग की अवस्था में व्यक्ति पूरी तरह प्रेम से भरा होगा, खुद मिट जायेगा, दूसरे महत्त्वपूर्ण हो जायेंगे। पीत की अवस्था में न खुद रहेगा, न दूसरे रहेंगे, सब शान्त हो जायेगा। पीत ध्यान की अवस्था है – जब व्यक्ति अपने में होता है, दूसरे का पता ही नहीं चलता कि दूसरा है भी। जिस क्षण मुझे भूल जाता है कि 'मैं हूं', उसी क्षण यह भी भूल जायेगा कि दूसरा भी है।

पीत, बड़ा शान्त, बड़ा मौन, अनउद्विग्न रंग है। स्वर्ण की तरह शुद्ध, लेकिन कोई उत्तेजना नहीं। लाल रंग में उत्तेजना है, वह धर्म का पहला चरण है।

इसलिए, ध्यान रहे, जो लोग धर्म के पहले चरण में होते हैं, बड़े उत्तेजित होते हैं। धर्म के प्रति बड़े आब्सेस्ड होते हैं। धर्म भी उनके लिये एक ज्वर की तरह होता है। लेकिन, जैसे-जैसे धर्म में गति होती जाती है, वैसे-वैसे सब शान्त हो जाता है।

पश्चिम के धर्म हैं – ईसाईयत, वह लाल रंग को अभी भी पार नहीं कर पाई; क्योंकि अभी भी दूसरे को कॅन्वर्ट करने की आकांक्षा है। इस्लाम लाल रंग को पार नहीं कर पाया। गहन दूसरे पर ध्यान है, कि दूसरे को बदल देना है – किसी भी तरह बदल देना है। उसकी वजह से एक मतान्धता है।

आप जानकर हैरान होंगे कि दुनिया के दो पुराने धर्म – हिंदू और यहूदी, दोनों पीत अवस्था में हैं। हिन्दुओं और यहूदियों ने कभी किसी को बदलने की कोशिश नहीं की। बल्कि, कोई आ भी जाये तो बड़ा मुश्किल है उसको भीतर लेना। द्वार जैसे बन्द हैं। सब शान्त है। दूसरे में कोई उत्सुकता नहीं है। संख्या कितनी है, इसकी कोई फ़िकर नहीं है।

व्यक्ति जब पहली दफा धार्मिक होना शुरू होता है, तो बड़ा धार्मिक जोश-खरोश होता है। यहीं लोग उपद्रव का कारण भी हो जाते हैं। क्योंकि उनमें इतना जोश-खरोश होता है कि वे फेनेटिक हो जाते हैं; वे अपने को ठीक मानते हैं, सबको गलत मानते हैं। और सबको ठीक करने की चेष्टा में लग जाते हैं . . . दयावश! लेकिन वह दया भी कठोर हो जाती है।

जैसे ही ध्यान पैदा होता है, प्रेम शान्त होता है। क्योंकि प्रेम में दूसरे पर नजर होती है, ध्यान में अपने पर नज़र आ जाती है। पीत-लेश्या, पद्म-लेश्या ध्यानी की अवस्था है। बारह वर्ष तक महावीर उसी अवस्था में थे। और पीला भी जब और बिखरता जाता है, विलीन होता जाता है तो शुभ्र का जन्म होता है। जैसे साँझ जब सूरज डूब जाता है – रात नहीं आई और सूरज डूब गया, और सन्ध्या फैल जाती है – शुभ्र, कोई उत्तेजना नहीं, वह समाधि की अवस्था है। उस क्षण में सभी लेश्याएँ शान्त हो गई, सभी लेश्याएँ सफेद बन गईं – शुभ्र बच रहा है। वह अन्तिम अवस्था है चित्त की तरफ़ से।

ये छह चित्त की लेश्याएँ हैं। 'शुभ्र' चित्त की आखिरी अवस्था है। झीने-से-झीना पर्दा बचा है, वह भी खो जायेगा। तो सातवीं को महावीर ने नहीं गिनाया; क्योंकि सातवीं फिर चित्त की अवस्था नहीं, आत्मा का स्वभाव है। वहाँ सफेद भी नहीं बचता। उतनी उत्तेजना भी नहीं रह जाती, सब रंग खो जाते हैं।

मृत्यु में जैसे खोते हैं, वैसे नहीं; जैसा काले में खोते हैं, वैसे नहीं – मुक्ति में जैसे खोते हैं। काले में तो सारे रंग इसलिए खो जाते हैं कि काला सभी रंगों को हज़म कर जाता है, पी जाता है, भोग लेता है। मुक्ति में सभी रंग इसलिए

खो जाते हैं कि किसी भी रंग पर पकड़ नहीं रह जाती ; जीवन की कोई वासना जीवन की कोई आकांक्षा, जीवेषणा नहीं रह जाती – सभी रंग खो जाते हैं। इसलिए सफेद के बाद जो अन्तिम छलाँग है, वह भी रंग-विहीन है।

और ध्यान रहे, मृत्यु और मोक्ष बड़े एक-जैसे हैं और बड़े विपरीत भी : दोनों में रंग खो जाते हैं। एक में इसलिए रंग खो जाते हैं कि जीवन खो जाता है, दूसरे में इसलिए रंग खो जाते है कि जीवन पूर्ण हो जाता है, और अब रंगो की कोई इच्छा नही रह जाती।

मोक्ष मृत्यु-जैसा है, इसलिए मुक्त होने से हम डरते है। जो मरने को राजी है, वही मुक्त हो सकता है। जो जीवन को पकड़ता है, वह बन्धन में बना रहता है। 'जीवेषणा '– जिसको बुद्ध ने कहा है, लस्ट फॉर लाइफ, वही इन रगों का फैलाव है। और अगर जीवेषणा बहुत ज्यादा हो तो दूसरे की मृत्यु बन जाती है – वह कृष्ण-लेश्या है। अगर जीवेषणा तरल होती जाए, कम होती जाए, फीकी होती जाए, तो दूसरे का जीवन बन जाती है – वह प्रेम है।

महावीर ने ये छह लेश्याएँ कही। अभी पश्चिम में इसपर खोज चलती है तो अनुभव में आता है कि ये छह रग क़रीब-करीब वैज्ञानिक सिद्ध होगे। और मनुष्य के चित्त को नापने की इससे कुशल कुजी दूसरी नही हो सकती। क्योंकि यह बाहर से नापा जा सकता है, भीतर जाने की कोई जरूरत नही है। जैसे एक्स-रे लेकर कहा जा सकता है कि भीतर कौन-सी बीमारी है, वैसे आपके चेहरे का ऑरा पकड़ा जाए तो उस ऑरे से पता चल सकता है कि चित्त किस तरह से रुग्ण है, कहाँ अटका है। और तब मार्ग खोजे जा सकते है, कि क्या किया जाए कि चित्त इस लेश्या से ऊपर उठ सके।

अन्तिम लक्ष्य तो वही है, जहाँ कोई लेश्या न रह जाए। लेश्या का अर्थ : जो बाँधती है, जिससे हम बन्धन में होते हैं, जो रस्सी की तरह हमें चारों तरफ़ से घेरे रहती है। जब सारी लेश्याएँ गिर जाती हैं तो जीवन की परम ऊर्जा मुक्त हो जाती है। उस मुक्ति के क्षण को हिन्दुओं ने 'ब्रह्म' कहा है, बुद्ध ने 'निर्वाण' कहा है, महावीर ने 'कैवल्य' कहा है।

'कृष्ण, नील, कापोत – ये तीन अधर्म-लेश्याएँ हैं। इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।'

'तेज, पद्म और शुक्ल – ये तीन धर्म-लेश्याएँ हैं। इन तीनों से युक्त जीव सद्गति में उत्पन्न होता है।'

ध्यान रहे, शुभ्र-लेश्या के पैदा हो जाने पर भी जन्म होगा। अच्छी गति होगी, सद्गति होगी; साधु का जीवन होगा – लेकिन जन्म होगा। क्योंकि लेश्या अभी भी

बाकी है, थोड़ा-सा बन्धन शुभ्र का बाकी है। इसलिए पूरा विज्ञान विकसित हुआ था प्राचीन समय में। मरते हुए आदमी के पास ध्यान रखा जाता था कि उसकी कौन-सी लेश्या मरते क्षण में है। क्योंकि जो उसकी लेश्या मरते क्षण में है, उससे अंदाज लगाया जा सकता है कि वह कहाँ जायेगा, उसकी कैसी गति होगी।

सभी लोगो के मरने पर लोग रोते नही थे, लेश्या देखकर रोते थे। अगर कृष्ण-लेश्या हो तो ही रोने का कोई अर्थ है। अगर कोई अधर्म लेश्या हो तो रोने का अर्थ है। क्योंकि यह व्यक्ति फिर दुर्गति में जा रहा है, दुख में जा रहा है, नर्क में भटकने जा रहा है। तिब्बत में बारदो पूरा विज्ञान है, और पूरी कोशिश की जाती थी कि मरते क्षण मे भी इसकी लेश्या बदल जाये, तो भी काम का है। मरते क्षण में भी इसकी लेश्या काली से नीली हो जाए, तो भी इसके जीवन का तल बदल जायेगा। क्योंकि जिस क्षण में हम मरते हैं – जिस ढग से, जिस अवस्था में – उसीमें हम जन्मते हैं। ठीक वैसे, जैसे रात आप सोते है, तो जो विचार आपका अन्तिम होगा, सुबह वही विचार आपका प्रथम होगा।

इसे आप प्रयोग करके देखें। बिलकुल आखिरी विचार रात सोते समय जो आपके चित्त में होगा, जिसके बाद आप खो जायेंगे अन्धेरे में नींद के – सुबह जैसे ही जागेंगे, वही विचार पहला होगा। क्योंकि रातभर सब स्थगित रहा, तो जो रात अन्तिम था वही सुबह प्रथम बनेगा। बीच में तो गैप है, अन्धकार है, सब खाली है। इसीलिए हमने मृत्यु को महानिद्रा कहा है। इधर मृत्यु के आखिरी क्षण में जो लेश्या होगी, जन्म के समय में वही पहली लेश्या होगी।

इसलिए मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति कहाँ जा रहा है। मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति जायेगा कही, या नही जायेगा और महाशून्य के साथ एक हो जायेगा। जन्म के समय भी जाना जा सकता है। ज्योतिष बहुत भटक गया, और कचरे में भटक गया। अन्यथा जन्म के समय सारी खोज इस बात की थी कि व्यक्ति किस लेश्या को लेकर जन्म रहा है। क्योंकि उसके पूरे जीवन का ढंग और ढांचा वही होगी।

बुद्ध पैदा हुए...। और जब भी कोई व्यक्ति श्वेत-लेश्या के साथ मरता है, तो जो लोग भी धर्म-लेश्याओं में जीते है, पीत या लाल में, उन लोगों को अनुभव होता है; क्योंकि ये घटना जागतिक है। और जब भी कोई व्यक्ति शुभ्र-लेश्या में जन्म लेता है तो जो लोग भी लाल और पीत-लेश्याओं के क़रीब होते हैं, या शुभ्र-लेश्या में होते हैं, उनको अनुभव होता है कि कहाँ कौन पैदा हो रहा है।

जीसस के जन्म पर पूरब से तीन व्यक्ति जीसस की खोज में निकले। जीसस का जन्म हुआ बेथलहम की एक घुड़साल में, जहाँ जानवर बांधे जाते हैं उस पशुशाला

में – गरीब बढ़ई के घर । और पूरब के तीन मनीषी यात्रा पर निकले, कि कहीं कोई शुभ्र-लेश्या का व्यक्ति जन्मा है । इन तीन की वजह से हेरोद को पता चला, सम्राट को पता चला, क्योंकि ये तीन पहले हेरोद के पास पहुँचे । इन्हे क्या पता ? इन्होंने सोचा सम्राट खुश होगा । इन्होने जाकर हेरोद को कहा कि 'तुम्हारे राज्य में कोई व्यक्ति पैदा हुआ है, क्योंकि हम तीनों को संकेत मिले हैं । और हम तीनों ने ध्यान में यह जाना है । हम तीनो को यात्रा कराता हुआ आकाश में एक शुभ्र तारा चला है, और वह तारा बेथलहम पर आकर रुक गया है, तुम्हारे राज्य में । इस गाँव में जरूर कोई व्यक्ति जन्मा है जो सच में सम्राट है !'

यह बात हेरोद को अखर गई – 'सच मे सम्राट !' तो उसने कहा कि 'तुम जाओ और उसका पता लगाओ, और लौटते समय मुझे खबर करते जाना।' हेरोद ने तय कर लिया कि हत्या कर देगा इस बच्चे की । क्योंकि सच में कोई सम्राट जन्म जाये तो मेरा क्या होगा ? . . अहंकार, प्रतिस्पर्धा !

वे तीनो व्यक्ति खोज करते हुए उस जगह पहुँचे, उस पशुशाला में जहाँ जीसस का जन्म हुआ था – घुड़साल मे । उन्होने जीसस की माँ को भेंट दी, जीसस के चरण छुए । और उसी रात उनको स्वप्न आया कि तुम लौटकर हेरोद के पास मत जाओ, तुम भाग जाओ यहाँ से । और जीसस की माँ को कह दो कि वह बच्चे को लेकर जितनी जल्दी हो सके बेथलहम छोड़ दे । उसी रात वे तीनों मनीषी राज्य को छोडकर चले गए, और जीसस की माँ और पिता जीसस को लेकर इजिप्त चले गये ।

बुद्ध का जन्म हुआ तो हिमालय से एक महर्षि भागा हुआ बुद्ध की राजधानी में आया । उस वृद्ध तपस्वी को देखकर बुद्ध के पिता बड़े हैरान हुए । उन्होने पूछा, 'तुम्हे पता कैसे चला?' तो उसने कहा कि 'पता चल गया; क्योंकि जिस लेश्या में मैं हूँ, जिस क्षण में मैं हूँ, वहाँ से दिखाई पड सकता है, अगर कोई इतना शुभ्र तारा ज़मीनपर पैदा हो । तुम्हारा बच्चा तीर्थंकर होने को है, बुद्ध होने को है ।'

बच्चे को लाया गया । बुद्ध के पिता तो बहुत हैरान हुए ! उनको तो भरोसा न आया कि यह आदमी पागल तो नही है, क्योकि उसने बच्चे के चरणो मे सिर रख दिया । अभी कुछ ही दिन का बच्चा, और वह मनीषी रोने लगा जार-जार ! बुद्ध के पिता डरे, और उन्होंने कहा कि 'क्या कुछ अशुभ होने को है ? तुम रोते क्यों हो ?'

तो उसने कहा कि 'नहीं, मैं इसलिये नही रोता हूँ कि कुछ अशुभ होने को है । मैं इसलिये रोता हूँ कि मेरी मृत्यु क़रीब है; और जिस क्षण यह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होगा, उस समय मैं इसका सान्निध्य न पा सकूँगा । और ऐसी घड़ी

को उपलब्ध होने की घटना कभी-कभी हजारों वर्ष में घटती है। तो मैं अपने लिए रो रहा हूँ, इसके लिये नहीं रो रहा हूँ। इसका तो यह आखिरी जीवन का शिखर है।'

श्वेत-लेश्या को लेकर जो व्यक्ति पैदा होता है, वह निर्वाण को उपलब्ध हो सकता है – इसी जन्म में। क्योंकि वह धर्म की अन्तिम सीमा पर पहुँच गया, अब धर्म के भी पार जा सकता है।

निर्वाण, ब्रह्म, मोक्ष – अधर्म के तो पार है ही, धर्म के भी पार है।

लोकतत्त्व-सूत्र : ६

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ३० अगस्त, १९७३

अट्ठ पवयणमायाओ,
समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ,
तओ गुत्तीओ आहिया ॥

इरियाभासेसणादाणे,
उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती
कायगुत्ती य अट्ठमा ॥

एयाओ पंच समिईओ,
चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता,
असुभत्थेसु सव्वसो ॥

एसा पवयणमाया,
जे सम्मं आयरे मुणी ।
से खिप्पं सव्वसंसारा,
विप्पमुच्चइ पंडिए ॥

पाँच समिति और तीन गुप्ति – इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएँ कहलाती हैं।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार या उत्सर्ग – ये पाँच समितियाँ हैं। तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति – ये तीन गुप्तियाँ हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर आठ प्रवचन-माताएँ हैं।

पाँच समितियाँ चारित्र की दया आदि प्रवृत्तियों में काम आती है, और तीन गुप्तियाँ सब प्रकार के अशुभ व्यापारों से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।

जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है, वह शीघ्र ही अखिल संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

साधना के आठ सूत्र महावीर ने इन वचनों में कहे है। जीवन के दो पहलू हैं। एक उसका विधायक रूप है – सक्रिय, एक उसका निषेधक रूप है – निष्क्रिय। जीवन में जो हम करते हैं, जीवन में जो हम होते है, उसमें दोनो का हाथ होता है। पुण्य भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पुण्य किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी। पाप भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पाप किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी।

साधारणत: हम सोचते है कि पाप या पुण्य सक्रिय होकर ही किए जा सकते है। एक व्यक्ति लूटा जा रहा है। जो लूट रहा है वह पाप कर रहा है, लेकिन आप खडे होकर देख रहे है, कुछ भी नही कर रहे है, तो भी महावीर कहते हैं पाप हो गया; आप नकारात्मक रूप से सहयोगी है। आप रोक सकते थे, नही रोक रहे हैं; आप पाप कर नही रहे हैं, लेकिन पाप होने दे रहे है। पाप करने देना भी आपकी जिम्मेदारी है।

तो जो आप पाप करते है, वे तो आपके पाप हैं ही – जो पाप दूसरे करते हैं, और आप होने देते है – उनकी जिम्मेदारी भी आपके ऊपर है।

इस पृथ्वी पर कही भी कोई पाप हो रहा है, तो हम सब भागीदार हो गये – निष्क्रिय भागीदार; क्योकि हम चाहते तो उसे रोक सकते थे। वे जो पाप करनेवाले लोग हैं, इसीलिए पाप कर पा रहे है – इसलिये नही कि दुनियामें बहुत पापी हैं – बल्कि इसलिये कि दुनिया में बहुत नकारात्मक पापी है, वे जो पाप को होने देते है।

दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नही है, यह सुनकर हैरानी होगी। निश्चित ही दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नहीं है, लेकिन दुनिया में निष्क्रिय बुरे लोग ज्यादा है: जो बुरा करते नही, लेकिन बुरा होने देते है। जो बुरे को होने से रोकने की तत्परता नही दिखाते।

महावीर इन सूत्रो में दो हिस्से कर रहे हैं साधना के, एक विधायक और एक निषेधक। पाँच विधायक तत्त्व हैं साधक के लिए, और तीन निषेधक तत्त्व हैं। इन आठ के बीच जो जीने की कला सीख लेता है, उसे धर्म का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। और जिसे धर्म की स्वयं की अनुभूति हुई हो, वही धर्म के सम्बन्ध में कुछ बोल सकता है। इसलिए महावीर ने इन्हें 'प्रवचन-माताएँ' कहा है। इन आठ को जो उपलब्ध नहीं है, उसके बोलने का कोई भी मूल्य नही है।... खतरा

भी हो सकता है; क्योंकि जो हम नहीं जानते उस सम्बन्ध में कुछ भी कहना खतरनाक है।

जीवन बड़ी सूक्ष्म और जटिल बात है। अनजाने, बिना जाने अज्ञान में दी गई सलाह जहर हो जाती है। शुभ इच्छा से भी दी गई सलाह जहर हो जाती है, अगर आपको ठीक-ठीक सत्य का पता न हो। दुनिया में अधर्म कम हो सकता है, यदि वे लोग जिन्हें धर्म का स्वयं अनुभव नहीं है, बोलना बन्द कर दें। लेकिन वे बोले चले जाते हैं।

बोलना बहुत कारणों से पैदा हो सकता है। अक्सर तो अहंकार को रस मिलता है। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो बड़ी अनूठी घटना घट रही है। बोलनेवाला बिना जाने भी बोल सकता है, क्योंकि और भी रस है। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो जो बोलता है वह मालिक हो गया और सुननेवाला गुलाम हो गया; जो बोलता है वह ऊपर हो गया, जो सुननेवाला है वह नीचे हो गया; जो बोलता है वह हिंसक हो गया और सुननेवाला हिंसा का शिकार हो गया।

जब कोई बोल रहा है तो आप पर हमला कर रहा है, आप पर हावी हो रहा है, आपके मस्तिष्क पर सवार हो रहा है। इसमें रस है। गुरु होने में बड़ा मजा है। उस मजे के कारण बिना इसकी चिन्ता किए कि मैं जानता हूँ या नहीं जानता—लोग बोले चले जाते हैं, लिखे चले जाते हैं, समझाये चले जाते हैं।

सलाह की कोई कमी नहीं, मार्ग-निर्देशक सब जगह खड़े हैं। जिनका खुद का भी कोई मार्ग नहीं है, वे भी मार्ग-निर्देश कर सकते हैं, क्योंकि निर्देश करने में अहंकार की बड़ी तृप्ति है। खुद अपनी तरफ़ सोचें तो आपको ख़याल आएगा। कोई आपसे पूछे—सलाह बिना पूछे आप देते हैं—कोई पूछे तब तो रुकना बहुत मुश्किल है! . . . तब तो टेम्पटेशन, तब तो उत्तेजना बहुत हो जाती है—फिर आप सलाह देते ही हैं!

कभी आपने सोचा है कि जो सलाह आप दे रहे हैं, वह आपका निश्चित अपना अनुभव है,या सिर्फ़ एक आदमी की मजबूरी का लाभ उठा रहे हैं! क्योंकि वह परेशानी में है, आप सलाहकार बन सकते हैं! इसलिए दुनिया में सलाह मुफ़्त मिलती है, जरूरत से ज्यादा मिलती है। हालांकि कोई उसे मानता नहीं, लेकिन फिर भी लोग दिये चले जाते हैं।

दुनिया में शिष्यों की बजाए गुरु सदा ज्यादा हैं। और वह जो शिष्य है, वह भी शायद इसीलिये शिष्य है कि गुरु होने की तैयारी कर रहा है। और गुरु को भी सलाह दिये बिना आप बचते नहीं! . . . उसको भी आप सलाह देंगे ही!

आदमी का अहंकार तृप्त होता है इस प्रतीति से कि मैं जानता हूँ, दूसरा नहीं

जानता है। दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने में बड़ा मजा है। यह एक बड़ा सूक्ष्म संघर्ष है। एक सूक्ष्म पहलवानी है, जिसमें दूसरे को गलत सिद्ध करके अपने को सही सिद्ध करने का अहंकार पुष्ट होता है।

महावीर ने कहा है : जो इन आठ सूत्रों की साधना से न गुजर जाए उसे बोलने का हक़ भी नहीं है। महावीर खुद बारह वर्ष तक मौन रह गये। बहुत मौके आए होंगे जब सलाह देने की तीव्र वासना उठी होगी, लेकिन उसे उन्होंने रोक लिया। एक ही बात सदा ध्यान रखी कि जब तक मैं पूरा मौन नहीं हो जाता, तब तक शब्द पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

यह बड़ा उल्टा दिखाई पड़ेगा : जो मौन हो जाता है, वही शब्द का अधिकारी है; जो शून्य हो जाता है, वही प्रवचन का हक़दार है। जो भीतर शब्दो से भरा है, वो जो भी बोल रहा है, वह बोलना वमन है, उल्टी है। वह इतना भरा है कि उसे निकालने की उसे ज़रूरत है। आप सिर्फ़ एक पात्र हैं, जिसमें वह वमन कर देता है। लेकिन आपकी ज़रूरत का सवाल नहीं है कि आपको क्या चाहिए, असली ज़रूरत बोलनेवाले की है कि उसे क्या अपने में से निकालना है।

आप खद भी जानते हैं कि अगर कुछ आप पढ़ लें सुबह अख़बार में, तो बेचैनी शुरू हो जाती है कि जल्दी किसी को जाकर कहें। कोई कुछ ख़बर दे दे, किसी की अफ़वाह सुना दे, किसी की बदनामी कर दे, किसी की निंदा कर दे – तो फिर आपसे रुका नहीं जाता, जल्दी ही इस संवाद को, इस सुखद समाचार को आप दूसरे को देना चाहते हैं। और निश्चित ही देते वक्त आप थोड़ी कल्पना का भी उपयोग करते हैं। आप भी थोड़े कवि हैं – आप उसमें कुछ जोड़ते हैं; उसको मजाते हैं, संवारते हैं। सुबह की अफ़वाह शाम अगर उसी आदमी के पास वापिस लौट आए, जिसने शुरू की थी, तो वह पहचान नहीं सकेगा कि यह बात मैंने ही कही थी। इतने लोगों के हाथ से निखर जायेगी। सुबह पाँच रुपये की चोरी हुई हो तो साँझ तक पाँच लाख की हो जाना कुछ अड़चन की बात नहीं है।

मन में कुछ आया कि आप जल्दी उसे देना चाहते हैं; क्यों . . ? क्योंकि फिर आप हल्के हो जाएंगे; जब तक नहीं देते, तब तक मन पर बोझ बना रहता है। इसलिए किसी बात को गुप्त रखना बड़ा कठिन है। और जो लोग किसी बात को गुप्त रख सकते हैं, बड़ी गहरी क्षमता है उनकी। और जब आप शब्द तक को गुप्त नहीं रख सकते, तो और क्या गुप्त रखेंगे। इसलिए गुरुमन्त्र का नियम है : मन्त्र में कुछ भी न हो, लेकिन उसे गुप्त रखना है। गुप्त रखने में ही सारी साधना है, मन्त्र उतना मूल्यवान नहीं है। क्योंकि कहने का मन इतना नैसर्गिक है, इतना स्वाभाविक है कि किसी चीज को रोकना बिलकुल अस्वाभाविक मालूम होता है। आप किसी-न-किसी भांति किसी-न-किसी से कह देना चाहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के पास कोई आया, और आकर उसने कहा, 'मैंने सुना है कि तुम्हें जीवन के रहस्य की कुंजी मिल गई है, वह कुंजी तुम मुझे दे दो।' नसरुद्दीन ने कहा कि 'वह बड़ी गुप्त बात है, बड़ा सीक्रेट है।' उस आदमी ने कहा कि 'मैं भी उसे गुप्त रखने की कोशिश करूँगा।' नसरुद्दीन ने कहा कि 'तू पक्की कसम खा कि उसे गुप्त रखेगा।' उस आदमी ने कसम खाई; उसने कहा, 'मैं गुप्त रखूँगा।' नसरुद्दीन ने कसम सुनने के बाद कहा, 'अब जा।' पर उसने कहा, 'अभी आपने मुझे वह कुंजी बताई नहीं।' नसरुद्दीन ने कहा कि 'जब तू गुप्त रख सकता है तो मैं गुप्त नहीं रख सकता? और जब मैं ही न रख सकूँगा तो तेरा क्या भरोसा?'

...कठिन है, अति अप्राकृतिक है कि कोई बात आपके मन में चली जाए और आप उसे न कहें। एक ही उपाय है कि वह बात शब्द न रह जाए, खून बन जाए, हड्डी हो जाए, पच जाए, मांस-मज्जा हो जाए, तो ही गुप्त रह सकती है। इसलिए गुप्त रखने की एक कला है। उस कला के माध्यम से जो शब्द आपके भीतर जाते हैं, उनको आप बाहर नहीं फेंकते, ताकि वे पच जायें — वे समय लेंगे। आप बाहर फेंक देते हैं, इसलिए मैंने कहा — वमन, उल्टी, कै हो गई। जो आपने खाया था, वह वापस मुंह से फेंक दिया गया। वह पच नहीं पाया। मौन पचायेगा — और तभी बोलेगा, जब शान्ति इतनी गहन हो जायेगी भीतर कि अब कोई अशान्ति नहीं है, जिसे किसी पर फेंकना है; अब किसीको शिकार नहीं बनाना है।

मौन व्यक्ति ही सहयोगी हो सकता है, मार्ग-निर्देशक हो सकता है। हिन्दुओं ने अपने संन्यासी को 'स्वामी' कहा, इस अर्थ में कि वह अपना मालिक हो गया। बुद्ध ने अपने सन्यासी को 'भिक्षु' कहा, इस अर्थ में कि इस दुनिया में सभी अपने को मालिक समझ रहे हैं — और गलत। कोई अपने को भिक्षु नहीं समझता, कोई अपने को अन्तिम नहीं समझता। मेरा सन्यासी अपने को अन्तिम समझेगा, भिखारी समझेगा, ताकि महत्वाकांक्षा की दौड़ से टूट जाए।

महावीर ने अपने साधु को 'मुनि' कहा। इस कारण से मुनि कहा कि महावीर का मौन पर सर्वाधिक जोर है। और महावीर कहते हैं : जो मौन को उपलब्ध नहीं हो जाता, मुनि नहीं हो जाता, उससे सत्य की कोई किरण प्रगट नहीं हो सकती।

ये आठ सूत्र बड़े अनूठे हैं। इनमें, एक-एक सूत्र पर हम क्रमशः विचार करें।

'पाँच समिति और तीन गुप्ति — इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएँ हैं।'... जो आपको बोलने के योग्य बना सकेंगी। बोलते तो आप हैं, लेकिन बोलने की कोई

योग्यता नहीं है। बोलना आपकी एक बीमारी है, एक रोग है। इसलिए बोलकर आप अपने को हल्का अनुभव करते हैं, बोझ उतर जाता है। दूसरे से प्रयोजन नहीं है – अगर आपको कोई बोलने को न मिले तो आप अकेले में भी बोलेंगे। अगर आपको बंद कर दिया जाए एक कोठरी में, और कोई न मिले, तो थोड़ी ही देर में आप अकेले बोलना शुरू कर देंगे।

कभी रास्ते पर अगर आप खड़े हो जाएँ तो कई लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, जो अपने से बातचीत करते चले जा रहे हैं। कोई हाथ हिला रहा है, कोई जवाब दे रहा है – किसी को जो मौजूद नहीं है। उसके ओंठ हिल रहे हैं, उसकी आँखें कप रही हैं – वह किसी के साथ है। पागलखाने में जाकर देखें, लोग अपने से बातें कर रहे हैं।

आप में भी बहुत फ़र्क नहीं है। जब आप दूसरे से बात कर रहे हैं तो दूसरा तो केवल बहाना है, बात आप अपने से ही कर रहे हैं। कभी दो लोगों की बातचीत सुनें, शान्त मौन होकर, तो आप हैरान होंगे कि वे एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर रहे – दोनों अपना-अपना बोझ फेंक रहे हैं। न उसको प्रयोजन है, न इसको प्रयोजन है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है, दूसरा खूटी की तरह है। आप आए अपना कोट खूटी पर टाँग दिया। कोई खूंटी से मतलब नहीं है, कोट टांगने से मतलब है। कोई भी खूंटी काम दे देगी। तो जो भी मिल जाए, जो भी अभागा आपके हाथ में पड़ जाए, उस पर आप फेंक रहे हैं!

महावीर कहते हैं : बोलने का अधिकार उसको ही है, जो न-बोलने की कला को उपलब्ध हो गया। लेकिन न-बोलने की कला एक गहन प्रक्रिया है। पूरे जीवन की धारणा, दृष्टि, आधार बदलने पड़ेंगे। उन आधार को बदलने वाली ये आठ वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ हैं : पाँच समिति और तीन गुप्ति।

समितियाँ हैं विधायक – पॉजिटिव, और गुप्तियाँ हैं निगेटिव – नकारात्मक। समिति में खयाल रखना है उसका जो आप करते हैं, और गुप्ति में खयाल रखना है उसका जो आप नहीं करते हैं। और, विधायक और नकार दोनों सम्हल जायें तो आप दोनों के पार हो जाते हैं।

'ईर्या, भाषा, एषणा, आदान और उच्चार – ये पाँच समितियाँ हैं।'

'ईर्या' का अर्थ है : साधक जो भी प्रवृत्ति करे, उसमें सावधानी रखे। महावीर ने कहा है : उठो, बैठो, चलो – होशपूर्वक। कोई भी प्रवृत्ति करो, वह बेहोशी से न हो, इसका नाम 'ईर्या-समिति' है।

हम जो भी कर रहे हैं, बेहोशी में कर रहे हैं। चलते हैं, लेकिन चलने से कोई मतलब नहीं, मन कुछ और करता रहता है। और जब मन कुछ और करता

रहता है, तो चलने में हम बेहोश हो जाते हैं। भोजन करते हैं, मन कुछ और करता रहता है – तो भोजन करने में बेहोश हो जाते हैं। किसी से बात भी आप कर रहे हैं तो भी बात ऊपर-ऊपर चल रही है, भीतर आपका मन कुछ और कर रहा है – तो आप बात में भी बेहोश हो जाते हैं।

महावीर ने कहा है कि साधक का प्राथमिक चरण है, उसकी सारी क्रियाएँ होशपूर्वक हो जाएँ। जिसको गुर्जियेफ ने 'सेल्फ-रिमेम्बरिंग' कहा है, और जिस पर गुर्जियेफ ने अपनी पूरी साधना का आधार रखा है, या जिसको कृष्णमूर्ति 'अवेयरनेस' कहते है, उसे महावीर ने 'ईर्या-समिति' कहा है। वह उनका पहला तत्त्व है, अभी सात तत्त्व और हैं। लेकिन पहला इतना अद्भुत है कि अगर उसे कोई पूरा साधने लगे तो सात के बिना भी सत्य तक पहुँच सकता है।

जो भी आप कर रहे हैं, करते वक्त क्रिया के साथ आपको चेतना सयुक्त होनी चाहिये। कठिन है, क्योंकि चौबीस घण्टे आप कुछ-न-कुछ कर रहे हैं। हज़ार तरह की क्रियाएँ हो रही हैं। उन सारी क्रियाओ में अगर आप बोध रखें तो आप चकित हो जाएँगे, एक सेकॅन्ड भी बोध रखना मुश्किल मालूम पड़ेगा। तब आपको पहली दफे पता चलेगा कि आप अब तक बेहोशी में जी रहे हैं। एक सेकॅन्ड भी आप चलने का खयाल रख कर चलें कि आपकी चेतना पूरी चलने की क्रिया पर अटकी रहे : बायाँ पैर उठा तो उसके साथ चेतना उठे, बायाँ पैर नीचे गया और दायाँ उठा तो उसके साथ चेतना उठे। आप पायेंगे, एक-आध सेकॅन्ड मुश्किल से यह हो पाता है – कि चेतना खो गई, पैर अपने-आप उठने लगे, मन कहीं और चला गया, कुछ और सोचने लगा। तब आपको फिर खयाल आयेगा – मैं सो गया!

महावीर ने कहा है : मैं उसी को साधु कहता हूँ, जो जागा हुआ है; असाधु उसको कहताहूँ, जो सोया हुआ है। सुत्ता अमुनि, असुत्ता मुनि – जो जागा हुआ है, वह मुनि; जो सोया हुआ है, वह अमुनि।

तो आप क्या करते हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे करते हैं ..? होशपूर्वक या बेहोशी में। यह भी हो सकता है कि दान करनेवाला असाधु हो, अगर बेहोशी से कर रहा है; और चोरी करनेवाला साधु हो जाए, अगर होशपूर्वक कर रहा है।

... मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप जाकर होश-पूर्वक चोरी करें। मैं यह कह रहा हूँ कि इतनी दूर तक सम्भावना है होश की, कि अगर होशपूर्वक कोई चोरी करे तो भी साधु होगा, और बेहोशी से कोई दान दे तो भी असाधु होगा। सचाई तो यह है कि होशपूर्वक चोरी हो नहीं सकती और न बेहोशी में दान हो सकता है। बेहोशी का दान झूठा है, उसके प्रयोजन दूसरे हैं। होश में चोरी असम्भव है, क्योंकि चोरी के लिए बेहोशी अनिवार्य तत्त्व है। जो भी बुरा है जीवन में, उसके लिए मूर्छा चाहिए।

इसलिए जब भी आप बुरा करते हैं, तब आप मूर्छित होते हैं। जब भी आप मूर्छित हो जाते हैं, बुरा करने की सम्भावना प्रगाढ़ हो जाती है। हिंसा में, हत्या में, झूठ में, चोरी में, पाप में, वासना में आप होश में नहीं होते, आप बेहोश हो जाते हैं। कुछ भीतर आपके सो जाता है। आप पछताते हैं बहुत बार, जब जागते हैं जब क्षणभर को होश वापिस लौटता है, तो ख़याल आता है – 'यह मैंने क्या किया ? यह मुझे नहीं करना था ! और यह मै जानता था कि ये नही करना है! न मालूम कितनी बार निर्णय किया था कि नहीं करूँगा, फिर भी हो गया !'... कैसे हुआ आपसे यह ..? निश्चित ही बीच में किसी धुएँ ने घेर लिया, आपका चित्त खो गया निद्रा में।

महावीर कहते हैं – साधु ईर्या से चले, उठे-बैठे, प्रवृत्ति करे। जो भी करे, क्षुद्रतम प्रवृत्ति भी होश-पूर्वक हो। क्यो ..? क्योंकि प्रवृत्ति दूसरे से जोड़ती है। बेहोश आदमी के संबध हिंसात्मक होंगे। वह दूसरे को चोट पहुँचा देगा। जैसे कोई आदमी नशे में यहाँ से चले और आपके पैर पर पैर रख दे, तो आप क्या कहेंगे ? – कहेंगे कि यह आदमी नशे मे है। लेकिन हम ऐसे ही जीवन में चल रहे है – नशे में।

नशे बहुत तरह के है, तरह-तरह के हैं। हर आदमी का अपना-अपना नशा है। कोई आदमी धन के नशे में चल रहा है। .. देखें ! जब किसी के पास धन होता है, तो उसकी चाल अलग होती है। आपके खीसे में भी जब पैसे ज्यादा होते हैं तो आपकी चाल वही नही होती। आप अनुभव करना। जब खीसे में पैसा नही होता तो आप और ढंग से चलते है। नशा ही नही है। चाल में जान नही मालूम पड़ती। जब खीसे में पैसे होते है, तब रीढ़ सीधी हो जाती है ! कुंडलिनी जागृत हो जाती है ! आप बहुत अकड़ के चलते हैं।

राजनीतिज्ञ जब पद पर होता है, तब उसकी चाल देखें : जैसे कपड़े पर नया-नया कलफ़ किया गया हो! और जब पद से उतर जाता है, तब उसकी चाल देखें : जैसे रातभर उन्हीं कपड़ों को पहनकर सोया हो ! सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। सब चमक चली जाती है। सब शान चली जाती है। धनी निर्धन हो जाये तो देखें। स्वस्थ आदमी बीमार हो जाये तो देखें।

कई तरह के नशे हैं। कोई ज्ञान के नशे में है – तब ज्ञान की अकड़ होती है कि मैं जानता हूँ। हजार तरह के नशे हैं। नशा उसको कहते हैं, जिससे आप अकड़ते हैं, और बेहोश होते हैं, और होशपूर्वक नहीं चल पाते।

साधना का अर्थ ही है कि नशों को तोड़ना है। जहाँ-जहाँ चीजें हमें बेहोश करती हैं, उन-उन से सम्बन्ध विच्छिन्न करना, और एक ऐसी सरल

स्थिति में आ जाना जहां सिर्फ़ चेतना हो और किसी तरह की बेहोशी के तत्त्व से संबंध न रहा हो।

धन में ख़तरा नहीं है। धन से जो नशे से भर जाते हैं, उसमें ख़तरा है। तो निर्धन होने से काम न चलेगा; क्योंकि आदमी इतना चालाक है कि निर्धन होने का भी नशा हो सकता है।

(सुकरात से मिलने एक फ़कीर आया। उस फकीर ने चीथड़े पहन रखे थे, जिनमें छेद थे। उस फ़कीर का नियम था कि अगर कोई नया कपड़ा भी उसको दे दे तो वह नया कपड़ा नहीं पहनता था। ..फ़कीर ..! वो पहले उसमें छेद कर लेता, कपड़े को गन्दा करता, फाड़ता – तब पहनता! गुदड़ी बना लेता, तब कपड़े का उपयोग करता!

फटे-पुराने, गन्दे कपड़े पहने हुए फ़कीर आया सुकरात से मिलने। सुकरात ने उससे कहा कि 'तुम कितने ही फटे कपड़े पहनो, तुम्हारे छिद्रों से तुम्हारा अहंकार ही झाकता है। तुम्हारे कपड़ों के छिद्र भी तुम्हारे अहंकार का हिस्सा हैं; वो भी तुम्हें भर रहे हैं। तुम जिस अकड़ से चल रहे हो, सम्राट भी नहीं चलता!... क्योंकि वह आदमी, समझ रहा है, 'मैं फ़कीर हूँ, त्यागी हूँ!') ..त्यागियों को देखें! उनकी अकड़ देखें ..! जैसे सब क्षुद्र हो गये हैं उनके सामने। भोगी को वे ऐसे देखते हैं, जैसे कीड़ा-मकोड़ा – पाप में गिरा हुआ, पाप की गर्द में गिरा हुआ। उनके ऊपर बोझ है कि आपको पाप से उठायें। अब नर्क आपका निश्चित है। जब भी वे आपको देखते हैं तो उनको लगता है – बेचारा! नर्क में सड़ेगा! लेकिन उन्हें ख़याल नहीं आता कि नर्क मे सड़ाने का यह ख़याल बड़े गहरे अहंकार का ख़याल है।

त्याग नशा दे रहा है। तो त्यागी और ढंग से उठता है, और ढंग से बैठता है। उसकी अकड़..! उसकी अकड़ मज़ेदार है। वह कहता है '' मैंने रुपयों पर लात मार दी, तिजोरी को ठुकरा दिया; पत्नी सुन्दर थी, आँख फेर ली!... तुम अभी तक पाप में पड़े हो!' वह अपनी हर प्रक्रिया से – 'मैं कुछ ज्यादा हूँ, कुछ महत्त्वपूर्ण हूँ, कुछ ख़ास हूँ' यह दिखाने की कोशिश कर रहा है।

और आदमी ने खास होने की इतनी कोशिशें की है कि जिस का हिसाब नहीं। आदमी कोई भी नालायकी भी कर सकता है, अगर ख़ास होने का मौका मिले। मनोवैज्ञानिक कहते है कि अधिक लोग अपराध की तरफ़ इसलिए प्रवृत्त हो जाते है, कि अपराधी होकर वे ख़ास हो जाते हैं। हजारों अपराधियों का अध्ययन करके इस नतीजे पर पहुँचा गया है, कि अगर उनके अहंकार को तृप्त करने का कोई और रास्ता खोजा गया होता, तो उन्होंने अपराध न किये होते। अनेक

हत्यारों ने वक्तव्य दिए हैं, और वक्तव्य बड़े गहरे हैं कि वे सिर्फ़ अखबार में अपना नाम छपा एक दफा देखना चाहते थे। जब उन्होंने किसी की हत्या कर दी तो अखबार में सुर्खियों में नाम छप गया।

हमारे अखबार भी हत्याओं में सहयोगी हैं। आप किसी को बचा लें, कोई किसी अखबार में कोई खबर न छापेगा; किसी को मार डालें, अखबार में खबर छप जायेगी। ऐसा लगता है कि बुरा करना प्रसिद्ध होने के लिए बिलकुल आवश्यक है। शुभ की कोई चर्चा नहीं होती। शुभ जैसे प्रयोजन ही नहीं है!

मनस्विद् कहते हैं कि जब तक हम अशुभ को मूल्य देंगे, तब तक कुछ लोग अशुभ से अपने अहंकार को भरते रहेंगे।

खास होने का मजा है ...। राबर्ट रिप्ले ने लिखा है कि वह जवान था, और प्रसिद्ध होना चाहता था। जवानी में सभी प्रसिद्ध होना चाहते हैं। स्वाभाविक है। जवानी इतनी पागल है, इतनी बेहोश है। चिन्ता तो तब होती है, जब बुढ़ापे मे भी कोई उसी पागलपनमें पड़ा रहता है।

.. तो रिप्ले प्रसिद्ध होना चाहता था, लेकिन कोई उसे उपाय नहीं सूझता था, कैसे प्रसिद्ध हो जाये।

... दुनिया इतनी बड़ी है अब, और इतनी करीब आ गई है कि प्रसिद्धि के मौके कम हो गये हैं। दुनिया में, मनस्विद् कहते हैं कि मानसिक रोग बढ़ते जाते हैं, क्योंकि प्रसिद्धि के मौके कम होते जाते हैं। पुरानी दुनिया में हर गाव अपने में एक दुनिया था। गाँव का कवि 'महान-कवि' था, क्योंकि दूसरे गाँव से कोई तुलना नही थी। गाँव का चमार भी 'महान-चमार' था, क्योंकि उस-जैसे जूते बनाने वाला कोई भी नहीं था। गाँव मे सैकड़ों लोगो का अहंकार तृप्त हो रहा था। अब पूरे मुल्क में जब तक आप 'राष्ट्रीय-चमार' न हो जाएँ, 'राष्ट्र-कवि' न हो जाएँ, तब तक आपकी कोई क़ीमत नहीं है। हजारों कवि हैं, हजारो चमार हैं, हजारों दुकानदार हैं, कोई पूछनेवाला नही है इस संख्या में। और दुनिया रोज सिकुड़ती जाती है। अब तो जब तक विश्व-कवि न हो जाएँ, तब तक कोई मजा नहीं। जब तक नोबॅल प्राइज न मिल जाए तब तक कुछ मजा नही। कठिन होता जाता है; अधिक लोगों के अहंकार तृप्त नहीं हो पाते। अधिक लोगों की मूर्च्छा तृप्त नहीं हो पाती तो बीमार हो जाते हैं, रुग्ण हो जाते हैं।

रिप्ले जवान था और प्रसिद्ध होना चाहता था। तो जब उसे कुछ नहीं सूझा तो उसने एक आदमी से सलाह ली। जिससे सलाह ली वह एक सर्कस का

मालिक था। उसने कहा, 'यह भी कोई ख़ास बात है, बिलकुल सरल बात है। तू आधी खोपड़ी के बाल काट दे, आधी दाढ़ी काट दे, आधी मूंछ काट दे – और सड़क से सिर्फ़ गुज़र, कुछ मत बोल किसी से। लोगों को देखने दे, कोई कुछ पूछे तो सिर्फ़ मुस्करा।'

रिप्ले ने कहा, 'इससे क्या होगा'? उसने कहा कि 'तीन दिन के बाद तू आना।'

तीन दिन बाद आने की ज़रूरत न रही, सारे अख़बारों में ख़बरें छप गईं। जगह-जगह लोग खड़े होकर देखने लगे। नाम व पता उसने अपनी छाती पर लिख रखा था। लोग उससे पूछते कि 'आप कौन हैं?' तो वह सिर्फ़ मुस्कराता। सड़कों पर सिर्फ़ घूमता रहता। तीन दिन में वह न्यूयार्क में प्रसिद्ध हो गया। तीन महीने के भीतर पूरी अमेरिका उसको जानती थी। तीन साल के भीतर दुनिया में बहुत कम लोग थे जो उसको नहीं जानते थे। फिर तो उसने जिन्दगीभर इस तरह के काम किए। और इस ज़मीन पर कम ही लोग इतने प्रसिद्ध होते हैं, जैसा राबर्ट रिप्ले हुआ। फिर तो वह इसी तरह के उल्टे-सीधे काम में लग गया।

...मगर प्रसिद्धी मिलती है, अहंकार तृप्त होता है, अगर आप सिर्फ़ खोपड़ी के बाल ही काट लें आधे तो। जिसको आप साधु कहते हैं, वह जो साधु नाम का जीव है, उनमें से सौ में से निन्यानबे लोग खोपड़ी के आधे बाल काटे हुए हैं! मगर उससे प्रसिद्धि मिलती है, सम्मान मिलता है, आदर मिलता है, मूर्च्छा तृप्त होती है।

मूर्च्छा के लिए अहंकार भोजन है। अहंकार के लिए मूर्च्छा सहयोगिनी है।

महावीर कहते हैं 'ईर्या-समिति' पहली समिति है। व्यक्ति जो भी करे, होशपूर्वक करे। करने की फ़िक्र छोड़ दे कि वह क्या कर रहा है, इसकी फ़िक्र करे कि मैं होशपूर्वक कर रहा हूँ कि नहीं।

हम सब की चिन्ता होती है कि 'हम क्या कर रहे हैं?– गलत तो नहीं कर रहे हैं, सही तो कर रहे हैं। चोरी तो नहीं कर रहे हैं, दान कर रहे हैं। हिंसा तो नहीं कर रहे हैं, अहिंसा कर रहे हैं।'

'क्या कर रहे हैं'– इस पर हमारा ज़ोर है। महावीर का सारा ज़ोर इस पर है कि वह जो कर रहा है, वह जागकर कर रहा है या सोकर कर रहा है?

तो आप अहिंसा कर सकते हैं– सोए-सोए, और दूसरी तरफ़ हिंसा जारी रहेगी।

कलकत्ते में, एक घर में मैं मेहमान था। बहुत बड़े धनपति हैं। साँझ को मैंने देखा कि बाहर कुछ खाटें लगा रखी हैं। तो मैंने पूछा कि 'यह क्या मामला है?' उन्होंने कहा कि 'अहिंसा के कारण। खटमल पैदा हो गये हैं खाटों में, मार

तो सकते नहीं, लेकिन उनको धूप में डाल देंगे तो वे मर ही जायेंगे। तो रातको नौकरों को उन पर सुला देते हैं। नौकरों को दो रुपये रात दे देते हैं सोने के लिये।

अब यह बड़ा मजेदार मामला हुआ। अहिंसक होने की कोशिश चल रही है – 'खटमल न मर जाएँ!' लेकिन दो रुपये देकर जिस आदमी को सुलाया है, उसको रातभर खटमल खा रहे है! . . .पर उसको दो रुपये मैंने दे दिए हैं, इसलिए कोई अड़चन नही मालूम होती! सब मामला साफ़ हो गया, सुथरा हो गया!

एक तरफ़ अहिंसा करने की कोशिश होगी, दूसरी तरफ़ हिंसा होती चली जायेगी। क्योंकि भीतर से चेतना तो बदल नहीं रही, सिर्फ़ कृत्य का रूप बदल रहा है; भीतर से आदमी तो बदल नहीं रहा, सिर्फ़ उसका व्यवहार बदल रहा है। जो व्यवहार को बदलने की कोशिश करेंगे वे पायेंगे कि जो चीज़ उन्होंने बदली है, वह दूसरी तरफ़ से भीतर प्रवेश कर गई।

बड़े आश्चर्य की बात है कि शिकारी, जिनको हम शुद्धतम हिंसक कहें, हमेशा मिलनसार और अच्छे लोग होते हैं। अगर आपकी किसी शिकारी से दोस्ती है, तो आप चकित होंगे कि वह कितना मिलनसार है – है हत्यारा! लेकिन अहिंसा की चेष्टा करनेवाला व्यक्ति, जिसने अपनी चेतना को नही बदला, अक्सर मिलनसार नही होगा– दुष्ट मालूम पड़ेगा, कठोर मालूम पड़ेगा। उसे आप झुका नही सकते। वह झुकेगा भी नही, मिलने आएगा भी नही।

क्या कारण है कि शिकारी इतने मिलनसार होते हैं, जो हिंसा कर रहे हैं . .? उनकी हिंसा शिकार में निकल जाती है, आदमी की तरफ़ निकलने की कोई ज़रूरत नही रह जाती। जो सब तरफ़ से हिंसा को रोक लेता है, उसकी हिंसा आदमी की तरफ़ निकलनी शुरू हो जाती है। अगर अहिंसा को माननेवाले जैनों ने इस देश में किसी भी दूसरे समाज के मुकाबले ज्यादा पैसा इकट्ठा किया है, तो उसका कारण है। क्योंकि हिंसा का सारा रुख बाकी तरफ़ से तो बच गया, हिंसा और कहीं तो निकल न सकी, सिर्फ़ धन की खोज में, धन को खींचने में निकल सकी।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, जो मैं कह रहा हूँ कि आपकी वृत्तियाँ अगर एक तरफ़ से रोक दी जाएँ तो दूसरी तरफ़ से निकलती हैं। आप जानकर हैरान होंगे कि अगर कोई दौड़नेवाला, तेज़ दौड़नेवाला प्रतियोगी पन्द्रह दिन दौड़ने के पहले सम्भोग न करे तो उसकी दौड़ की गति ज्यादा होती है, अगर सम्भोग कर ले तो कम हो जाती है। अगर परीक्षार्थी सुबह परीक्षा दे और रात सम्भोग कर ले, तो उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता कम हो जाती है; अगर परीक्षाके समय में संभोग न करे तो उसकी बुध्दि की तीक्ष्णता ज्यादा होती है। सैनिकों को पत्नियाँ नहीं ले जाने दिया

जाता, क्योंकि अगर वे सम्भोग कर लें तो उनकी लड़ने की क्षमता कम हो जाती है। उनको वासना से दूर रखा जाता है, ताकि वासना इतनी इकट्ठी हो जाए कि छुरे में प्रवेश कर जाए। जब वे किसी की हत्या करें तो हत्या काम-वासना का कृत्य बन जाए।

यह जानकर आप चकित होंगे कि जब भी कोई समाज समृद्ध हो जाता है तो उसके हार के दिन क़रीब आ जाते है, क्योंकि उसके सैनिक भी आराम से रहने लगते हैं। जब कोई समाज दीन-दरिद्र होता है तो उसके हारने के दिन नही होते। कभी भी अत्यन्त दरिद्र समाज अगर समृद्ध समाज से टक्कर में पड़ जाए, तो समृद्ध को हारना पड़ता है। यह भारत इस अनुभव से गुज़र चुका है। तीन हजार साल निरन्तर भारत पर हमले होते रहे। और जो भी हमलावर था इस मुल्क पर—वह हमेशा गरीब था, दीन था, दुखी था, परेशान था। लेकिन उसकी परेशानी इतनी ज्यादा थी कि हिंसा बन गई। हम यहाँ बिलकुल सुखी थे, खाते-पीते थे, प्रसन्न थे, आनन्दित थे, हमारी कुछ इतनी वासना इकट्ठी नही थी कि हिंसा बन जाए।

आप देखें, अगर आप दो-चार दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें तो आप पायेंगे, आपका क्रोध बढ़ गया है। यह बड़े मजे की बात है। क्रोध बढ़ना नहीं चाहिए ब्रह्मचर्य के साधन से, घटना चाहिए। लेकिन आप अगर पन्द्रह दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें, आपका क्रोध बढ जाएगा; क्योंकि जो शक्ति इकट्ठी हो रही है, अब वह दूसरा मार्ग खोजेगी। जब तक आपको ध्यान का मार्ग न मिल जाए, तब तक ब्रह्मचर्या खतरनाक है; क्योंकि ब्रह्मचारी आदमी दुष्ट हो जायेगा। आप दो-चार दिन उपवास करके देखें, आप दम्भी हो जायेंगे, क्रोधी हो जायेंगे।

सभी को अनुभव है कि घर में एक-आध आदमी धार्मिक हो जाए तो पूरे घर में उपद्रव हो जाता है; क्योंकि वह धार्मिक आदमी सबको सताने की तरकीबें खोजने लगता है। उसकी तरकीबें भली होती हैं, इसलिये उनसे बचना भी मुश्किल है। वह तरकीबें भी ऐसी करता है कि आप यह भी नही कह सकते कि 'तुम गलत हो।' क्योंकि वह इतना अच्छा है : उपवास करता है, ब्रह्मचर्य साधता है, सुबह उठकर योगासन करता है। बुराई तो उसमें आप खोज ही नही सकते। न सिगरेट पीता है, न शराब पीता है, न होटल में जाता है, न सिनेमा देखता है; घर में ही बैठ कर गीता, रामायण पढता रहता है। मगर वह जितना इकट्ठा कर रहा है उतना निकालेगा, चिड़चिड़ा हो जायेगा। बहुत मुश्किल है धार्मिक आदमी पाना, जो चिड़चिड़ा न हो। जब धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा न हो तो समझना कि ठीक धार्मिक आदमी है। लेकिन धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा होगा, सौ में निन्यानबे मौके पर; क्योंकि जो उसने रोका है, वह कहीं से निकलेगा। वह चिड़चिड़ाहट बन जायेगा... उपद्रव!

आप अहिंसा को थोप सकते हैं, फिर हिंसा नई तरफ़ से बहने लगेगी।

यह जानकर आप चकित होंगे कि पूरा जीवन एक इकॉनॉमिक्स है, शक्ति का एक अर्थशास्त्र है। आप इस अर्थशास्त्र को सीधा नहीं बदल सकते, जब तक कि भीतर का मालिक न बदल जाए। ... तब तक एक तरफ़ से झरने को रोकते हैं, दूसरी तरफ़ से बहना शुरू हो जाता है।

महावीर का जोर कृत्य पर नहीं है, कर्ता पर है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत विचारणीय नहीं है। आप होशपूर्वक करें, बस इतना ही विचारणीय है। और मजे की बात यह है कि होशपूर्वक करने पर जो बुरा है, वह होता ही नहीं; क्योंकि बुरे की अनिवार्य शर्त है, बेहोशी। यह गणित है। होशपूर्वक करने पर वही होता है, जो शुभ है, जो ठीक है; क्योंकि होश से ग़ैर-ठीक निकलता ही नहीं। इसलिए महावीर ने 'ईर्या' पहली समिति कही। होशपूर्वक प्रवृत्ति।

'भाषा'..। होशपूर्वक भाषा का व्यवहार, संयमपूर्वक भाषा का व्यवहार। यह सयम उस सीमा तक जाना चाहिए, जहाँ भाषा मौन हो जाए।

'ईर्या' जागरूकता बन जाए, इतना होश हो जाये कि उसका होश न रखना पड़े। अलग से चेष्टा न करनी पड़े कि होश रखूं। होश सहज हो जाये तो 'ईर्या' पूरी हुई। भाषा की पूर्णता या भाषा का बोध और भाषा की समिति तब पूरी होती है, जब मौन सहज हो जाय। भाषा का उपयोग तभी हो जब अत्यंत जरूरी संवाद हो, जब बोलना आवश्यक हो। और जब बोलें तभी भाषा का उपयोग हो, जब न बोलें तब भीतर भाषा न चलती रहे। अभी आप नहीं भी बोलते तो भी भीतर भाषा चलती रहती है; भीतर तो आप बोलते ही रहते हैं। बाहर कभी-कभी चुप भी रहते हैं, भीतर तो कभी चुप नहीं रहते। सपने तक में चर्चा चलती रहती है।

यह जो भीतर चलनेवाली भाषा है, यह जीवन की ऊर्जा को पिये जा रही है, सोखे जा रही है। आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है – ऐसा ही, जैसे कि आप बैठे हैं और पैर चला रहे हैं। कुछ लोग बैठकर चलाते रहते हैं। चलते वक़्त पैर का चलाना ठीक है, क्योंकि पैर के चलने की जरूरत है। लेकिन कुर्सी पर बैठकर पैर क्यों हिला रहे हैं? अनावश्यक है। जब आप बोल रहे हैं तब भाषा की जरूरत है, जब आप चुप बैठे हैं तब भीतर भाषा क्यों चल रही है? यह भीतर पैर का हिलना क्यो चल रहा है?

महावीर भी बारह वर्ष तक निरन्तर मौन में डूबे रहे, सिर्फ़ भाषा-समिति को उपलब्ध होने को – कि मालिक हो जायें शब्द के, शब्द मालिक न रहे।

अभी शब्द आपका मालिक है। आप चाहें भी कि भाषा को बन्द करें –

वह नहीं होती, वह चलती ही जाती है। आप कहें भी अपने मन से कि चुप हो जा, वह आपकी सुनता नहीं। आप कितना भी कहते रहें, पर वह बोले ही चले जाता है। अंततः आप थक जाते हैं, और कहते है कि 'ठीक है, चलने दो।' धीरे-धीरे आप भूल ही जाते हैं कि आप गुलाम हो गये हैं, और मन मालिक हो गया है। मन की मालिकयत तोड़ने का उपाय मौन है, और कोई उपाय नहीं है।

(मन की मालिकयत तोड़ने का एक ही ढंग है कि आप भीतर चलते शब्दों से अपना सहयोग हटा लें, कोऑपरेशन अलग कर लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो भी आप उसमें रस न लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो आप ऐसा ही समझें कि कहीं और दूर चल रहा है, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है – तटस्थ हो जाएँ। जब धीरे-धीरे आप रस लेना बन्द कर देंगे, भाषा गिरने लगेगी, बीच में अन्तराल आने लगेंगे; कभी-कभी मौन-आकाश आ जायेगा। और मौन-आकाश इतना अदभुत अनुभव है कि जीवन की पहली झलक तभी मिलती है।)

दूसरे से बात करने के लिए भाषा, अपने से बात करने के लिए मौन। दूसरे से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु चाहिए, और अपने से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु ख़त्म हो जाना चाहिये। मौन की धारा पैदा हो जानी चाहिए। खुद से जुड़ने के लिए बोलने की क्या जरूरत है? लेकिन बोलना इतना रुग्ण हो गया है कि आप खुद को दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा था। वकीलों से जब वह परेशान हो गया तो उसने अदालत से कहा कि 'मैं अपनी वकालत खुद ही करना चाहता हूँ।' चोरी का मामला था, चोरी का इलजाम था; कानून में कोई बाधा नहीं थी। मजिस्ट्रेट ने कहा कि '*ठीक है, अगर तुम खुद ही अपनी वकालत कर सकते* हो तो खुद ही करो।' तो मुल्ला पहले खड़ा होता कटघरे में, फिर कटघरे से बाहर निकलता – वकील की तरह खड़ा होता। एक काला कोट ले आया था, काला कोट पहनकर बाहर खड़े होकर कटघरे की तरफ़ देखता और पूछता – 'नसरुद्दीन, तेरह तारीख की रात तुम कहाँ थे? क्या तुमने चोरी की? क्या तुम उस घर में घुसे?' फिर कोट उतारकर, भागकर कटघरे में जाकर खड़ा होता और कहता – 'क्या मतलब, तेरह तारीख की रात? मुझे तो कुछ पता ही नहीं! किसकी चोरी हुई? क्या हुआ?' . . . वह जवाब-सवाल कर रहा है!

आप भी चौबीस घण्टे यही कर रहे हैं। अपने को बाँट लेते हैं ताकि बातचीत आसान हो जाए। बेटा अपनी तरफ़ से भी बोल रहा है, बाप की तरफ़ से भी बोल

रहा है . . . जवाब भी दे रहा है ! पत्नी अपनी तरफ़ से भी बोल रही है; पति क्या कहेगा, वह भी बोल रही है – जवाब-सवाल दोनों भीतर चल रहे हैं !

भीतर आप खण्ड कर लेते हैं। खण्ड किये बिना बोलना बहुत मुश्किल हो जायेगा, पागलपन मालूम पड़ेगा। ज़रा भीतर देखें कि कैसा द्वन्द्व आपने खड़ा कर लिया है। महावीर कहते हैं कि भीतर मौन होगा तो द्वन्द्व विसर्जित हो जायेगा। जब मौन होंगे तो आप एक हो जायेंगे। जब तक बोलेंगे, तब तक बंटे रहेंगे। यह बंटाव हटना चाहिए।

भाषा-समिति का अर्थ है : जब दूसरे से बोलना हो, तभी बोलना – पहली बात। जब दूसरे से न बोलना हो तो बोलने को बन्द कर देना, भीतर चुप हो जाना। दूसरी बात – दूसरे से बोलना भी हो, तो दूसरे के हित को ध्यान में रखकर बोलना; मुझे बोलना है, इसलिए मत बोलना। दूसरा फंस गया है, सुनेगा ही – इसलिए मत बोलना। तीसरी बात – जो मैं बोल रहा हूँ वह सत्य ही है, ऐसा पक्का हो तो ही बोलना, अन्यथा मत बोलना। क्योंकि जो बोला जा रहा है, वह दूसरे में प्रवेश कर रहा है और दूसरे के जीवन को प्रभावित करेगा – अनन्त जन्मों तक प्रभावित करेगा। इसलिए खतरनाक बात है। दूसरे के जीवन को ग़लत मार्ग दे देना, उसे भटका देना पाप है।

इसलिये महावीर कहते हैं : जो पूर्णनिश्चय से स्वयं का अनुभव हो, वही बोलना। दूसरे के हित में हो तो ही बोलना। क्योंकि पूर्ण अनुभव भी हो आपको सत्य का, लेकिन दूसरे को उसकी ज़रूरत ही न हो, अभी वह घड़ी न आई हो जब वह सत्य को सुन सके, अभी वह समय न आया हो जब वह सत्य को समझ सके, अभी उसके ऊपर ये बोझ हो जाये और उसके जीवन को बोझिल कर दे – तो मत बोलना। और उतने शब्दों में बोलना, जिसमें एक भी शब्द ज्यादा न हो। टेलिग्राफिक बोलना। जो काम पाँच शब्दों में हो सके वह पाँच में ही करना, पचास में मत करना।

अगर भाषा पर कोई व्यक्ति इतना होश साध ले, तो ध्यान अपने-आप घटित होना शुरू हो जाये। भाषा की विक्षिप्तता ही ध्यान में बाधा है। और अगर आप भाषा से पीछे हट सकें तो आप बच्चे की तरह सरल हो जायेंगे। जैसे आप जन्मे थे – बिना भाषा के, बिना शब्दों के, जब कोई भी आवरण न था विचार का – वैसे ही आप फिर हल्के, ताज़े, शुद्ध और नये हो जायेंगे।

ध्यानी पुनः बचपन को उपलब्ध हो जाता है, उसी निर्दोषता को।

तीसरी समिति है – 'एषणा।'

महावीर कहते हैं, जब तक शरीर है तब तक शरीर को सम्हालने की ज़रूरत होगी। सम्हालने को ! . . . सजाने की ज़रूरत नहीं है ! लेकिन सम्हालने की ज़रूरत

होगी। भोजन चाहिये, देना पड़ेगा; पानी चाहिए, देना पड़ेगा; वस्त्र चाहिए, देने पड़ सकते हैं।

महावीर एषणा-समिति में कहते हैं कि जीवन को चलाने के लिए जो अत्यन्त ज़रूरी हो उसका होशपूर्वक विचार करके, अत्यन्त होश से उतना ही स्वीकार करना। एषणा को, वासना को सीमित कर लेना अत्यन्त आखिरी तल पर (अगर एक बार भोजन से जीवन पर्याप्त चल जाता हो, तो दो बार का भोजन व्यर्थ होगा, वासना हो जायेगी। अगर चार घण्टे सोने से नींद पूरी हो जाती हो, शरीर ताज़ा हो जाता हो, जीवन चल जाता हो तो आठ घण्टे की नींद भोग होगी; रोग पैदा करेगी। जितने से चल जाता हो जीवन, उतना ही लेना।

. . . इस फ़र्क़ को समझ लें। हम जीवन को चलाने के लिए नहीं जीते, जीवन को चलाने के लिये नहीं भोगते – बल्कि भोगने के लिए ही जीते हैं। कितना भोग लें, कितना ज्यादा भोग लें – उसके लिये ही जीते हैं। जीवन का जैसे लक्ष्य ही एक है कि इन्द्रियों को कितना भर लें।)

महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति अपने ही हाथों अपनी ही वासनाओं में डूबकर नष्ट हो जाता है; अपनी ही दौड़-धूप में नष्ट हो जाता है। ऐसा नहीं कि उसे कोई सुख भी मिल पाता हो. कोई सुख नहीं मिल पाता। स्वस्थ भी नहीं हो पाता, सुख होना तो बहुत दूर है। जितना इन वासनाओं की दौड़ बढ़ती है, उतना टूटता जाता है, उतना बोझ से भरता जाता है।

यह बड़े मज़े की बात है कि गरीब आदमी को तो शायद भोजन में रस भी आता हो; अमीर आदमी को भोजन में कुछ रस नहीं आता, सिर्फ़ और नई बीमारियों के दर्शन होते हैं। चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से कम लोग मरते हैं, भोजन से लोग ज्यादा मरते हैं। पचास प्रतिशत बीमारी तो ज्यादा भोजन से ही पैदा होती है। जितना आप खाते हैं, उसमें से आधे से आपका पेट भरता है, आधे से आपके डॉक्टर का पेट भरता है। इससे कोई सुख तो उपलब्ध नहीं होता, स्वास्थ्य भी खो जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गाँव की सबसे गरीब गली में दर्ज़ी का काम करता था। इतना कमा पाता था मुश्किल से कि रोटी-रोज़ी का काम चल जाए, बच्चे पल जाएँ। मगर एक व्यसन था उसे कि हर रविवार को एक रुपया ज़रूर सात दिन में बचा लेता था लॉटरी का टिकट खरीदने के लिये। ऐसा बारह साल तक करता रहा, न कभी लॉटरी मिली और न कभी उसने सोचा कि मिलेगी। बस, यह एक आदत हो गई थी कि हर रविवार को जाकर लॉटरी की एक टिकट खरीद लेनी है। लेकिन एक रात आठ-नौ बजे, जब वह अपने काम में व्यस्त था, कपड़े काट रहा था कि दरवाज़े पर एक कार आकर रुकी। उस गली में तो कार कभी आती भी नहीं थी; बड़ी गाड़ी थी। कोई उतरा . . . दो सम्मानित व्यक्तियों ने

दरवाजे पर दस्तक दी। नसरुद्दीन ने दरवाजा खोला; उन्होंने पीठ ठोंकी नसरुद्दीन की और कहा कि 'तुम सौभाग्यशाली हो, लॉटरी मिल गई दस लाख रुपये की !'

नसरुद्दीन तो होश ही खो बैठा ! कैंची वहीं फेंकी, कपड़ों को लात मारी ! बाहर निकला, दरवाजे पर ताला लगाकर चाबी कुएँ में फेंकी ! सालभर में उस गाँव में ऐसी कोई वेश्या न थी जो नसरुद्दीन के भवन में न आई हो; ऐसी कोई शराब न थी जो उसने न पी हो; ऐसा कोई दुष्कर्म न था जो उसने न किया हो। सालभर में दस लाख रुपये उसने बर्बाद कर दिए। और साथ ही, जिसका उसे कभी ख़याल ही नहीं था, जो जिंदगी से उसके साथ था — स्वास्थ्य — वह भी बर्बाद कर दिया। क्योंकि रातभर सोने का मौका ही न मिले। रातभर नाच-गान . . शराब। सालभर बाद जब पैसा हाथ में न रहा, तब उसे ख़याल आया कि मैं भी कैसे नर्क में जी रहा था।

वापस लौटा; कुएँ मे उतरकर अपनी चाबी खोजी। दरवाजा खोला; दुकान फिर शुरू कर दी। लेकिन पुरानी आदतवश वह रविवार को एक रुपये की टिकिट खरीदता रहा। दो साल बाद फिर कार आकर रुकी; कोई दरवाजे पर उतरा — वही लोग। उन्होंने आकर फिर पीठ ठोंकी और कहा कि 'इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ, दोबारा तुझे लॉटरी का पुरस्कार मिल गया, दस लाख रुपये का ! नसरुद्दीन ने माथा पीट लिया। उसने कहा, 'माई गॉड हेव आई टु गो ऑल देट हैल — थ्रो दैट, आल देट हैल एगेन : क्या उस नर्क से फिर मुझे गुजरना पड़ेगा ?'

. . . गुजरना पड़ा होगा; क्योंकि दस लाख हाथ में आ जाएँ तो करोगे भी क्या ? लेकिन उसे अनुभव है कि वह एक वर्ष नर्क हो गया।

धन स्वर्ग तो नहीं लाता, नर्क के सब द्वार खुले छोड़ देता है। और जिनमें जरा भी उत्सुकता है, वे नर्क के द्वार में प्रविष्ट हो जाते हैं।

एषणा का अर्थ है : लस्ट फॉर लाइफ, जीवन की एषणा। और जीवन की एषणा वासना बन जाती है।

महावीर कहते हैं कि जिन्हें परम जीवन को जानना है, उन्हें अपनी ऊर्जा को खींच लेना होगा व्यर्थ की वासनाओं से। मिनिमम, जो न्यूनतम जीवन के लिए जरूरी है — उतना ही। उतना ही, जितने जीवन से साधना हो सके; उतना ही, जितना जीवन ध्यान बन सके। उतना ही, जितने से जीवन की ऊर्जा प्रवाहित रह सके और मोक्ष की तरफ़ बह सके।

महावीर यह नहीं कहते कि जीवन की धारा को तोड़ देना, लेकिन शुद्धतम कर लेना। अत्यन्त अनिवार्य पर ले आना ही त्याग है। एषणा का अर्थ हुआ — उतना ही मांगना, उतना ही लेना, उतना ही साथ रखना जितना जरूरी हो। संग्रह मत करना।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से – देखो पक्षियों की तरफ़, वे कोई संग्रह नहीं करते; देखो लिली के फूलों की तरफ़, उन्हें कल की कोई चिन्ता नहीं है । जिस दिन तुम भी पक्षियों की तरह संग्रह नहीं करोगे और फूलों की तरह कल की चिन्ता से मुक्त हो जाओगे, उस दिन तुम्हारे और परमात्मा के राज्य में कोई भी फासला नहीं होगा ।

कल की चिन्ता वासना-ग्रस्त व्यक्ति को करनी ही पड़ेगी; क्योंकि वासना के लिए भविष्य चाहिए । ध्यान करना हो तो अभी हो सकता है, भोग करना हो तो कल ही हो सकता है । भोग के लिए विस्तार चाहिए; समय चाहिए; तैयारी चाहिए; साधन चाहिए । किसी दूसरे को खोजना पड़ेगा, भोग अकेले नहीं हो सकता । ध्यान अभी हो सकता है ।

लेकिन बड़ी अद्भुत दुनिया है । लोग कहते हैं – ध्यान कल करेंगे, भोग अभी कर लें । भोग तो भविष्य में ही हो सकता है । जिन्होंने जीवन का परम सत्य जाना है, उनका कहना है कि समय की खोज ही वासना के कारण हुई है; वासना ही समय का फैलाव है । यह जो इतना भविष्य दिखलाई पड़ता है, यह हमारी वासना का फैलाव है; क्योंकि हमें इतने में पूरा होता नहीं दिखाई पड़ता । और कुछ लोग कहते हैं, और ठीक ही कहते हैं ... ।

बुद्ध ने कहा है कि लोग अगले जन्म में भी इसलिए विश्वास करते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि वासनाएँ इतनी ज्यादा हैं कि इसी जन्म में पूरी नहीं हो पाएँगी । अगला जन्म चाहिए । है या नहीं यह सवाल नहीं है, लेकिन अगला जन्म चाहिए ।

अक्सर प्रेमी पुनर्जन्म में विश्वास करने लगते हैं । प्रेमी और पुनर्जन्म में विश्वास न करें, यह जरा मुश्किल है ! मुसलमान प्रेमी भी, ईसाई प्रेमी भी पुनर्जन्म में विश्वास करने लगता है । क्योंकि उसे लगता है कि प्रेम इतने-से जीवन में पूरा कैसे हो सकता है; और जीवन चाहिए ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रेमियों ने खोजा होगा, क्योंकि उनके लिए जीवन छोटा मालूम पड़ता है और वासना बड़ी मालूम पड़ती है । इतनी बड़ी वासना के लिए इतना छोटा जीवन तर्कहीन मालूम होता है, संगत नहीं मालूम होता । अगर दुनिया में कोई भी व्यवस्था है, तो जितनी वासना उतना ही जीवन चाहिए । इसलिए अनन्त फैलाव है ।

महावीर कहते हैं : तुम रुक जाना क्षण पर, कल की भी चिन्ता आज मत लेना, नहीं तो संसार निर्मित होता है ।

आज की चिन्ता आज काफ़ी है । और आज की चिन्ता, चिन्ता नहीं होती ।

...तो, महावीर तो सुबह उठकर अपने पेट को देखेंगे कि भूख लगी है, तो ही

गाँव में भिक्षा के लिए जायेंगे। ऐसा भी नहीं है कि आदतवश रोज भिक्षा के लिए जाना है ग्यारह बजे, तो रोज भिक्षा के लिए चले जायेंगे। बारह वर्षों के साधना काल में कहा जाता है कि कुल तीन-सौ पैंसठ दिन महावीर ने भिक्षा मांगी। मतलब बारह साल में एक साल भिक्षा माँगी। कभी महीना भीख मांगने नहीं गए, कभी दो महीना नहीं गये; कभी दस दिन, कभी आठ दिन, कभी चार दिन के बाद भीख मांगने गए। कोई नियम नहीं था, कोई कसम भी नहीं थी, कोई व्रत भी नहीं लिया था। यह समझने-जैसी बात है — यह नहीं तय किया था कि दस दिन खाना नहीं खाऊँगा; क्योंकि वह दूसरी तरफ की ज्यादती है। महावीर प्रतीक्षा करेंगे, जब शरीर ही कहेगा कि अब भोजन चाहिए, तभी वे भोजन मांगने जायेंगे। और उन्होंने एक अद्भुत सूत्र खोज निकाला था, जो सिर्फ़ महावीर का है। दुनिया में किसी दूसरे सिद्ध पुरुष ने जिसकी बात नहीं कही। वह बहुत ही अनूठा है।

महावीर ने एक सूत्र निकाला था कि जब पेट में भूख लगती तो वे सोचते कि भूख लगती हैं, देखते, साक्षी बनते — भूख इतनी है कि भोजन की जरूरत है, तो भिक्षा माँगने जाते। लेकिन वे कहते — तय कर लेते वे सुबह ही कि ऐसा-ऐसी स्थिति में भिक्षा मिलेगी तो ही समझूंगा कि मेरे भाग्य में है, नहीं तो नहीं लूंगा। जैसे — उस घर के सामने एक काली गाय खड़ी होगी; जो स्त्री भिक्षा देगी वह गर्भिणी होगी, कि एक बच्चे को अपनी गोदी में लिए होगी; कि दो आदमी दरवाजे पर लड़ रहे होंगे। कुछ तय कर लेते सुबह और फिर भिक्षा माँगने निकलते। अगर उस दिन उस-जैसी कुछ स्थिति बन जाती तो भिक्षा ले लेते, नहीं बनती तो वापस लौट आते। कहते कि मेरे भाग्य में नहीं है। शरीर को भूख लगी है जरूर, लेकिन मेरी नियति में नहीं है, मेरे पिछले कर्मों का हिस्सा नहीं है। भूख मेरी नियति में है तो आज मैं भूखा रहूँगा।

आश्चर्य है कि बारह वर्ष में तीन-सौ पैंसठ बार भी मिल गई भिक्षा। लेकिन महावीर निश्चित लौट आते वापिस कि जो भाग्य में नहीं है, वह नहीं; जो नियति में नहीं है, वह नहीं लेना है। इसका मतलब यह हुआ कि मैं अब कर्ता ही न रहा, अब मैं भीख माँगने नहीं जा रहा हूँ। अगर यह पूरा अस्तित्व मुझे जिलाए रखना चाहता है आज, तो भिक्षा का इन्तजाम जुटा देगा, मेरी शर्त पूरी कर देगा। नहीं शर्त पूरी करता है तो इसका मतलब हुआ कि अस्तित्व को आज मुझे भोजन देने की कोई जरूरत नहीं है।

और बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर रुग्ण नहीं हुए; महावीर दीन-हीन नहीं हो गये इन बारह वर्षों में; सूख नहीं गये। इतना संतोषी व्यक्ति किसी और ही दिशा से भोजन को पाना शुरू कर देता है। इतने संतुष्ट व्यक्ति को, जिसने नियति पर सब छोड़ दिया — भोजन भी, जैसे पूरा अस्तित्व अपने हाथों में सम्हाल लेता है। और अगर अस्तित्व चाँद-तारों को चला सकता है, फूलों को

खिला सकता है, वृक्षों को बड़ा कर सकता है, नदियों को बहा सकता है – अगर इतना बड़ा आयोजन अस्तित्व करता है, तो महावीर के छोटे-से पेट और शरीर की चिन्ता नहीं कर सकता, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है।

. . . तो महावीर कहते हैं कि अगर अस्तित्व चलाना चाहता है तो ही मैं चलने को राजी हूँ, अन्यथा मेरी कोई अपनी वासना चलने की नहीं है।

आप चलने की वासना से जब तक जीते हैं तब तक संसार को निर्मित करते हैं। जिस दिन आप ठहर जाते हैं, संसार की धारा जहाँ ले जाती है वहाँ चले जाते हैं, उस दिन आप मुक्त होने लगते हैं।

एषणा . भोजन, वस्त्र, सुरक्षा सब को सीमित कर देना है अन्तिम बिन्दु पर– कि उसके पार मृत्यु है, उसके इस पार जीवन है – ठीक मध्य में।

चौथा – 'आदान-निक्षेप'। लोग जो दें, उसमे भी सीमा रखनी, और होश रखना।

सन्यासी को अक्सर लोग देने को उत्सुक हो जाते हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, जिसने सब छोड़ा, एक अर्थ मे सभी लोग उसको देने के लिये आतुर हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है, आदान-निक्षेप : सिर्फ इसलिये कि किसी ने दिया, मत ले लेना; सिर्फ इसलिए कि मिल रहा था, क्या करें – हमने तो कुछ माँगा न था, हमने कुछ कहा न था. . बिना कहे मिला, बिना माँगे मिला! तो भी महावीर कहते हैं कि तुम्हारी जरूरत हो तो ही लेना, अन्यथा धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना। मत लेना।

और पाँचवाँ है – 'उच्चार' या 'उत्सर्ग'। यह बहुत बहुमूल्य है। महावीरने कहा है कि किसी को दुख हो, किसी को पीड़ा हो, दुर्गन्ध आए, किसी जीव का जीवन नष्ट हो – ऐसी जगह मल-मूत्र मत छोड़ना। ऐसी जगह खोजना साफ़-सुथरी, सीधी-सपाट, और देखकर होशपूर्वक मल-मूत्र छोड़ना कि कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई जीवजन्तु आपके मल-मूत्र में दबकर तो नहीं मर जायेगा। ऐसी जगह खोजना जहाँ किसी को आपके मल-मूत्र से कठिनाई तो न होगी; कोई देखकर पीड़ा तो अनुभव नहीं करेगा, कोई दुर्गन्ध से तो परेशान नहीं होगा।

यह तो इसका मोटा अर्थ है, जो जैन साधु पकड़े हुए हैं; इसका सूक्ष्म अर्थ बहुत गहरा है, जिस पर पकड़ खो गई है। मल-मूत्र ही केवल मल-मूत्र नहीं है, आप जो भी अपने बाहर छोड़ते हैं वह सभी मल-मूत्र है। आपकी सभी इन्द्रियो से जो व्यर्थ हो गया है, वह बाहर छूटता है। आपको पता नहीं कि आपकी आँख भी कचरा बाहर फेंकती है; आपके हाथ का स्पर्श भी कचरा बाहर फेंकता है; आपके

कान, आपकी जीभ — सब कचरा बाहर फेंकते हैं। असल में जो भी आप भीतर लेते हैं, उस सब को किसी-न-किसी रूप में बाहर फेंकना पड़ता है।

जो भी बाहर से आया है, उसे बाहर फेंकना पड़ेगा। आपने भोजन किया : तो या तो वह पच जायेगा, खून बन जाएगा, मल होकर निकल जायेगा — नहीं पचा तो वमन हो जाएगी। लेकिन जो भी बाहर से लिया है, वह बाहर जायेगा। जो भीतर का है वही भीतर रहेगा, बाकी तो सब बाहर जायेगा। आपने शास्त्र पढ़ लिया अगर पच गया तो आपका जीवन बन जायेगा, अगर नहीं पचा तो आप किसी की खोपड़ी पर उसे मल-मूत्र की तरह छोड़ेंगे। आपने कुछ भी भोगा : अगर पच गया तो ठीक, नहीं पचा तो आपका भोग भी कचरे की तरह चारों तरफ़ दिखाई पड़ेगा।

आप पूरे समय अपने में रेडिएट कर रहे हैं, विद्युत की तरंगें, जो आपके भीतर कचरा हो गई हैं। तो महावीर कहते हैं कि अपने कचरे को, अपने मल-मूत्र को — इसमें सभी कुछ सम्मिलित है, जो आपके भीतर गया और जो बाहर फेंकना पड़ेगा। सभी कुछ सम्मिलित है : आपके शब्द, आपका शास्त्र, आपका ज्ञान; आपने आँखों से जो पिया, कानों से जो सुना, नाक से जो गन्ध ली — वह सब बाहर फेंकी जायेगी। इससे दूसरे को कोई भी पीड़ा और कष्ट न हो, इससे दूसरे की हिंसा न हो।

इसको महावीर ने 'उच्चार-समिति' कहा है : जो भी बाहर जाए, उससे किसी को पीड़ा न हो।

अब यह बड़े मजे की बात है, और कई दफा कितनी जटिल हो जाती है। जैन-साधु किसी को छुएगा नहीं। मगर वह इसलिए नहीं छुएगा कि कहीं दूसरे को छूने से वह अपवित्र न हो जाए! महावीर का प्रयोजन बिलकुल दूसरा है। उनका प्रयोजन यह है कि दूसरों को इसलिए मत छूना कि कहीं दूसरा तुम्हारी अपवित्रता से न भर जाए। मगर आदमी का अहंकार बड़ा कुशल है। वह उसमें से रास्ते निकाल लेता है। जैन साधु सम्हलकर चलता है कि कोई छू न जाए। वह सोच रहा है कि वह किसी पापी को छू ले तो कहीं अपवित्र न हो जाए।

नहीं, महावीर कहते हैं कि दूसरे को छूते वक्त आपके हाथ से जो ऊर्जा जा रही है, शरीर से जो ऊर्जा जा रही है, वह दूसरे को दुख, कष्ट, हानि न पहुँचाए। ये हानियाँ कई तरह की हो सकती हैं।

जैन-साधु स्त्री को नहीं छुएगा, इस कारण कि कहीं स्त्री की वासना उसमें प्रवेश न कर जाए। यह मूढ़तापूर्ण बात है। साधु को तो कम-से-कम इस स्थिति में होना चाहिए कि दूसरे उसे प्रभावित न कर सकें। कारण बिलकुल दूसरा है। महावीर

की नजर बिलकुल दूसरी है। महावीर कहते हैं कि स्त्री को इसलिये मत छूना कि कहीं तुम्हारी वासना उसे सजग न कर दे, कहीं तुम्हारी वासना उसमें प्रविष्ट होकर उसकी पीड़ा और हिंसा का कारण न बन जाए। महावीर की पूरी चिन्ता एक है कि तुम्हारे कारण किसी को किसी तरह की हानि और दुख और पीड़ा का उपाय न हो – तुम अपने से जो भी छोड़ना, वह इस तरह छोड़ना।

यह अगर ठीक-से पकड़ा जाये तो बहुमूल्य है, अगर क्षुद्रता से पकड़ा जाए तो इससे बड़ी मजाक की स्थिति पैदा हो जाती है, हास्यास्पद हो जाता है। जैन साधुओं का एक वर्ग है जो मुँह पर पट्टी बाँधे हुए है। वह इसी उच्चार-समिति के कारण कि कहीं श्वास से कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई जीव-जन्तु न मर जाए।

बात तो ठीक है ...! बात तो ठीक है, लेकिन हास्यास्पद हो गई है। मज़ाक़ कर लिया, क्षुद्र पर ले आए चीजों को। तब तो हिलने-डुलने से भी कोई मर रहा है। श्वास लेने से भी कोई मर ही रहा है, एक श्वास में कोई एक लाख कीटाणु नष्ट हो जाते हैं – महावीर के हिसाब से नहीं, विज्ञान के हिसाब से। वह तो नष्ट हो ही रहे हैं। कागज की या कपड़े की पट्टी उनको रोक नहीं सकती, वे इतने सूक्ष्म हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि आँखों से देखे नहीं जा सकते, सिर्फ़ खुर्दबीन से देखे जा सकते हैं। इसीलिये तो लाखों एक श्वास में नष्ट हो जाते हैं। वे तो नष्ट हो ही रहे हैं, लेकिन एक मज़ाक कर लिया। मुह पर पट्टी बाध कर आदमी समझ रहा है – सब ठीक हो गया, समिति पूरी हो गई। ...समिति को बहुत क्षुद्र जगह ले आए।

बुरा नहीं है, पट्टी बांध लेने में कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन पट्टी बाध लेने को बड़ा गौरव समझ लेना नासमझी है। बाध लेना ठीक है, जितनी कम हिंसा हो उतना ठीक है। लेकिन इसे साधना समझ लेना या सिद्धि समझ लेना, और समझ लेना कि कोई बहुत ऊँची बात हो गई; और जो नाक पर पट्टी नहीं बाँधे हुए है वे पापी हैं, नरक जाएँगे .... भ्रान्ति हो गई।

'ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार या उत्सर्ग – ये पाँच समितियाँ हैं। तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति – ये तीन गुप्तियाँ हैं।'

गुप्ति का अर्थ है : सिकोड़ना और गुप्त रखना। 'मनोगुप्ति' का अर्थ है, अपने मन के फैलाव को सिकोड़ना। आपका मन बड़ा फैला हुआ है। यह आकाश भी छोटा है, इससे भी ज्यादा फैला हुआ है। आप फैलाते रहते हैं मन को। बम्बई में रहते होंगे, लेकिन मन न्यूयार्क में घूमता रहता है; कि लन्दन में घूमता रहता है कि कब यात्रा पर निकल जाएँ। मन फैलता चला जाता है।

जापान की एक कम्पनी १९७५ के लिए चाँद पर जाने के टिकिट बेच रही है। काफ़ी दाम हैं। लेकिन सभी लोगों को मिल नहीं रही, क्यू लग गया है। आदमी का मन..! अभी १९७५ को देर है। आप बचेंगे भी कि नहीं बचेंगे। और चाँद पर कुछ है नहीं, कुछ है भी नहीं देखने योग्य। लेकिन, फिर भी चाँद पर जाने का मन है।

मन फैलना चाहता है। मन जितना फैल जाए उतना रस लेता है। तो महावीर कहते हैं, मन को सिकोड़ना। उसे इतना सिकोड़ लेना कि वह सिर्फ़ तुम्हारे हृदय में रह जाए, कहीं भी उसका फैलाव न हो। किसी वासना में, किसी इच्छा में, किसी एषणा में उसको मत फैलाना। और जिस दिन मन शुद्ध हृदय में ठहर जाता है, उस दिन अद्भुत आनन्द का जन्म होता है।

नर्क है हमारे मन का फैलाव, और आप फैलाए चले जाते हैं। शेख़चिल्ली की कहानी आपने पढ़ी होगी, जो फैलाए चला जाता है अपने मन को और बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। शेख़चिल्ली दूध बेचने जा रहा है। सिर पर दूध की मटकी रखे हुए है; और ख़याल आता है कि दूध अगर बिक गया तो चार आने मिलेंगे। और अगर ऐसा ही होता रहा तो आधे साल में एक भैंस अपनी ख़रीद लूंगा। अगर भैंस ख़रीद ली, उसके बच्चे होंगे। बढ़ता जाएगा धन, फिर शादी कर लूगा। शादी हो जायेगी, बच्चे होंगे। छोटा बच्चा किलकारी मारेगा और गोदी में बैठेगा, दाढी खींचेगा और कहेगा, 'बाबा!'

...गिर न जाये बच्चा, उसे संभालने को उसने हाथ नीचे किया. वह जो सिर पर मटकी थी, वह नीचे गिर कर फूट गई!.. वे चार आने भी हाथ से गये!

मगर यह शेख़चिल्ली की कहानी नहीं है, आदमी के मन की कहानी है। मन शेख़चिल्ली है। आपका सबका मन हिसाब लगा रहा है: ऐसा हो जायेगा, फिर ऐसा हो जाएगा, फिर ऐसा होता चला जायेगा। और डर यह है कि कहीं मटकी न फूट जाये। अक्सर फूट जाती है। अन्त में जीवन के आदमी पाता है कि मटकी फूट गई! चार आने हाथ के भी खो गये!

महावीर कहते है, मन को सिकोड़ना। जितना फैला हुआ मन उतना दुख, यह सूत्र है। जितना सिकुड़ा हुआ मन, उतना सुख। मन अगर बिलकुल शून्य पर आ जाये तो ध्यान हो जाता है। जब मन इतना सिकुड़ जाता है कि कुछ भी सिकोड़ने को बचता नहीं: बिलकुल सेन्टर पर, केन्द्र पर आ गया; सब किरणें सिकुड़ कर आ गईं वापिस; अपने ही घोंसले में लौट आया मन — उसको महावीर कहते हैं 'मनोगुप्ति'।

'वचनगुप्ति'..। शब्दों को भी मत फैलाना, क्योंकि शब्द जाल में डाल देते हैं। किसी से बोले कि उपद्रव शुरू हुआ, सम्बन्ध निर्मित हुआ। बोलने का अर्थ है कि दूसरे तक पहुँचे। बोलना एक सेतु है; बोलना दूसरे से सम्बन्ध निर्माण करना है। झंझट

होगी। आपने अच्छी ही बात कही हो तो भी जरूरी नहीं है कि दूसरा अच्छी ही तरह ले, दूसरा अपने ढंग से लेगा।

बोल कर उपद्रव बनता है। आप खयाल करें अपनी जिन्दगी में : आपने जितने उपद्रव, झगड़े-झाँसे खड़े किये होंगे, वे सब बोल कर किये होंगे। काश, आप चुप रह जाते तो शायद जिंदगी और ढंग की होती। तो जब बोलना ऐसा लगे कि किसी के हित में नहीं है, तब रोक लेना। लेकिन हम बोले चले जाते हैं, कुछ भी कहे चले जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन से सफ़र कर रहा है। पास में ही एक आदमी बैठा हुआ शान्ति से अपना अख़बार पढ़ रहा है। लेकिन मुल्ला बेचैन है कि अखबार अलग करे तो कुछ बातचीत हो।

ट्रेन में लोग जल्दी ही बातचीत शुरू कर देते हैं। और ऐसी बातें कह देते हैं अजनबियों से, जो उन्होंने अपने घर में अपनी पत्नी या अपने पति से भी न कही होती। अजनबियों से कन्फेशन शुरू कर देते हैं, क्योंकि बोलने की बेचैनी है। गाड़ी में खाली बैठे-बैठे बेचैनी होती है, इसलिये बातें शुरू कर देते हैं।

...नसरुद्दीन ने पूछा कि 'आप, आप मुसलमान हैं क्या? मुसलमान मालूम होते हैं।' उस आदमी ने सिर्फ़ अखबार से नज़र उठाकर कहा कि 'नहीं, मैं मुसलमान नहीं हूँ।' वह थोड़ा डरा भी कि यह आदमी मुसलमान दिखता है — मुसलमान हूँ, ऐसा कहूँ भी, या मुसलमान होता तो झंझट होती, ये फिर आगे बढ़ाता बात को। तो मामला खत्म हो गया। वह आदमी मुसलमान है भी नहीं। वह फिर अपना अखबार पढ़ने लगा। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि 'बिलकुल निश्चित, निश्चित ही मुसलमान नहीं हो?'

उस आदमी ने कहा कि 'कह तो दिया आपसे, इसमें निश्चय की क्या बात है? मुसलमान नहीं हूँ।' नसरुद्दीन फिर थोड़ी देर में बोला, 'एब्सोल्यूटली? बिलकुल पक्का?' उस आदमी ने झंझट छुड़ाने के लिए, कि अखबार न पढ़ने देगा यह आदमी, कहा कि 'हाँ भाई हूँ, गलती हो गई जो कह दिया कि नहीं हूँ।' तो नसरुद्दीनने कहा, 'फनी, यू डोन्ट लुक लाइक ए मोहम्डन — मुसलमान-जैसे दिखाई नहीं पड़ते।'

इसी ने उसको 'मुसलमान हूँ' — ऐसा कहलवा दिया — और अब कह रहा है कि आप मुसलमान-जैसे दिखाई नहीं पड़ते।

महावीर कहते हैं कि वचन व्यर्थ बाहर न जाए। और सार्थक कितने वचन हैं? अगर आप चौबीस घण्टे हिसाब रखेंगे तो आप पाएंगे कि मुश्किल से दस-पाँच वाक्य से काम चल जाता है; गूँगे रहने से भी काम चल जाता है। लेकिन बोले जा रहे हैं। गूँगे तक बोले जाते हैं; गूँगों तक को भी चैन नहीं है।

मैंने सुना है कि एक फैक्टरी में गूंगी स्त्रियों को काम देने का मालिक ने इन्तजाम किया। काम ऐसा था कि हाथ से ही करने का था। फिर कुछ दिन बाद एक पुरुष को भी, जो गूंगा था, उसी डिपार्टमेन्ट में भेज दिया कि ठीक रहेगा – 'वहाँ इतने गूंगे हैं, तुम भी उनके साथ रहकर काम करो।' उसने तीन दिन बाद आकर कागज पर लिख कर कहा कि 'मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार कर ले।' मालिक ने पूछा, 'क्या बात है?' तो उस गूंगे ने लिखकर कहा कि 'वे औरतें बहुत बातें करती हैं। मेरा सिर खा गई हैं।' मालिक ने कहा, 'लेकिन वे तो सब गूंगी हैं!' तो उस गूंगे ने लिखा, 'लेकिन गूंगी होने से क्या होता है? वे सब इशारा कर रही हैं एक-दूसरे को, मैं अकेला वहाँ फस गया हूँ!'

औरतें गूंगी भी हों तो क्या फर्क पड़ता है, औरतें ही है। उसने कहा, 'वहाँ तो मेरी जान ही निकल जाएगी। और मैं तो समझता हूँ उनके इशारे का मतलब क्या है, क्योंकि मैं भी गूंगा हूँ।'

...बड़ी बातचीत हो रही है। गूंगे तक बातचीत में लगे हैं। तो हम जो बोलनेवाले हैं, महावीर कहते हैं, उनको धीरे-धीरे गूंगे होने की कला सीखनी चाहिये।

वचन को रोक लेना 'वचनगुप्ति' है। सम्हालना है भीतर; जल्दी नहीं करनी है। व्यर्थ को तो रोक ही लेना है – सार्थक को भी भीतर रोकना है, ताकि वह बीज की तरह भूमि में रुका रह जाए और अंकुरित हो सके। पर हम सार्थक-व्यर्थ सब फेंके जा रहे हैं, उलीचे जा रहे हैं।

और तीसरा महावीर कहते हैं, 'कायगुप्ति।' शरीर को भी सिकोड़ना है: यह एक प्रक्रिया है महावीर की, ख़ास। चलते, उठते, बैठते – ऐसे चलना है जैसे शरीर सिकुड़ता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।

आप जानकर हैरान होंगे कि शरीर का विस्तार आपकी वासना का विस्तार है; शरीर का विस्तार आपकी कल्पना पर निर्भर है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन मुल्कों में लोग लंबे होते हैं, उनमें वे लंबे होते चले जाते हैं। उसका कारण वंशानुगत तो है ही, लेकिन आसपास लंबे लोगों को देखकर बच्चों की लंबे होने की कल्पना प्रगाढ़ होती है।

बर्नार्ड शॉ मरने के कुछ वर्ष पहले लन्दन के आसपास के सब मरघटों में गया, यह देखने कि किस गाँव में सबसे ज्यादा लम्बी उम्र तक लोग जीते हैं। आख़िर उसने एक गाँव खोज लिया, जिसके मरघट की एक कब्र पर पत्थर लगा हुआ था कि यह आदमी १७ वीं सदी में जन्मा और १८ वी सदी में, कम उम्र में ही, सौ वर्ष बाद मर गया। बर्नार्ड शॉ ने उसी गाँव में रहने का तय कर लिया। उसके मित्रों ने पूछा, 'तुम्हारा मतलब क्या है?' उसने कहा, 'जिस गाँव में लोग सोचते हैं कि सौ वर्ष

में मरना कम उम्र में मरना है, उस गाँव में ज्यादा जीने का उपाय है, कल्पना को फैलाव है।'

अगर पुराने ऋषि बच्चों को आशीर्वाद देते थे कि 'शतायु हो! सौ वर्ष तक जिओ—' तो उनके आशीर्वाद से कोई सौ वर्ष तक नहीं जी सकता। लेकिन जहाँ सब बड़े-बूढ़े कह रहे हों कि सौ वर्ष तक जिओ, वहाँ बच्चे की कल्पना सौ वर्ष तक जीने की प्रगाढ़ हो जाती है। वह कल्पना शरीर को खींचती है।

कई बार ज्योतिषी आदमियों को मार देते हैं। वे कह देते हैं कि 'बस, अब तो अन्तिम समय आ गया है, दो ही साल में आपका मरना है।' ज्योतिषी कह रहा है, ये इसलिए नहीं कि यह आदमी दो साल में मरने ही वाला था—बल्कि यह आदमी मर जायेगा दो साल में, क्योंकि ज्योतिषी ने कहा है। अब यह दो साल सिर्फ़ सोचता ही रहेगा कि मेरे, अब दिन करीब आ रहे हैं। वह सिकुड़ने लगेगा, भीतर से मरने लगेगा; मरने की तैयारी जुटाने लगेगा और मर भी जायेगा।

भविष्यवाणियाँ मृत्यु की सफल हो जाती हैं, क्योंकि भविष्यवाणियाँ कल्पना को गति दे देती हैं। आपका मन बड़ा शक्तिशाली है। तो महावीर कहते हैं, 'कायगुप्ति'—शरीर को सिकोड़ना और शरीर को ऐसा अनुभव करना कि छोटा होता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।

दो प्रयोग हैं। एक प्रयोग ब्रह्मवादियों ने, शंकर ने, उपनिषद् के ऋषियों ने किया है। वे कहते हैं, 'शरीर को फैलाना. . .फैलाना. . .फैलाना—इतना फैलाने की कल्पना करना कि सारा ब्रह्माण्ड शरीर में समा जाए। जिस दिन ऐसा अनुभव होने लगे कि चाँद तारे मेरे भीतर चलने लगे, सूर्य मेरे भीतर उगने लगा, वृक्ष मेरे भीतर खिलने लगे सारा जगत् मेरे भीतर चल रहा है—उस दिन ब्रह्म का अनुभव हो जायेगा।

यह भी सच है। अगर इतना फैलाव हो जाये कि मैं ही बचूँ और सब मेरे भीतर समा जाये, तो भी व्यक्ति सत्य को उपलब्ध हो जाता है; क्योंकि क्षुद्र अहंकार से मुक्त हो जाता है।

दूसरा उपाय है: मैं को इतना सिकोड़ते जाना, इतना सिकोड़ते जाना; शरीर को सम्भाल के छोटा करते जाना. . .छोटा करते जाना—शरीर इतना छोटा हो जाये कि मैं भी उसके भीतर न रह सकूँ; इतना छोटा हो जाए, इतना एटॉमिक हो जाय कि मैं खुद भी उसके भीतर न रह सकूँ; जगह ही न बचे और मैं उसके बाहर छिटक जाऊँ।

महावीर कायगुप्ति पर भरोसा करते हैं। ये दोनों प्रयोग एक-से हैं, विपरीत दिशाओं से। महावीर कहते हैं: छोटा. . छोटा. . शरीर को छोटा

मानते जाना। एक ऐसी जगह आ जाती है, जहाँ शरीर इतना छोटा हो जाता है कि आपको बेचैनी लगेगी कि इसके भीतर मैं हो कैसे सकता हूँ ? अगर यह बेचैनी बढ़ गयी और शरीर को आप छोटा ही करते गये, एटॉमिक कर लिया, अणु की तरह हो गया – आप छिटक कर बाहर हो जायेंगे; वही स्थिति उपलब्ध हो जायेगी जो विराट हो जाने पर होती है।

या तो शून्य की तरह छोटे हो जायें, या ब्रह्म की तरह विराट् हो जायें।

'पाँच समितियाँ चारित्र की दया आदि प्रवृत्तियों के काम में आती हैं, और तीन गुप्तियाँ सब प्रकार के अशुभ व्यापारो से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।'

'. . . जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है, वह शीघ्र ही अखिल ससार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।'

मुक्ति के सूत्र है. . । जहाँ-जहाँ हम बँधे है वहाँ-वहाँ से एक-एक शृंखला को तोड़ देने की प्रक्रियाएँ है। इन्हें थोड़ा प्रयोग करें और देखें क्योंकि मेरे कहने से समझ में नही आएगा। कोई भी एक छोटा प्रयोग इन आठ में से करके देखें, अनूठा अनुभव होगा। इतना ही सोचने लगे कि शरीर छोटा होता जा रहा है। चलते, उठते, बैठते – शरीर छोटा होता जा रहा है; सोते समय भी सोचते रहें कि शरीर छोटा होता जा रहा है। आप चकित हो जायेंगे कि शरीर के इस छोटे होने की धारणा के पैदा होते ही आपके शरीर के बहुत-से व्यापार बदल जायेंगे; क्योंकि वे आपके शरीर की जो पुरानी धारणा थी, उसके साथ जुड़े थे। धारणा के गिरते ही वे व्यापार गिर जायेंगे।

अगर आप इन आठ में एक भी प्रयोग से करने में थोड़ा स्वाद ले लें, तो बाकी सात भी आपको करने-जैसे मालूम होने लगेंगे। कोई भी एक प्रयोग इक्कीस दिन के लिए चुन लें। शरीर को छोटा करने का प्रयोग बड़ा सरल है। ख़याल करते जायें और आप पायेंगे कि शरीर की धारणा बदली, आप छोटे होने लगे – इतने छोटे होने लगे कि आप हैरान हो जायेंगे कि आपका व्यवहार लोगों से बदलने लगा।

अब एक आदमी आपको कहता है कि 'तुम क्या हो, कुछ भी नहीं' – आपको बिलकुल ठीक जंचेगा। यही बात अगर इसने पहले कही होती कि 'तुम क्या हो, कुछ भी नहीं; क्षुद्र, ना-कुछ – आप अकड़कर लड़ने खड़े हो गये होते। अगर आपका शरीर सिकुड़ रहा है तो आप कहेंगे, 'बिलकुल ठीक ही कह रहे हो कि मैं बिलकुल क्षुद्र हूँ।' और अगर आप ऐसा कह सकें कि 'मैं बिलकुल क्षुद्र हूँ', तो शायद वह आदमी भी धारणा बदलने को मजबूर हो जाए; क्योंकि जो क्षुद्र है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि क्षुद्र हूँ; जो छोटा है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि मैं

छोटा हूँ। जो अज्ञानी है, वह राजी नहीं होता कि मैं अज्ञानी हूँ; वह कहता है, मैं ज्ञानी हूँ। हम सदा विपरीत की घोषणा करते हैं।

आप छोट होते जाएँ, सिकुड़ते जाएँ शरीर के साथ-साथ, या मन को छोटा करें, सिकोड़ते जाएँ, मत फैलने दें – और आप पाएँगे कि धीरे-धीरे दुनिया दूसरी होने लगी; आपका आकार बदलने लगा और दुनिया की आकृति बदलने लगी।

दुनिया तो यही-की-यही रहती है – अमुक्त को, मुक्त को – लेकिन मुक्त बदल जाता है, इसलिए संसार बदल जाता है। संसार ही मोक्ष हो जाता है, अगर आप भीतर मुक्त हैं। जैसे आप हैं, अगर भूल-चूक से कहीं मोक्ष में प्रवेश कर जाएँ, कोई रिश्वत दे दें कहीं, किसी गुरु-कृपा से कही मोक्ष में आप घुस जाएँ, तो आपको वहाँ संसार के सिवाय कुछ भी दिखाई नही पड़ेगा। इसलिए मोक्ष मे रिश्वत देकर जाने का कोई उपाय नही है। आप चले भी जायँ तो आपको वहाँ संसार ही दिखाई पड़ेगा। आप वहाँ भी संसार निर्मित कर लेंगे। आप ससार हैं; आप ही मोक्ष है।

पूज्य-सूत्र

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ३१ अगस्त, १९७३

आयारमट्ठा विणयं पउंजे,
सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो,
गुरु तु नासाययई स पुज्जो ।।
अन्नायउंछं चरई विसुद्धं,
जवणट्ठया समुयाण च निच्चं ।
अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा,
लद्धुं न विकत्थई स पुज्जो ।।
संथारसेज्जासणभत्तपाणे
अप्पिच्छया अइलाभे वि सन्ते ।
जो एवमप्पाणऽभितोसएज्जा,
संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।।
गुणेहि साहू अगुणेहि साहू,
गिण्हाहि साहू गुण मुंच साहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ।।

जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु वचनों को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है ।

जो केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उन्छ वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नहीं होता और मिल जाने पर प्रसन्न नहीं होता, वही पूज्य है ।

जो सस्तारक, शय्या, आसन और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाये रखता है, वही पूज्य है ।

गुणों से ही मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु । अतः हे मुमुक्षु ! सद्गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़ । जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है ।

मैंने सुना है, एक अँधेरी रात में भयंकर आँधी-तूफान उठा, साथ में भूकम्प के धक्के भी आये। मुल्ला नसरुद्दीन का पूरा मकान गिर गया। कुछ बचा भी नही, सब नष्ट हो गया। नसरुद्दीन, लेकिन बिना चोट खाये बाहर भागकर आ गया। घबड़ा तो बहुत गया, हाथ-पैर उसके कांपते थे, लेकिन हाथ में एक शराब की बोतल बचाये हुए बाहर आ गया। जो बचाने योग्य उसे लगा, उस गिरते हुए टूटते घर में, वह शराब की बोतल थी!

बाहर आकर बैठ गया; आंख से आँसू बहने लगे। सब जीवन की कमाई नष्ट हो गयी। पड़ोस के लोग आ गये। पड़ोस के ही एक चिकित्सक ने आकर नसरुद्दीन को कहा कि 'थोड़ी-सी ये शराब ले लो तो तुम्हारे स्नायुओं को थोड़ी ताकत मिले। तुम बहुत घबड़ा गये हो, थोड़े आश्वस्त हो सकते हो।'

नसरुद्दीन ने कहा– 'नथिंग डूइंग, देट आई एम सेविंग फॉर सम इमरजेन्सी! यह जो शराब की बोतल है, किसी दुर्घटना के लिए है; इसे किसी आपत्कालीन सकटकालीन स्थिति के लिए बचा रहा हूँ!'

आप भी जीवन की निधि को किसलिए बचा रहे है? जीवन की ऊर्जा को किसलिए बचा रहे है? कल पर टाल रहे है, परसों पर टाल रहे है और दुर्घटना अभी घट रही है। प्रतिपल जीवन मृत्यु में फंसा है, और जिसे आप जीवन कहते हैं; वह सिवाय मरने के और कुछ भी नहीं है।

नीत्से ने कहा है कि जीवन अपना अतिक्रमण कर सके, सेल्फ ट्रान्सेन्डेन्स, तो ही जीवन है। जो जीवन अपने ही भीतर घूम-घूम कर नष्ट हो जाये, वह जीवन नहीं है। जब मनुष्य स्वयं को पार करता है, जिन क्षणों में पार होता है, उन्ही क्षणों में जीवन की वास्तविक परम अनुभूति उपलब्ध होती है। जब आप अपने से ऊपर उठते हैं, तभी आप परमात्मा के निकट सरकते है। जितना ही कोई व्यक्ति स्वयं के पार जाने लगता है, उतना ही प्रभु के निकट पहुँचने लगता है। लेकिन आप जीवन की ऊर्जा का क्या उपयोग कर रहे हैं? किस संकट के लिये बचा रहे हैं? संकट अभी है – इसी क्षण। और जिसे आप जीवन कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, उसे कैसे जीवन कह पाते है। सिवाय दुख, संताप और पीड़ा के वहाँ कुछ भी नहीं है। न कोई आनंद का संगीत है; न कोई अस्तित्व की सुगन्ध है; न कोई शान्ति का अनुभव है। न किसी समाधि के फूल खिलते हैं और न किसी परमात्मा का साक्षात्कार

होता है। क्षुद्र में व्यतीत होता जीवन... उसे जीवन कहना ही शायद उचित नहीं।

प्रथम महायुद्ध के पहले जब ऐडोल्फ हिटलर दुनिया की सारी ताकतों का मनोबल तोड़ने में लगा था, उनका संकल्प तोड़ने में लगा था, तब इंग्लैंड का एक बड़ा राजनीतिज्ञ उससे मिलने गया – एक बड़ा कूटनीतिज्ञ। सातवीं मंजिल पर हिटलर अपने ऑफिस में बैठकर उससे बात कर रहा था। और हिटलर ने उससे कहा कि 'ध्यान रखो, जाकर अपने मुल्क में कह देना कि जर्मनी से उलझने में लाभ नहीं है। मेरे पास ऐसे सैनिक है, जो मेरे इशारे पर जीवन को ऐसे फेंक दे सकते हैं, जैसे कोई हाथ से कचरे को फेंक दे।'

तीन सैनिक द्वार पर खड़े थे। इतना कहकर ऐडोल्फ हिटलर ने पहले सैनिक से कहा कि 'खिड़की से कूद जा।' वह पहला सैनिक दौड़ा। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ तो समझ ही नहीं पाया, वह खिड़की से छलांग लगा गया। उसने यह भी नही पूछा, 'क्यो?' अंग्रेज राजनीतिज्ञ की छाती कांपने लगी। वह बहुत परेशान हो गया, उसे पसीना आ गया। और हिटलर ने कहा, 'शायद इतने से तुझे भरोसा न हो।' दूसरे सैनिक को कहा, 'खिड़की से कूद जा!' दूसरा सैनिक भी खिड़की से कूद गया! हिटलर ने कहा कि 'शायद अभी भी भरोसा नहीं आया।' और तीसरे सैनिक से कहा, 'तू भी खिड़की से कूद जा!' तब तक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने हिम्मत जुटा ली। वह भागा, खिड़की से कूदते सैनिक को बाँह पकड़ के रोका और कहा, 'पागल हो तुम? जीवन को ऐसे खोने की क्या आतुरता है?' उस सैनिक ने कहा, 'यू कॉल दिस लाइफ? इसे तुम जीवन कहते हो?'

जिसे हम जीवन कहते हैं, वह भी जीवन नहीं है। लेकिन हम उसे ही जानते हैं, उसके अतिरिक्त जीवन का हमें कोई अनुभव नहीं है। अगर हमें थोड़ी-सी भी प्रतीति हो जाये वास्तविक जीवन की, तो इस जीवन को हम भी वैसे ही छोड़ने को राजी हो जायेंगे, जैसे ऐडोल्फ हिटलर का सैनिक उसके नीचे उसकी ज्यादतियों से परेशान होकर जीवन को छोड़ने को उत्सुक है, आतुर है। लेकिन हमें किसी और जीवन का अनुभव न हो तो बड़ी कठिनाई है। जो है, उसे ही हम सब-कुछ मानकर जो लेते हैं। क्षुद्र सब-कुछ मालूम होता रहता है क्योंकि विराट् का, कोई स्वाद नहीं मिलता। और हमने इस ढंग की व्यवस्था कर ली है कि विराट् का स्वाद मिल भी नहीं सकता। हमने कोई जगह भी नहीं छोड़ी कि विराट् हम में उतर सके।

महावीर का यह सूत्र कहता है – कौन पूज्य है। पूज्य वही है जो विराट् को उतरने की अपने में जगह दे। क्षुद्र वही है, अपूज्य वही है, जो सब तरफ से अपने को बन्द कर ले और अपनी क्षुद्रता में ही डूब मरे। लेकिन हम तो पूजते भी उन्हीं को हैं, जो अपनी क्षुद्रता को ही जीवन का शिखर बना लेते हैं। हम पूजते हो उनको हैं, जो अपने अहंकार को गौरीशंकर बना लेते हैं। पूजते हैं हम राजनीतिज्ञ को;

पूजते हैं हम शक्तिशालियों को; पूजते हैं हम अभिनेताओं को। हमारे मन में पूज्य की धारणा भी बड़ी अजीब है। जहाँ पूज्य-जैसा कुछ भी नहीं, जहाँ विराट् का कोई संस्पर्श नहीं हुआ है जीवन में, जहाँ अँधेरे हृदय में कोई प्रकाश की किरण नहीं उतरी है – वहाँ हमारी पूजा है।

समझ लेना जरूरी है कि हम क्यों इस तरह के लोगों को पूजते हैं, जहाँ पूज्य कुछ भी नहीं है। शायद आप ख़याल भी न किये होंगे – आप वही पूजते हैं, जो आप होना चाहते हैं। पूज्य आपका भविष्य है। अगर आप अभिनेता को पूजते हैं, और उसके आसपास भीड़ इकट्ठी हो जाती है पागलों की, तो उसका अर्थ है कि वे सब पागल जीवन का एक लक्ष्य मन में लिए हुए है कि वे भी अभिनेता हो सकते है; नही हो पाये, यह अलग बात है। हो जाएँ किसी दिन, उसी आशा से जी रहे हैं।

आप जिसे पूजते हैं, उससे ख़बर देते है कि आपके जीवन का आदर्श क्या है? अगर राजनीतिज्ञो के आसपास भीड़ इकट्ठी होती है, तो उसका अर्थ है कि आप भी शक्ति, पद, यश को पूजते है। और जिसे आप पूजते हैं, वह आपकी महत्त्वाकाक्षा की खबर है। आप जहाँ दिखायी पड़ते हैं, वहाँ अकारण दिखायी नही पड़ते। जिन चरणों में आपके सिर झुकते हैं, अकारण नही झुकते। आप उन्ही चरणों में सिर झुकाते है, जो आपके भविष्य की प्रतिमा है, जो आप चाहते हैं कि हो जायें।

तो महावीर पूज्य-सूत्र मे कुछ सूत्र दे रहे हैं कि 'कौन पूज्य है?'

मैंने सुना है कि एक इज़रायली तेल-अबीव के एक बड़े अस्पताल में गया, उसका मस्तिष्क जीर्ण-जर्जर हो गया था, और उसने चिकित्सकों से कहा कि 'मैं चाहता हूँ कि किसी और का मस्तिष्क ट्रांसप्लांट कर दिया जाये।'

यह भविष्य की कथा है। जैसे आज खून के बैंक हैं, ऐसे मस्तिष्क के बैंक भी भविष्य में हो जायेंगे।

... उस इज़रायली ने कहा कि 'मेरे चिकित्सक कहते है कि मेरा मस्तिष्क अब ज्यादा दिन काम नहीं दे सकता – इसे हटा दिया जाये, रिप्लेस कर दिया जाये। तो मैं पता लगाने आया हूँ कि बैंक में कितने प्रकार के मस्तिष्क उपलब्ध हैं।'

तो चिकित्सक उसे ले गया। उसने एक पहला मस्तिष्क दिखलाया और कहा, 'इसके पाँच हजार रुपये होंगे। यह एक साठ वर्ष के गणितज्ञ का मस्तिष्क है और साठ वर्ष के बूढ़े आदमी का मस्तिष्क है, इसलिए दाम थोड़े कम हैं।' पर उस इज़रायली ने कहा कि 'साठ वर्ष! यह तो मेरी उम्र से बहुत ज्यादा हो गया। इतना बूढ़ा मस्तिष्क नहीं, कुछ थोड़ा जवान दिखाइये।' तो चिकित्सक

ने एक दूसरा मस्तिष्क दिखाया कि 'यह एक स्कूल शिक्षक का मस्तिष्क है, यह आदमी तीस साल में मर गया।' तो उस इजरायली ने कहा, 'स्कूल शिक्षक की हैसियत मुझसे बड़ी नीची है, जरा मेरे योग्य!' तो उसने एक धनपति का मस्तिष्क दिखाया कि 'इसकी क़ीमत पंद्रह हजार रुपये है। यह आदमी पचास साल में मरा।'

और तभी उस इजरायली को नजर गई एक ख़ास काँच के बर्तन में, जिस पर एक बल्ब जल रहा था। उसने पूछा, 'इस बर्तन में जो मस्तिष्क रखा है, वह किसका है?' तो उस डॉक्टर ने कहा, 'वह जरा महँगी चीज है। उसके दाम हैं पाँच लाख रुपये। क्या वह आपकी हैसियत में पड़ेगा?'

उस इजरायली ने कहा कि 'मैं इसके संबंध में ज्यादा जानना चाहूँगा। इतने दाम की क्या बात है? पाँच लाख रुपये!' तो उस डॉक्टर ने कहा कि यह एक राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क है, एक पॉलिटीशियन का।'

'तो भी इतनी क़ीमत की क्या जरूरत है?' उस इजराइली ने पूछा। तो उस डॉक्टर ने कहा, 'अब आप नहीं मानते तो मैं बताये देता हूँ, इट हैज बीन नेवर यूज्ड – इसका कभी उपयोग नहीं किया गया है!'

राजनीतिज्ञ को मस्तिष्क का उपयोग करने की जरूरत भी नहीं है। मस्तिष्क जितना कम हो उतनी संभावना सफलता की ज्यादा है। लेकिन बुद्धिहीनता को हम आदर देते हैं, अगर बुद्धिहीनता अहंकार के शिखर पर चढ़ जाये। मूढ़ता आदृत है—हम भी मूढ़ हैं इसलिए और हम भी वही चाहते हैं इसलिए।

आप जिसे पूजते हैं, उस पर विचार कर लेना। आपकी पूजा आपका मनोविश्लेषण है। किसे आप पूजते हैं? कौन है आपका आदृत? तो आपकी जीवन-दिशा कहाँ जा रही है, उसका पता चलता है। अगर आप सफल हो जायें तो आप वही हो जायेंगे। अगर असफल हो जायें तो बात अलग है, लेकिन असफल भी आप उसी मार्ग पर होंगे।

अपने हृदय के कोने में इसकी जाँच-पड़ताल कर लेनी जरूरी है कि कौन है मेरा पूज्य? और किस कारण मैं पूजता हूँ? जो पूज्य है, उसका सवाल नहीं है – इससे आप अपने को समझने में समर्थ हो पायेंगे। यह आत्मविश्लेषण होगा। और अगर आप अपने को बदलते हैं तो आपकी पूजा का भाव भी बदलता जायेगा, पूजा के पात्र भी बदलने जायेंगे।

पीछे लौटें। आज जैसा अभिनेता पूज्य है, वैसा कभी सन्यासी पूज्य था, क्योंकि लोग संन्यास को जीवन का परम मूल्य समझते थे। आज अभिनेता पूज्य है – जीवन इतना झूठा हो गया है! अभिनय से ज्यादा झूठा और क्या होगा?

अभिनेता का होने का मतलब ही झूठा होना है – एक असत्य। संन्यास अगर सत्य का प्रतीक था तो अभिनेता असत्य का प्रतीक है। संन्यास अगर निरहंकार भाव का प्रतीक था तो नेता अहंकार भाव का प्रतीक है। अगर भिक्षु त्याग का प्रतीक था तो धनपति भोग का प्रतीक है।

. . . किसे आप पूजते हैं ? नेता से भी ज्यादा क़ीमत अभिनेता की बढ़ती जा रही है। यह किस बात की ख़बर है ? किस मौसम की ख़बर है ? आपके भीतर झूठ की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है; मनोरंजन की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है – सत्य की कम होती जा रही है।

और ध्यान रहे, मनोरंजन की प्रतिष्ठा तभी बढ़ती है, जब लोग बहुत दुखी होते हैं, क्योंकि दुखी आदमी ही मनोरंजन खोजता है। सुखी आदमी मनोरंजन नहीं खोजेगा। अगर आप प्रसन्नचित्त है, आनंदित है, तो आप सिनेमा में जाकर नहीं बैठेंगे, क्योंकि तीन घण्टा व्यर्थ की मूढ़ता हो जायेगी। समय ख़राब होगा; मस्तिष्क खराब होगा; तीन घण्टे में आँखें ख़राब होंगी; स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचेगा – और मिलेगा कुछ भी नहीं।

लेकिन दुखी आदमी भागता है; दुखी आदमी मनोरंजन खोजता है। तो जितनी मनोरंजन की तलाश बढ़ती है, उससे पता चलता है कि आदमी ज्यादा दुखी होता जा रहा है। सुखी आदमी एक झाड़ के नीचे बैठकर भी आनन्दित है, अपने घर में भी बैठकर आनन्दित है; अपने बच्चों के साथ खेलकर भी आनन्दित है; अपनी पत्नी के पास चुपचाप बैठकर भी आनन्दित है। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। कहीं जाने का मतलब यह है कि जहाँ आप है, वहाँ दुख है – वहाँ से बचना चाहते हैं।

अभिनेता असत्य है, लेकिन उसकी कीमत बढ़ती जाती है। नेता मनुष्य में निम्नतम का प्रतीक है। राजनीति मनुष्य के भीतर जो निम्नतम वृत्तियाँ है, उनका खेल है; लेकिन वह आदृत है। झूठ हमारा आदर्श होता चला जा रहा है।

सुना है मैंने, एक स्त्री एक पुल के पास से गुज़रती थी। पुल के किनारे पर उसने एक अंधे आदमी को बैठे देखा तख्ती लगाये हुए है, जिस पर उसने लिखा है, 'प्लीज हेल्प दि ब्लाइंड – कृपया अंधे की मदद करें।' उसकी दशा इतनी दुखद है कि उस स्त्री ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया। उस अंधे ने कहा, 'नोट बदल दें तो अच्छा है। थोड़ा पुराना, फटा-सा मालूम पड़ता है; पता नहीं – चले, न चले।'

वह स्त्री आश्चर्यचकित हुई, उसने पूछा, 'अंधे होकर तुम्हें पता कैसे चल गया कि नोट पुराना, गंदा-सा मालूम होता है ?' उस आदमी ने कहा, 'क्षमा

करें, अंधा मैं नहीं हूँ, मेरा मित्र अंधा है। वह आज सिनेमा देखने चला गया है; मैं उसकी जगह काम कर रहा हूँ – सिर्फ़ प्रतिनिधि हूँ। और जहाँ तक मेरी बात है, मैं गूंगा-बहरा हूँ।'

'अंधा फिल्म देखने चला गया है; मैं गूंगा-बहरा हूँ' – वह कह रहा है! मगर क़रीब-क़रीब ऐसी ही असत्य हो गयी है जीवन की सारी व्यवस्था। तख्तियों से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? नामो से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? प्रचार से कुछ पता नहीं चलता कि पीछे कौन है? एक झूठा चेहरा है सबके ऊपर – भीतर कोई और है; भीतर कुछ और चल रहा है। अभिनय की पूजा इस पाखण्ड का सबूत है। पद की, प्रतिष्ठा की पूजा आपके भीतर एक रोग की खबर देती है कि आप पागल है, आप चाहते हैं कि आप विशिष्ट हो जायें। आप चाहते हैं – सबकी छाती पर चढ़ जायँ, सबसे ऊपर हो जायँ। चढ़ने की सीढ़ियाँ कोई भी हो सकती हैं – धन, पद, ज्ञान, त्याग भी। अगर चढने की ही सीढ़ी बनानी हो तो कोई भी चीज़ सीढी बन सकती है।

महावीर किसे पूज्य कहते है? महावीर-जैसा आदमी जिसे पूज्य कहता है, उस पर विचार कर लेना ज़रूरी है।

'... जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है।'

बडी कठिन शर्त है। आप भी आचारवान होना चाहते हैं, लेकिन महावीर विनय की शर्त लगा रहे है, जो कि बड़ी उल्टी है। हम बचपन से ही बच्चो को सिखाते हैं कि अपना चरित्र ऊँचा रखना, क्योंकि चरित्र का सम्मान है। अगर तुम चरित्रवान हो तो सभी तुम्हे आदर देंगे। अगर तुम चरित्रवान हो तो कोई तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। अगर तुम चरित्रवान हो तो समाज की श्रद्धा तुम्हारी तरफ़ होगी, तुम पूज्य बन जाओगे।

हम बच्चे को अहंकार सिखा रहे हैं, आचरण नहीं। हम बच्चे को यह कह रहे है कि अगर तुझे अपने अहंकार को सिद्ध करना है, तो आचरण ज़रूरी है। क्योंकि जो आचारहीन है उसको कोई श्रद्धा नहीं देता; कोई आदर नहीं देता; लोग उसकी निंदा करते है। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि माँ-बाप आचरण सिखा रहे हैं, पर माँ-बाप अहंकार सिखा रहे है। माँ-बाप यह नही कह रहे हैं कि तू विनम्र होना, कि तू निरहंकारी होना। माँ-बाप यह कह रहे है कि तू चालाक होना, कनिंग होना, क्योंकि अगर तेरे पास आचरण है तो समाज तुझे कम असुविधा देगा, सुविधा ज्यादा देगा। अगर तू आचरणहीन है तो समाज असुविधायें देगा; दिक्कतें डालेगा; दंड देगा; परेशान करेगा – समाज दुश्मन हो जायेगा। तो तुझे जो भी पाना है जीवन में – धन, पद, प्रतिष्ठा, वह तुझे मिल नहीं सकेगी।

और हमारा आचार इसी प्रतिष्ठा के आग्रह में निर्मित होता है। हमारे बीच जो आचारवान भी मालूम पड़ते हैं, भीतर उनका आचार भी विनय पर आधारित नहीं है; ह्युमिलिटि पर आधारित नहीं है – अहंकार पर आधारित है। महावीर कहते हैं, बात खराब हो गयी, यह तो जड़ में ही जहर डाल दिया। जो फूल आयेंगे वे जहरीले होंगे। विनय आधार है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि विनय में सारा आचार समा जाता है। विनय का अर्थ है निरहंकार भाव; 'मैं कुछ हूँ', इस पागलपन का त्याग। यह अकड़ भीतर से खो जाये कि 'मैं कुछ हूँ।' मगर दूसरी अकड़ फौरन् हम बिठा लेते हैं।

आदमी की चालाकी को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। हम यह कह सकते हैं कि 'मैं कुछ भी नहीं हूँ', और यह अकड़ बन सकती है। 'मैं ना-कुछ हूँ' ... लेकिन इसके कहते वक्त एक प्रबल अहंकार भीतर कि 'मैं विनम्र हूँ; कि मुझसे ज्यादा विनीत और कोई भी नहीं हो सकता है।'

आदमी तरकीबें निकाल लेता है और जब तक होश न हो, तरकीबों से बचना मुश्किल है। तो आप विनीत भी हो सकते हैं और भीतर अहंकार हो सकता है। विनम्र होने का अर्थ है – न तो इस बात की अकड़ कि 'मैं कुछ हूँ', और न इस बात की अकड़ कि 'मैं ना-कुछ हूँ।' इन दोनों के बीच में विनम्रता है। जहाँ मुझे यह पता ही नहीं है कि 'मैं हूँ।' मेरा होना सहज है। इस सहजता को महावीर कहते है, आचार का आधार।

'जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनो को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।'

'विनय' का अर्थ है, अपने को शून्य समझना और जब तक आप शून्य नहीं हो जाते तब तक गुरु उपलब्ध नहीं हो सकता। आप गुरु को नहीं खोज सकते, ध्यान रखना! आप तो जिसको खोजेंगे वह आप-जैसा ही गुरु-घंटाल होगा, गुरु नही हो सकता। आप खोजेंगे ना..! आप अपने से अन्यथा कुछ भी नहीं खोज सकते। आप सोचेंगे, आप व्याख्या करेंगे ... आप करेंगे ना! गुरु तो गौण होगा, नंबर दो होगा; नंबर एक तो आप होगे! आप पता लगायेंगे कि कौन ठीक है, कौन गलत है? गुरु कैसा होना चाहिये, यह आप पता लगायेंगे। आप तय करेंगे कि आचरणवान् है कि आचरणहीन है। आप ... जिनको कुछ भी पता नही है। आप गुरु के निर्धारक होंगे, तो जिसे आप चुन लेंगे वह आपका ही प्रतिबिंब होगा, आपकी ही प्रतिध्वनि होगा और अगर आप गलत हैं तो गुरु सही नहीं हो सकता; आप गलत गुरु ही चुन लेंगे।

गुरु की खोज का पहला सूत्र है कि आप न हों। तब आप नही चुनते, गुरु आपको चुनता है। तब आप अपने को बीच में नहीं लाते; आप कोई शर्त नहीं लगाते ; आप परीक्षक नहीं होते।

इधर मैं देखता हूँ, लोग गुरुओं की परीक्षा करते घूमते हैं। देखते हैं कि कौन गुरु ठीक, कौन गुरु ठीक नही। आप अगर इतना ही तय कर सकते हैं और परीक्षक हैं, तो आपको शिष्य होने की जरूरत ही नही है; आप गुरु के भी महा-गुरु हैं ! आप अपने घर बैठिये, जिनको सीखना है वे खुद ही आपके पास आ जायेंगे। आप मत जाइये। . .

और आप कितने ही भटकें, आपको गुरु नही मिल सकता। आपको गलत आदमी ही प्रभावित कर सकता है, जो आपकी शर्तें पूरी करने को राजी हो। कौन आपकी शर्तें पूरी करेगा ? कोई महावीर, कोई बुद्ध आपकी शर्त पूरी करेगा ? कोई क्षुद्र आपकी शर्त पूरी कर सकता है। अगर वह आपका गुरु होना चाहता है, आपकी शर्त पूरी कर दे सकता है। और आपकी शर्तें जाहिर हैं, उसमें कुछ कठिनाई नही है। क्षुद्र आदमी के मन की क्या भावनाएँ हैं, वे सब जाहिर हैं। जो आदमी चालाक है, वह आपकी शर्तें पूरी कर देगा और आपका गुरु बन बैठेगा। अगर आप उपवास को आदर देते है, उपवास किया जा सकता है। अगर आप गंदगी को आदर देते हैं, तो आदमी गंदा रह सकता है।

जैन साधु हैं, उनके भक्त महावीर के वचनों का ऐसा अनर्थ कर लिये हैं, जिसका हिसाब नही है। महावीर ने कहा है, शरीर को सजाना मत; सजाने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह कामवासना से भरे हुए व्यक्ति की बात है।

शरीर को आप अपने लिए तो नही सजाते, शरीर को आप सदा दूसरे के लिए सजाते हैं– कोई देखे, कोई आकर्षित हो, किसी में वासना जगे. . .चाहे आप सचेतन न हों – यही तो आदमी की दुविधा है कि वो अचेतन में सब करता जाता है। सड़कों पर चलती हुई स्त्रियों को देखें ! कोई उनको धक्का मार दे तो वे नाराज होती हैं, लेकिन घर से वे पूरी तरह सजावट करके चली हैं कि धक्का मारने का निमंत्रण छिपा है। कोई धक्का न मारे तो भी वे उदास लौटेंगी –शायद सजावट में कोई कमी रह गई। कोई धक्का मार दे तो परेशानी खड़ी कर देंगी – लेकिन निमंत्रण साथ लेकर चलेगी।

यह बड़े मजे की बात है कि स्त्रियाँ घर में तो महाकाली बनी बैठी रहती है – चंडी का अवतार और घर से निकलते वक़्त . . . ? उसका कारण है कि पति को आकर्षित करने की अब कोई जरूरत नहीं है – टेकॅन फॉर ग्रान्टेड, वह स्वीकृत है।

लेकिन पूरा बाजार भरा है – और फिर कोई धक्का मार दे; कोई ताना कस दे; कोई गाली फेंक दे, कुछ बेहूदी बात कह दे, तो अड़चन है ।

आदमी बड़ा अचेतन जी रहा है । वह क्या करना चाहता है, क्या कर रहा है उसे कुछ ठीक-ठीक साफ़ भी नहीं है ।

मैंने सुना है, एक दिन एक आदमी अपनी पत्नी के साथ नसरुद्दीन के घर पर दस्तक दिया । दरवाज़ा खुला तो वे दोनों चकित हो गये । पत्नी तो बहुत भयभीत हो गयी । नसरुद्दीन बिलकुल नंगा खड़ा है – सिर्फ एक टोप लगाये हुए । आखिर स्त्री से नही रहा गया, उसने कहा कि 'क्या आप घर में ऐसा दिगम्बर वेश ही रखते है ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'हाँ, क्योंकि मुझे कोई मिलने-जुलने आता नहीं ।' तो स्त्री की जिज्ञासा और बढ़ गयी । उसने कहा, 'अगर ऐसा ही है तो फिर यह टोप और काहे के लिए लगाये हुए है ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'कभी-कभार कोई आ ही जाये तो . . .उस ख़याल से ।'

. . . कोई मिलने नहीं आता, इस ख़याल से नंगे हैं और टोप इसलिए लगाये है कि कभी-कभार कोई आ ही जाए, उसके लिए !

आदमी बड़े द्वंद्व में बंटा हुआ है । कुछ साफ़ नही है । महावीर ने कहा है, शरीर की सजावट भोगी के लिए है; योगी के लिए शरीर की सजावट नही है । लेकिन जब भोगियो ने महावीर के मार्ग पर कदम रखे तो उन्होंने इसका बडा अनूठा अर्थ लिया । सजावट एक बात है, स्वच्छता बिलकुल दूसरी बात है । स्वच्छता अपने लिए है, सजावट दूसरे के लिए होगी । स्वच्छता का तो अपना निजी सुख है, दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं । लेकिन, स्वच्छता भी सजावट हो गयी है । तो जैन मुनि स्नान नही करेगा, शरीर से बदबू आती रहेगी ; दातौन नहीं करेगा, मुंह से बदबू आती रहेगी ।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जैसे सजावट दूसरों को प्रभावित करने के लिए थी, यह गंदगी भी दूसरों को प्रभावित करने के लिए है । और अगर जैन श्रावक को पता चल जाये कि मुनिजी के मुह से मैक्लीन्स की बास आ रही है. . . सब गड़बड़ हो गया ! वह जाकर फ़ौरन् प्रचार कर देगा कि यह आदमी भ्रष्ट हो गया है; दातौन कर रहा है । दातौन ही नहीं कर रहा, ब्रश कर रहा है ।

आप दांत में सुगन्ध भी चाहते हैं दूसरे के लिए और दुर्गन्ध भी दूसरेके लिए, तो कुछ फ़र्क़ नहीं हुआ । महावीर का ज़ोर इस बात का है कि दूसरे को भूल जायें । अपने लिए, स्वयं के लिए, निज के लिए जो हितकर है, स्वस्थ है, उस दिशा में खोज करें ।

जैसा मैंने कल आपको कहा कि कैसी विकृतियाँ संभव हो जाती हैं। मैंने आपको कहा कि महावीर ने कहा है, मल-मूत्र विसर्जित करते वक़्त ख़याल रखना ज़रूरी है – किसी को दुख न हो, किसी को पीड़ा न हो । महावीर ने बहुत विचार किया है सूक्ष्म, गन्दगी से किसी को कष्ट न हो। पच्चीस सौ साल पहले न तो सेप्टिक टैंक थे और न फ्लश लैट्रिन थी और भारत तो पूरा-का-पूरा गाँव के बाहर ही मल-मूत्र विसर्जन करता रहा। तो महावीर ने कहा है, गीली जगह पर घास उगी हो, जहाँ कि कीड़े-मकोड़े के होने की सम्भावना हो – जीवन की। घास भी जीवन है। तुम्हारे मल-मूत्र से घास को भी नुकसान पहुँच जायेगा – वो भी नहीं। तो सूखी ज़मीन पर, साफ़ ज़मीन पर, जहाँ जीवन की कोई सम्भावना न हो वहाँ तुम मल-मूत्र का विसर्जन करना।

अब बड़ा पागलपन हो गया! अब बम्बई में जैन साधु-साध्वियाँ ठहरते हैं। यहां सपाट ज़मीन खोजनो मुश्किल है, सिवाय रोड के। तो वो रोड का उपयोग कर रहे हैं। .. तरकीब से कर रहे हैं! अब मज़ा यह है कि वर्तनों में इकट्ठा कर लेंगे पेशाब को, मल-मूत्र को और रात के अँधेरे में सड़कों पर उड़ेल देंगे।

अब किसी नियम से कैसी मूढ़ता का जन्म हो सकता है, सोचें। फ्लश लैट्रीन इस समय सर्वाधिक उपयोगी होगी। लेकिन वहाँ नियम में उलटा हो गया, क्योंकि गीली जगह पर... वहां पानी है फ्लश का, तो उस पानी की वजह से शास्त्र ...!

शास्त्र लोगो को अंधा कर सकते है और जो इस तरह अंधे हो जाते है उनके जीवन में कैसे प्रकाश होगा, कहना बहुत मुश्किल है। शास्त्र की लकीर-के-फ़कीर है वे। उसमें लिखा है, 'गीली जमीन पर नही'. .तो वहाँ फ्लश का पानी है, इसलिए वहाँ पेशाब भी नही कर सकते, वहाँ मल-विसर्जन भी नही कर सकते। तो सूखी थाली या बर्तन में कर लेंगे, फिर सम्हाल कर रखे रहेंगे और जब रात हो जायेगी, अन्धेरा हो जायेगा तो सड़क पर, सूखी ज़मीन पर छोड़ देंगे।

...अब यह पागलपन हो गया। लाओत्से कभी-कभी ठीक लगता है कि पैगंबरों से बड़ी मूढ़ता पैदा होती है। महावीर को कल्पना भी नहीं रही होगी, हो भी नही सकती। फ्लश लेट्रिन का उनको पता होता तो शास्त्र में थोड़ा फ़र्क़ करते। लेकिन उनको यह ख़याल भी नहीं रहा होगा कि उनके पीछे ऐसे पागलों की जमात आ जायेगी, जो उसको नियम बना लेगी।

कोई शास्त्र नियम नहीं है। सब शास्त्र निर्देशक हैं; सिर्फ़ सूचना मात्र हैं।

उनका भाव पकड़ना चाहिये; शब्द पकड़ेंगे तो गड़बड़ हो जायेगी, क्योंकि सभी शब्द पुराने पड़ जायेंगे। महावीर ने जिनसे कहा है, उनके लिये ठीक थे। समय बदलेगा, स्थिति बदलेगी, व्यवस्था बदलेगी, उपकरण बदलेंगे—शब्द वही रहेंगे। शास्त्र कोई वृक्ष तो है नहीं कि बढ़ें, उनमें नये फूल लगें। शास्त्र तो मुर्दा हैं। उन मुर्दा शास्त्रों को जकड़कर लोग बैठ जाते हैं।

'महावीर ने कहा है कि आचार-प्राप्ति के लिए विनय का उपयोग करता है जो व्यक्ति . . .।'

लेकिन आप ग़ौर से देखें, जब भी कभी आप आचार-प्राप्ति का कोई उपयोग करते हैं, तो उसमें अहंकार कारण होता है। इसलिए आचारवान् व्यक्ति अकड़कर चलता है; दुराचारी चाहे डरकर चले। दुराचारी थोड़ा चिन्तित भी होता है कि किसी को पता न चल जाये। दुराचारी डरता है कि मेरे आचरण का पता न चल जाये। जिसको हम सदाचारी कहते हैं, वह कोशिश करता है कि उसके आचरण का आपको पता चलना चाहिये। मगर आप ही बिन्दु हैं।

तो दुराचारी अँधेरे में छिपता है, सदाचारी प्रचार करता है अपने आचरण का। वह हिसाब रखता है कि किस वर्ष कितने उपवास किये, कितनी पूजा की, कितने मंत्र का जाप किया; सब हिसाब रखता है, कितने लाख जाप कर लिया।

किसके लिए यह हिसाब है?

हिसाब बता रहा है कि भीतर चालाक आदमी मौजूद है, मिटा नहीं है, बही-खाते रख रहा है।

'विनय' है पहली शर्त। विनय का अर्थ है : स्वयं को 'ना-कुछ' की अवस्था में ले आना। 'ना-कुछ हूँ', ऐसा बोध भी न पकड़ें। इतना जो विनम्र आदमी है, उसे गुरु उपलब्ध होगा। और अगर आप उसे खोजने भी न जायें तो वह आपको खोजते हुए आ जायेगा।

जीवन के अन्तर्नियम हैं। जहाँ भी जरूरत होती है गुरु की, वहाँ जिनके जीवन में भी जागृति का फूल खिला है, उनको अनुभव होना शुरू हो जाता है। जैसे प्रकृति में होता है कि जहाँ बहुत गर्मी हो जायेगी वहाँ हवा के झोंके भागते हुए आ जायेंगे। जब हवा आती है तो आपको पता है, क्यों आती है? हवा अपने कारण नहीं आती। जहाँ गर्म हो जाता है बहुत, विज्ञान के हिसाब से जहाँ गर्मी ज्यादा हो जाती है वहाँ की हवा विरल हो जाती है, कम सघन हो जाती है, ऊपर उठने लगती है गर्म होकर — वहाँ गड्ढा हो जाता है। उस गड्ढे को भरने के लिए आसपास की हवाएँ दौड़ पड़ती हैं। आप पानी भरते हैं एक मटकी में नदी से

गड्ढा हो जाता है। जैसे ही गड्ढा हुआ कि आसपास का पानी दौड़कर गड्ढे को भर देता है।

ठीक ऐसा ही आत्मिक जीवन का नियम है कि जब भी कोई व्यक्ति मिट जाता है, तो कोई भी शिखर को उपलब्ध है, दौड़कर उसको भर देता है। लेकिन वे सूक्ष्म-जगत् के नियम हैं; इतने साफ़ नहीं है। ईजिप्ट में कहा जाता है: 'व्हेन दि डिसाइपॅल इज़ रेडी, दि मास्टर ऐपियर्स – जब शिष्य तैयार है तो गुरु उपस्थित हो जाता है।' शिष्य को गुरु खोजना नहीं पड़ता, गुरु शिष्य को खोजता है; क्योंकि, ज़रूरत पैदा हो गयी, तो जिनके पास है वे देने को दौड़ पड़ेंगे। पात्र तैयार हो गया जिनके पास है वे उसे भर देंगे, क्योंकि जिनके पास है, वे अपने होने से भी बोझिल होते हैं – ध्यान रखें।

जैसे वर्षा के बादल होते हैं, भर जाते हैं पानी से तो बोझिल हो जाते हैं; अगर न बरसें तो भार होता है। जैसे माँ है: गर्भ हो गया, बच्चा आ गया, तो उसके स्तन भर जाते हैं दूध से। वह न बच्चे को दे तो पीड़ा होगी। अगर बच्चा मर भी जाये तो वह पड़ोस के किसी बच्चे को दूध देगी, क्योंकि देना हिस्सा है अब – भर गयी है। नहीं निकलेगा दूध तो कठिनाई होगी। तो यंत्र बनाये गये हैं। अगर बच्चा मर जाये तो स्तन से दूध निकालने के लिए यंत्र बनाये गये हैं, जो बच्चे की तरह दूध को खींच लें।

जब कहीं ज्ञान सघन होता है, जब कहीं ज्ञान उत्पन्न होता है, तो जैसे स्तन माँ के भर जाते हैं ऐसे गुरु का हृदय भर जाता है। वह चाहता है कि कोई आ जाये और उसे हल्का कर दे।

तो जब आप तैयार हैं तो गुरु मौजूद हो जाता है। आप खोजने जाते हैं तो गलती में हैं। पहले आप मिटें और मिटकर आप चल पड़ें; गुरु आपको पकड़ लेगा। और आप निर्णय करेंगे तो भटकते रहेंगे। आप निर्णय करने की स्थिति में नहीं हैं; हो भी नहीं सकते। तब डर लगता है कि यह तो अंधश्रद्धा हो जायेगी। तर्क कहेगा कि यह तो अन्धी बात हो जायेगी, तब हम कुछ भी नहीं!

अगर तर्क अभी न थका हो तो तर्क करके, कुछ और उपाय करके खोजने की व्यवस्था कर लें। एक घड़ी आयेगी कि आप तर्क से थक जायेंगे। और एक घड़ी आयेगी कि आप जान लेंगे इस बात को कि जिसे भी आप खोजते हैं, वह आप-ही जैसा ग़लत है। इस विषाद के क्षण में ही आदमी अपनी खोज बन्द करता है; खुद मिटकर एक सूना पात्र होकर घूमता है। जहाँ भी कोई भरा हुआ व्यक्ति होता है – जैसे हवा दौड़ पड़ती है खाली जगह की तरफ़, पानी दौड़ पड़ता है गड्ढे की तरफ़, माँ का दूध बहता है बच्चे की तरफ़ – ऐसा गुरु बहने लगता है शिष्य की तरफ़।

इस घड़ी में जो मिलन है, इस घड़ी में जो गुरु-शिष्य के बीच मिलन है, वह इस जगत् की महत्-से-महत् घटना है। जिनके जीवन में वह घटना नहीं घटी, वे अधूरे मर जायेंगे। उन्होंने एक अनूठे अनुभव से अपने को वंचित रखने का उपाय कर रखा है।

(इससे बड़े सुख का क्षण पृथ्वी पर कभी भी नहीं होता, जब आप पात्र की तरह खाली होते हैं और कोई भरा हुआ व्यक्ति आपकी तरफ़ बहने लगता है। लेकिन इस बहाव के लिये ग्राहक होना जरूरी है और ग्राहक वही हो सकता है जो आलोचक नहीं है। आलोचक तो अकड़ा हुआ सोचता है, ख़ुद ही जाँच-परख करता है।) इसलिए विज्ञान और धर्म के सूत्र अलग-अलग है। विज्ञान आलोचना से जीता है तर्क से जीता है। धर्म अतर्क है – श्रद्धा से जीता है, समर्पण से जीता है।

एक मित्र, मेरे साथ एक पर्वतीय स्थल पर गये थे; बीमार आलोचक हैं। आलोचक बीमार होते ही हैं। कोई भी चीज देखकर, क्या गलती है, यही उनके ध्यान में आता है। ठीक कुछ हो सकता है, इस पर उनका भरोसा नही है। जो भी होगा, गलत ही होगा।

तो जहाँ भी उन्हें मैं ले जाता – उन्हें एक सुन्दर जल-प्रपात के पास ले गया, तो उन्होंने कहा 'क्या रखा है इसमें ?... ज़रा पानी को हटा लो, फिर कुछ भी नही है।

ख़ूबसूरत पहाड़ पर ले गया, जहाँ सूर्यास्त देखने-जैसा है। उन्होंने कहा, 'ऐसा कुछ खास नही है। इतनी दूर चलकर आने का कोई मतलब नहीं है। क्षणभर में सूर्य अस्त हो जायेगा, फिर क्या रखा है ?' लौटते वक़्त उन्होंने कहा कि 'बेकार ही आना हुआ ! सिवाय पहाड़, झरने, सूरज – इनको हटा लो, सब सपाट मैदान है।'

ऐसा आदमी गुरु को कभी उपलब्ध नही हो सकता। उसने ग़लत तरफ़ से खोज शुरू कर दी। ठीक तरफ़ खोज का अर्थ है। संवेदनशीलता, रिसेप्टिविटि, ग्राहकता। जितना विनम्र होगा व्यक्ति, उतना ग्राहक होगा। उतनी शीघ्रता से गुरु उसकी तरफ़ दौड़ सकता है।

'... जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है।'

'भक्तिपूर्वक ..!' जैसे प्रेमी सुनता है प्रेयसी के वचन। और आपको पता है कि वचनों का अर्थ बदल जाता है, इस बात से कि कैसे आप सुनते हैं।

एक नयी स्त्री के प्रेम में पड़ गये हैं आप। वह जो भी बोलती है वह स्वर्णिम मालूम होता है। कोई दूसरा पास से गुजरता हुआ सुने तो समझेगा कि बकवास है। आपको स्वर्णिम मालूम पड़ता है, स्वर्गीय मालूम पड़ता है। आप जो भी उससे कहते हैं, क्षुद्र-सी बातें भी, बहुत क्षुद्र-सी, साधारण-सी बातें भी,

वे भी हीरे-मोतियों से जड़ जाती हैं, वे भी बहुमूल्य हो जाती हैं। ज़रा-सा इशारा भी क़ीमती हो जाता है। कोई दूसरा सुनेगा तो कहेगा कि 'ठीक है, क्या रखा है ?'

उसे कुछ भी नहीं रखा है। लेकिन प्रेम से भरा हुआ हृदय बहुत गहरे तक चीज़ों को ले जाता है, क्योंकि उतना खुल जाता है। चीज़ों के अर्थ अलग हो जाते हैं। एक साधारण-सा फूल उठाकर आपका प्रेमी आपको दे दे, तो वह फूल स्मरणीय हो जाता है। कोई कोहनूर से भी बदलना चाहे तो आप बदलने को राजी न होंगे। कोहनूर दो कौड़ी का है उस फूल के मुकाबले। फूल में कुछ और आ गया। क्या आ गया ? फूल सिर्फ़ फूल है; वैज्ञानिक परीक्षण से कुछ भी ज्यादा नहीं मिलेगा। लेकिन फूल आपके हृदय में गहरे उतर गया है; किसी प्रेम के क्षण में लिया गया है। तब आप खुले थे और चीज़ें भीतर तक झंकृत हो गयी। इसलिए प्रेमी पत्थर का टुकड़ा भी भेंट कर दे तो कीमती हो जाता है।

गुरु जो वचन बोल रहा है वे साधारण मालूम पड़ सकते हैं, अगर भक्ति से नहीं सुने गये हैं। अगर भक्ति से सुने गये हैं तो उसके साधारण वचन भी क्रान्तिकारी हो जाते हैं। वचनों में कुछ भी नहीं है, भक्ति से सुनने में सब-कुछ है। इसलिए आप क़ुरान को पढ़ें, अगर आप मुसलमान नहीं हैं तो पायेंगे, क्या रखा है ? क़ुरान पढ़नी हो तो मुसलमान का हृदय चाहिये, तो ही क़ुरान का अर्थ प्रगट होगा। जैन गीता पढ़ता है; कहता है, 'क्या रखा है ? क्यों हिंदू इतना शोरगुल मचाये रखते हैं ?' गीता के लिए फिर हिंदू का हृदय चाहिये। अगर जैन भागवत पढ़ेगा तो कहेगा, यह क्या हो रहा है ? रासलीला है कि सब पाखंड हो रहा है ? उसकी अपनी धारणा प्रवेश कर जायेगी। चैतन्य से पूछो या मीरा से भागवत का रस, तो वे पागल होकर नाचने लगते हैं। पर वह जो नाच है, वह चैतन्य की अपनी ग्राहकता से आता है, भागवत से नहीं आता है। भागवत तो सिर्फ़ सहारा है, निमित्त है।

गुरु निमित्त है; आनन्द तो आप से जगेगा। लेकिन निमित्त को आप भीतर ही न घुसने दें, तो कठिनाई है। और ध्यान रखें एक बात, गुरु आक्रामक नहीं हो सकता, एग्रेसिव नहीं हो सकता, क्योंकि जो आक्रामक हो सकता है, वह तो गुरु होने की योग्यता को भी उपलब्ध नहीं होगा। गुरु तो बिल्कुल अनाक्रामक है। वह ज़बरदस्ती आपकी गर्दन पकड़ कर नहीं कुछ पिला देगा। आप खुले होंगे, तो उस खुले क्षण में ही वह प्रवेश करेगा। वह द्वार पर दस्तक भी नहीं देगा आपके क्योंकि वह भी हिंसा है। अगर आप सो रहे हों गहरे, मधु स्वप्न देख रहे हों, और आप राजी ही न हो अभी लेने को, तो जो राजी नहीं है उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता।

तो गुरु आप पर ज़बरदस्ती नहीं करेगा। लेकिन हमें ख़याल है जबरदस्ती का। जिनको भी हमने जाना है, माँ-बाप, स्कूल, कॉलिज, विद्यालय, वहाँ सब जबरदस्ती चल रही है। वे सब हिंसा के उपाय हैं। ठोंका जा रहा है ज़बरदस्ती आपके सिर में। आध्यात्मिक जीवन उस तरह नहीं ठोंका जा सकता।

एक महिला के घर मैं मेहमान था। बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत, पश्चिम में पढ़ी हुई महिला हैं। जब भी उनके घर जाता था तो वह हमेशा एक ही रोना रोती थी कि मेरे मां-बाप ने मुझे ज़बरदस्ती प्यानो बजाना सिखाया, वह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं था। और ठीक भी है उसकी बात, क्योंकि वह 'टोन डीफ' है। उसे कोई ध्वनियों में बहुत रस नहीं है। ध्वनियों के प्रति बहरी है, वह संवेदना उसमें है नहीं। लेकिन मां-बाप पीछे पड़े थे कि लड़की को प्यानो बजाना जानना ही चाहिये; तो उन्होंने ज़बरदस्ती सब तरह से उसे ठोक-पीट के प्यानो बजाना सिखा दिया। किसी तरह रट के, कंठस्थ करके परीक्षाएँ भी उसने पास कर ली। तो एक दिन जब वह अपना रोना रो रही थी फिर से, उससे मैंने कहा कि जो तुम्हारे माँ-बाप ने तेरे साथ किया, इतना कम-से-कम ख़याल रखना कि अपनी लड़की के साथ तू मत करना। क्योंकि उस महिला ने मुझे कहा कि मैं तो नाचना सीखना चाहती थी, बस और माँ-बाप ने प्यानो में लगा दिया। काश! मैं नृत्य सीख लेती। तो उस स्त्री ने बड़े ज़ोर से कहा कि निश्चय ही, मैं यह भूल अपनी लड़की के साथ कभी भी नहीं करूँगी। वेद्र शी लाइक्स इट ऑर नॉट, शी विल हैव टु लर्न डान्सिग।

यही चल रहा है। माँ-बाप थोप रहे हैं, विद्यालय थोप रहा है, स्कूल का शिक्षक थोप रहा है। सब तरफ़ आदमी पर चीजें थोपी जा रही हैं। इससे आपको एक भ्रान्ति पैदा होती है कि शायद गुरु भी आप पर थोपेगा। आप सिर्फ़ पहुँच जाएँ मिट्टी के लौंदे की तरह और वह आपको ठोक-पीटकर मूर्ति बना देगा।

ध्यान रहे, जो गुरु आप पर थोपता हो उसे आध्यात्म की ख़बर भी नहीं है। वह इसी दुनिया का गुरु है। बेहतर था, किसी स्कूल में शिक्षक होता। शिक्षक और गुरु में फ़र्क़ है। शिक्षक सिखाने के लिए उत्सुक है। शिक्षक आपको बनाने के लिए आतुर है। शिक्षक आक्रामक है। इसलिए अगर सारे विश्वविद्यालयों में हिंसा फूट पड़ रही है तो उसका कारण विद्यार्थी तो नम्बर दो है, नम्बर एक तो शिक्षक है।

अब तक शिक्षक थोपता रहा। अब वक़्त आ गया है कि लोग, उनके ऊपर कुछ भी थोपा जाये, इसके लिए राजी नहीं है। हिंसा शिक्षक करता रहा है हज़ारों सालों से; बच्चे अब बग़ावत कर रहे हैं। अब बच्चे हिंसा कर रहे हैं। और

जब तक शिक्षक नहीं रोकता हिंसा करना, तब तक अब विश्वविद्यालय शान्त नहीं हो सकते।

लेकिन हमारा सारा सोचने का ढंग ही आक्रामक है। गुरु ऐसा नहीं कर सकता वह असंभव है। अगर आप राजी है पीने को, लेने को तो वह देगा, बेशर्त, अथक, असीम आप में उड़ेल देगा। आपकी छोटी-सी प्यास आपकी तरफ से आयेगी। इस प्यास और पुकार का नाम है भक्तिभाव।

'जो गुरु-वचनों को भक्तिभाव से सुनता है, स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है . . .।'

यह एक अलग कीमिया है; अध्यात्म की अपनी एलकेमी है, अपना रसायन-विज्ञान है। गुरु कुछ कहे, तो पहले तो मन यही होगा कि पहले हम सोच लें, ठीक भी कह रहा है कि गलत। क्या सोचेंगे आप? कैसे सोचेंगे आप? आपको ठीक का पता है, तो आप पता लगा सकते है कि गुरु जो कह रहा है, वह ठीक कह रहा है या गलत। अगर आपको ठीक का पता ही नही है, और निश्चित ही पता नहीं है, नहीं तो गुरु के पास आने की कोई आवश्यकता न थी, आप कैसे सोचेंगे कि क्या ठीक है और क्या गलत? और जिस बुद्धि से आप सोचेंगे, वह तो आपका ज्ञान है अब तक का इकट्ठा किया हुआ; उससे आप कही भी नहीं पहुँचे। उसी अतीत के अनुभव और ज्ञान को आगे ले आकर गुरु का भविष्य में जाता हुआ ज्ञान आप परखेंगे। गुरु वह कह रहा है जो आप भविष्य में होंगे और आप उस ज्ञान से जाँचेंगे जो आप अतीत में थे।

कोई मिलना नही हो पायेगा। आपको, जैसे आप जूते बाहर उतार देते है मन्दिर के, ऐसे ही अपनी खोपड़ी भी बाहर ही रख कर आनी होगी। तो ही गुरु के साथ कोई मिलन हो सकता है। ऐसा नही कि गुरु आपके पूछने से इनकार करता है। पूछने की कोई मनाही नहीं है, लेकिन पूछने का ढंग स्वीकार करने के लिए हो। आप इसलिए पूछते है, ताकि और जान सकें; इसलिये नहीं पूछते हैं कि आप विरोध में कोई बात खड़ी कर रहे हैं। आप अपने को ला रहे है और आप जाँचेंगे।

जाँचना हो तो पहले काफ़ी जाँच लेना चाहिये, लेकिन एक बार किसी के पास गुरु-भाव उत्पन्न हुआ हो तो फिर सब जाँच-परख नीचे रख देनी चाहिये। क़रीब-क़रीब ऐसे ही जैसे आपको ऑपरेशन करवाना हो, डेलिकेट, नाजुक ऑपरेशन हो, तो आप पता लगाते हैं, कौन सबसे अच्छा सर्जन है। ठीक है, पहले पता लगा लें। लेकिन एक बार ऑपरेशन की टेबुल पर लेट जाने के बाद कृपा

करके अब कुछ न करें। यह मत कहें कि यह चमचा उठा, वह कांटा उठा, ये छुरी से काम कर और इस तरह काट, और इस तरह निकाल! आप बिलकुल अब कुछ न करें। अब आप पूरी तरह छोड़ दें सर्जन के हाथ में। एक भरोसा, एक ट्रस्ट चाहिये। अगर आप पूरी तरह छोड़ दें तो आपको कम-से-कम कष्ट होगा।

मनोविज्ञान तो यह अनुभव करता है कि अगर सर्जन की टेबल पर मरीज़ अपने को पूरी तरह छोड़ दे, तो उसे बेहोश करने की ज़रूरत नहीं होगी। अगर वह इतना स्वीकार कर ले कि ठीक है, तो उसे बेहोश भी करने की ज़रूरत नहीं होगी। बेहोश भी इसीलिए करना पड़ता है कि वह जो भीतर बैठा हुआ अहंकार है, वह बीच में दखलंदाजी करेगा कि यह आप क्या कर रहे हो? कहीं गलती तो नहीं कर दोगे? कहीं जान तो नहीं ले लोगे? यह क्या हो रहा है? उसे बेहोश करना इसलिए जरूरी है ताकि वह बिलकुल सो जाये और सर्जन उन्मुक्त-भाव से मरीज़ को भूलकर मरीज़ का ऑपरेशन कर सके।

अध्यात्म बड़ी गहरी सर्जरी है। कोई सर्जन इतनी गहरी सर्जरी तो नहीं करता है। क्योंकि हड्डी नहीं काटनी, न मास-मज्जा काटना है; आपकी पूरी आत्मा के साथ जुड़े हुए संस्कार, आत्मा के साथ जुड़े हुए परमाणु, उनको काटना है। इससे बड़ी और कोई शल्य-चिकित्सा नहीं हो सकती। इतनी बड़ी शल्य-चिकित्सा तभी सम्भव है, जब कोई इतने सहज भाव से गुरु के हाथ में छोड़ दे कि अगर वह मारता भी हो, तो भी संदेह न उठायें।

इस निस्संदिग्ध अवस्था में सुने गये वचन सहज ही स्वीकृत हो जाते हैं। बुद्धि बीच में नहीं आती, पूरे जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं। दरवाजे पर कोई पहरेदार नहीं रोकता, हृदय तक बात चली जाती है।

'और जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।'

गुरु की अवज्ञा करनी हो तो गुरु को छोड़ देना चाहिये, अवज्ञा की कोई ज़रूरत नहीं है। कोई और गुरु की तलाश में निकल जाना चाहिये। गुरु का मतलब ही यह है कि आपने वह आदमी खोज लिया जिसकी आप अवज्ञा न करेंगे। गुरु का और कोई मतलब नहीं होता। आपने ढूंढ़ ली वह जगह, जहाँ आप अपने को छोड़ सकते हैं पूरा किसी के हाथ में, पूरे भरोसे के साथ। अब अवज्ञा नहीं करेंगे। और गुरु निश्चित ही बहुत-सी ऐसी बातें कहेगा, जिनमें मन होगा कि अवज्ञा की जाये, निश्चित ही! क्योंकि अगर गुरु ऐसी ही बातें कहे जिनकी आप अवज्ञा कर ही नहीं सकते, तो आपके शिष्यत्व का जन्म नहीं होगा।

इसे समझ लें।

अगर गुरु सच में ही गुरु है तो वह बहुत-सी ऐसी बातें कहेगा और करेगा, जिनमें

अवज्ञा करना बिल्कुल स्वाभाविक मालूम हो। और जब उस स्वाभाविक अवज्ञा को भी आप छोड़ देते हैं, तभी, तभी शिष्य का पूरा जन्म होता है।

लेकिन, हम बड़े होशियार है। हम वह मान लेंगे जो हम मानना चाहते हैं। मेरे पास बहुत तरह के लोग हैं। एक व्यक्ति आया, उसे मैंने कहा – संन्यासी है – कि अच्छा हो कि तू कुछ दिन के लिए भ्रमण करती कीर्तन मंडली में सम्मिलित हो जा। उसने कहा, 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है, तो मैं तो किसी यात्रा पर न जा सकूँगा।' फिर मैंने थोड़ी देर दूसरी बात की। और फिर मैंने कहा, 'अच्छा, ऐसा कर, तुझे मैं अमरीका भेज देता हूँ। वहाँ एक आश्रम है, उसको तू सँभाल ले।' उसने कहा कि 'जैसी आपकी आज्ञा! जब सभी आपको समर्पित कर दिया, तो फिर सोचना क्या!' फिर थोड़ी देर बात चली। मैंने कहा कि 'ऐसा है, अमरीका तो तुझे भेज दूंगा, पहले तू कीर्तन-मंडली में एक छह महीने...।'

उसने कहा, 'आप जानते ही हैं कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती।'

मगर वह आदमी यही सोचता है कि वह मेरी अवज्ञा कभी नही करता!

आज्ञाकारी होना बहुत आसान है, जब आज्ञा आपके अनुकूल हो। तब आज्ञाकारी होने का कोई अर्थ ही नही है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा रो रहा है। मुल्ला उससे कहा रहा है 'रोना बद कर। मैं तेरा बाप हूँ, मेरी आज्ञा मान।' मगर वह रोना बंद नही करता। बाप भी क्या कर सकता है, अगर बच्चा रोना बद न करे। नसरुद्दीन उसकी पिटाई करता है। पिटाई करता है तो वह और रोता है। इतने में ही एक आदमी नसरुद्दीन से मिलने आ गया। उस आदमी को देखकर नसरुद्दीन ने कहा, 'बेटा, दिल खोलकर रो! जितना रोना है, रो! मेरी आज्ञा है!'

वह लड़का भी थोड़ा चौका और उस आदमी ने भी पूछा कि 'यह क्या मामला है? क्यो उसको रोने को कह रहे हो?' उसने कहा, 'सवाल रोने का नही है। मैं तो चाहता हूँ कि यह रोये ना, लेकिन उसमें मेरी आज्ञा टूटती है। और हर हालत में मुझे अपने पिता का गौरव बचाना जरूरी है। इसलिये इसे कह रहा हूँ कि रो, यही मेरी आज्ञा है।'

लेकिन वो बेटा भी चुप हो गया। अब नसरुद्दीन कह रहा है कि 'नालायक, कोई भी हालत में मेरी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है।'

आप भी, जब मन की बात होती है तो मानने को तैयार होते हैं, जब मन की बात नहीं होती तो अड़चनें डालते हैं; पचीस बहाने करते हैं; होशियारियाँ निकालते हैं।

गुरु के पास ये होशियारियाँ न चलेंगी। आपकी सब होशियारी अज्ञान है। आपको बिल्कुल निर्दोष होकर जाना पड़ेगा।

'जो कभी गुरु की अवज्ञा नही करता, वही पूज्य है।'

'जो केवल सयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उन्छ वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नही होता और मिल जाने पर प्रसन्न नही होता, वही पूज्य है।'

'संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए... ।'

महावीर कहते है, जीवन का एक ही उपयोग है कि महाजीवन उपलब्ध हो जाये। अगर जीवन उपकरण बन जाता है, साधन बन जाता है महाजीवन को पाने के लिए, परमात्म-जीवन को पाने के लिए, तो ही उसका उपयोग हुआ। उसका और कोई उपयोग नही है। इसलिए महावीर कहते है कि अगर जीना है, तो बस एक ही जीने योग्य बात है कि जितने से संयम सध जाये, जितनी शक्ति की जरूरत है शरीर को, ताकि साधना हो सके। इस भाव से निर्वाह; बस, इतना।

'... अपरिचित भाव से ...।'

महावीर की शर्तें बड़ी अनूठी हैं। महावीर कहते है कि उनका भिक्षु, उनका साधु परिचित घरों में भीख माँगने न जाए, क्योंकि जहाँ परिचय है वहाँ मोह बन जाता है; जहाँ मोह बन जाता है वहाँ देने वाला ऐसी चीजें देने लगता है, जो वह चाहता है कि दी जाएँ।

अगर भिक्षु रोज आपके घर आता है और आपका मोह बन जाये, तो आप मिठाइयाँ देने लगेंगे, अच्छे भोजन बनाने लगेंगे। और, महावीर कहते हैं कि वह जो गृहस्थ है, जिसके घर आप परिचित भाव से भीख माँगने लगेंगे, आपके लिए तैयारी में जुट जायगा। उसके लिये चिन्ता पैदा होगी। वह विचार करेगा। वह कल रात से ही सोचेगा कि कल मुनिजी आते हैं, तो उनके लिए क्या तैयार करना है? तो उसकी चिन्ता, विचार का आप कारण बनते हैं और यह चिन्ता, विचार कर्म है, और ये बाँधते है। इसलिए अपरिचित घर मे भिक्षा माँगना। अचानक पहुँच जाना, ताकि उसे कोई तैयारी न करनी पड़े।

और महावीर कहते हैं, आपके लिए विशेष रूप से तैयारी करनी पड़े तो उससे भी अहंकार निर्मित होता है विशिष्टता। अपरिचित घर के सामने खड़े हो जाना, जिसको पता ही नही था कि आप भिक्षा माँगेंगे वहाँ। फिर वह जो दे, और वह वही देगा जो वो रोज खाता है। जो उसने अपने लिए तैयार किया था, वही देगा। विशिष्ट आपके लिए कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

लेकिन अपरिचित घर के सामने हो सकता है, वह दे या न दे। इसलिए तो हम परिचित घर खोजना पसन्द करेंगे। अपरिचित घर के सामने वह दे या न दे, इसलिए महावीर कहते हैं : दे तो प्रसन्न मत होना, न दे तो खिन्न मत होना। क्योंकि अपरिचित का मतलब ही यह है कि सब अनिश्चित है, कि देगा कि नहीं देगा।

और ध्यान रहे, जितना अपरिचित घर होगा उतनी ही खिन्नता असम्भव होगी क्योंकि अपेक्षा नहीं होगी। आप मुझे जानते है, और मैं आपके द्वार पर भिक्षा मांगने आ जाऊँ और आप न दें, तो खिन्नता पैदा होने की सम्भावना ज्यादा है। क्योंकि जिस आदमी को जानते थे, जिस पर भरोसा किया था उसने दो रोटी देने से इनकार कर दिया। अपरिचित आदमी कह दे कि नही है तो खिन्नता की सम्भावना कम है।

ध्यान रहे, खिन्नता की मात्रा उतनी ही होती है जितनी ऐक्सपेक्टेशन, अपेक्षा की मात्रा होती है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है; इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी हैं। अगर आप परिचित आदमी के घर जाएँ और वह आपको भिक्षा न दे...।

महावीर अपने भिक्षुओं से बोल रहे है, अपने मुनियों से, साधको से। इसे आप अपने जीवन में भी समझ लेना, क्योंकि बहुत तरह के संदर्भ गृहस्थ के लिए भी वही हैं।

(अगर आप परिचित आदमी के घर जाएँ और वह भिक्षा न दे तो बड़ी खिन्नता होगी, एक बात। अगर वह भिक्षा दे तो बहुत प्रसन्नता नहीं होगी, क्योंकि देनी ही थी। इसमें कोई खास बात ही न थी। न दे तो दुख होगा, दे तो कोई सुख नही होगा। अपरिचित आदमी अगर न दे तो खिन्नता कम होगी ; लेकिन अगर दे तो प्रसन्नता बहुत होगी कि कितना अच्छा आदमी है। जरूरी नही था कि देता और दिया।)

तो ध्यान, महावीर कहते है, दोनों बातों का रखना जरूरी है : खिन्नता भी न हो और प्रसन्नता भी न हो। अपरिचित के घर मांगना, खिन्नता की सभावना कम है। लेकिन संभावना है, अपेक्षा आदमी कर लेता है और खासकर मुनि, साधु, स्वामी बड़ी अपेक्षा कर लेते है। वे मान ही लेते हैं कि ' मैं इतना बड़ा त्यागी, और मुझे दो रोटी देने से इनकार किया। क्या समझ रखा है इन लोगों ने ? मैंने सारा संसार छोड़ दिया; लात मार दी सब चीजों को और मुझे दो रोटी देने से इनकार कर दिया !'

हिन्दू ऋषियों की तो आपको कथाएँ पता ही हैं कि जरा-सी बात में श्राप दे

दें; अभिशाप दे दें; नाराज हो जायें। अभी भी हिन्दू भिक्षु जब द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है, तो आपमें डर पैदा हो जाता है कि अगर नहीं दिया तो पता नहीं? चाहे वह कुछ जानता हो या न जानता हो, अगर अपना चिमटा ही हिलाने लगे, आँख बन्द कर ले, कुछ मंत्र वगैरह पढ़ने लगे, तो आपको बल के देना पड़ता है कि निबटाओ।

महावीर कहते हैं कि खिन्न मत होना, प्रसन्न मत होना और भिक्षा अपरिचित के घर माँगना, ताकि उसे कोई चिन्ता न हो। अपरिचित के घर माँगना ताकि तुम्हें भी विचार न हो कि क्या मिलेगा? नहीं तो तुम भी सोचोगे। अनजान में जाना, भविष्य को निश्चित मत करना।

लेकिन जैन साधु ऐसा कर नहीं रहा है। जैन साधु परिचित के घर भिक्षा माँग रहा है। जैन साधु अजैन के घर भिक्षा नहीं माँगता, जैनी का पता लगाता है और उन्हीं घरों में भिक्षा माँगता है जहाँ उसे अच्छा भोजन मिलता है। जैन साधु जिन गाँवों से गुजरते हैं पद-यात्रा में, वहाँ अगर जैन न हों तो उनके साथ गृहस्थ चलते हैं, बैलगाड़ी में सामान लादकर। तो हर गाँव में जाकर वे चौका तैयार करते हैं।

अब यह साधारण गृहस्थ से भी ज्यादा खर्चीला धंधा है। दस-पाँच आदमी साथ चलते हैं। और श्वेताम्बर साधुओं का तो उतना मामला नहीं है; क्योंकि एक आदमी भी चले और वही भोजन तैयार कर दे, तो भी चल जायेगा। लेकिन दिगम्बर मुनि की और भी तकलीफ़ है, क्योंकि दिगम्बर मुनि एक ही जगह से भोजन नहीं लेता, जैसा कि महावीर के सूत्र में लिखा है। वह अनेक जगह से भोजन लेता है। दस, पन्द्रह, बीस आदमियों का जत्था उसके पीछे चलता है; क्योंकि सभी जगह जैन नहीं है, अजैन के घर वह भिक्षा ले नहीं सकता तो दस-पचीस चौके तैयार होंगे हर गाँव में। ये पचीस आदमी जो उसके पीछे चल रहे हैं, पचीस चौके बनायेंगे एक आदमी के भोजन के लिए! फिर वह इन सब चौकों से थोड़ा-थोड़ा माँगकर ले जायगा!

चीजें कितनी पागल हो जाती हैं! ये पचीस आदमियों का भोजन एक आदमी ख़राब कर रहा है। ये पचीस चौके व्यर्थ ही मेहनत उठा रहे हैं; ये पचीस आदमियों के साथ चलने का खर्च, सामान ढोना। यह सब फिजूल चल रहा है। और महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर. . . । निश्चित ही ये पचीस आदमी जो चौका लेकर चलेंगे मुनि के साथ, ये थोड़े ही दिनों में मुनि की आदतों से परिचित हो जायेंगे, क्या उसे पसन्द है, क्या उसे पसन्द नहीं है और अच्छी-अच्छी चीजें बनाने लगेंगे। और मुनि सहजभाव से लेता रहेगा।

ये सहजभाव धोखे का है। महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर से भिक्षा, उन्छ वृत्ति से ... और एक ही घर से भी मत लेना, क्योंकि किसी पर ज्यादा बोझ पड़ जाये। तो थोड़ा-थोड़ा, जैसे कबूतर करता है, एक दाना यहाँ से उठा लिया, फिर दूसरा दाना कहीं और से उठा लिया, फिर तीसरा ... ।

उन्छ वृत्ति का मतलब है, कबूतर की तरह, एक घर के सामने आधी रोटी मिल गयी, आगे बढ़ गए; दूसरे घर के सामने कुछ दाल मिल गयी, आगे बढ़े गये; तीसरे घर के सामने कोई सब्जी मिल गयी...। ताकि किसी पर बोझ न हो। और रोज उसी घर में मत पहुँच जाना, अपरिचित घरों की तलाश करना।

महावीर ने कहा है कि तीन दिन से ज्यादा एक गाँव में रुकना भी मत। बड़ी अद्‌भुत बात है। क्योंकि मनसविद कहते हैं कि तीन दिन का समय चाहिये कोई भी मोह निर्मित होने के लिए। अगर आप घर बदलते हैं तो आपको तीन दिन नया लगेगा, चौथे दिन से पुराना हो जायेगा। अगर आप किसी नये घर में सोते हैं तो तीन दिन तक ज्यादा-से-ज्यादा आपको नींद की तकलीफ़ होगी, चौथे दिन सब ठीक हो जायेगा, आदी हो जायेंगे। तीन दिन कम-से-कम का समय है, जिसमें मन चीज़ों को पुराना कर लेता है।

तो महावीर कहते हैं कि तीन दिन से ज्यादा एक गाँव में मत रुकना, ताकि कोई मोह निर्मित न हो। और जब रुकना ही नहीं है तो मोह निर्मित करने का कोई प्रयोजन नहीं है; आगे बढ़ जाना है। अभी जैन साधु करते हैं यह काम, मगर गणित से करते हैं। विलेपार्ले को अलग गाँव मानते हैं; फिर सांताक्रूज चले गये तो अलग गाँव; फिर मैरीन ड्राइव आ गये तो अलग गाँव; तो पचीसों साल बम्बई में बिता देते हैं।

आदमी की चालाकी इतनी है कि महावीर हों, कि बुद्ध, कि कृष्ण, वह सबको रास्ते पर रख देता है। तुम कुछ भी करो, वह तरकीब निकाल लेता है और सब योजना से चलता है। महावीर का मतलब इतना है केवल कि साधक योजना न बनाये, प्लानिंग न करे, आयोजन न करे। गृहस्थ का अर्थ है कि वह योजना बनायेगा, कल का विचार करेगा, परसों का विचार करेगा, वर्ष का, दो वर्ष का पूरे जीवन का विचार करेगा। वह संसारी का लक्षण है। साधु का लक्षण महावीर कहते हैं कि वह कल का विचार न करे, आज जो हो उसे जीता रहे। और जो उनकी साधना को मानकर चलते हैं, उन्हें चालाकियाँ नहीं खोजनी चाहिये। चालाकियाँ ही खोजनी हों तो उनकी साधना नहीं माननी चाहिये। और साधनाएँ हैं दूसरी, हट जाना चाहिये। जिस गुरु के पीछे चलना हो, पूरे चलना चाहिये, तो ही कहीं पहुँचना हो सकता है। अन्यथा बेहतर है, किसी और गुरु के पीछे चलो।

पूरे चलने से कोई पहुँचता है। पूरे भाव से संयुक्त होने से कोई पहुँचता है। गुरुओं का उतना सवाल नहीं है! महावीर के पीछे चलो, कि बुद्ध, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट, कि मुहम्मद, कोई बड़ा फ़र्क नहीं है। रास्ते अलग-अलग हैं, लेकिन एक शर्त सबके साथ है कि जिसके साथ चलो, फिर पूरे भाव से चलो, फिर चालाकियाँ मत खोजो। गुरु के साथ खेल मत खेलो, क्योंकि खेल में तुम्हीं हारोगे, गुरु को हराने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि हराने का कोई सवाल नहीं है।

मेरे पितामह, मेरे दादा कपड़े की दुकान करते थे। मैं जब छोटा था, तब मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा रस आता था। वे बहुत कम बोलते थे, लेकिन ग्राहकों से कभी-कभी वह ऐसी बात कह देते थे जो बड़ी मतलब की होती थी। ग्रामीण थे, अशिक्षित थे, मगर बड़ी चोट की बात कहते थे। वे ग्राहक को एक ही भाव कहना पसन्द करते थे। तो एक भाव कह देते कि यह साड़ी दस रुपये की है। अगर ग्राहक मोल-भाव करता तो वे उसे कहते कि 'देख, तरबूज छुरी पर गिरे कि छुरी तरबूज पर, दोनों हालत में तरबूज कटेगा। अगर तुझे मोल-भाव करना हो तो वैसा कह दे, यह साडी अलग कर देते हैं, दूसरी साड़ी तेरे सामने लाते हैं। मगर ध्यान रखना, कटेगा तू ही; चाहे मोल-भाव कर और चाहे एक भाव कर। छुरी कटनेवाली नही है। दुकानदार कैसे कटेगा?'

जब भी मैं गुरु-शिष्य के संबंध में सोचता हूँ, मुझे उनकी बात याद आ जाती है। शिष्य ही कटेगा; गुरु के कटने का कोई उपाय नहीं है। वह अब है ही नही जो कट सके। इसलिए चालाकी कम-से-कम गुरु के साथ मत करना। लेकिन सारे साधु-सन्यासी यही कर रहे हैं; अपने को बचाये रखते हैं तरकीबें निकाल के, और धोखा भी देते रहते हैं कि गुरु की आज्ञा का पालन कर रहे हैं और महावीर के साथ चल रहे हैं।

मत चलो। कोई महावीर का आग्रह नही है। कोई जरूरत भी नहीं है चलने की, अगर पसन्द नही है। वहाँ चलो जो पसन्द है, लेकिन जहाँ भी चलो, पूरे मन से।

'जो संस्तारक, शय्या, आसन और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाये रखता है, वही पूज्य है।'

गृहस्थ का लक्षण है सदा अभाव में जीना। वह उसका मूल लक्षण है। हमेशा जो उसे चाहिये, वह उसके पास नहीं है। जिस मकान में आप रह रहे हैं, वह आपको

चाहिये नहीं। आपको चाहिये कोई बड़ा, जो नहीं है। जिस कार में आप चल रहे हैं, वह आपके लिए नहीं है। आपको कोई और गाड़ी चाहिये, जो नहीं है। जो कपड़े आप पहन रहे हैं, वह आपके योग्य नहीं हैं। आपको कोई और कपड़े चाहिये। जिस पत्नी के साथ आपका विवाह हो गया है, वह आपके योग्य नहीं है। आपको कोई और स्त्री चाहिये।

पूरे वक़्त जो नहीं है, वह चाहिये। जो है, वह व्यर्थ मालूम पड़ता है और जो नहीं है, वह सार्थक मालूम पड़ता है। जो भी मिल जायेगा, उसको भी आप व्यर्थ कर लेंगे, क्योंकि आप कलाकार हैं। ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसको आप एक-न-एक दिन तलाक़ देने को राज़ी न हों, क्योंकि तलाक़ स्त्री से नहीं आते, आपकी वृत्ति से आते हैं। जो आपके पास नहीं होता, वह पाने योग्य मालूम पड़ता है; जो आपके पास होता है, वह जाना-माना परिचित है; कुछ पाने योग्य मालूम नहीं होता।

ऐसा पति अगर आप खोज लें, जो अपनी पत्नी को ही प्रेम किये जा रहा है, अनूठा है, साधु है। बड़ा कठिन है अपनी पत्नी को प्रेम करना; बड़ी साधना है। दूसरे की पत्नी के प्रेम में पड़ना एकदम आसान है। जो दूर है, वह आकर्षित करता है। दूर के ढोल ही सुहावने नहीं होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं।

साधु का लक्षण है, सन्तोष। गृहस्थ का लक्षण है, अभाव। गृहस्थ उस पर आँख टिकाये रखता है, जो उसके पास नहीं है और जो उसके पास है वह बेकार है। साधु उस पर आँख रखता है, जो है; वही सार्थक है। जो नहीं है, उसका उसे विचार भी नहीं होता। जो है वही सार्थक है, ऐसी प्रतीति का नाम सन्तोष है। इसलिए ज़रूरी नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़ें तब साधु हो पायेंगे। जो है, अगर आप उससे सन्तुष्ट हो जायें, तो साधुता आपके पास जहाँ आप हैं वहीं आ जायेगी।

सन्तुष्ट जो हो जाए, वह साधु है। असाधुता गिर गयी। लेकिन जिनको आप साधु कहते हैं, वे भी सन्तुष्ट नहीं हैं। हो सकता है उनके असन्तोष की दिशा बदल गयी हो। वे कुछ नयी चीजों के लिए असन्तुष्ट हो रहे हों, जिनके लिए पहले नहीं होते थे। मगर असन्तुष्ट हैं। वहाँ भी बड़ी प्रतिस्पर्धा है। कौन महात्मा का नाम ज्यादा हुआ जा रहा है, तो बेचैनी शुरू हो जाती है। कौन महात्मा की प्रसिद्धि ज्यादा हुई जा रही है, तो छोटे महात्मा उसकी निंदा में लग जाते हैं। क्योंकि उसे नीचे खींचना, सीमा में रखना ज़रूरी है।

महात्माओं की बातें सुनें तो बड़ी हैरानी होगी कि वे उसी तरह की चर्चाओं में लगे हुए हैं, जैसे आम आदमी लगा हुआ है। सिर्फ़ फ़र्क़ इतना है कि उनका धंधा ज़रा अलग है, इसलिए जब वे एक महात्मा के ख़िलाफ़ बोलते हैं

तो आपको ऐसा नहीं लगता है कि कुछ गड़बड़ कर रहे हैं। लेकिन जब एक दुकानदार दूसरे दुकानदार के खिलाफ़ बोलता है तो आप समझते हैं कि कुछ गड़बड़ कर रहा है; नुकसान पहुँचाना चाहता है। जिनको आप साधु कहते हैं, उनकी भी आकांक्षाएँ हैं। वहाँ भी चेष्टा बनी हुई है कि और, .. और,.. और। ऐसा भी हो सकता है कि वे परमात्मा को पाने के लिए ही चिन्तारत हों और सोच रहे हों, और परमात्मा कैसे मिले, और परमात्मा कैसे मिले? अभी एक समाधि मिल गयी है, अब और गहरी समाधि कैसे मिले? लेकिन ध्यान भविष्य पर लगा हुआ है, तो गार्हस्थ्य ही चल रहा है।

संन्यस्त का अर्थ है कि जो है, हम उससे इतने राज़ी हैं कि अगर अब कुछ भी न हो, तो असन्तोष पैदा न होगा।

कठिन बात है! घर छोड़ना बड़ा आसान है, अभाव की दृष्टि छोड़ देना बड़ा कठिन है। जो मुझे मिला है, अगर मैं इसी वक़्त मर जाऊँ तो मरते क्षण में मुझे ऐसा नहीं लगेगा कि कोई चीज़ की कमी रह गयी, कि कुछ और पाने को था, अगर कल जिन्दा रह जाता तो उसे भी पा लेता। ऐसी भावदशा कि मृत्यु अचानक आ जाये तो आपको बिलकुल राज़ी पाये, और आप कहें कि मैं तैयार हूँ। क्योंकि जो होना था हो चुका, जो पाना था पा लिया, जो मिल सकता था मिल गया, मैं सन्तुष्ट हूँ। इससे ज्यादा की कोई माँग न थी। जीवन अपने पूरे अर्थ को खोल गया है।

सोचें, अगर मृत्यु अभी आ जाये तो आपको राज़ी पायेगी? आप कहेंगे कि दो दिन तो ठहर जा! एक धंधे में पैसा उलझाया है, कम-से-कम नतीजे का तो पता चल जाये! कि लॉटरी की टिकट खरीदी है, अभी परसों ही तो वह खुलने वाला है, ख़बर आने वाली है; कि लड़की का विवाह करना है; कि बेटा युनिवर्सिटी गया है; परीक्षा दे दी है, रिज़ल्ट खुलने को दो दिन हैं, या आप राज़ी मिलेंगे? मौत आकर कहे कि तैयार है, आप खड़े हो जायेंगे कि चलता हूँ?

अगर आप खड़े हो सकें, तो आप सन्यस्त हैं। अगर आप समय माँगें, तो आप गृहस्थ हैं। महावीर कहते हैं, सन्तोष पूज्य है; जो सन्तुष्ट है, वह पूज्य है।

'गुणों से ही मनुष्य साधु होता है, और अगुणों से असाधु। अतः हे मुमुक्षु! सद्‌गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।'

गुणों से मनुष्य साधु होता है, घर छोड़ने से नहीं; वस्त्र छोड़ने से नहीं; पति, पत्नी, परिवार छोड़ने से नहीं; धन्धा-दुकान, बाज़ार छोड़ने से नहीं। गुणों से व्यक्ति

साधु होता है। लेकिन दुनिया के अधिक साधु गुण की फ़िकर नहीं करते, क्योंकि गुणों को बदलना कठिन है, जटिल है। परिस्थिति को बदलते है, मनःस्थिति को नहीं। जिसको भी साधु होने का ख़याल हो जाता है वह सोचता है, छोड़ो घर-द्वार, भागो। सच तो यह है कि घर-द्वार किसके सुखद हैं। जो रह रहे हैं, बड़े साधक हैं। जो भाग गये है, वे केवल इतनी ही ख़बर देते है कि कमज़ोर रहे होंगे। कमज़ोरी पलायन बन जाती है।

महावीर का पलायन कमज़ोरी का पलायन नहीं है। महावीर कहते हैं: संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन शक्ति से, कमज़ोरी से नहीं। उस दिन संसार छोड़ना जिस दिन वह व्यर्थ हो जाये। लेकिन हम दुःख के कारण छोड़ते हैं, व्यर्थता के कारण नही। यह बड़ा फर्क है। महावीर संसार छोड़ते है, क्योंकि वहाँ कुछ है ही नही जिसको पकड़ने की ज़रूरत हो। सब व्यर्थ है। तो संसार ऐसे गिर जाता है जैसे साँप की केंचुली गिर जाती है और साँप आगे सरक जाता है। फिर साँप लौट-लौटकर नही देखता है कि कितनी बहुमूल्य केंचुली को छोड़ दिया.... 'अरे, कोई तो समझो! कोई तो आओ, देखो कि त्याग कर दिया! महात्यागी हूँ; खोल छोड़ दी अपनी!'

सांप खोल से बाहर निकल जाता है, खोल व्यर्थ हो गयी। महावीर कहते हैं: संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन तभी, जब संसार इतना व्यर्थ हो जाये कि छोड़ने-जैसा भी मालूम न पड़े।

ध्यान रहे, आपको वही चीज़ छोड़ने-जैसी मालूम पड़ती है, जो पकड़ने-जैसी मालूम पड़ती थी पहले। छोड़ने का ख़याल, पकड़ने की वृत्ति का हिस्सा है। अगर एक-एक आदमी से हम पूछें कि अगर तुझे सच में पूरा मौका हो भागने का घर से और कोई असुविधा नहीं आयेगी इससे बड़ी वहाँ, जितनी यहाँ आ रही है, तो सभी लोग राज़ी हो जायेंगे। वे इसी डर से नही छोड़ते हैं कि छोड़कर जाओगे कहाँ? और जहाँ जाओगे, वहाँ फिर असुविधाएँ है। लेकिन कमज़ोर आदमी भाग जाता है। कमज़ोर आदमी दुख की भाषा ही समझता है।

मैंने सुना है, एक बड़ी फर्म का मालिक कुछ इक्सेन्ट्रिक टाइप का, कुछ झक्की किस्म का आदमी था; मौजी और झक्की। उसने अचानक एक दिन घोषणा की अपने सारे कर्मचारियों को इकट्ठा करके कि 'मैं तुम सबको तुम्हारी पेंशन का जो पुराना हिसाब था वह तो दूंगा ही और साथ में हर व्यक्ति को जब वह रिटायर होगा, पचास हज़ार रुपये भी दूंगा। सब लोग लेने को राज़ी हैं, तो सब लोग महीने के भीतर दस्तखत कर दें फॉर्म पर। शर्त एक ही है: दस्तखत सबके होने चाहिये; अगर एक ने भी दस्तख़त न किये तो ये नियम लागू न होगा।'

पर लोगों ने कहा, ये शर्तें तो बड़ी मजेदार है, कौन दस्तखत न करेगा ! लोगों का क्यू लग गया एकदम जल्दी दस्तखत करने को कि कहीं महीना न निकल जाये। पहले दिन ही सब लोगों ने, सिर्फ़ मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़कर, दस्तखत कर दिये। मुल्ला नहीं आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन — आखिर लोग चिंतित होने लगे। लोगों ने कहा, 'भाई, दस्तख़त क्यों नहीं कर रहे हो?' मुल्ला ने कहा, 'दिस इज़ टू कॉम्प्लिकेटेड ऐन्ड आइ डोन्ट अंडरस्टैंड ऐन्ड अनलेस आइ अंडरस्टैंड राइटली, आइ ऐम नॉट गोइंग टु साइन। ज़रा जटिल है ये पूरी योजना, और भरोसा भी नहीं आता। समझ में भी नहीं बैठता कि कोई आदमी क्यों पचास हज़ार रुपये देगा? ज़रूर इसमें कोई चाल होगी। ये आदमी फँसा रहा है!'

सबने समझाया — मित्रों ने, ऑफिसर्स ने, मैनेजर ने, यूनियन के लोगों ने, लेकिन मुल्ला अपनी ज़िद पर अड़ा रहा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता। सब सुनकर वह कहता कि 'मेरी समझ में नहीं आता। इस मामले में कोई चाल है। पचास हज़ार किसलिए? और एक आदमी का सवाल नहीं है; कोई पाँच सौ कर्मचारी हैं।.. ढाई करोड़ रुपया! मान नहीं सकते! बुद्धि में नहीं घुसता!'

आख़िरी दिन आ गया, पर कोई रास्ता नहीं निकला। आखिर मैनेजर ने जाकर मालिक को कहा कि वह एक आदमी, मुल्ला नसरुद्दीन दस्तख़त नहीं कर रहा है। हम सब फँस गये हैं, और आपने भी खूब शर्त लगायी है। हम सोचते थे कि आप ही एक झक्की है, पर वह हमारे बीच भी एक आपसे भी पहुँचा हुआ है।

मालिक ने कहा, 'उसे बुलाओ।' बीसवीं मंजिल पर मालिक का ऑफिस था। नसरुद्दीन लाया गया; दरवाज़े के भीतर प्रविष्ट हुआ। और मालिक ने फॉर्म, कलम तैयार रखी थी दस्तख़त करने के लिये। दरवाज़ा बन्द किया, तब नसरुद्दीन ने देखा कि पाँच पहलवान-जैसे आदमी दरवाज़े के पास खड़े हैं।

मालिक ने कहा, 'इस पर दस्तख़त कर दो। मैं दस तक गिनती करूँगा, इस बीच अगर दस्तख़त नहीं किये तो पीछे जो पहलवान खड़े हैं, वे उठाकर तुम्हें खिड़की के बाहर फेंक देंगे!' नसरुद्दीन ने बड़ी प्रसन्नता से दस्तख़त कर दिये। ना तो सवाल उठाया, न कोई झंझट खड़ी की; न कोई तर्क, न कोई शंका। और ऐसा भी नहीं कि दुख से किये, बड़ी प्रसन्नता से, आह्लादित होकर कर दिये।

मालिक भी हैरान हुआ। उसने कहा कि नसरुद्दीन, तब तुमने पहले ही दस्तख़त क्यों नहीं कर दिये? नसरुद्दीन ने कहा, 'नो वन एक्सप्लेन्ड मी सो क्लीयरली। बात बिल्कुल साफ़ है, पर कोई समझाये तब न।'

हम भी दुख की, मृत्यु की भाषा समझते हैं। अगर आप संन्यस्त भी होते हैं

तो मरने के डर से; अगर संन्यस्त होते हैं तो गृहस्थी के दुख से, पीड़ा से, संताप से। बस, हम समझते ही मौत की बात है, आनंद की भाषा का हमें कोई पता ही नहीं है। महावीर संन्यस्त हुए महाआनंद से, लेकिन उनके पीछे जो साधुओं का समूह चल रहा, है, वह दुखी लोगों की जमात है। कोई परेशान था कि पत्नी सता रही थी। कोई परेशान था कि पत्नी मर गयी। स्त्रियों की बड़ी संख्या है जैन साधुओं में। साध्वियों की काफ़ी बड़ी संख्या है, पाँच-सात गुनी ज्यादा पुरुषों से। उनमें अधिक विधवाएँ हैं, जिनके जीवन में कोई सुख का उपाय नहीं रहा, या ग़रीब घर की लड़कियाँ हैं, जिनका विवाह नही हो सकता था, क्योंकि दहेज की कोई व्यवस्था नहीं थी, या कुरूप स्त्रियाँ हैं, जिन्हे कोई पुरुष चाह नही सकता था, या बीमार और रुग्ण स्त्रियाँ हैं, जो अपने शरीर से इतनी परेशान हो गयी थी कि उनसे छुटकारा चाहती थी।

साधु-साध्वियों की मनोकथा इकट्ठी करने-जैसी है कि कोई क्यो साधु या साध्वी हुआ है। अगर कोई दुख से साधु हुआ है तो उसका महावीर से कोई संबंध नही जुड़ सकता। अगर आप आनन्द की भाषा जानते है, तो ही महावीर से जुड़ सकते है।

मनुष्य कुछ छोड़ने से साधु नहीं होता, गुणों से साधु होता है। गुण पैदा करने पड़ते है। गुणों का आविर्भाव करना पड़ता है। और ये भी ख़याल में ले लें कि महावीर पहले कहते हैं, गुणों से मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु। ये भी ध्यान मे ले ले कि दुर्गुण छोड़े नही जा सकते, क्योकि छोड़ने की प्रक्रिया नकारात्मक है। सद्‌गुण पैदा किये जा सकते है, वह विधायक है। और सद्‌गुण जब पैदा हो जाते है तो दुर्गुण छूटने लगते है। अगर आप दुर्गुणों पर ही ध्यान रखें और उनको ही छोड़ने में लगे रहें, तो आप व्यर्थ ही नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि दुर्गुण तो सिर्फ इसलिए है कि सद्‌गुण नही है।

दुर्गुणों की फ़िक्र ही मत करे; सद्‌गुणों को पैदा करने की चेष्टा करें। जैसे कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। वह कोशिश में लगा रहता है कि इसको छोड़ें, इसको छोड़ें; छोड़ नहीं पाता, क्योंकि वह यह देख ही नही पा रहा है कि किसी बहुमूल्य चीज की भीतर कमी है, जिसके कारण शराब मूल्यवान हो गयी है।

एक मित्र हैं मेरे; यहाँ मौजूद है। वे शराब पिये चले जाते हैं। भले आदमी है। पत्नी उनके पीछे लगी रहती है कि छोड़ो। पत्नी जरूरत से ज्यादा भली है; उनसे भी ज्यादा भली है, इसलिए पीछे लगी रहती है, पिंड ही नहीं छोड़ती उनका कि छोड़ो, शराब पीना छोड़ो। न पत्नी की यह समझ में आता है कि

निरन्तर बीस साल से उसकी यह कोशिश कि शराब छोड़ो. . छोड़ो, उनको शराब पीने की तरफ धक्का दे रही है । पत्नी मुझे कह रही थी आकर कि वैसे तो वे मेरे सामने बिलकुल शान्त रहते हैं, दब्बू रहते हैं जब होश में रहते है, लेकिन रात जब वे पीकर आ जाते हैं तो बड़ा ज्ञान बघारने लगते हैं और बडी ऊंची बातें ! और आपको सुन लेते हैं, तो जो सुनकर जाते हैं उसको आकर रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक प्रवचन करते हैं और फिर वे बिलकुल नही दबते मुझसे । फिर वे सोने को भी राजी नही होते । फिर तो वे डरते ही नही; किसी को कुछ समझते ही नही । लेकिन दिन में बिलकुल दब्बू रहते है !

अब इसको थोड़ा समझना जरूरी है कि हो सकता है वे अपना दब्बूपन मिटाने के लिए ही शराब पीना शुरू कर दिये हो । पत्नी ने इतना दबा दिया है कि जब तक वे होश मे हैं, तब तक स्वय को हीन महसूस करते हैं; जब होश खो जाता है, तब फिर वे फ़िकर नही करते पत्नी की । और बीस साल निरन्तर किसी की खोपड़ी को सताते रहो कि मत पियो, मत पियो, मत पियो, बिना इसकी फ़िकर किये कि वह क्यो पी रहा है ।

कोई व्यक्ति शराब पीने ऐसे ही नही चला जाता । जीवन में कुछ दुख है, कुछ भुलाने योग्य है । सभी जानते है कि शराब नुकसान कर रही है, फिर भी नुकसान को झेलकर भी आदमी पिये जाता है, क्योकि कुछ जो भुलाने योग्य है, वह इतना ज्यादा है कि नुकसान सहना बेहतर है बजाय उसको याद रखने के ।

लेकिन हम दुर्गुण छोड़ने पर ज़ोर देते हैं । दुर्गुण छुड़ाने से नही छूटते । वह पत्नी भूल में है । वह शराब कभी भी नही छूटेगी । पति को शराब पिलाने में पचास प्रतिशत उसका भी हाथ है; ज्यादा भी हो सकता है, क्योंकि पत्नी से पति डरने लगा है । जहाँ डर है, वहाँ प्रेम खो जाता है, और जहाँ प्रेम नही है, वहाँ आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा शुरू कर देता है । मैंने उनकी पत्नी को कहा कि कम-से-कम तू तीन महीने के लिये इतना कर कि छोड़ दे ये कहना । उसने कुछ ही दिन बाद आकर मुझे कहा कि बड़ी मुश्किल है ! जैसे उनकी आदत पड़ गयी है पीने की, वैसे ही मेरी आदत पड़ गयी है छुड़ाने की ।

अब आपको पक्का ख़याल नही हो सकता, अगर पति सच में ही छोड़ दे शराब पीना तो पत्नी परेशान हो जायेगी; जितनी वह अभी है उससे ज्यादा, क्योंकि छुड़ाने को कुछ भी न बचेगा ।

मैंने उस पत्नीको कहा कि अब तुझे लगता है कि तू कहना नहीं छोड़ सकती तो

पीना छोड़ना कितना कठिन होगा, यह तो सोच ! थोड़ी दया कर और तेरे कहने से नही छूटती है, यह भी तुझे अनुभव है । बीस साल काफ़ी अनुभव है ।

कोई दुर्गुण सीधा नही छोड़ा जा सकता । जो भी छुड़ाने की कोशिश करते हैं वे नासमझ हैं । वे दुर्गुण को और बढाते हैं । सद्‌गुण पैदा किया जाय । कोई आदमी अपने को भुलाने के लिये शराब पी रहा है, तो उस आदमी के जीवन में कुछ सुखद नही है । उस आदमी के जीवन में सुखद पैदा हो, तो वह स्वय को भुलाना छोड़ देगा, क्योकि कोई भी सुख को नही भूलना चाहता; सभी दुख को भूलना चाहते हैं । और इस आदमी को भी खद खयाल नही है कि मै क्या कर रहा हूँ । यों भी छोड़ने की कोशिश करते है कि छोड़ दू, छोड़ दू, पर कुछ नही होता । छोड़कर क्या होगा ? कुछ भीतर खो रहा है । कोई मौलिक तत्त्व भीतर मौजूद नही है । उसको पहले पैदा करना पड़ेगा ।

सभी शराब पीने वाले अपराधी नही हैं; सिर्फ़ मूर्च्छित हैं; मानसिक रूप से रुग्ण है और जीवन का आह्लाद नही है भीतर; तो शराब की जरूरत पड रही है । इन मित्र को मैं कहता हूँ कि जीवन का आह्लाद पैदा करो, नाचो, गाओ, ध्यान करो, प्रसन्न होओ, और प्रसन्नता की थोड़ी-सी रेखा तुम्हारे भीतर आ जाये तो तुम शराब पीना बन्द कर दोगे, क्योकि जब भी तुम शराब पियोगे, वह प्रसन्नता की रेखा मिट जायेगी । अभी दुख है भीतर, शराब पीने से दुख मिटता है, आनन्द होगा, आनन्द मिटेगा । आनन्द को कोई नही मिटाना चाहता । तो तुम आनन्दित होने की कोशिश करो, शराब का बिलकुल खयाल ही छोड़ दो । पीते रहो और आनन्दित होने की कोशिश करो । गुण को पैदा करो; दुर्गुण से मत लड़ो ।

दुर्गुण से लडना मूढतापूर्ण है । इसलिए महावीर कहते है: गुणों से मनुष्य साधु हो जाता है, दुर्गुणों से असाधु ।

'... हे मुमुक्षु, सद्‌गुणो को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़ ।'

दुर्गुण छूट ही जाते है सद्‌गुण ग्रहण करने से, छोड़ने की चेष्टा भी नही करनी पड़ती, गिरने लगते हैं, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते है ।

'जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है ।'

जीवन के दो ही द्वन्द्व हैं । कोई आकर्षित करता है तो 'राग' पैदा होता है; कोई विकर्षित करता है तो 'द्वेष' पैदा होता है । किसी को हम चाहते हैं हमारे पास रहे और किसी को हम चाहते हैं पास न रहे । किसी को हम चाहते है सदा जिये, चिरंजीवी हो और किसी को हम चाहते हैं अभी मर जाये । हम जगत्

में चुनाव करते हैं कि यह अच्छा है और यह बुरा है; ये मेरे लिए हैं मित्र और ये शत्रु हैं, मेरे खिलाफ़ हैं।

महावीर कहते हैं, साधु वही है, वही पूज्य है जो न राग करता है, न द्वेष। क्योंकि महावीर कहते है कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे लिये कोई भी नहीं है। तुम ही तुम्हारे मित्र हो और तुम ही एकमात्र तुम्हारे शत्रु हो। महावीर ने बड़ी अनूठी बात कही है कि आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है। बाहर मित्र-शत्रु मत खोजो। वहाँ न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। वे सब अपने लिए जी रहे है, तुम्हारे लिए नही। तुमसे उन्हें प्रयोजन भी नही है। तुम भी अपने भीतर ही अपने मित्र को खोजो और अपने शत्रु को विसर्जित करो।

और तब एक बड़ी अद्भुत घटना घटती है। जैसे ही कोई व्यक्ति यह समझने लगता है कि मैं ही मेरा मित्र हूँ और मैं ही मेरा शत्रु, वैसे ही जीवन रूपान्तरित होना शुरू हो जाता है; क्योंकि दूसरो पर से नजर हट जाती है, अपने पर नजर आ जाती है। तब जो बुरा है, वह उसे काटता है, क्योकि वह शत्रु है। तब जो शुभ है, वह उसे जन्माता है, क्योकि वही मित्र है। और जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर अपनी आत्मा की पूरी मित्रता को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन इस जगत् में उसे कोई भी शत्रु नही दिखायी पड़ता।

ऐसा नही कि शत्रु मिट जायेंगे। शत्रु रहे आयेंगे, लेकिन वे अपने ही कारण शत्रु होंगे, आपके कारण नही। और उन शत्रुओं पर भी आपको दया आयेगी; करुणा आयेगी, क्योंकि वे अकारण परेशान हो रहे हैं; कुछ लेना-देना नही है।

महावीर कहते हैं: अपने को ही अपने द्वारा जानकर राग-द्वेष से जो मुक्त होता जाता है और धीरे-धीरे स्वय में जीने लगता है; दूसरों से अपने सम्बन्ध काट लेता है...। इसका ये मतलब नही है कि वह दूसरो से संबंधित न रहेगा। लेकिन तब एक नये तरह के संबंध का जन्म होता है। वह संबंध बंधन नही है। अभी हम संबंधित हैं; वह बंधन है, जकड़ा हुआ जंजीरों की तरह। एक और संबंध का जन्म होता है, जब व्यक्ति अपने में थिर हो जाता है। तब उसके पास लोग आते है, जैसे फूल के पास मधुमक्खियाँ आती है। अनेक लोग उसके पास आयेंगे। अनेक लोग उससे संबंधित होंगे, लेकिन वह असंग ही बना रहेगा। मधुमक्खियाँ मधु ले लेंगी और उड़ जायेंगी; फूल अपनी जगह बना रहेगा। फूल रोएगा नही कि मधुमक्खियाँ चली गयी। फूल चिन्तित नहीं होगा कि वे कब आयेंगी। नही आयेंगी तो फूल मस्त है; मधुमक्खियाँ आयेंगी तो फूल मस्त है। न उनके आने से, न उनके न आने से कोई फ़र्क़ पड़ता है। संबंध अब भीतर से बाहर की तरफ नहीं जाता।

जो व्यक्ति स्वयं में थिर हो जाता है, उसके आसपास बहुत लोग आते हैं; संबंधित होते हैं लेकिन वे भी अपने कारण संबंधित होते हैं। वह व्यक्ति असंग बना रहता है।

भीड़ के बीच अकेला हो जाना सन्यास है। गृहस्थी के बीच अकेला हो जाना संन्यास है। संबंधों के बीच असंग हो जाना संन्यास है। महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति पूज्य है।

ब्राह्मण-सूत्र : १

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, बम्बई; १ सितंबर, १९७३

जो न सज्जइ आगन्तुं,
पव्वयन्तो न सोयई ।
रमइ अज्जवयणम्मि,
तं वयं बूम माहणं ।।

जायरुवं जहामट्ठं,
निद्धन्तमल-पावगं ।
राग-दोस-भयाईयं,
तं वयं बूम माहणं ।।

तवस्सियं किसं दन्तं,
अवचियमंससोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं,
तं वयं बूम माहणं ।।

जो आनेवाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नही करता, जो आर्य-वचनो में सदा आनन्द पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

जो अग्नि में डालकर शुद्ध किये हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।।

जो तपस्वी है, जो दुबला-पतला है, जो इंद्रिय-निग्रही है, उग्र तपःसाधना के कारण जिसका रक्त और मांस भी सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

ईसप की एक कथा है। एक दिन एक सिंह, एक गधा और एक लोमड़ी शिकार को निकले साथ-साथ। उन्होंने काफ़ी शिकार किया। फिर जब सूर्य ढलने लगा और साँझ हो गई, तो सिंह ने लोमड़ी को कहा कि तू समझदार भी है, चालाक भी, गणितज्ञ भी, तार्किक भी; उचित होगा कि तू ही इस शिकार के तीन विभाजन कर दे बराबर-बराबर ताकि तीनों शिकार में भाग लेने वाले साथियों को बराबर भोजन उपलब्ध हो सके।

बड़े चमत्कारिक ढंग से लोमड़ी ने विभाजन किये जो बिलकुल बराबर थे, तीन हिस्से किए। लेकिन सिंह बहुत नाराज़ हो गया। उसने कुछ कहा भी नही; लोमड़ी की गर्दन दबायी और उसको भी शिकार के ढेर में फेंक दिया और गधे से कहा कि तू अब दो हिस्से कर दे, एक मेरे लिए और एक तेरे लिए, बिलकुल बराबर-बराबर।

गधे ने सारे शिकार का एक ढेर लगा दिया और एक मरे हुए कौए को एक तरफ़ कर दिया और कहा कि 'महानुभाव! ये मेरा आधा भाग, कौआ और वह आपका आधा भाग।' सिंह ने कहा, 'गधे, मित्र गधे! तूने इतना समान विभाजन करने की कला कहाँ से सीखी? किसने तुझे सिखाया ऐसा शुद्ध गणित? तूने बिलकुल बराबर विभाजन कर दिये!'

और विभाजन क्या है, एक तरफ़ कौआ मरा हुआ और एक तरफ़ सारे शिकार का ढेर।

गधे ने कहा, 'दिस डेड फॉक्स। इस मरी हुई लोमडी ने मुझे ये कला सिखायी बराबर विभाजन करने की!'

ईसप ने कहा है कि गधे भी अनुभव से सीख लेते हैं, लेकिन आदमी नही सीखता। आदमी अनुभव से सीखता हुआ मालूम ही नही पड़ता। हजारों-हजार साल वही अनुभव, वही अनुभव बार-बार दोहरता है, फिर भी आदमी वैसा ही बना रहता है। उसमें कोई फ़र्क़ पड़ता हुआ मालूम नही पड़ता। जैसे अनुभव बह जाता है उसके ऊपर से; कहीं भी भिद नहीं पाता उसके रोओं में, उसकी चमड़ी में, उसकी हड्डियों में, उसके हृदय तक तो पहुँचने की बात ही दूर। ऊपर-ऊपर वर्षा के जलकी तरह गिरता है और बह जाता है और आदमी वैसे-का-वैसा बना रहता है।

मनुष्य को हजारों साल के अनुभव मे यह बात साफ़ हो जानी चाहिए थी –इसमें कोई भी अड़चन नही हैं – कि जन्म से धर्म का कोई भी सम्बन्ध नही है। एक आदमी मुसलमान के घर में पैदा हो सकता है, लेकिन इससे मुसलमान नहीं हो सकता। एक आदमी हिंदू के घर मे पैदा हो सकता है, लेकिन पैदा होने से धर्म का क्या लेना-देना है? एक आदमी जैन कुल में पैदा होता है, लेकिन वह कुल का धर्म होगा, व्यक्ति का निजी चुनाव नही।

धर्म का प्रारम्भ ही तब होता है जब व्यक्ति स्वेच्छा से चुनता है। जब बोधपूर्वक निर्णय लेता है, जब समझपूर्वक संकल्प करता है, जब दीक्षित होता है स्वय एक धारा में, तब धर्म का जन्म होता है।

दुनिया में इतना अधर्म है, उसके बुनियादी कारणो में एक कारण यह भी है कि हमारा धर्म उधार है। उधार धर्म जिन्दा नहीं हो सकता है, मरा हुआ होगा।

आपके पिता ने ही नही चुना है; न मालूम कितनी पीढियो पहले किसी ने चुना। कोई व्यक्ति महावीर के पास दीक्षित हुआ। कोई व्यक्ति महावीर से आकर्षित हुआ; आन्दोलित हुआ। किसी व्यक्ति को महावीर के पास तरगे मिली परम सत्य की। वह दीक्षित हुआ। उसकी दीक्षा बहुमूल्य थी। वह उसका निर्णय था। वह शायद हिन्दू घर में पैदा हुआ था; दीक्षित हुआ, जैन बना। उस आदमी के लिए जैन होने का कोई मूल्य था, क्योकि जैन होने के लिए उसने कुछ चुकाया था, कुछ खोया था, कुछ मिटाया था। कुछ पाने के लिए कुछ त्यागा था; मोह छोड़े थे, सस्कार छोड़े थे, बचपन से पड़ी हुई धारणाएँ छोड़ी थी। जो सिखाया गया ज्ञान था, उसे फेंका था और एक नयी यात्रा पर, अनजाने मार्ग पर चला था। उसका साहस था; उस साहस के परिणाम हुए। फिर उसका बेटा है, वह जैन हो जाता है पैदाइश से। फिर आप तो न मालूम कितनी पीढ़ियों के बाद जैन हैं!

सब उधार है, कचरा है। आपके जैन होने का कोई मूल्य नही है। आप भी जानते है कि आपका जैन होना झूठा है, हिन्दू होना झूठा है, मुसलमान होना झूठा है, क्योंकि जो आपने नहीं चुना वह सत्य नहीं हो सकता। निज का चुनाव सत्य की तरफ़ पहला कदम है।

यह हमें अनुभव है कि पैदाइश से कोई धार्मिक नही हो सकता, लेकिन हम पैदाइश से धार्मिक हो गये हैं, तो वस्तुत: धार्मिक होने का उपाय भी बद हो गया है, क्योकि हम सब को ख़याल है कि हम धार्मिक है।

अनुभव कहता है कि धर्म सदा व्यक्ति का निजी संकल्प है। समूह धार्मिक नही होता, व्यक्ति धार्मिक होता है। भीड़ धार्मिक नहीं होती, व्यक्ति धार्मिक होता

है। क्योंकि जीवन का, चेतना का अनुभव व्यक्ति के पास है, समूह के पास नहीं है। समूह तो बंधी हुई लकीरों से चलता है सुविधा के लिए, व्यवस्था के लिए, अराजकता न हो जाए इसलिए; नियम का घेरा बाँध लेता है और चलता है।

अगर व्यक्ति भी उस घेरे में बँध कर चलता है और अपने निजी पथ की खोज नही करता, तो वह समाज का एक हिस्सा ही रहेगा; उसकी आत्मा उत्पन्न नही होगी। आत्मा उसी दिन उत्पन्न होती है, जिस दिन निजता का मूल्य समझ में आता है, जिस दिन मैं अपना मार्ग चुनता हूँ ताकि अपने सत्य तक पहुँच सकूं। और प्रत्येक व्यक्ति का सत्य तक पहुँचने का मार्ग भिन्न होगा, उसके अपने अनुसार होगा।

जैसे कोई व्यक्ति अगर कम्युनिस्ट घर में पैदा हो जाए, तो हम नही कहते कि वह कम्युनिस्ट है। और कोई व्यक्ति सोशलिस्ट घर में पैदा होकर सोशलिस्ट नहीं हो जाता। सोशलिस्ट होने के लिए विचार करना पड़े, सोचना पड़े, निर्णय लेना पड़े।

कोई भी विचार जब तक आपके भीतर उगता नही है, तब तक बासा है, बोझ है। महावीर ने ये घोषणा आज से पचीस सौ साल पहले की, और महावीर ने कहा, जन्म से धर्म का कोई सम्बन्ध नही है। कहाँ आप पैदा हुए है, यह बात मूल्यवान नही है; क्या आप बनते है ख़ुद अपने श्रम से, वही बात मूल्यवान है। तो महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ दी; आश्रम की व्यवस्था तोड़ दी। और महावीर ने नये अर्थ दिये पुराने शब्दों को।

यह सूत्र ब्राह्मण-सूत्र है। इसमें महावीर ब्राह्मण की व्याख्या करते है कि ब्राह्मण कौन है। ब्राह्मण के घर मे पैदा होने से कोई ब्राह्मण नही है, लेकिन हम उसी को ब्राह्मण कहते है, जो ब्राह्मण घर में पैदा हुआ है। तो ब्राह्मण की जो महान् धारणा थी वह नष्ट हो गयी, वह एक क्षुद्र बात हो गयी।

ब्राह्मण के घर में पैदा होना बड़ी क्षुद्र बात है; ब्राह्मण हो जाना बिलकुल दूसरी बात है। ब्राह्मण होना एक यात्रा है। ब्राह्मण होना एक श्रम है, एक तपश्चर्या है। ब्राह्मण तभी कोई हो सकता है, जब ब्रह्म से उसका सम्पर्क सध जाए।

उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा है उपनिषदों में कि श्वेतकेतु, ध्यान रखना एक बात, हमारे परिवार में कोई जन्म से ब्राह्मण नही हुआ। वह बड़ी बदनामी की बात है। हमारे परिवार में हम चेष्टा से ब्राह्मण होते रहे हैं। तू भी यह मत सोच लेना कि तू मेरे घर पैदा हुआ तो ब्राह्मण हो गया। तुझे ब्राह्मण होने के लिए अथक श्रम करना होगा। तुझे ब्राह्मण होने के लिए ख़ुद ही साधना करनी होगी। ब्राह्मण होने के लिए तुझे स्वयं को ही जन्म देना होगा; माँ-बाप तुझे

जन्म नहीं दे सकते हैं। क्योंकि जब तक तेरा अनुभव ब्रह्म के निकट न आने लगे, तब तक तू ब्राह्मण नहीं है।

महावीर की बात निश्चित ही जातिगत ब्राह्मणों को बहुत कठिन मालूम पड़ी होगी। सत्य हमेशा ही स्वार्थ को कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि कितनी सुगम बात है जन्म से ब्राह्मण हो जाना, और श्रम से ब्राह्मण होना तो बहुत दुर्गम है। जन्म से तो हजारों ब्राह्मण हो जाते हैं; श्रम से तो कभी कोई एकाध ब्राह्मण होता है।

तो जो ब्राह्मण थे जन्म से, उनको बहुत कष्टपूर्ण मालूम पड़ा होगा। महावीर उनकी पूरी बपौती छीन ले रहे हैं; उनकी शक्ति छीन ले रहे हैं। इससे भी खतरनाक मालूम पड़ी होगी बात, और भी दूसरा खतरा था और वह यह कि महावीर ब्राह्मण से उसका जातिगत, जन्मगत ब्राह्मणत्व ही नहीं छीन ले रहे हैं, बल्कि वे यह भी कह रहे हैं कि कोई भी ब्राह्मण हो सकता है तो शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है श्रम से। वो ब्राह्मण की सत्ता छीन रहे हैं और जिनके पास सत्ता कभी नहीं थी, उनके लिए सत्ता का, उस परम सत्ता के अनुभव का अवसर खोल रहे हैं।

महावीर की क्रान्ति गहरी है। महावीर कहते हैं, सभी लोग जन्म से शूद्र पैदा होते हैं, क्योंकि शरीर से पैदा होने में कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है? शरीर शूद्र है; शरीर से आदमी पैदा होता है, तो सभी जन्म से शूद्र पैदा होते हैं। फिर इस शूद्रता के बीच अगर कोई श्रम करे, निखारे अपने को, तपाए, तो सोने की तरह निखर आता है। पर अग्नि से गुज़रना पड़ता है, तब कोई ब्राह्मण होता है।

शूद्र पैदा हो जाने से ब्राह्मण होने में बाधा नहीं है। शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। जैसे देह आत्मा का आधार है, ऐसे शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। इसलिए कोई भी शूद्र होने से वंचित नहीं है। सभी शूद्र हैं। लेकिन कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को ब्राह्मण समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को वैश्य समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को क्षत्रिय समझ रखा है। और कुछ शूद्रों को समझा दिया गया है कि तुम जन्म से ही शूद्र नहीं हो, तुम्हें सदा ही शूद्र रहना है; तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक शूद्र रहोगे।

यह बड़ी खतरनाक बात है। इससे न मालूम कितनी सम्भावनाएँ ब्राह्मण होने की खो गयी। जो ब्राह्मण हो सकता था वह रोक दिया गया। जो ब्राह्मण नहीं था वह ब्राह्मण मान लिया गया। उसकी भी सम्भावना को नुकसान हुआ, क्योंकि वो भी हो सकता, उसकी फिक्र छूट गयी। उसने मान लिया कि मैं शूद्र हूँ।

महावीर कहते हैं, ब्राह्मण होना जीवन का अन्तिम फूल है, इसलिए जन्म पर कोई ठहर न जाए। कीचड़ से कमल पैदा होता है; शूद्रता से ब्राह्मणत्व पैदा होता है।

कीचड़ पीछे छूट जाती है; कमल ऊपर उठने लगता है। एक घड़ी आती है, कीचड़ बहुत पीछे छूट जाती है; कमल जल के ऊपर उठ आता है। और कमल को देखकर आपको खयाल भी पैदा नही हो सकता कि वह कीचड़ से पैदा हुआ है।

शूद्रता कीचड़ है। उसी में पड़े रहने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे ऊपर उठने का विज्ञान है। अध्यात्म, धर्म, योग कीचड़ को कमल में बदलने की कीमिया है। और एक बार कीचड़ कमल बन जाए, तो नीचे भूमि में जो कीचड़ पड़ी है, वह भी फिर उसे कीचड़ नही बना सकती। बल्कि उस कीचड़ से भी कमल रस लेता है; उस कीचड़ को निरन्तर बदलता रहता है सुगन्ध में। उस कीचड़ की दुर्गन्ध बनती रहती है सुगन्ध, कमल के माध्यम से। जो-जो कुरूप है उस कीचड़ में, वह सब कमल मे आकर सुन्दर होता रहता है।

आदमी कीचड़ की तरह पैदा होता है, लेकिन कीचड़ की तरह मरने की कोई भी जरूरत नही है। कमल होकर मरा जा सकता है। उस कमल होने की कला का नाम धर्म है।

महावीर के सूत्र को अब हम समझें।

'जो आने वाले स्नेही-जनो में आसक्ति नही रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता, जो आर्य-वचनों में सदा आनन्द पाता है, उसे हम 'ब्राह्मण' कहते हैं।'

एक-एक कदम समझना जरूरी है।

'जो स्नेही-जनों में आसक्ति नही रखता।' इसका यह अर्थ नही है कि वह स्नेह नहीं रखता, नही तो स्नेही-जन कहने का कोई कारण नहीं है। प्रेम भरपूर है; आसक्ति नही है। शूद्र-मन में प्रेम बिलकुल नही होता, आसक्ति ही आसक्ति होती है। ब्राह्मण-मन में आसक्ति खो जाती है और प्रेम ही रह जाता है।

आसक्ति कीचड़ है, प्रेम कमल है। लेकिन प्रेम को आसक्ति से मुक्त करना बड़ी दुर्गम बात है, क्योंकि हम तो जैसे ही किसी को प्रेम करते है, प्रेम कर ही नहीं पाते कि आसक्ति पकड़ लेती है। आसक्ति का मतलब है या तो हम गुलाम हो जाते हैं, या दूसरे को गुलाम बनाने लगते हैं। दोनों ही गुलामी की प्रक्रियाएँ हैं।

किसी व्यक्ति को आप प्रेम करते हैं, प्रेम करते ही आप निर्भर हो जाते हैं उस पर। आपका सुख उस पर निर्भर हो जाता है। आपका दुख उस पर निर्भर हो जाता है। दूसरा आदमी मालिक हो गया। अगर वह चाहे तो दुखी कर सकता है; अगर चाहे तो सुखी कर सकता है। उसका एक इशारा आपको नचा सकता

है। उसका एक इशारा आपको दुख में डाल सकता है। आपकी आत्मा की अपनी मालकियत दूसरे व्यक्ति के हाथ में चली गयी।

और ध्यान रहे, जब भी हम अपने प्रेम में किसी को अपना मालिक बना लेते हैं, तो उससे हमारी घृणा भी शुरू हो जाती है, क्योंकि मालकियत कोई किसी की कभी पसन्द नही करता। इसलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही घृणा भी करते हैं; और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही हम नष्ट भी करना चाहते हैं। क्योंकि वह दुश्मन भी मालूम पड़ता है।

...पड़ेगा ही! प्रेमी दुश्मन मालूम पडते हैं एक-दूसरे को, क्योंकि एक-दूसरे की स्वतन्त्रता को छीन लेते है और एक-दूसरे को वस्तुएँ बना देते हैं व्यक्तियों से मिटाकर।

हर पति की कोशिश है कि उसकी पत्नी एक वस्तु बन जाये। वह जैसा कहे वैसा उठे-बैठे। वह जैसा इशारा करे वैसा चले। पत्नी की भी पूरी चेष्टा यही है कि पति उसका गुलाम हो जाए। वह कहे रात, तो रात। वह कहे दिन, तो दिन। दोनों इसी संघर्ष में लगे हैं। एक-दूसरे को डॉमिनेट करना है। एक-दूसरे को मिटा डालना है।

क्यों? दूसरे से इतना भय क्या है? और जिससे हमारा प्रेम है, उससे इतना भय क्या है? भय इस बात का है कि हमारा प्रेम तत्काल आसक्ति बन जाता है, अटैचमेन्ट बन जाता है। और जैसे ही आसक्ति बनता है, तो दो में से कोई एक मालिक बन जाता है। तो मैं मालिक बना रहूँ; दूसरा मालिक न बन जाये। लेकिन दूसरा भी इसी कोशिश में लगा है।

क्या प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सकता है?

अगर प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सके, तो प्रेम घृणा से भी मुक्त हो जाता है।

महावीर कहते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ, जो स्नेही-जनों में आसक्ति नही रखता। जिसका स्नेह भरपूर है। जिसके प्रेम में कोई कमी नही। लेकिन जो अपने प्रेम के कारण न तो किसी का गुलाम बनता है, और न किसी को गुलाम बनाता है। जिसका प्रेम दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच एक आनन्द का संबंध है। जिसका प्रेम दो परतन्त्र व्यक्तियो के बीच एक दुख का संबंध नही है।

हमारा सारा प्रेम दुख का संबंध है। इसलिए जितना दुख हम प्रेम से पाते हैं, उतना किसी और चीज से नहीं पाते। अगर मनुष्य के मन की ठीक-ठीक जाँच की जाए, तो प्रेम से बड़ी बीमारी खोजनी मुश्किल है।

उससे जितना दुख आदमी पाता हैं, उतना किसी और चीज से नहीं पाता। आपके सभी दुख प्रेम के दुख हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पश्चिम में एक ऐसी घटना विकसित हो रही है रोज़ पिछले बीस-तीस वर्षों में कि लोग कहते हैं, प्रेम की बात ही मत करो। काम, सेक्स काफ़ी है। क्योंकि सेक्स कम से कम स्वतन्त्र तो रखता है; प्रेम तो उपद्रव खड़ा कर देता है।

इसलिये पश्चिम में प्रेम डूब रहा है; सिर्फ़ सेक्स उभर रहा है। दो व्यक्तियों के बीच सिर्फ़ सेक्स का सबंध काफी है, पश्चिम की नयी धारणाएँ कहती हैं। क्योंकि जैसे ही प्रेम आया कि बुखार आया; कि उपद्रव शुरू हुआ; कि एक ने दूसरे को दबाना शुरू किया, इसलिए सिर्फ़ सेक्स का संबंध पर्याप्त है। यह बड़ी खतरनाक बात है।

भारत ने भी प्रयोग किया है आसक्ति से मुक्तहोने का; पश्चिम भी प्रयोग कर रहा है। भारत ने प्रयोग किया है, जो महावीर कह रहे हैं। महावीर कह रहे हैं, प्रेम तो प्रगाढ़ हो जाये, आसक्ति खो जाए, तो जो दुख है प्रेम का वह नष्ट हो जायेगा और प्रेम एक आनन्द की वर्षा हो जाए।

पश्चिम भी यही चाहता है कि जो उपद्रव है आसक्ति का यह मिट जाए। पर वह नीचे गिर कर आसक्ति का उपद्रव मिटा रहा है। वह कह रहा है, दो शरीरों का सबंध काफ़ी है। इससे ज्यादा जिम्मेदारी लेनी ठीक नहीं।

जैसे ही आप किसी के प्रेम में पड़ते है, उपद्रव शुरू होता है।

इसलिए एक ही व्यक्ति से भी काम के संबंध ज्यादा देर तक बनाना ठीक नही है। काम के सबंध भी बदलते रहने चाहिए। आज एक स्त्री, कल दूसरी स्त्री; आज एक पुरुष, परसों दूसरा पुरुष। ये बदलते रहे ताकि कही कोई ठहराव न हो जाए और आसक्ति न बन जाये।

दृष्टि तो दोनोंकी एक ही कोण पर निर्भर है। पूरब ने भी यही अनुभव किया है कि प्रेम दुख देता है। तो दुख से उठने का क्या उपाय है? महावीर कहते हैं, उपाय यह है कि प्रेम तो रह जाए, हृदय तो प्रेमपूर्ण हो लेकिन किसी को गुलाम बनाने की और किसी को मालिक बनाने की वृत्ति का निषेध हो जाए।

पश्चिम भी इसी परेशानी में है, लेकिन पश्चिम का सुझाव बड़ा अजीब है और बड़ा खतरनाक है। महावीर प्रेम को दिव्य बना देते है और पश्चिम प्रेम को पाशविक बना देता है।

प्रेम उपद्रव है, यह बात जाहिर है। यह पूरब, पश्चिम दोनों के मनीषियों ने अनुभव किया है। जिसको हम प्रेम कहते हैं, वहाँ झंझट है। तो या तो उससे नीचे उतर आओ और जैसे पशुओं का संबंध है... । वहाँ कोई

झंझट नही है। न विवाह है, न तलाक है, न कोई कलह है ; सिर्फ़ सम्बन्ध शरीर का है। पशु मिलते हैं शरीर से क्षणभर के लिए, अलग हो जाते हैं। उससे कोई मोह निर्मित नहीं करते, कोई आसक्ति नहीं बनाते कि अब यह जो मादा है, मेरी पत्नी हो गयी; अब कोई दूसरा पुरुष पशु इसकी तरफ़ आँख उठाएगा तो मैं उपद्रव खड़ा करूँगा। या यह जो पुरुष है मेरा पति हो गया, और अगर इसने अपनी नजर किसी और मादा की तरफ उठायी तो कलह शुरू होगी।

नहीं, पशु सिर्फ़ शरीर के तल पर मिलते हैं, अलग हो जाते हैं। वहाँ कोई आसक्ति नहीं है। इसलिए प्रेम की जो पीड़ा हमें है, पशुओं को नहीं है।

पश्चिम गिर रहा है प्रेम के उपद्रव से मुक्त होने के लिए। लेकिन गिरकर कुछ भी हल न होगा, क्योंकि कितना ही सेक्स हो जीवन में, अगर प्रेम का फूल न खिले तो प्राण अतृप्त रह जाते हैं और जीवन की जो चमक है, जीवन की जो प्रतिभा है, जो आभा है, वह प्रगट नहीं हो पाती। मनुष्य पशु होकर तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य केवल दिव्य होकर ही तृप्त हो सकता है। नीचे गिर कर कोई कभी तृप्त नहीं होता ; जिम्मेदारी से मुक्त हो सकता है, लेकिन तृप्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए पूरे पश्चिम में अनुभव किया जा रहा है कि एक मीनिंग-लेसनेस, एक अर्थहीनता छा गयी है। क्योंकि प्रेम है अर्थ जीवन का।

महावीर कहते है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो प्रेम कर सकता है और आसक्ति में नहीं बंधता। यह हो सकता है। यह तब हो सकता है जब हमारा प्रेम दूसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो, बल्कि हमारी क्षमता हो।

इस फर्क़ को ठीक से समझ लें।

आप इसलिए प्रेम करते हैं कि दूसरा व्यक्ति प्यारा है, तो दूसरे पर निर्भर है। महावीर कहते है, इसलिए प्रेम कि आप प्रेमपूर्ण हैं। जोर इस बात पर है कि आपका हृदय प्रेमपूर्ण हो। जैसे दिया जल रहा है तो दिये की रोशनी पड़ रही है, फिर कोई भी पास से निकले दिये की उसपर रोशनी पड़ेगी। दिया यह नहीं कहेगा कि तुम सुन्दर हो, इसलिए तुम पर रोशनी डाल रहा हूँ; कि तुम कुरूप हो इसलिए अपने को बुझा लेता हूँ और अन्धकार कर देता हूँ। दिये की रोशनी बहती रहेगी; कोई न भी निकले तो शून्य में दिये की रोशनी बहती रहेगी।

महावीर उसे ब्राह्मण कहते हैं, जिसका प्रेम उसकी हार्दिक ज्योति बन गया। जो इसलिए प्रेम नहीं करता कि आप प्यारे हैं; कि आप सुन्दर हैं; कि भले हैं; कि मुझे अच्छे लगते है, कि मुझे पसन्द हैं। नहीं, जो सिर्फ़ इसलिए प्रेम करता है कि प्रेमपूर्ण है; कुछ और करने का उपाय नहीं। आप उसके पास होंगे तो उसके प्रेम की किरणें आप पर पड़ती रहेंगी।

प्रेम सम्बन्ध नहीं, स्थिति है । और जब ऐसे प्रेम का जन्म हो जाता है. . . . . । यह तभी होगा जब व्यक्ति दूसरों से अपने को हटाये, अपनी दृष्टि को 'पर' से हटाये और 'स्वयं' में गड़ायें, जिसे हम ध्यान कहते हैं । जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रेम सम्बन्ध से हटकर स्थिति बनने लगता है । वह मनुष्य का स्वभाव हो जाता है ।

महावीर भी प्रेम देते है, करते नहीं । करने में तो कृत्य है । महावीर प्रेम देते है । उनके होने का ढंग प्रेमपूर्ण है । आप उनके पास जायें तो प्रेम मिलेगा । और आपको ऐसा भी वहम हो सकता है कि उन्होंने आपको प्रेम किया; क्योंकि आप करने की भाषा समझते हैं, होने की भाषा नही समझते । महावीर प्रेमपूर्ण है । जैसे फूल मे गन्ध है, ऐसे उनमें प्रेम है ।

'जो आनेवाले स्नेही-जनो में आसक्ति नही रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नही करता ।'

और ध्यान रहे, शोक तभी होगा जब आसक्ति होगी । जिससे हम बंधे हैं, जिसके बिना हमें होने में अड़चन है, अगर वह न हो तो हमें बहुत कठिनाई हो जायेगी।

जब कोई मरता है तो आप इसलिए नही रोते कि कोई मर गया । आप इसलिए रोते है कि आपके भीतर जो निर्भरता थी, वह टूट गयी । जब कोई मरता है तो आप अपने लिए रोते हैं । कोई खण्ड आपका टूट गया जो उस आदमी से भरा था । कुछ हृदय का कोना उसने भरा था, रोशन कर रखा था, वह दिया बुझ गया । आपके भीतर अंधेरा हो गया ।

कोई किसीके मरने पर इसलिए नही रोता कि कोई मर गया । मृत्यु पर हम इसलिए रोते हैं कि हमारे भीतर कुछ मर गया । और तभी तक रोयेंगे आप, जब तक वह कोना फिर से न भर जाये; जिस दिन वह कोना फिर से भर जायेगा, रोना बन्द हो जायेगा ।

आदमी अपने लिए ही रोता है। तो जब आप शोक करते हैं किसी से दूर हटते या किसी के दूर जाने पर, वो खबर देता है कि उसके पास रहने पर आसक्ति पैदा हो गयी थी ।

महावीर गुजरते है एक गाँव से, प्रेमपूर्ण हैं, कुछ और होने का उपाय भी नहीं है। गाँव पीछे छूट जाता है, तो महावीर की स्मृति अगर उस गाँव से अटकी रहे, तो महावीर ब्राह्मण नहीं है । गाँव छूट गया, स्मृति भी छूट गयी । जहाँ महावीर होंगे, वहीं उनका बोध होगा, वहीं उनका प्रकाश होगा । वे लौट-लौटकर पीछे

के गाँव के सम्बन्ध में नहीं सोचेंगे कि जिस आदमी ने भोजन दिया था; कि जिस आदमी ने आश्रय दिया था; कि जिसने पैर दबा दिये थे; कि जिसने इतना प्रेम दिया था।

अगर यह मन पीछे लौट रहा है।..... पीछे लौटता मन ब्राह्मण नहीं है। अगर ये मन आगे दौड़ रहा है कि आने वाले गाँव में कोई प्रियजन मिलनेवाला है और पैरों में गति आ गयी, तो ये मन ब्राह्मण नहीं है। (ब्राह्मण का मन वही होता है,जहाँ ब्राह्मण होता है। जहाँ होते हैं हम वही होना काफ़ी है; न पीछे लौटते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी शोक के कारण; न आगे जाते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी सुख के कारण। वर्तमान में होना ब्राह्मण है।)

महावीर कहते हैं कि जो न आसक्ति करता है और जो न उनसे दूर जाता हुआ शोक करता है।

जो आर्य-वचनों में सदा आनन्द पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

आर्य- वचन, इसको समझ लेना चाहिए। महावीर के लिए कोई जाति अर्थ नही रखती। महावीर "आर्य" किसी जातिगत अर्थो मे नही कह रहे हैं। जैसी हिन्दुओं की धारणा है कि हिन्दुओं का पुराना नाम 'आर्य' हैं। महावीर और बुद्ध, दोनो ही 'आर्य' का बड़ा अनूठा अर्थ करते है। वे 'आर्य' उसको कहते हैं, जो अन्तिम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया। वह कोई जातिगत धारणा नही है।

कोई जाति आर्य नही है। इससे बड़े खतरे हुए हैं। हिन्दू हजारों साल तक मानते रहे कि वे 'आर्य' हैं, उन्ही के पास शुद्ध रक्त है, बाकी सब अशुद्ध हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठता से दूसरो को हीन बनाता रहा। इसके उपद्रव कई बार हुए। 'आर्य' शब्द कई दफे खतरनाक बन गया। अभी जो पिछला युद्ध हुआ, दूसरा महायुद्ध, वह इस 'आर्य' शब्द के आस-पास हुआ। हिटलर को फिर यह वहम पैदा हो गया कि वह 'आर्य' है और नारडिक जाति 'आर्य' है, शुद्ध 'आर्य', तो सारी दुनिया पर नारडिक जाति को, जर्मन्स को अधिकार करना चाहिए, क्योंकि बाकी सब शूद्र हैं।

हिटलर को प्रभावित करने वाले लोगो में नीत्शे था, और नीत्शे को प्रभावित करने वालों में मनु; तो हिटलर सीधा मनु से जुड़ा है। और मनु से ज्यादा जातिवादी व्यक्ति नहीं हुआ। महावीर का सारा विरोध मनु से है।

कोई जाति श्रेष्ठ नहीं है; हो नहीं सकती। खून में कोई श्रेष्ठता नही है। खून में क्या श्रेष्ठता हो सकती है? ब्राह्मण का खून निकालें और शूद्र का, कोई

भी दुनिया का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी दोनों की जाँच करके नही कह सकता कि कौन-सा खून शूद्र का है और कौन-सा खून ब्राह्मण का ।

हड्डियों में कुछ जाति नही होती । मांस-मज्जा में कोई जाति नहीं होती । महावीर कहते हैं, जाति होती है चेतना की श्रेष्ठता में। आर्य कहते हैं महावीर उसको, जो परम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया । इस परम श्रेष्ठता को उपलब्ध व्यक्ति के विचारों में, शब्दो में जिसको भरोसा है, ट्रस्ट है, उसे महावीर ब्राह्मण कहते हैं ।

यह थोड़ा समझने-जैसा है, ' आर्य– वचनो में जो सदा आनन्द पाता है ।'

आप हैरान होंगे जानकर कि आपको हमेशा अनार्य–वचनों मे आनन्द मिलता है । क्यो ? क्योकि जब भी कोई अनार्य– वचन आप सुनते है, क्षुद्र, तो पहली तो बात, आप उसे एकदम समझ पाते हैं, क्योकि वह आपकी ही भाषा है । दूसरी बात, उसे सुनकर आप आश्वस्त होते है कि मैं ही बुरा नही हूँ, सारा जगत् ऐसा ही है । तीसरा, उसे सुनते ही आपको जो श्रेष्ठता का चुनाव है, वह जो चुनौती है आर्यत्व की, उसकी पीड़ा मिट जाती है, सब उत्तरदायित्व गिर जाता है ।

ऐसा समझे, फ्रायड ने कहा कि मनुष्य एक कामुक प्राणी है । यह अनार्य–वचन है; असत्य नही है, सत्य है; लेकिन शूद्र सत्य है, निकृष्टतम सत्य है । आदमी की कीचड़ के बाबत सत्य है; आदमी के कमल के बाबत सत्य नहीं है कि आदमी सेक्सुअल है; कि आदमी के सारे कृत्य कामवासना से बंधे हैं, वह जो भी कर रहा है वह कामवासना ही है ।

छोटे-से बच्चे से लेकर बूढ़े आदमी तक सारी चेष्टा कामवासना की चेष्टा है ; यह सत्य है, लेकिन शूद्र सत्य है । यह निम्नतम सत्य है कीचड का । लेकिन सारी दुनिया में इस कीचड़ के सत्य ने लोगों को बड़ा आश्वासन दिया । लोगो ने कहा, तब ठीक है; तब हम ठीक है, जैसे हैं । फिर कुछ बुराई नहीं है । फिर अगर मैं चौबीस घण्टे कामवासना के सम्बन्ध में ही सोचता हूँ, और नग्न स्त्रियाँ मेरे सपनों में तैरती हैं, तो जो कर रहा हूँ वह नैसर्गिक है । अगर मैं शरीर में ही जीता हूँ तो यह जीना ही तो वास्तविक है, फ्रायड कह रहा है ।

फ्रायड ने हमारे निम्नतम को परिपुष्ट किया, इसलिए फ्रायड के वचन थोड़े ही दिनों में सारे जगत् में फैल गये । जितनी तीव्रता से साइको ॲनैलिसिस का, फ्रायड का आन्दोलन फैला, दुनिया में कोई आन्दोलन नहीं फैला । महावीर को पचीस सौ साल हो गये । उपनिषदों को लिखे और पुराना समय हुआ। गीता कहे और भी समय व्यतीत हो गया, पाँच हजार साल हो गये । पांच हजार सालों में भी उन्होंने जो कहा है, वह इतनी आग की तरह नहीं फैला,

जो फ्रायड ने पिछले पचास सालो में सारी दुनिया को पकड़ लिया । साहित्य, फिल्म, गीत, चित्र, सब फ्रायडियन हो गये है। हर चीज फ्रायड के दृष्टिकोण से सोची और समझी जाने लगी। क्या कारण होगा ?

अनार्य-वचन हमारे निम्नतम को पुष्ट करते है। जब भी कोई हमारे निम्नतम को पुष्ट करता है, तो हमे राहत मिलती है। हमें लगता है कि ठीक है, हममें कोई गड़बड़ नही है। अपराध का भाव छूट जाता है। बेचैनी छूट जाती है कि कुछ होना है, कि कहीं जाना है, कि कोई शिखर छूना है। सीधी जमीन पर चलने की स्वीकृती आ जाती है कि ठीक है, आदमी सभी ऐसे हैं।

इसलिए हम सब दूसरो के सम्बध में बुराई सुनकर प्रसन्न होते हैं। कोई निन्दा करता है किसी की, हम प्रसन्न होते है, क्योंकि उस निंदा से हमारे भीतर एक राहत मिलती है कि ठीक है। अगर कोई किसी महात्मा की निन्दा करे तो हमें प्रसन्नता और भी ज्यादा होती है; क्योंकि यह पक्का हो जाता है कि महात्मा-वहात्मा कोई हो नही सकता, सब ऊपरी बातचीत हैं। हैं तो सब मेरे ही जैसे, किसी का पता चल गया है और किसी का पता अभी नही चला है।

तो जब भी आपको किसी की निन्दा में रस आता है, तब आप समझना कि आप क्या कर रहे हैं। आप अपने निम्नतम को पुष्ट कर रहे है। आप यह कह रहे हैं कि अब कोई चुनौती नही, कोई चैलेंज नही; कही जाना नही, कुछ होना नही। जो मै हूँ, ठीक हूँ। इसी कीचड़ में मुझे जीना है और मर जाना है। यही कीचड़ जीवन है।

अनार्य-वचन बड़ा सुख देते है। बहुत अनार्य-वचन प्रचलित है। हम सबको पता है कि अनार्य-वचन तीव्रता से फैलते जा रहे हैं; और धीरे-धीरे हम यह भी भूल गये है कि वे अनार्य है। सब चीजो का जो लोएस्ट डिनॉमिनेटर है, जो निम्नतम तत्त्व है, उससे समझाने की कोशिश चल रही है। आदमी को रिड्यूस करके आखिरी चीज पर खड़ा कर देना है। जैसे हम आदमी को काटें-पीटें तो क्या पायेंगे? हड्डी, मास, मज्जा, तो हम कहेगें कि मनुष्य हड्डी, मास, मज्जा का एक जोड़ है। बात खतम हो गयी, चेतना वहाँ नही मिलेगी।

जो श्रेष्ठतम है, वह हमारे उपकरणों से छूट जाता है। अगर आदमी के व्यवहार की हम जाँच-पड़ताल करें, तो क्या मिलेगा ? कामवासना मिलेगी, वासना मिलेगी, दौड़ मिलेगी महात्त्वाकांक्षा की। फिर हर श्रेष्ठ चीज को हम निकृष्ट से समझा लेंगे ऐसे ही जैसे हम कहेंगे, कमल में क्या रखा है, कीचड़ ही तो है।

यह एक ढग हुआ। इससे हम कीचड़ को राजी कर लेंगे कि कमल होने की मेहनत में मत लग। कमल में भी क्या रखा है, बस कीचड़ ही है। तो कीचड़

की कमल होने की जो आकांक्षा पैदा हो सकती थी, वह कुंद हो जायेगी। कीचड़ शिथिल होकर बैठ जायेगी अपनी जगह; क्यों व्यर्थ दौड़-धूप करना, क्यों परेशान होना।

अनार्य-वचन सुख देते है। आर्य-वचन दुख देते है। महावीर कहते हैं, जो आर्य-वचनों में आनन्द ले सके, वह ब्राह्मण है। भला वह अभी आर्य हो न गया हो, लेकिन आर्य-वचनों में आनन्द लेने का अर्थ ये है कि चुनौती स्वीकार कर रहा है। जीवन के शिखर तक पहुँचने की आकांक्षा को जगने दे रहा है। जो है क्षुद्र उससे राजी नही है, जब तक विराट न हो जाये ।

आर्य-वचनो में आनन्द लेने का अर्थ है कि आर्य वचन जो कह रहे है, मैं वहाँ तक पहुँचना चाहता हूँ। दूर है मंजिल, लेकिन आँखें मेरी उसी तरफ लगी है। पैर मेरे कमजोर हों, लेकिन चलने की मेरी चेष्टा है। गिरूँ न पहुँच पाऊँ, यह भी हो सकता है, लेकिन पहुँचने की चेष्टा मै जारी रखूँगा।

आर्य वचन में आनन्द लेने का अर्थ है कि हम सम्भावना का द्वार खोल रहे है।

लोग हैं जिन्हे यह सुनकर प्रसन्नता होती है कि ईश्वर नहीं है। लोग है जिन्हे सुनकर प्रसन्नता होती है कि आत्मा नही है। लोग है जिन्हें सुनकर सुख होता है कि मोक्ष नही है। बस, यही जीवन सबकुछ है; खाओ, पियो और मौज करो। अगर उनको खयाल आ जाये कि परमात्मा है, तो उनके सुख में एक कंकड पड़ गया। उन्हे ख़याल आ जाये कि इस जीवन के समाप्त होने पर और भी जीवन है, तो सिर्फ़ खाओ, पीओ और मौज करो काफ़ी न्ही मालूम पड़ेगा। फिर कुछ और भी करो। फिर जीवन अपने में लक्ष्य नहीं रह जाता, साधन हो जाता है। किसी और परम जीवन को पाने के लिए।

हम जब इनकार करते है कि ईश्वर नही है, आत्मा नही है, मोक्ष नही है, वो इनकार हम अपने को बचाने के लिए करते है। क्योंकि अगर ये तत्त्व हैं, तो फिर हम क्या कर रहे है। फिर समय नहीं है। फिर जीवन बहुत छोटा है और शक्ति को व्यर्थ खोना उचित नही है।

अगर पश्चिम में इतना भौतिकवाद फैला, तो उसके फैलने का एक कारण तो यह था कि ईसाइयत ने कहा कि कोई पुनर्जन्म नहीं है। पश्चिम में भौतिकता के इतनी तीव्रता से फैल जाने का एक कारण बनी ईसाइयत की यह धारणा कि कोई पुनर्जन्म नही है, एक ही जीवन है। अगर एक ही जीवन है, तो लोगों को लगा कि फिर इसी जीवन को लक्ष्य बनाकर जी लेना उचित है। कोई और जीवन नही है

जिसके लिए इस जीवन को समर्पित किया जाये, त्यागा जाये, साधना में लगाया जाये। समय हाथ से छूटा जा रहा है, इसे भोग लो।

पश्चिम में भोगवाद एक जीवन की धारणा के कारण बड़ी आसानी से फैल सका। जीसस के प्रयोजन दूसरे थे। मगर जीसस, महावीर या बुद्ध के प्रयोजनों से हमें कुछ लेना-देना नही। हम उनके प्रयोजन से भी अपना स्वार्थ निकाल लेते है।

जीसस ने कहा कि एक ही जन्म है, पुनर्जन्म नही है, इसलिये नही कि जीसस को पता नही था। जीसस ने ऐसी बहुत-सी बातो के उल्लेख किये जिनसे साबित होता है कि उन्हे पता है कि पुनर्जन्म है। क्योंकि जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारी उम्र क्या है, तो जीसस ने कहा कि इब्राहिम से पहले भी मै था। इब्राहिम को हुए तब दो हजार साल हो चुके थे।

तो जीसस को पूरा पता था; होगा ही। इतने ज्ञान् को उपलब्ध व्यक्ति को अगर इतना भी पता न हो कि जीवन एक अनन्त धारणा है, एक अनन्त फैलाव है...। लेकिन फिर भी जीसस ने लोगों से कहा कि एक ही जीवन है। और प्रयोजन यह था कि ताकि लोग तीव्रता मे मोक्ष को पाने की चेष्टा में लग जाएँ। क्योकि अगर एक ही जीवन है, तो फिर समय ज्यादा नही है खोने को, लेकिन लोग बडे होशियार है। उन्होने देखा कि समय इतना कम है, कहाँ का मोक्ष, कहाँ का परमात्मा! पहले इसे तो भोग लो! हाथ की आधी रोटी दूर सपनो की पूरी रोटी से बेहतर है।

लोग अपन मतलब से लेते हैं।

मैंने सुना है, बाजार से एक सभ्रात आदमी गुजर रहा था, अपने व्यवसाय की वेशभूषा में सजा-धजा। और एक छोटे-से गरीब लड़के ने आकर कहा, 'महानुभाव, क्या आप बता सकेंगे कि कितना समय है?'

उसने इतने आदर से पूछा कि व्यापारी रुक गया। खीसे से शान से उसने अपनी सोने की घडी निकाली, देखा, घड़ी वापस रखी और कहा कि 'अभी तीन बजने में पन्द्रह मिनट कम है।'

उस लड़के ने कहा, 'धन्यवाद! ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे।' और भाग खड़ा हुआ।

स्वभावत. व्यवसायी क्रोध से भर गया; भागा आग-बबूला होकर उसके पीछे। कोई दो मील भाग पाया होगा, हांफ रहा है, उम्र ज्यादा है, कि नसरुद्दीन मिल गया, पुराना परिचित। उसने व्यापारी को रोका और पूछा कि कहाँ भागे जा रहे हैं? क्या हो गया है इस उम्र में? हाँफ रहे हैं, पसीना-पसीना हो रहे हैं!

उस व्यापारी ने कहा कि वह देखते हैं, नालायक वह लड़का! उसने मुझसे पूछा कि कितना समय है ? तो मैंने घड़ी निकाली उसके लिए रुककर और मैंने कहा कि अभी पौने तीन बजे है । तो उसने कहा कि ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे ।

नसरुद्दीन ने कहा, 'देन वॉट इज़ द हरी, यू हैव इनॅफ़ टाइम येट, टेन मिनिट्स लेफ्ट । इतनी तेज़ी से क्यों दौड रहे हो ? अरे, पैर ही चूमना है न तीन बजे ! इतनी जल्दी क्या है ? '

क्या आदमी अर्थ लेगा, आदमी पर निर्भर है । जीसस ने कहा कि एक ही जन्म है, तेज़ी से लगो, समय ज्यादा नही, ताकि परमात्मा खो न जाये; क्योंकि दूसरा अवसर नहीं है । लोगों ने कहा, इतना ही जीवन है, दूसरे का हमें कुछ पता नही ; ठीक से इसे भोग लो ।

महावीर, बुद्ध और कृष्ण ने कहा है कि अनन्त जीवन है । उन्होंने भी किसी प्रयोजन से ऐसा कहा है । उन्होंने कहा कि अनत जीवन है । बड़ा लम्बा सघर्ष है; एक ही जीवन मे पूरा न हो पायेगा । लेकिन चेष्टा करोगे तो अनन्त जीवन में सत्य के निकट पहुँच जाओगे ।

अनत जीवन का खयाल इसलिए दिया ताकि तुम चेष्टा कर सको । अनन्त जीवन का इसलिए खयाल दिया ताकि तुम इस जीवन को सब-कुछ न समझ लो । इसे तुम उपकरण बनाओ, साधन बनाओ अगले जीवन में और श्रेष्ठतर स्थिति पाने के लिए । यह जीवन सब-कुछ न हो जाये, इसलिए अनन्त जीवन की धारणा दी । लेकिन हमने क्या मतलब निकाला !

हमने कहा, अनन्त पड़े है जीवन; पहले इसे तो भोग लें । जल्दी क्या है ? वॉट इज़ द हरी ? जल्दी क्या है, इस जन्म में नही हुआ तो अगले जन्म में कर लेंगे । अगले जन्म में नही हुआ तो और अगले जन्म में करेंगे । अनंत अवसर हैं; जल्दी कुछ भी नहीं है, पहले इसे तो भोग लें जो हाथ में है ।

आदमी बहुत बेईमान है । सभी सिद्धान्तो से वह अपना मतलब और स्वार्थ खीच लेता है ।

महावीर कहते है कि आर्य-वचनों में जो आनन्द पाता है, जो अपना स्वार्थ नही खोजता और आर्य-वचनों को अपने तल पर नहीं खींच लेता, बल्कि स्वयं को आर्य वचनों के तल पर खीचने की कोशिश करता है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है ।

'जो अग्नि में डालकर शुद्ध किये हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

'... अग्नि में डालकर शुद्ध किए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है।'

जिस अग्नि को आप जानते है वही अग्नि नही है, और भी अग्नियाँ हैं। जो बाहर दिखायी पड़ती है वही अग्नि नही है, भीतर भी अग्नि है। सारा जीवन अग्नि का ही फैलाव है। और जिस सोने को आप बाहर देखते है, वही सोना नहीं है, भीतर भी सोने की सम्भावना है। लेकिन वहाँ सब मिट्टी मिला हुआ है, कचरा मिला हुआ है। हमने कभी उसे शुद्ध नहीं किया। असल में हम बाहर के सोने की चिन्ता में, इतने पड़े रहते है कि भीतर के सोने की फिक्र कौन करे। और बाहर के सोने को ही खोजने में जीवन समाप्त हो जाता है; भीतर के सोने को खोजने का मौका ही नहीं आता। कभी दुख, पीड़ा में, परेशानी में हम भीतर का ख़याल भी करते है, तो सुख में फिर भूल जाते हैं। सुख बहिर्गामी है। दुख में थोड़े-से भीतर भी जाते है, तो सुख के आते ही ...।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत बीमार था, बहुत दुखी था। एक दिन बीमारी, पीड़ा की चिन्ता में मस्जिद चला गया; वैसे जाता नहीं था। मौलवी से जाकर कहा, 'मेरे लिए प्रार्थना करो। मै तो पापी हूँ, तुम पुण्यात्मा हो। तुम्हारी प्रार्थना जरूर स्वीकार होगी। मै तो किस मुँह से प्रार्थना करूँ, मेरे लिए प्रार्थना करो। अगर मैं बच गया इस बीमारी से, हालाँकि चिकित्सक कहते हैं कि बच न सकूँगा, बीमारी घातक है; अगर बच गया इस बिमारी से तो पाँच रुपये — पाँच रुपये काफी थे — पाँच रुपया मस्जिद को दान करूँगा!'

मुल्ला के ये वचन सुनकर मौलवी को भरोसा तो न आया कि वह पाँच रूपये दान करेगा, लेकिन उसने सोचा दुख में आदमी कभी-कभी कर भी देता है। दुख में कभी-कभी धर्म और परमात्मा स्मरण भी आ जाता है। और फिर कौन जाने दुख में कभी आदमी बदल भी जाता है।

मौलवी ने प्रार्थना की। सयोग की बात, मुल्ला बच भी गया! बच जाने के बाद, स्वस्थ हो जाने के बाद, मौलवी ने कई दफा कोशिश की और उसके घर का दरवाजा खटखटाया। लेकिन मुल्ला ने अपने लड़कों को, पत्नी को, घर में सबको कह रखा था कि जब भी मौलवी रुपये माँगने घर पर आये, तो उसे फौरन कह देना कि मुल्ला घर पर नहीं है।

दो महीने मौलवी नसरुद्दीन के घर के चक्कर काटता रहा मस्जिद के उन पाँच रूपयों के लिए। आखिर एक दिन उसने बाजार में पकड़ ही लिया कि

नसरुद्दीन, रुको ! हद कर दी ! बीमारी से बच भी गये, प्रार्थना स्वीकृत भी हो गयी, लेकिन उन पाँच रुपयों का क्या हुआ ?

नसरुद्दीन ने कहा, 'कैसा पाँच रुपया ? क्या मैं इतना ज्यादा बीमार था कि पांच रुपया बोल गया दान ? मैं होश में न रहा होऊँगा। इसीसे तुम समझ सकते हो, नसरुद्दीन ने कहा, कि मैं कितना बीमार था !'

आदमी दुख के क्षण में कभी घबड़ा जाता है, तो भीतर सोचता भी है। लेकिन उसका वह सोचना क्षणभर का होता है; सुख का क्षण आया कि फिर बाहर बहने लगता है।

भीतर भी कुछ है, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। और भीतर ही सब-कुछ है। सोना भीतर है, खज़ाना भीतर है, और हम भिक्षापात्र लिए बाहर माँगते रहते हैं। मरने के वक्त भिक्षापात्र ही हाथ में होता है, खाली। होगा ही, क्योंकि सोना बाहर नहीं है। बाहर का सोना जुटाने में जो लगे हैं, उनसे ज्यादा नासमझ कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि इसी समय का उपयोग भीतर के सोने को खोदने में हो सकता था। वहाँ अनन्त खान है। जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह भीतरी सोने की खदान है। लेकिन उस तरफ़ हमारे हाथ नहीं पहुँच पाते।

महावीर कहते हैं कि जो भीतर के सोने की खोज में लग जाये, वह ब्राह्मण है। न केवल खोज में लगे, बल्कि भीतर के सोने को खोजकर अग्नि में शुद्ध करे। अग्नि यानि तप, अग्नि यानि साधना, तपश्चर्या, योग, तन्त्र – जो भी हम नाम देना चाहें।

कभी भीतर अपने को तपाकर देखें किसी क्षण में। आप हमेशा कमजोरी की तरफ झुक जाते हैं। आप कभी सबल होने की तरफ़ नहीं झुकते। क्रोध उठा, यह बिलकुल स्वाभाविक, सहज है कि आप क्रोध प्रगट कर दें। पशु भी कर रहे हैं। कुछ ख़ास बात नहीं है। क्रोध करके आप कुछ खास हो नहीं जायेंगे; एक पाशविक वृत्ति है। लेकिन क्या आपने कभी ऐसा किया है कि जब क्रोध उठे, क्रोध की ऊर्जा शरीर से बाहर जाये, तब रुक जायें, क्रोध को बैठ जाने दें भीतर। दबायें भी नहीं, क्योंकि दबाने से जहर बन जायेगा। निकालें भी नहीं, क्योंकि निकालने से जहर दूसरे पर चला जायेगा। सिर्फ साक्षी-भाव से देखते रहें कि क्रोध उठा है, और कोई भी प्रतिक्रिया न करें ?

तो आप अग्नि से गुज़र रहे हैं। तब क्रोध अग्नि बन जायेगी, लपट बन जायेगी। और अगर आप बिना कुछ किये इस लपट को देखते रहें, बिना कुछ किये. . ।कोई निर्णय नहीं लेना। न तो यह कहना कि यह बुरा है, क्योंकि बुरा कहा

कि दबाना शुरू हो गया, तो ख़ुद के शरीर में ज़हर फैल जायगा। अगर कहा कि बिलकुल ठीक है, स्वाभाविक है; दुनियामें सभी क्रोध करते है, मैं क्यों न करूँ, और किया तो दूसरे के शरीर पर ज़हर पहुँच गया। और क्रोध अगर किया तो और क्रोध को करने का द्वार खुल गया। आदत निर्मित हुई। कल और जल्दी क्रोध आ जायेगा। परसो और जल्दी क्रोध आ जायेगा। धीरे-धीरे क्रोध जीवन हो जायेगा।

लेकिन अगर न आपने क्रोध को दबाया और न क्रोध को प्रगट किया, बल्कि चेतना को संभाला और क्रोध को देखा, कोई निर्णय न लिया कि अच्छा या बुरा, करूँ या न करूँ, सिर्फ़ देखा कि क्या है क्रोध, तो आप एक अग्नि से गुजर रहे है। जो आग दूसरे को जलाती, जो आग अगर दबा दी जाती तो आपके स्नायुओं को नष्ट करती और आपके शरीर को विषाक्त करती, अगर उस आग का कोई भी उपयोग न किया जाये, वह तप हो जाती है। उस आग को अगर सिर्फ देखा जाये, तो वह आग आपके सोने को निखारने लगती है।

और अगर आप एक क्रोध को सिर्फ़ देखने में समर्थ हो जाये तो आप इतने आनन्दित होंगे इस अनुभव के बाद कि आप कल्पना नही कर सकते। इतना बल मालूम होगा। आप अपने मालिक हुए। अब कोई दूसरा आदमी आपको क्रोधित नही करवा सकता। इसका मतलब हुआ कि अब दूसरे लोग आपके ऊपर हावी नही हो सकते। अब दुनिया की कोई ताकत आपको परेशान नही कर सकती। अब आप, चाहे सारी दुनिया आपको परेशान कर रही हो, तो भी निश्चिन्त रह सकते हैं।

इसका नाम जिनत्व है, ऐसी निश्चिन्तता जो दूसरे से मुक्त होकर उपलब्ध होती है। जब आप क्रोध करते है, तब आप दूसरे के गुलाम हैं। यह सुनकर हैरानी होगी, क्योंकि क्रोध करनेवाला समझता है मै दूसरे को ठीक कर रहा हूँ। क्रोध करनेवाला समझता है अगर मैंने क्रोध न किया तो दूसरा मेरा मालिक हुआ जा रहा है।

आपको पता नही है कि जीवन बड़ी जटिल बात है। जब आप क्रोध करते हैं, तो आपने दूसरे को मालिक स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसने आपको क्रोधित करवा दिया। आपकी चाबी उसीके हाथ में है। किसी ने आपको गाली दी, उसने चाबी घुमा दी, आपका ताला खुल गया। उसकी चाबी घूमती रहे और ताला नही खुले, तो चाबी बेकार हो गयी। वह चाबी फेंकने-जैसी हो गयी।

अगर दुनिया में अधिक लोग अपने क्रोध को, अपने सोने को निखारने का उपाय बना लें, तो दूसरे लोगों को भी अपनी चाबियाँ फेंकने का मौका मिले; क्योंकि तब उनका कोई अर्थ न रहेगा। जो चाबी लगती ही नहीं उसका क्या करोगे?

अगर कोई गाली देता ही और उसकी गाली की कोई प्रतिक्रिया नही होती, तो दुनिया से गालियाँ गिर जाय।

गालियों में वजन है, क्योंकि गालियों से लोग प्रभावित होते है। सच तो यह है कि आप चाहे किसी और चीज से प्रभावित न भी हों, गाली से जरूर प्रभावित होते हैं। कोई जरा गाली दे दे, आप एकदम आन्दोलित हो जाते है, जैसे तैयार ही बैठे थे। बारूद तैयार थी, किसी की चिनगारी की जरूरत थी। जरा-सी चिनगारी और भभक उठ आयेगी।

कामवासना उठती है; अग्नि है, वस्तुत: अग्नि है। रोआँ-रोआँ आग से भर जाता है, खून गरम हो जाता है, स्नायु तन जाते है। लेकिन इस आग को आप किसी पर उड़ेल दे सकते है। यह कामवासना दूसरे पर भी उड़ेली जा सकती है और खुद में भी दबायी जा सकती है। दोनों ही गलत है। क्योंकि खुद में दबाने से हर चीज रोग बन जाती है; दूसरे पर उड़ेलने पर रोग और फैलता है, और रोग की आदत निर्मित होती है।

कामवासना जगी है और आप चुपचाप साक्षी-भाव से देख रहे हैं। भीतर खड़े हो गये हैं, भीतर के मंदिर में, आँख बंद कर ली है ओर देख रहे है कि शरीर में कैसी कामवासना फैल रही है, कैसा रोआँ-रोआँ उससे कम्पित और आन्दोलित हो रहा है। उसे देखते रहे। यह आग आपकी चेतना को निखार जायेगी। इस आग की चमक में आप जग जायेंगे। इस आग की तप्तता से आपके भीतर का कचरा जल जायेगा।

जीवन की समस्त वासनाएँ अग्नियाँ बन सकती है। उनके तीन उपयोग हैं . या तो दूसरे को नुकसान पहुँचायें, या अपने को नुकसान पहुँचाये, और या फिर अपनी आत्मा को उस अग्नि से निखारें।

इस निखार के लिए महावीर कह रहे है कि जो अग्नि में डालकर शुद्ध किये हुए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान..

कसौटी पर भी कसा जाना जरूरी है। क्योंकि पता नही अग्नि सोने को निखार पायी या नही निखार पायी। इसकी कसौटी कहाँ होगी? अग्नि मे सोना डाल देना काफ़ी नही है। हो सकता है अग्नि कमजोर रही हो, सोने का कचरा मजबूत रहा हो, पर्तें गहरी रही हो, सोना न शुद्ध हो पाया हो। . . .कसेंगे कहाँ?

इस सम्बन्ध में एक बात समझ लेनी बहुत आवश्यक है। महावीर, बुद्ध, मुहम्मद या क्राईस्ट या कोई भी कुछ समय के लिए समाज से हट जाते है। समाज से हटने का वह समय कचरा को जलाने का समय है। लेकिन फिर समाज में वापस लौट आते हैं। वह लौटना कसौटी का समय है।

मै एकान्त में जाकर बैठ जाऊँ और मुझे क्रोध न उठे, क्योंकि वहाँ कोई गाली देनेवाला नहीं है। वर्षों बैठा रहूँ और मेरे भीतर क्रोध न उठे, तो मुझे वहम भी

पैदा हो सकता है कि अब मै क्रोध का विजेता हो गया । कसौटी कहाँ है ? मुझे लौटकर समाज में आना पड़ेगा । मुझे भीड़ में खड़ा होना पड़ेगा । मुझे लोगों से सम्बन्धित होना पड़ेगा । और तब अगर मुझे कोई गाली दे, कोई मुझे नुकसान पहुँचाये, और तब मेरे भीतर क्रोध की झलक भी न आये, तब अग्नि की एक भी लपट न उठे, मेरे भीतर कुछ भी जले नही, तो कसौटी होगी।

समाज कसौटी है । उचित है, ज़रूरी है कि साधक कुछ समय के लिए समाज से हट जाये । लेकिन सदा एकान्त में रहना खतरनाक है । तब आग से तो आप गुज़रे, लेकिन कसौटी कहाँ है ? इसलिए जो साधक वन में ही रह जाते हैं सदा के लिए, अधूरे रह जाते हैं । जगल की तरफ़ जाना ज़रूरी है । आग से पक जाने और गुज़र जाने के बाद वापस लौट आना भी उतना ही ज़रूरी है । क्योंकि यही कसौटियाँ हैं । यहाँ चारों ओर कसौटियाँ घूम रही हैं, वे आपको ठीक से कसौटी करवा देंगी । यहाँ धन है, यहाँ वासना है, यहाँ काम के सब उपकरण हैं ।

अभी एक कैम्प था माउण्ट आबू में । एक जैन मुनि बड़ी हिम्मत करके. . .बड़ी हिम्मत. . . 'क्योकि उन्होंने कहा कि ' मै देखने आना चाहता हूँ कि वहाँ लोग कैसे ध्यान करते है । ' मैंने उनसे कहा कि 'देखने से क्या दिखायी पड़ेगा, आप करें ही ।' तो उन्होंने कहा कि ' वह तो ज़रा मुश्किल हो जायेगा ।' मैंने पूछा कि ' डर क्या है ?' तो वह कहने लगे कि ' वहाँ तो अभिव्यक्ति होती है, किसी के भीतर कुछ भी हो वह बाहर निकालना है ।' तो मैने कहा, ' भीतर कुछ है तो निकलेगा, नही है तो नही निकलेगा । डर क्या है ? है तो निकाल कर जान लेना ज़रूरी है; कसौटी हो जायेगी कि भीतर कुछ पड़ा है । और अगर भीतर कुछ भी नही है, तो भी आनन्द का अनुभव होगा कि भीतर कुछ भी नहीं पड़ा है ।' पर उन्होंने कहा कि ' नही, आप तो इतनी ही आज्ञा दें कि मै बैठकर देख सकू ।' आपकी मर्जी । लेकिन जो कर नही सकता, मैंने कहा, वह ठीक से देख भी नही पायेगा ।

और यही हुआ । जब लोगों ने ध्यान करना शुरू किया तो वह कोई दो मिनट तक तो देखते रहे, फ़िर सामने ही ध्यान करती एक युवती ने अपना वस्त्र अलग कर दिया । मुनि जी ने तत्काल आँखे बन्द कर ली ! फिर वह देख नही सके !

. . . नग्न स्त्री !

स्त्री को देखने की ही घबराहट है, तो नग्न स्त्री को देखने में तो बहुत घबराहट हो जायेगी । लेकिन घबराहट बाहर है या भीतर ?

भीतर कोइ कम्पित हो गया । भीतर कोई वासना उठ गयी, भीतर कोई परेशानी खड़ी हो गयी । आँख उस स्त्री से थोड़े ही बन्द की जा रही हैं । आँख बन्द

करके वह जो भीतर उठ रहा है, उसे दबाया जा रहा है। यह जो दबाया जा रहा है इससे कभी मुक्ति न हो पायेगी। यह दबा हुआ सीधा पीछा करेगा, जन्मों-जन्मों तक सतायेगा। मैंने उनसे कहा कि आप सोचते थे देख पायेंगे, लेकिन देख नहीं पाये। क्योंकि जो डर करने में था, वही डर देखने में भी है।

वासना भीतर खड़ी है। एकान्त में इसका निरीक्षण, इसका साक्षी-भाव उचित है। और अच्छा है कि प्रारम्भ में साधक एकान्त में चला जाये ताकि और चीज़ों के उपद्रव न रह जायें। एक ही बात रह जाये जीवन में साधना की। लेकिन वह अन्त नहीं है, लौट तो समाज में ही आना पड़ेगा।

तो महावीर कहते है कि 'जो अग्नि में डालकर शुद्ध किये हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

... राग, द्वेष तथा भय से रहित है।

राग, द्वेष से रहित कौन हो सकता है? राग और द्वेष दो चीज़ें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो राग से भरा है, वह द्वेष से भी भरा होगा; जो द्वेष से भरा है, वह राग से भी भरा होगा। लेकिन इसे समझा नहीं गया है। आमतौर से तो हालत बड़ी उलटी हो गयी है। दुनिया में दो तरह के लोग हैं इस वक्त : राग से भरे हुए लोग, जिन्हे हम गृहस्थ कहते है और द्वेष से भरे हुए लोग, जिन्हे हम साधु-संन्यासी कहते हैं। जिस-जिस चीज़ से आपको राग है, साधु को उसी-उसी से द्वेष है। लेकिन महावीर कहते है, राग और द्वेष दोनो से जो मुक्त है, वह ब्राह्मण है। क्योंकि द्वेष राग का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है।

एक आदमी स्त्री के पीछे दीवाना है, पागल है, बस उसे सिर्फ स्त्री दिखायी पड़ती है। फिर यही आदमी कल संन्यस्त हो सकता है। तब यह स्त्री से बचने के लिए पागल हो जायेगा। तब कहीं कोई स्त्री छू न ले, कोई स्त्री पास न आ जाये, कहीं कोई स्त्री एकान्त में न मिल जाये। तब यह भयभीत हो जायेगा। यह भागेगा। यह डरेगा।

पहले भी भाग रहा था। पहले यह स्त्री की तरफ़ भाग रहा था; अब स्त्री की तरफ़ से भाग रहा है। लेकिन ध्यान स्त्री पर ही लगा हुआ है। पहले राग था, अब द्वेष है। पहले धन इकट्ठा कर रहा था, अब धन को देखता है तो आँखें बन्द कर लेता है। पहले धन को छूकर इसे बड़ा मज़ा आता था, जैसे धन में भी प्राण हो। अब कोई धन को पास ले आये तो हाथ सिकोड़ लेता है कि कहीं धन छू न जाये, जैसे धन में अब भी प्राण है और धन इसको बिगाड़ सकता है। इस आदमी में कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा है। फ़र्क नहीं पड़ रहा है।

राग और द्वेष में फ़र्क नहीं है। द्वेष राग की ही उलटी तस्वीर है। जो भी राग करते हैं, किसी भी दिन द्वेष कर सकते हैं। जो भी द्वेष करते हैं, किसी भी दिन फिर राग कर सकते हैं। और राग, द्वेष घड़ी के पेन्डुलम की तरह बदलते रहते हैं। सुबह द्वेष, साँझ राग, साँझ राग, सुबह द्वेष। आप अपने ही जीवन में अनुभव करेंगे तो पता चलेगा, प्रतिपल यह बदलाहट होती रहती है। यह बदलाहट, यह द्वन्द्व हमारे विक्षिप्त मन का हिस्सा है।

महावीर कहते हैं, राग, द्वेष से मुक्ति, दोनो से एक साथ। न तो किसी चीज़ के प्रति आसक्ति और न किसी चीज़ के प्रति विरक्ति। यह बड़ी कठिन है, क्योंकि हम तो विरक्त को सन्यासी कहते हैं, पर महावीर नही कहते। महावीर ने एक नया शब्द खोजा, उसे वे कहते हैं 'वीतराग'। आसक्ति में बंधा हुआ आदमी और विरक्त, दोनो एक-जैसे हैं। वीतराग का अर्थ है. दोनो के पार। अब वहाँ दोनों नही हैं। आदमी सरल हो गया, सहज हो गया।

एक बड़ी अद्‌भुत शर्त साथ मे लगायी है कि जो राग, द्वेष और भय से रहित है।

क्योंकि यह भी हो सकता है कि हम राग, द्वेष से रहित होने की कोशिश भय के कारण करे। हममें से बहुत-से लोग धार्मिक भय के कारण होते हैं, डर के कारण। डर नर्क का, डर पाप का, डर अगले जन्म का, मृत्यु के बाद सताये तो नहीं जायेंगे? पता नही क्या होगा!

आदमी मृत्यु से उतना नही डरता जितना दुख से डरता है। मेरे पास बूढ़े लोग आते हैं, वे कहते है कि मृत्यु का हमें डर नही है, इतना ही आशीर्वाद दे दें कि सुख से मरें। कोई दुख न पकड़े, कोई बीमारी न पकड़े; सड़ें-गलें नही।

मृत्यु का डर नही है, डर दुख का है। मृत्यु में क्या है, कोई फिक्र नही है। लेकिन कैंसर हो जाये, टी बी. हो जाये, सड़ें—गलें, दुख पायें, उसका डर है। जैसे है, स्वस्थ मर जायें।

मृत्यु से भी ज्यादा डर दुख का है। और पुरोहितों को पता चल गया है कि आदमी दुख से डरता है, इसलिये उन्होने बड़े नर्क का इन्तज़ाम कर दिया है। उन्होने नर्क बना दिया कि अगर तुमने पाप किया, अगर राग किया, द्वेष किया, यह किया, वह किया तो नर्क में सड़ोगे। नर्क के डर के कारण बहुत-से लोग धार्मिक बने हैं।

अब ये नर्क का डर रोज़-रोज़ कम होता जा रहा है, लोगो का धर्म भी कम होता जा रहा है उसी अनुपात में। जिस दिन नर्क बिलकुल समाप्त हो

जायेगा, आप बिलकुल अधार्मिक हो जायेंगे, क्योंकि आपका धर्म सिवाय भय के कुछ भी नही है। भगवान् की मूर्ति के सामने जब आप घुटने टेकते हैं, वो भय में टेके गये घुटने हैं। और भय का क्या सम्बन्ध सत्य से हो सकता है!

महावीर कहते हैं, अभय सत्य की खोज का पहला चरण है। और जो अभय नही है, वह ब्राह्मण नही हो सकता। इसलिए महावीर ने तो प्रार्थना तक को विसर्जित कर दिया। महावीर ने कहा: प्रार्थना में भय छिपा रहता है, माँग छिपी रहती है। प्रार्थना की भी कोई जरूरत नही है, सिर्फ़ अभय हो जाने की जरूरत है। कौन आदमी अभय हो सकता है? भय मौजूद है, वास्तविक है। मौत है, दुख है, पीड़ा है।

तो एक तो उपाय यह है कि कोई दुख न रह जाये, तब आदमी निर्भय हो जाये, अभय हो जाये। पर दुख तो रहेंगे। कोई दुनिया का विज्ञान आदमी को दुख से मुक्त नही कर सकता; एक दुख को बदल कर दूसरे दुख में ही डाल सकता है। ऐसी कोई स्थिति नही हो सकती जमीन पर, जब कोई दुख न हो। पाँच हजार साल का अनुभव है: पुराने दुख हट जाते है, नये दुख आ जाते है। पुरानी बीमारियाँ चली जाती है, नयी बीमारियाँ आ जाती है। प्लेग नहीं है अब। बहुत-से मुल्कों मे मलेरिया विदा हो गया है। प्लेग खो गयी, काला बुखार नही रहा। लेकिन क्या फ़र्क पड़ता है, उससे भी भयकर बीमारियाँ मौजूद हो गयी है।

आदमी सुख में नही हो सकता, अकेले सुख मे नही हो सकता; दुख सुख के साथ जुड़ा है। हम इधर सुख का इन्तजाम करते है, उतने ही दुख का इन्तजाम उसके साथ ही हो जाता है। तो महावीर कहते है कि दुख से मुक्त होने की कोशिश एक ही अर्थ रखती है कि मेरी चेतना दुख और सुख से पृथक हो जाये। और कोई उपाय नही है।

विज्ञान मनुष्य को आनन्द मे नही उतार सकता; बड़े सुख में ले जा सकता है, लेकिन साथ ही बड़े दुख में भी ले जायेगा। इसलिए जितना विज्ञान सुविधा जुटाता है, उतना ही आदमी को असुविधा का अनुभव होने लगता है। एक आदमी धूप में दिनभर काम करता है, उसे धूप का दुख निरन्तर के अनुभव से कम हो जाता है। एक आदमी छाया में बैठकर काम करता है। छाया में निरन्तर बैठने से छाया का सुख होता है, लेकिन धूप का दुख बढ़ जाता है। अब यह आदमी धूप में जायेगा तो बहुत दुख पायेगा, जो धूप में काम करनेवाला कभी नहीं पायेगा।

आप जितना सुख बढ़ाते हैं, उतने साथ ही दुख की क्षमता बढ़ती जाती है। क्योंकि सुख के साथ ही साथ आप डेलिकेट होते जाते हैं, नाजुक होते जाते हैं

और जितने नाजुक होते हैं, उतना रिजिस्टेन्स कम हो जाता है, प्रतिरोध कम हो जाता है ।

तो हमने सब बीमारियों का इलाज खोज लिया, लेकिन आदमी का प्रतिरोध कम हो गया और प्रतिरोध कम हो जाने से हजार नयी बीमारियाँ खड़ी हो गयीं ।

हम आदमी को जितना सुख देंगे, उतना ही उसके साथ दुख की खाई बढ़ती जायेगी । विज्ञान बड़े सुख दे सकता है; बड़े दुख देगा ।

महावीर कहते हैं, आनन्द की तो एक ही सम्भावना है कि दुख और सुख से मैं अपनी चेतना को पृथक कर लूं । राग, द्वेष से अलग होने का अर्थ है, मैं साक्षी हो जाऊँ । न तो मैं किसी के खिलाफ़, न किसी के पक्ष में, न तो सुख की आकांक्षा और न दुख का विरोध । जो भी घटित हो, मैं उसका देखने वाला रह जाऊँ ।

महावीर का धर्म अभय पर खड़ा धर्म है । अंग्रेजी में एक शब्द है, गॉड-फियरिंग । हिंदी मे भी एक शब्द है, ईश्वरभीरु, ईश्वर से डरने वाला महावीर ऐसे शब्द को धर्मशास्त्र मे जगह नहीं देंगे । महावीर कहेंगे, जो डरता है, वह तो कभी भी सत्य को उपलब्ध नही हो सकता। भयभीत चित्त का कोई सम्बन्ध सत्य से होने की सम्भावना नही है । तो महावीर कहते हैं : राग, द्वेष और भय मे जो रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

'जो तपस्वी है. . . ।'

जो भीतर जीवन की वासना की जो अग्नि हैं, उसको यज्ञ बना रहा है । जो भीतर अपने को निखार रहा है । अपने जीवन की पूरी ऊर्जा का उपयोग जो व्यर्थ बाहर नही खो रहा है । बल्कि सारा ईंधन एक ही काम में ला रहा है कि मेरे भीतर का सोना निखर जाये, वह, तपस्वी है ।

'. . . जो दुबला-पतला है ।'

यह जरा सोचने-जैसा है, क्योंकि महावीर की प्रतिमा दुबली-पतली नही है । इससे बड़ी भ्रान्ति पैदा हुई है । महावीर की प्रतिमा बड़ी बलिष्ट और स्वस्थ है, दुबली-पतली जरा भी नही है । और महावीर की एक भी प्रतिमा उपलब्ध नही है, जिसमें वे दुबले-पतले हों । हाँ, बुद्ध की एक प्रतिमा उपलब्ध है, जिसमें वे हड्डी-हड्डी रह गये हैं । महातप उन्होंने किया जिसमें वे बिलकुल सूख गये हैं, और उनकी पीठ और पेट एक हो गये । वे इतने कमजोर हो गये थे कि उठ भी नही सकते थे; नदी में स्नान करने गये हैं निरंजना में,. इतने कमजोर हो गये हैं कि नदी से निकलने की ताकत भी नहीं रह गयी, तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके हुए हैं ।

जरूर महावीर और बुद्ध की तपश्चर्या में कुछ बुनियादी फ़र्क़ है। बुद्ध जरूर कुछ गलत तपश्चर्या कर रहे थे और इसीलिए बुद्ध को छह साल के बाद तपश्चर्या छोड़ देनी पड़ी। और बुद्ध ने कहा कि तप से कोई मुक्त नहीं हो सकता। उनका अनुभव ठीक था। उन्होंने जो तप किया था, उससे कभी कोई मुक्त नहीं हो सकता। वह उस तप को छोड़कर मुक्त हुए।

लेकिन इस पर बहुत गम्भीर विचारणा नहीं हुई, क्योंकि महावीर तप से ही मुक्त हुए। लेकिन महावीर ने वैसा तप कभी नहीं किया, जैसा बुद्ध ने किया। बुद्ध के तप में कोई भ्रान्ति थी। बुद्ध एक तरफ़ भोगी थे; फिर एकदम विपरीत तपस्वी हो गये। उन्होंने शरीर को सुखा डाला; खून, मांस सब सूख गया; हड्डी-हड्डी हो गये; इतने कमजोर हो गये कि ऊर्जा ही न बची जो कि भीतर के सोने को निखार सके। तो उन्हें उस तप को छोड़ देना पड़ा। लेकिन महावीर कभी हड्डी-हड्डी नही हुए।

महावीर का यह वचन समझने-जैसा है। महावीर कहते हैं, 'जो दुबला-पतला है, जो इन्द्रिय-निग्रही है, उग्र तप.साधना के कारण जिसका रक्त और मांस भी सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

महावीर की प्रतिमा को ख़याल में रखकर इस वचन को समझना जरूरी है, नही तो भ्रान्ति महावीर के अनुयायी भी करते रहे है। महावीर कहते हैं कि मनुष्य के शरीर मे रक्त और मास अकारण नही होता। रक्त और मांस के होने के दो कारण हैं। एक तो शरीर की जरूरत है कि शरीर बिना रक्त और मांस के जी नही सकता। वह शरीर का भोजन है, शरीर का ईंधन है। लेकिन जितना शरीर को चाहिए, उतने से ज्यादा आदमी इकट्ठा कर लेता है और वह जो ज्यादा इकट्ठा किया हुआ है, वह मनुष्य को वासनाओं में ले जाता है।

ध्यान रहे, अगर आपको अचानक लाख रुपये मिल जायें, तो आप क्या करेंगे? आप एकदम, आपकी जो-जो बुझी पड़ी वासनाएँ हैं, उनको सजग कर लेंगे। एक लाख का खयाल आते ही से आपकी वासनाएँ भागने लगेंगी। क्या कर लूं? कहाँ भोग लूं?

नया-नया धनी हुआ आदमी बड़ा पागल हो जाता है। नया धनी अपनी सारी वासनाओं को जगा हुआ पाता है। इसलिए नये धनी को पहचानने में कठिनाई नही है। उसका धन उछलता हुआ दिखायी पड़ता है। उसका धन वासना की दौड़ बन जाता है।

जैसे ही आपके शरीर में जरूरत से ज्यादा खून, मांस, मज्जा इकट्ठी हो जाती है, आप उसका क्या करेंगे? और मनुष्य के पास संग्रह करने का उपाय है।

मनुष्य के शरीर में उपाय है। तीन महीने के लायक भोजन तो हम शरीर में इकट्ठा रखते ही हैं। इसलिए कोई भी आदमी तीन महीने तक उपवास कर सकता है, मरेगा नही। सामान्य स्वस्थ आदमी अगर नब्बे दिन भूखा रहे तो मरेगा नहीं, क्योंकि नब्बे दिन के लिए भोजन शरीर में रिजर्व, सुरक्षित रहता है। हम अपना मांस पचाते जायेंगे नब्बे दिन तक। इसलिए जब आप उपवास करते हैं तो हर रोज एक पौंड, डेढ़ पौंड वजन गिरने लगता है। कैसे गिर रहा है वजन? यह वजन कहाँ जा रहा है? शरीर को बाहर से भोजन नहीं दिया जा रहा है, तो शरीर के पास एक दोहरी व्यवस्था है, शरीर अपने ही मांस को पचाने लगता है।

उपवास एक तरह का मांसाहार है, अपना ही मास पचाना है। डेढ़ पौंड, दो पौंड मास रोज पचा जायेगा। स्वस्थ आदमी के शरीर में तीन महीने तक के लायक सुरक्षित व्यवस्था होती है। लेकिन इस तीन महीने से ज्यादा भी हम इकट्ठा कर लेते हैं। हम बड़े कृपण हैं, कंजूस हैं। हम सब चीजें इकट्ठी करते रहते हैं। हम इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि उसे फेंकना जरूरी हो जाता है। उसे न फेंके तो वह बोझ हो जायेगा। वह जो अतिरिक्त बोझ हो जाता है, वह हमारी वासनाओं में फेंकने लगता है।

तो महावीर जब कहते हैं 'दुबला-पतला', तो उनका मतलब है सामान्य, स्वस्थ, जो कृपण नही है, जो मांस-मज्जा को इकट्ठा करने में नही लगा है, क्योंकि वह इकट्ठी मांस-मज्जा गलत मार्गों पर ले जायेगी; बोझ हो जायेगा।

पश्चिम में अगर आज वासना का ज्वार आ गया है, उसका एक कारण यह है कि जरूरत से ज्यादा भोजन आज पश्चिम में पहली दफा उपलब्ध है। इतना भोजन उपलब्ध है कि बड़ी हैरानी की बात है, उस भोजन का उपयोग क्या किया जाय? अगर आपको बहुत ज्यादा दूध और पौष्टिक पदार्थ मिलें, तो आपकी कामवासना बढ जायेगी। इतनी भी ज्यादा बढ सकती है कि आपको चौबीस घण्टे कामवासना ही घेरे रहे। क्योंकि इतना वीर्य आप रोज उत्पन्न कर लेंगे कि उसे फेंकना जरूरी हो जायेगा।

महावीर कहते हैं, शरीर पर दृष्टि रखनी जरूरी है कि शरीर में अतिरिक्त इकट्ठा न हो। अतिरिक्त इकट्ठा होगा तो वासना में खींचेगा। शरीर में उतना ही हो जितना जरूरी है ताकि जितना आत्मा को जगाने और रोशन करने के लिए काफी है उतना दिया भीतर जल जाये और बाहर की तरफ़ की वासना न उठे।

'तो महावीर कहते हैं कि जो दुबला-पतला है, जिसका रक्त और मांस सूख गया है।'

इसका यह मतलब नहीं कि उसका रक्त और मांस बिलकुल सूख गया है। रक्त, मांस सूख गया है मतलब अतिरिक्त रक्त, मांस सूख गया है। जिसके पास व्यर्थ ईंधन नहीं है, जो उसे गलत मार्गों पर ले जाये।

'जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

इस आखिरी शब्द निर्वाण को समझ लेना जरूरी है। निर्वाण बड़ा कीमती शब्द है। इस शब्द का मतलब होता है, दिये का बुझ जाना। जब किसी दिये को हम फूंक देते हैं और उसकी ज्योति बुझ जाती है, तो कहते हैं : दिया निर्वाण को उपलब्ध हो गया।

महावीर कहते हैं . जो निर्वाण को उपलब्ध हो गया, वह ब्राह्मण है।

तो किस दिये की बात कर रहे हैं?

जब तक अहकार है, तब तक हम जल रहे हैं व्यक्ति की तरह। जैसे ही अहकार की ज्योति बुझ जाती है, हम व्यक्ति की तरह समाप्त हो जाते हैं; अहंकार खो जाता है। अब हम होते हैं, लेकिन व्यक्ति की तरह नही होते हैं; अहंकार की तरह नही होते, अस्मिता नही होती। हमारी कोई सीमा नही रह जाती, हमारी कोई दीवालें नहीं रह जाती, और 'मैं' का कोई भाव नही रह जाता।

'मैं-भाव' का बुझ जाना निर्वाण है। जिस क्षण मैं हूँ, और मुझे पता नही चलता कि मैं हूँ, मेरा होना शुद्ध हो गया। इस शुद्धतम अवस्था को महावीर कहते हैं, मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

महावीर ने जितना आदर 'ब्राह्मण' शब्द को दिया है, उतना किसी और ने कभी भी नही दिया है। 'ब्राह्मण' शब्द की ऐसी पराकाष्ठा न तो उपनिषदों में उपलब्ध है और न वेदों में उपलब्ध है। लेकिन फिर भी ब्राह्मणों ने समझा कि महावीर ब्राह्मणो के दुश्मन हैं। समझने का कारण था, क्योंकि उन्होने ने ब्राह्मण की जन्मजात बपौती छीन ली, स्वार्थ छीन लिया, उसका धन्धा छीन लिया, उसका व्यवसाय छीन लिया।

लेकिन अगर कोई ठीक से समझे तो महावीर ब्राह्मण के दुश्मन नही हैं, ब्राह्मण ही ब्राह्मण के दुश्मन हैं। महावीर तो परम प्रेमी मालूम पड़ते हैं ब्राह्मणत्व के। ब्राह्मण को उन्होने ठीक ब्रह्म के निकट बिठा दिया। और ब्राह्मण तभी कहने का कोई अपने को अधिकारी है, जब महावीर की परिभाषा पूरी करता है। जन्म से जो ब्राह्मण है, उसका ब्राह्मणत्व औपचारिक है, फॉरमल है। उसका कोई मूल्य नही है। ब्रह्म की उपलब्धि, और ब्रह्म की उपलब्धि के मार्ग पर चलते हुए, पड़ते हुए कदम और पड़ाव, वे ही ब्राह्मण होने के पड़ाव हैं।

ब्राह्मण-सूत्र : २

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; २ सितंबर, १९७२

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं,
जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं,
तं वयं बूम माहणं ।।

जहा पोम्म जले जायं,
नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं,
तं वयं बूम माहणं ।।

अलोलुयं मुहाजीवि,
अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं ।।

जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रहकर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार (बिना घरबार का) है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आने वाले संबंधों में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।

इस सदी के प्राथमिक चरण में सिगमंड फ्रायड ने पश्चिम के लिए और आधुनिक मनुष्य के लिए एक बड़ी महत्त्वपूर्ण खोज की। खोज नयी नहीं है। पूरब के मनीषि उससे सदा से परिचित रहे हैं। पुनर्खोज है; लेकिन आधुनिक मनुष्य के लिए नये की तरह ही है।

फ्रायड ने मनुष्य का विश्लेषण किया और पाया कि कामवासना मनुष्य के प्राणो में सबसे गहरी पर्त है; जैसे मनुष्य का जीवन कामवासना के आस-पास ही घूमता और भटकता है। स्वाभाविक है कि ऐसा हो। क्योंकि मनुष्य का जन्म होता है कामवासना से। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक कण काम-कण है। जिन पहले परमाणुओ से, जीव-कोष्ठों से मनुष्य निर्मित होता है, वे ही कामवासना के कण है। फिर उन्ही कणों का विस्तार मनुष्य के पूरे शरीर को निर्मित करता है। इसलिए कामवासना तो रोएं-रोएं में समायी हुई है। एक-एक कोष्ठ शरीर का कामवासना से ही भरा हुआ है। स्वाभाविक है कि कामवासना की प्रगाढ़ पकड़ आदमी के जीवन में हो। वह जो भी करे, जिस भांति भी जिये, जो भी सोचे, स्वप्न देखे, उन सबमे कही न कही कामवासना मौजूद होगी।

फ्रायड की यह खोज तो कीमती है। कीमती इस लिहाज से कि सत्य है; लेकिन खतरनाक भी, क्योंकि अधूरी है, और अधूरे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं।

कामवासना मनुष्य की प्राथमिक भूमिका है, लेकिन यह उसका अन्त नहीं है। यह बीज है। यह फूल नही है। यहाँ से मनुष्य शुरू होता है, लेकिन यहाँ समाप्त नही होता। और जो जीवन की प्राथमिक पर्त पर ही नष्ट हो जाते है, वे जीवन के शिखर को और जीवन के गौरव को जानने से वंचित रह जाते हैं।

ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया फ्रायड का। वह विरोध निकम्मा साबित हुआ। क्योंकि उस विरोध में सिर्फ़ भय था, सत्य नहीं था। ईसाइयत डरी कि अगर लोग समझ लें कि कामवासना ही जीवन का मूल आधार है, उत्स है, स्रोत है, तो फिर लोगों को परमात्मा तक ले जाना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन पूरब इस बात से राज़ी है कि कामवासना उत्स है, स्रोत है, गंगोत्री है जहाँ से धारा बहती है। लेकिन वह अन्तिम सागर नहीं है, जहाँ गंगा गिरती है। और हमें कभी कोई अड़चन नहीं रही यह स्वीकार करने में कि निम्न से परम का जन्म हो सकता हैं। क्योंकि हमारी दृष्टि में निम्न और श्रेष्ठ में बुनियादी रूप से कोई अन्तर नहीं है। निम्न

हम उसे ही कहते हैं, जहाँ श्रेष्ठ बीज में छिपा हुआ है और श्रेष्ठ हम उसे ही कहते है, जहाँ निम्न रूपान्तरित हुआ, प्रगट हुआ, अभिव्यक्त हुआ, परिशुद्ध हुआ।

निम्न और श्रेष्ठ विरोधी नहीं हैं, एक ही ऊर्जा के दो आयाम हैं। जैसा मैंने कल कहा मिट्टी और कमल। हम कामवासना को मिट्टी मानते हैं। और इस कामवासना में अगर समाधि का फूल खिल जाये, तो उसे हम कमल मानते हैं। मिट्टी और कमल में विरोध नहीं है, गहरी मैत्री है। कला आनी चाहिए मिट्टी को कमल बनाने की।

तो पूरब ने दो तरह की कलाएँ विकसित कीं मनुष्य को कामवासना के पार ले जाने वाली। उनमें एक कला है 'तंत्र' की और एक कला है 'योग' की। तंत्र कहता है, जहर का उपयोग अमृत की तरह किया जा सकता है। और तंत्र कहता है, जो विकृत है, जो रुग्ण है, उसे भी स्वस्थ किया जा सकता है। जहाँ जीवन नीचा मालूम पड़ता है, उस नीची सीढ़ी का उपयोग भी ऊपर चढ़ने के लिए किया जा सकता है। पत्थर भी, मार्ग के रोड़े भी सोपान बनाये जा सकते हैं।

तो तंत्र निषेध नहीं करता कामवासना का। और तंत्र कहता है, कामवासना का इस भाँति उपयोग किया जा सकता है कि उसके उपयोग से ही व्यक्ति उसके पार चला जाये। योग ठीक दूसरी तरफ़ से खोज करता है। योग कहता है, कामवासना के उपयोग की भी कोई जरूरत नहीं है। कामवासना का बिना उपयोग किये ही कामवासना के प्रति साक्षीभाव साधा जा सकता है। और जिस मात्रा में साक्षीभाव सधता है, उसी मात्रा में कामवासना से आत्मा के संबंध टूटते चले जाते हैं।

ये दोनों परम्पराएँ बिलकुल विपरीत हैं और बिलकुल एक ही मंजिल पर ले जाती हैं। और जो ज्ञानी इस बात को नहीं समझ पाता, वह कुछ भी नहीं समझ पाया है।

विपरीत मार्गों से भी एक मंजिल पर पहुँचा जा सकता है। तंत्र और योग में कोई संघर्ष नहीं है; साधन का संघर्ष है, अंतिम लक्ष्य का कोई संघर्ष नहीं है। महावीर महायोगी हैं। इसलिए महावीर तंत्र की किसी प्रक्रिया के समर्थन में नहीं हैं। महावीर कहते हैं : कामवासना जैसी है, उसका बिना उपयोग किये छोड़ देना जरूरी है। वे कहते हैं, जितना उपयोग किया जाये, उतना ही डर है कि आदत प्रगाढ़ होती चली जाये।

उनका भय भी ठीक है। सौ में से निन्यानबे आदमियों के लिए यही ठीक मालूम पड़ेगा कि खतरे से दूर रहें। क्योंकि कामवासना की आदत भी बन सकती है। और हम न भी चाहें, तो भी एक यांत्रिक आदत के जाल में फँस जाते हैं। अधिक लोग कामवासना में इसीलिए उतरते हैं कि वह एक रोज की आदत हो गयी है; कुछ रस भी नहीं पाते; कुछ सुख भी नहीं मिलता। शायद कामवासना

से गुजर कर दुख ही मिलता है; विषाद मिलता है, रुग्णता मिलती है; और ऐसा लगता है कुछ खोया। लेकिन फिर भी एक बंधी हुई आदत है और आदमी उस आदत के पीछे दौड़ा चला जाता है।

महावीर कहते हैं कि कठिन है यह बात कि आदमी कामवासना के बीच कामवासना का उपयोग करके पार हो सके; क्योंकि कामवासना इतनी प्रगाढ़ है; उसका पंजा इतना मजबूत है। तो उचित यही है कि उसका उपयोग ही न किया जाये और उस पर साक्षी-भाव साधा जाये। लेकिन जैसा तंत्र का खतरा है कि आदत बन जाये, वैसे ही योग का खतरा है कि दमन बन जाये।

खतरे तो हर मार्ग पर है। जो चलेगा उसके लिये खतरा है; जो नही चलता, उसके लिए कोई खतरा नहीं है। जो चलेगा, वह भटक सकता है, इसलिए भटकने से मत डरना। क्योंकि जो भटकने से बहुत डरता है, वह चलता ही नहीं। भटकने वाले भी कभी न कभी पहुँच जायेंगे; लेकिन जो चलते ही नही, वे कभी भी नही पहुँच सकते। इसलिए भूल करने से कभी भयभीत मत होना। भूल सुधारी जा सकती है। लेकिन भूल से कोई इतना भयभीत हो जाये कि कुछ करे ही नहीं कि कही भूल न हो जाये, तो फिर सुधार का कोई उपाय नही है।

जीवन में एक ही असफलता है, और वह है प्रयास ही न करना। गलत प्रयास भी कभी-न-कभी सफल हो जाता है। लेकिन प्रयास ही कोई न करे, तब तो सफलता का कोई उपाय नही है।

हिम्मत से भूल करना, हिम्मत से भटकने की तैयारी रखना; क्योंकि जो भटक सकता है, वह पहुँच भी सकता है। भटकने मे भी पैर ही चलते हैं, श्रम होता है, संकल्प होता है। एक बात निश्चित है कि अगर कोई चलता ही जाये तो कितना ही लम्बा भटकाव हो, पार हो जायेगा। क्योंकि जो चलने को तैयार है, वह आज नही कल समझने लगेगा कि मैं भटक रहा हूँ। जहाँ-जहाँ भटक रहा हूँ, वहाँ-वहाँ से पैर मुड़ने लगेंगे।

तंत्र का खतरा है कि हम अपने को धोखा न दे रहे हो कि हम सोचें कि हम कामवासना का उपयोग कर रहे हैं, और उयोग कर-कर के हम धीरे-धीरे मुक्ति की अवस्था में पहुँच जायेंगे; और ये कामवासना हमारी आदत बन जाय। और निकलना तो दूर हो, हम और इसके गहरे जाल में फंसते चले जायें। क्योंकि जितना अभ्यास होता चला जाता है, उतनी आदतें जंजीर की तरह मजबूत होती चली जाती है।

योग का भी खतरा है। योग का खतरा है कि साक्षी-भाव के नाम पर कही हम दमन न करने लगें, कहीं हम वासनाओं को दबा न लें; क्योंकि दबी हुई वासनाएँ जहर हो जाती हैं; और दबा हुआ चित्त बुरी तरह कामुक हो जाता है।

आप जानकर हैरान होंगे, साधारण मनुष्य इतना कामुक नहीं होता, जितना दमित व्यक्ति कामुक हो जाता है और दमित व्यक्ति को सब तरफ़ कामवासना ही दिखायी पड़ने लगती है। क्योंकि जो आप दबाते है, उसकी पर्त आपकी आँख पर फैल जाती है। वह आपका चश्मा बन जाता है। और कामवासना को दबाया हुआ आदमी खोद-खोद कर जगह-जगह कामवासना देखने लगता है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने पुलिस में रिपोर्ट की कि मेरे मकान के पास ही जो नदी बहती है, वहाँ कुछ युवक नग्न स्नान कर रहे है। मेरे चौके की खिड़की से वे मुझे दिखायी पड़ते है। यह बर्दाश्त के बाहर है। यह अशोभन है; अश्लील है। पुलिस को तत्क्षण कुछ करना चाहिए।

पुलिस आयी; युवकों को समझाया। युवक पहले तो थोडे रुष्ट हुए, फिर राजी हो गये, और आधा मील दूर नदी में नीचे चले गये। लेकिन घंटेभर बाद फिर श्रीमती नसरुद्दीन का फोन पुलिस स्टेशन आया कि पुलिस कुछ करे; लडके अभी भी नदी में नहा रहे हैं और नग्न है। लेकिन पुलिस अधिकारी ने कहा कि देवी, अब वो आधा मील दूर चले गये है। अब आपकी खिड़की से उनके दिखायी पडने का कोई उपाय भी नहीं है।

श्रीमती नसरुद्दीन ने कहा, 'उपाय है! विद् माइ बायनाक्यूलर्स आइ कैन सी देम — मैं अपनी दूरबीन से उनको देख सकती हूँ।'

कठिनाई नग्न लड़को के स्नान में नहीं थी, कठिनाई कही श्रीमती नसरुद्दीन के मन में ही है। दमित व्यक्ति ऐसी कठिनाई से भर जाता है। वह दूरबीन ले लेता है और सब तरफ एक ही चीज की तलाश करता रहता है।

ऐसा होगा ही। क्योंकि जो दबाया है, वह बदला लेगा। जीवन बदला लेगा। जिस वासना को आपने जोर से दबा लिया है, वह प्रतीक्षा कर रही है कि कब आप पर कब्जा कर ले, कब आपको जकड़ ले।

लेकिन हमें दिखायी नही पड़ता। योग का खतरा हमें कम दिखायी पड़ता है, तंत्र का खतरा ज्यादा दिखायी पड़ता है। इसी कारण तंत्र सार्वभौम नही बन पाया और योग का काफ़ी प्रभाव हुआ। क्योंकि दमन ज्यादा सूक्ष्म है और व्यक्ति को अपने भीतर करना होता है; और उसकी खबर किसी को भी नही मिलती।

मैं साधुओं से मिलता हूँ। और जब भी साधु मुझे एकांत में मिलते है, तो उनकी परेशानी कामवासना होती है। वे मुझे कहते हैं, 'कोई रास्ता बतायें। वर्षों हो गये; उपवास करते है, सामायिक करते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं; अध्ययन, मनन, स्वाध्याय सब करते है। अपने को सब भांति रोका है, निग्रहीत किया है; लेकिन वासना जाती नहीं, बल्कि बढ़ती चली जाती है।'

अगर साधुओं के स्वप्न जाँचे जायें, तो वे सदा ही कामवासना के होंगे। क्योंकि जो दिन में दबाया है, वह रात चेतना को पकड़ लेता है। इसलिए साधु रात सोने तक से डरने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं।

जीवन इतनी आसान बात नही है। जीवन जटिल है, और उसके साथ अत्यन्त कलात्मक व्यवहार करने की जरूरत है। दमन कोई कला नहीं है, बिल्कुल ग्रामीण, असंस्कृत, अज्ञान से भरी हुई प्रक्रिया है।

किसी चीज को आप दबाते हैं; जब आप दबाते हैं तो आप क्या कर रहे हैं ? उसे और भीतर सरका रहे है। वह जितनी भीतर चली जायेगी, आप पर उसकी शक्ति उतनी ही ज्यादा हो जायेगी। इसलिए ये अक्सर हो जाता है कि जो लोग कामवासना में ही जीते रहते हैं, वे धीरे-धीरे कामवासना से ऊब जाते है। उनका रस चला जाता है। लेकिन जो लोग कामवासना से लड़ते रहते हैं, मरते दम तक उनका रस नही जाता। साधारण गृहस्थ जीवन की साधारण धारा में बहते-बहते एक दिन उससे ऊब जाता है, लेकिन साधु नही ऊब पाता ; क्योकि ऊबने का उसे मौका नही मिला। उसकी वासना ताजी और जवान बनी रहती है। मरते दम तक वासना उसका पीछा करती है। और कठिनाई यह है कि जितना उसका पीछा करती है, उतना ही वह दबाता है। जितना वह दबाता है, वासना उतने ही नये रूप धरती है, और ये नये रूप विकृत होते चले जाते हैं। ये नये रूप स्वस्थ भी नही रह जाते, प्राकृतिक भी नहीं रह जाते, अप्राकृतिक और एबनॉर्मल हो जाते है।

महावीर ब्राह्मण की परिभाषा में कह रहे हैं : 'जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यंच सबधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते है।'

सुनकर थोड़ी हैरानी होगी कि महावीर कहते है, जो देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, किन्ही का भी मन, वाणी और काया से मैथुन का सेवन नही करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। तो ब्राह्मण एक उपलब्धि है; एक चित्त की दशा है जहाँ वासना बिलकुल तिरोहित हो गयी है, जहाँ वासना किसी भी रूप मे नही पकड़ती।

अगर आप मनुष्य के साथ अपने सम्बन्धों को विकृत करेंगे, तो आपकी वासना पशुओं के साथ जुड़नी शुरू हो जायेगी।

पश्चिम में बड़ा खतरा पैदा हुआ है। और पश्चिम मे जगह-जगह ऐसी समितियाँ निर्मित हुई हैं, जो पशुओं को आदमी की कामवासना से बचाने का उपाय कर रही हैं। क्योंकि मनुष्य मनुष्य के साथ ही कामवासना के सम्बन्ध जोड़ रहा

हो ऐसा नहीं है, पशुओं से भी जोड़ रहा है । और एक पूरा रोग पशुओं के साथ मनुष्य की कामवासना के सम्बन्धों का विकसित होता जा रहा है ।

महावीर का वचन सुनकर लगता है कि महावीर मनुष्य के बहुत गहरे तक देख रहे हैं। अगर आदमी को रोका जाये, जबरदस्ती रोका जाये तो उसकी वासना नीचे गिर सकती है। वह पशुओ के साथ सम्बन्ध जोड़ना शुरू कर सकता है। एक सुविधा है; क्योंकि मनुष्य के साथ जब कामवासना के सम्बन्ध जोड़े जाते ह, तो उत्तरदायित्व भी जुड़ता है। अगर किसी स्त्री को आप प्रेम करते है, तो आप जिम्मेदारी भी अनुभव करते हैं। वह स्त्री कल गर्भिणी हो जाये, उस स्त्री का जीवन आपके लिए मूल्यवान हो गया। उस स्त्री को कोई दुख-पीड़ा न हो, वह सारी जिम्मेदारी आपके ऊपर है। लेकिन अगर पशु के साथ आप कोई काम-सम्बन्ध निर्मित कर लेते है, तो कोई जिम्मेदारी नही है । और पशु अबोध हैं । और पशु निषेध भी नही कर सकता । और पशु लड़ भी नही सकता ।

पश्चिम में कुत्तो के साथ इतने ज्यादा काम-सम्बन्ध निर्मित हो रहे है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मनोवैज्ञानिक बहुत चिन्तित है कि यह क्या हो रहा है ! आदमी कैसे नीचे गिर रहा है! गिरने का कारण है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच इतनी जटिलता हो गयी है पश्चिम में, स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध इतना भारी मालूम पड़ता है, और उसमें इतना कलह और इतना उपद्रव है कि उस तरफ से आदमी हटा रहा है अपने को।

और पशुओं तक भी बात नही है। अभी डेनमार्क में एक सेक्स फ़ेयर था, एक कामवासना का मेला लगा था, जिसमें स्त्री और पुरुषो के गुड्डे पूरे शरीर के माप के बेचे गये । इन गुड्डो में कामवासना का पूरा इन्तजाम है, और विद्युत का उपयोग किया गया है । स्त्री गुड्डे से पुरुष सम्भोग कर सकता है । ओर जब उस गुड्डे के स्तन को आप छुयेंगे, तो वह गुड़िया अपनी आँख बन्द कर लेगी जैसे स्त्री अपनी आँख बन्द कर लेती है। उसके स्तन में उभार आयेगा । और जननेन्द्रिय में विद्युत की ऐसी व्यवस्था की गयी है कि वह आपके वीर्य को शोषित कर लेगी । ठीक ऐसे ही पुरुषो के गुड्डे भी तैयार किये गये है ।

पशुओं के साथ ही नही, महावीर को ख़याल भी नहीं . . । महावीर ने तीन की गिनती गिनायी है, लेकिन उन्होंने ये नही कहा है, वस्तुओं के साथ भी मनुष्य काम-सम्बन्ध निर्मित कर सकता है । मनुष्य का मैथुन इतनी प्रगाढ़ बात है कि उसे एक तरफ़ से हटाओ वह दूसरी तरफ़ से प्रगट होना शुरू हो जाता है ।

देवताओं के साथ भी मनुष्य की कामना होती है। वह हमें जरा कठिन लगेगा। पशुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि पशु हमारे चारों तरफ़ मौजूद हैं। वस्तुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि वस्तुएँ हम निर्मित कर सकते हैं; यन्त्र भी निर्मित कर सकते हैं। लेकिन जिस तरह हमें आज पशु और यन्त्र निकट मालूम पड़ते हैं, महावीर के वक्त में देवताओं की उपस्थिति भी उतनी ही निकट थी। आज भी उतनी ही निकट है, हमारी संवेदनशीलता क्षीण हो गयी है।

आप जानकर हैरान होंगे कि मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएँ हैं। बुरी आत्माओं को हम प्रेत कहते हैं, अच्छी आत्माओं को देवता कहा जाता है। पर मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएँ मौजूद हैं। और कोई व्यक्ति अगर बहुत प्रगाढ़ मन से मैथुन की आकांक्षा करे तो उन अशरीरी आत्माओं को आकर्षित कर सकता है, और मैथुन हो सकता है। कई बार जब आप स्वप्न में मैथुन कर लेते हैं, तो जरूरी नहीं कि वह स्वप्न ही हो। इसकी बहुत सम्भावना है कि कोई अशरीरी आत्मा सम्बन्धित हो। इस सम्बन्ध में बहुत खोजबीन की जरूरत है। मनुष्य की कामना आकर्षण का बिन्दु बन जाती है। और जहाँ भी वासना हो, वहाँ से खिंचाव शुरू हो जाता है।

एक घटना जो पिछले सौ वर्षों से निरन्तर अध्ययन की जा रही है, मनसशास्त्री अध्ययन में लगे हैं, वह मैं आपको कहना चाहूँ तो खयाल में आ सके। बहुत बार ऐसा होता है, आपको भी शायद अनुभव हो, सुना हो या किसी के घर में हुआ हो, बहुत बार ऐसा हो जाता है कि घर में अचानक चीजें हिलने-डुलने लगती हैं, और कोई प्रगट कारण नहीं मालूम होता। आपने किताब टेबुल पर रखी है, वह गिरकर नीचे आ जाती है। आपने बर्तन बीच में टेबुल पर रखा है, वह सरक कर किनारे पर आ जाता है। आपने खूँटी पर कोट टाँगा है, वह सरक कर दूसरी खूंटी पर चला जाता है। लोग कहते हैं कि घर में प्रेत-बाधा हो गयी है। मनसविद् सौ साल से इसका अध्ययन कर रहे हैं कि आखिर यह होता कैसे है! और हर बार यह पाया गया कि ऐसी घटना जब भी किसी घर में घटती है, उस घर में कोई जवान युवती होती है, जिसका मेन्सीज शुरू होने के करीब होता है या शुरू हो रहा होता है। हमेशा! जब भी ऐसी घटना किसी घर में घटती है तो कोई युवती ऐसी होती है जो अभी कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ हो रही है, और उसकी प्रौढ़ता इतनी प्रबल है कि उस प्रबलता के कारण प्रेतात्माएँ आकर्षित हो जाती हैं। अब इस पर वैज्ञानिक अध्ययन काफ़ी निर्णय ले चुका है। उस स्त्री को, उस युवती को घर से हटा दिया जाये, ये उपद्रव बन्द हो जाता है। वह जिस घर में जायेगी, वहाँ उपद्रव शुरू हो जायेगा। ये भी पाया गया है कि कुछ

घरों में अचानक कपड़ों में आग लग जाती है। कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। और जितने अब तक अध्ययन किये गये हैं इस तरह के मामलों में, पाया गया है कि घर में कोई युवक हस्तमैथुन करता होता है। उस हस्तमैथुन करने वाले युवक को हटा दिया जाये, तो घर में आग लगने की घटना बन्द हो जाती है।

हस्तमैथुन की स्थिति में प्रेतात्माएँ सक्रिय हो सकती हैं। जब भी व्यक्ति कामवासना से बहुत ज्यादा भरा होता है तो अदेही आत्माएँ भी सलग्न हो जाती हैं, और सक्रिय हो जाती हैं, और उनकी सक्रियता बहुत तरह की घटनाओं का कारण बन जाती है। प्रेतात्माएँ अक्सर उन्हीं लोगों में प्रवेश कर पाती है, जो कामवासना को इतना दबा लिये है कि जीवन के सहज शारीरिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते; तो फिर उनकी देहरहित आत्माओ से वासना के सम्बन्ध स्थापित होने शुरू हो जाते हैं।

फ्रायड ने हिस्टीरिया का अध्ययन किया पूरे चालीस वर्ष और उसने पाया कि सभी हिस्टीरिया .. और हिस्टीरिया की बीमारी सारी दुनिया में फ्रायड के पहले प्रेतात्माओ की बाधा समझी जाती थी। अगर किसी स्त्री को अचानक चक्कर आने लगते है, बेहोश हो जाती है, मुंह से फेन आ जाता है, चीखनेचिल्लाने लगती है ..... । और स्त्रियों को ज्यादा मात्रा में हिस्टीरिया होता है, पुरुषों को नही। क्योंकि स्त्रियाँ ज्यादा कामवासना का दमन करती है बजाय पुरुषो पुरुष बातें कुछ भी करें, लेकिन वे उपाय खोज लेते है अपनी कामवासना को तृप्त करने के। स्त्रियाँ बातें ही नहीं करती, बातों पर भले मन से भरोसा कर लेती हैं और भरोसा करके संयम साधने की कोशिश में लग जाती है। उस संयम में कोई साक्षी-भाव तो होता नही, दमन ही होता है। इसलिए स्त्रियाँ ही हिस्टीरिया बीमारी से परेशान होती रही।

फ्रायड बहुत हैरान हुआ जब उसने हिस्टीरिया का अध्ययन शुरू किया। उसने इनकार ही कर दिया कि इसमें प्रेतात्माओ का कोई हाथ नही है। क्योंकि जिन स्त्रियों पर भी हिस्टीरिया पाया गया, वे वही स्त्रियाँ थीं जिन्होंने अपनी कामवासना को किसी कारण दबाया था। पति नपुसक था, या स्त्री विधवा थी; पति मर चुका था, या पति बीमार था; सभोग की कोई सम्भावना न थी, या स्त्री को बचपन से इस तरह की धार्मिक शिक्षा दी गयी थी कि कामवासना में उतरना उसके लिए असम्भव हो गया था। खास कर ईसाई नन्स, ईसाई साध्वियाँ हिस्टीरिया से भयंकर रूप से परेशान थी। और मध्ययुग में तो पूरे यूरोप में नन्स के ऊपर प्रेतात्माओं का उतरना बिलकुल रोज की घटना थी।

फायड ने इनकार कर दिया। उसने कहा कि कामवासना के दमन के कारण ये घटना घट रही है; इसका प्रेतात्माओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। फ्रायड की बात आधी ही ठीक है। वह ठीक कह रहा है, कामवासना के रिप्रेशन से ही घटना घट रही है। लेकिन रिप्रेशन, दमन केवल अवसर बनता है। उस अवसर में मन इतना ज्यादा

वासनापूरित हो जाता है, और इतने जोर से पुकारता है, और पूरा शरीर इतने जोर से खींचने लगता है कि आस-पास की अदेही आत्माएँ भी उस प्रचंड झंझावात में खिंच के पास आ सकती हैं और प्रेतात्माओं का प्रवेश हो सकता है।

तो महावीर कहते हैं कि जो देवता, मनुष्य, तिर्यंच सम्बन्धी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तब तो ब्राह्मण खोजना बहुत मुश्किल हो जायेगा। और जिन्हें हम ब्राह्मण कहते है, उन्हे ब्राह्मण कहने का कोई अर्थ न रह जायेगा। आदमी इतने गहरे डूबा है कामवासना में कि कोई उपाय नही दिखता कि वह कैसे ब्राह्मण हो सके !

सुना है मैंने, इगलैन्ड का राजा जार्ज द्वितीय बहुत बुद्धिमान नही था। और सारा काम, सारे राज्य की व्यवस्था उसकी पत्नी कैरोलीन ही संभालती थी। लेकिन इतना बुद्धिमान वह था कि कैरोलीन की बात मान लेता था सदा। कैरोलीन सुन्दर थी, योग्य थी, प्रतिभाशाली थी, लेकिन असमय में उसका निधन हो गया। कोई सघातक बीमारी थी, इलाज नही हो सका। मरते क्षण कैरोलीन ने सम्राट से कहा — आगे की व्यवस्था भी उसीको करनी थी — उसने कहा कि तुम मेरे मरने के बाद शीघ्र ही विवाह कर लेना। एक तो तुम बिना विवाह के रह न सकोगे, दूसरा तुम्हें एक योग्य सलाहकार की भी जरूरत है और तीसरा विवाह उपयोगी होगा आन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध निर्धारित करन में। और सम्राट को यह भी बताया कि तुम कहाँ विवाह करना, और कौन-कौन-सी राजकुमारियाँ योग्य हैं, और किनसे सम्बन्ध बनाना राजनीतिक अर्थों में कीमती है।

लेकिन जार्ज द्वितीय जार-जार आँसू गिराने लगा और उसने कहा कि नही, बिल्कुल नही ! जीवन में अपनी पत्नी को उसने पहली बार 'नही' कहा। उसने कहा कि 'नो, नेवर ! आफटर यू नो वाइव्स !' पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने आँख खोली, लेकिन प्रसन्नता क्षणभर में खो गयी, क्योकि जार्ज आँसू बहा रहा था, छाती पर हाथ रखे था और कह रहा था, 'नही, कभी नहीं — नो मोर वाइव्स आफ्टर यू, ओन्लि मिस्ट्रेसेस — कोई पत्नी नही, सिर्फ रखैल स्त्रियाँ!'

वासना बड़ी गहरी है, और उसकी गहराई को बिना समझे जो उसके साथ कुछ भी करने में लग जाता है, वह झंझट में पड़ेगा। सब सिध्दान्त ऊपर रह जाते है। सब शास्त्र ऊपर रह जाते हैं। कामवासना बड़े केद्र पर है। वहाँ तक कोई शास्त्र पहुँच नहीं पाता, कोई सिद्धान्त नहीं पहुँच पाता। आप ऊपर से प्रभावित्त होते है; निर्णय और संकल्प ले सकते हैं। वे निर्णय ऊपर कागज के लेबल की तरह चिपके रह जायेंगे और आप झूठे आदमी हो जायेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन रास्ते से निकल रहा है अपने घोड़े पर बैठ कर। एक

मकान से रोने की आवाज सुनायी पड़ती है। कोई रात के बारह बजे हैं। तो रुक जाता है दयावश; भीतर जाता है। एक नग्न स्त्री बिस्तर पर बांध दी गयी है। किसी ने बुरी तरह उसे सताया है। शरीर पर चोट के निशान हैं, और वह स्त्री रो रही है। नसरुद्दीन को देख कर वह कहती है कि बड़ी कृपा की, आप आ गये। मुझे मुक्त करें। डाकुओं ने हमला किया। उन्होंने मेरे पति को बेहोश कर दिया है। मेरे साथ व्यभिचार किया है और मेरे पति को बेहोश हालत में घसीट करके घर के बाहर ले गये है। पास-पड़ोस में कोई भी नहीं है। लोग किसी निकट के मेले में गये हैं। हम अकेले थे। कृपा करके मुझे बचायें !

नसरुद्दीन को आँसू आ जाते हैं दया से। उसे बड़ी पीड़ा होती है। लेकिन बजाय स्त्री के बंधन खोलने के, वह अपने कपड़े उतारना शुरू कर देता है। वह स्त्री कहती है, 'यह आप क्या कर रहे है?' नसरुद्दीन कहता है कि 'माफ़ करें – एक्सक्यूज मी, लेडी! बट दिस डे इज नॉट लकी फॉर यू – आज का दिन तुम्हारे लिये सौभाग्यपूर्ण नहीं है। मैं तुम्हें बचाना चाहता हूँ, लेकिन बचा नहीं सकता हूँ!'

सारी दया, सारा ब्रह्मचर्य, सारे शास्त्र, सारे उपदेश ऊपर रह जाते है। अवसर मिले आपको, तो आप सबको अलग रखकर अपनी वासना को पूरा कर लेंगे। अवसर न मिले तो आप सिद्धान्तों की बातें करते रह सकते है। सोचे, एक सुन्दर स्त्री नग्न पड़ी हो, आस-पास कोई भी नहीं, कोई खतरा नहीं, पति को डाकू उठा कर ले गये हैं, . . . बहुत कठिन हो जायेगा!

शायद आपने सुना हो कि मिस्र की खूबसूरत महारानी क्लियोपैट्रा जब मर गयी, तो उसकी क़ब्र से उसकी लाश चुरा ली गयी और तीन दिन बाद लाश मिली। और चिकित्सकों ने कहा कि मुर्दा लाश के साथ अनेक लोगों ने सम्भोग किया है।

मरी हुई लाश के साथ! और निश्चित ही ये कोई साधारण जन नहीं हो सकते थे जिन्होने क्लियोपैट्रा की लाश चुरायी होगी। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश पर भयंकर पहरा था। ये जरूर मंत्री, वज़ीर, राजा के निकट के लोग, राजा के मित्र, शाही महल से सम्बन्धित लोग, सेनापति, इसी तरह के लोग थे। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश तक भी पहुँचना साधारण आदमी के लिए आसान नहीं था। और चिकित्सकों ने कहा कि अनेक लोगों ने सम्भोग किया है। तीन दिन के बाद लाश वापिस मिली।

आदमी की वासना कहाँ तक जा सकती है, कहना बहुत मुश्किल है। एकदम कठिन है। और महावीर कहते हैं, ब्राह्मण वही है, जो कामवासना के ऊपर उठ गया हो। जिसे किसी तरह की वासना न पकड़ती हो। क्या ये सम्भव है? सम्भव है! असम्भव जैसा दिखता है, लेकिन संम्भव है। असम्भव इसलिए दिखता है कि हमें ब्रह्मचर्य के आनन्द का कोई भी अनुभव नहीं है। हमें सिर्फ कामवासना से मिलने वाला जो क्षण भर का सुख

है. . . . . सुख भी कहना शायद ठीक नहीं, क्षण भर की जो राहत है, क्षण भर के लिए हमारे शरीर से जैसे बोझ उतर जाता है ।

बॉइऑलॅजिस्ट कहते हैं कि कामसम्भोग छींक से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। जैसे छींक बेचैन करती है और नासापुट परेशान होने लगते हैं, और लगता है किसी तरह छींक निकल जाये; तो हल्कापन आ जाता है। ठीक क़रीब-क़रीब साधारण सम्भोग छींक से ज्यादा राहत नहीं देती है। बॉइऑलॅजिस्ट कहते हैं जननेन्द्रिय की छीक — शक्ति इकट्ठी हो जाती है भोजन से, श्रम से; उससे हल्के हो जाना ज़रूरी है। इसलिए वे कहते हैं, कोई सुख तो उसमे नही है, लेकिन एक बोझ उतर जाता है। जैसे सिर पर किसी ने बोझ रख दिया हो और फिर उतार के आपको अच्छा लगता है। कितनी देर अच्छा लगता है ? जितनी देर तक बोझ की याद रहती है। बोझ भूल जाता है, अच्छा लगना भी भूल जाता है।

यह जो कामवासना जिसका हम बोझ उतारने के लिए उपयोग करते रहे हैं और हमने इसके अतिरिक्त कोई आनंद नहीं जाना है, छोड़नी मुश्किल मालूम पड़ती है। क्योंकि जब बोझ घना हो, तब हम क्या करेंगे ? और आज की सदी में तो और भी मुश्किल मालूम पड़ती है, क्योंकि पूरी सदी के वैज्ञानिक ये समझा रहे हैं लोगों को कि छोड़ने का न तो कोई उपाय है कामवासना, न छोड़ने की कोई ज़रूरत है। न केवल यही समझा रहे है, वल्कि यह भी समझा रहे हैं कि जो छोड़ता है वह नासमझ है, रुग्ण हो जायेगा; जो नही छोड़ता, वह स्वस्थ है ।

शायद आप आधुनिक साहित्य से ज़रा भी परिचित नहीं होंगे। क्योंकि भारत क़रीब-क़रीब दो-तीन सौ साल पीछे की हालतो में मन से भी जीता है। लेकिन सौ वर्षों मे पश्चिम में ऐसा साहित्य निर्मित हुआ है जिसका वैज्ञानिक समर्थन है । जो कहता है कि नियमित कामवासना में जाना आदमी के स्वस्थ होने के लिए ज़रूरी है। जो आदमी नहीं जायेगा नियमित कामवासना मे, वह अस्वस्थ होजायेगा। वैज्ञानिकों की खोजें समझा रही हैं आदमी को कि कामवासना मनुष्य का चरम अंश है . उसके आगे न कोई अर्थ है, न कोई प्रयोजन है, न कोई आनंद है । धर्म की बातचीत सब बकवास है। आदमी एक पशु है और पशु मे ज्यादा होने की कामना ही सिर्फ भ्रम है, एक सपना है ।

और बड़े बेहूदे प्रयोग भी विज्ञान के नाम पर चल रहे हैं । अमरीका में सेक्स लैब बनाये गये हैं, जहाँ मनुष्य की कामवासना का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है; जो कि बड़ा अजीब और बड़ा अमानवीय है; जिसको हम सोच भी नहीं सकते । एक प्रयोगशाला में सात सौ स्त्री-पुरुषों ने वैज्ञानिकों के सामने, कैमरों के प्रकाश के सामने . . . फिल्में ली जा रही हैं, चित्र उतारे जा रहे हैं, थर्मामीटर जाँच

कर रहे हैं — पुरुष की इन्द्रिय में क्या घटनाएं घट रही हैं, उनका रिकॉर्ड लिया जा रहा है; स्त्री की योनि में भीतर क्या शारीरिक घटनाएँ घट रही हैं, उनका रिकॉर्ड लिया जा रहा है। पचीसों यंत्र लगे हुए हैं, पचीसों लोग खड़े हुए हैं।

सात सौ लोगों ने इस समूह के सामने सम्भोग करके दिखाया ताकि अध्ययन किया जा सके। अध्ययन हुआ भी और क़ीमती नतीजे भी हाथ आये। लेकिन मेरा मानना है कि जो दो व्यक्ति पचास लोगों के सामने मंच पर सम्भोग कर सकते हैं, इतनी यांत्रिक व्यवस्था और आयोजन के बीच, उनका सम्भोग यांत्रिक होगा। उसमें से मनुष्य तो विदा हो गया। वह सिर्फ़ दो शरीरों का सम्भोग होगा, और वह भी एकदम यांत्रिक। और वे मनुष्य भी ऐसे होने चाहिए, जिनकी चेतना क़रीब-क़रीब मर चुकी है। अन्यथा, सहज ही आदमी प्रेम में प्राइवेसि खोजता है; एकान्त खोजता है; क्योंकि प्रेम इतनी एकान्त की घटना है, दो व्यक्तियों के बीच का इतना निजी सम्बन्ध है कि कोई तीसरा उसे न देखे। लेकिन जब आदमी रुग्ण हो जाता है, तो वह चाहता है कि कोई तीसरा देखे।

ये जो सात सौ लोग जो स्वेच्छा से वॉलंन्टिअर किये और जिन्होंने सम्भोग करके दिखाया प्रयोगशाला में, ये जरूर रुग्ण रहे होंगे। और ये ही रुग्ण रहे हों ऐसा नहीं, जो लोग चित्र लेने को खड़े हैं, जाँचने को खड़े हैं, उनके मन का भी ठीक से परीक्षण किया जाये, तो ये भी रुग्ण मिलेंगे। अन्यथा, दूसरे को कामसम्भोग में देखने की वासना, देखने की इच्छा, देखने के लिए बहाना खोजना स्वस्थ मन का लक्षण नहीं हो सकता।

और जो परिणाम आये, वे स्वाभाविक रूप से भौतिक हैं। तो यंत्र की तरह सारी बात तय कर गयी कि क्या-क्या घटना घटती है शरीर में। आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। कामवासना का कोई सम्बन्ध मनुष्य से नहीं है; दो शरीरों के बीच शक्तियों का आदान-प्रदान है, और वह भी राहत के लिए है। और यह राहत वैज्ञानिक समझा रहे हैं कि बिल्कुल जरूरी है। जो व्यक्ति इस राहत से अपने को रोकेगा, वह रुग्ण हो जायेगा।

उनकी बात में थोड़ी सच्चाई है। अगर कोई सिर्फ रोकेगा, तो रुग्ण हो जायेगा। उनकी बात में झूठ भी है। कोई अगर सिर्फ भोगता ही चला जायेगा, तो भी नष्ट हो जायेगा।

पूरब की दृष्टि न तो भोग और न दमन, वरन् दोनों के ऊपर उठने की है ताकि चेतना शरीर को अपने नीचे पा सके। शरीर की जो पकड़ चेतना के ऊपर है, गर्दन पर है चेतना के, वह छूट जाये। मालिक हो सके चेतना, और शरीर उसकी छाया रह जाये।

कामवासना में जब भी आप डूबते हैं, तब शरीर मालिक हो जाता है और आत्मा उसकी छाया रह जाती है; उसके पीछे सरकती है। बहुत बार तो आप नहीं भी चाहते तो भी कामवासना में डूबते हैं। तब आपकी आत्मा का कोई मूल्य नहीं रह जाता। तब

उसकी कोई सुनवाई नहीं रह जाती । तब शरीर इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि आत्मा को दबा देता है; उसकी छाती पर बैठ जाता है ।

महावीर कहते हैं, हम उसे ब्राह्मण कहते हैं, जो मैथुन की समस्त कामना के पार और ऊपर हो गया है । ये हुआ जा सकता है; दमन से नहीं । लेकिन महावीर के साधु भी दमन ही कर रहे हैं । क्योंकि दमन आसान है; सुगम है । साक्षी-भाव बहुत कठिन है, बहुत दुर्गम है ।

वासना जब उठे, तब उससे दूर खड़े रहना और तादात्म्य को तोड़ लेना । वासना को उठने देना । न तो उसे बाहर किसी पर प्रगट करने जाना, और न उसे भीतर दबाना । निष्पक्ष खड़े रहना भीतर और जो हो रहा है, उसे देखते रहना, और होने देना भीतर जो हो रहा है । लेकिन दूर खड़े होकर देखने की क्षमता विकसित करना । जितना डिस्टेन्स, जितना फासला आप में और आपकी वासना के धुएँ में हो जाये, उतने आप मालिक होते जायेंगे । और जैसे-जैसे दूरी बढ़ेगी, वैसे-वैसे आप चकित होंगे कि एक नये आनन्द की धुन बजने लगी, जिससे आप अपरिचित हैं ।

ये आप ठीक सम्भोग करते क्षण में भी दूरी रख सकते हैं ।

मेरे पास लोग आते हैं । एक महिला ने मुझे आकर कहा कि साक्षी-भाव मैं रखना चाहती हूँ, लेकिन पति हैं । और अगर मैं सम्भोग में नहीं उतरती हूँ, तो पति दुखी और परेशान और पीड़ित होते हैं; चिड़चिड़े हो जाते हैं ; झगड़ा करते हैं; उपद्रव खड़ा करते हैं । तो मुझे सम्भोग में उतरना तो मेरा कर्तव्य है ।

मैंने कहा, 'तू सम्भोग में उतर, लेकिन सम्भोग के क्षण में भी दूरी बनाये रखना, जैसे सम्भोग तुझसे नहीं हो रहा है, सिर्फ शरीर से हो रहा है और तू पार होकर दूर रहना । जितनी तू शान्त रहेगी, शान्ति के लक्षण साफ हो जायेंगे । तेरी श्वास में फर्क नहीं होगा । पति सम्भोग करता रहेगा, उसकी श्वास में फर्क हो जायेगा । श्वास तेज चलने लगेगी। श्वास सीमा के बाहर हो जायेगी। लेकिन तेरी श्वास शान्त बनी रहेगी ।

"श्वास पर ध्यान रखना और अपने को दूर रखना. और देखना कि पति जैसे किसी और के साथ सम्भोग कर रहा है ।

तो ठीक सम्भोग के क्षण में भी साक्षी-भाव साधा जा सकता है । और एक बार इसका ख्याल आ जाये कि मैं शरीर से दूर हूँ, शरीर के साथ जो हो रहा है वह मेरे साथ नहीं हो रहा है, शरीर में क्या हो रहा है वो मुझमें नहीं हो रहा है, ऐसी प्रतीति सघन होने लगे, तो एक नयी धुन बजनी शुरू हो जाती है । क्योंकि जैसे ही हम शरीर से दूर हटते हैं, वैसे ही हम आत्मा के क़रीब आते हैं ।

आनंद का अर्थ है आत्मा के क़रीब आने से जो सुवास मिलती है, जो हल्का शीतल हवा का झोंका आता है, वह जो गन्ध आती है अनूठी जिसे कभी हमने

जाना नहीं। और एक दफा उसका हमें स्वाद पकड़ ले, तो हम शरीर की तरफ पीठ करके उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं।

बड़ा आनन्द छोटे आनन्द से निश्चित ही मुक्ति दिला देता है। और कोई उपाय भी नहीं है। और जब तक आपको बड़े आनन्द का पता नहीं है, तब तक छोटे, क्षुद्र आनन्द से छूटने में आप व्यर्थ ही परेशान होंगे। कुछ होगा नहीं। बड़े आनन्द को जन्मा लें, छोटे आनन्द से हाथ छूटने लगता है। आप पीछे हटने लगते हैं।

ठीक गृहस्थ रहकर भी...। जरूरी नहीं है कि आप भाग कर जंगल में जायें। जंगल में भागना तो तभी जरूरी मालूम पड़ता है, जब दमन करना हो आपको। सिर्फ साक्षी-भाव जगाना हो, तो घर में रहकर भी हो सकता है। पति-पत्नी के बीच भी हो सकता है। कोई अड़चन नहीं है। एक बार ठीक में कला आ जानी चाहिए। और कला ऐसी है कि आप प्रयोग करें तो आ जाती है। जैसे कोई आपसे पूछे कि साइकिल चलाना है, क्या करें? तो आप कहेंगे, चलाना शुरू करो! गिरोगे दो-चार बार।

कोई बताने का उपाय नहीं है। साइकिल चलाना जो जानता है, वह भी नहीं बता सकता है कि कैसे। वह भी लिखकर नहीं दे सकता कि यह-यह नियम हैं; इस-इस तरह करोगे तो साइकिल चल जायेगी। वह भी इतना ही कह सकता है कि तुम साइकिल चलाओ। क्योंकि सच्चाई यह है कि साइकिल चलाने में सीखना साइकिल चलाना नहीं होता; साइकिल चलाने में सीखना होता है बैलेंस, सन्तुलन। वह भीतरी घटना है। साइकिल से उसका कोई लेना-देना नहीं है। साइकिल तो सिर्फ बहाना है। उसके ऊपर आप सन्तुलित होना सीखते हैं। वह सन्तुलित होना सीखने के लिए तो आप प्रयोग करेंगे, गिरेंगे, अनुभव करेंगे कि बायें ज्यादा झुक जाता हूँ तो गिर जाता हूँ, दायें ज्यादा झुक जाता हूँ तो गिर जाता हूँ; अनुभव करेंगे कि अगर पैडल की गति थोड़ी धीमी हो जाती है तो साइकिल गिर जाती है, अगर बहुत ज्यादा हो जाती है तो गिरने का डर है।

तो धीरे-धीरे प्रयोग से आप अनुभव कर लेंगे दो-चार दिन में कि वह बिन्दु कहाँ है, जहाँ साइकिल सधी रहती है और गिरती नहीं। वह आपका भीतरी अनुभव आप दूसरे को भी बता नहीं सकेंगे। आप निकाल कर कह नहीं सकते कि बस, ये सूत्र है, जाओ, तुम भी ऐसा करो।

साक्षी-भाव एक आन्तरिक सन्तुलन है। शरीर से दूर हटना एक भीतरी घटना है। उसे आप प्रयोग करेंगे तो वह आ जायेगा। वह करीब-करीब तैरने की तरह है। जो तैरना सिखाते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि कुछ करना नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछने गया है किसी से कि एक युवती को मुझे तैरना सिखाना है। तो जो तैराक था, जो तैरना सिखाने वाला मास्टर था गुरु था, उसने बताया कि किस तरह उसके कमर में हाथ डालना, किस तरह उसे पानी में उतारना सम्भाल

कर। तभी नसरुद्दीन ने कहा कि इतने विस्तार में मत जाओ; वह मेरी बहन है! तो उस मास्टर ने कहा कि फिर हाथ-बाथ डालने की कोई जरूरत नहीं, सीधा पानी में उठाकर उसे फेंक देना! असली बात तो पानी में फेंकना है। अपने आप तड़फड़ायेगी। जीवन अपने बचने की कोशिश करेगा। वह जो तड़फड़ाना है, वही तैरना हो जायेगा दो-चार दिन के अभ्यास से। बस, तुम इतना ही ख्याल रखना कि कहीं वह डूबकर खतम ही न हो जाये। बस, बचाने का ख्याल रखना, सिखाने की कोई जरूरत नहीं है।

जीवन खुद ही तड़प रहा है बचने के लिए; हाथ-पैर फेंकना शुरू करता है। तैरने वाले में और ग़ैर-तैरने वाले में ज्यादा फर्क नहीं है। दोनों हाथ-पैर फेंकते हैं। एक व्यवस्था से फेंकता है, दूसरा ग़ैर-व्यवस्था से फेंकता है। बस, और कोई अन्तर नहीं है। एक निर्भय होकर फेंकता है, एक भयभीत होकर फेंकता है। भय के कारण परेशानी होती है। इसलिए ठीक तैराक तो बिना हाथ-पैर चलाये भी नदी में पड़ा रह सकता है, क्योंकि निर्भय हो गया है। वह जानता है कि तैर सकता हूँ; कोई डर नहीं है। बिना हाथ-पैर चलाये भी वह नदी में तैर जाता है।

आपको पता है कि जिन्दा आदमी डूब जाता है, मुर्दा आदमी कभी नहीं डूबता। जिन्दा मर जाता है पानी में डूब कर, मुर्दा ऊपर आकर तैरने लगता है। मुर्दा को कोई कला आती है, जो जिन्दे को भी नहीं आती। मुर्दा कोई सूत्र जानता है। वह सूत्र है अभय। भय का कोई कारण ही नहीं है। जो होना था हो चुका। वह ऊपर तैरता रहता है। मुर्दे को कोई पानी डुबा नहीं पाता। तैरने वाला उतनी ही कला सीखता है, जो मुर्दा सीख लेता है अपने आप।

तैरना या साइकिल चलाने जैसा है साक्षी-भाव। घटना घटने दे और आप देखने वाले हो जायें; करने वाले न रहें। यह मूल सूत्र है। कर्ता न रहें, द्रष्टा हो जायें। इसे थोड़ा उपयोग करें। जरूरी नहीं कि सीधा सम्भोग से ही शुरू करें। इसे कहीं से भी शुरू करें। भोजन करते वक्त कर्ता न बने, साक्षी हो जायें। रास्ते पर चलते वक्त चलने वाले न बनें; शरीर चल रहा है, आप देख रहे हैं। इसे जीवन के सब पहलुओं पर फैलायें और धीरे-धीरे साक्षी को संभालें। जैसे-जैसे साक्षी भीतर सम्हलता है, एक नये जीवन का उदय होता है। आपके शरीर में पंख लग जाते हैं। अब आप आकाश में उड़ सकते हैं। अब परमात्मा दूर नहीं है। और जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है शरीर से, वैसे-वैसे नये सुख के स्रोत टूटते हैं; बुद्ध ने कहा है महासुख। और जैसे ही इस स्रोत के झरने टूटने लगते हैं, फिर शरीर के सुखों में कोई अर्थ नहीं रह जाता है; मुक्ता हो जाती है।

ध्यान रहे, जब तक कामवासना में अर्थ है, तब तक आप छुटकारा नहीं पा सकेंगे, तब तक ब्राह्मण का जन्म नहीं होगा। जिस दिन कामवासना में अर्थ ही नहीं रह

जाता है, उस दिन सहज ब्रह्मचर्य के आनंद का आविर्भाव होता है। तब कामवासना सिर्फ मूढ़ता रह जाती है, नासमझी रह जाती है; ठीक वैसे ही जैसे आपके हाथ में हीरा है, और कोई आपको गाली दे दे, तो आप पत्थर की तरह हीरा उठाकर फेंक नहीं देंगे। आप कहेंगे, पागलपन है। हीरा बहुत कीमती है, इस आदमी को मारने की बजाय। लेकिन आपको अगर पता न हो और आप समझें कि यह पत्थर है, तो बराबर मार देंगे; हीरा है तो नहीं फेंकके मारेंगे।

कामवासना में जिस शक्ति को आप फेंक रहे हैं अपने बाहर, आपको पता नहीं है वह क्या है। वह जीवन की धारा है। वह जीवन का परम गुह्य रहस्य है। एक बार आपको पता चल जाये कि यह धारा भीतर की तरफ बह सकती है और सुखों के महल खुल जाते हैं और नये द्वार खुलते ही चले जाते हैं। फूल खिलते ही चले जाते हैं। वीणा का संगीत बढ़ता ही चला जाता है।

लेकिन यह आपको अपने अनुभव से जब आये ...! महावीर के कहने से कुछ भी न होगा। मेरे कहने से कुछ भी न होगा। किसी के कहने से कुछ नहीं हो सकता। इतना ही हो सकता है कि स्मरण आ जाये कि यह भी एक संभावना है, बस। लेकिन जब आप प्रयोग करें ...!

प्रयोग बहुत से लोग करते हैं, लेकिन उनको ठीक प्रक्रिया का खयाल न होने से दमन में उलझ जाते हैं; शरीर से लड़ने लगते हैं। शरीर से लड़ना नहीं है, शरीर से दूर होना है, क्योंकि लड़ने में भी आप शरीर के करीब ही होते हैं। भोगने में भी करीब होते हैं, लड़ने में भी करीब होते हैं। भोगने में भी शरीर से जुड़े होते हैं, लड़ने में भी शरीर से जुड़े होते हैं। और दोनों हालत में शरीर का मूल्य आप से ज्यादा होता है। उस मूल्य को कम करना है। जो शरीर से लड़ रहा है उसके शरीर का मूल्य कम नहीं होता है। देखें साधुओं को! उनके शरीर का मूल्य और बढ़ जाता है– कोई छू न ले; वे किसी को छू न लें। घबड़ाहट बढ़ जाती है। शरीर से इतनी घबड़ाहट का मतलब है कि और करीब हो गये शरीर के।

मेरे पास कुछ मित्र आते हैं। वे कहते हैं कि कुछ जैन साधु यहाँ सुनने आना चाहते हैं, बैठने का अलग इन्तजाम करना पड़ेगा। क्या जरूरत है अलग इन्तजाम करने की? मैंने कहा कि मंच पर बैठ जायेंगे। तो उन्होंने कहा कि वहाँ कई स्त्रियाँ बैठती हैं। अब स्त्रियों से साधुओं को क्या लेना-देना? जब स्त्रियाँ नहीं डर रही हैं साधुओं से, तो साधु क्यों डर रहे हैं स्त्रियों से? ये साधु तो स्त्रियों से भी कमजोर और स्त्रैण मालूम पड़ते हैं। इतनी कमजोरी का मतलब है कि शरीर के और क़रीब आ गये–कि दूर गये? अगर दूर जायें तो स्त्री और पुरुष के शरीर में फ़र्क़ कम हो जाना चाहिए; बढ़ना नहीं चाहिए। तब शरीर ही हैं दोनों, फ़र्क़ क्या है? स्त्री और पुरुष के शरीर में साधु को क्या फ़र्क़ है? क्यों होना चाहिए फर्क? फ़र्क़ पैदा होता है वासना से।

एक अजायबघर में एक हिपोपोटेमस पानी में तैर रहा है। दूसरा हिपोपोटेमस भी उसी के पास विश्राम कर रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन गया है देखने। तो अजायबघर के एक आदमी से पूछता है कि इसमें कौन स्त्री है, कौन पुरुष है? हिपोपोटेमस! इसमें कौन स्त्री और कौन पुरुष? वो अजायबघर का आदमी कहता है कि हमने कभी फिक्र नहीं की। यह तो हिपोपोटेमस को पता लगाने की बात है। अपने को करना भी क्या है? तुम पहले आदमी हो, जो इस चिन्ता में पड़े हो!

निश्चित ही, आदमी को क्या मतलब है कि कौन स्त्री है और कौन पुरुष है; कौन मादा है, कौन नर है। मादा और नर की उत्सुकता तो वासना से पैदा होती है। इसलिए आप दुनिया भर की मादाओं को देखते रहें, कोई रस नहीं मालूम पड़ता, लेकिन मनुष्य की मादा में रस मालूम पड़ता है।

आप ये मत सोचना कि ऐसा ही दुनिया के जानवर मनुष्य की मादाओं में रस लेते हैं। उन्हें कोई मतलब नहीं है। एक हाथी चला जा रहा है, कितनी ही सुंदर स्त्री हो, क्या मतलब है? क्या प्रयोजन? प्रयोजन और अर्थ तो आता है भीतर की वासना से, और भीतर की वासना हो जितनी प्रगाढ़, उतना ही विपरीत यौन का व्यक्ति मूल्यवान होता चला जाता है। जिनकी कामवासना प्रगाढ़ है, अगर वे पुरुष हैं, तो स्त्री के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं है; अगर वे स्त्री हैं, तो पुरुष के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र पण्डित रामचरणदास के साथ बैठा हुआ है। चर्चा चल रही है। दोनो शराब पी रहे हैं। जब नशा थोड़ा गहरा हो गया, तो पंडित रामचरणदास ने कहा कि 'नसरुद्दीन, अगर तुम्हें एक एकान्त निर्जन द्वीप पर महीनेभर अटक जाना पड़े, नाव डूब जाये, कोई कारण हो जाये, या तुम्हें भेज दिया जाये, तो तुम अपने साथ क्या ले जाना पसन्द करोगे? श्रेष्ठ चीज कौन-सी है, जिसे तुम अपने साथ ले जाना पसन्द करोगे? वॉट डू यू कन्सीडर दि बेस्ट?' नसरुद्दीन ने कहा कि 'साफ है कि मैं पूरी मधुशाला, पूरे गाँव की मधुशाला अपने साथ ले जाना पसन्द करूंगा।'

'और पंडितजी, आप अगर ऐसी हालत में उलझ जायें,' नसरुद्दीन ने पूछा, 'तो आप क्या करेंगे? आप क्या ले जाना पसंद करेंगे?' पंडित रामचरणदास ने थोड़ा झिझकते हुए कहा, 'हे... मा... मा... लिनी!'

वे इतना ही कह पाये थे कि नसरुद्दीन ने जोर से घूंसा मारा टेबुल पर; टेबुल उलट दी और कहा कि 'गलत! स्टिक टु दि टर्म्स। यू सेड दि बेस्ट, नॉट दि वेरी बेस्ट। शर्त पर बंधे रहो। तुमने कहा था श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम नहीं; नहीं तो हम ही हेमामालिनी को न ले जाते!'

आदमी का मन कामवासना से भरा हो, तो स्त्री परमात्मा है, पुरुष परमात्मा है। सारा धर्म वहीं समाप्त हो जाता है। कामवासना गहरी हो, तो कामवासना के

अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है। बाकी सब धर्म बहाना हैं, झूठ हैं। धर्म का जन्म तो तभी शुरू होता है, जब हम विपरीत की वासना से हटना शुरू होते हैं। और यह हटाव ब्राह्मणत्व है।

साक्षी-भाव से शरीर से फासला बढ़ने से जैसे ही, जितने ही आप अपने शरीर से दूर होंगे, उतने ही आप दूसरे के शरीर से दूर हो जायेंगे। इसे आप गणित समझें भीतर का। जितना आपको दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, उसका अर्थ है कि आप अपने शरीर से उतने ही जुड़े हैं; क्योंकि आपके शरीर को ही दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, आत्मा को नही। आत्मा को शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे-जैसे आप पीछे हटते हैं अपने शरीर से, वैसे-वैसे दूसरे के शरीर भी खोने लगते हैं। इस कामवासना के धुएँ के खो जाने पर जो प्रकाश जन्मता है, इस अन्धेरे से हटकर, शरीर के अंधेपन और अंधेरे से हटकर जो रोशनी उपलब्ध होती है, महावीर कहते हैं, वही ब्राह्मणत्व है।

'जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार जो संसार मे रहकर भी काम-भोगो से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

इस में कई बातें समझने-जैसी हैं। 'जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता..!' आदमी पैदा तो वासना में ही हुआ है। कामवासना स्रोत है जीवन का। उसकी निन्दा की भी कोई जरूरत नही है। निन्दा वे ही करते है, जो उससे परेशान है। उससे लड़ना पागलपन है, क्योकि जिससे आप पैदा हुए हैं, उससे लड़ नही सकते। उससे लड़कर क्या हाथ लगेगा? और अतीत से लड़ने की जरूरत क्या है? भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए। जो पीछे छूट गया है, उससे लड़ने की जरूरत क्या है? जो आगे हो सकता है, उसके होने का उपाय जुटाना चाहिए। महावीर कहते हैं, जैसे कमल जल में ही पैदा होता है, फिर भी जल उसे छूता नहीं। ऐसे ही चेतना शरीर में है, शरीर में ही रहती है, लेकिन शरीर उसे छूता नही।

चेतना का जन्म वासना में हुआ है। उसके चारो तरफ वासना का जल है। लेकिन कमल की तरह चेतना अलग हो जाती है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। यह जो कमल की तरह अलग हो जाना है, यह कई तरह से सोचने-जैसा है; क्योंकि महावीर कहते हैं, उसी प्रकार जो संसार में रहकर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। संसार से भागने की सलाह नही है; संसार में रहकर भी, क्योंकि संसार से भागने का तो मतलब हुआ कि कमल पानी से डरकर दूर हट जाये। डर ही बताता है कि कमल को भय था कि पानी छू सकता था। भय खबर देता है। लेकिन कमल निर्भय है। वह जानता है कि चारों

तरफ का पानी उसे छू नहीं सकता, तो पानी में रहे कि पानी के बाहर रहे, कोई भेद नहीं है।

संसार को छोड़कर भागने का मतलब एक ही हो सकता है सौ में निन्यानवे मौके पर। एक मौके को मैं छोड़ देता हूँ। उसकी मैं पीछे बात करूँगा। उस एक मौके पर महावीर, बुद्ध और शंकर आते हैं। सौ में निन्यानवे मौके पर संसार से भागने का एक ही अर्थ है कि हम इतने डरे हुए हैं कि संसार में रहकर तो हमारा कमल पानी को छूयेगा ही। कोई उपाय हमें दिखायी नहीं पड़ता। वहाँ तो हम उलझ ही जायेंगे। तो अवसर ही न रहने दें; बाहर की परिस्थिति ही बदल दें; ऐसी जगह चले जायें, जहाँ कोई मौका ही न हो।

लेकिन ध्यान रहे, मौका बाहर से नहीं पैदा होता। बाहर तो खूँटियाँ हैं। वासना भीतर है। आप जंगल में चले जायेंगे; दो पक्षियों को संभोग करते देखेंगे; कठिनाई शुरू हो जायेगी। आप कहाँ भागेंगे; ऐसी जगह चले जायेंगे, जहाँ पक्षी नहीं, वृक्ष नहीं, पौधे नहीं, क्योंकि सबमें वासना है। फूल खिल रहा है कामवासना से; तितलियाँ उड़ रही हैं कामवासना से, हवाओं में सुगन्ध चल रही है फूलों की कामवासना से; क्योंकि उस सुगन्ध के साथ बीजकण जा रहे हैं। सारा जगत कामवासना है। भाग कर जायेंगे कहाँ? फिर भी, समझ लें कि भाग गये; एक गुहा में छिप गये, पर अपने से भागकर कहाँ जायेंगे? वह जो भीतर कामवासना है, वह तो साथ है, तो ऑटोइरोटिक हो जायेंगे, खुद के ही साथ वासना जगने लगेगी।

मनोवैज्ञानिकों को शक है इस बात का कि जहाँ-जहाँ हम पुरुषों को स्त्रियों से दूर करते हैं, वहाँ-वहाँ मॅस्टरबेशन शुरू हो जाता है, हस्तमैथुन शुरू हो जाता है। ऐसी घटना बहुत जगह घटी है। पहली दफा जब अफ्रीका के एक कबीले में ईसाई मिशनरी पहुँचे, और ईसाई मिशनरी जहाँ पहुँचे हैं, वहाँ उपद्रव पहुँचा है, क्योंकि उनकी धारणाएँ अत्यन्त क्षुद्र हैं और अत्यन्त उथली हैं। जब उस कबीले में ईसाई मिशनरी पहुँचे, तो उन्होंने तत्काल . . . । कुछ लोग हैं जो दूसरों को सुधारने में ही लगे रहते हैं बिना इसकी फिक्र किये कि वो दूसरे सुधारने की अवस्था में हैं या हम सुधरने की अवस्था में हैं।

उस गाँव में लड़के-लड़कियाँ सब साथ, एक साथ खेलते थे, कूदते थे। गाँव आदिवासी कबीला था, और बहुत-से आदिवासी कबीलों में गाँव के बीच में एक भवन होता है जो युवकों का भवन होता है, 'यूथ हॉल'। वहाँ लड़के और लड़कियाँ जब जवान हो जाते हैं, तब वे सब वहीं सोते हैं, सब साथ। उस कबीले को मॅस्टरबेशन का, हस्तमैथुन का पता ही नहीं था कि कोई आदमी हस्तमैथुन भी कहीं करता है, या स्त्रियाँ करती हैं। लेकिन वहाँ आकर ईसाई पादरियों ने कहा कि यह तो अनाचार

हो रहा है कि लड़के और लड़कियाँ साथ ! यह अनाचार बन्द करना पड़ेगा ! उन्होंने हॉस्टल अलग-अलग बना दिये; लड़के और लड़कियों को अलग-अलग छाँट के रख दिये; बीच में दीवाल खड़ी कर दी। मनोवैज्ञानिक कहते है, जिस दिन दीवाल खड़ी की गयी, उसी दिन हस्तमैथुन उस कबीले में प्रविष्ट हुआ।

ऑटोइरोटिक हो जाता है आदमी। तो आप भागकर जायेंगे कहाँ ? आप अपनी वासना को अपने ही हाथों पूरा करने लगेंगे। और अगर आपने अपने हाथ भी बाँध लिये, तो भी कोई फर्क नहीं पडता; क्योंकि स्वप्न में आपकी वासना आपको पकड़ेगी। स्वप्न में स्खलन हो जायेगा। भाग नही सकते संसार से, क्योंकि संसार भीतर है। हाँ, भीतर से संसार विसर्जित कर दिया जाये तो संसार में रहकर भी आदमी संन्यस्त हो जाता है।

महावीर विरोध में नहीं है कि कोई संसार न छोड़े। वे कहते है, संसार छोडे, लेकिन तभी छोड़े, जब संसार छूट चुका हो। इसे थोड़ा समझ ले। कच्चा न छोड़े, क्योंकि कच्चा आदमी दिक्कत में पड़ेगा। वह भागकर जायेगा, मुसीबत खडी करेगा। नये रोग, नयी विकृतियाँ, परवर्शन्स खड़े हो जायेंगे। ससार छोडे तभी, जब पक्का अनुभव हो जाये कि संसार भीतर से छूट चुका है। अब यहाँ रहने की कोई जरूरत नहीं। ये परीक्षा पूरी हो गयी। इस विद्यालय की शिक्षा पूर्ण हो चुकी।

तो एक तो वे है, जो विद्यालय से भाग खड़े होते हैं कि परीक्षा न देनी पड़े, निन्यानवे प्रतिशत और एक वे है, जो विद्यालय की सब परीक्षाएँ पास कर जाते हैं, और विद्यालय उनसे कहता है कि अब आप कृपा करके जाइये; अब यहाँ होने की कोई आवश्यकता नही है। महावीर और बुद्ध इस संसार के विद्यालय को पास करके छोड़ते है। ये व्यर्थ हो जाता है, इसलिए छोड़ते हैं। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, कच्चा पत्ता उस शान से नही गिर सकता, क्योंकि कच्चा पत्ता गिरेगा तो पीड़ा होगी; पत्ते को भी होगी, वृक्ष को भी होगी; घाव भी छूट जायेगा। सूखा पत्ता टूटता है; न पत्ते को पता चलता है, न वृक्ष को खबर होती है कि कब छूट गया, न कोई घाव होता है।

महावीर कहते हैं, ब्राह्मण वह है जो संसार में रहकर कामवासना से ऐसे अलिप्त हो गया, जैसे कमल का पत्ता पानी से अलग है। ऐसा ब्राह्मण संन्यस्त हो तो संन्यास में गरिमा होती है, गौरव होता है; संन्यास में एक स्वास्थ्य होता है। ऐसे संन्यास में संसार का विरोध नहीं होता, संसार का अतिक्रमण होता है, ट्रान्सेन्डेन्स होता है। यह आदमी संसार से भयभीत होकर नहीं गया है। यह आदमी संसार को पार करके ऊपर उठ गया है। ये बियॉन्ड हो गया है। यह संसार से जरा भी भयभीत नहीं है। संसार में होने का अब कोई अर्थ नहीं रहा, इसलिए गया है।

जो भय से भागता है, उसे अर्थ अभी है । इसलिए जब भी संन्यासी को आप संसार से भयभीत देखें तो समझ लेना कि अभी यह आदमी जल्दी में चला गया, कच्चा पत्ता था, इसे अभी रुकना था । बेहतर था, अभी संसार में यह और जी लेता । एक साठ वर्ष के बूढ़े साधु ने मुझे कहा कि मैं जब नौ वर्ष का था, तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दी । पिता भी साधु थे । और अक्सर पिताओं की इच्छा होती है कि जो वे हैं, वही उनके बेटे भी हो जायें ! लेकिन पिता ने संन्यास लिया था पैंतालिस साल की उम्र में; बेटे को संन्यास दे दिया नौ साल की उम्र में । ये बेटा अब साठ साल का हो गया, लेकिन इसकी बुद्धि नौ साल से आगे नहीं बढ़ी ।

बढ़ नहीं सकती । क्योंकि इसको बढ़ने का कोई मौका ही नहीं है, अवसर ही नहीं है । साठ साल का बूढ़ा, लेकिन बुद्धि अटक कर रह गयी नौ साल पर । अभी हालत इसकी वही है कि अगर इसको कुल्फी बेचनेवाला दिखायी पड़ जाये, तो कुल्फी खाने का मन होता है । सिनेमा घर के सामने क्यू लगा होता है, तो इसका मन होता है कि भीतर पता नहीं क्या हो रहा है; मैं भी देख लूं । स्त्री देखकर उसे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि इस स्त्री में क्या छिपा है, जो इतना आकर्षित करती है, अपरिचित है । इसकी सारी साधना सिर्फ संघर्ष है, और अतिक्रमण कुछ भी नहीं हो रहा है । हो नहीं सकता । अनुभव अतिक्रमण लाता है ।

जीवन से सस्ते छूटने का कोई उपाय नहीं है, और जो सस्ता छूटना चाहता है, वह भटकेगा बहुत बार । जीवन में शॉर्टकट होते ही नहीं । कोई उपाय नहीं । यहाँ कोई अपवाद नहीं है । महावीर भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं । बुद्ध भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं । आप को तो पिछले जन्मों की कोई याद ही नहीं है । आपका कोई अनुभव ही नहीं बना है । अनुभव बनता तो याद होती । आपने पिछले जन्मों में कुछ सार निचोड़ा होता जीवन से, तो वह आपके साथ होता। वह दिये की तरह आपको रोशन करता । वह तो है नहीं । कुछ अनुभव तो आपने इकट्ठा किया नहीं है । फूलों के साथ आप रहे हैं, लेकिन इत्र बिल्कुल नहीं निकाल पाये । इत्र साथ जाता है, फूल साथ नहीं ले जाये जा सकते । जब एक आदमी मरता है तो उस जीवन में उसने जो इत्र निकाल लिया है, एसेन्स, वह उसके साथ हो जाता है । अगर फूल ही फूल के साथ खेलता रहा, तो फूल तो पीछे छूट जाते हैं । शरीर के साथ थोड़ी-बहुत सुगन्ध जो रहती है, वह भी शरीर के साथ छूट जाती है । नये जन्म में फिर से इकट्ठा करना पड़ता है । और हर जन्म में हम इकट्ठा करते हैं और खोते हैं । जब तक आप परिपक्व न हो जायें मैच्युरिटी न आ जाये, तब तक महावीर कहते हैं, संसार में ही अलिप्त होकर रहना ब्राह्मण होना है ।

अलिप्तता ब्राह्मणत्व है।

'जो अलोलुप है, जो अनासक्त— जीवी है, जो अनगार, बिना घर-बार का है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आनेवाले सम्बन्धों में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।'

एक-एक शब्द को गौर से समझें, क्योंकि हर शब्द के साथ खतरा है कि आप गलत समझ लेंगे और गलत समझने की सम्भावना सदा ज्यादा है ठीक समझने की बजाय; क्योंकि हम गलत हैं। हमें एकदम से गलत चीज एकदम से समझ में आती है। यह हमारे लिए ज्यादा स्वाभाविक है, ज्यादा प्राकृतिक है कि गलत हमें एकदम से समझ में आ जाये।

महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, जिसका लोभ चला गया है। हमें क्या समझ में आता है? हमें समझ में आता है कि धन छोड़ दो तो लोभ चला गया! धन छोड़ने से लोभ नही जाता। धन पकड़ा जाता है लोभ के कारण। धन के पहले भी लोभ मौजूद रहता है, नही तो धन को कोई पकड़ेगा क्यों। धन आदमी इकट्ठा करता है लोभ के कारण। तो एक बात तो पक्की है कि धन के पहले लोभ था, नही तो धन को कोई पकड़ता क्यों। तो जो पहले था, वह धन को छोड़ने से मिट नही सकता। वह पीछे छिपा मौजूद रह जायेगा। धन पीछे आया है, तो धन छोड़ दो, कोई फर्क नही पड़ता। लोभ मौजूद रहेगा।

महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, और हम समझते हैं कि जो निर्धन है। तो हम समझते हैं कि असाधु धन छोड़ दे तो बस साधु हो गया। धन छोड़ने से लोभ जाता होता, तो बड़ी आसान बात हो जाती। इसका तो मतलब हुआ कि वस्तुओं को छोड़ने से आत्मा बदलती है। तब तो आत्मा कमजोर है; वस्तुएँ ज्यादा सबल हैं।

नही, वस्तुओं को छोड़ने से कुछ भी नही बदलता; हाँ, धोखा हो जाता है। अगर धन न हो, तो ऐसा लगता है कि अब मेरा कोई लोभ न रहा। और किसी को दिखायी भी नही पड़ता। क्योंकि जब धन नही है तो किसी को दिखायी भी कैसे पड़ेगा! दिखायी धन पड़ता है, लोभ तो दिखायी नही पड़ता। लोभ तो खुद को ही देखना पड़ता है। धन दूसरों को दिखायी पड़ता है। जो दूसरों को दिखायी पड़ता है, उसे छोड़ना बहुत आसान है। जो दूसरो को दिखायी नही पड़ता, मेरे भीतर छिपा है, असली सवाल वही है।

तो महावीर नही कहते कि निर्धन ब्राह्मण है। महावीर कहते हैं अलोलुप। ये दोनों बड़े भिन्न हैं। तब ये भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी अलोलुप हो, और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी निर्धन होकर भी लोलुप हो। लोलुपता मन की एक वृत्ति है चीजों को पकड़ने की। लोलुपता

मन की एक तरंग है। वस्तुओं से उसका सम्बन्ध नहीं है। वस्तुओं के सहारे वह फैलती है बाहर, लेकिन छिपी भीतर है। वस्तुएँ हटा दें; वह भीतर जाकर सिकुड़ जाती है, लेकिन मौजूद रहती है। वह नयी चीजों से जुड़ने लगती है।

तो देखें, एक लंगोटी वाला संन्यासी जिसके पास सिर्फ लंगोटी है, वह लंगोटी के प्रति भी लोलुप हो सकता है।

सुना है मैंने कि ऐसा हुआ कि एक संन्यासी बड़ी यात्रा करता था; जगह-जगह गुरुओं के पास जाता था, लेकिन कहीं उसे ज्ञान न हुआ। तो उसके अन्तिम गुरु ने कहा, "हम तुझे ज्ञान न दे सकेंगे। तू बेहतर हो, जनक के पास चला जा।" उसने कहा, "जनक मुझे क्या ज्ञान देगा, जब बड़े-बड़े त्यागी, महात्यागी ज्ञान नहीं दे सके, तो यह भोगी मुझे क्या ज्ञान देगा!" लेकिन उसके गुरु ने कहा, "हम हार गये। अब वही तुझसे जीत सकता है। तू वहीं चला जा।"

तो वह गया, जाकर देखा तो बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि जनक जमे थे, उनकी बैठक जमी थी। वहाँ पीना चल रहा था, भोजन चल रहा था, रास-रंग, नृत्य हो रहा था। उस संन्यासी ने कहा कि मैं भी कहाँ आ गया! इन भोगियों और पापियों के बीच! इस नर्क में मुझे किसलिए भेज दिया मेरे गुरु ने? लेकिन अब आ ही गया हूँ, तो रात तो रुकना ही पड़ेगा। तो उसने सम्राट से कहा कि रात रुक जाऊँ? आ तो गया। गलती तो हो गयी। पूछने कुछ आया था। अब नहीं पूछूँगा। सुबह विदा हो जाऊँगा। सम्राट ने कहा कि कोई हर्ज नहीं है। इतनी जल्दी निर्णय मत लो।

सुबह सम्राट उसे लेकर नदी पर स्नान करने गया, और जब वे दोनों नदी में स्नान कर रहे थे, तो सम्राट के महल में आग लग गयी। भयंकर लपटें उठने लगीं। सारे गांव में कोलाहल मच गया। तो उस संन्यासी ने कहा, "जनक, क्या देख रहे हो, महल से आग की लपटें निकल रही हैं, महल जल रहा है!" और यह कहकर वह सन्यासी भागा वहाँ से। सम्राट ने पूछा, "तू कहाँ जा रहा है?" उसने कहा, "मैं अपनी लंगोटी घाट पर छोड़ आया हूँ। अगर आग बढ़ती आ गयी तो लंगोटी साफ हो जायेगी।"

जनक ने कहा, "महल जल रहा है; मैं नहीं जल रहा हूँ, और अभी तेरी लंगोटी नहीं जल रही है, लेकिन तूने जलना शुरू कर दिया! अभी आग तो बहुत दूर है। जब पूरे गांव को पार करेगी, तब घाट तक आयेगी, लेकिन तू जल उठा और रखा क्या है? वहाँ एक लंगोटी रख आया है किनारे में!"

(लोलुपता को सम्बन्ध नहीं है कि किस चीज से जुड़े; किसी भी चीज से जुड़ सकती है। और अक्सर ऐसा होता है कि धनी की लोलुपता तो फैली रहती है बहुत सी चीजों में; धन को छोड़कर जो भाग जाते है, उनकी लोलुपता इन्टेन्स हो जाती है। थोड़ी-सी चीजें इनके पास रहती हैं, सारी लोलुपता उन्ही थोड़ी-सी चीजों पर लग जाती है।

तो संन्यासी का मोह नष्ट नही होता, सिकुड़कर थोड़ी-सी चीजो पर लग जाता है। लेकिन वो मोह वही खड़ा है। धन छोड़ना शर्त नही है, धन को पकड़ने का जो आग्रह है भीतर, उसका छूट जाना...! ये कब होगा? ये कैसे होगा? धन को हम पकड़ना ही क्यों चाहते हैं? जब तक उसकी जड ख्याल में न आये तब तक कटेगी भी नही।

धन को हम इसलिए पकड़ना चाहते है, क्योंकि हम अपने प्रति आश्वस्त नही हैं। हमें भय है, कल का भरोसा नहीं; बीमारी है, स्वास्थ्य है, मृत्यु है, आज मित्र हैं, कल मित्र न हों; आज घर है, कल घर न हो। और जिन्दगी जीनी है तो आदमी धन पर भरोसा करता है। धन सुरक्षा है, सिक्युरिटी है। और जब तक आप असुरक्षित रहने को राजी नही हैं, तब तक आप लोलुपता के बाहर नही जा सकते। असुरक्षा, इनसिक्युरिटि में रहने को जो राजी है। जो कहता है, जो कल होंगी, वह हम कल देखेंगे; जो आज हो रहा है, वह आज के लिए काफी है। ये क्षण पर्याप्त है। मैं किसी और क्षण की चिन्ता नही करूंगा। जो क्षण-जीवी है और जो कल मुसीबत आयेगी, उसे झेलने को राजी है। कल जो मुसीबत आयेगी, वह उसे झेलेगा, लेकिन कल ही झेलेगा; आज से तैयारी नही करेगा। ऐसा व्यक्ति अलोलुप हो सकता है और ऐसा व्यक्ति ही संन्यस्त हो सकता है।

जो अलोलुप है..!

आप अपनी लोलुपता को खोजें कि कहाँ है। वह भय में छिपा है और मज़ा यह है कि आप कितना ही धन इकट्ठा कर लें, भय तो मिटता नही, बढ़ता ही चला जाता है। कितना ही इन्तजाम कर ले, मृत्यु तो आयेगी ही, और कितनी ही व्यवस्था जुटा ले, रोग तो पकड़ेगा ही। मित्र खोयेंगे ही, पत्नी मरेगी ही, पति विदा होगा, दुख आयेगा। इस पृथ्वी पर कोई भी कभी सुरक्षित नही रहा। सुरक्षा इस पृथ्वी का नियम नही है, मगर हर आदमी अपने को अपवाद मान लेता है और फिर उसी कोशिश में लग जाता है जिसमें सिकन्दर, नेपोलियन, चंगेज डूब जाते हैं; फिर उसी कोशिश में लग जाता है कि मैं अपने को सुरक्षित कर लूँ, मुझ पर कोई खतरा न रहे।

और हम जिंदगी भर खतरे से बचने में जिन्दगी को गँवा देते हैं; जिन्दगी का रस ही नहीं ले पाते और न ही जिन्दगी का उपयोग कर पाते हैं। महावीर इसलिए अलोलुपता को ब्राह्मणत्व का आधार बनाते हैं, क्योंकि जो आदमी अलोलुप है,

वह जीवन का ठीक उपभोग कर पायेगा। जो लोलुप है, वह डरा हुआ, भयभीत, इन्तजाम करने में ही लगा रहेगा। और जो यहीं इन्तजाम करने में लगा है, उसका ब्रह्म से क्या सम्बन्ध स्थापित होगा! उसका परम से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। वह क्षुद्र में ही व्यतीत हो जायेगा।

"जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है।"

हम भी जीते हैं, ब्राह्मण भी जीता है, लेकिन महावीर कहते हैं, ब्राह्मण जीता है अनासक्त; इसलिए जीता है कि जीवन है; इसलिए नहीं जीता कि जीवन से कल एक बड़ा मकान बनाना है, बड़ी ज़मीन खरीदनी है, बड़ा बगीचा लगाना है, खेती-बाड़ी करनी है, धन इकट्ठा करना है, कल कुछ करना है जीवन से, कोई वासना पूरी करनी है, ऐसी किसी आसक्ति से नहीं जीता। जीवन है; जब तक है, तब तक जीयेगा; जिस दिन श्वास छूट जायेगी, इतनी भी प्रार्थना नहीं करेगा कि एक श्वास और मुझे मिल जाये। मृत्यु, तो मृत्यु स्वीकार; जीवन, तो जीवन स्वीकार। जो भी घटित हो, वह उसे स्वीकार है। उसमें कोई अस्वीकार नहीं है।

अनासक्त का अर्थ है कि मैं जीवन पर अपनी कोई धारणा नहीं थोपता। जीवन जहाँ ले जाये, जीवन जो कराये, मैं सहजभाव से उसे स्वीकार करता हूँ। हमारी कठिनाई है, हम जीवन पर धारणा थोपते हैं। हम जीवन को स्वीकार नहीं करते। हम जीवन को चाहते हैं वासना के अनुकूल। उमर खय्याम ने कहा है कि अगर परमात्मा मुझे मौका दे, तो मैं सारी दुनिया को मिटाकर फिर से बनाऊँ। तभी शायद मुझे तृप्ति हो सके।

लेकिन तब भी शायद ही तृप्ति हो सके। तब भी शायद ही तृप्ती हो सके, क्योंकि मन का नियम ये है कि जो भी आप बना पाते हैं उसकी अतृप्ति आगे बढ़ जाती है। एक मकान आप बनाते हैं; सोचते हैं तृप्त हो जाऊँगा। बनते ही सब समाप्त हो जाता है। नयी कल्पनाएँ, नये स्वप्न जग जाते हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में वासनाएँ लगती हैं। पुराने पत्ते गिर नहीं पाते कि नये लग जाते हैं। मन तो नयी अतृप्तियाँ खोजता ही चला जाता है।

ब्राह्मण वही है, जो अनासक्त-जीवी है; जो जीवन में ऐसे जी रहा है जैसे कल है ही नहीं, जैसे भविष्य होगा ही नहीं। हम, लेकिन, गलत समझ लेते हैं। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि कल नहीं है। बस, आज ही है। और दुनिया का समझो कि जैसे कल अन्त होने वाला है। इस भाँति जीयो कि जैसे कल मृत्यु होने वाली है, कल सब समाप्त हो जायेगा, महाप्रलय हो जायेगा।

बड़ा मजा है! आदमी का मन कैसी गलती करता है! शिष्यों ने समझा कि अगर ऐसा मामला है, ऐसा खतरा आ रहा है कि जल्दी दुनिया का अन्त हो

जाने वाला है, तो बजाय आज शान्ति से जीने के, वे कल की चिन्ता में लग गये कि अन्त हो जायेगा, तो क्या करें ! और जीसस से वे बार-बार पूछते हैं, जब कल आ जाता है, कि अभी अन्त नही हुआ, प्रलय कब होगी ? जीसस कहते हैं, 'बहुत निकट है, दि लास्ट डे इज़ वेरी क्लोज़ ।' और दो हजार साल हो गये, लेकिन अभी भी ईसाई समाज में कभी न कभी कोई सम्प्रदाय खड़ा हो जाता है, जो कहता है, बस, १९७५ आखिरी । फिर १९७५ की तैयारी चलने लगती है कि आखिरी दिन आ रहा है, तो थोड़ा अच्छा काम कर लो। फिर १९७५ आ जाता है, वह आखिरी दिन नहीं आता । फिर कोई दूसरा सम्प्रदाय पैदा होता है ।

इन दो हजार साल में ईसाइयों में हजार दफा ऐसी तारीखें तय हो चुकी हैं, जब कि आखिरी प्रलय होने वाली होती है । किस तरह हम जीसस को, बुद्ध को और महावीर को गलत समझते हैं ! जीसस का कुल प्रयोजन इतना है कि कल जैसे सब नष्ट हो जायेगा, इस बात को समझकर आज जीओ । लेकिन हम आज तो जी ही नहीं सकते। हम तो सदा कल में ही जीते हैं । कल ! और वह कल हमारे पूरे जीवन को चूस लेता है; कभी आता नहीं ।

(अनासक्त-जीवी का अर्थ है : वर्तमान में जीने वाला ।

ध्यान रहे, वासनाओं के लिए भविष्य चाहिए, जीवन के लिए भविष्य की कोई भी जरूरत नहीं। जीवन के लिए यही क्षण काफी है । अभी मैं जीवित हूँ पूरा । आप पूरे जीवित हैं । जीने के लिए कल की क्या जरूरत है ? लेकिन वासना के लिए कल की जरूरत है, क्योंकि वासनाएँ बड़ी हैं; आज कैसे पूरी होंगी ? कल चाहिए । वासनाएँ भविष्य निर्मित करती हैं ।

वासनाएं ही समय का निर्माण है ।)

'जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार है, बिना घर-बार का है ।'

अब यह भी बड़ा मुश्किल हो गया । 'अनगार' का सीधा अर्थ ले लिया गया कि जो घर-बार छोड़ दे । जो घर-बार में न रहे, वह अनगार है । लेकिन बड़े मजे की बात है कि जैन साधु को भी रहना पड़े तो किसी के घर में ही रहना पड़ता है ! कितना ही इन्तजाम करो, घर तो बनाना ही पड़ता है, कोई छाया, छप्पर डालना पड़ता है । धर्मशाला में ठहरो कि स्थानक में ठहरो, ठहरना कहीं होगा, घर तो होगा ही ।

घर-बार न हो जिसका, अनगार है जो, तो जरूर महावीर कुछ चेतना की स्थिति की बात कर रहे हैं । महावीर यह कह रहे हैं कि जिसकी चेतना के आस-पास किसी तरह की दीवाल नहीं, किसी तरह का घर, किसी तरह का कारागृह, कुछ भी नहीं है । जिसकी चेतना खुले आकाश की तरह है, वह अनगार है । फिर ऐसा अनगार

व्यक्ति छप्पर के नीचे भी सोये तो वो छप्पर उसके भीतर के आकाश को छोटा नहीं कर पाता। और आप—जिनकी आत्मा घर-घूलों में बँधी है, दीवालों से घिरी है—आप खुले आकाश के भी नीचे सोयें तो कोई फ़र्क़ नही पड़ता। आप अपने घर में ही सो रहे हैं।

खुला आकाश क्या करेगा, अगर भीतर का आकाश बन्द है? खुला आकाश तो भीतर होना चाहिए। तब बाहर भी सब खुला हुआ है। लेकिन शब्द दिक्कत में डाल देते है; क्योंकि हमारे पास शब्द आते है, शब्द की आत्मा तो नहीं आती।

मार्क ट्वेन अमरीका का एक बहुत विचारशील लेखक हुआ, एक हंसोड़ व्यक्तित्व। और कभी-कभी हसोड व्यक्तित्व बड़ी गहरी चोटें कर जाते हैं; बड़े गहरे सत्य कह जाते हैं। अमल में सत्य कहना हो तो हँसी के बिना कहा ही नहीं जा सकता। जिंदगी वैसे ही काफ़ी उदास है। और उदास सत्य डाल-डाल कर आदमी को मारने का कोई अर्थ भी नही है।

मार्क ट्वेन को आदत थी भयंकर रूप से गालियाँ देने की। ज़रा-सी बात हो जाये, तो वह गालियाँ देना शुरू कर दे, और ऐसा नही कि आदमियों को ही दे, चीजो को भी दे। दरवाज़ा न खुल रहा हो, तो वह गाली देने लगे। उसकी पत्नी इस बात से बड़ी परेशान थी। और वह इतना नामी, आंतरराष्ट्रीय ख्याति का आदमी था कि उसकी पत्नी कहती थी कि कोई सुन ले कि तुम इस तरह की गालियाँ बकते हो, तो लोग क्या कहेगे! लेकिन कोई उपाय नही था। गालियाँ उसके लिए अनिवार्य थी। एक दिन सुबह-ही-सुबह, ब्रह्ममुहूर्त मे, कही जाने को वह निकला; कमीज़ पहनी, लेकिन कमीज का एक बटन टूटा हुआ था—बस, उसने गाली देना शुरू की पत्नी भी परेशान हो गयी। वह दरवाजे पर खड़ी सुनती रही एक-एक गाली उसकी। वह इतने रस से दे रहा था, जैसे संगीत का मज़ा ले रहा हो! बड़ी भद्दी गालियाँ दे रहा था, जिनका स्त्रियाँ उपयोग भी नहीं कर सकती। पर उसकी पत्नी ने सोचा कि आज यह भी करके देख लेना चाहिए। तो जैसे ही मार्क ट्वेन ने गालियाँ देना बन्द किया, उसकी पत्नी ने, जो-जो गालियाँ उसने दी थी, उतनी ही ज़ोर से उनको दोहराया। उसने सोचा, शायद इससे मार्क ट्वेन घबड़ा जायेगा, सोचेगा कि पड़ोसी क्या कहेंगे कि मार्क ट्वेन की पत्नी ऐसी भद्दी गालियाँ बकती है! लेकिन मार्क ट्वेन गौर से सुनता रहा, और जब उसकी पत्नी ने गालियाँ देना बन्द किया तो उसने कहा, "राइट, यू हैव कौट द वर्ड्स, बट यू हैव मिस्ड द स्पिरिट—शब्द तो पकड़ लिये, शब्द में क्या रखा है? आत्मा! वह गाली देने में जो मैं जो आत्मा डाल रहा था, वह नहीं है!"

सभी सत्यों के साथ क़रीब-क़रीब यही दिक्कत है, कि शब्द पकड़ में आ जाते हैं और आत्मा खो जाती है। शब्द झंझट की बात है। और शब्द के अनुसार फिर हम चलना शुरू कर देते हैं। और शब्द का अर्थ भाषाकोश में लिखा है, महावीर से पूछने की ज़रूरत नहीं है। अनगार यानी जिसका कोई घर नहीं – बात खत्म हो गयी। और अगर घर है तो आप ब्राह्मण नहीं हैं; घर छोड़ दें तो ब्राह्मण हो गये! आसान हो गयी बात; सरल हो गयी।

घर छोड़ने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। घर में रहने से कोई अब्राह्मण नहीं होता। अनगार चेतना की एक अवस्था है, ऐसी भाव-दशा, जहाँ मैं अपनी तरफ कोई सीमाएँ खड़ी नहीं करता, जहाँ मैं बँधा हुआ नहीं हूँ। घर का अर्थ है, बंधान। जगत् से आप भयभीत हैं, तो चारों तरफ से घर की दीवाल खडी कर रखी है। उसके भीतर आप सुरक्षित हैं। घर के बाहर खुले आकाश के नीचे असुरक्षा शुरू हो जाती है। तो महावीर कहते हैं : जो असुरक्षित जीता है, जो कोई दीवाल खड़ी नहीं करता, और जो दूसरे से अपना कोई फासला नहीं करता किसी सीमा को बनाकर कि तुम अलग हो।

समझें, अगर आप कहते हैं, मैं जैन हूँ – आपने एक घर बना लिया। हिन्दू से आपका घर अलग हो गया। आप दोनों के आँगन अलग हो गये। मुसलमान से आपका घर अलग हो गया। ईसाई से आपका घर अलग हो गया। इन्हीं घरों के अलग होने के कारण तो हमें मंदिर, मस्जिद और चर्च बनाने पड़े। हमारे घर ही अलग नहीं हो गये, हमें भगवान के घर भी अलग कर देने पडे।

महावीर कहते हैं कि तुम उस दिन ब्राह्मण होओगे, जिस दिन तुम्हारा कोई घर न रह जाये चेतना पर, और हमने तो ब्रह्म को भी घरों में बाँध दिया है। हम बड़े होशियार लोग हैं! महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं कि ब्रह्म हो जाये, हमने ब्रह्म को भी बाँधकर नीचे खड़ा कर दिया है!

लोगों के अपने-अपने ब्रह्म हैं। चर्च के सामने आपका दिल सिर झुकाने को नहीं होता। जीसस को सूली पर लटके देखकर आपके मन में कोई भाव नहीं उठता। महावीर को अपने सिंहासन में बैठे देखकर आपका सिर झुक जाता है। लेकिन जीसस का अनुयायी निकलता है, उसे कोई भाव नहीं होता। उसे सिर्फ़ इतना दिखायी पड़ता है कि आदमी नग्न बैठा है। आपको जीसस को देखकर लगता है कि क्या है इसमें, सूली पर लटका है! किसी पाप का फल भोग रहा होगा; किया होगा कर्म, तो भोगेगा। कि कहीं तीर्थंकर कहीं सूली पर लटकते हैं? तीर्थंकर को तो कांटा भी नहीं चुभता, सूली तो बहुत दूर की बात है! तीर्थंकर तो चलता है, तो कांटा अगर

सीधा पड़ा हो, तो जल्दी से उलटा हो जाता है; क्योंकि तीर्थंकर ने कोई पाप तो किया नहीं जो काँटा चुभे। तो जीसस को सूली लगी है, जरूर किसी महापाप का फल है।

जैनी के मन में यह भाव आयेगा जीसस को देखकर। हाथ नहीं जुड़ेगा। जीसस के अनुयायी को महावीर को देखकर खयाल आयेगा कि परम स्वार्थी मालूम पड़ता है यह आदमी। दुनिया इतने कष्ट में पड़ी है और तुम सिद्धासन लगाये बैठे हो! सारा संसार जल रहा है, तुम आँखें बन्द किये हो! हमारा जीसस सबके लिए सूली पर लटका और तुम अपने लिए बैठे हो! जीसस जगत् का कल्याण करने आये और तुम? तुम सिर्फ अपने ही घेरे मे बन्द हो! उसके हाथ नहीं जुड़ेंगे।

जीसस और महावीर तो दूर हैं। इधर पास भी देखें, महावीर और राम तो बहुत दूर नहीं है! दोनों क्षत्रिय है, एक ही धारा के हिस्से है। लेकिन जैनी के हाथ राम को देखकर नहीं जुड़ सकते! वह सीता मइया जो पास खड़ी है, वह उपद्रव है। भगवान होकर और पत्नी! यह कल्पना ही के बाहर बात है! और धनुष-बाण किसलिए लिये हो? किसी से लड़ना है? तीर्थंकर, और धनुष-बाण लिये हो! सोच भी नहीं सकते! और पत्नी खड़ी है। सब गड़बड़ हो गया। अभी कामवासना में ही पड़े हो!

लेकिन, राम के माननेवाले को महावीर को देखकर भी कोई भाव नहीं उठता, क्योंकि महावीर उसे पलायनवादी मालूम पड़ते है कि जहाँ जीवन संघर्ष है, वहां तुम भगोड़े हो! जहाँ जरूरत थी कि लड़ते और दुनिया को बदलते, वहाँ तुम जंगल में जाकर आँख बन्द किये बैठे हो। राम को देखो! धनुष-बाण लिये युद्ध में, संघर्ष मे खड़े हैं। और जब परमात्मा ने ही स्त्री-पुरुष को बनाया, तो तुम छोड़ने वाले कौन हो! और जब परमात्मा ने ही चाहा कि वे दोनों साथ हो, तो परमात्मा की मर्जी के खिलाफ जो जा रहा है वह नास्तिक है।

हम अपनी धारणाओं के घर बनाये है। उनको हम मन्दिर कहते हैं। हमने अपनी धारणाओं के भगवान बनाये है। वे हमारी धारणाओं के प्रोजेक्शन हैं, प्रक्षेप है। महावीर कहते है, अनगार चेतना चाहिए – जिसका कोई घर नहीं, जिसका कोई मन्दिर नहीं, जिसका कोई सम्प्रदाय नहीं, जिसका कोई धर्म नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो शुद्ध 'होने' में ही जीता है। न जो ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न हिन्दू है, न मुसलमान है। न जो कहता है मैं भारतीय हूँ, न जो कहता है कि मैं चीनी हूँ। जो किसी तरह के घेरे नहीं बनाता। जो न कहता है कि मैं धनी हूँ, न कहता है निर्धन हूँ। न जो कहता है मैं शूद्र हूँ, न जो कहता है कि मैं ब्राह्मण हूँ। जो न कहता है मैं ऊंचा हूँ, न नीचा हूँ। जो न कहता है मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ। जो कुछ भी नहीं कहता। जो अपनी तरफ कोई भी विशेषण नहीं लगाता।

विशेषण-शून्य व्यक्ति अनगार है। उसने सब घर गिरा दिया। जो खुले आकाश के नीचे आ गया। आकाश ही अब उसका घर है। ये इतना विस्तार, ये विराट ही उसका अब घर है। ऐसे व्यक्ति को महावीर कहते है, मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो अनगार है ।

'जो अकिंचन है ....।'

'अकिंचन' शब्द भी बड़ा मूल्यवान है। अकिंचन का अर्थ नही होता कि निर्धन है, दीन है। नही, अकिंचन का अर्थ होता है : जो अपने को 'कुछ भी हूँ,' ऐसा नहीं मानता। 'सॅम-बॉडी, कुछ होने का ख्याल' जिसे नही है। 'एक नो-बॉडीनेस – एक न-कुछ होने का भाव' कि मैं कुछ भी नही हूँ। यह 'कुछ भी नही हूँ' – यह भी विधायक रूप से न पकड़ ले कि 'मैं कुछ भी नही हूँ', नही तो यह भी अकड़ बन जाये। बस, कुछ होने का भाव न हो ।

बांकोज़ अपने गुरु के पास गया – एक झेन फकीर। और उसने गुरु से जाकर कहा कि आपने कहा था ना-कुछ हो जाओ – बिकम ए नो-बॉडी। नाऊ आई हैव बिकम ए नो-बॉडी – अब मैं ना-कुछ हो गया। उसके गुरु ने डंडा उठाया और कहा, 'दरवाजे के बाहर हो जा, इस नो-बॉडी को बाहर छोड़कर आ । यह जो 'ना-कुछ' को तू भीतर ला रहा है, नालायक! यह वही 'कुछ हूँ' है। इसमे कोई फर्क नही हुआ। अब दोबारा यहाँ मत आना, जब तक तू कुछ है।'

फिर बोकोज़ की हिम्मत नही पड़ी आने की। क्योंकि, असल मे दावा करना ही जब हो, तो कुछ होने का हो दावा हो सकता है। 'ना-कुछ' का कहीं कोई दावा होता है? 'ना-कुछ' के दावे का मतलब ही खो गया, बात ही उलटी हो गयी।

तो फिर बोकोज़ नही आया। वर्ष बीतते चले गये। तीन साल बाद गुरु गया खोजने कि बोकोज़ कहाँ है। शिष्यो ने कहा कि वह उस झाड के नीचे बैठा रहता है। गुरु उसके पास गया। बोकोज़ उठकर खड़ा भी नही हुआ! क्योंकि उठना था, वह औपचारिक था। गुरु आये तो शिष्य को उठना था, लेकिन जब कुछ भी न रहा, तो शिष्य कौन और गुरु कौन? कहते है, गुरु ने उसके चरणों मे सिर झुकाया और कहा कि तू अकिंचन हो गया। अब तुझे कोई भाव नही रहा कि तू कौन है। अब ना-कुछ का भी भाव नही है।

अकिंचन का अर्थ है, जब मुझे भाव ही न रह जाये कि मैं क्या हूँ; सिर्फ होना रह जाये अपनी परिशुद्धता मे।

महावीर कहते हैं, अकिंचन होना, ब्राह्मण होना है। ब्राह्मण की ऐसी महिमापूर्ण व्याख्या महावीर के अतिरिक्त और किसी ने भी नही की है। महावीर चाहते थे, पूरी पृथ्वी ब्राह्मण हो जाये। ऊपर से देखने पर लगता है कि महावीर ने तोड़ दिये समाज के सारे नियम, वर्ण की व्यवस्था, लेकिन महावीर की कल्पना थी कि सारी पृथ्वी

ब्राह्मण हो जाये। और जब तक सारी पृथ्वी ब्राह्मण नही हो जाती, तब तक धार्मिक होने का कोई उपाय नही है, पृथ्वी धार्मिक भी नहीं हो सकती। पृथ्वी ब्राह्मण हो सकती है। लेकिन, अगर सारी दुनिया यज्ञोपवीत पहन ले, चोटी रख ले, तिलक-टीका लगा ले और ब्राह्मण हो जाये, तो पृथ्वी ब्राह्मण नही हो सकती। और इस तरह का ब्राह्मणत्व फैल भी जायें तो दो कौड़ी का है। उसका कोई मूल्य नहीं है।

ब्राह्मण के लक्षणों को शरीर से हटाकर महावीर आत्मा पर ले जा रहे हैं। हमारी व्याख्या ब्राह्मण की जो महावीर के पहले थी, वह शरीर पर थी कि ब्राह्मण-कुल में जो पैदा हुआ, ब्राह्मण-घर मे बड़ा हुआ, ब्राह्मण-जाति के नियम मानता है – शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र पढ़ाता है, गुरु है – वह ब्राह्मण है। महावीर ने शरीर से सारी व्याख्या हटा दी।

'जो अकिंचन है .....।'

ध्यान रहे, जिसको हम ब्राह्मण कहते हैं, वह अकिंचन कभी नही होता, चाहे उसके पास कौड़ी भी न हो। और जब भी आप उसके सामने खड़े होते हैं, तो वह देखता है कि छुओ पैर! अकिंचन कभी नही होता। अगर आप उसके पैरों में सिर न रखें, तो अभिशाप देने को जरूर तैयार रहता है। अकिंचन वह कभी नहीं होता; महान अहकार से पीड़ित होता है।

ब्राह्मण के चेहरे पर देखें एक अकड़ ..... जो कि उन सभी लोगो मे आ जाती है, जो बहुत समय तक अभिजात्य रहते हैं; ऊपर रहते है, छाती पर रहते हैं समाज की। उन सभी में आ जाती है। जैसे कि अंग्रेज चलता था हिन्दुस्तान में, जब उसकी मालकियत थी।

ब्राह्मण हजारों साल से ऊपर है, पर ऊपर होने का कुल आधार शरीर है। इसलिए ब्राह्मणों को रुचिकर नही लगा महावीर का यह कहना कि ब्राह्मण होना आत्मा की गुणवत्ता है। ब्राह्मणों को लगा कि इस धारणा से तो हमारा ब्राह्मणत्व, जो कि शरीर पर निर्भर है, बिखरता है। इसलिए ब्राह्मणों ने महावीर का गहन विरोध किया। महावीर की विचारधारा को मुल्क में न जमने दिया जाये, इसकी पूरी चेष्टा की। महावीर घोर नास्तिक हैं और लोगो को अधार्मिक बना रहे हैं– ऐसा प्रचार किया। महावीर कोई ज्ञानी पुरुष नही है, इसकी पूरी धारणा फैलायी।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि महावीर - जैसे आस्तिक व्यक्ति के विचार को ब्राह्मणों ने — जाति, जन्म से बधे ब्राह्मणों ने नास्तिकता सिद्ध करने की चेष्टा की, और उन्होंने इतने ज़ोर से प्रचार किया है महावीर के नास्तिक होने का कि भारत के परम्परागत दर्शन शास्त्र के ग्रंथों में महावीर का नाम हमेशा नास्तिक परम्परा में गिना जाता है।

ये बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना है कि महावीर और बुद्ध-जैसे परम आस्तिक व्यक्ति नास्तिक क्यों मालूम पड़े । उन्होंने जो कहा था उसके कारण नहीं; बल्कि उन्होंने जातिगत स्वार्थों को जो नुकसान पहुँचाया, उसका बदला लेना जरूरी था । और एक बार किसी के नास्तिक होने की घोषणा कर दो, तो लोग अंधे हो जाते है, फिर लोग सुनना बंद कर देते है । किसी के भी सम्बंध में कह दो कि वह नास्तिक है, लोग डर जाते है ।

जैसे आज, आज किसी आदमी के बारे में कह दो कि वह कम्युनिस्ट है, फिर लोग सोच लेते हैं कि इसकी बात सुनने की जरूरत नहीं । जैसे आज किसी को कम्युनिस्ट कह देना काफी है निंदा के लिए । कम्युनिस्ट भी अपने को कम्युनिस्ट बताने मे दो दफा सोचता है कि बताना कि नही । ठीक आज से ढाई हजार साल पहले 'नास्तिक' इससे भी ज्यादा खतरनाक सत्य था । और चारवाक् के साथ महावीर को गिनना एकदम बेहूदी बात है । क्योंकि कहाँ चारवाक्, जो सिर्फ खाने, पीने और मौज उड़ाने की शिक्षा दे रहा है । जो कहता है कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई परम जीवन है – सिवाय पदार्थ के और कुछ भी नही । उसके साथ महावीर को गिनना या बुद्ध को गिनना ज्यादती है ।

लेकिन, ब्राह्मणो ने यह ज्यादती की । करने का कारण यह नही था कि महावीर नास्तिक थे । करने का कारण यह था कि महावीर ने ब्राह्मण की व्याख्या को इतना महान बना दिया कि सभी ब्राह्मणो को साफ हो गया कि उनमे से कोई भी ब्राह्मण नही है । यह व्याख्या गिरनी चाहिए । उनका ब्राह्मणत्व छीन लिया । इतनी बड़ी लकीर खीच दी ब्राह्मण की, कि उसके नीचे ब्राह्मण एकदम क्षुद्र मालूम होने लगा । कि इस आदमी का वचन नही सुनना चाहिए ।

ऐसा उल्लेख है शास्त्रो मे कि अगर कोई ब्राह्मण निकलता हो रास्ते से और सामने पागल हाथी आ जाये, और जैन-मन्दिर करीब हो, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर, जैन-मन्दिर में शरण नहीं लेनी चाहिए । क्योंकि पता नही वहाँ कोई नास्तिक वचन कान में पड़ जाए ।

मगर आप ऐसा मत सोचना कि ऐसा हिन्दुओं ने ही किया । जैनों ने भी ठीक यही किया पीछे । उन्होने भी लिखा है अपने शास्त्रों में कि कोई जैन अगर हिन्दू मन्दिर के पास पागल हाथी के सामने पड़ जाये, तो बेहतर है मर जाना पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर, हिन्दू-मन्दिर में शरण मत लेना । क्योंकि वहाँ कुदेव की पूजा हो रही है, कुशास्त्र पढ़ा जा रहा है ।

बड़े मजे की बात है, महावीर ने कहा कि कोई ब्राह्मण जन्म से नहीं होता' लेकिन सब जैन जन्म से जैन है ! महावीर ने जैन की कोई व्याख्या नहीं की, क्योंकि

उस दिन कोई जैन था नहीं। ब्राह्मण की व्याख्या की। अब जरूरत है कि कोई तीर्थंकर जैन की व्याख्या करे कौन है 'जैन।' 'जैन' शब्द 'ब्राह्मण' शब्द से ज्यादा कीमती है, कम कीमती नही है।

ब्राह्मण बनता है 'ब्रह्म' से। कि जो ब्रह्म को उपलब्ध होने लगा। और जैन बनता है 'जिन' से – जो स्वयं का स्वामी होने लगा, जीतने लगा अपने को। जिसने अपने को पूरी तरह जीत लिया वह 'जिन' है। और जो जीतने के मार्ग पर चल पड़ा, वह 'जैन है'। लेकिन जैन घर में पैदा होने से कोई जीतने के मार्ग पर चलता है?

लेकिन, जैसा उस दिन ब्राह्मण मूढ़ था, और सोच रहा था ब्राह्मण कुल में पैदा होकर मैं ब्राह्मण हो गया। वैसा ही जैन आज मूढ़ है। वह सोचता है जैनकुल मे पैदा होकर मैं सब पा लिया, सम्पदा मिल गयी।

जन्म से कुछ भी नही मिलता – हड्डी, माँस-मज्जा मिलती है। उसका धर्म से कोई लेना-देना नही है। धर्म तो उपलब्ध करना होता है, चाहे ब्राह्मण बनो और चाहे जैन। अथक श्रम, अथक साधना, जन्मों-जन्मों की चेष्टा का फल है। जिनत्व या ब्राह्मणत्व उपलब्धि है। जन्म के साथ नही मिलती, खुद पानी होती है।

ब्राह्मण-सूत्र : २

तृतीय पर्यूषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ३ सितम्बर, १९७३

न वि मुंडिएण समणो,
 न ओंकारेण बभणो ।
न मुणी रण्णवासेण,
 कुसचीरेण ण तावसो ।।
समयाए समणो होइ, बभचेरेण बभणो ।
 नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।
कम्मुणा बंभणो होइ,
 कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ,
 सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।
एव गुणसमाउत्ता,
 जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था समुद्धत्तु,
 परमप्पाणमेव चे ।।

सिर मुडा लेने मात्र से कोई श्रमण नही होता, 'ओम्' का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नही होता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नही होता, और न कुशा के बने वस्त्र पहन लने मात्र से कोई तपस्वी ही हो सकता है ।

समता से मनुष्य श्रमण होता है; ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है; ज्ञान से मुनि होता है; और तप से तपस्वी बना जाता है ।

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किए गए कर्मों से ही होता है । (अर्थात् वर्ण-भेद जन्म से नही होता । जो जैसा अच्छा या बुरा कार्य करता है, वह वैसा ही ऊँच या नीच हो जाता है ।)

इस भाँति पवित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण) हैं, वास्तव में वे ही अपना तथा दूसरों का उद्धार कर सकने में समर्थ हैं ।

सत्य के अनुसन्धान मे अपरिसीम साहस चाहिए – प्रतिष्ठा को चुनौती देने का, स्वीकृत धारणाओं को खण्डित करने का, आदृत मूर्तियों को भंजित करने का। असत्य चाहे कितना ही प्रतिष्ठित हो, उसे असत्य की तरह ही घोषित करना, असत्य की तरह ही जानना साधक के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। बहुत बार प्रतिष्ठित को हम सत्य मान लेते हैं, परम्परागत को सत्य मान लेते है, बहुजन के द्वारा स्वीकृत को सत्य मान लेते हैं। स्वार्थ मे भी यही होता है कि व्यर्थ की उलझन मे हम न पडे, सभी जैसा मानते हैं वैसा ही हम भी मान लें और सभी के साथ भीड मे खडे हो जायें। लेकिन भीड़ कभी सत्य को उपलब्ध नही होती, समूह तो अन्धकार में ही भटकता है। भीड़ से दूर हटने की हिम्मत चाहिए।

भीड से दूर हटने में कठिनाई भी होगी, अड़चनें होगी, असुविधा होगी, लेकिन वह भी सत्य की खोज तपश्चर्या है। चाहे विज्ञान हो चाहे धर्म, इस सम्बन्ध मे दोनो राज़ी हैं, और वो प्रतिष्ठा को, परम्परा को, भीड़ को, क्राउड का जो चित्त है, उसको चुनौती देनेकी बात।

महावीर शुद्ध सत्य के अन्वेषक हैं। जहाँ-जहाँ स्वार्थ ने असत्य के मन्दिर खड़े कर रखे हैं, वहाँ-वहाँ चोट करना जरूरी है। वह चोट मनुष्यों पर नही है, मनुष्यो की भूलो पर है।

विश्व के वैज्ञानिक-वर्तुल मे एक छोटी-सी बड़ी मधुर कथा प्रचलित है। ऑस्ट्रियन वैज्ञानिक वुल्फगैंग पावली १९५८ में मरा। कथा है कि ईश्वर बहुत दिन से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह कब मरे और कब आये; क्योंकि पावली-जैसे आदमी मुश्किल से कभी होते हैं। असत्य को पकड़ने की, लोग कहते है, ऐसी क्षमता मनुष्य जाति के इतिहास में, विज्ञान की परम्परा में दूसरे व्यक्ति के पास नही थी। क्षणभर मे असत्य को पकड़ लेना, भूल को पकड़ लेना पावली की कुशलता थी। और चाहे कितना ही खोना पड़े, कितना ही दांव पर लगाना पड़े, भूल को अस्वीकार करना या भूल को मद्देनज़र करना या छिपाना उसके लिए असम्भव था।

हो सकता हो ईश्वर उसकी प्रतीक्षा करता हो, क्योंकि सत्य के खोजी की ही प्रतीक्षा ईश्वर कर सकता है।

पावली मरा, और कथा है कि ईश्वर ने पावली से कहा कि तू भी अनूठा आदमी है। छोटी-छोटी भूलों के लिए तूने अपनी न-मालूम कितनी रातें बिना सोये

बिताई है। और निश्चित ही जीवन के बहुत से रहस्य – वह भौतिकविद् था, फिजिसिस्ट था – भौतिक शास्त्र के बहुत से रहस्य तुझे अनजाने रह गये होंगे और तू प्रतीक्षा कर रहा होगा कि कब परमात्मा से मिलना हो तो उनसे पूछ सके। तुझे कुछ पूछना तो नहीं है ? मैं खुश हूँ।

पावली ने कहा कि धन्यभागी, हे प्रभु, एक सवाल मुझे वर्षों से चिन्तित कर रहा है, और मेरे मित्रों ने, मेरे साथियों ने जितने भी सिद्धांत खोजे वह सब गलत थे और मामला हल नही हो पाया। जब आप ही मौजूद हैं, जिन्होंने जगत को बनाया तो अब हल होने में कोई कठिनाई नही है।

उसने भौतिक-शास्त्र का एक उलझा हुआ सवाल ईश्वर से पूछा। उसने कहा कि प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन दोनों के मास में अठारह सौ गुना का फर्क है। प्रोटॉन का मास इलेक्ट्रॉन के मास से अठारहसौ गुना ज्यादा है। लेकिन दोनो का विद्युत चार्ज बराबर है; यह बड़ी हैरान करने वाली बात है। ऐसा कैसे हो पाया? क्या कारण है ? जरूर कोई कारण होगा।

ईश्वर ने अपनी टेबल के ऊपर से कुछ कागजात उठाये और पावली को दिये और कहा कि यह रहा मारा सिद्धान्त, इस भेद का सारा रहस्य ! पावली गौर से पढ़ गया। फिर से दुबारा लौटकर उसने पढ़ा। तीसरी बार फिर नजर डाली और ईश्वर के हाथ में देते हुए कहा, 'स्टिल रॉन्ग – अभी भी गलत है।'

कहानी कहती है कि ईश्वर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि मैंने गलत ही तुझे पकड़ाया था। मैं जानना चाहता था कि ईश्वर को भी गलत कहने की क्षमता तुझ में है या नहीं?

ईश्वर की प्रतिष्ठा से और बड़ी कोई प्रतिष्ठा नही हो सकती; लेकिन सत्य के खोजी की आड़ में अगर ईश्वर भी आता हो तो उसे भी हटा देना आवश्यक है। महावीर सत्य के अनुसन्धान में लगे थे, और बहुत सी बाते आड़ में थी। वेद की प्रतिष्ठा थी। और वेद ईश्वर से कम प्रतिष्ठित नही था इस देश में। वेद ईश्वर का वचन था। कहना चाहिए ईश्वर से भी ज्यादा प्रतिष्ठित था। अगर ईश्वर भी वापस आ जाये और वेद के खिलाफ बोले, तो ईश्वर अस्वीकृत हो जायेगा, वेद स्वीकृत रहेगा। वेद परम वचन था। महावीर ने वेद को अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उन्होंने कहा कि अनुभूति ही परम हो सकती है, शब्द परम नही हो सकते। और महावीर ने जो-जो प्रतिष्ठित परम्परा थी, सब पर आघात किये। ब्राह्मण प्रतिष्ठित था। महावीर ने ब्राह्मण की पूरी व्याख्या बदल दी। उस समय कोई सोच भी नहीं सकता था कि शूद्र भी अपने कर्म से ब्राह्मण हो सकता है, ब्राह्मण भी अपने कर्म से शूद्र हो सकता है। लेकिन महावीर ने जन्म की पूरी व्यवस्था तोड़ दी और कहा कि व्यक्ति अपनी चेतना से ब्राह्मण होता है या शूद्र होता है, शरीर से नहीं।

स्वभावतः, परम्परा को जब चोट पहुँचाई जाए, परम्परा प्रतिशोध लेती है। लेगी ही; क्योंकि न मालूम कितने स्वार्थ गिरेंगे, निहित स्वार्थों को चोट पहुँचेगी — वे बदला भी लेंगे। उन्होंने बदला लिया भी। लेकिन उससे सत्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। सत्य प्रतिशोध की अग्नि से गुज़रकर और भी निखरकर स्वर्ण हो जाता है।

इस सूत्र में प्रवेश करने के पहले एक बात प्राथमिक रूप से समझ लेनी चाहिए कि धर्म के लिए सबसे बड़ा उपद्रव सदा से एक रहा है, और वो उपद्रव है कि जो आन्तरिक है उसे हम बाह्य से तौलते हैं। कारण भी साफ है, क्योंकि मनुष्य का बाह्य हमें दिखाई पड़ता है, अन्तस् तो दिखाई नहीं पड़ता। अन्तस् को तौलने का हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। और अन्तस् मूल्यवान है, बाह्य तो केवल आवरण है, वस्त्रों की भाँति।

एक आदमी सफेद वस्त्र पहन सकता है, इससे शुभ्र हृदय का नहीं हो जाता। एक आदमी काले वस्त्र पहने हो, इससे ही काले हृदय का नहीं हो जाता। हृदय का वस्त्रों से क्या लेना-देना? वस्त्र हृदय को नहीं बदल सकते। यद्यपि उलटी बात हो सकती है कि हृदय अगर शुभ्र हो तो काले वस्त्र प्रीतिकर न लगें, और आदमी काला वस्त्र न पहनना चाहे। लेकिन, सिर्फ़ काला वस्त्र पहन लेने से किसी का हृदय काला नहीं हो जाता। यह हो सकता है कि हृदय काला हो और आदमी सफेद वस्त्र पहनकर उसे छिपा लेना चाहे। बहुत लोग ये करते हैं। हृदय जितना काला हो, उतना सफेद आवरण में, सफेद वस्त्रोंमें छिपा लेना जरूरी है। वस्त्र खादी के हों तो और भी अच्छा है। तो भीतर वो जो काला है, वह छिप जाता है।

वस्त्रों से भीतर को पहचानने का कोई उपाय नहीं है। भीतर की क्रान्ति तो वस्त्रों तक आ जाती है, लेकिन वस्त्रों का परिवर्तन भीतर तक नहीं जाता। लेकिन मनुष्य की कठिनाई है कि हमें बाहर से दिखाई पड़ता है, भीतर पहुँचने का कोई उपाय भी तो नहीं है। और, धर्म की घटना घटती है भीतर से, और हम देख पाते हैं केवल व्यवहार — अन्तरात्मा नहीं। इसी कारण पूरे धर्म की परम्पराएँ रोगग्रस्त हो जाती हैं।

महावीर नग्न हुए, नग्न होकर परम-ज्ञान को उपलब्ध हो गये, ऐसा नहीं। लेकिन परम ज्ञान जैसा उनके जीवन में घटा, वे इतने निर्दोष हो गये कि नग्नता आ गयी। नग्नता पीछे आयी; निर्दोषता पहले घटी। निर्दोषता को हम नहीं देख सकते, लेकिन उनका बच्चे की तरह नग्न खड़े हो जाना हमें दिखाई पड़ा। हममें से बहुत से लोगों को भी उन्होंने प्रभावित किया। उनके जीवन की सुगन्ध ने, उनका प्रकाश हमें छुआ। हमारे हृदय की वीणा पर कुछ अनुगूंज हुई; कोई गीत हमारे भीतर भी जगा। कोई प्रतिध्वनि हममें भी गूँजी। हम जो कि बिलकुल जड़ हैं, वे भी थोड़े हिले। लेकिन हमें महावीर की निर्दोषता नहीं दिखाई पड़ी, नग्नता दिखाई पड़ी। तो

हमने सोचा : हम भी नग्न खड़े हो जाएँ तो महावीर-जैसा ज्ञान हमें भी उपलब्ध हो जाएगा। बात बिलकुल उलटी हो गयी।

हम नग्न खड़े हो सकते हैं, और नग्न खड़े होने का अभ्यास बड़ी कठिन बात नहीं है। एकाध, दो दिन अड़चन होगी। जब सभी को जाहिर हो जायेगा कि आप नग्न रहते हैं तो बात समाप्त हो जायेगी। दो-चार दिन के बाद नग्नता वैसे ही सहज हो जाएगी, जैसे अभी वस्त्र हैं।

पश्चिम में बहुत से 'न्यूड-क्लब' हैं। जो लोग उन क्लबों के सदस्य बनते हैं, उनको एक-दो दिन अड़चन होती है। सच तो यह है कि सिर्फ़ पहले दिन ही अड़चन होती है, दूसरे दिन मे तो वे भूल ही जाते हैं। तीसरे दिन तो पता ही नही रहता कि कोई नग्न भी है, क्योंकि सभी नग्न हैं।

मेरे एक मित्र एक नग्न क्लब के सदस्य थे अमरीका में। उन्होंने मुझे बताया कि हम भूल ही गये थे कि कोई नग्न है। हमें याद तो तब आया, जब एक दिन एक कपड़े पहने हुए आदमी भीतर आ गया। जहाँ पाँच सौ लोग नग्न थे, वहाँ एक आदमी के कपड़े पहने हुए भीतर आने से तत्काल हमें पता चला कि अरे, हम नग्न हैं। अन्यथा नग्नता का हमें कोई पता नही था।

मन अभ्यस्त हो जाता है। लेकिन नग्न-क्लबों में जो बैठे हैं, वे महावीर नही हो जायेंगे। नग्न क्लब की सदस्यता से कोई महावीर नही हो जाता।

तो यहाँ हिन्दुस्तान में जैन मुनि हैं, जो नग्न हैं। वो नग्न होने से महावीर नही हो जायेंगे। महावीर को हुए पच्चीस सौ साल हो गये। इस बीच बहुत लोग उनके पीछे नग्न हुए, लेकिन एक में भी महावीर की चमक नही आयी। कही कुछ भूल हो गयी। जो घटना भीतर से बाहर की तरफ घटी थी, जो झरना सदा भीतर से बाहर की तरफ बहता है, हमने उसे बाहर से भीतर की तरफ ले जाना चाहा। फूल निकलते हैं पौधे से; वे भीतर से आते हैं, फिर खिलते हैं। हम जाकर बाज़ार से फूल ले आये और पौधे की डाल पर चिपका दें, शायद किसी अजनबी को धोखा भी हो जाए, और जो नही जानता है फूल का अन्तर्जीवन, वह शायद चमत्कृत भी हो; कहे, 'कैसा सुन्दर फूल है!' लेकिन माली को धोखा नही दिया जा सकता। और, साधारण आदमी को भी ज़्यादा देर धोखा नही दिया जा सकता; क्योंकि बाहर से चिपकाया फूल जल्दी ही मुरझाया हुआ, लटका हुआ होगा। भीतर से आते हुए फूल में जो जीवन है, जो प्रवाह है, जो गति है, वह बाहर से लटकाये हुए फूल में नही हो सकती।

तो महावीर की नग्नता का फूल तो भीतर से आता है, फिर महावीर के पीछे चलनेवाला नग्नता को ऊपर से आरोपित कर लेता है और सोचता है कि जब बाहर

हम महावीर-जैसे हो गये तो भीतर भी महावीर-जैसे हो जायेंगे । यह गणित बिलकुल ठीक दिखाई पड़ता है, और बिलकुल गलत है ।

यह सभी के साथ होगा, सभी परम्पराओं में होगा । महावीर फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं, कोई हिंसा न हो जाए। उनके जीवन में यह उनको चारों तरफ से घेरे हुए हवा है कि कोई हिंसा न हो जाए; किसी को दुख, किसी को पीड़ा, किसी को कष्ट न हो जाये। लेकिन, इसका कारण आन्तरिक है । महावीर ने जिस दिन जाना कि 'मैं कौन हूँ', उसी दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी के भीतर ऐसा ही चैतन्य विराजमान है, और किसी को भी चोट पहुँचाना अन्तत: अपने को ही चोट पहुँचाना है।

तो महावीर की अहिंसा उनके ज्ञान की छाया है। फिर उनके पीछे जैनो का समूह है, वह भी अहिंसक होने की कोशिश करता है । उसकी अहिंसा ज्ञान की छाया नहीं है । वह उलटी कोशिश में लगा है । वह सोचता है, जब मैं अहिंसक हो जाऊंगा तो मुझे ज्ञान उपलब्ध होगा । महावीर का आचरण आता है अन्तरात्मा की क्रान्ति से, जैन का आचरण आता है आचरण से, और सोचता है कि पीछे अन्तरात्मा की क्रान्ति होगी ।

हम करीब-करीब बिलकुल पागलपन का काम कर रहे हैं, जो असंभव है। ईंधन लगाते हैं हम भट्टी मे, आग जलती है । आग पीछे आती है, ईंधन पहले लगाना पड़ता है । हम आग को पहले रखकर फिर पीछे ईंधन को लाने की कोशिश मे लगे हैं । वह होगा नही, लेकिन होता हुआ दिखता है । धोखा हो जाता है। आदमी आचरण को चिपका लेता है । तब खुद का तो धोखा नही होता, खुद तो वो जो था वैसा ही होता है, लेकिन दूसरो को धोखा हो जाता है । पूजा, सम्मान, सत्कार मिल जाता है ।

बाहरी इंगित बड़ी दिक्कते खड़ी कर देते हैं । दुनियाभर के धार्मिक लोगों के अगर वस्त्र अलग कर लिये जाए धार्मिकता के, तो भीतर अधार्मिक आदमी बैठा हुआ है । लेकिन इशारे में सब छिप गया है और इशारे का अर्थ हम लगा रहे है बाहर से ।

मैंने सुना है, मध्य युग में ऐसा हुआ कि रोम के पोप के पास कुछ लोगों ने, ईसाइयो ने अत्यन्त गहरा निवेदन किया, खुशामद की, यहूदियो की बड़ी निन्दा की और कहा कि रोम मे, जो कि ईसाइयों का गढ़ है, वहाँ तो एक भी यहूदी का रहना ठीक नहीं है । रोम से यहूदी निकाल बाहर कर दिये जायें ।

पोप, आदमी भला था, लेकिन भले आदमी भी पद पर होकर बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं । पद किसी को भी बुरा कर सकता है। और, अगर पद पर रहने की थोड़ी-सी भी आकांक्षा हो, तो फिर बुरे के साथ समझौता जरूरी हो जाता है ।

आदमी भला था, लेकिन पद पर रहने की आकांक्षा। तो उसे लगा कि यह बात तो ज्यादती की है, लेकिन अगर ईसाई धनपति सब नाराज हो जायें तो कठिनाई होगी। तो उसने कहा, अच्छा! पर उसने कहा एक तरकीब— हम यहूदियों को अलग कर देंगे, लेकिन इसके पहले एक अवसर देना जरूरी है! तो उसने ये अवसर दिया कि यहूदियों में जो भी उनका प्रधान हो या जो भी उनका नेतृत्व करे, वह आकर मुझ से विवाद करे। पूरा रोम इकट्ठा होगा। और अगर विवाद में वह मुझसे जीत जाए तो यहूदी रह सकते हैं रोम में, अगर वह हार जाए तो यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ेगा। कमसे-कम इतना न्याययुक्त तो मालूम पड़ेगा कि हार गये इसलिए रोम छोड़ना पड़ा।

यहूदी बड़े बेचैन हुए। उनके नेता, उनके गुरु, उनके पुरोहित इकट्ठे हुए सिनागाग में, और उन्होंने कहा कि हम तो बड़ी मुश्किल में पड़ गये। और सिनागाग का जो प्रधान पुरोहित था, उसने कहा कि इस विवाद में तो हार निश्चित है, क्योंकि निर्णायक भी पोप है। विवाद भी वही करेगा एक तरफ से, और निर्णायक भी वही है कि कौन जीता और कौन हारा! हमारे जीतने का कोई उपाय नहीं है। यह चाल है।

और प्रधान पुरोहित ने कहा कि मैं विवाद में जाने को राजी नहीं, क्योंकि इसका कोई अर्थ ही नहीं है। और अगर मैं हार गया, जो कि निश्चित है, तो मेरे मन में सदा के लिए एक पाप का भाव रह जाएगा कि मेरे हार जाने के कारण सारे यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ा। इसलिए मैं नहीं जाता। हम बिना हारे रोम छोड़ दें, वह उचित है।

लेकिन इतनी जल्दी छोड़ने को यहूदी राजी न थे, तो पुरोहितों से पूछा, लेकिन कोई राजी न हुआ। सिनागाग में जो आदमी बुहारी लगाता था, वह बड़ी देर से सुन रहा था, सफाई भी कर रहा था। उसने कहा, अच्छा तो मैं चला जाऊँगा! लोगों ने कहा, तू पागल है, तू समझता क्या है? तू सिर्फ बुहारी लगाता रहा है। उसने कहा, थोड़ा-बहुत जो भी समझ गया हूँ.. जब कोई जाने को राजी ही नहीं है, तो किसी का जाना जरूरी है – तो मैं जाता हूँ।

कोई उपाय न देख कर बुहारी लगाने वाले उस बूढ़े को यहूदी विवाद में भेजने के लिए राजी हो गये। सारे रोम के यहूदी और ईसाई बीच चौक में रोम के इकट्ठे हुए। पोप भी थोड़ा चिन्तित हुआ यह देखकर कि एक बुहारी लगाने वाला बूढ़ा यहूदी विवाद करने आया है। लेकिन कोई उपाय नहीं था, क्योंकि यहूदियों ने उसे अपना नेता चुना था। पोप ने विवाद शुरू किया। उसने आकाश की तरफ हाथ उठाकर यहूदी को आकाश दिखाया। जब पोप ने आकाश की तरफ इस तरह हाथ करके दिखाया तो यहूदी ने अपना हाथ जमीन की तरफ करके दिखाया। पोप बड़ा प्रसन्न हुआ कि गजब का आदमी है, जभी तो चुना होगा इसको। फिर पोप ने एक अँगुली ठीक उस यहूदी के सामने कर दी। उस यहूदी ने तीन अँगुलियाँ पोप के सिर के सामने कर दीं।

पोप को पसीना आ गया कि यह आदमी तो जीत जायेगा ! कोई उपाय न देखकर पोप ने अपने खीसे से एक सेव निकाला और उस सेव को यहूदी के सामने किया। उसने भी झट अपनी कमर में बँधे हुए एक बैग में से एक रोटी निकाली और पोप के सामने कर दी।

पोप ने कहा कि दिस मैन इज डिक्लेयर्ड विक्टोरियस ऐन्ड ज्यूज कैन रिमेन इन रोम – यह आदमी जीत गया। यहूदी रह सकते हैं रोम में।

सारे ईसाई पादरी चकित हुए। वो पास आये। जैसे ही यहूदियों का झुंड चला गया अपने नेता को लेकर, उन्होंने पोप से पूछा, "इतनी जल्दी लेन-देन हुआ आप दोनों के बीच, और इतने चमत्कारी ढंग से कि हम तो कुछ समझ ही नहीं पाये कि हो क्या रहा है ! और वह जीत भी गया ! मामला क्या था, हमें समझाइये।"

पोप ने कहा कि मैंने उस बूढ़े को इशारा किया कि सारे जगत में एक ही परमात्मा का राज्य है। यहूदी बड़ा होशियार था– ही वाज ए मास्टर ऑफ डिबेट्स। उसने कहा, "और नीचे शैतान का भी राज्य है, जमीन के नीचे पाताल। उसको मत भूल जाओ।"

बात सच्ची थी। मैंने उसके सामने फिर भी कहा, लेकिन परमात्मा एक ही है, दो कैसे हो सकता है ? तो मैंने एक अंगुली उसके सामने की। उसने तीन अंगुली मेरे मुह के सामने करके मुझको ही हरा दिया। ट्रिनिटि– तीन का सिद्धान्त : कि परमात्मा तीन है, एक नही है।

ईसाई मानते हैं कि परमात्मा तीन है, जैसा कि हिन्दू मानते हैं त्रिमूर्ती। ईसाई मानते हैं, परमात्मा, होली घोस्ट और उसका पुत्र।

तो कोई उपाय ही नही था। मेरी ही चीज मेरे ही सिर पर मार दी उसने तीन बताकर। तो मैंने सोचा कि सिद्धान्तों में इसको उलझाना मुश्किल है। कोई और सरल-सा उपाय निकालूं, शायद उसमें हार जाए। तो मैंने अपने खीसे से एक सेव निकाला, कि कुछ नासमझ कहते हैं कि जमीन गोल है सेव की तरह। उस समय विज्ञान की नयी खोजे चल रही थी, और विज्ञान सिद्ध कर रहा था कि जमीन वर्तुलाकार है, चपटी नही।

यहूदी भी गजब का था; रोटी साथ लेकर आया था। उसने रोटी दिखा दी; कहा कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन जैसा बाइबिल में कहा है कि जमीन रोटी की तरह सपाट और चपटी है। हारने के सिवा कोई उपाय नही था।

सिनागाग भागा हुआ उस यहूदी के पास पहुँचा। उन्होंने उस बुहारी लगाने वाले से कहा कि तूने हद कर दी ! क्या गजब का आदमी है ! हुआ क्या ?

उसने कहा, "एवरीथिंग वाज़ जस्ट नॉनसेन्स। दैट मैन इज़ मैड। और अगर चौथा सवाल पूछता तो मैं उसको झपट्टा मार देता। बहुत गुस्सा मुझे आ रहा था।"

"फिर भी हुआ क्या ? तू जीत तो गया!"

उसने कहा कि वह तो मेरी समझ में भी नही आता। जब पोप ने ऐसा हाथ किया तो मैंने समझा कि वह कह रहा है कि निकलो यहूदियों रोम से। मैंने कहा कि दुनिया की कोई ताकत हमें इस जगह से नही हटा सकती। हम यहीं रहेंगे। उस आदमी ने मेरी आँख के सामने एक अंगुली की; कहा कि ड्रॉप डेड– मर जाओ। तो मैंने तीन अंगुली की और कहा कि यू ड्रॉप डेड थ्राइस। और तब मैंने देखा— देन आइ सा दैट ही इज़ ब्रिंगिंग आउट हिज़ लन्च, सो आइ ब्रॉट आउट माइन– वह अपना भोजन निकाल रहा है। तो मैं भी अपना भोजन तो साथ रोज रखता ही हूँ। गरीब आदमी हूँ, रोज दोपहर घर जाना आसान नही होता। जब तुम अपना भोजन निकाल रहे हो, हम भी निकालते हैं। और वो जो चौथा उसने नहीं पूछा, सो ठीक ही किया।

बाहरी प्रतीक कुछ भी खबर नही देते– और उनसे भीतर का अन्दाज आप जो लगाते हैं, वह अनुमान है। लेकिन हम यही कर रहे हैं। एक आदमी मन्दिर जा रहा है, तो हम समझते है, धार्मिक है। मन्दिर जाना बाहरी प्रतीक है। पता नही, वह किसलिए जा रहा है, किस कारण से जा रहा है ? कि मन्दिर में स्त्रियाँ इकट्ठी हैं, इसलिए आ रहा है, कि मन्दिर में गाँव के सब लोग, भले लोग इकट्ठे है, वो देख लें कि मैं भी भला आदमी हूँ—इसीलिए जा रहा है। वह मन्दिर जा रहा है, इतने से कुछ पता नही चलता कि वह धार्मिक है।

एक आदमी उपवास कर रहा है, पूजा-प्रार्थना कर रहा है, इससे कुछ पता नही चलता कि वह धार्मिक है। ये तो बाहर के प्रतीक है; हम अनुमान लगाते हैं। और एक आदमी चुप बैठा है; मन्दिर नही जा रहा है, तो हम सोचते है, अधार्मिक है। लेकिन कुछ आवश्यक नही। जो मन्दिर जा रहा है, वह धार्मिक न हो। जिन्दगी जटिल है। और जो एकान्त मे चुप बैठा हो, वह धार्मिक हो। कहना मुश्किल है। लेकिन, हम बाहर से देखते हैं और इसलिए दुनिया मे पाखण्ड फैलता चला जाता है, हिपॉक्रिसी फैलती चली जाती है। हमारे बीच जो चालाक है, वे बाहर का इन्तजाम कर लेते है और हमारे बीच जो चालाक नहीं है, वे उलझ जाते है, फँस जाते है।

जो अपराधी फँस जाते है, वे सब छोटे अपराधी हैं। बड़े अपराधी फँस नही पाते। बड़े अपराधी तो अधिकार में, पद में, प्रतिष्ठा में होते है; उन्हें फसाना मुश्किल है। वे काफी होशियार हैं। वे बाहर का इन्तजाम कर रखते है।

ऐसा कहा जाता है, मनोवैज्ञानिक कहते है कि मन्दिर के पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता कि 'ईश्वर है।' यह उनका धन्धा होता है– यह प्रोफेशनल सिक्रेट है। ईश्वर में उन्हें कभी भरोसा नहीं होता, हो भी नही सकता। मन्दिर के पुरोहित को क्या खाक भरोसा होगा, क्योंकि जो नौकरी कर रहा है पूजा के लिए, नौकरी कर रहा है प्रार्थना के लिए; प्रार्थना-जैसे निजी सम्बन्ध को जिसने व्यवसाय बना लिया है, उसे परमात्मा का कोई अनुभव नही हो सकता।

मन्दिर का पुरोहित जानता है कि भगवान वगैरह कुछ भी नही है, लेकिन निरन्तर घोषणा करता रहता है अपने सारे आचरण मे कि है, क्योंकि उसका सारा जीवन, सारा व्यवसाय, सारा धन्धा भगवान के होने पर निर्भर है। इसलिए जब कोई कहता है कि भगवान नही है, तो पुरोहित की नाराजगी ये नही है कि आप असत्य बोल रहे हैं, पुरोहित की नाराजगी ये है कि सत्य बोलकर आप उसका पूरा धन्धा खराब किये दे रहे हैं।

पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता। हो नहीं सकता, लेकिन पाखण्ड का जाल उनके चारों तरफ होता है, जिससे दूसरों को भरोसा मिलता रहता है कि वे भरोसा करते हैं।

महावीर का यह सूत्र सारे पाखंड की जड़ काट देने का सूत्र है। महावीर कहते हैं,

'सिर मुंड़ा लेने मात्र से कोई श्रमण नही होता।'

जैसे 'ब्राह्मण' शब्द बहुमूल्य है, वैसे ही महावीर के लिए 'श्रमण' शब्द महत्त्वपूर्ण है। और भारत में दो संस्कृतियो की धारा है। एक ब्राह्मण सस्कृति की धारा है और एक श्रमण संस्कृति की धारा है। श्रमण संस्कृति में बुद्ध और महावीर आते हैं और शेष सारे विचारक ब्राह्मण सस्कृति में आते हैं। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का मौलिक भेद समझ लेना चाहिए।

ब्राह्मण समर्पण की संस्कृति है– सरेन्डर की। ब्राह्मण संस्कृति का मौलिक आधार है कि जब तक कोई व्यक्ति अपने अहंकार को परमात्मा के चरणो मे न छोड़ दे, तब तक ज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती। ब्रह्म उपलब्ध होगा, जब अहंकार समर्पित हो जायेगा।

तो समर्पण, श्रद्धा ब्राह्मण सस्कृति का सूत्र है। श्रमण संस्कृति बिलकुल भिन्न है। श्रमण शब्द बना है श्रम से। श्रमण संस्कृति का आग्रह है कि समर्पण से परमात्मा नहीं मिलेगा; श्रम से मिलेगा–प्रयास से, साधना से। सिर्फ 'असहाय हूँ और पतित-पावन, मुझे बचाओ' इन प्रार्थनाओं से नहीं मिलेगा। जीवन को बदलना होगा।

मेहनत करनी होगी। एक-एक इंच जीवन को रूपान्तरित करना होगा। कोई प्रार्थना सफल नहीं हो सकती, साधना सफल होगी।

अहंकार मिटाना है। लेकिन श्रमण धारा कहती है कि अहंकार समर्पण करने से नहीं मिट सकता। क्योंकि पहली तो बात यह है कि जो है, उसीका समर्पण किया जा सकता है; जो है ही नहीं, उसका समर्पण कैसे होगा? श्रमण धारा कहती है कि 'अहंकार नहीं है', इस सत्य को जानने की साधना करनी पड़ेगी। समर्पण से क्या होगा? छोड़ेंगे कहाँ जो है ही नहीं, होता कुछ, तो छोड़ देते।

और फिर श्रमण संस्कृति कहती है कि अगर दूसरे के चरणों में छोड़ेंगे, तो अहंकार यहाँ से हटा, लेकिन वहाँ मौजूद होगा जहाँ छोड़ेंगे। और इसलिए भक्त का अहंकार अपने भीतर से हटकर भगवान के साथ जुड़ जाता है। भक्त को आप गाली दें, वह नाराज नहीं होगा, उसके भगवान को गाली दें, वह लड़ने को तैयार हो जायेगा।

तो अहंकार शिफ्ट हुआ। कल तक अपने साथ था कि मैं महान हूँ। अब मैं महान हूँ, ये छोड़ दिया, लेकिन मेरा भगवान, मेरा कृष्ण, मेरा राम, मेरा जीसस, मेरा महावीर महान है। अहंकार दूसरी तरफ हट गया, लेकिन सूक्ष्म रूप से अब भी आपका ही अहंकार है; क्योंकि न वहाँ राम हैं, न वहाँ कृष्ण हैं, न महावीर हैं उसको झेलने को। आप अपने ही हाथ में सँभाले हुए हैं। भगवान भी आपका, अहंकार भी आपका। वे दोनों आपके भीतर ही छिपे हैं।

श्रमण संस्कृति कहती है, अहंकार मिटाना है, समर्पण करने का कोई उपाय नहीं है। और मिटाने का अर्थ है कि इतना श्रम करना है कि स्वयं दिखाई पड़ जाए कि अहंकार है ही नहीं। वह श्रम से ही तिरोहित हो जाए। जैसे सुबह की ओस की बूँद सूरज के उगने पर तिरोहित हो जाती है, ऐसे ही जीवन की धारा जब संग्रहित होती है, इन्टिग्रेट होती है, समग्र होती है, तो अहंकार का कुहासा समर्पित नहीं होता है, विसर्जित हो जाता है।

श्रमण संस्कृति 'स्वयं' पर भरोसा रखती है; ब्राह्मण संस्कृति 'ब्रह्म' पर भरोसा रखती है। श्रमण संस्कृति 'व्यक्तिवादी' है; ब्राह्मण-संस्कृति 'अद्वैतवादी' है। ब्राह्मण संस्कृति में एक ब्रह्म है, और श्रमण संस्कृति में उतने ही ब्रह्म हैं जितनी चेतनाएँ हैं— और हर व्यक्ति ब्रह्म होने का अधिकारी है।

ये दो धाराएँ हैं।

महावीर कहते हैं, सिर मुँड़ा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता। जैन साधु हो जाते हैं लोग। उनका सिर मूँड़ा दिया, वस्त्र बदल दिये, हाथ में उपकरण दे

दिये साधु के; साधु हो गये ! कल तक यह आदमी साधु नहीं था; वस्त्र बदल लेने से, सिर मुंडा लेने से एक क्षण में साधु हो गया ! कल तक इसके चरण कोई छूता नहीं, शायद यह चरण छूता तो लोग अपने चरण को हटा लेते; अब लोग इसके चरणों पर सिर रखते है ! इसलिए महावीर कहते है, 'सिर मुंड़ा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं हो जाता ।'

बाह्य आचरण पूरा भी कर लिया जाए, तो भी भीतर के श्रमण का जन्म नहीं होता । हाँ, भीतर के श्रमण का जन्म हो, तो बाहर का आचरण भी पीछे आ सकता है, लेकिन बड़े फर्क हैं । बुनियादी फर्क यह है कि अगर कोई भीतर से श्रमण की स्थिति को उपलब्ध हो जाए, तो बाहर का आचरण बदलेगा जरूर, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का अलग बदलेगा । इसे जरा समझ लें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का ढंग भिन्न है, बेजोड़ है । तो महावीर नग्न खड़े हो जायेंगे । बुद्ध भी श्रमण को उपलब्ध हुए, लेकिन नग्न खड़े नही हुए । महावीर नग्न खड़े हुए । यह उनका निजी ढंग है । जो घटना घटी है, उस घटना को अभिव्यक्त करने का उनका निजी ढंग है । बुद्ध को यह निजी ढग नही जमा ; यह ख्याल में भी नही आया । जब कोई व्यक्ति भीतर की क्रान्ति को उपलब्ध होता है तो बाहर को व्यवस्था नही देता, बाहर जैसा भी घटित होने लगता है उस चेतना के प्रकाश में, वैसा घटित होने देता है । तो दुनिया के मारे ज्ञानी एक-जैसा व्यवहार करते नही दिखाई पडते ।

यह बड़े मज़े की और समझ लेने-जैसी बात है कि अगर ज्ञान भीतर हो, तो दो ज्ञानियो का व्यवहार एक-जैसा नही होगा, लेकिन अगर आचरण थोपा जाए तो हजारों ज्ञानियो का व्यवहार एक-जैसा होगा । मगर वे ज्ञानी नही हैं ।

पाँच सौ जैन साधुओ को खड़ा कर दें, अगर वे तेरापंथी हैं तो सब मुह पर पट्टी बाँधे हुए खड़े हैं ; जैसा कि सैनिक या सिपाही खड़े हो । सैनिक और सिपाही का एक-जैसा, एक युनिफॉर्म में खड़े हो जाना समझ में आता है; एक ढंग से खड़े हो जाना समझ में आता है; उसका कारण है, क्योंकि सैनिक के व्यक्तित्व को मिटाने की पूरी कोशिश की जाती है, ताकि उसमें कोई आत्मा न रह जाए; आत्मा रहे, तो युद्ध में वह कुशल नहीं हो पायेगा । वह जड़ मशीन की तरह हो जाए, उसका सारा काम यान्त्रिक हो जाए ।

तो आप पाँच सौ सैनिकों को खड़ा करके देखें, आपको पाँच सौ लोग दिखाई पड़ेंगे, लेकिन व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ेंगे । सब चेहरे एक-जैसे मालूम होंगे । एक-सा कपड़ा, एक-सी बन्दूक, एक-सी टोपी, एक-से बाल कटे– सब एक-जैसे मालूम होंगे ।

व्यक्तित्व खो जाता है, भीड़ रह जाती है। इसलिए, मिलिट्री में हम नम्बर दे देते हैं; नाम हटा देते हैं, क्योंकि नाम से थोड़ा व्यक्तित्व का पता चलता है। अगर एक आदमी मर जाता है, तो तख्ती पर खबर लग जाती है कि ग्यारह नम्बर गिर गया। ग्यारह नम्बर गिरने से कुछ भी पता नहीं चलता, कौन गिर गया? वह कवि था, वैज्ञानिक था, साधु था, असाधु था; उसके बच्चे है, पत्नी है? . . . कुछ पता नहीं चलता। ग्यारह नम्बर का न कोई परिवार होता है, न कोई बच्चे होते हैं, न पत्नी होती है। ग्यारह नम्बर के क्या बच्चे होंगे? ग्यारह नम्बर गिर जाता है, तख्ती पर लोग पढ़ लेते हैं। बात खतम हो गयी। ग्यारह नम्बर की जगह दूसरा आदमी ग्यारह नम्बर हो जाता है।

ध्यान रहे, नम्बर रिप्लेस किये जा सकते है, व्यक्ति रिप्लेस नहीं किये जा सकते। कोई उपाय नहीं है। आपमें से एक व्यक्ति हट जाए, कोई उपाय नहीं है जगत में कि उसकी जगह दूसरा व्यक्ति रखा जा सके। क्योंकि उसकी पत्नी कहेगी कि कितना ही दूसरा व्यक्ति प्यारा हो, मेरा पति नहीं है। उसके बेटे कहेंगे कि कितना ही अच्छा आदमी हो, लेकिन मेरा पिता नहीं है; उसके मित्र कहेंगे कि सब ठीक है, लेकिन वह मित्रता कहाँ? उसकी माँ कहेगी कि सब ठीक है, लेकिन मेरा बेटा जिसे मैंने जन्मा था . . .[1]

व्यक्ति को स्थान पर रखा नहीं जा सकता, बदला नहीं जा सकता; नम्बर बदले जा सकते हैं। एक फिएट कार की जगह दूसरी फिएट कार रखें, तीसरी रखें, कोई फर्क नहीं पड़ता। यन्त्र बदले जा सकते हैं। तो मिलिट्री पूरी कोशिश करती है कि व्यक्ति मिट जाए और यन्त्र रह जाए। तो रंगरूटों को ऐसे प्रशिक्षणों से गुजारा जाता है कि धीरे-धीरे आज्ञा उसके लिए मिकैनिकल हो जाए, सोच-विचार समाप्त हो जाए। तो इसलिए उसको लेफ्ट-राइट करवाते रहते हैं वर्षों तक। लेफ्ट-राइट की कोई जरूरत नहीं है– कि बायें घूमो, दायें घूमो, आगे चलो, पीछे जाओ— उसको करवाते रहते हैं। नया नया सैनिक भी हैरान होता है कि इतना ये करवाने से क्या मतलब है– और वर्षों तक! लेकिन इसका उपयोग है। धीरे-धीरे 'बायें घूमो' ये सुनते ही उसे सोचना नहीं पड़ता, वह बायें घूमता है। सोचने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिस दिन बिना सोचे शरीर बायें-दायें घूमने लगता है, उस दिन ये आदमी अब सैनिक हो गया; इसकी आत्मा खो गयी। अब इससे कहो, गोली चलाओ, तो इसका हाथ सीधा बन्दूक के घोड़े पर जायेगा; गोली चलेगी। अब वह सोचेगा नहीं कि मैं किसको मार रहा हूँ? क्यों मार रहा हूँ? मारने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? न, अब वह यन्त्रवत हो गया।

तो सैनिक के लिए पोंछ के मिटा देना तो शायद उचित भी हो, लेकिन

साधु के लिए पोंछ के मिटा देना बिलकुल गलत है। लेकिन पाँच सौ तेरापंथी साधु खड़े कर दें, कि स्थानकवासी साधु खड़े कर दें, कि दिगम्बर साधु खड़े कर दें, वे सब बिलकुल एक-जैसे लकीर-के-फकीर होकर चल रहे हैं। इससे लगता है कि भीतर कोई अपनी चेतना नहीं है जो मार्ग खोज सके। शास्त्र ने जो मार्ग दिया है उसको नाप-नाप कर चल रहे हैं, अपना कोई बोध नही है जो आचरण बन सके। आचरण शास्त्र से पकड़ा है, उसको थोपते चले जा रहे हैं। इससे एक बड़ी अशोभन घटना घटती है कि साधु की भी आत्मा खो जाती है। औपचारिक व्यवस्था रह जाती है, आत्मा खो जाती है।

महावीर कहते हैं कि यह होगा ही, अगर कोई बाह्य को ज्यादा मूल्य देगा आन्तरिक से, और पहले बाहर को बदलने की कोशिश करेगा, और सोचेगा, पीछे भीतर को बदल लूंगा।

सिर मुंड़ा लेने से कोई श्रमण नही होता। हालाँकि यह हो सकता है कि जो श्रमण हो गया है, वह सिर मूंड़ा ले। यह दूसरी बात हो सकती है, जरूरी नही है कि हो। और ध्यान रखना कि जो सिर न मुड़ाये तो ऐसा मत समझ लेना कि वह श्रमण नही हुआ। लेकिन यह घटना घट भी सकती है कि कोई श्रमण होकर सिर मुंडा ले।

बालो का एक सौन्दर्य है। बालो का एक आकर्षण है। बाल बहुत कामुक हैं, खीच सकते हैं, इसलिए हम सिर मुंड़ाने में भयभीत होते है। कोई आपका सिर मुंड़ा दे तो आप घर से निकलना पसन्द नही करेंगे कि लोग क्या कहेंगे! हम तो तब सिर मुंड़ते है आदमी का, जब वह मर जाता है। तब उसका सिर सफा कर देते हैं, न अब कोई देखने की दिक्कत है, न कोई डर है, न अब किसी को आकर्षित करना है।

बालों का एक कामुक आकर्षण है। इसलिए पुरुष तो सिर मुंड़ा भी ले, स्त्रियाँ सिर मुड़ाने को बिलकुल राजी नही हो सकती। और स्त्री सिर मुंडी हुई बिलकुल पुरुष-जैसी मालूम होने लगती है; स्त्री-जैसी मालूम नही होती। स्त्री का बहुत-सा सौन्दर्य उसके बालों में छिपा है।

तो महावीर कहते है, श्रमण होकर कोई सिर मुंड़ा सकता है, क्योंकि अब उसे कोई प्रयोजन नही रहा दूसरे को आकर्षित करने में। अब अपनी सुविधा की बात है। और श्रमण को बाल दिक्कत दे सकते हैं। महावीर कहते हैं कि बाल अगर रखना हो तो दूसरों पर बालों को कटवाने के लिए निर्भर होना पड़ता है। अकारण निर्भरता बढ़ती है। या साथ में साधन रखो, रेजर रखो, उस्तरा रखो कि बालों को साफ करो।

अगर न साफ करो तो गन्दगी बढ़ती है। अगर बालों को बढ़ने दो तो उनकी सफाई का ध्यान रखना पड़ता है। अगर सफाई न करो तो जुएँ पड़ जाएँ और दूसरा मल इकट्ठा हो जाए। वह सब कष्टपूर्ण है। तो महावीर कहते है कि जो व्यक्ति श्रमण हो गया है, वह हो सकता है कि बालों को साफ कर दे। बालों को साफ कर देना एक गौण घटना है; क्योंकि अब उसे कोई उत्सुकता नहीं है कि उसके शरीर को कोई सुन्दर माने। और उसके स्वास्थ्य के लिए हितकर होगी, स्वच्छता में सहायक होगा और व्यर्थ की व्यवस्था उसे नही जुटानी पड़ेगी।

महावीर कहते है कि साधक को व्यवस्था न जुटानी पड़े, ऐसे जीना चाहिए। कुछ भी उसे ढोना न पड़े। तो बाल अकारण हैं, लेकिन इससे उलटा सही नही है कि आप बाल घुटा लें तो आप श्रमण हो गये। बालों को घुटाने के पीछे और भी कारण हैं। जो लोग महावीर की साधना में उतरेंगे और भीतर की साधना में प्रवेश करेंगे, वे चाहेंगे कि बाल न निकले।

आपको शायद ख्याल मे नही है, बाल भी अकारण नही हैं और कुछ कर रहे है। शायद आपको खयाल हो, अतीत में, कोई दस लाख साल पहले, मनुष्य के पूरे शरीर पर बाल थे, क्योंकि पूरे शरीर को रक्षा की जरूरत थी। जैसे-जैसे आदमी की रक्षा की व्यवस्था बदलती गयी और शरीर को रक्षा की जरूरत न रही, शरीर से बाल तिरोहित होने लगे। अब सिर्फ उन जगहो पर बाल रह गये हैं, जहाँ अभी भी रक्षा की जरूरत है। कुछ ग्लैन्ड्स भीतर छिपे हैं जिनको रक्षा की जरूरत हैं।

महावीर की साधना का एक हिस्सा है कि भीतर का जो ताप है, भीतर की जो ऊर्जा है, गर्मी है, उस गर्मी को,उस ऊर्जा को, उस अग्नि को काम-केन्द्र से उठा कर सहस्रार तक लाना है। बाल उस गर्मी को बिखरने में बाधा देंगे, उस गर्मी को मस्तिष्क में रोक लेंगे। वह गर्मी आकाश मे तिरोहित हो जानी चाहिए, अन्यथा मस्तिष्क भारी और रुग्ण हो जायेगा। तो सहस्रार के स्थान पर बाल नही होने चाहिए ताकि ऊर्जा सीधी आकाश में लीन हो जाए।

ध्यान रहे, शरीर में ऊर्जा पैदा हो रही है। उसको विसर्जित करने के दो उपाय हैं। एक तो सम्भोग के द्वारा। तब वह निम्नतम केन्द्र से जगत में चली जाती है, प्रकृति में चली जाती है, और दूसरा उपाय है सहस्रार के मार्ग से, श्रेष्ठतम केन्द्र से।

ये दो छोर हैं। और जैसे विद्युत केवल छोर से ही विसर्जित हो सकती है, ऐसे ही इन दो छोरों से जीवन-ऊर्जा विसर्जित होती है। जो व्यक्ति सहस्रार से अपनी जीवन-ऊर्जा को आकाश में छोड़ने में समर्थ हो जाता है, महावीर उसको ही श्रमण कहते हैं। वह कामवासना से बिलकुल. . .जितनी दूर सम्भव हो सकता है,

उतनी दूर चला गया है, और उसकी ऊर्जा ने नयी दिशा और नया आयाम ले लिया। यह गुणात्मक अन्तर है, इसलिए श्रमण चाहेगा कि बालों को घोट दे।

आप जानकर हैरान होंगे कि जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु बाल घोटते रहे हैं और हिन्दू ऋषि-मुनि बाल बढ़ाते रहे हैं, घोटते नही रहे हैं। शंकराचार्य ने जरूर हिन्दू सन्यासियों के लिए बाल घुटवाने शुरू किये, क्योंकि शंकराचार्य ने अपनी साधना का अधिकतम हिस्सा बौद्धों से उधार लिया। लेकिन हिन्दू ऋषि-मुनि, अगर आप उपनिषदों और वेदों के ऋषि-मुनियों को देखें, तो वे सब दाढ़ी और बालों को पूरी तरह बढ़ाते रहे हैं। उनकी साधना-प्रक्रिया बिलकुल भिन्न है। उस प्रक्रिया में बाल सहयोगी हो जाते हैं।

जैन साधना में ऊर्जा को विसर्जित करना है। अनन्त ब्रह्माण्ड में ऊर्जा खो जाए, क्योंकि वह ऊर्जा शरीर की ही है, आत्मा की नहीं है। हिन्दू साधना में, विशेषकर पतंजली की साधना में उस ऊर्जा को विसर्जित नही करना है; उस ऊर्जा को सहस्रार पर इकट्ठा करना है। दोनों रास्ते अलग हैं। हिन्दू साधना में उस ऊर्जा को इकट्ठा करना है एक खास सीमा तक, और जब वह एक खास सीमा तक इकट्ठी हो जाए तभी परमात्मा को समर्पित करनी है।

तो बाल उस ऊर्जा को रोकने में सहयोगी है। हिन्दू संन्यासियों का बाल का घोटना, सिर को मुड़ाना शंकराचार्य के बाद प्रारभ हुआ और यह बौद्ध परम्परा से आयी हुई धारणा है। साधकों ने जो भी चुना है, उसके पीछे कुछ कारण है। और, अगर कारण ख्याल मे न हों और अन्धो की भाँति लोग पीछे चलते जाएँ, तो उससे कोई लाभ नही होता, कभी नुकसान भी हो सकता है।

महावीर और बुद्ध शीर्षासन के पक्ष में नही हैं और उन्होंने योगासनों को कोई मूल्य नही दिया। पतंजली, हिन्दू योग का मूल आधार जिसने रखा, वह शीर्षासन के बहुत पक्ष में है। जो आदमी शीर्षासन करता है उसके लिए बालों का होना बिलकुल जरूरी है, नही तो खतरा होगा, नुकसान होगा। क्योंकि जब आप शीर्षासन में खड़े होते हैं तो जीवन-धारा पूरी-की-पूरी सिर की तरफ बहती है। अगर उसको रोकने का कोई उपाय न हो तो शीर्षासन के बाद आप अपने को बिलकुल निस्सत्त्व और कमजोर पायेंगे। उसे रोकना चाहिए। इसलिए हिन्दू मुनि जटाएँ बढ़ाता था — जितनी बढ़ी कर सकता था। कभी नहीं कटाता था, उनको बढ़ाते चला जाता था। उनकी वह पगड़ी बना लेता था, और उस पगड़ी पर शीर्षासन करता था। वह पगड़ी सिर और पृथ्वी के बीच अन्तराल का काम करती थी, नहीं तो पृथ्वी झटके से ऊर्जा को खींच लेती। और वह झटके से ऊर्जा का खींचना बड़ा खतरनाक हो सकता है। वह शरीर को कई तरह के नुकसान पहुँचा सकता है। कई दफा जिंदगी में बड़ी उलझनें हो जाती हैं।

शंकराचार्य ने मुँडा तो कर दिया हिन्दू संन्यासियों को, लेकिन शीर्षासन करने मे नहीं रोका।

अकारण कुछ भी नही है। छोटा-सा नियम भी जब ज्ञानियो ने चुना है, तो उसके पीछे उनके अपने कारण हैं। महावीर किसी और प्रक्रिया पर काम कर रहे हैं। तो वे कहते हैं कि यह हो सकता है कि श्रमण होकर कोई सिर मुँडा ले, लेकिन सिर मुँडा लेने से कोई श्रमण नही होता। और अच्छा है उन्होने यह कह दिया। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल के बाद बच्चे मुँडे ही पैदा होंगे। जैन साधु को बड़ी तकलीफ होगी तब।

आपको पता है, सिर से बाल कम होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे आदमी की बुद्धि विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे सिर से बाल कम होते जाते है। पुरुषों के सिर से बाल ज्यादा गिरते हैं, स्त्रियों के कम गिरते हैं, क्योंकि उन्होंने बुद्धि का उतना उपयोग किया नही है। तो वो सबूत है इस बात का कि बुद्धि की प्रक्रिया पर उन्होने काम नही किया; इतनी ऊर्जा उनके सिर में इकट्ठी नही होती कि बाल गिर जाएँ। इसलिए स्त्रियाँ गंजी नही हो पाती, पुरुष गजे हो जाते हैं। और जितनी ज्यादा प्रतिभा का उपयोग किया जाए, उतने ही जल्दी गंजे हो जाते हैं।

वैज्ञानिक कहते है, चार हजार साल में आदमी बुद्धि का इतना उपयोग कर रहा होगा कि बच्चा जन्म से ही गजा पैदा होगा। गंजे होने का डर नही रह जायेगा। अच्छा कहा महावीर ने कि सिर मुँडा लेने मे कोई श्रमण नही होता, नही तो चार हजार साल बाद सभी श्रमण पैदा होते।

'और ओम् का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता।'

ब्राह्मण होने से ओम् का जाप पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति सब भाँति समर्पित कर देता है अपने को अनन्त शक्ति में, अपने मस्तिष्क को सब भाँति छोड़ देता है 'उसके' हाथों मे, अपने विचार को, अपनी चिन्तना को, अपने मनन को– सभी को 'उसके' चरणो में उतार के रख देता है; वह चरण सही हो या झूठ, यह सवाल नही है, उतार के रख देता है, अपनी तरफ से निर्भार हो जाता है, तब उसके भीतर एक परम ध्वनि गूँजने लगती है। उस ध्वनि का नाम 'ओंकार' है। उसके भीतर ओम् का सहज आवर्तन होने लगता है, उसे करना नहीं पड़ता।

लेकिन हम तो हमेशा उलटा चलते हैं। हम बैठकर ओम् का जाप करते हैं। ओम् का जाप हमारा व्यर्थ है, क्योंकि ओम् का जाप भी हम बुद्धि से ही करते हैं; और बुद्धि ही बाधा है। ओम् का जाप भी हमारे लिए एक विचार का पुनरावर्तन होगा; और विचार ही तो अवरोध है।

महावीर कहते हैं कि ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। यद्यपि कोई ब्राह्मण हो जाए तो ओंकार का जाप प्रगट होता है; उसके भीतर ओम् की ध्वनि गूंजने लगती है; उसके रोएं-रोएं से ओंकार गूंजने लगता है।

ओंकार मनुष्य के द्वारा पैदा की गयी ध्वनि नहीं है, बल्कि प्रकृति की स्वाभाविक ध्वनि-व्यवस्था है। अगर सब शून्य हो जाए जगत में, तो ओंकार का नाद शेष रह जायेगा। वह नाद इस जगत का मौलिक ध्वनि-स्वर है। उसे पैदा नहीं करना होता।

इसलिए ओंकार को हिन्दुओं ने 'अनाहत' कहा है।

दो तरह के नाद हैं। एक तो 'आहत' नाद है। मैं ताली को बजाऊँ, तो यह 'आहत नाद' है, क्योंकि दो चीजें टकरायीं, आहत हुईं। उनके परस्पर चोट से ध्वनि पैदा हुई। ओंकार 'अनाहत नाद' है। वह दो चीजों के टकराने से पैदा नहीं होता। जब सब टकराव भीतर बन्द हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है; जब भीतर बुद्धि की सारी कलह बन्द हो जाती है, संघर्ष बन्द हो जाता है, विचार खो जाते हैं, सब शून्य हो जाता है; उस शून्य में जो ध्वनि अनुभव होने लगती है, वह ध्वनि व्यक्ति नहीं करता, वह ध्वनि ब्रह्माण्ड का स्वरूप है।

तो महावीर कहते हैं, ओम् का जाप कर लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता।

'निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता।'

आप अकेले में जाकर रह सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। क्योंकि भीड़ तो आपकी खोपड़ी में भरी है, वह आपके साथ चली जायेगी। एक दुकानदार को उठा कर ले जाएँ जंगल में। वह बैठकर वहाँ दुकान का ही विचार करेगा, ग्राहकों से बातें करेगा, सामान लेगा-देगा, सौदा पटायेगा; वह करेगा क्या!

मुल्ला नसरुद्दीन कपड़ा बेचता था। एक दिन आधी रात में उठा और एकदम से उसने अपनी चादर फाड़ दी। उसकी पत्नी ने पूछा, "नसरुद्दीन, यह क्या कर रहे हो?" उसने कहा, "तू कम से कम दुकान में दखल न दे, ग्राहक कपड़ा खरीदने आया है।"

वह सपने में कपड़ा फाड़कर ग्राहक को दे रहा है। सपने में भी ग्राहक! सपने में भी दुकान! सपने में भी वही चलेगा न, जो दिन में चला है!

आप कहाँ भागकर जायेंगे अपने से? एकान्त निर्जन में आप जा सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। अकेले होने की कला दूसरी है। जो आदमी अकेले होने की कला जान लेता है, वह भीड़ में भी अकेला है। उसके लिए भीड़ में भी एकान्त है। महावीर को आप बाजार में ला ही नहीं सकते। इसका मतलब यह नहीं

है कि उनको आप बाजार में नहीं निकाल सकते। बिलकुल निकाल सकते हैं। लेकिन महावीर को बाजार में नही लाया जा सकता। बाजार में से भी वह ऐसे ही गुजर जायेंगे, जैसे कि एकान्त से गुजर रहे हों। क्योंकि उनके भीतर कोई भीड़ नहीं है।

भीड़ में अकेले होने की कला। और हम तो एक ही कला जानते हैं, अकेले में भी भीड़ में होने की कला। अकेले भी हम बैठे हैं, तो भी भीतर कुछ चलता रहता है।

निर्जन वन में रहने से कोई मुनि नही होता, हालांकि कोई मुनि हो जाये तो निर्जन उसे उपलब्ध हो जाता है।

'और न कुशा के वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी होता है।'

अपने को कष्ट देने से कोई तपस्वी नही हो जाता, यद्यपि कोई तपस्वी हो तो कष्टों को झेलने की क्षमता आ जाती है।

इस में फर्क को समझ ले। ये दोनों बाते बड़े बुनियादी और भिन्न हैं।

एक आदमी अपने को कष्ट दे रहा है, काटे बिछाकर लेटा हुआ है; आग जला लिया है और उसके पास बैठकर तप रहा है; धुनी लगा ली है, पसीना-पसीना हो रहा है, सर्दी है, बर्फ पड़ रही है और वह बाहर खड़ा कँप रहा है– यह आदमी आयोजन करके, इन्तजाम करके अपने को कष्ट दे रहा है। इस आदमी के चित्त में कहीं-न-कहीं रोग है। यह आदमी खुद को कष्ट देने में रस ले रहा है। यह अपने को सताने में प्रसन्न है। यह आदमी बीमार है।

और, इस आदमी में और आपमें फर्क नहीं है। आप सुख का आयोजन कर रहे हैं, यह दुख का आयोजन कर रहा है। यह आपसे उलटा चला गया आदमी है, पर यह है आप ही जैसा। इन्तजाम करना यह भी नही छोड़ रहा है। आप चाहते थे सुख मिले, यह चाहता है दुख मिले। यह भी हो सकता है कि सुख पाने की इसने बहुत कोशिश की और नहीं पा सका, तो अब ये अंगूर खट्टे हैं– ऐसा मानकर दुख पाने की कोशिश कर रहा है। इसका अहंकार हार गया; सुख न जुटा पाया। अब इसका अहंकार कम-से-कम इतना तो जीत ही सकता है कि दुख जुटा सकता है।

यह आदमी अहंकार से जी रहा है और रुग्ण है। बहुत लोग हैं जो अपने को कष्ट देने में रस पाते हैं; और वे अपने आस-पास इस तरह के लोग इकट्ठे कर लेते हैं जो उन्हें कष्ट दें। और फिर रोते हैं और चिल्लाते हैं कि यह आदमी मुझे कष्ट दे रहा है। लेकिन आपको पता नही है कि आप ने ही उस आदमी को अपने पास इकट्ठा कर लिया है; और आप चाहते हैं कि वह आपको कष्ट दे। और अगर वह

चला जाए, तो आपको खालीपन लगेगा और जल्दी ही आप किसी दूसरे आदमी से जगह भर लेंगे। कोई चाहिए जो आपको कष्ट दे।

महावीर कहते हैं, अपने को कष्ट देने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता, यद्यपि कोई तपस्वी हो जाये तो कष्ट को झेलने की क्षमता आ जाती है। वह बिलकुल दूसरी बात है। कांटे बिछाकर लेटना एक बात है और जीवन में कांटे आ जायें तो उनके बीच से साक्षीभाव से गुजर जाना बिलकुल दूसरी बात है। जीवन में कांटे आयेंगे दुख आयेंगे।

तपस्वी वह है जो न सुख की आकांक्षा करता है, न दुख की; जो आ जाता है उसके जीवन में उससे बिना चिन्ता के अपने को गुजारता है। जो भी हो, वह हर हालत में अपने को अनुद्विग्न रखता है। न तो सुख से रस बांधता है, न दुख से।

दुख आयेंगे, क्योंकि हमारे बहुत-से जन्मो की शृखला है, हमारे कर्मों का गहन सस्कार है। और हम आज एकदम नये नही हो सकते हैं। हमारा कल हमारा पीछा कर रहा है। कल हमने किसी को गाली दी थी, वह आज गाली देने आयेगा। दुख आयेगा।

तो, तपस्वी चाहता नही कि कोई आकर उसे गाली दे, ऐसी उसकी कामना नही है, लेकिन कोई गाली दे, तो वह साक्षीभाव से सहेगा। इसको महावीर ने 'परिशय' कहा है, दुख को साक्षीभाव से सहने की कला; कोई प्रतिक्रिया न करते हुए जो भी हो उसे चुपचाप सह लेना, उसके प्रति कोई भी धारणा न बनाना कि ऐसा नहीं होना था, ऐसा क्यों हुआ, परमात्मा ने ऐसा मुझे क्यो दिखाया, मेरे कौन से कर्मों का पाप है— कुछ भी प्रतिक्रिया न करना, सिर्फ ऐसा भाव रखना कि एक लेन-देन था पुराना, वह निपट गया; सम्बन्ध समाप्त हुआ, एक कड़ी जुड़ी थी, वह टूट गयी।

दुख आये तो उसे सह लेना तपश्चर्या है। दुख की खोज रोग है। लेकिन आप देखें, जब भी आप साधना में उत्सुक होते हैं तो आप दुख की तलाश करते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, अगर मैं उन्हें सीधा-सीधा उपाय बताता हूँ तो वे कहते हैं कि यह इतना सीधा है कि इससे क्या होगा ? कुछ उपद्रव उनको न बताया जाए तो जमता नहीं। उपद्रव की इच्छा है।

अगर मैं उनको कहूँ कि पहले पूरी रात सर्दी में खड़े रहो, फिर दिनभर उपवास करो, फिर कुछ उठक-बैठक, कवायद, कुछ आसन करो, फिर ध्यान पर बैठना, तो जँचेगा। तब वे कहेंगे कि हाँ, इससे कुछ हो सकता है, क्योंकि कुछ करने-जैसा दिखता है।

खुद को कष्ट देने में विजय मालूम पड़ती है कि मैं मालिक हो रहा हूँ। दुनिया में धर्मों के नाम पर स्वयं को जो इतना कष्ट दिया जाता है, जो इतनी सेल्फ-टॉर्चरिंग चलती है, वह इसलिए चलती है कि लोग अपने को कष्ट देना चाहते हैं। बहाने कोई भी खोज लेते हैं, फिर अपने को कष्ट देते हैं। यह जो कष्ट देना है, यह स्वस्थ मन का सबूत नहीं है। और महावीर कहते हैं, तपस्वी का इससे कोई लेना-देना नहीं है।

'समता से मनुष्य श्रमण होता है।'

भीतर के समत्व से, भीतर के सन्तुलन से, भीतर के एकत्व से व्यक्ति श्रमण होता है।

'ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है।'

और जिसका आचरण ब्रह्म-जैसा होने लगता है....।

ब्रह्मचर्य का मतलब केवल वीर्य-रक्षण नहीं है। वह क्षुद्रतम अर्थ है। ब्रह्मचर्य का ठीक-ठीक अर्थ है . ब्रह्म-जैसी चर्या, ब्रह्म-जैसा आचरण। अगर ईश्वर ही पृथ्वी पर उतर आये, तो वह कैसे चलेगा, वह कैसे उठेगा-बैठेगा, वह कैसे बोलेगा, कैसे व्यवहार करेगा? 'उस'- जैसा आचरण जिसका हो जाए, वह ब्राह्मण है।

और भीतर जो इतना संतुलित हो जाए कि बाहर की कोई भी चीज़ उसे हिला न सके; डिगा न सके, कोई तूफान जिसकी चेतना की लौ को ज़रा भी कम्पित न कर सके; जो भीतर अकम्प हो जाए, वह श्रमण है; और जो ब्रह्म-जैसे आचरण को उपलब्ध हो जाए वह ब्राह्मण है।

'ज्ञान से मुनि होता है, और तप से तपस्वी बना जाता है।'

ज्ञान, वो जो हमें शास्त्र से मिल जाए, वह नहीं है। वह तो किसी को भी मिल सकता है। उससे आदमी पण्डित होता है; शास्त्रीय होता है; शब्द-जाल फैल जाता है और वैसे पण्डित दूसरों को भी पण्डित बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह खुद भटके हैं और दूसरों को भटकाये चले जाते हैं।

दूसरों को भटकाने का भी एक मज़ा है। और जब खुद भटका हुआ आदमी दो-चार आदमियों को भटका देता है, तो उसे अपनी भटकन कम मालूम पड़ती है कि हम कोई अकेले थोड़े ही भटक रहे हैं। और उसकी बात को मानकर अगर बहुत-से लोग भटकने लगते हैं तो वह भूल ही जाता है कि मैं भटक रहा हूँ। क्योंकि तब उसे लगता है कि मैं इतने लोगों का नेता हूँ, इतने लोग मेरे पीछे चल रहे हैं,

मेरे भटकने का सवाल ही नही है। नेता को अपने पीछे चलते अनुयाइयो को देखकर भरोसा आता है कि मैं ठीक चल रहा हूँ, अन्यथा इतने लोग मेरे पीछे क्यो चलते।

पण्डितों के कारण, थोथा और उधार ज्ञान जिन्होंने इकट्ठा कर लिया है, ऐसे गुरुओं के कारण आपको रास्ता मिल भी सकता तो नहीं मिल पाता।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक रुपया गिर गया है। वह सड़क पर खोज रहा है। आधे घण्टे में पसीना-पसीना हो गया खोजते-खोजते। उसकी पत्नी भी उसका साथ दे रही है। आखिर पत्नी ने पूछा, " नसरुद्दीन, मिला ? " नसरुद्दीन ने कहा, " मिल सकता था, अगर तूने इतनी सहायता न की होती।"

उसको डर है कि यह स्त्री पा गयी। वह कह रहा है कि मिल सकता था, अगर तूने खोजने मे इतनी सहायता न की होती।

बहुत-से गुरु आपको खोजने में इतनी सहायता कर रहे है कि जो मिल सकता था वह भी मिल नही पा रहा है। लेकिन उधार ज्ञान ज्ञान का दंभ करे, यह भी स्वाभाविक है, क्योकि दंभ करे तो हो ज्ञान-जैसा मालूम पड़ सकता है।

महावीर कहते है, ऐसे ज्ञान से कोई मुनि नही होता। जो ज्ञान बाहर से आ सकता है, वह आपकी बुद्धि को भरेगा। लेकिन जो ज्ञान भीतर से जन्मता है, जो स्वयं की अनुभूति से आता है, वही आपको मौन कर जायेगा। जो ज्ञान बाहर से आता है, वह आपको मुखर करेगा, बुद्धि और बेचैन होकर चलने लगेगी। जो ज्ञान भीतर से आता है, वह आपको मौन कर जायेगा; बुद्धि को चलने की जरूरत न रह जायेगी। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। ज्ञानी की बुद्धि चलती नही। जरूरत नही है। अज्ञानी की बुद्धि चलती है। और जितना ज्यादा अज्ञानी हो, उतना बुद्धि को चलाना पड़ता है, क्योकि उतनी ज्यादा जरूरत होती है।

अगर आँख वाला आदमी इस हॉल के बाहर जायेगा, तो वह टटोलेगा नही। क्या जरूरत है टटोलने की ? आँखे है — सोचेगा भी नही कि दरवाजा कहाँ है। सोचने की भी क्या जरूरत है ? दरवाजा दिखाई पड़ता है। बस, वह दरवाजे से निकल जायेगा। अगर आप उससे बाद में पूछें कि तुम्हें पता है कि दरवाजा कहाँ है, तो वह कहेगा कि मैंने ख्याल नहीं किया, किस दिशा में है, मुझे कुछ ख्याल नही। दरवाजा था— मै तो बस निकल आया, मैंने सोचा भी नहीं। लेकिन अन्धा आदमी अगर इस हॉल के बाहर जाना चाहे, तो पहला सवाल उसके सामने यह उठेगा कि दरवाजा कहाँ है ? फिर अन्धा लकड़ी से टटोलेगा, फिर अंधा किसी से

पूछेगा कि दरवाजा कहाँ है? अगर आप अन्धे से पूछें तो जितनी व्यवस्था से वो जवाब देगा कि दरवाजा कहाँ है, आँख वाला कभी नहीं दे सकता ।

यह बड़े मजे की बात है। अन्धे से अगर आप बाद में मिलें, तो वह आपको पूरा ब्यौरा बता देगा कि दरवाजा कहाँ है। कितनी कुर्सियों के बाद उसको दरवाजा मिला। कितनी जगह उसने टटोला। कितनी खिड़कियाँ बीच में पड़ी। बायें है कि दायें है, कि कहाँ है – अन्धा जितना ठीक जवाब देगा, आँख वाला नही देगा। क्यों?

क्योंकि अन्धे को सोचना पड़ा; आँख वाला निकल गया।

जैसे-जैसे भीतर का ज्ञान जन्मेगा, बुद्धि की जरूरत न रहेगी, क्योंकि बुद्धि सॅब्स्टिटयूट है। वह भीतर का ज्ञान नहीं है, इसलिए हमें बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। जब भीतर का ज्ञान आना शुरू होता है, बुद्धि का उपयोग बन्द हो जाता है। बुद्धि जहाँ शान्त होती है, वहाँ मुनि का जन्म होता है।

तप से मनुष्य तपस्वी बन जाता है; लेकिन तप की जो मैंने बात कही, वह ख्याल में रखना। भीतर की अग्नि को जगाकर जो चेतना के स्वर्ण को उसमें निखार लेता है, उस निखरी हुई चेतना को जो जीवन-जगत के संघर्ष में कसौटी पर कस लेता है, उसे महावीर तपस्वी कहते हैं।

'मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किये गये कर्मों से ही होता है। अर्थात् जन्म से कोई वर्ण-भेद नही है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही हो जाता है।'

ऊँच या नीच चेतना की अवस्थाएँ हैं, शरीर की नही।

'इस भांति पवित्र गुणो से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण) हैं, वास्तव में वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ है।'

तीन बातें ख्याल में ले लें –

एक, कहाँ आप पैदा हुए हैं, किस घर में पैदा हुए हैं, किस कुल में पैदा हुए हैं, यह बात बिलकुल गौण है। इसे बहुत मूल्य मत दें। यह मूल्य महंगा पड़ सकता है। ब्राह्मण घर में पैदा होकर अगर आपने समझ लिया कि मैं ब्राह्मण हो गया, तो ब्राह्मण होने की आपकी जो सम्भावना थी, वह बन्द हो गयी।

महावीर द्वार को खोलते है। वे कहते हैं, जन्म के साथ तुम समाप्त नही हो गये, जन्म के साथ सिर्फ तुम शुरू हुए हो। मौत के साथ अध्याय बन्द होगा। लेकिन जो कहता है कि मैं जन्म से ब्राह्मण हूँ, उसने अध्याय बन्द कर लिया। अब करने को कुछ नही बचा; आखिरी बात पा ली गयी। महावीर कहते हैं, जन्म शुरुआत है

सम्भावनाओं की। उनको अन्त मत करो, बन्द मत करो। सबकी सम्भावनाएं खुली हैं। द्वार खुला है। यात्रा करनी जरूरी है। और यात्रा पर निर्भर होगा कि आप क्या हैं।

बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा, अस्सी वर्ष की उम्र थी उसकी तब, कि क्या तुम अपने सम्बन्ध में अब कोई सत्य कह सकते हो? बर्नार्ड शॉ ने कहा कि जब तक मैं मर न जाऊँ, तब तक सम्भावनाएँ खुली हैं। जिस दिन मैं मर जाऊँ, उसी दिन अध्याय बन्द होगा। उसी दिन कोई निर्णय लिया जा सकता है। तब तक कोई निर्णय नही लिया जा सकता।

जीवन एक खुलाव है। उसमें सब खुला है। बन्द थी भारत में व्यक्तित्व की सम्भावना। शूद्र शूद्र था; और कुछ होने का उपाय नही था उसे। उसकी जिन्दगी बस झाड-बुहारी लगाने में, मल-मूत्र साफ करने में, जूते-चमड़े का सामान बनाने में व्यतीत होनेवाली थी। करोडो-करोड़ो लोगो का जीवन एकदम बन्द था। वहाँ से इंचभर हटने का कोई उपाय नही था। हिलने-डुलने की,कोई सुविधा नहीं थी। समाज स्टैटिक था, अवरुद्ध था, जैसे तालाब का पानी जम गया हो। नदी की धारा नही थी। महावीर ने तालाब के पानी को तोड़ा, धारा बनायी शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, और ब्राह्मण को भी कहा कि तू आश्वस्त मत रह, क्योंकि ब्राह्मण होना भी एक अर्जन है। तूने कुछ न किया तो तू भी शूद्र हो जायेगा, तू भी शूद्र रह जायेगा।

महावीर ने ब्राह्मण की आस्था तोड दी ताकि वह भी खुले और बह सके; और शूद्र का बन्धन तोड़ दिया ताकि वह भी खुले और बह सके। लेकिन जैन महावीर के पीछे चल नही पाये।

जैनो में यद्यपि कोई वर्ण नही है; जैनों के भीतर कोई जैन ब्राह्मण, जैन क्षत्रिय, जैन वैश्य या जैन शूद्र नही है, लेकिन जैन अपने को वैश्य मानते हैं; और घर में अगर पूजा करवानी हो, विवाह करवाना हो तो ब्राह्मण को निमन्त्रित करते हैं; और घर का अगर पाखाना साफ करवाना हो तो शूद्र को खोजते हैं।

जैन भी महावीर को मान नही सके। जैनो के लिए तो कोई शूद्र नही होना चाहिए। कैसी दुर्घटना इतिहास में घटती है कि जब यहाँ हिन्दुस्तान में आन्दोलन शुरू हुआ कुछ वर्षों पहले कि शूद्र-हरिजन मन्दिरों में प्रवेश करे,तो जैनों को तो सबसे पहले अपने मन्दिर खोल देने थे! क्योंकि महावीर ने कहा है कि कोई जन्म से शूद्र नहीं है। लेकिन जैनों ने सबसे पहले अपने मन्दिर बन्द कर लिये। उन्होंने कहा कि हम तो हिन्दू है ही नहीं, इसलिए हमारे मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश का तो कोई सवाल ही नही है। शूद्र हिन्दू है; वे हिन्दूओं के मन्दिर में जाएँ, हिन्दूओं से लड़ें-झगड़ें। जैन मन्दिर तो जैनों का है।

लेकिन जैनों ने ब्राह्मणों को कभी नही रोका जैन मन्दिरों में जाने से। अगर उन्होंने ब्राह्मणों को भी रोका होता, तो तर्क समझ में आता था। लेकिन ब्राह्मण तो सदा जाते रहे, शूद्र को उन्होंने रोक दिया कि जैन मंदिर में वो नही आ सकता, क्योंकि जैन धर्म तो धर्म ही अलग है। और महावीर कहते है कि जन्म से कोई शूद्र नही है; जन्म से कोई ब्राह्मण नही है; जन्म से कोई कुछ नही है। जैन का मन्दिर तो बिलकुल खुला होना चाहिए था, लेकिन शूद्र तो बहुत दूर, दिगम्बर का मन्दिर श्वेताम्बर के लिए खुला हुआ नहीं है; श्वेताम्बर का मन्दिर दिगम्बर के लिए खुला हुआ नही है। और श्वेताम्बर और दिगम्बर तो दोनों जैन हैं, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण; वे एक-दूसरे का सिर खोलते रहते है, अदालतो में लडते रहते हैं। . . . आश्चर्यजनक है!

आदमी इतना मूढ है कि महावीर कितना ही हिलायें, वह जा भी नही पाते हैं कि उनकी पत्थर की शिला फिर अपनी जगह पर वापस बैठ जाती है; वे जहाँ के तहाँ पाये जाते हैं। तीर्थंकर हमेशा आते है, आदमी को वही का वही पाते है जहाँ पिछला तीर्थंकर छोड़ गया था। वो वहीं फिर आसन लगाये बैठा है। कोई अन्तर नही पड़ता। क्योंकि अन्तर डालने के लिए सिद्धान्त काफी नही हैं, शब्द काफी नही हैं। अन्तर डालने के लिए स्वार्थ भी छोड़ना पड़ेगा; अन्तर डालने में खुद के निहित स्वार्थों को हानि भी पहुँचेगी, और अन्तर डालने के लिए खुद को बदलना पडेगा।

शूद्र जन्म से शूद्र नहीं है, यह कहना, यह बातचीत काफी नही है। अगर शूद्र जन्म से शूद्र नही है, तो आपकी लड़की अगर एक शूद्र के प्रेम में पड़ जाए, और आप जैन हो, तो आप को इनकार नही करना चाहिए। देखना इतना चाहिए कि शूद्र के पास चरित्र है, आचरण है, जीवन है? और अगर उसका आचरण ठीक न हो, वह शराबी हो, जुआरी हो, तो ही इनकार करना चाहिए।

लेकिन तब अड़चनें होंगी; और अड़चनें उठाने से हम बचना चाहते है। हम सिर्फ कॅनवीनयॅन्स खोज रहे हैं— शांति से मर जाएँ, कोई झंझट न हो।

मुल्ला नसरुद्दीन को सूली की सजा सुनायी गयी। उसका साथी और वह दोनो सूली पर लटकाये जाने के करीब हैं। दोनों ने हत्या की है। आखिरी क्षण में सूली देने वालेने नियमानुसार दोनो से पूछा, "कोई आखिरी इच्छा हो तो बताओ। सिगरेट तो नहीं पीना चाहते हो; तो मैं ला दूं?"

तो मुल्ला ने कहा, "हत्यारे! सिगरेट अपने पास रख। झंझट खड़ी मत कर।"

नसरुद्दीन ने कहा कि आखिरी समय में झंझट खड़ी मत कर। मरने जा रहा है, फांसी लगने को है, फिर भी अब झंझट से डर रहा है— झंझट खड़ी मत कर। अब

झंझट खड़े करने से भी क्या होने वाला है ! लेकिन यह कह रहा है उससे कि अब शान्त रह, आखिरी समय में झंझट खड़ी मत कर।

हम जिन्दगी भर इसी कोशिश में रहते हैं, कहीं कोई झंझट न हो जाए। झंझट से बचाते-बचाते पूरी जिन्दगी हमारी असत्य हो जाती है। क्योंकि जहाँ-जहाँ हम समझौता करते हैं, झंझट से बचते हैं, वहाँ-वहाँ हम सुविधा के कारण असत्य को स्वीकार कर लेते हैं।

कौन है शूद्र, कौन है ब्राह्मण, अगर महावीर की बात मानें तो हर बार सोचना पड़ेगा। जो आदमी आपके घर में बुहारी लगाता है, वह ब्राह्मण हो सकता है; और जो आदमी आपके घर पूजा करता है, वह शूद्र हो सकता है। तब बड़ी झंझट खड़ी होगी; क्योंकि तब रोज-रोज यह सोचना पड़ेगा कि यह आदमी शूद्र है कि ब्राह्मण; किसके पैर पड़ो और किसको घर में मत आने दो, रोज-रोज सोचने से ये बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए हमने लेबलिंग कर रखी है कि यह आदमी शूद्र के घर में पैदा हुआ है, इसलिए शूद्र है; और यह आदमी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है, इसलिए ब्राह्मण है। लेबल लगा देने से सुविधा हो जाती है; जैसे कि दुकानों में लोग डब्बो पर लेबल लगा देते हैं कि इसमे यह-यह चीजें हैं।

आदमी डब्बा नहीं है उस पर लेबल लगाया नही जा सकता कि इसमें मिर्च रखी है, इसमें नमक रखा है; ऐसा कुछ उसमें रखने का कुछ उपाय नहीं है। आदमी एक प्रवाह है। लेकिन महावीर से राजी होने के लिए सतत प्रवाह की असुविधा, सकट और सघर्ष झेलना जरूरी है।

द्विज वही है, महावीर कहते है, जो पवित्र गुणों से युक्त है; जिसने धीरे-धीरे अपनी चेतना में परमात्मा की क्षमता को प्रगट करना शुरू किया है; जो ट्रैन्सपैरॅन्ट हो गया है, पारदर्शी हो गया है; जिसने अपनी सारी अशुद्धि छोड़ दी; और भीतर का प्रकाश जिससे बाहर आने लगा है।

'द्विज' शब्द समझने-जैसा है। द्विज का अर्थ है : दुबारा जिसका जन्म हो गया—ट्वाइस बॉर्न। एक जन्म तो माँ के पेट से होता है। वह असली जन्म नहीं है। उससे तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। दूसरा जन्म है जो व्यक्ति अपनी आत्मा को स्वयं के श्रम से देता है। उस श्रम से जब आप स्वयं ही अपने माता-पिता बनते है और एक नयी आत्मा को जन्माते हैं, आप द्विज होते हैं।

द्विज का अर्थ है, जिसने दूसरा जन्म भी इसी जन्म में पा लिया; जिसने नया जन्म पा लिया। इस नये जन्म पा लिये व्यक्ति से आशा की जा सकती है कि वह अपना और दूसरों का उद्धार कर सकेगा। लेकिन अपना उद्धार पहले है; क्योंकि जिसका अपना दिया बुझा हो, वह दूसरों के दिये नहीं जला सकता। जिसका अपना

दिया जला हो, उससे दूसरों की ज्योति भी जल सकती है। जिनके खुद के दिये बुझे हैं वो दूसरों के दिये जलाना तो दूर, डर यह है कि किसी का जलता हुआ दिया बुझा न दें।

अन्धे तो गड्ढों में गिरते ही है, उनके पीछे जो चलते हैं, वे भी गड्ढों में गिर जाते हैं। आँख वाले की तलाश गुरु की तलाश है। आंख वाले की खोज द्विज की खोज है – जिसका दूसरा जन्म हो चुका है इसी जन्म में; जो शरीर ही नही रहा अब, बल्कि शरीर के पार कुछ और भी जिसके भीतर घटित होना शुरू हो गया है; जो अब कह सकता है कि मैं वही नही हूँ, जो मां-बाप ने मुझे पैदा किया था मैं कुछ और भी हूँ।

बुद्ध लौटे बारह वर्ष बाद। सारा गाँव बुद्ध को घेरकर इकट्ठा खड़ा हो गया। ऐसी रोशनी देखी नहीं गयी थी। ऐसे संगीत का अनुभव पहले किसी व्यक्ति के करीब नहीं हुआ था। लेकिन बुद्ध के पिता को कुछ नही दिखाई पड़ा। बुद्ध के पिता नाराज थे। वे द्वार पर खड़े थे राजमहल के। उन्होंने गौतम सिद्धार्थ से कहा, "सिद्धार्थ, मेरे पास बाप का हृदय है मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूँ। तू वापिस आ जा।"

बुद्ध ने निवेदन किया कि आप शायद मुझे देख नही पा रहे है कि मैं बिलकुल बदलकर आया हूँ। जो बेटा घर से गया था, वही लौटकर नही आया है। मैं बिलकुल नया होकर आया हूँ; जो गया था उसकी रेखा भी नहीं छूटी है। ये जो आया है, बिलकुल नया है, आप जरा गौर से देखें।

पिता नाराज हो गये। पिता, जैसा अकसर नाराज हो ही जायेंगे। पिताने कहा कि मैंने तुझे पैदा किया और मैं तुझे पहचान नही पा रहा हूँ? मेरा खून, मांस, हड्डी तेरे भीतर है और मुझे तुझे पहचानना पड़ेगा? मैं तेरा बाप हूँ; मैंने तुझे जन्माया है; मेरा खून है तू; मैं तुझे भलीभांति जानता हूँ। तुझे देखने की क्या जरूरत है?

बुद्ध ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। जो आपको दिखाई पड़ रहा है, उसके आप पिता हैं। लेकिन अब मैं कुछ और भी लेकर आया हूँ, जो आपसे नहीं जन्मा है। अब मैं द्विज होकर आया हूँ; नया जन्म हुआ है।"

जीसस से निकोडैमस ने पूछा है कि कैसे मैं प्रभु के राज्य को पा सकूंगा? तो जीसस ने कहा, "जब तक तेरा नया जन्म न हो जाए; जब तक तू द्विज न हो जाए।"

द्विज जो है, वह अपना और दूसरे का उद्धार करने में समर्थ है।

भिक्षु-सूत्र : १

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला ; बम्बई ; ४ सितम्बर, १९७३

रोइय-नायपुत्त-वयणे,
अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि काए ।
पंच य फासे महव्वयाइं,
पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ।।
सम्मदिट्ठि सया अमूढे,
अत्थि हु नाणे तवे संजमे य ।
तवसा धुणइ पुराणपावगं,
मण-वय-कायसुसवुडे जे स भिक्खू ।।

जो ज्ञातपुत्र — भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात् निरोध करता है, वही भिक्षु है ।

जो सम्यग्दर्शी है, जो कर्तव्य-विमूढ़ नहीं है, जो ज्ञान, तप और संयमका दृढ़ श्रद्धालु है, जो मन, वचन और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है, जो तप के द्वारा पूर्व-कृत पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है, वही भिक्षु है ।

जो अज्ञात है, जो अननुभूत है, जो अदृश्य है, जिसे हमने अब तक जाना नहीं, जिसका कोई भी स्वाद हमें उपलब्ध नहीं हुआ, जिसकी एक भी किरण से हम परिचित नहीं — उसकी खोज कैसे शुरू हो? उसे हम खोजें कैसे? खोज के लिए भी थोड़ा-सा परिचय जरूरी है। उस दिशा में हम बढ़ें, उस दिशा की थोड़ी-सी झलक चाहिए। और उस यात्रा में हम अपने पूरे जीवन को लगा दें, ये तो तभी हो सकता है जब, जीवन से मूल्यवान है वह अज्ञात, ऐसी हमारी प्रतीति हो। पर ऐसी कोई प्रतीति नहीं है, इसलिए श्रद्धा अति मूल्यवान हो जाती है।

श्रद्धा का अर्थ समझ लेना चाहिए। श्रद्धा का अर्थ है कि हमें कुछ भी पता नहीं परमात्मा का, हमें कुछ भी पता नहीं मोक्ष का, हमें कुछ भी पता नहीं कि मनुष्य के भीतर शरीर को पार करने वाली कोई आत्मा भी है। लेकिन ऐसे व्यक्ति से हमारा मिलन हो सकता है, जिसकी मौजूदगी उस अज्ञात की हमें खबर दे; ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में हम आ सकते हैं, जो परमात्मा को देख पा रहा है, जो मुक्त है, और जिसकी चेतना शरीर के पार जा चुकी है, जा रही है। ऐसे व्यक्ति में हमें झलक मिल सकती है। वह झलक सीधी नहीं होगी प्रत्यक्ष नहीं होगी; परोक्ष होगी, उस व्यक्ति के माध्यम से होगी। लेकिन इसके अतिरिक्त धर्म की यात्रा में और कोई उपाय नहीं है। ऐसे व्यक्ति की निकटता मे हमे जो प्रतीति होती है, उसका नाम श्रद्धा है।

महावीर को जब लोग देखते है तो एक बात तय हो जाती है.....अगर देखते है तो, अगर सुनते है; तो अगर वे अपनी आँखें बन्द किये हैं और कान बन्द किये है, और उन्होंने तय कर रखा है कि वे अपने से ऊपर कुछ भी नहीं देखेंगे— क्योंकि अपने से ऊपर कुछ भी देखते ही पीड़ा शुरू होती है, संताप शुरू होता है, चिन्ता का जन्म होता है। जैसे ही हमें दिखाई पड़ता है कि कोई हमसे पार है, और हम जहाँ खड़े हैं, वही जीवन की अन्तिम मंजिल नहीं है, वैसे ही बेचैनी शुरू होगी; प्यास जगेगी, और हमें चलना पड़ेगा; बैठे-बैठे फिर काम नहीं चल सकता। इस भय से कि कहीं यात्रा न करनी पड़े, हम अपने से ऊपर देखते ही नहीं। अगर महावीर-जैसा व्यक्ति हमारे करीब भी आ जाए, तो हम उसे झुठलाने की सब तरह से कोशिश करते हैं।

लेकिन अगर कोई सरलता से, सहजता से महावीर, बुद्ध या कृष्ण को देखे तो एक बात पक्की हो जायेगी कि हम जैसे हैं, ये हमारा अंतिम होना नहीं है; यह

हमारी नियति नहीं है– हमारा भविष्य महावीर में प्रगट हो जायेगा ।

जिस आनन्द से भरे हुए महावीर खड़े हैं, जिस मौन और शान्ति का उनके चारों ओर वर्षण हो रहा है, उनकी आँखों से जिस अलौकिक की झलक आ रही है, उनके शब्दों से जिस शून्य का स्वर उठ रहा है, वह हमारा भी भविष्य हो सकता है; हम भी उस जगह कभी हो सकते हैं, ऐसी प्रतीति का नाम श्रद्धा है ।

श्रद्धा का अर्थ अन्धापन नहीं है । और श्रद्धा का अर्थ हर किसी को मान लेना नहीं है । श्रद्धा का अर्थ है ऐसे ग्राहक, रिसेप्टिव, सवेदनशील चित्त की अवस्था, जब हमसे पार का कोई व्यक्तित्व निकट हो तो हम उसके प्रति बन्द न हों, खुले हों; हम तैयार हों उसके साथ थोड़ा दो कदम चलने को– क्योंकि वह किन्ही रास्तो पर चला है, जो हमसे अपरिचित है, उसने कुछ जाना है, जो हमने नही जाना है; उसने कुछ देखा है, जिसके लिए हम अभी अंध हैं ; उसको कुछ स्वाद मिला है, जिसका हमें कोई भी पता नही है – उसके साथ दो कदम चलने का नाम श्रद्धा है । और प्राथमिक यात्रा उसके साथ ही शुरू होगी ।

जीवन जटिल है, एक बड़ी पहेली है । और जीवन की सबसे बड़ी जटिलता यह है कि हम जहाँ हैं, वहाँ से हिलने मे हमें तकलीफ होती है । चाहे हम दुख में ही क्यों न हों, दुख को छोड़ने में भी तकलीफ होती है । क्योंकि दुख परिचित है, अपना है , और उसे छोड़कर जहाँ हम जायेंगे, वह होगा अपरिचित, अनजान; वहाँ भय लगता है । अनजान रास्तों पर जाने में भय लगता है, इसलिए हम अनजान रास्तो पर नहीं जाते । और अगर हम जाने-माने रास्तों पर ही भटकते रहे तो हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं; जो जाना है, उसे ही फिर– फिर जान लेंगे, लेकिन जीवन में कोई नया सूरज, इस जीवन में कोई नया जन्म संभव नहीं होगा । हम पिटी हुई लकीर पर घूमते रहेंगे ।

श्रद्धा का अर्थ है, किसी के साथ अनजान में उतरने का साहस । यह किसी के साथ ही होगा; क्योंकि उस दूसरे को देखकर भरोसा आ जायेगा । और उस दूसरे के व्यक्तित्व में ऐसे लक्षण हैं, जो भरोसा दिला सकते हैं । अगर महावीर कहते हैं कि एक ऐसा आनन्द है, जिसका कोई अन्त नही होता; एक ऐसे आनन्द की अवस्था है, जहाँ दुख की एक तरंग नही उठती, तो हम महावीर को देखकर भी अनुभव कर सकते हैं । महावीर का पूरा जीवन सामने है । वहाँ दुख की एक भी तरंग नहीं है; दुख के सब अवसर हैं तो भी महावीर को दुखी करना असम्भव है । सब तरह की कोशिश की गयी हैं कि उन्हे दुखी किया जाए, लेकिन सभी कोशिश असफल हो गयी । जिस व्यक्ति को दुखी नहीं किया जा सकता, उसके सम्बंध में एक बात पक्की है कि उसे कुछ मिल गया है,

जो हमारे सब दुखों के पार चला जाता है। वह किसी नये केन्द्र पर प्रतिष्ठित हो गया है। कोई एक नयी तरह की सेन्टिंग उसके भीतर हो गयी है, जिस कारण हम उसे हिला नही पाते। हम तो हिल जाते हैं हवा के थोड़े-से झोंके से; झोंके का ख्याल भी आ जाए, तो हिल जाते हैं। महावीर अकम्प हैं। कैसा भी तूफान हो उनके चारों तरफ, कितनी ही बड़ी आंधी उठे, महावीर के भीतर कोई आँधी प्रवेश नहीं कर पाती। निश्चित ही, कोई बहुत गहन केंद्र उन्हें उपलब्ध हो गया है। पर हमें वह केंद्र दिखाई नही पड़ता; सिर्फ महावीर दिखाई पड़ते हैं।

महावीर को देखकर उस केंद्र का अनुमान हो सकता है। वह अनुमान हमारी श्रद्धा बनेगा। लेकिन उस श्रद्धा के लिए महावीर के प्रति खुले होना जरूरी है। अगर आप आलोचक की तरह महावीर के पास जाते हैं, तो आप पहले से ही धारणाएँ बना कर जा रहे हैं। आपकी धारणाएँ आपके जाने हुए जगत से सम्बन्धित है। महावीर एक नये जगत के पथिक है; ऐसा समझें कि किसी और लोक के व्यक्ति हैं। आपकी भाषा, आपका अनुभव उन पर कुछ भी लागू नहीं होता। तो जो भी आप अपनी धारणाओं को लेकर उनके सम्बन्ध में सोचेंगे, वह गलत होगा। उस गलती से महावीर को कोई हानि होनेवाली नहीं है। स्मरण रहे, उस गलती से आप बन्द हो जायेंगे, और श्रद्धा का जो अंकुरण आपमें हो सकता था, वह नही हो पायेगा।

श्रद्धा इस जगत में सबसे अनूठी बात है, प्रेम से भी अनूठी, क्योंकि प्रेम तो वासना के प्रवाह में जग जाता है; श्रद्धा निर्वासना के प्रवाह में जगती है। जैसे-जैसे व्यक्ति की वासना सबल होती है, प्रगाढ़ होती है, प्रेम जग जाता है। प्रेम एक प्राकृतिक घटना है, जिसमें शरीर के कोष्ठ भाग लेते हैं। वह एक बायॉलॉजिकल, एक जैविक घटना है। आपको कुछ करना नही पडता। बच्चा जवान होता है, और उसके चारो तरफ प्रेम पकने लगता है। वह प्रेम मे गिरेगा।

श्रद्धा एक अर्थ में प्रेम-जैसी है, और एक अर्थ में प्रेम से बिलकुल उलटी है। श्रद्धा अलौकिक घटना है, क्योंकि शरीर का कोई भी कण उसमें सहयोगी नही होता। और अगर वैज्ञानिक जाँच करे, तो आपके प्रेम का तो फॉरमूला निकाल लेगा कि आपके शरीर में किन हारमोन्स के कारण प्रेम पैदा होता है। लेकिन श्रद्धा का कोई फॉरमूला वैज्ञानिक नही निकाल सकता। कितना ही श्रद्धालु की जाँच की जाए, उसके भीतर ऐसा कोई भौतिक तत्त्व नही मिलेगा, जिससे श्रद्धा समझी जा सके।

श्रद्धा बेबूझ है; लेकिन श्रद्धा घटी है। और श्रद्धा ऐसी घटी है कि लोगों ने अपने पूरे जीवन को उस पर दावँ पर लगा दिया है। जिनके जीवन में श्रद्धा घटी है

उन्होंने उसे जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान पाया है; अन्यथा कौन जीवन को नष्ट करेगा? कौन पूरे जीवन को दावें पर लगा देगा? जीवन को दावें पर लगाना बताता है कि जीवन के भीतर कुछ ऐसा भी घट सकता है, जो जीवन के पार जाता है; जीवन की सीमा में जिसकी कोई परिभाषा नहीं है।

श्रद्धा मनुष्य के जीवन में अलौकिक फूल है; इस पृथ्वी पर किसी और लोक का अवतरण है। और जब आप का हृदय आन्दोलित होता है श्रद्धा से, तो आप पृथ्वी के हिस्से नहीं रह जाते; ग्रैविटेशन, ज़मीन की कशिश से आप मुक्त हो जाते हैं। लेकिन उस घटना के लिए क्या करें? एक बात समझ लेनी जरूरी है कि उस घटना के लिए पॉजिटिवली, विधायक रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता; नकारात्मक रूप से कुछ किया जा सकता है।

आप प्रेम करने के लिए क्या कर सकते हैं? क्या आप चेष्टा करके प्रेम कर सकते हैं? अगर आपसे कहा जाए कि इस व्यक्ति को प्रेम करो, और आपके भीतर प्रेम न घट रहा हो, तो क्या आप प्रेम करके बता सकते हैं? क्या प्रेम का अनुभव पैदा हो सकता है चेष्टा से?

प्रेम का अनुभव भी चेष्टा से पैदा नहीं होता। आप सिर्फ इतना ही कर सकते हैं कि बाधा न डालें। व्यक्ति को निकट आने दें, खुद को निकट पहुँचने दें, आन्तरिकता बढ़ने दें। आप कुछ और कर नहीं सकते। घट जाए, घट जाए; न घटे, न घटे– आपके हाथ की बात नहीं है।

श्रद्धा और भी कठिन है। क्योंकि प्रेम के लिए तो शरीर में एक धक्का है, एक ज्वार है, एक चोट है; शरीर भी मांग कर रहा है। श्रद्धा तो शरीर की माग नहीं है; श्रद्धा आत्मा की मांग है। और जैसे प्रेम शरीर की घटना है, ऐसे श्रद्धा आत्मा की घटना है। और जब हम प्रेम तक को पैदा नहीं कर पाते, तो श्रद्धा को पैदा करना तो बहुत मुश्किल है।

तो आप क्या करें?

आप अपने को छोड़े। एक लेट-गो, एक विश्राम चाहिए। जहाँ श्रद्धा पैदा हो सकती हो, उस व्यक्ति के पास आपका एक विश्राम से भरा हुआ चित्त चाहिए। आपका द्वार खुला रहे। आप सूरज को घसीटकर मकान के भीतर नहीं ला सकते; लेकिन सूरज बाहर हो, और दरवाजा बन्द हो, तो सूरज दरवाजा तोड़कर भीतर आयेगा नहीं। आप दरवाज़ा खुला छोड़ सकते हैं। सूरज बाहर होगा, उसकी किरणें भीतर आ जाएँगी। किरणों को बांधकर लाने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन किरणों को आप आने से न रोकें, इतना काफी है। इसलिए मैं कहता हूँ, श्रद्धा का जन्म नकारात्मक है।

आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के करीब रह चुके हैं। इस ज़मीन पर कोई भी नया नहीं है। न मालूम कितने तीर्थंकर और अवतार आपके पास से गुज़र चुके हैं। लेकिन आपने श्रद्धा का मौका नहीं दिया। आपके ऊपर, जैसे उलटे घड़े पर से पानी बह जाए, ऐसे ही श्रद्धा की सारी सम्भावनाएँ बह गयी हैं। निश्चित ही, आप अपने को समझा लेते हैं। जब महावीर आपके पास होते हैं, तो आप अपने को समझा लेते हैं कि आदमी ही ऐसा नहीं है कि श्रद्धा पैदा हो।

ध्यान रहे, महावीर से कोई सम्बन्ध नहीं है श्रद्धा का; श्रद्धा का सम्बन्ध आपसे है। वह आपकी निजी घटना है। हो जाए, तो महावीर का रस आपमें प्रविष्ट हो जाए; महावीर की धुन आपमें समा जाए; महावीर की शराब आपमें भी उतर जाए – वह नशा, वह मस्ती। लेकिन आप समझा लेते हैं कि नहीं, श्रद्धा योग्य आदमी नहीं है; इसलिए अभी अपने को खुला रखना ठीक नहीं।

आपको श्रद्धा योग्य आदमी कभी भी न मिलेगा; क्योंकि वह उसे ही मिलता है, जो खुला हुआ है।

ध्यान रखें, एक आँखें बंद किये हुए आदमी रास्ते पर चलता हो और वह कहे कि अभी सूरज निकला नहीं; जब निकलेगा, तब मैं आँखें खोलूँगा; जब प्रकाश होगा तब मैं आँखें खोलूंगा – लेकिन जिसने आँखें नहीं खोली उसे पता भी कैसे चलेगा कि सूरज निकला है या नहीं।

आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण के करीब से गुज़रते वक्त सोचते हैं, अभी सूरज कहाँ है? महावीर के लिए आप बहुत-से कारण खोज लेते हैं कि श्रद्धा की कोई ज़रूरत नहीं है। अश्रद्धा के लिए आप सब तरह के कारण खोज लेते हैं। और अश्रद्धा के लिए कारणों से रोकना असंभव है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह अपने घर से बाहर निकला, और देखा कि पुराने मित्र पण्डित रामचरण दास रास्ते से गुज़र रहे हैं। नसरुद्दीन ने जाकर उसके कन्धे पकड़ लिये और कहा, "पण्डितजी, हद हो गयी! मैंने तो सुना कि आप मर चुके! तीन दिन हो गये, मैं तो रो भी लिया। मैंने तो सब दुख झेल लिया; रात सो नहीं सका तीन दिन, खबर मिली कि आप मर गये हैं।"

रामचरण दास ने कहा, "भूल जाओ! अब तो मैं सामने खड़ा हूँ जिन्दा – अफवाह रही होगी।"

नसरुद्दीन ने कहा, "इम्पॉसिबॅल– असम्भव! क्योंकि जिस आदमी ने मुझे कहा है, उस पर मेरी श्रद्धा आप पर से ज्यादा है – दैट मैन इज़ मोर रिलायबल दैन यू।"

जिन्दा आदमी भी अगर सामने खड़ा हो, और श्रद्धा न हो, तो उसका जीवन दिखाई नहीं पड़ सकता ।

श्रद्धा हो तो असत्य में भी जीवन का अंकुरण हो जाता है, श्रद्धा न हो तो सत्य भी निर्जीव हो जाता है । और श्रद्धा आपकी घटना है, उसका किसी और से संबंध नहीं है । श्रद्धेय से श्रद्धा का कोई सम्बन्ध नही है, श्रद्धालु से सम्बन्ध है । घटना आपके भीतर घटती है । अगर आप श्रद्धालु हैं, तो महावीर को आप हर काल में खोज ही लेंगे; और अगर आप श्रद्धालु नहीं है, तो कितने ही महावीर कतारबद्ध होकर आपके पास से निकलते रहें, उनसे आपका कोई संबंध नहीं हो सकता ।

इसलिए, एक बुनियादी बात ख्याल में ले लें अश्रद्धा के लिए तैयारी मत करें; उससे कुछ लाभ होनेवाला नही है । श्रद्धा की तैयारी रखें, उससे कोई हानि होने वाली नहीं है । अश्रद्धा से जो महानतम है, वह खो जायेगा; और श्रद्धा से जो महानतम है, उसका द्वार खुलेगा । लेकिन हम बड़े सचेत रहते हैं कि कही श्रद्धा न हो जाए ।

एक मित्र एक दिन मुझे सुनने आये । फिर मुझे उन्होंने पत्र लिखा कि मै अब दुबारा सुनने नही आ सकूंगा, क्योंकि मुझे डर लगता है कि कही श्रद्धा पैदा न हो जाए, आपकी बातों में कही श्रद्धा पैदा न हो जाए, नहीं तो मेरा पूरा जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा । मैं भयभीत हो गया हूँ, इसलिए अब मैं तब तक सुनने नहीं आऊँगा, जब तक जीवन को बदलने की पूरी तैयारी न हो ।

ये तैयारी कब होगी ? कैसे होगी ? और इस तैयारी को कल पर छोड़ने की जरूरत क्या है ?

कुछ भय है । श्रद्धा से भय है, जैसे प्रेम से भय है । आदमी प्रेम करने से डरता है । क्योंकि प्रेम करते ही दूसरा व्यक्ति बड़ा मूल्यवान हो जाता है । और प्रेम में पड़ते ही दूसरा व्यक्ति इतना मूल्यवान हो जाता है कि अपना मूल्य भी कम हो जाता है । प्रेम से आदमी डरते हैं; प्रेम से भयभीत होते हैं । प्रेम खतरनाक है । इसलिए बहुत लोग तो प्रेम करते ही नहीं, सिर्फ प्रेम का दिखावा करते हैं । इन्हीं समझदार लोगो ने विवाह की संस्था ईजाद की । बिना प्रेम में पड़े काम वासना का सम्बन्ध स्थापित हो जाए, विवाह का मतलब यही है । क्योंकि प्रेम में खतरा है, डर है । और दूसरा आदमी शक्तिशाली हो जाता है, और हम एक उलझन में पड़ जाते हैं । विवाह में कोई डर नही है. प्रेम की घटना ही नहीं घटती । बिना प्रेम के दो व्यक्ति साथ रहने लगते हैं और एक-दूसरे के शरीर का उपयोग करने लगते हैं ।

विवाह चालाक, चतुर लोगों की ईजाद है। इसलिए विवाह में जो भरोसा करते हैं, वे प्रेम में पड़नेवाले लोगों को पागल कहते हैं। उनके हिसाब से वे बिलकुल ठीक कहते हैं। क्योंकि प्रेम करनेवालों को गणित नहीं आता, तर्क नहीं आता। वे बिलकुल भूल कर रहे हैं। प्रेम में झंझट में पड़ेंगे, लेकिन जो झंझट में पड़ने से बचता है, वह जीवित ही नहीं रह जाता; और जितनी झंझट से बचता है, उतना मुर्दा होता चला जाता है। मरा हुआ आदमी बिलकुल झंझट में नहीं होता। आपको झंझट से बिलकुल हन्ड्रेड प्रसेन्ट बचना हो– सौ प्रतिशत, तो आप मर जाएँ ; आप जिन्दा न रहें। श्वास लेने में भी खतरा है इन्फेक्शन का, डर है बीमारी का। उठने-बैठने में खतरा है।

जीना बड़ा खतरनाक है। और जो आदमी जितना ज्यादा जीना चाहता है, उतने बड़े खतरे में उसे उतरना होगा। प्रेम बड़ा खतरा है — शिखर छूते हैं आप, लेकिन खाई में गिरने का डर भी पैदा हो जाता है। जो आदमी सपाट जमीन पर चलता है, उसको खाई में गिरने का कोई डर नहीं है। विवाह सपाट जमीन है। उसमें कभी कोई गिरता नहीं। कोई शिखर भी नहीं छूता गौरीशंकर के कोई गिरता भी नही। लेकिन जो गौरीशंकर के शिखर पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है, वह खतरा हाथ में ले रहा है। लेकिन ध्यान रहे, जहाँ खतरा इतना बड़ा होता है, जैसा गौरीशंकर के नीचे की खाई, उस खतरे की चुनौती में ही जीवन भी अपने पूरे शिखर पर उठता है। जिसके जीवन में ॲड्वेन्चॅर नही है, दुस्साहस नहीं है, वह आदमी जीवित ही नही है। वह पैदा ही नही हुआ। वह अभी अपनी मा के गर्भ में है। अभी वहाँ से उसका छुटकारा नही हुआ।

प्रेम खतरे में ले जाता है। श्रद्धा, लेकिन, महाखतरे में ले जाती है। क्योंकि प्रेम तो एक साधारण व्यक्ति पर भरोसा है; और श्रद्धा एक असाधारण व्यक्ति पर भरोसा है। प्रेमी तो हमें इस जगत के बाहर नहीं ले जायेगा ; इसके भीतर ही परिभ्रमण होगा — श्रद्धेय हमें इस जगत के बाहर ले जाने लगेगा। वह हमें उठाने लगेगा उन अछूती उँचाइयों की तरफ, जिनको कभी-कभार ही सदियों में कोई आदमी छू पाता है।

वासना प्रेम का खतरा उठाने की तैयारी करवा देती है। श्रद्धा उस अनन्त, असीम, अनजान, अज्ञात, और अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय घटना के लिए साहस दे देती है। श्रद्धा में भय है सिर्फ एक : अपने को खोने का भय। श्रद्धा में अहंकार खोयेगा। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है, आप अपने अहंकार को कहीं छोड़ रहे हैं और किसी को कह रहे हैं कि आज से तुम मेरी आँख हुए, अब मैं तुम्हारे द्वारा देखूंगा; तुम ऐसे

कान हुए, तुम्हारे द्वारा मैं सुनूंगा; तुम मेरे हृदय हुए, तुम्हारे द्वारा मैं धड़कूंगा। अब मैं गौण हुआ छाया की तरह, तुम मेरी आत्मा हो गये।

श्रद्धा का अर्थ है : किसी व्यक्ति में प्रकाश की घटना को अनुभव करके अपने को उस प्रकाश के साथ जोड़ देना; उसकी छाया बन जाना। लेकिन वासना से भरा व्यक्ति, अनन्त वासनाओं से भरा हुआ व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ने से डरता है। क्योंकि अहकार के छूटते ही सारी वासनाएँ भी गिर जायेगी; और अहंकार को हम बढ़ाये जाना चाहते हैं, जब तक कि असम्भव ही न हो जाए।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा पी गया और मधुशाला में लड़ने के मिजाज से भर गया; लड़ने का मूड आ गया। तो उसने खड़े होकर चारों तरफ देखा और कहा कि इस मधुशाला में अगर कोई हो माई का लाल तो बाहर निकल आये, उसे मैं चारों खाने अभी चित कर दू !"

लेकिन किसीने उस पर ध्यान न दिया। और लोग भी अपने नशे में लीन थे। उससे उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने कहा कि छोड़ो, मधुशाला में क्या रखा है ! इस पूरे गाँव में भी अगर कोई माई का लाल हो तो खबर कर दो।

फिर भी किसी ने ध्यान न दिया तो उसकी आवाज और बढ़ गयी, और उसने कहा, " इस पूरे देश में अगर किसी ने अपनी माँ का दूध पिया हो तो प्रगट हो जाए ! फिर भी कोई प्रगट न हुआ। तो उसने कहा, " इस पूरी पृथ्वी पर है कोई मर्द ?"

एक आदमी जो बड़ी देर से सुन रहा था, उसे बड़ी हैरानी हुई कि ये आदमी बढ़ता ही चला जा रहा है। तो उसने अपना गिलास सरकाया और आकर मुल्ला को दो-चार घूसे मारे। मुल्ला नशे में तो था ही, जमीन पर गिर पड़ा। वह आदमी उसकी छाती पर बैठ गया।

मुल्ला सोचन लगा, और उसने उस आदमी से कहा, " लगता है मैं ज़रा अपनी सीमा से आगे बढ़ गया हूँ– आइ रेकॅन आइ हैव गॉन बियॉन्ड माई लिमिट – उतर भाई, देश तक ही हम दावा करते हैं; नीचे उतर, पृथ्वी का हम दावा ही छोडते हैं ।"

आपका अहंकार भी बढ़ता चला जाता है, जब तक कि आप उस जगह नहीं पहुँच जाते, जहाँ अड़चन हो जाती है, जहाँ उलझ जाते हैं। लेकिन पीछे हटना भी बहुत मुश्किल मालूम होता है। आगे बढ़ नहीं पाते; पीछे हटना बहुत पीड़ा देता है, चोट देता है — अटके रह जाते हैं। अनुभव में भी आने लगे कि

सीमा से आगे बढ़ गये तो भी मुल्ला नसरुद्दीन जैसी हालत में आप नहीं होते कि वापिस इतनी सरलता से लौट जाएँ। दावे को मुकरना, छोड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

हम सब दावों के साथ जी रहे हैं। अहंकार बाधा बनता है, क्योंकि हमने इतनी घोषणाएँ कर रखी हैं। हर आदमी ने अपने मन में सोच रखा है कि है ही नही पृथ्वी पर कोई जिसके सामने मैं झुकूँ। चाहे आपको पता हो और चाहे न पता हो, ये मन की धारणा है। और आपका मन ऐसा सोचता है कि मुझसे श्रेष्ठ हो भी कोई कैसे सकता है! ऐसी धारणा से भरा हुआ अहंकार श्रद्धा को कैसे उपलब्ध होगा! श्रद्धा का अर्थ ही है इस बात की प्रतीति कि मुझसे महान की सम्भावना है। और यह सम्भावना आपको क्षुद्र नही बनाती, क्योंकि यह आपके भी महान होने का द्वार खोलती है।

महावीर पर श्रद्धा आपके महावीर होने की सम्भावना बनेगी ही। अपने पर ही श्रद्धा से आप जो हैं, वही रह जायेंगे। जैसे बीज अपने पर ही भरोसा कर ले और आस-पास के वृक्षो को देखकर भी अनदेखा कर दे, तो फिर उसमें अकुर कैसे फूटे! अंकुर फूटता है अज्ञात की उठान से, उमंग से।

फिर, समर्पण-श्रद्धा एक तरह का विश्राम है। आपके चित्त में इतना कोलाहल है कि विश्राम कहाँ? इसलिए जो लोग श्रद्धा को उपलब्ध हो जाते हैं, उनकी शान्ति देखने-जैसी है। क्योंकि उन्हे फिर कोई अशान्त नही कर सकता। असल में उन्होंने अशान्ति का कारण ही किसी और के हाथ में सौंप दिया। किसी और के चरणों में जाकर उन्होंने कह दिया कि सारा बोझ अब मैं छोड़ता हूँ, अब 'तू' समझ।

ऐसा सदा होनेवाला नही है, लेकिन प्राथमिक चरण में बड़ा बहुमूल्य है। धीरे-धीरे तो शिष्य गुरु से मुक्त हो जाता है। अगर गुरु से शिष्य मुक्त न हो पाये, तो गुरु सद्गुरु नही था। गुरु की पूरी चेष्टा ये है कि शिष्य जल्दी-से-जल्दी उससे मुक्त हो जाए; अपनी यात्रा पर निकल जाए, जहाँ श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि सत्य का प्रकाश स्वयं आने लगता है। अपनी आँखों से देखने लगे; क्योंकि दूसरों की आँखों से कितना भी देखा जाए, तो भी धुंधला ही होगा। अपने पैरों से चलने लगे; क्योंकि मोक्ष तक कोई भी दूसरे के कन्धे पर सवार होकर नही पहुँच सकता। लंगड़े-लूलों के लिए वहाँ कोई जगह नहीं है।

लेकिन प्राथमिक चरण में किसी का सहारा बड़ा कीमती हो जाता है। वह सहारा वैसे ही है, जैसे एक दिये की निकटता से दूसरे दिये में ज्योति पकड़ जाती है फिर तो दूसरा दिया अपनी यात्रा पर खुद चल पड़ता है। फिर तो पहला दिया बुझ भी जाए, तो भी दूसरे दिये को कोई बाधा नहीं आती। फिर पहला दिया खो भी जाए, तो भी दूसरा दिया अपनी यात्रा पर होता है।

श्रद्धा प्राथमिक है– पहला स्पार्क, एक पहली चोट– जहाँ पहली अग्नि पैदा होती है, वहीं उपयोगी है। अन्ततः, उसका कोई उपयोग नहीं, लेकिन प्रथम का बड़ा मूल्य है। चित्त बहुत ज़्यादा वासना से ग्रस्त हो, तो हम विश्राम नहीं कर पाते। और जब तक विश्राम न कर पाये मन, तब तक हम इकट्ठे नही हो पाते। यह थोड़ा समझ लेना ज़रूरी है।

हम बंटे हैं, कटे रहते हैं। महावीर पर थोड़ी श्रद्धा भी होती है, थोड़ी अश्रद्धा भी होती है। उनके विपरीत जो कह रहा है, उस पर भी थोड़ा भरोसा होता है; थोड़ा अपने पर भी भरोसा होता है। ऐसा खण्ड-खण्ड होते हैं। लेकिन श्रद्धा अखण्ड ही हो सकती है, खण्ड-खण्ड नही। आप अगर बहुत खण्डो में बंटे हैं, तो आप की हालत ऐसी है, जैसे किसी व्यक्ति के बहुत से परिचित हो, लेकिन मित्र कोई भी न हो।

लेकिन परिचित और मित्र में बड़ा फर्क है। एक्वेन्टेन्स– परिचय, परिचय है, ऊपरी है। मित्रता एक गहन सम्बन्ध है, एक आन्तरिक तीव्रता है, एक मिलन है जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में प्रविष्ट हो जाता है।

तो आप बहुत व्यक्तियों से परिचित हो सकते हैं, वह मित्रता नही है। और आप बहुत खण्डों में बंटे हो सकते हैं : थोड़ी श्रद्धा महावीर पर भी, थोड़ी श्रद्धा बुद्ध पर भी, थोड़ी श्रद्धा कृष्ण पर भी लेकिन किसी से भी मित्रता न बनेगी। इस सदी मे इस तरह का एक खतरा हुआ है। कुछ अति समझदार लोगो ने लोगों को ऐसा समझाना शुरू किया है कि महावीर भी वही कहते हैं, कृष्ण भी वही कहते हैं, बुद्ध भी वही कहते हैं, और उन सभी का मतलब एक है। यह बात निहायत ही गलत है। यह सबको लीप-पोत देने-जैसा है। उनके मतलब बड़े भिन्न है। उनकी मंजिल एक है, उनके रास्ते बड़े भिन्न हैं – अन्तिम परिणाम एक है। लेकिन अन्तिम परिणाम से क्या लेना-देना ? आप वहाँ अभी हैं नही। जहाँ आप हैं, वहाँ महावीर और बुद्ध बिलकुल भिन्न हैं, जैसे पूरब – पश्चिम। जहाँ आप हैं, वहाँ कृष्ण और क्राइस्ट बिलकुल भिन्न हैं। वहाँ अगर आपने खिचड़ी बनाने की कोशिश की, जिसको कुछ लोग 'धर्म-समन्वय' कहते हैं .... । वह खिचड़ी है, समन्वय नहीं है। और खिचड़ी में भी कुछ पौष्टिक तत्त्व होता है। इस धर्मों की खिचड़ी में कोई पौष्टिक तत्त्व नही रह जाता; क्योंकि आप सभी रास्तों की खिचड़ी नही बना सकते। चलना तो एक ही रास्ते पर पड़ता है। और जब आप एक रास्ते पर चलते हैं, तब उचित है कि सभी रास्तों से आपका चित्त हट आये ताकि पूरी शक्ति एक प्रवाह से लग जाए।

तो जो चित्त खण्डित है बहुत चीज़ों में, वह कोई श्रद्धा पैदा नहीं कर पाता। जो कहता है, हमारी श्रद्धा सभी में है, समझना कि उसकी श्रद्धा किसी में भी नहीं

है। असल में आपको अगर सबमें से किसीसे भी श्रद्धा का सम्बन्ध जोड़ने से बचना हो, तो सबमें श्रद्धा करना अच्छा है। तो सुबह थोड़ा कुरान भी पढ़ लिया, थोड़ी गीता भी पढ़ ली, और फिर पीछे गीत गा लिया– "ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम; सबको सन्मति दे भगवान।"

नहीं, गीता और कुरान बड़े भिन्न रास्तों पर जाते हैं। और गीता माँगती है पूरी श्रद्धा, और कुरान भी माँगता है पूरी श्रद्धा; महावीर भी माँगते हैं पूरी श्रद्धा।

श्रद्धा का यह अर्थ नहीं है कि आप अन्धे हो जाएं। श्रद्धा का अर्थ यह है कि आप पूरे महावीर के साथ खड़े हो जाएं, अधूरे खड़े होने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन हम सब चीज़ों में अधूरे हैं। न तो हमने कभी प्रेम किसीको ऐसा किया है कि पूरी पृथ्वी से हमारा सारा प्रेम सिकुड़ कर एक धारा में बहने लगे; न हमने कभी मित्रता ऐसी की है कि हमारे पूरे जीवन का प्रकाश, हमारे पूरे जीवन की ऊर्जा एक ही व्यक्ति के साथ गहनता से जुड़ जाए।

इसका यह मतलब नहीं है कि बाकी सब दुश्मन हो जाएँ। जिन्दगी बड़ी बेबूझ है। अगर आप एक व्यक्ति से इतने गहरे जुड़ जाएं जितने कि जुड़ सकते हैं, आप सारे जगत के प्रति मैत्रीपूर्ण हो जायेंगे। लेकिन मित्रता एक से होगी। वह एक द्वार होगा सारे जगत के प्रति मैत्री का। अगर आप एक व्यक्ति से इतना प्रेम कर लें कि आप भूल ही जाएँ; यह संभावना ही खो जाये कि ये प्रेम किसी खंड में बँट सकता है, तो आप सारे जगत के प्रति प्रेम से भर जायेंगे। इस व्यक्ति के माध्यम से वह प्रेम की गंगा बहेगी और सारे जगत में फैल जायेगी, लेकिन बहेगी सदा गंगोत्री से। गंगोत्री का द्वारा बड़ा सकरा होता है; होगा ही। श्रद्धा भी अगर एक पर हो जाए, तो धीरे-धीरे श्रद्धा का प्रकाश सब तरफ पड़ने लगेगा, लेकिन धारा एक से ही बहेगी।

हम इतने खण्डित हैं, इस कारण ही हम किसी तरह के विश्राम को उपलब्ध नहीं होते। मनसविद कहते हैं, अनेक लोग सो तक नहीं पाते रात में, और उसका कुल कारण इतना है कि मन इतना बंटा होता है– और नींद एक को आ सकती है, भीड़ को नहीं आ सकती। अगर आप एक हैं, तो सो जायेंगे. अगर भीड़ खड़ी है मस्तिष्क में, तो कैसे सोयेंगे ?

आपका कोई हिस्सा अभी सिनेमा देखने जाना चाहता है; कोई हिस्सा किताब पढ़ना चाहता है; कोई हिस्सा ध्यान करना चाहता है; कोई हिस्सा सोना चाहता है; कोई हिस्सा कह रहा है कि क्यों रात बरबाद कर रहे हो सो कर ? ऐसे तो जिन्दगी खराब हो जायेगी। अगर आदमी साठ साल जिये, तो बीस साल तो नींद

में ही नष्ट हो जाते हैं— भोग लो, जिन्दगी हाथ से जा रही है। तो चलो किसी क्लब-घर में, किसी नृत्य-घर में।

पचीस खण्ड हैं, उस कारण आप नहीं सो पा रहे हैं। नींद तक असम्भव हो गयी है। क्योंकि नींद के लिए भी थोड़ी एकजूटता चाहिए। प्रेम और भी मुश्किल हो गया है। क्योंकि जब नींद के लिए एकजूटता चाहिए, तो प्रेम के नशे के लिए तो और भी गहरी एकजूटता चाहिए। श्रद्धा करीब-करीब, करीब-करीब खो गयी है, क्योंकि उसके लिए तो बहुत ही अखण्डता चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछता है अपने मनसविद से कि मैं सो नहीं पाता, कोई उपाय मुझे बतायें। सब विचार करके उसके मनसविद ने कहा कि तुम्हें थोड़ी विश्राम की कला सीखनी होगी। तो रात आज तुम स्नान करके आराम से बिस्तर पर लेट जाना और फिर अपने शरीर से थोड़ी बात करना, और शरीर को थोड़ी आज्ञा देना। अंगूठे से शुरू करना; कहना, पैर के अंगूठे सो जाओ— टोज नाउ गो टु स्लीप। और तब अनुभव करना। फिर कहना— पंजे सो जाओ, फिर पैर सो जाओ। ऐसे ऊपर बढ़ते जाना और आखिर में सिर तक आना। और फिर अन्त में आँखो के लिए कहना— 'नाउ आइज गो टु स्लीप।' और आँख तक आते-आते तुम सो ही चुके होओगे।

नसरुद्दीन भागा हुआ घर आया। कई दिन से सो नहीं पाया था। रात की राह देखी, स्नान किया, बिस्तर ठीक से तैयार किया, फिर लेट गया अपने बिस्तर पर। पत्नी स्नान करने बाथरूम में चली गयी। वह लेट गया अपने बिस्तर पर और उसने शुरू किया, जैसा मनसविद ने कहा था। पैर से शुरू किया कि— नाउ टोज गो टु स्लीप; नाउ फीट गो टु स्लीप, नाउ माइ लेग्स गो टु स्लीप, माइ हीप्स. . .और ऐसे-ऐसे वह बढ़ता गया ऊपर। वह बस करीब-करीब आ ही रहा था, जब वह कहने वाला था कि मेरा सिर, माइ हेड गो टु स्लीप, पत्नी नहाकर बाथरूम से बाहर निकली। उसे देखकर ही उसने जोर से अपने हाथ अपने शरीर पर मारे और कहा, "एवरी बॉडी अवेक इमीडियटली— एवरीबॉडी अवेक — सब जाग जाओ।"

वासना सोने तक नहीं देती, तो वासना समर्पण कैसे करने देगी! वासना विश्राम तक में नहीं उतरने देती, तो वासना श्रद्धा में कैसे उतरने देगी! क्योंकि श्रद्धा परम विश्राम है, जहाँ मन कुछ भी नहीं चाह रहा है, और जहाँ मन कहता है, अब कुछ चाहना भी नहीं है, अब सिर्फ होना है — जस्ट बीइंग। अब सिर्फ मैं होना चाहता हूँ। मेरी कोई चाह नहीं है। तब महावीर से सम्बन्ध जुड़ता है।

अब हम इस सूत्र में उतरें :

'जो ज्ञातपुत्र— भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात् निरोध करके जीता है, वही भिक्षु है।'

'भिक्षु' शब्द को थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए, क्योंकि जगत में सिर्फ भारत अकेला देश है जिसने भिक्षु को सम्राट के भी ऊपर रखा है। वैसी घटना पृथ्वी पर कहीं नहीं घटी। वह घटना अलौकिक है। सम्राट से ऊपर पृथ्वी पर कही भी कोई नही रहा है। सिर्फ भारत अकेला देश है, जहाँ हमने सम्राट के ऊपर भिक्षु को स्थापित किया है। क्योंकि सम्राट भोग का शिखर है, और भिक्षु त्याग का। सम्राट चीजों को संग्रह करता चला गया है— सब-कुछ सग्रह करता चला गया है पागल की तरह, और भिक्षु ने सिर्फ अपने को बचाया है; बाकी कुछ भी नही बचाया है। सम्राट वस्तुओ को इकट्ठा कर रहा है, भिक्षु सिर्फ अपनी आत्मा इकट्ठा कर रहा है। सम्राट चीजो में खोया हुआ है, भिक्षु चीजो से अपने को मुक्त कर रहा है ताकि अपने में प्रवेश कर सके। सम्राट की यात्रा बहिर्यात्रा है; भिक्षु की यात्रा अन्तर्यात्रा है।

'भिक्षु' शब्द परम आदरणीय है। भिक्षु का अर्थ है कि अब जिसके पास अपना कहने योग्य कुछ भी नही सिवाय स्वयं के होने के। जो किसी चीज का मालिक नहीं रहा है। जिसका कोई पजेशन नही, पजेसिवनेस नही। जिसका कोई परिग्रह नही। जो कहता है, मेरा कुछ भी नही है; सिर्फ मैं हूँ। जिसके पास एक दाना भी अपना कहने को नही है। जिसका सब-कुछ ससार का है और जिसने एक भेद रेखा स्पष्ट अनुभव कर ली है कि मेरा मैं ही अकेला हो सकता हूँ, कोई सम्पदा मेरी नही हो सकती, क्योंकि जब मै नही था, तब सम्पदा थी, महल थे, जमीन थी, जायदाद थी, हीरे थे, मोती थे; जब मै नही रहूँगा, तब भी वे होंगे; मैं व्यर्थ ही बीच में अपना परिग्रह स्थापित करके परेशान हूँ। उससे हीरे-मोती परेशान नही होते, उससे मै ही परेशान होता हूँ।

जब आप मर जायेंगे तो आपका घर नहीं रोयेगा; बड़ा मजा है। लेकिन आपका घर जल जाये तो आप रोयेंगे। मालिक कौन है? आपका हीरा खो जाए, तो हीरा आपकी जरा भी चिन्ता नही करेगा। हीरा सोचगा ही नही कि आप कहाँ खो गये। आप-जैसे बहुत लोग आये और खो गये। लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। और आप सोचते थे कि आप मालिक हैं। मालिक मुश्किल में पड़ता है।

नहीं, जिन चीजों को हम सोच रहे है, हम उनके मालिक हैं, वे हमारी मालिक हो गयी हैं। मालकियत हमारा बिलकुल वहम है, असत्य है। इसलिए इस देश

ने भिक्षु को सर्वोत्तम जीवन की आखिरी ऊँचाई का फूल कहा है, जहाँ एक व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि परिग्रह का कोई उपाय नहीं है। वस्तुएँ किसी की भी नहीं हो सकती हैं। सिर्फ एक ही घटना है जो मेरी हो सकती है; वह मेरी आत्मा है।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम सब चीजों पर दावा करते हैं, सिर्फ उस एक पर दावा नहीं करते, जिसपर दावा हो सकता है। इसलिए अगर ठीक से समझें तो अर्थ यह हुआ कि हम बहुत चीजों के मालिक नहीं हो पाते, बहुत चीजों के प्रति भिखारी हो जाते हैं। असल में तो हम भिखारी हैं, लेकिन हमको मालिक होने का ख्याल है।

महावीर जिसको भिक्षु कहते हैं, वही मालिक है। लेकिन, वह हम सब अपने को मालिक कहते हैं, इसलिए महावीर ने उसे मालिक कहना उचित नही समझा। क्योंकि उससे भ्रान्ति होगी। हम सभी अपने को मालिक समझते हैं, तो हम सबको ठीक चोट देने के लिए महावीर और बुद्ध दोनो ने उस परम घटना को भिक्षु कहा। बुद्ध अपने को 'भिक्षु' कहते है, जिनके पास अपनी मालकियत है; और हम अपने को 'मालिक' कहते है, जो वस्तुओ के गुलाम है।

तो जिस दुनिया में गुलाम अपने को मालिक समझते हों, यह उचित ही है कि मालिक अपने को भिक्षु कहे; नही तो भाषा में बड़ी गड़बड हो जायेगी।

इसलिए हिन्दुओं का जो शब्द है, स्वामी, वह जैनों और बौद्धों ने चुनना पसन्द नही किया। वह शब्द बिलकुल सही है– एकदम सही है। 'स्वामी' का अर्थ है : 'मालिक', जो अपना सचमुच मालिक है। हिन्दुओ ने अपने संन्यासी को स्वामी कहा। बिलकुल ठीक कहा। यही मतलब है। लेकिन बुद्ध और महावीर ने उलटा शब्द चुना– 'भिक्षु'। उनका व्यंग गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि यहाँ तो सभी अपने को 'स्वामी' समझ रहे हैं; यहाँ तुम भी अपने को स्वामी कहोगे तो भाषा बड़ी गड़बड़ हो जायेगी। और जहाँ सभी पागल अपने को स्वस्थ समझते हों, वहाँ स्वस्थ आदमी को अपने को पागल कहना ही उचित है।

कौन है भिक्षु? सच में जो मालिक हो गया। लेकिन सच की मालकियत सिर्फ अपने पर हो सकती है, और किसी पर भी नहीं हो सकती। और जब तक कोई व्यक्ति दूसरे पर मालकियत करने की कोशिश करता है, तब तक अपने जीवन का अपव्यय करता है। वह शक्ति व्यर्थ जा रही है। उसका कोई अर्थ नहीं होने वाला है। वह कहीं भी पहुँचेगा नहीं। वह सिर्फ अपने को रिक्त कर रहा है, चुका रहा है; खत्म कर रहा है; वह नष्ट कर रहा है। वह आत्महन्ता है। क्योंकि जो नहीं हो सकता, वह नहीं होगा; वह कभी नहीं हुआ है ऐलिग्जान्डर और नेपोलियन गुजरते हैं रास्तों से मालिक होने की कोशिश में, और दीन-दरिद्र ही मरते हैं।

ठीक उलटा प्रयोग है महावीर का कि तुम मालिक होने की कोशिश छोड़ दो बाहर की तरफ। भीतर एक संसार है। भीतर एक साम्राज्य है– एक विस्तार है, एक आकाश है। तुम उसके मालिक हो। तुम उस मालकियत को 'क्लेम' कर लो। तुम उस मालकियत के दावेदार हो जाओ। लेकिन ऐसा दावा वही कर पायेगा, जो श्रद्धा से शुरू करे किसी मालिक पर; श्रद्धा से शुरू करे किसी सम्राट पर — महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, या मुहम्मद-जैसे किसी मालिक पर भरोसा करे – जिसमें उसे स्वामित्व दिखा हो। जिसमें उसने झलक पायी हो कि यह आदमी गुलाम नही है – किसी बात का गुलाम नही है। उस पर श्रद्धा से यात्रा शरू होगी।

तो जो ज्ञातपुत्र महावीर के वचनो पर श्रद्धा रखकर सब जीवो के भीतर अपनी ही जैसी आत्मा का विचार करता है; अनुभव करता है; अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम, अप्रमाद–पंचमहाव्रतों में जो गति करता है, उनका पालन करता है; रोकता है शक्ति को व्यर्थ जाने से; आस्रवो का ध्यान रखता है, संवरण करता है; और जीवन बाहर भटक न जाए मरुस्थल में, जीवन की ऊर्जा व्यर्थ न चली जाए– भीतर सृजनात्मक हो जाए, अपनी आत्मा को ऐसा निरन्तर निरोध करता है व्यर्थ में जाने से, वही भिक्षु है।

हम तो व्यर्थ के लिए आतुर होते हैं। खबर भर मिल जाए, हम दौड़ पड़ते हैं। व्यर्थ को हम न मालूम कितना मूल्य देते हैं! शायद हम कभी सोचते भी नहीं कि हम भेद करें सार्थक और व्यर्थ का; कि हम सार और असार का ठीक विवेचन करें; कि ठीक विवेक करे कि क्या सही है और क्या गलत है।

शंकर ने कहा है : सार और असार को जो ठीक से पहचान लेता है, वही संन्यासी है। क्योंकि जो सार को पहचान लेता है, फिर वह असार से अपने को रोकने लगता है, संवरण करने लगता है। और जो सार को पहचान लेता है, वह चुपचाप, अनजाने ही सार की तरफ बढ़ने लगता है।

गलत की तरफ जाना असम्भव है; ठीक की तरफ जाने से रुकना भी असम्भव है। लेकिन ठीक और गलत का बोध होना चाहिए, क्या गलत है और क्या ठीक है। वह हमें जरा भी बोध नही है। तो महावीर कहते हैं : वह बोध भी हमें तभी पैदा होगा जब हम किसी पर श्रद्धा करें, जिसे ठीक और गलत की पहचान जीवन में हो गये हैं।

सूफी फकीर, बायजीद, अपने गुरु के पास गया, और उसने अपन गुरु से कहा कि मुझे कुछ शिक्षा दें। उसके गुरु ने कहा कि तू सिर्फ मेरे पास रह और मुझको देख, और मेरा निरीक्षण कर; उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना– सब तू मेरा देख, और मेरा निरीक्षण कर। उसी निरीक्षण से तुझे विवेक उत्पन्न होगा।

बायजीद ने सोचा, यह बड़ा कठिन मामला दिखता है। सीधा मुझे कह दिया होता कि क्या करूँ, तो मैं कर लता; कह दिया होता– यह मत करो, तो मैं नहीं करता।

हम सब पचा-पचाया भोजन चाहते हैं। कोई हमारे लिए चबा कर हमारे मुँह में डाल दे। चबाने तक का कष्ट नही उठाना चाहते।

लेकिन ध्यान रहे, ऐसा पचाया हुआ भोजन अपच ही कर सकता है। वह आपके जीवन में ठीक-ठीक प्रवेश नही कर पायेगा। बायजीद के गुरु ने ठीक कहा कि तू बस बैठ और मेरा निरीक्षण कर; मेरे पास बैठ और देख क्या-क्या होता है।

बायजीद बैठ गया। पहले दिन ही एक घटना घटी। एक आदमी आया और बड़ी गालियाँ देने लगा; बायजीद के गुरु को बड़े अशोभन शब्द बोलने लगा। बायजीद को कई दफा हुआ कि उठकर एक हमला इस आदमी पर बोल दे। लेकिन गुरु ने कहा था, तुझे कुछ करना नही है। तुझे बस मुझे देखना है। तू कृपा करके बीच में कुछ मत करने लगना, क्योंकि तू यहाँ करने वाला नही है– तू सिर्फ यहाँ देखना।

तो उसे बड़ी तकलीफ हो रही है। उसका दिल तो उस आदमी को देखने का हो रहा है, जो गालियाँ दे रहा है। लेकिन आज्ञा उसे हुई थी कि वह गुरु को देखे।

गलत को देखने का मन होता है। ठीक में ज्यादा रस नहीं मालूम पड़ता। गुरु चुपचाप बैठा है। वहाँ देखने योग्य भी कुछ नहीं लगता। गुरु शान्त बैठा है। बायजीद को बड़ी बेचैनी होती है। उसका दिल तो वहाँ देखने का होता है। लेकिन फिर वह अपने को समझाता है कि देखूं गुरु को ही। इस आदमी से मुझे सीखना भी क्या है जो मैं देखूं। यह असार है। फिर गुरु ने भी कहा है कि मुझे ही देखो।

गुरु बैठा है, चुप। वह हँसता रहता है। वह आदमी गालियाँ देकर चला जाता है, बायजीद अपने गुरु से पूछता है कि उस आदमी ने इतनी गालियाँ दी और आप चुप-चाप बैठे रहे? गुरु ने कहा कि तू सुबह यहाँ नहीं था; अब कल सुबह तुझे पता चल जायेगा। क्योंकि सुबह-सुबह एक भक्त मेरा यहाँ आता है और मेरी इतनी प्रशंसा करता है कि तराजू के एक पलड़े को बिलकुल जमीन से लगा देता है। यह उसको ठीक कर गया है। यह मुझे बिलकुल बैलेन्स्ड कर गया है। यह आदमी बड़ा गजब का है। यह कभी-कभी आता है।

दूसरे दिन सुबह वह भक्त आया और प्रशंसा के पुल बांधने लगा। बायजीद का फिर मन हुआ उसकी बातें सुनने का, लेकिन उसने ख्याल रखा कि वह गुरु को देखे। भक्त के चले जाने के बाद गुरु ने बायजीद से कहा, "तूने देखा? जगत एक

संतुलन है : वहाँ प्रशंसा भी है, वहाँ गाली भी है। प्रशंसा से फूल मत जाओ, गाली से पीड़ित मत हो जाओ। वे दोनों एक-दूसरे को काटकर अपने-आप शून्य हो जायेंगे। तुम अपनी जगह रहो, तुम बेचैन मत हो। न गाली देने वाले से कुछ प्रयोजन है, न प्रशंसा करने वाले से कुछ प्रयोजन है। वे दोनों आपस में निपट रहे हैं। तुम अलग ही हो। बायजीद से कहा कि तू बस मुझे देखता रह और उसी देखने में से तुझे सार का पता चलने लगेगा। और उसी सार पर तू चल पड़ना, और असार से अपने को बचाना। क्योंकि मन असार की तरफ खींचता है। क्योंकि मन बिना असार के जी नही सकता। कचरा ही उसका भोजन है। अपने को रोकना असार की तरफ जाने से, सचरित्र करना। सार की तरफ अपने को ले जाना साधना है।

तो महावीर कहते हैं, वही भिक्षु है, जो श्रद्धापूर्वक देखे— जैसा महावीर जीते हैं। महावीर के लिए जीवन तो सहज है, क्योकि उन्हें सबके भीतर एक ही आत्मा का दर्शन होता है; आपको नही होता। तो महावीर का जो जीवन है, उस जीवन को गौर से देखकर, उसको आत्मीयता से अपने साथ संभालकर, सार को पहचान कर वैसे ही जीवन में बहने का जो प्रयास है. . !

प्रथम में वह प्रयास ही होगा। शुरू-शुरू में चेष्टा करनी पड़ेगी; धीरे-धीरे खुद भी दिखाई पडने लगेगा। महावीर की आँखो की फिर जरूरत न होगी। फिर भिक्षु स्वय अपनी यात्रा पर चल पड़ेगा।

महावीर के पास दस हजार भिक्षुओं का समूह था। जैसे-जैसे कोई भिक्षु पक जाता था, वैसे-वैसे महावीर उससे कह देते कि अब तू, जो तुझे मिला है, उसे बाटने निकल जा। अब मेरे पास होने की जरूरत नहीं है। अब मेरे सहारे की कोई आवश्यकता नहीं है।

ठीक वैसे ही, जैसे छोटे बच्चे को माँ-बाप चलाते है, तो मां हाथ पकड़ लेती है। यह कोई जीवन भर का उपक्रम नही है कि मां जीवन भर हाथ पकड़े रहे। कुछ मां नही छोड़ती हैं। वे दुष्ट है, खतरनाक हैं; वो बच्चे की जान ले लेती है। कुछ बाप चाहते है कि लड़के का हाथ सदा ही पकड़े रहें। वे सदा चाहते हैं कि वे ही लड़के को चलाते रहें। वे बाप नहीं हैं, वे दुश्मन हैं।

लेकिन पहले दिन जब बच्चा खड़ा होता है, तो मां या बाप उसका हाथ अपने हाथ में ले लेते हैं— भलीभांति जानते हुए कि बच्चे के पैर खुद ही थोड़े दिनों में चलने में समर्थ हो जायेंगे — समर्थ हैं; लेकिन अभी बच्चे को आत्मश्रद्धा नहीं है; अभी बच्चे को भरोसा नहीं है कि मैं चल पाऊँगा। वह अभी डरता है। वह कभी चला नही है। उसे चलने का कोई अनुभव नहीं है। वह भयभीत

होता है। इस भय के कारण, कहीं वो ऐसा न हो कि घसीटता ही रहे और चले न, उसका भय भर कम करना है।

श्रद्धा से पैरों में चलने की ताकत नहीं आयेगी। सिर्फ बाप हाथ पकड़े है तो लड़का शक्तिपूर्वक खड़ा हो जायेगा, क्योंकि वह सोचेगा कि जब बाप हाथ पकड़े है तो मैं निश्चित हूँ, गिरूँगा तो वह बचायेगा। और एक बार उसके पैर चलने लगें, बहुत जल्दी उसे अनुभव हो जाएगा कि बाप का हाथ मुझे नहीं चला रहा है, मेरे पैर चला रहे हैं। फिर लड़का खुद ही अपने हाथ को अलग करना चाहेगा, क्योंकि खुद पैरों पर खड़े होने का आनन्द ही और है।

लेकिन सद्‌गुरु चाहता ही है कि जल्दी से जल्दी वह अपना हाथ छुड़ा ले। इसलिए सद्‌गुरु पूरी कोशिश करता है कि शिष्य का हाथ छोड़ दे। असद्‌गुरु शिष्य का हाथ जोर से पकड़ लेता है, क्योंकि शिष्य चले, इसमें उसका रस नहीं है। शिष्य उसपर निर्भर रहे, इसमें उसका रस है।

इसलिए मां-बाप बन जाना बहुत आसान है, सच में मातृत्व और पितृत्व पाना बहुत कठिन है; क्योंकि मां-बाप तो पशु भी बन जाते हैं। उसमें कुछ बहुत बड़े गुण की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर कब बच्चे को चलते वक्त छोड़ देना है, कब उसको अपने पैरों पर धक्का दे देना है, कब उसको मुक्त कर देना है निर्भरता से, इस कला को जानने का नाम ही मातृत्व और पितृत्व है।

ठीक पिता वही है, जो जल्दी से जल्दी बच्चे को स्वतन्त्र कर दे, मुक्त कर दे; उस जगह खड़ा कर दे, जहाँ वह खुद चल सकता है। लेकिन हमें भी मजा आता है कि कोई हम पर निर्भर हो। क्योंकि कोई निर्भर हो तो हमको लगता है कि हम भी कुछ हैं। मां-बाप को दुख होता है, जब बच्चा उनसे मुक्त होता है। मा पीड़ा पाती है, जब बच्चा अपने पैरों पर चलने लगता है।

उसे पता नहीं है, साफ नहीं है। पहले तो वह बहुत खुश होती है कि बच्चा अपने पैरों पर चल रहा है। लेकिन उसे पता नहीं है। क्योंकि यह पैरों पर चलना तो प्राथमिक घटना है। अभी आगे और बहुत आयामों में बच्चा अपने पैरों पर चलेगा। कल तक वह अपनी मां की गोद में बैठ जाता था छिपके; जल्दी ही वह शर्म अनुभव करने लगेगा; वह मा की गोद में नहीं बैठना चाहेगा। वह मां के साथ सोता था रात; जल्दी ही वह अपना अलग बिस्तर मांग करेगा कि वह अलग सोना चाहता है। तब मां को पीड़ा शुरू हो जाएगी। इस जगत में मां के अतिरिक्त कोई भी स्त्री उसके लिए मूल्यवान नहीं थी, लेकिन शीघ्र ही कोई स्त्री उसके लिए मां से ज्यादा मूल्यवान हो जायेगी। मां की तरफ पीठ हो गयी। मां दिक्कत देनी शुरू करेगी।

सास-बहुएँ जो लड़ रही हैं, उसके पीछे ये मां की झंझट है। वो बेटा, जो उसका एकमात्र प्रेमी था, वो अचानक एक दूसरी स्त्री ने उसे छीन लिया। तो बहू सास को निरन्तर ही दुश्मन की तरह मालूम पड़ती है। वह कितना ही अपने को समझाये, उसे लगता है, उसका बेटा छीन लिया गया।

यह मां ठीक मां नहीं है। इसे मां होने की कला का पता नहीं है। इसे आनन्दित होना चाहिए कि बेटा अब पूरी तरह मुक्त हो गया; पूरी तरह गर्भ के बाहर हो गया। अब दूसरी स्त्री महत्त्वपूर्ण हो गयी। बेटा अब स्वयं एक यूनिट, एक इकाई बन गया। अब वह खुद परिवार बना सकता है। मां से जुड़ा हुआ, उसके पल्ले को पकड़े हुए जो बेटा है, वह यूनिट नहीं है।

शिष्य जब तक गुरु न हो जाए, तब तक गुरु को चैन नहीं है; क्योंकि जब तक वह गुरु न हो जाए, तब तक धर्म उसके आस-पास फैल नहीं सकता, तब तक उसका अपना परिवार निर्मित नहीं हो सकता। तो गुरु चाहेगा कि जल्दी शिष्य श्रद्धा से मुक्त हो। लेकिन श्रद्धा से वे ही मुक्त हो सकते हैं, जिन्होंने श्रद्धा की है। आप यह मत सोचना कि हम पहले से ही मुक्त हैं, इस झंझट में ही क्यों पड़ना कि पहले श्रद्धा में पड़ो और फिर मुक्त हो जाओ। जब मुक्त ही होना है, तो श्रद्धा ही क्यों करूं? तो आप श्रद्धा से कभी मुक्त न हो पायेंगे।

ऐसा हो रहा है। जे. कृष्णमूर्ति को सुनने वालों को ऐसी भ्रान्ति पैदा होती है। जे. कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, बिलकुल ठीक कह रहे हैं। वही गुरु का काम है कि वह व्यक्ति को श्रद्धा से मुक्त करे। लेकिन एक पहलू खोया हुआ है। और सुनने वाला बहुत प्रसन्न हो रहा है कि मैं किसी पर भी श्रद्धा नहीं करता; मैं ठीक उसी अवस्था में पहुँच गया हूँ, जिसकी कृष्णमूर्ति बात कर रहे हैं।

महावीर और कृष्णमूर्ति की, दोनों की बात अगर आपके जीवन में मिल जाए, तो ही आप पूरे हो पायेंगे। महावीर प्राथमिक बात कह रहे हैं, क्योंकि प्रथम से ही शुरू करना है। कृष्णमूर्ति अन्तिम बात कह रहे है, जहाँ पूरा करना है। वो कहना ठीक है। लेकिन जिनसे वे कह रहे हैं, उनमें अक्सर गलत लोग हैं। उनमें वे ही लोग हैं, जो श्रद्धा करने में असमर्थ हो गये हैं। जिनकी श्रद्धा बिलकुल सूख गयी है। जो नपुंसक है श्रद्धा की दृष्टि से, इम्पॅटॅन्ट हैं। जिनमें कोई सम्भावना नहीं है। जो अपने को समर्पित कर ही नहीं सकते—वे कृष्णमूर्ति को सुनकर प्रसन्न होते हैं। वे कहते है : तब हमारे लिए भी मार्ग है। कोई चिन्ता की बात नहीं। किसी को गुरु बनाने की जरूरत नहीं, अपने ही पैरों पर चलना है।

ये वे ही छोटे बच्चे है, जो अभी पालने में पड़े हैं, और जिनको कोई समझा दे कि बाप का हाथ मत पकड़ना, क्योंकि हाथ पकड़ने से आदमी निर्भर हो जाता है — ये

बच्चे झूलनों में ही पड़े रह जायेंगे; और ये जिन्दगीभर घुटनो से ही सरकते रहेंगे। अतः कोई जो खड़ा है अपने पैरों पैर, और कोई जो इनसे काफी बड़ा है, जो इनको भरोसा दे सके; जिसको देखकर इनको आस्था आये और इनको लगे कि ठीक है, जब यह आदमी खड़ा है, और इतना शक्तिशाली आदमी खड़ा है, तो इसपर भरोसा करना उचित है।

बाप से ज्यादा शक्तिशाली आदमी बेटे के लिए और कोई नही होता। मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है। उसका बेटा बड़ा होने लगा। एक दिन उसने अपने बेटे को कहा कि तू इस सीढ़ी से ऊपर चढ़ जा। बेटा ऊपर चढ़ गया। वह सदा मुल्ला नसरुद्दीन की बात मानता था। बेटे के ऊपर चढ़ जाने के बाद नसरुद्दीन ने सीढ़ी अलग कर ली, और बेटे से कहा कि अब तू कूद पड़। बेटे ने कहा कि कूद पड़ूँ ? हाथ-पैर टूट जायेंगे !

नसरुद्दीन ने कहा कि मै मौजूद हूँ, तेरा पिता। मै तुझे सँभाल लूगा। कूद पड़, डर मत। लड़के ने बड़ी हिम्मत बांधी कई बार, और फिर रुक गया। उसने कहा, "लेकिन दूरी काफी है। अगर जरा चूका, तो हड्डी-पसली एक हो जायेगी।"

नसरुद्दीन ने कहा कि जब मै मौजूद हूँ, तो तू डरता क्यों है ? लडका हिम्मत करके, बाप पर भरोसा करके कूद गया। कूदते ही नसरुद्दीन दूर हो गया। लड़का नीचे गिरा, दोनों पैर लहूलुहान हो गये। उस लड़के ने कहा कि "क्या मतलब ?

नसरुद्दीन ने कहा, अपने बाप पर भी अब भरोसा मत करना। अब किसी पर भरोसा नही, अपन बाप का भी नही। अब तुझे मै स्वतन्त्र करता हूँ। अब तू अपनी बुद्धि से चल। अब बहुत हो गया।

एक दिन गुरु भी कहेगा कि कूद पड़, अब किसी पर भरोसा नही। लेकिन यह सम्भावना तभी है, जब भरोसा पैदा हुआ हो। श्रद्धा चाहिए, ताकि अन्ततः श्रद्धा से मुक्त हुआ जा सके। और जो श्रद्धा नही कर पाते, वे श्रद्धा-मुक्ति को कभी उपलब्ध नही होते। कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग श्रद्धा से कभी मुक्त नही हो सकेगे। यह बात बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी, लेकिन जिन्होंने श्रद्धा ही नही की, वहाँ उनके पास मुक्त होने को भी कुछ नही है। महावीर पर श्रद्धा करने वाला मुक्त हो सकेगा, क्योंकि मुक्त होना श्रद्धा के भीतर ही छिपा है।

'जो सम्यग्दर्शी है; जो कर्तव्य-विमूढ़ नही है; जो ज्ञान, तप और संयम का दृढ़ श्रद्धालु है; जो मन, वचन, और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है; जो तप द्वारा पूर्व-कृत पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है; वही भिक्षु है।'

'जो सम्यग्दर्शी है'– यह शब्द महावीर को बहुत प्रिय है। यह शब्द है भी

बड़ा मूल्यवान, राइट विज़न, सम्यक्‌दर्शन। जैसे ठीक-ठीक देखने की कला आ गयी। जिसकी आँखों पर से सारे पर्दे और धारणाएँ अलग हो गयीं। जिसकी आँखें नग्न और शुद्ध हो गयी; और जो देखता है तो देखते वक्त अपने आरोपण नहीं करता— उसका नाम है 'सम्यक्‌दृष्टि'।

हम जब भी देखते हैं तो हमारा आरोपण हो जाता है। हम जो देखते है उसमें हम अपने को मिश्रित कर लेते है। हमारा देखना शुद्ध नही है। जब आप किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते है, तो आपको स्त्री सुन्दर दिखाई पड़ती है। मनस्विद से पूछें, वह कहता है कुछ और। आप कहते है, यह स्त्री सुन्दर है, इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया; और मनस्विद कहता है, आप प्रेम में पड़ गये, इसलिए यह स्त्री सुन्दर दिखाई पड़ रही है। क्योंकि यह स्त्री और किसी को सुन्दर दिखाई नहीं पड रही है। यह अगर सुन्दर होती— ऑब्जेक्टिविलि, तो सारा जगत इसके प्रेम में कभी का पड़ गया होता; आपको मौका भी नहीं मिलता। इतने दिन तक यह प्रतीक्षा करती रही, कोई प्रेम में नही पड़ा। आपकी राह देखती रही! उसका कारण है, क्योंकि जो प्रेम में पड़ जाए, उसी को यह सुन्दर दिखाई पड़ेगी।

सौन्दर्य प्रेम का प्रोजेक्शन है। आप अपने प्रेम को आरोपित करते है किसी चेहरे पर, किसी शरीर पर। और ऐसा मत समझना कि यह स्त्री सदा सुन्दर रहेगी, हो सकता है, कल ही यह असुन्दर हो जाए। यह कल वही रहेगी, जो आज है। लेकिन तुम्हारा प्रेम अगर तिरोहित हो गया तो यह असुन्दर हो जायेगी।

हम सभी चीजें आरोपित कर रहे है। जहाँ आपको साधुता दिखाई पड़ती है, वह भी आपका आरोपण है। यह बड़े मजे की बात है। अगर मुसलमान साधु जैन के सामने खड़ा हो, तो जैन को वह साधु नही मालूम होता। जैन साधु हिन्दू को साधु नही मालूम होता। हिन्दू साधु, बौद्धों को साधु नहीं मालूम होता। बौद्ध भिक्षु, बौद्ध साधु जैनियों को साधु नही मालूम होता। निश्चित ही, साधुता वहाँ नहीं है। साधुता कुछ हमारी धारणा में है, जो हम आरोपित करते है।

अब जैसे देखें बौद्ध साधु मांसाहार कर लेता है; शर्त एक ही है कि मरे हुए जानवर का मांस हो— अपने-आप मर गये जानवर का मांस हो। बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। क्योंकि बुद्ध ने कहा, मारने में हिंसा है। अगर कोई किसी गाय को मार कर खाता है, तो हिंसा कर रहा है। लेकिन गाय अपने से मर गयी तब इसके मांस को खाने में क्या हिंसा है? बात साफ है। लेकिन बुद्ध का भिक्षु जब मांस खाता है तो जैन मुनि तो सोच ही नही सकता कि यह आदमी . . . और साधु! इससे ज्यादा असाधु और क्या होगा; मांसाहार कर रहा है।" बौद्ध भिक्षु कहता है, गाय मर गयी, और उसका मांस न खाओ तो इतने भोजन को तुम व्यर्थ ही

नष्ट कर रहे हो। यह किसी के काम आ सकता था। इस भोजन को नष्ट करना हिंसा है।

बड़ा कठिन है। तो हमारी धारणा पर निर्भर है कि हमारी धारणा क्या है। अगर गान्धी जी के आश्रम में जाएँ तो चाय पीना वर्जित है। सिर्फ राजगोपालाचार्य के लिए विशेष सुविधा गान्धी जी करते थे। उनके लिए छूट थी, क्योंकि समधी थे ; इसलिए छूट रखनी जरूरी भी थी। वे भर चाय पीते थे। चाय पाप है।

लेकिन सारी दुनिया के बौद्ध भिक्षु चाय पीते हैं; ध्यान करने के पहले चाय पीते हैं, फिर ध्यान करते हैं। क्योंकी वे कहते हैं, चाय सजग करती है, और सजगता ध्यान में ले जाने में सहयोगी है। बात में थोड़ी जान मालूम पड़ती है, क्योंकि चाय थोड़ा सजग तो करती ही है ; शरीर को थोड़ा ताजा तो करती ही है। उसमें निकोटिन होता है। निकोटिन खून में दौड़ कर थोड़ी गति बढ़ाता है। खून में थोड़ी गति आती है; आदमी थोड़ा ताजा हो जाता है।

बौद्ध भिक्षु पहले उठ कर चाय पीयेगा, फिर ध्यान में लगेगा। . . . क्यो? वह कहता है, सुस्ती के साथ ध्यान करना ठीक नही है, ताजगी के साथ करना ठीक है। तो चाय धर्म का हिस्सा है। और जापान में हर घर में चाय का कमरा अलग है— सम्पन्न घर में। और चाय के कमरे की वहाँ वही प्रतिष्ठा है, जो मन्दिर की होती है। क्योंकि जो जगाये, वही मन्दिर है।

अब बड़ा मुश्किल है। और जापानी घर में, कुलीन, सुसम्पन्न घर में, सुबह चाय का वक्त, या सांझ चाय का वक्त प्रार्थना का समय है। और जिस ढग से जापानी चाय पीते हैं, वह निश्चित ही प्रार्थनापूर्ण है। वे शान्तिपूर्ण ढंग से चाय के कमरे में बैठते हैं। वहाँ कोई बातचीत नही करेगा, क्योंकि बातचीत व्याघात। सब लोग मौन होकर भीतर आयेंगे। गृहिणी खास तरह के कपडे पहने होगी, जो उसी कमरे में पहनने के लिए बनाये गये है – बिलकुल ढीले, साधु-वेश के। फिर वह चाय बनाना शुरू करेगी। और चाय बनाना पूरा एक रिचुअल है – जैसे पूजा कर रही हो। एक-एक चीज को इतनी व्यवस्था से करेगी, और सारे लोग बैठकर निरीक्षण करेंगे। केतली उबलने लगेगी। चाय की धीमी-धीमी आवाज आने लगेगी। और सब शान्त बैठकर उस चाय की आवाज को सुन रहे हैं।

यह भी ध्यान का हिस्सा हो गया। फिर वो चाय जब दी आयेगी तो उसको बड़े पवित्र भाव से ग्रहण करना है; वह पूजा है। फिर उस चाय की चुस्कियाँ लेते वक्त ध्यान रखना है कि सजगता बढ़े और चाय के बाद ध्यान में उतर जाना है।

अब बड़ा मुश्किल है। किसको साधु कहिये, किसको असाधु कहिये ? मुसलमान फकीर को देखकर हम मान नहीं सकते कि साधु है । मुसलमान फ़कीर संन्यासी को देखकर नहीं मान सकता कि साधु है ।

मुहम्मद ने नौ विवाह किये — नौ ! हम तो एक के लिए भी महावीर को आज्ञा नहीं दे सकते । महावीर ने विवाह किया है, ऐसा लगता है । लेकिन उनका एक सम्प्रदाय, दिगम्बर, मानता है कि नहीं किया । क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदाय को यह बात ही बेहूदी लगती है कि महावीर और विवाह करें! यह बात ही बेहूदी है। किया भी हो— लगता है कि किया है, क्योंकि उनकी लड़की के नाम का उल्लेख है; उनके दामाद के नाम का उल्लेख है । अगर महावीर ने विवाह न किया होता तो उनकी लड़की के नाम का और उनके दामाद के नाम का उल्लेख कहाँ से आ जाता ? और कौन फिक्र करता है कि झूठ उनका विवाह करवाओ ! लेकिन मानने-वालो को जरा पीड़ा होनी क्योंकि बड़ी सख्ती से उसने ब्रह्मचर्य की धारणा को पकड़ा है, और अपनी धारणा को वो महावीर पर आरोपित करता है— उनको विवाह नही करने देता ।

मुहम्मद नौ विवाह करते हैं, तो दिगबर जैन सोच भी नहीं सकता कि मुहम्मद में कुछ भी हो सकता है । वह सोचेगा, उससे तो हम ही बेहतर कम से कम एक ही विवाह किया है । लेकिन अगर मुसलमान से पूछें, जिसने मुहम्मद को प्रेम किया है और श्रद्धा की है, तो वह कहेगा कि मुहम्मद की यह साधुता है ।

बड़ा मुश्किल है ! क्योंकि मुहम्मद के वक्त में अरब में स्त्रियों की संख्या चार-गुनी ज्यादा थी पुरुषों से । क्योंकि पुरुष युद्ध में जाते, सैनिक बनते, कट जाते, मर जाते; स्त्रियाँ बढ़ती चली जाती । तो सारा मुल्क व्यभिचार में डूबा था । जहाँ एक पुरुष हो, चार स्त्रियाँ हो— सोचे, वहाँ क्या हालत होगी । सारा मुल्क व्यभिचार में था ।

तो मुहम्मद ने नियम बनाया कुरान में कि चार विवाह प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है, ताकि उस व्यभिचार से छुटकारा हो । और मुहम्मद से जिस स्त्री ने भी निवेदन किया— विधवाएँ, गरीब स्त्रियाँ, उन्होंने सबसे विवाह कर लिया — नौ विवाह किये, और इन सभी नौ स्त्रियों को मुहम्मद ध्यान, पूजा और प्रार्थना की तरफ ले गए ।

आपकी कितनी स्त्रियाँ हैं, यह सवाल नही है । आप उनको कहाँ ले जा रहे हैं, यह सवाल है । अपनी स्त्री को आप अपने साथ नर्क ले जाएंगे । वह भी

साथ दे रही है। दोनों का कोऑपरेशन है। दोनों नर्क की यात्रा कर रहे हैं। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं; नर्क की तरफ जा रहे हैं।

मुहम्मद उन नौ स्त्रियों को, जितनी ऊँचाई तक ले जाया जा सकता है, ले गये। और मुहम्मद का विवाह निश्चित ही, आप जैसा विवाह करते हैं, वैसा विवाह नहीं है, क्योंकि मुहम्मद की उम्र थी चौबीस वर्ष, उन्होंने जब पहला विवाह किया, और स्त्री की उम्र थी चालीस वर्ष। चौबीस वर्ष के जवान लड़के से पूछिये कि वह चालीस वर्ष की बूढ़ी स्त्री से शादी करने को तैयार है? चालीस वर्ष मुहम्मद के जमाने के अब के नहीं है, क्योंकि अब तो चालीस वर्ष में भी स्त्री उतनी बूढ़ी नहीं हो पाती। मुहम्मद के वक्त में तो चालीस वर्ष खातमा था। क्योंकि तब अठारह या बीस साल औसत उम्र थी। चालीस साल तो आखिरी बात थी। चालीस साल की स्त्री से जवान लड़के का विवाह करना साधुता थी।

बड़ा मुश्किल है। हाँ, पुरुष अपने से छोटी उम्र की लड़की से शादी करना एकदम आसान पाता है; चाहता ही है कि करे, लेकिन अपने से बड़ी उम्र की लड़की से शादी करना बड़ा उलटा मालूम होता है। लेकिन मुहम्मद ने किया।

निश्चित ही, यह विवाह साधारण कामुक-यौन सम्बन्ध नहीं था। और जिस पहली स्त्री से उन्होंने विवाह किया, उस स्त्री ने सबूत भी दिया; क्योंकि वही स्त्री पहली मुसलमान होनेवाली थी— पहली। जिस दिन इलहाम हुआ मुहम्मद को, जिस दिन कुरान की पहली आयत उन पर उतरी, तो वे इतने घबड़ा गये, क्योंकि वे बिलकुल गैर-पढ़े-लिखे थे, और बहुत सीधे-साधे आदमी थे। उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि परमात्मा की कोई शक्ति मुझे अपना वाहन चुन सकती है। वे इतने घबड़ा गये कि उनके हाथ-पैर कंपने लगे। वे घर आकर कम्बल ओढ़कर सो गये। उनकी पत्नी ने कहा कि तुम्हें हुआ क्या? तुम बिलकुल ठीक गये थे। उन्होंने कहा कि पूछ ही मत। तीन दिन तू मुझसे बात ही मत कर। मैं बहुत घबड़ा गया हूँ।

तीन दिन में वे आश्वस्त हुए। हिम्मत उन्होंने जुटायी कि मैं कहूँ। क्योंकि उन्हें लगा कि 'लोग क्या कहेंगे' कि एक गँवार, अपढ़ मुहम्मद ये पैगम्बर हो गया; लोग कहेंगे कि अहंकारी हो गया। मैं सीधा-साधा आदमी, पैगम्बर होने की कभी सोची भी नहीं।

तीन दिन बाद उन्होंने अपनी पत्नी को डरते हुए कहा कि तू किसी से कहना मत। मेरे भीतर कुछ घटा है। और मैं वही नहीं रहा, जो मैं था। और कोई आवाज़ मुझ पर उतरी है, जो अनन्त की मालूम पड़ती है, परमात्मा की; मुझे पता

नहीं है, किसकी है। लेकिन आवाज बलशाली है, और उसने मुझे पूरी तरह तोड़ डाला है और बदल दिया है। तू किसी को कहना मत, खादीजा।

खादीजा को श्रद्धा आ गयी मुहम्मद की आँखों में देखकर– और उसने कहा कि तुम मुझे दीक्षित करो। खादीजा पहली मुसलमान थी। उसने भरोसा किया। यह प्रेम, यह विवाह साधारण यौन तल पर नही था। यह प्रेम-विवाह, सच में पूछा जाए, तो गुरु-शिष्य के तल पर ही था। यह श्रद्धा का ही एक सम्बन्ध था।

पर मुश्किल है। हम सोच नहीं सकते; क्योंकि अपनी धारणा हम आरोपित करते हैं। हमारी अपनी साधु की धारणा है, वह हम आरोपित करते है। जब कोई आदमी उस धारणा में फिट बैठ जाता है, ठीक बैठ जाता है, तो हम कहते हैं 'साधु; नही बैठता, तो 'असाधु'।

महावीर सम्यग्दर्शी उसको कहते है, जो अपनी धारणाएँ दूसरों पर नही लादता। जो दूसरो को देखता है, जैसे वे है– निष्पक्ष; हर चीज को वैसा ही देखता है, जैसी वह है। जो अपनी तरफ से कोई ताल-मेल नही बिठाता। जो अपने को चीजों में नही डालता।

बडी हैरानी होगी, आपकी जिन्दगी बदल जाए, अगर आप सम्यग्दर्शी हो जाएँ। क्योकि तब आपके हाथ में कोहिनूर कोई रख दे, तो आप वही देखेंगे जो है; कोहिनूर का इतिहास नही पढेंगे। आप समझ भी नहीं पायेंगे कि कोई सैकड़ों लोग मर गये हैं इसके पीछे– इस पत्थर के पीछे। आप कहेंगे, यह पत्थर ही है।

एक छोटे बच्चे को कोहिनूर दे दें, वह थोड़ी देर में खेल-खाल कर, फेंक कर भूल जायेगा; क्योंकि उसके पास कोई प्रॉजेक्शॅन नही है अपना डालने को। लेकिन आपके हाथ में कोहिनूर आ जाए तो आप दीवाने हो जाएँगे। फिर आप चैन से नही रह सकते; फिर रात सो नही सकते। फिर आप पागल हो जाएँगे। वह पागलपन कौन पैदा कर रहा है? कोहिनूर पैदा कर रहा है? आप कुछ धारणा कोहिनूर पर डाल रहे है; नहीं तो कोहिनूर पत्थर है। और अगर पत्थर हँसते हैं, तो जरूर हँसते होंगे आदमियों पर कि आदमी भी कैसे पागल है कि पत्थरों के पीछे इस बुरी तरह उलझे है!

हम अपनी धारणाएँ हर चीज में डाल रहे है, और हर चीज को हम वैसा देखते हैं, जैसा हम देखना चाहते है; वैसा नही जैसी वह है। वस्तुएँ जैसी अपने में हैं, उनको शुद्धता से देखने का नाम सम्यक्दृष्टि है। और जो व्यक्ति वस्तुओं को वैसा ही देखने लगे, जैसी वे हैं– वह मुक्त होना शुरू हो जाता है, क्योंकि

फिर उसे कोई भी नहीं बांध सकता। जिसकी दृष्टि मुक्त है, उसकी आत्मा को बाँधने का कोई उपाय नहीं है।

जो अमूढ़ है... !

मूढ़ता एक तरह की मूर्च्छा है, जिसमें हम सोये-सोये चलते हैं– जैसे होश नहीं है; क्या कर रहे है, इसका कुछ पता नही है; क्या हो रहा है, इसका कुछ पता नहीं है – किये जा रहे है। आप अपनी जिन्दगी से कभी एक दिन की छुट्टी ले लें, चौबीस घंटे की बिलकुल छुट्टी ले लें और बैठकर सोच कि आप क्या कर रहे है ? यह क्या हो रहा है ? आप कहाँ है ? आप सारी ताकत लगाये दे रहे– लेकिन कहाँ पहुँचने के लिए? कोई मजिल है ? कुछ इससे उपलब्ध होनेवाला है ? कुछ सार इससे निकलेगा ? कभी निकला है किसी को ? लेकिन दौड में इतने उलझे है कि सोचने की फुरसत कहाँ है।

मुल्ला नसरुद्दीन पैंतालीस साल तक नौकरी करता रहा। पैंतालीस साल बाद जब वह रिटायर हो गया, तो एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा कि चाय बहुत ज्यादा गर्म है, इतनी गर्म चाय मुझे बिलकुल पसन्द नही। उसकी पत्नी ने कहा "हद करते हो, नसरुद्दीन! पैंतालीस साल इससे भी ज्यादा गर्म चाय तुम पीते रहे; कभी तुमने कहा क्यों नही ?" उसने कहा, "फुरसत कहाँ थी; अब रिटायर हो गया हूँ, अब फुरसत है। अब तुझे बताता हूँ कि एक दिन भी मैं इतनी गर्म चाय नही पीना चाहता।"

आप जिन्दगी के आखिर में बैठके पायेंगे कि जो आप करना चाहते थे, वह तो किया नही, और जो करना नहीं चाहते थे, वो करते रहे। फुरसत भी नही थी कि सोच लेते। अगर आपको आज ही पता चल जाए कि कल सुबह आप समाप्त हो जायेंगे, आपकी जिन्दगी का पूरा मूल्यांकन बदल जायेगा। तत्काल आप सोचेंगे कुछ चीजें जो आपने सदा से करना चाहा और टालते रहे; और कुछ चीजें जिन्हें आप सदा करना चाहते थे, चाहेंगे कि अब बन्द कर दें – उनका अब कोई सार नहीं है।

लेकिन असलियत यही है कि अगला क्षण भरोसे का नही है। आप अगले क्षण समाप्त हो सकते हैं; कल तो बहुत दूर है, अगले क्षण आप समाप्त हो सकते है। लेकिन मूढ़ता है। एक मूर्छा है, चले जा रहे हैं। भीड़ में धक्कम-धुक्का है; और भी सब लोग जा रहे हैं, उसी में हम भी चले जा रहे हैं। अगर अकेले भी रास्ते पर होते, तो शायद थोड़े आप चौंकते। इतनी बड़ी भीड़ चली जा रही है जरूर कहीं जा रही होगी। इतने पैर, इतने हाथ, चारों तरफ लोग दबाये दे रहे हैं; सब भागम्-भाग– इतनी प्रतिस्पर्धा है कि ये जरूर कहीं पहुँच रहे होंगे। और हमें इतना भरोसा है अपने चारों तरफ की भीड़ पर, उनके शब्दों पर, उनकी

इच्छाओं, वासनाओ पर कि वे वासनाग्रस्त लोग हमें भी उन्ही वासनाओं से भर देते हैं।

नसरुद्दीन एक दफ्तर में काम करता था। एक दिन जब वह अपने ऑफिस में आया तो देखा कि उसकी टेबल पर एक तार रखा है। तो वह भागा तार में खबर थी कि यॉर मेंदर हेज़ एक्सपायॅर्ड– तुम्हारी मां चल बसी है शीघ्र पहुँचो; तो वह स्टेशन पर पहुँच गया। स्टेशन पर उसके ही दफ्तर के एक क्लर्क ने उससे आकर कहा कि क्षमा करिये, मैं आपको बहुत ढूंढ़ता रहा, आप मिले नहीं। मेरी मां मर गयी है, घर से तार आया है। आपकी टेबुल पर मैं वह तार छोड़ आया हूँ।

नसरुद्दीन ने कहा, "धत तेरे की। यही मैं सोचता था कि मेरी मां को मरे तो दस साल हो गये, तार आज क्यों आया है। लेकिन तार ने ही ऐसी हालत पैदा कर दी कि मैंने कहा, कुछ भी हो, कुछ न कुछ होगा मामला; जाना ज़रूरी है।."

अभी यहाँ कोई ज़ोर से चिल्ला दे कि आग लग गई, तो आपके हृदय की धड़कन बढ़ जायेगी, पैर तैयार हो जायेगे भागने को। फिर कोई खबर भी दे दे कि आग नही लगी, आप बैठ भी जाएँ, तो भी हृदय थोड़ी देर तक धड़कता ही रहेगा; सांस जोर से चलती ही रहेगी; पसीना थोड़ा आता ही रहेगा।

सपने तक में आप घबड़ा जाते हैं, तो जग के भी थोड़ी देर घबराये रहते हैं।

चारों तरफ की भीड़ घबड़ायी हुई है। चारों तरफ के लोग भागे जा रहे हैं अन्धों की तरह – उनमें आप भी भागे जा रहे हैं। महावीर इसको 'मूढ़ता' कहते हैं। संन्यासी तो वही है, जो इस मूढ़ता के बाहर आ जाए। वही भिक्षु है। अमूढ़ – जो जग जाये और जो ज़िन्दगी की भीड़ के धक्के में न जिये, बल्कि होशपूर्वक सोचे और जिये; देखे और जिये; निर्णय करे और चले, ऐसे ही न चलता जाए।

बेहतर है कुछ न करना, बजाये कुछ करने के जो कि मूढ़ है, जो कि अन्धा है। अच्छा है रुक जाये कुछ देर के लिए; कुछ न करें, खाली छोड़ दें और एक दफा जिंदगी को पुनर्विचार कर लें, रिकॅन्सिडॅरेशन कर लें; और एक दफा लौटकर पिछला इतिहास देख लें अपना कि क्या कर रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं– अगर सफल भी हो जायेंगे तो कहाँ पहुँचेंगे, क्या उपलब्ध हो जायेगा?

ऐसी मूढ़ता तोड़ने की जब तक कोई तैयारी न करे, तब तक उसके जीवन में सन्यास नहीं उतरता। संन्यास या भिक्षु होने की सम्भावना उतरती है मूढ़ता का सिलसिला तोड़कर अमूढ़ होने से; होश से भरन से। जो होश से भर जाता है, वह नये पाप नहीं करता। सब पाप मूढ़ता में किये जाते हैं। जो होश से भर जाता है, वह भविष्य के पापों की योजना नहीं करता, क्योंकि सभी योजनाएँ मूढ़ता में की जाती हैं। जो होश से भर जाता है, उसके होश की अग्नि उसके अतीत के किये गये पापों

को भी जलाने लगती है। लेकिन मूढ़ आदमी अभी तो पाप करता ही है, भविष्य की योजना भी बनाता है और अतीत के लिए भी दुखी रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीनने मरते वक्त जो वक्तव्य दिया था, वह याद रखने योग्य है। पुरोहित ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, अगर तुम्हें फिर से ज़िन्दगी मिले, तो तुमने जो पाप किये हैं, क्या तुम उसे फिर से करना चाहोगे ?

नसरुद्दीन ने कहा, "निश्चय ही, लेकिन ज़रा जल्दी शुरू करूँगा ! इस बार काफी देर कर दी।" पुरोहित तो समझा भी नहीं। उस पुरोहित ने कहा कि प्रार्थना करो परमात्मा से, पश्चात्ताप करो। क्या पागलपन की बात कह रहे हो ?

नसरुद्दीन ने कहा, "पश्चात्ताप मैं भी कर रहा हूँ, लेकिन उन पापो के लिए नहीं, जो मैंने किये है; बल्कि उन पापों के लिए, जो मैं नही कर पाया; नाहक चूक गया; ज़िन्दगी हाथ से निकल गयी।"

मूढ़ता अतीत में भी पाप करना चाहती है, जो कि जा चुका; जहाँ अब कुछ नहीं किया जा सकता। होशपूर्वक व्यक्ति भविष्य के पापों की योजना छोड देता है, वर्तमान के पापों से उसका हाथ अलग हो जाता है, अतीत के पाप उसके इस होश की अग्नि में गिरने लगते हैं, जलने लगते हैं; कुसंस्कार अपने आप जल जाते हैं। उनका जो प्रतिफल है, वह भोग लिया जाता है। मैंने किसी को गाली दी थी, तो मैं गाली पा लूगा; भोग लूंगा। वह दुख, वह कांटा छिदेगा, उसे मै साक्षी-भाव से सुन लूगा और समझूगा कि एक सौदा, एक संबध, एक लेन-देन पूरा हो गया। इस आदमी से अब हमारा कुछ लेना-देना न रहा। मैं ऋण से मुक्त हो गया।

अतीत धीरे-धीरे होश की अग्नि में जल जाता है। और जिस दिन न कोई अतीत का पाप पकड़ता है; न भविष्य की कोई कामना पकड़ती है; न वर्तमान में कोई पाप की मूढ़ता होती है, उस दिन व्यक्ति जहाँ होता है --वही संन्यास है, वही भिक्षु का स्वरूप है।

भिक्षु-सूत्र : २

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ५ सितंबर, १९७३

जो सहइ हु गामकंटए,
अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य ।
भय-भेरव-सद्द-सप्पहासे,
समसुह-दुक्खसहे अ जे स भिक्खू ।।

हत्थसंजए पायसंजए,
वायसंजए संजइन्दिए ।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ।।

जो कान में कांटे के समान चुभनेवाले आक्रोश-वचनो को, प्रहारों को, तथा अयोग्य उपालंभो (तिरस्कार या अपमान) को शान्तिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचण्ड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है ।

जो हाथ, पांव, वाणी और इन्द्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म-चिन्तन में रत रहता है, जो अपने आपको भली भांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जाननेवाला है, वही भिक्षु है ।

जीवन दो प्रकार का सम्भव है : एक शरीर के लिए? एक स्वयं के लिए। जो शरीर के लिए ही जीते हैं, मृत्यु के अतिरिक्त उनकी कोई और दूसरी नियति नहीं है। जो स्वयं के लिए जीना शुरू करते हैं, वे अमृत को उपलब्ध हो जाते है।

मनुष्य मृत्यु और अमृत का जोड़ है। शरीर मरणधर्मा है। शरीर मे जो छिपा है, वह अमरण-धर्मा है। अगर शरीर ही सब-कुछ हो जाए, और जीवन की आधार-शिला बन जाए, तो हम सिर्फ मरते है, जीते नही है। जब तक शरीर मे जो छिपा है– अदृश्य, चैतन्य, आत्मा परमात्मा – जो भी नाम हम उसे दें, जब तक वह हमारे जीवन का आधार नही बनता, तब तक हम वास्तविक जीवन को जानने से वंचित ही रह जाते हैं।

शरीर का जीवन इन्द्रियों का जीवन है दिखाई नही पड़ता; खुद स्मरण भी नही आता, क्योंकि हम उसमें इतने डूबे है कि देखने के लिए जितनी दूरी चाहिए, वह भी नही है ; परिप्रेक्ष्य चाहिए, फासला चाहिए, वह भी नही है।

अधिक लोग इन्द्रियों के सुख के लिए ही अपने को समर्पित करते रहते हैं। इन्द्रियो की बलिवेदी पर ही उनका जीवन नष्ट हो जाता है।

सुना है मैने, पुराने दिनो में यूनान में भोजन की टेबुल पर भोजन के साथ-साथ थाली के पास ही पक्षियों के पंख भी रखे जाते थे ताकि अगर भोजन बहुत पसन्द आया हो, तो आप पंख को उठाकर वमन कर ले गले में छुला के, और फिर से भोजन कर सकें।

सम्राट नीरो के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह दिन में कम से कम बीस बार भोजन करता था। बीस बार भोजन करने के लिए जरूरी है कि हर बार भोजन करने के बाद उलटी की जाए ताकि शरीर में भोजन न पच पाये, भूख बनी रहे। तो सम्राट नीरो के पास दो चिकित्सक सिर्फ वमन करवाने के लिए सदा रहते थे।

सिर्फ स्वाद के लिए व्यक्ति जीवित है। और उस स्वाद के लिए कष्ट भी सहने की तैयारी है। बीस दफा वमन करना, भोजन करना – तो जैसे सारा जीवन ही एक ही काम में लीन हो गया। जैसे आदमी सिर्फ एक यन्त्र है, जिसमें भोजन डालना है। और आदमी का जैसे सारा सुख स्वाद में ठहर गया।

नीरो अतिशयोक्ति मालूम पड़ता है, लेकिन हम भी बहुत भिन्न नहीं हैं। बीस बार हम भोजन न करते हों, लेकिन बीस बार आकांक्षा जरूर करते है। हमारी जो आकांक्षा है, नीरो न उसे सत्य बना लिया; वास्तविक बना लिया था, इतना ही फर्क है। लेकिन बहुत लोग है जो चौबीस घण्टे भोजन का चिन्तन कर रहे है। चिन्तन भी भोजन करने-जैसा ही है; क्योंकि चिन्तन में भी उतना ही जीवन, उतनी ही शक्ति, उतनी ही ऊर्जा नष्ट होती है।

कुछ लोग हैं जो कामवासना के लिए ही जीते रहते हैं; जैसे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि शरीर किसी भांति कामवासना का सुख ले ले; क्षणभर को डूब जाये बेहोशी में। फिर उनका चित्त चौबीस घण्टे वही सोचता है। फिर उनकी कविता हो, कि उनका उपन्यास हो, कि उनकी फिल्म हो, कि उनका संगीत हो, नृत्य हो सभी कामवासना से आपूर होता है।

अगर हम आधुनिक जीवन को ठीक से देखे, और आधुनिक मन का ठीक विश्लेषण करें, तो ऐसा लगता है जैसे आदमी ज़मीन पर सिर्फ इसलिए है, उसका शरीर सिर्फ इसलिए है कि किसी तरह कामोत्तेजना में उसको नष्ट कर लिया जाय। और यह पागलपन इतनी दूर तक प्रवेश कर जाता है कि जिन चीजों से कामवासना का कोई भी सम्बन्ध नही है, उन्हें भी हम कामवासना से ही जोड़कर चलते हैं।

अखबार देखें। विज्ञापन देखें। जिनका कोई सम्बन्ध कामवासना से नही है, उन चीजों को भी अगर बेचना हो तो उनको काम-प्रतीकों के साथ जोड़ना है। कार का क्या सम्बन्ध है कामवासना से ? लेकिन उसके पास एक सुन्दर, नग्न स्त्री को खड़ा कर दिया जाए तो कार का विज्ञापन ज्यादा प्रभावकारी हो जाता है। लोग कार को नहीं खरीदते, जैसे उस नग्न स्त्री को कार के पास खड़ा हुआ खरीद लेते हैं।

सिगरेट बेचनी हो, कि कुछ भी बेचना हो --सारी चिन्तना इस बात की है कि मनुष्य का मन शायद कामवासना से ही प्रभावित होता है, और किसी चीज से नहीं। तो जिस चीज को हम सेक्स से जोड दें, वह बिक जाती है।

करीब-करीब नब्बे प्रतिशत लोग काम भोगने में नष्ट हो जाते हैं। कुछ दस प्रतिशत ऐसे लोग भी हैं, जो काम से लड़ने में नष्ट होते हैं। उनका पूरा जीवन भोगी से ठीक विपरीत है। वे चौबीस घण्टे लड़ रहे हैं कि कामवासना मन को न पकड़ ले। लेकिन ध्यान रहे, दोनों ही कामवासना के इर्द-गिर्द घूमकर मिट जाते हैं; और दोनों की नजर कामवासना पर ही लगी रहती है।

ऐसे ही हमारी सारी इन्द्रियाँ हैं। किसी को कान का सुख है, तो वह संगीत सुन-सुनकर जीवन को व्यतीत कर रहा है। किसी को स्पर्श का सुख है, किसी को गन्ध का

सुख है– लेकिन हम कहीं न कहीं किसी इन्द्रिय के पास अपने को ठहरा लेते हैं। और जो इन्द्रिय हमारे जीवन में प्रमुख बन जाती है, वही हमारी आत्मा की हत्या का कारण हो जाती है ।

शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी कोई भी इन्द्रिय नहीं शरीर में इन्द्रियाँ है । और इन्द्रियाँ उपयोगी हो सकती हैं, लेकिन उसी के लिए, जो बुद्धिमान हैं । इन्द्रियाँ सेवक हो सकती है, सेवक होनी चाहिए यही उनका प्रयोजन है । यह शरीर भी सीढ़ी बन सकता है उस तक पहुँचने की जो अशरीरी है । और जब तक कोई व्यक्ति इस शरीर को सीढ़ी नहीं बना लेता, साधन नही बना लेता इसके पार जाने का, इससे ऊपर उठने का, तब तक वह मूढ़ है, अज्ञानी है ।

शरीर में मनुष्य है, लेकिन शरीर ही नही है; शरीर के भीतर है, निवासी है, लेकिन शरीर से भिन्न और अलग है । उस भिन्नता का अनुभव जब तक न हो, तब तक आनन्द का कोई भी पता न चलेगा । सुख का छोटा-सा अनुभव हो सकता है इन्द्रियों से, लेकिन जितना सुख आप खरीदेंगे, उतना ही दुख भी आप खरीदते चले जायेंगे । हर इन्द्रिय के साथ सुख-दुख संयुक्त मात्रा मे जुडे है । दुख कीमत है जो चुकानी पड़ती है इन्द्रिय के सुख पाने के लिए । लेकिन हम दुख चुकाने को राजी है, और इसी आशा में जीते है कि ये जो बबूले की तरह थोड़े-से सुख मिलते है, ये कभी ठहर जायेंगे । पानी के बबूले हैं, छू भी नही पाते और मिट जाते हैं । और पूरा जीवन हमारा अनुभव कहता है कि कोई सुख ठहरता नही, फिर भी न ठहरने वाले सुख के लिए हम संघर्षरत रहते हैं । और इसी संघर्ष में मृत्यु हमें पकड़ लेती है – नष्ट हो जाते हैं ।

धर्म की शुरुआत उस व्यक्ति की चेतना में होती है, जिसे यह दिखायी पडना शुरू हो जाता है कि जिनका मैं पीछा कर रहा हूँ, वे पानी के बबूले हैं; उन्हें पा भी लूं तो कुछ मिलता नही है; और पाकर बबूला टूट जाता है, और दुख लाता है; उन्हें न पा सकूं तो पीडा होती है ।

इन बबूलों को जब कोई देखता रहता है तटस्थभाव से और बह जाने देता है; न उन्हे पकड़ने की कोशिश करता है, न उनके फूट जाने से चिन्तित होता है; उनसे अपने को दूर कर लेता है – वही व्यक्ति भिक्षु है । लेकिन मरते दम तक हम बच्चों की तरह . . . . . ।

छोटे बच्चे तितलियो के पीछे दौड़ते रहते है । बूढ़े उन पर हँसते हैं कि क्या तितलियों के पीछ दौड़ रहे हो ! लेकिन बूढ़े भी तितलियों के पीछे ही दौड़ते रहते हैं । तितलियाँ बदल जाती हैं । इनकी अपनी तितलियाँ हैं । बूढ़ों की अपनी तितलियाँ हैं; बच्चों की अपनी तितलियाँ है; जवानो की अपनी तितलियाँ हैं । लेकिन सभी लोग

रोशनी में चमक गये, प्रकाश में चमक गये रंगों के पीछे दौड़ते रहते हैं—इन्द्रधनुषों के पीछे। अन्त समय तक भी यह पीछा छूटता नहीं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की काफी उम्र की हो गयी; तीस वर्ष की हो गयी, और उसे पति नही मिल रहा है। खोज की जाती है, मां-बाप भी परेशान हो गये हैं खोज-खोजकर; उम्र ढ़लती जाती है। अब सन्देह होने लगा है कि अब शायद विवाह न हो सकेगा।

तो अपनी लड़की की चिन्ता में नसरुद्दीन की पत्नी सो भी नहीं पाती। एक दिन उसे ख्याल आया कि अखबार में खबर दे दी जाए—और उसने एक बहुत सुन्दर विज्ञापन बनाया और लिखा कि एक बहुत सुन्दर युवती के लिए, जिसके पास काफी दहेज भी है, एक साहसी युवक की जरूरत है। अति साहसी युवक चाहिए, क्योंकि लड़की को पर्वतारोहण का शौक है। और जिसमें दुस्साहस हो इतनी सुन्दर और साहसी लड़की के लिए, वही केवल निवेदन करे।

तीन दिन तक मा-बेटी प्रतीक्षा करती रही कि कोई पत्र आये। तीन दिन तक कोई पत्र नहीं आया तो मा चिन्तित होने लगी। लेकिन तीसरे दिन एक पत्र आया। मां भागी हुई बाहर आयी, तब तक लड़की ने पत्र ले लिया और छिपा लिया। मां ने कहा कि पत्र मुझे देखना है, किसका पत्र आया है। लड़की ने कहा कि आप न देखें तो अच्छा है। तो मां ने कहा कि यह विचार मेरा ही था— यह विज्ञापन का विचार, तो मै जोर देती हूँ कि मै पत्र देखूंगी। और मां ज़िद पर अड़ गयी। लड़की ने कहा कि आप नही मानतीं तो देख लें।

पत्र नसरुद्दीन की तरफ से था। क्योंकि विज्ञापन में कोई पता तो था नहीं—अखबार के नाम केयर ऑफ था, नसरुद्दीन ही निवेदन कर दिया।

बूढ़ा आदमी भी वही खड़ा है, जहाँ जवान खड़े हैं। कोई भेद नहीं है। ज़रा भी भेद नहीं है। बूढ़े मन की भी वे ही कामनाएँ हैं; वे ही वासनाएँ हैं; वे ही इच्छाएँ हैं।

अन्त समय तक भी आदमी शरीर में ही जीता चला जाता है; इसीलिए मृत्यु इतनी दुखद है। मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है; हो नही सकता — क्योंकि मृत्यु तो महा-विश्राम है। मृत्यु में दुख की कोई सम्भावना ही नहीं है। लेकिन दुख होता है। कभी लाख में एकाध आदमी मृत्यु में आनन्दपूर्वक प्रवेश करता है। सभी लोग तो दुख में ही प्रविष्ट होते हैं।

लेकिन दुख का कारण मृत्यु नही है। दुख का कारण हमारा इन्द्रियो से संयोग है, जोड़ है। और दुख का कारण हमारी वासनाएँ हैं। जैसे ही मृत्यु करीब आने लगती है, हम इन्द्रियों से तोड़े जाते हैं। वह जो चेतना चिपक गयी है, जुड़ गयी है, बँध गयी

है, वह टूटती है। उस टूटने के कारण दुख प्रतीत होता है। और अब वासनाओं के होने का कोई उपाय न रहेगा। अब इन्द्रियाँ खो रही हैं। हाथ-पैर शिथिल होने लगे। शरीर टूटने लगा।

दुख है इस बात का कि कोई भी वासना तृप्त नहीं हो पायी और मौत आ गयी— दुख मृत्यु का नही है। इसलिए वे लोग, जो वासनाओं के पार हो जाते हैं, जो इन्द्रियों से अपना सम्बन्ध, इसके पहले कि मृत्यु तोड़े, स्वयं तोड़ लेते हैं— वे भिक्षु हैं। और वे आनन्द से मरते हैं।

यह बड़े मजे की बात है : जो आनन्द से मर सकता है, वही आनन्द से जी सकता है। और जो दुख से मरता है, वह दुख से ही जीयेगा। क्योंकि मृत्यु जीवन का चरम उत्कर्ष है। वह आपके सारे जीवन का निचोड़ है, सार है, इत्र है। सारे जीवन में कितने ही फूल खिले हों, सबकी सुगन्ध मृत्यु के क्षण में आ जाती है।

अगर मृत्यु महादुख है, तो पूरा जीवन दुख की एक लम्बी यात्रा थी। मृत्यु महा-सुख हो सके, यही धार्मिक व्यक्ति की खोज है। और जो विरोधाभास है, वह यह है कि जिसकी मृत्यु महासुख हो पाती है, उसके पूरे जीवन पर सुख की छाया और सुख का सगीत फैल जाता है।

आप मृत्यु से डरते हैं। डर का कारण ही यही है कि आपको अभी जीवन का कोई पता नही चला। जिस दिन आपको जीवन का पता चल जायेगा, मृत्यु मित्र है।

मृत्यु जीवन को नष्ट नही करती, केवल शरीर से जीवन को अलग करती है। जीवन को नष्ट करने का कोई आधार नहीं है मृत्यु में। मृत्यु तो केवल उस जीवन से आपको अलग कर लेती है, जिसको आपने एकमात्र जीवन बना रखा था। जैसे कोई आदमी एक दीवाल के छेद से आकाश को देख रहा हो, और उसे कुछ पता न हो कि बाहर जाकर पूरे आकाश को देखा जा सकता है, जिया जा सकता है, और हम उसे उसके छेद से छीनने लगें, खींचने लगें, तो वह चिल्लाने लगे कि मेरा आकाश मत छीनो, मैं मर जाऊँगा। यही तो मेरा जीवन है, यही तो मेरी मुक्ति है, यही तो मेरा सुख है कि सूरज उगता है, कि पक्षी उड़ते हैं, कि फूल खिलते हैं, इसी छिद्र से तो म देख पाता हूँ। वह रोयेगा, चिल्लायेगा। उसे कुछ भी पता नही कि हम उसे पूरे आकाश के नीचे ही ले जा रहे हैं, जहाँ फूलों की तरह वह खुद भी खिल सकता है; जहाँ पक्षियों की तरह वह खुद भी उड़ान भर सकता है; जहाँ सूरज की तरह वह भी रोशन हो सकता है। लेकिन वह अपने छिद्र को ही आकाश समझ रहा है। और जो सदा छिद्र के पास ही बैठा रहा हो, उसे यह भ्रान्ति होनी स्वाभाविक है।

हमारी इन्द्रियाँ जीवन की तरफ छोटे-छोटे छेद हैं। हमारी आँख क्या है? वह जो भीतर छिपा है, उसके लिए एक छोटा-सा छेद है शरीर में, जिससे हम बाहर देख पाते हैं। हमारा कान क्या है? एक छोटा-सा छेद है, जिससे बाहर की ध्वनि भीतर आ पाती है। हमारी इन्द्रियाँ छिद्र हैं, उन छिद्रों को ही हम जीवन समझ लिये है।

मृत्यु हमें छिद्रों से अलग करती है। हम दुखी होते हैं, क्योंकि हमारा सब कुछ छीना जा रहा है। कुछ भी छीना नही जा रहा है। अगर हम भीतर के निवासी को पहचान ले, तो मृत्यु हमें केवल क्षुद्रता से अलग कर रही है। इसलिए जो व्यक्ति भीतर के निवासी को पहचानने लगता है, उसकी मृत्यु मोक्ष हो जाती है। हमारा जीवन भी मृत्यु-जैसा है, उसकी मृत्यु भी मुक्ति बन जाती है।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों से बात कर रहा है और शिकार की अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाएँ और अनुभूतियाँ सुना रहा है। एक जगह जाकर तो बात बिलकुल आखिरी हद पर पहुँच गयी। उसने कहा, "मैं अफ्रीका गया था, और सिर्फ शिकार के लिए गया था। चाँदनी रात थी। तो बन्दूक बिना लिये झोपडे के बाहर घूमने निकल गया। एक भयंकर सिंह अचानक एक वृक्ष के नीचे आ गया। दस फीट की दूरी रही होगी. . . ।"

मित्र भी सास रोक लिये।

"बन्दूक हाथ में नहीं है" नसरुद्दीन ने कहा, "सिंह दस कदम की दूरी पर तैयार खड़ा है।"

एक मित्र ने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

नसरुद्दीन ने कहानी को छोटा करने के लिहाज से कहा, "सिंह ने हमला किया और मेरा खात्मा कर दिया।" उस मित्र ने कहा, "नसरुद्दीन, डू यू मीन दि लायन किल्ड यू? बॅट यू आर अॅलाइव, सिटिंग जस्ट बिफोर मी— और तुम भलीभांति जिंदा हो। मतलब तुम्हारा क्या है, उस सिंह ने तुम्हें खतम कर दिया?"

नसरुद्दीन ने कहा, "हा, यू कॉल दिस बीइंग अलाइव— यह मेरी जिंदगी को तुम जिंदगी कहते हो?"

जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, उसे हम भी जिंदगी कह नही सकते। भला सिंह ने आपको खत्म किया हो या न किया हो, आपने खुद ही अपने को खत्म कर लिया है। आपका होना राख-जैसा है— अंगार-जैसा नहीं है; बुझे-बुझे— है किसी तरह— अगर कोई जिंदगी के जीने का न्यूनतम ढंग हो, मिनिमम पर— जैसे दिया जलता

है आखिरी वक्त में जब तेल चुक गया है; बाती ही जलती है, तेल तो चुक गया है। तो वैसा, जैसा पीला-सा प्रकाश उस आखिरी दिये में होता है, हमारा जीवन है।

जर्मनी की एक बहुत क्रान्तिकारी महिला हुई, रोजा लुक्सेम्बर। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं ऐसे जीना चाहती हूँ, जैसे कोई मशाल को दोनों तरफ से जला दे; चाहे एक क्षण को, मगर भभकके जीना चाहती हूँ— मैक्सिमम; वह जो पराकाष्ठा है जीवन की, जो तीव्रता है, इन्टेन्सिटी है, उस पर जीना चाहती हूँ ताकि मुझे जीवन का दर्शन हो जाए। यह जो न्यूनतम पर जीना है, इससे तो सिर्फ राख ही राख का स्वाद आता है।

आप अपनी जबान को टटोले — जिन्दगी राख का एक स्वाद हो गयी है, जहाँ कुछ होता नहीं लगता; घसीटते-से मालूम होते हैं। नसरुद्दीन ठीक ही कह रहा है कि तुम इसे जिन्दगी कहते हो?

पर यह राख कैसे जिन्दगी हो गयी? हर बच्चा अंगारे की तरह पैदा होता है। जीवन प्रगाढ़ता से, घनता से उसमें चमकता है। हर बच्चा पूरी क्षमता लेकर पैदा होता है कि जीवन का आखिरी और गहरे से गहरा स्वाद ले ले। लेकिन कहाँ खो जाता है वह सब, और आखिरी क्षण हम क्यों बुझे-बुझे मर जाते हैं? और इसे हम जीवन की प्रगति कहते हैं!

यह तो ह्रास है। यह तो पतन है। बच्चे कहीं ज्यादा जीवित होते हैं, बजाय बूढ़ों के। होना उलटा चाहिए— अगर आदमी ठीक-ठीक जिया हो, जिसको महावीर सम्यक् जीवन कहते हैं; अगर ठीक-ठीक जिया हो तो बुढ़ापे में जीवन अपने पूरे निखार पर होगा; क्योंकि इतना अनुभव, इतनी अग्नि, इतने-इतने जीवन के पथ, इतने प्रयोग जीवन को और भी साफ-सुथरा कर गये होंगे; कुन्दन की तरह निखार गये होंगे। बूढ़ा तो बिलकुल शुद्ध हो जायेगा। लेकिन बूढ़ा तो बिलकुल मरने के पहले मर चुका होता है।

हम सब बुढ़ापे से भयभीत हैं। जीवन में कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह बुनियादी भूल यह है कि जहाँ जीवन का स्रोत है, वहाँ हम जीवन को नहीं खोजते; और जहाँ जीवन के अनुभव के छिद्र हैं, वहीं हम जीवन को टटोलते हैं।

इन्द्रियों में नहीं, इन्द्रियों के पीछे जो छिपा है, उसमें ही जीवन को पाया जा सकता है। लेकिन आप दो काम कर सकते हैं आसानी से : या तो इन इन्द्रियों को भोगने में लग रहें, और या जब थक जायें, परेशान हो जायें, तो इन्द्रियों से लड़ने में लग जायें। लेकिन दोनों हालत में आप चूक जायेंगे मंजिल। न तो भोगनेवाला उसे पाता है, और न लड़नेवाला उसे पाता है। सिर्फ भीतर जागनेवाला उसे पाता है।

भोगनेवाला भी इन्द्रियों से ही ऊलझा रहता है, और लड़नेवाला भी इन्द्रियों से उलझा रहता है ।

आप संसारी हों कि संन्यासी हों, कि गृहस्थ हों कि साधु हों-- आप दोनो हालत में इन्द्रियों से ही उलझते रहते हैं । आप दिन-रात स्वाद का चिन्तन करते रहते हैं, और साधु, दिन-रात स्वाद का चिन्तन न आये, इस कोशिश में लगा रहता है । लेकिन बड़ा मजा यह है कि जिसे विस्मरण करना हो, उसे विस्मरण करना असम्भव है । विस्मरण स्मरण की एक कला है, एक ढंग है । सच तो यह है कि आप किसी को स्मरण करना चाहे तो शायद भूल भी जाएँ, और किसी को विस्मरण करना चाहें तो भूल नही सकते ।

कोशिश करके देखें । किसी को भूलने की कोशिश करें और आप पायेंगे कि भूलने की हर कोशिश याद बन जाती है। क्योकि भूलने में भी याद तो करना ही पड़ता है ।

तो गृहस्थ शायद भोजन का उतना चिन्तन नहीं करता जितना साधु करता है। वह भुलाने की कोशिश में लगा है । भोगी शायद स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में उतना नही सोचता, जितना साधु सोचता है । वह भुलाने में लगा है । मगर दोनो ही घिरे हैं एक ही बीमारी से-- छिद्रों से पीड़ित हैं । और उस तरफ ध्यान की धारा नही बह रही है, जहाँ मालिक छिपा है ।

शरीर एक यन्त्र है, और बड़ा कीमती यन्त्र है । अभी तक पृथ्वी पर उतना कीमती कोई दूसरा यन्त्र नही बन सका । किसी दिन बन जाए ।

मैंने सुना है ऐसा, उन्नीसवी सदी पूरी हो गयी, बीसवी सदी भी पूरी हो गयी और इक्कीसवी सदी का अन्त आ गया । इन तीन सदियो में कम्प्यूटर का विकास होता चला गया है । तो मैंने एक घटना सुनी है कि बाइसवी सदी के प्रारम्भ मे एक इतना महान विशालकाय कम्प्यूटर यन्त्र तैयार हो गया है कि दुनिया के सारे वैज्ञानिक उसके उद्घाटन के अवसर पर इकट्ठे हुए; क्योंकि यह मनुष्य की अब तक की यान्त्रिक खोजों में सर्वाधिक श्रेष्ठतम बात थी । यह कम्प्यूटर, ऐसा कोई भी सवाल नही, जिसका जवाब न दे सकता हो । ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसको यह क्षण में हल न कर सकता हो । जिसको मनुष्य का मस्तिष्क हजारों साल में हल कर सके, उसे यह क्षण में हल कर देगा ।

स्वभावतः, सारी दुनिया के वैज्ञानिक इकट्ठे हुए । और उद्घाटन किया जाना था किसी सवाल को पूछकर; और दो हजार वैज्ञानिक सोचने लगे कि क्या सवाल पूछें । सभी सवाल छोटे मालूम पड़ने लगे, क्योंकि वह क्षण में जवाब देगा । कोई ऐसा सवाल पूछें कि यह यन्त्र भी थोड़ी देर को चिन्ता में पड़ जाए । लेकिन कोई सवाल

ऐसा नहीं सूझ रहा था क्योंकि वैज्ञानिकों को भी पता था कि ऐसा कोई सवाल नहीं जिसे यह यन्त्र जवाब न दे दे। और तभी बुहारी लगानेवाले एक आदमी ने, जो ऊब गया था और परेशान हो गया था प्रतीक्षा करते-करते कि कब पूछा जाए... कब पूछा जाए... और देर होती जाती थी, तो उसने जाकर यन्त्र के सामने पूछा, "इज देयर ए गॉड– क्या ईश्वर है ?"

यन्त्र चल पड़ा। बल्ब जले-बुझे, खटपट हुई, भीतर कुछ सरकन हुई और भीतर से आवाज आयी, "नाउ देयर इज।" यह यंत्र कह रहा है कि नाउ, अब जब कि मै हूँ— नाउ देयर इज !

वैज्ञानिक बहुत परेशान हुए कि 'ईश्वर अब है,' उन्होंने पूछा कि क्या मतलब ? तो उस यन्त्र ने कहा कि मेरे पहले कोई ईश्वर नही था।

आदमी का यन्त्र अभी सर्वाधिक श्रेष्ठतम है। लेकिन यन्त्र भी बाइसवीं सदी में यह अनुभव कर सकता है कि मैं ईश्वर हूँ। अगर प्रतिभा इतनी विकसित हो जाए तो उसके भीतर भी प्राणो का सचार ही जाए। और आप उस यन्त्र में न मालूम कितने जन्मो से जी रहे है, जहाँ प्रतिभा का संचार है। लेकिन आपको अभी अनुभव नही हो पाया कि ईश्वर है।

और लोग पूछते ही चले जाते है कि ईश्वर कहाँ हैं ? और ईश्वर उनके भीतर छिपा है। जो पूछ रहा है, वही ईश्वर है– वही चैतन्य की धारा। लेकिन उस तरफ हमारी नजर नही। हमारी धारा बाहर की तरफ बहती है दूसरों की तरफ बहती है, अपनी तरफ नही बहती। जब धारा अपनी तरफ बहने लगती है, तो संन्यास फलित होता है। महावीर के सूत्र को अब हम समझें। इस सूत्र में बड़ी सरलता से बहुत-सी कीमत की बातें कही गयी हैं।

'जो कान में कांटे के समान चुभनेवाले आक्रोश-वचनो को, प्रहारों को, अयोग्य उपालंभों— तिरस्कार या अपमान को शान्तिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचण्ड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।'

सब शब्द सीधे-सीधे हैं, समझ में आते हैं। लेकिन उनके भीतर बहुत कुछ छिपा है, जो एकदम से ख्याल में नही आता।

आमतौर से यह समझा जाता है कि जिसको हम गाली दें, अपमान करें, वह अगर शान्ति से सह ले, तो बड़ा शान्त आदमी है; अच्छा आदमी है। इतनी ही बात नहीं है। इतनी बात तो स्वार्थी आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो चालाक

आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो जिसको थोड़ी-सी बुद्धि है, जो जीवन में व्यर्थ के उपद्रव नहीं खड़े करना चाहता है, वह भी कर सकता है।

महावीर इतने पर समाप्त नहीं हो रहे हैं। महावीर का यह कहना कि बाहर से अगर कांटों की तरह चुभनेवाले वचन भी कानों में पड़ें; आग जला देनेवाले वचन आस-पास आ जाएँ; अपमान और तिरस्कार फेंका जाए, जलते हुए तीर की तरह छाती में चुभ जाए, तो भी शान्त रहना। शान्त रहने का यहाँ प्रयोजन शान्ति नहीं है। शान्त रहने का यहाँ प्रयोजन है कि दूसरे को मूल्य मत देना।

हम उसी मात्रा में मूल्य देते हैं वचनों को, जितना हम दूसरे को मूल्य देते हैं। इसे थोड़ा समझें। अगर आपका मित्र गाली दे तो ज्यादा अखरेगा। शत्रु गाली दे, उतना नहीं अखरेगा। गाली वही होगी। गाली एक ही है। शत्रु देता है तो नहीं अखरती, मित्र देता है तो अखरती है; क्योंकि शत्रु से अपेक्षा ही है कि देगा और मित्र से अपेक्षा नहीं है कि देगा। कौन देता है, इससे अखरने का सम्बन्ध है।

अगर एक शराबी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखरता नहीं। आप समझते हैं कि बेहोश है। और एक होश से भरा हुआ आदमी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखर जाता है। तो कलह शुरू हो जाती है।

एक बच्चा आपका अपमान कर दे तो नहीं अखरता, लेकिन एक बूढ़ा आपका अपमान कर दे तो अखरता है; क्योंकि बच्चे को हम माफ कर सकते हैं, बूढ़े को माफ करना मुश्किल हो जाता है।

हमें क्या अखरता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिसने गाली दी, अपमान किया, उसका मूल्य कितना था। उस मूल्य पर सब निर्भर होता है।

दूसरे का मूल्य है, इसलिए अपमान अखरता है। दूसरे का मूल्य है, इसलिए सम्मान अच्छा लगता है। दूसरे का कोई भी मूल्य न रह जाए, तो व्यक्ति संन्यासी है।

तो दूसरा सम्मान करे तो ठीक, अपमान करे तो ठीक। यह दूसरे का अपना काम है; इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। मैंने दूसरे के ऊपर से अपना सारा मूल्यांकन अलग कर लिया है। दूसरा दूसरा है– और अगर गाली निकलती है, तो यह उसके भीतर की घटना है। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे किसी वृक्ष में कांटा लगता है, यह वृक्ष की भीतरी घटना है। इससे मैं नाराज नहीं होता। या कि मैं नाराज होऊँ कि बबूल में बहुत कांटे लगे हैं?

जब आप बबूल के पास से निकलते हैं, तो आप कभी भी यह नहीं सोचते

कि मेरे लिए कांटे लगाये गये हैं। यह बबूल का अपना गुण-धर्म है। और गुलाब के पौधे में जब फूल खिलता है, तब भी सोचने का कोई कारण नहीं है कि फूल आपके लिए खिल रहा है। यह गुलाब का गुण-धर्म है।

महावीर कहते है दूसरा क्या कर रहा है, यह उसकी अपनी भीतरी व्यवस्था की बात है। उसके जीवन से गाली निकल रही है, यह उसके भीतर लगा हुआ कांटा है। उसके भीतर से प्रशंसा आ रही है, यह उसके भीतर खिला फूल है। आप क्यों परेशान हैं? आपसे इसका कोई भी लेना-देना नहीं है। यह संयोग की बात है कि आप बबूल के कांटे के पास से निकले। यह संयोग की बात है कि गुलाब का फूल खिल रहा था और आप रास्ते से निकले।

इसे थोड़ा समझें, क्योंकि जिस आदमी ने आपको गाली दी है, अगर आप न भी मिलते, तो मनसविद कहते हैं, वह गाली देता; किसी और को देता। गाली देने से वह नहीं बच सकता था। गाली उसके भीतर इकट्ठी हो रही थी। अपमान उसके भीतर भारी हो रहा था। आप कारण नहीं हैं। आप सिर्फ निमित्त हैं। निमित्त कोई भी—एक्स, वाइ, जेड हो सकता था।

यह आप अपने अनुभव से देखें तो आपको ख्याल में आ जायेगा। कभी आप बैठे हैं, क्रोध उबल रहा है। और छोटा बच्चा अपने खिलौने से खेल रहा है। तो उसको ही आप डांट-डपट शुरू कर देते हैं। बच्चे में कोई कारण नहीं है। वह कल भी खेलता था, परसों भी खेलता था। वह रोज ही अपने खिलौने से ऐसे ही खेलता था। लेकिन परसों आपके भीतर क्रोध नहीं उबल रहा था। तो आप चुपचाप मुसकराते रहे। उसका शोर-गुल भी आनन्ददायी मालूम हो रहा था। वह नाच रहा था तो आप प्रसन्न थे। घर में जीवन मालूम हो रहा था। आज वह नाच रहा है, कूद रहा है, तो आपको क्रोध उठ रहा है। क्रोध उठ रहा है— उसका नाचना, कूदना निमित्त बन रहा है। वह बच्चा आपके क्रोध का भागीदार हो जायेगा।

और छोटे बच्चो को कभी समझ में नहीं आता कि क्यो उन पर क्रोध किया गया। क्योंकि उनको अभी दूसरे से इतना सम्बन्ध नहीं बना है। वे अभी अपने में जीते हैं। इसलिए छोटे बच्चे बहुत हैरान हो जाते है कि अकारण, कोई भी कारण नहीं था, और मां-बाप उन पर टूट पड़ते है।

अगर बच्चा न मिले तो आप अपनी पत्नी पर टूट पड़ेंगे। अगर कुछ भी न हो तो यह भी हो सकता है कि आप निर्जीव वस्तुओ पर टूट पड़ें— कि आप अखबार को जोर से गाली देकर पटक दें; कि आप रेडियो को गुस्से से बन्द कर दें कि उसकी नॉब ही टूट जाए।

जिस दिन स्त्रियाँ नाराज होती है, उस दिन घर में बर्तन ज्यादा टूटते है।

ऐसे मंहगा नही है यह– पति का सिर टूटे, इससे एक प्लेट का टूट जाना बेहतर है। यह सस्ता ही है। स्त्री भी भरोसा नहीं कर सकती कि उसने प्लेट छोड़ दी। वह भी सोचती है कि छूट गयी। लेकिन कभी नहीं छूटी थी। कल नहीं छूटी; परसों नहीं छूटी। और रोज अनुपात अलग-अलग होता है।

अगर आप अपने क्रोध का हिसाब रखें, और बर्तनों के टूटने का हिसाब रखें, आप जल्दी ही पूरा आंकड़ा निकाल लेंगे। जिस दिन क्रोध ज्यादा होता है, उस दिन हाथ छोड़ना चाहते हैं– अनकॉनशस। कोई जान के भी पत्नी नही छोड़ रही है। क्योंकि नुकसान तो घर का ही हो रहा है। लेकिन छूटता है।

मनसविद कहते हैं कि ड्राइवरों के द्वारा जो मोटर-दुर्घटनाएँ होती हैं, उनमें पचास प्रतिशत का कारण क्रोध है, कारें नहीं। क्रोध में आदमी ऐक्सेलेरेटॅर को जोर से दबाये चला जाता है। वह दबाने में रस लेता है, किसी को भी दबाने में; ऐक्सेलेरेटॅर को ही दबाता है। क्रोधी आदमी तेज रफ्तार से कार दौड़ा देता है। क्रोधी आदमी कोई भी चीज पर त्वरा से जाना जाता है, गति से जाना जाता है।

तो रास्तों पर जो दुर्घटनाएँ हो रही है, वो पचास प्रतिशत तो आपके क्रोध के कारण हो रही हैं। और थोड़ी घटनाएँ नहीं हो रही है। दूसरे महायुद्ध में एक वर्ष में जितने लोग मरे, उससे दो-गुने लोग कारों की दुर्घटनाओं से हर वर्ष मर रहे हैं। महायुद्ध वगैरह का कोई मूल्य नही है। कितना ही बड़ा महायुद्ध करो, जितने लोग सड़को पर लोगो को मार रहे हैं, उतना आप युद्ध करके भी नही मार सकते।

ये कौन लोग हैं? और आप कभी ख्याल करना कि जब आप क्रोध मे होते हैं, तो आप ज़ोर से हॉर्न बजाते हैं; ज़ोर से ऐक्सेलेरेटॅर दबाते है; कार को भगाते हैं। सामने वाला आदमी लगता है कि बिलकुल धीमी रफ्तार से जा रहा है— हर एक हट जाए, सारी दुनिया रास्ता दे दे, तो आप अपनी पूरी गति में आ जाएँ।

यह जो क्रोध है, इसका ऐक्सेलेरेटॅर से कोई भी सम्बन्ध नही है। अगर ऐक्सेलेरेटॅर को भी होश होता आप-जैसा, तो वह भी कहता कि क्यों मुझे परेशान कर रहे हो? वह भी दुखी होता।

महावीर यह कह रहे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीता है अपनी भीतरी नियति से। उससे जो भी बाहर आता है, वह उसके भीतर से आ रहा है। उसका सम्बन्ध उससे है, उसका सम्बन्ध आपसे नहीं है।

आप शान्त रह सकते हैं। अगर ये बात समझ में आ जाए तो शान्त रहने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा। अगर शान्त रहने का आप प्रयास करेंगे, तो

वह प्रयास भी अशान्ति है। किसी ने गाली दी और आपने अपने को समझाया, और अपने को शान्त रखा, और अपने को दबाया, तो अशान्त तो आप हो चुके। अब इतना ही होगा कि यह जो आदमी गाली दे रहा है, इसने जो क्रोध पैदा किया है, वह इसपर नहीं निकलेगा, किसी और पर निकलेगा। इतना ही होगा। कहीं जाकर यह बह जायेगा। और जब तक नहीं बहेगा, तब तक आप भारी रहेंगे।

आखिर क्रोध का मजा क्या है? क्रोध करके आपको क्या सुख मिलता है? इतना सुख मिलता है कि क्रोध से जो भारीपन और ज्वार और बुखार आ जाता है, जो फीवरिसनेस छा जाती है, वह निकल जाती है।

जापान में. . .और जापान मनुष्य के मन के सम्बन्ध में काफी कुशल है. . . . हर फैक्ट्री में, बड़ी फैक्ट्रियो में पिछले महायुद्ध के बाद मैनेजर और मालिक के पुतले रख गये दिये है कि जब भी किसी कर्मचारी को गुस्सा आये, वह जाकर पिटाई कर सके। एक कमरा है हर बड़ी फैक्ट्री में, जहाँ मालिक, मैनेजर और बड़े अधिकारियों के पुतले रखे हुए हैं। गुस्सा तो आता ही है, तो आदमी चले जाते है, उठाकर डंडा उनकी पिटाई कर देते है, गाली-गलौज बक देते है– हल्के होकर मुसकराते हुए बाहर आ जाते है।

लोग पुतले जलाते है, जब नाराज हो जाते है। और कभी-कभी हजारों साल लग जाते हैं. . . . .होली पर हम होलिका को अभी तक जलाये चले जा रहे है। पुरानी नाराजगी है; हजारों साल पुरानी है, लेकिन अभी भी राहत मिलती है। होली पर जितने लोग हल्के होते हैं, उतने किसी अवसर पर नहीं होते। होली राहत का अवसर है। क्रोध, गाली-गलौज, जो भी निकालना हो, वह आप सब निकाल लेते हैं। एक दिन के लिए सब छूट होती है। कोई नीति नहीं होती; कोई धर्म नही होता। कोई महावीर, बुद्ध बीच में बाधा नही देते। उस एक दिन के लिए आप बिलकुल मुक्त है। जो आप वर्षों से कहना चाहते थे, करना चाहते थे, वह कह सकते हैं, कर सकते है।

बहुत समझदार लोगों ने होली खोजी होगी, जो मनुष्य के मन को समझते थे कि उसमें कोई नाली भी चाहिए, जिससे गन्दा पानी बाहर निकल जाए। अभी इस समय के बहुत-से बुद्धिमान समझाते हैं कि यह बात ठीक नहीं है, होली पर सद्-व्यवहार करो; गाली-गलौज मत बको; भजन-कीर्तन करो। ये नासमझ हैं। हें कुछ पता नहीं है आदमी का।

होली आदमी को हल्का करती है। और जब तक आदमी जैसा है, तब तक होली-जैसे त्योहार की जरूरत रहेगी। आदमी जिस दिन बुद्ध, महावीर-जैसा हो जायेगा, उस दिन होली गिर जायेगी। उसके पहले होली गिराना खतरनाक

है। सच तो यह है कि जैसा आदमी है, उसे देखकर ऐसा लगता है, हर महीने होली होनी चाहिए। हर महीने एक दिन आपके सब नीति-नियम के बन्धन अलग हो जाने चाहिए ताकि जो-जो भर गया है, जो-जो घाव में मवाद पैदा हो गयी है, वह आप निकाल सकें।

एक बड़े मजे की बात है कि होली के दिन अगर कोई आपको गाली दे, तो आप यह नहीं समझते कि आपको गाली दे रहा है। आप समझते हैं कि अपनी गाली निकाल रहा है। लेकिन गैर-होली के दिन कोई आपको गाली दे, तो आपको गाली देता है। महावीर कहते हैं, उस दिन भी वह अपनी ही गाली निकालता है। होली या गैर-होली से फर्क नहीं पड़ता।

हम जो भी करते हैं, वह हमारे भीतर से आता है। दूसरा केवल निमित्त है, खूंटी की तरह है — उसपर हम टांग देते हैं। अगर यह बोध हो जाये तो जीवन में एक शान्ति आयेगी, जो प्रयास से नही आती; जीवन में एक शान्ति आयेगी, जो मुर्दा नहीं होगी; दमन की नहीं होगी — जीवन्त होगी।

मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था कि उसने अपनी पत्नी के सिर पर कुल्हाड़ी मार दी, पत्नी मर गयी। और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन, और तुम बार-बार कहे जाते हो कि यू आर ए मैन ऑफ पीस। तुम कहे चले जाते हो कि तुम बड़े शान्तिवादी हो, और बड़े शान्ति को प्रेम करनेवाले हो।

नसरुद्दीन ने कहा कि निश्चित, मैं शान्तिवादी हूं। और जब कुल्हाड़ी मेरी पत्नी के सिर पर पड़ी, तो जैसी शान्ति मेरे घर में थी, वैसी उससे पहले कभी नही देखी थी। जो शान्ति का क्षण मैंने देखा है उस वक्त, वैसा पहले कभी नही देखा।

आप अपने चारों तरफ लोगों को मारकर भी शान्ति अनुभव कर सकते हैं, जो आप सब कर रहे हैं। जब आप पत्नी को दबा देते हैं, और बेटे को दबा देते हैं, जब आप अपने नौकर को गाली दे देते हैं और दबा देते हैं, और जब आप बर्तन तोड़ देते हैं — तब आप क्या कर रहे हैं?

अपने चारों तरफ आप मृत्यु के माध्यम से शान्ति ला रहे हैं। यह शान्ति थोथी है, मुर्दा है। और यह शान्ति ज्यादा देर टिकेगी नही, क्योंकि इस शान्ति में उपद्रव के बीज छिपे हुए हैं; क्योंकि जो आप कर रहे है, वही आपके आस-पास के लोग आपके प्रति भी करेंगे। यह सिर्फ थोड़ी देर के लिए कलह का स्थगन है। यह पोस्टपोनमेन्ट है। और यह शान्ति उपद्रव से भरी हुई है— उपद्रव इसके भीतर पल रहा है। लेकिन एक और भी शान्ति है, जो आसपास मृत्यु लाकर नही, अपने भीतर जीवन को जगाकर उपलब्ध की जाती है। और जब अपने भीतर जीवन जगता है, तो आदमी अनुभव कर लेता है कि कोई भी मुझसे प्रयोजन नहीं है किसी का भी।

ध्यान रहे, यह भी हमारा अहंकार ही है कि हम सोचते हैं कि सारे लोग हमसे जुड़े हुए हैं – गाली देनेवाला मुझे गाली दे रहा है; प्रशंसा करनेवाला मेरी प्रशंसा कर रहा है। हम सब यह समझते हैं कि सारे जगत के जैसे हम केंद्र हैं और सारा जगत हमारे चारों तरफ चल रहा है। कोई रास्ते पर हंसता है, तो मेरे लिए हंस रहा है। कोई फुस-फुस-फुस करके बात करता है, तो जरूर मेरी बात कर रहा है – जैसे कि मैं ही इस जगत में हूँ और बाकी सारे लोग मेरे लिए हैं।

किसी को प्रयोजन नहीं है। किसी को अर्थ नहीं है। अगर वे फुस-फुसाकर बातें कर रहे हैं, तो भी कारण उनके अपने हैं। अगर कोई हंस रहा है, तो भी उसके कारण अपने हैं। आप अपने को बीच में मत डालें।

लेकिन आप मान नहीं सकते। आप हर जगह अपने को बीच में खड़ा कर लेते हैं। जब तक आप बीच में नहीं होते, तब तक आपको चैन नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मेहमान आया हुआ था। मेहमान धनपति था, कुलीन था, सुसंस्कृत था। और उसे पता था कि मुल्ला नसरुद्दीन के गाँव में एक रिवाज है कि घर का जो मुखिया होता है, भोजन की टेबुल पर वह सिर की तरफ बैठता है, पहली जगह पर बैठता है। वह रिवाज कभी नहीं तोड़ा जाता।

लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन ने मेहमान को, चूँकि वह बड़ा आदमी था, कीमती आदमी था, कहा कि आप खाने की मेज पर इस जगह बैठें, सिर की तरफ। उस आदमी ने कहा कि नहीं, क्षमा करें नसरुद्दीन, यह नहीं हो सकता। जैसा इस गाव का रिवाज है, वही उचित है। आप ही इस पर बैठें, आप इस घर के मुखिया हैं।

वह नहीं माना तो नसरुद्दीन गुस्से में आ गया। उसने कहा, ' तुमने समझा क्या है? नसरुद्दीन जहाँ बैठेगा, वही टेबुल का सिर है। तुम बैठो वहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं जहाँ बैठूंगा, वहीं मुखिया बैठा हुआ है।'

एक दफा नसरुद्दीन के गाव में एक विवाद था। और सारे पण्डित इकट्ठे हुए सारे ज्ञानी इकट्ठे हुए। नसरुद्दीन को नहीं बुलाया क्योंकि कुछ उपद्रव कर दे कुछ गलत-सही बात कह दे। लेकिन नसरुद्दीन को खबर लगी तो वह पहुँचा। लेकिन हाल भर चुका था; मंच भर चुका था। नेतागण बैठ चुके थे। कोई आदमी अध्यक्ष हो चुका था।

नसरुद्दीन, जहाँ जूते पड़े थे, वही बैठ गया। और वहीं उसने धीरे-धीरे कहानी-किस्से कहने शुरू कर दिये। थोड़ी देर में लोग उसमें उत्सुक हो गये। वह आदमी ही एसा था। लोगों ने पीठ कर ली मंच की तरफ और उसकी बातें सुनने

लगे। धीरे-धीरे आधा हाल उसकी तरफ मुड़ गया। आखिर सभापति ने कहा कि नसरुद्दीन, क्यों उपद्रव कर रहे हो? क्यों अराजकता पैदा कर रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं नहीं कर रहा हूँ। आइ एम द प्रेजिडेन्ट, आइ एम आल्वेज़ द प्रेजिडेन्ट। मैं कहीं भी रहूँ, उससे कोई फर्क पड़ता ही नहीं। तुम चलाओ अपनी सभा, मैं सभापति हूँ। मेरा कोई दूसरा स्थान है ही नहीं। मैं कहाँ बैठूँ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।'

आप भी अपने मन में तो यही धारणा लेकर चलते है कि सारे चांद-तारे आपको केन्द्र मानकर घूम रहे है। इसलिए जब पहली दफा वैज्ञानिकों ने खोजा कि पृथ्वी केन्द्र नहीं है जगत का, तो मनुष्य के अहकार को बड़ी चोट पहुँची। और आदमीं ने बड़ी जिद्द की कि यह हो ही नहीं सकता। सूरज, चाद तारे – सब पृथ्वी के चारों तरफ घूम रहे है। पृथ्वी बीच में है; सारे जगत का केन्द्र है।

लेकिन जब वैज्ञानिकों ने सिद्ध ही कर दिया कि पृथ्वी केन्द्र नहीं है, और बजाय इसके कि सूरज पृथ्वी के चारो तरफ घूम रहा है, ज्यादा सत्य यही है कि पृथ्वी सूरज के चारों तरफ घूम रही है— मनुष्य के अहंकार को भयंकर चोट पहुँची; क्योंकि जिस पृथ्वी पर मनुष्य रह रहा है, सभी कुछ उसके चारों तरफ घूमना चाहिए।

बर्नाड शॉ कहता था कि वैज्ञानिक जरूर कहीं भूल कर रहे है। यह हो ही नहीं सकता कि पृथ्वी— और सूरज का चक्कर काटे! सूरज ही पृथ्वी का चक्कर काट रहा है। और एक दफा वो बोल रहा था तो किसी ने खड़े होकर कहा कि बर्नाड शॉ, आप भी हद बेहूदी बात कर रहे है! अब यह सिद्ध हो चुका है। अब इसको कहने की कोई जरूरत नहीं है। और आपके पास क्या प्रमाण है कि सूरज पृथ्वी का चक्कर काट रहा है?

बर्नाड शॉ ने कहा, 'प्रमाण की क्या जरूरत है? जिस पृथ्वी पर बर्नाड शॉ रहता है, सूरज उसका चक्कर काटेगा ही। और अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है।'

वह व्यंग कर रहा था। बर्नाड शॉ न गहरे व्यंग किये हैं।

आदमी अपने को हमेशा केन्द्र में मानकर चलता है।

भिक्षु वह है, जिसने अपने को केन्द्र मानना छोड़ दिया। जिसने तोड़ दी यह धारणा कि मैं केन्द्र हूँ दुनिया का; सारी दुनिया मेरी ही प्रशंसा में या क्रोध में, या उपेक्षा में, या प्रेम में या घृणा में, चल रही है। सारी दुनिया मेरी तरफ देखकर चल रही है; और जो कुछ भी किया जा रहा है, वह मेरे लिए किया जा रहा है। जिसने यह धारणा छोड़ दी, वही व्यक्ति अपमान सह सकेगा। और उसे सहना नहीं पड़ेगा। सहना

शब्द ठीक नहीं है, अपमान उसे छूएगा ही नही। वैसा व्यक्ति अस्पर्शित रह जायेगा। सहने का तो मतलब यह है कि छू गया, फिर सँभाल लिया अपने को।

नहीं, सँभालने की भी जरूरत नहीं है – छुएगा ही नहीं। अपमान दूर ही गिर जायेगा। अपमान उस व्यक्ति के पास तक नहीं पहुँच पायेगा। अपमान पहुँच सकता है इसीलिए कि हम दूसरे से मान की अपेक्षा करते थे। न मान की अपेक्षा है, न अपमान की अपेक्षा है; न प्रशंसा की, न निंदा की। दूसरे का हम मूल्य नही मानते। दूसरा कुछ भी करे, वह उसकी अपनी अन्तर्धारा और कर्मों की गति है; और मैं जो कर रहा हूँ, वह मेरी अन्तर्धारा और मेरे कर्मों की गति है।

लेकिन यह बात अगर ठीक से ख्याल में आ जाए तो इसका एक दूसरा महत् परिणाम होगा। और वह यह होगा कि जब मै गाली देना चाहूँगा, तब भी मैं समझूँगा कि मै गाली देना चाह रहा हूँ, दूसरा कुसूर नही कर रहा है। और जब मै प्रशंसा करना चाहूँगा, तब भी मैं समझूंगा कि मेरे भीतर प्रशंसा के गीत उठ रहे हैं, दूसरा सिर्फ निमित्त है। और तब दोष देना और प्रशसा देना भी गिर जायेगा। और तब व्यक्ति अपनी जीवन-धारा के सीधे सम्पर्क में आ जाता है। तब वह दूसरों के साथ उलझ कर व्यर्थ भटकता नही। और तब जो भी करना है, जो भी नही करना है, उसका अन्तिम निर्णायक मैं हो जाता हूँ। फिर जिससे मुझे सुख मिलता है, वह बढ़ता जाता है अपने आप। जिससे मुझे दुख मिलता है, वह छूटता जाता है, क्योंकि मेरे अतिरिक्त अब मेरा कोई मालिक न रहा। अब मैं ही नियंता हूँ।

तो जब महावीर कह रहे हैं कि जो कान में कांटे के समान चुभनेवाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारो को, अयोग्य उपालंभो को, तिरस्कार या अपमान को शान्ति-पूर्वक सह लेता है......।

इसमें एक उन्होंने बड़ी अच्छी शर्त लगायी है – 'अयोग्य उपालंभों को'। कोई गाली दे रहा है, और वह गाली गलत है। लेकिन कभी गाली सही भी हो सकती है। कोई आपको चोर कह रहा है, और आप चोर हैं। तो महावीर कहते हैं, अयोग्य उपालंभों को शान्ति से सह लेना, लेकिन योग्य उपालंभों को सोचना, सिर्फ़ सह मत लेना। क्योंकि दूसरा एक मौका दे रहा है, जहाँ आप अपनी धारा की परख कर सकते हैं। कोई आपको चोर कह रहा है।

लेकिन हम बड़ी अजीब हालत में है। अगर हमें कोई ऐसी गालियाँ दे रहा हो जो हम पर लागू नहीं होतीं, तब तो हम उन्हें नजर अंदाज भी कर सकते हैं, लेकिन अगर कोई हमारे सम्बन्ध में सत्य ही कह रहा है, तो फिर नजर अंदाज करना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो फिर उसे छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है।

सत्य जितनी चोट करता है, उतना असत्य नही करता। इसलिए जब आपसे

कोई कहे, 'चोर', और आप बहुत बेचैन हो जायें तो उसका मतलब है, बेचैनी खबर दे रही है कि आप चोर हैं। अगर आप चोर न होते तो इतनी बेचैनी नहीं हो सकती थी; आप हंस भी सकते थे। आप कहते, कहीं कुछ भूल हो गयी होगी। जब कोई बिलकुल छू देता है घाव को, तभी आप बेचैन होते है। अगर कोई घाव को नहीं छूता तो बेचैन नहीं होते।

मैंने सुना है कि अब्राहिम लिंकन ने अपने एक विरोधी नेता के सम्बन्ध में आलोचना की। आलोचना कठोर थी। उस विरोधी नेता ने पत्र लिखा लिंकन को, और कहा कि आप मेरे सम्बन्ध में असत्य बोलना बन्द कर दें, अन्यथा उचित न होगा। लिंकन ने जवाब दिया कि तुम फिर से सोच लो। अगर तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे सम्बन्ध में असत्य बोलना बन्द कर दूँ, तो मुझे तुम्हारे सम्बन्ध में सत्य बोलना शुरू करना पड़ेगा। और दोनों में तुम चुन लो कि क्या तुम पसन्द करोगे।

वह आदमी भी घबड़ा गया कि बात तो ठीक ही थी। उसने खबर भेजी कि आप असत्य ही बोले चले जाएँ। सत्य तो और खतरनाक है।

बर्नार्ड शॉ ने अपने संस्मरणों में कहा है कि किसी के सम्बन्ध में असत्य कहने से ज्यादा चोट नही पहुँचायी जा सकती। ठीक-ठीक सत्य कह देने से जैसा घाव हो जाता है, वैसा असत्य कहने से कभी नहीं होता। असत्य बड़ा मधुर है। असत्य का लेप बड़ा प्रीतिकर है। सत्य की चोट भारी है।

तो जब आप ज्यादा उद्विग्न होते हों किसी के अपमान से; बेचैन और विक्षिप्त हो जाते हों, तब शान्त बैठकर सोचना, उसने जरूर सत्य को छू दिया है। तब भी उस पर विचार करने की जरूरत नहीं है, अपने भीतर ही अपने सत्य को परखने की कोशिश करना। और, अगर ऐसा सत्य आपके भीतर है जो घाव की तरह है, जो छूने से पीड़ा देता है, तो दूसरे को दोष मत देना कि दूसरा छूकर आपको पीड़ा पहुँचाता है। अपने घावों को भरना, अपने घावों को मिटाना और उस जगह आ जाना, जहाँ कोई कुछ भी कहे, पर आपको स्पर्श न कर पाये।

जीवन एक अन्तर्सृजन है; एक इनॅर क्रियेटिविटि है। लेकिन हम अवसर खो देते हैं। अगर कोई गाली देता है तो हमारा ध्यान गाली देनेवाले पर अटक जाता है। हम अपने को तो छोड़ ही देते हैं, भूल ही जाते है। वह क्या कह रहा है, वह कौन है; गलत है! और गाली देनेवाला गलत होगा ही। हम उसकी भूल-चूक खोजने में लग जाते है। उस गाली के क्षण में हमें अपने भीतर खोजना चाहिए। अगर गाली असत्य है, तब तो कोई कारण ही नहीं है। अगर गाली सत्य है तो हमें अन्तर्निरीक्षण और अन्तर्चिन्तन, और अन्तर्मन्थन में लग जाना चाहिए। और मैं क्या करूँ कि मैं भीतर से बदल जाऊँ, वही हमारा ध्यान होना चाहिए।

ज़रूरी नहीं है कि आप बदल जाएँ तो लोग गालियाँ देना बन्द कर देंगे। ज़रूरी नहीं है कि आपके सब घाव मिट जायें तो लोग आपका अपमान न करेंगे। सम्भावना तो यह है कि जितना ही आप कम प्रभावित होंगे, उतने ही लोग ज्यादा चोट करेंगे। क्योंकि लोग मज़ा लेते है आपको प्रभावित करने में। अगर कोई गाली दे और आप प्रभावित न हों, तो और वज़नदार गाली वह आपको देगा। क्योकि आपने उसको बड़ा दुखी कर दिया। उसने गाली दी और आप प्रभावित न हुए, इसका मतलब आप उसके नियंत्रण के बाहर हो गये। आपपर अब उसका कोई वश नहीं है, कोई ताकत नहीं है। आप ताकतवर हो गये; वह कमज़ोर पड़ गया – वह और वज़नी गाली खोजेगा।

जब कोई व्यक्ति सचमुच ही साधु होना शुरू होता है, तो सारा समाज उसे सब तरफ से कसता है और सब तरफ से कोशिश करता है कि छोड़ो यह साधुता, आ जाओ उसी जगह जहाँ हम सब खड़े है। उस वक्त परेशानियाँ बढ जाती हैं। महावीर ने कहा है, साधु के परिश्रम, उसके कष्ट गहन हो जाते है। क्योंकि जिन-जिन के नियन्त्रण के वह बाहर होने लगता है, वे-वे पूरी चेष्टा करते हैं नियन्त्रण करने की।

यहूदियों मे एक पुरानी कहावत है कि जब भी कोई तीर्थंकर या पैगम्बर पैदा होता है, कोई प्रॉफेट, तो पहले लोग उसको गालियाँ देते है; निन्दा करते है। अगर वह निंदा और गालियों के पार हो जाये, जो कि बड़ा मुश्किल होगा. . . .। अगर वह भी निन्दा और गालियों में पड़ जाए, तो लोग उसे भूल जाते हैं, क्योंकि वह उन्हीं-जैसा हो गया। लेकिन अगर वह उनके पार चला जाये, तो फिर लोग उपेक्षा करते हैं।

ध्यान रहे, गाली से भी ज्यादा पीड़ा उपेक्षा में है। यह आपको पता नही है। उपेक्षा, इन्डिफरेन्स —। लोग ऐसा व्यवहार करते है, जैसे वह है ही नही। उसके पास से लोग ऐसे गुज़र जाते हैं, जैसे उसे देखा ही नही।

आप ख्याल करें। अगर लोग आपकी उपेक्षा करें तो आप पसन्द करेंगे कि लोग गाली दें, वही बेहतर है -- कम से कम ध्यान तो देते हैं। इसीलिए लोग अपराध करने को उत्सुक हो जाते हैं। जो नेता नहीं बन सकते है, वे गुण्डे बन जाते है। गुण्डों और नेताओं में ज़रा भी फर्क नही है। गुण का कोई फर्क नही है, दिशाएँ थोड़ी भिन्न है। अगर गुण्डों को ठीक मौका मिले तो वे नेता बन जाएँ, और नेताओं को ठीक मौका न मिले तो वे गुण्डे बन जायें।

गुण्डे और नेता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नेता भी, दूसरे लोग ध्यान दें, इस बीमारी से पीड़ित है। जितने ज्यादा लोग ध्यान दें, उतना ही उसका अहंकार तृप्त होता है। और गुण्डा भी उसी बीमारी से पीड़ित है। लेकिन वह कोई रास्ता नहीं खोज पाता; और अगर कुछ न करे तो लोग उपेक्षा किये चले जाते हैं। तब फिर

वह बुरा करना शुरू कर देता है। बुरे पर तो ध्यान देना ही पड़ेगा; उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

एक दफा भले की उपेक्षा सम्भव हो, बुरे की उपेक्षा सम्भव नहीं है। उस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। अदालत, कोर्ट, मजिस्ट्रेट, पुलिस, अखबार — सब उसकी तरफ ध्यान देने को खड़े हो जायेंगे। वह तृप्त होता है। अपराधियो से पूछा गया है — तो वे तृप्त होते हैं, जब उनका नाम छपता है अखबारों में। लोग उनकी चर्चा करते हैं, तब वे तृप्त होते हैं। तब उन्हें लगता है कि मैं भी कुछ हूँ।

उपेक्षा सबसे ज्यादा कठिन बात है।

यहूदी कहते हैं कि पहले निन्दा होती है पैगम्बर की। और जब निन्दा से वह नही पीड़ित होता और पार निकल जाता है, तो उपेक्षा करना लोग शुरू कर देते हैं कि ठीक है, कुछ खास नहीं। कोई चिन्ता की जरूरत नही है। और जब वह उपेक्षा को भी पार कर जाता है, जो कि बड़ी कठिन साधना है, परिश्रय है, तब लोग श्रद्धा करना शुरू करते है। तो जिनकी उन्होंने निन्दा की है और जिनकी उपेक्षा की है, लम्बे अर्से में वे उनकी श्रद्धा कर पाते हैं।

महावीर कहते हैं, जो इन सारी बाहर से घटने वाली घटनाओं को ऐसे सह लेता है, जैसे मेरा उनसे कोई संबंध नही है– शान्तिपूर्वक, वही भिक्षु है।

'जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है . . .।'

अभय पर महावीर का बहुत ज़ोर है– फिअरलेसनेस् पर। क्योंकि महावीर कहते हैं, जो अभय को नही साधेगा वह मृत्यु से भयभीत रहेगा। सारा भय मृत्यु का भय है। भयमात्र मूल में मृत्यु से जुड़ा है। जो भी चीज हमें मिटाती मालूम पड़ती है, उससे हम भयभीत हो जाते हैं। जो भी चीज हमें सँभालती मालूम पड़ती है, उससे हम चिपट जाते हैं। उसे हम आग्रहपूर्वक अपने पास रखने लगते हैं।

महावीर कहते हैं कि अभय का जन्म अत्यन्त आवश्यक है। तो कुछ भी स्थिति हो – तूफान हो कि गर्जना हो, अन्धकार हो कि एकान्त हो – जहाँ मौत किसी भी क्षण घट सकती है, वहाँ भी जो शान्त रहे, वहाँ भी जो मौन रहे, अडिग रहे, अकम्प रहे . . . । क्यों ?

यह अकम्प रहने का इशारा इसलिए है कि अगर कोई ऐसे क्षण में अकम्प रहे, तो उसका इंद्रियों से सम्बन्ध छूट जाता है और आत्मा से सम्बन्ध जुड़ जाता है। अगर कम्पित हो जाए, तो आत्मा से सम्बन्ध छूट जाता है और इन्द्रियों से सम्बन्ध जुड़ जाता है।

इस सूत्र को ठीक से समझ लें। अकम्पता आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जब

भी आप अकम्प होते हैं, आत्मा से जुड़ जाते हैं। और कंपना इन्द्रियों का स्वभाव है। इसलिए जितना आप कंपते हैं, उतने ही इन्द्रियों से जुड़ जाते हैं। जितना भयभीत और कम्पित व्यक्ति, उतना इन्द्रियों से जुड़ा हुआ होगा। जितना अकम्प और निर्भय व्यक्ति, उतना आत्मा से जुड़ने लगेगा।

अकम्पता, कृष्ण ने कहा है, ऐसी है, जैसे कि घर में हवा का एक झोंका भी न आता हो जब कोई दिया जलता है—और उसकी लौ अकम्प होती है। वैसी ही आत्मा है — अकम्प।

तो मौका खोजना चाहिए, जहाँ चारों तरफ भय हो, और आप भीतर शान्त और अकम्प रह सकें। कठिन होगा। शुरू-शुरू में भय आपको कंपा जायेगा। लेकिन उस कम्पन को भी देखते रहे।

आप बैठे है निर्जन एकान्त में और सिंह की गर्जना हो रही है — छाती धकधका जायेगी; खून तेजी से दौड़ेगा; श्वास ठहर जायेगी। लेकिन यह सब आप शान्ति से देखते रहे। आप सिंह की फिकर न करें। आपके चारो तरफ जो हो रहा है, चेतना के दिये के चारों तरफ, उसको आप शान्ति से देखते रहें। और एक ही ख्याल रखें कि हृदय कितनी ही जोर से धड़के—धड़के, श्वास कितनी ही तेजी से चले—चले, रोएँ खड़े हो जाएँ—हो जाएँ, पसीना बहने लगे — बहने लगे, लेकिन भीतर मैं मौन और शान्त बना रहूँगा; भीतर मैं नहीं हिलूंगा।

इस न हिलने को जो पकड़ता जाता है, धीरे-धीरे इन्द्रियों से उसकी चेतना-धारा मुड़ती है और आत्मा के अनुभव में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसी घड़ी आने लगे, तो ही मृत्यु में आप बिना कंपे रह सकेंगे, अन्यथा असम्भव है। अन्यथा असम्भव है।

मैंने सुना है, एक झेन फकीर मरने के करीब था। तो उसने अपने शिष्यों से पूछा कि सुनो, मैं मरने के करीब हूँ, मौत करीब है, और ये सूरज के अस्त होते-होते मैं शरीर छोड़ दूँगा; जरा मैं तुमसे एक सलाह चाहता हूँ। कोई रास्ता बताओ मरने का कुछ ऐसा अनूठा, जैसे पहले कभी कोई न मरा हो। मरना तो है, लेकिन थोड़ा मरने का मजा ले लें।

शिष्य तो छाती पीटकर रोने लगे। उनकी समझ में भी न आया कि गुरु पागल तो नहीं हो गया है मरने के पहले। एक शिष्य ने कहा कि आप खड़े हो जाएँ, क्योंकि खड़े होकर कभी किसी का मरना नहीं सुना। गुरु ने कहा कि नहीं, मेरे गुरु ने कहा है कि एक दफा एक फकीर खड़े-खड़े मरा था। तो यह नहीं जंचेगा; यह हो चुका।

किसी दूसरे शिष्य ने सिर्फ मजाक में कहा कि आप शीर्षासन लगा कर खड़े

हो जाएँ। ऐसा कभी नही हुआ होगा कि कोई सिर के बल खड़ा हुआ हो और मर गया हो।

फकीर ने कहा, यह बात जंचती है। वह हंसा और शीर्षासन लगाकर खड़ा हो गया। पास के ही विहार में उसकी बड़ी बहन भी भिक्षुणी थी। उस तक खबर पहुँची कि उसका भाई मरने के करीब है और वह शीर्षासन लगाकर खड़ा हो गया है। वह आयी और उसने जोर से उसे धक्का दिया, और कहा कि बन्द करो यह शरारत। बूढ़े हो गये और शरारत नही छोड़ी ! सीधे मरो, जैसा मरा जाता है।

तो फकीर हंसा और सीधा लेट गया, और मर गया--जैसे मौत एक खेल है।

उसने कहा 'सीधे मरो ! शरारत छोड़ो। बचपन से तुम्हारी खराब आदत है। यह कोई ढंग है मरने का !' और फकीर हसा भी। उसने कहा, मेरी बड़ी बहन आ गयी, अब इसके आगे मेरा न चलेगा। तो अब मै लेट जाता हूँ और मर जाता हूँ।

मौत को जो ऐसे हलके-से ले सकते होगे, ये वे ही लोग है जिन्होने इसके पहले अकम्पता साधी हो। इसलिए महावीर कहते है, अभय ...!

'सुख-दुख दोनों को जो समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।'

यह जरा समझ लेने - जैसा है। सुख-दुख दोनो को समभावपूर्वक सहन करता हो--जैसे सुख भी एक दुख है, दुख तो दुख है ही। आपने कभी ठीक से सुख को देखा हो तो आपको पता चल जाये कि वह भी दुख है।

सुख और दुख दोनों उत्तेजित स्थितियाँ है। आप सुख में भी उत्तेजित हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ लोग सुख मे मर तक जाते हैं। दुख में भी आप उत्तेजित हो जाते हैं। सुख और दुख दोनों का स्वभाव ऐसा है कि आप कम्पित हो जाते हैं। सब डाँवांडोल हो जाता है, भीतर तूफान हो जाता है।

एक तूफान को आप अच्छा कहते है; क्योंकि आप मानते है कि वह सुख है। एक तूफान को बुरा कहते है; क्योंकि धारणा है कि वह दुख है। ये सिर्फ धारणाओं की बात है, व्याख्या की बात है। लेकिन दोनों स्थितियों में अगर हम वैज्ञानिक से पूछें कि शरीर की जांच करे, तो वह कहेगा कि शरीर दोनो स्थितियों में अस्त-व्यस्त है; उत्तेजित है।

कभी-कभी सुख ऐसा भी हो सकता है कि हृदय की धड़कन ही बन्द हो जाये, आप खतम ही हो जाये -- इतना बड़ा सुख हो सकता है। और दुख तो हम जानते हैं। लेकिन सुख को हमने ठीक से कभी नहीं परखा है कि उससे भी हमारा स्वास्थ्य खो जाता है; शान्ति नष्ट हो जाती है; भीतर की समता डिग जाती है; तराजू चेतना का डाँवांडोल हो जाता है। महावीर कहते हैं, आनन्द है अनुत्तेजित चित्त की अवस्था।

सुख भी उत्तेजना है, दुख भी उत्तेजना है – और सुख और दुख इसलिए हमारी व्याख्याएँ हैं। वही चीज दुख हो सकती है और वही चीज सुख भी हो सकती है, जरा परिस्थिति बदलने की जरूरत है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके साथी पंडित रामशरण दास दोनों एक साझेदारी में व्यापार कर रहे थे। और उन्होंने बहुत-से कोट-पतलून खरीद लिये – बड़े सस्ते मिल रहे थे। लेकिन, फिर बेचना मुश्किल हो गया; सारा पैसा उलझ गया। अब वे बड़े घबड़ाये। नया-नया धन्धा किया था और फंस गये। अब दोनों चिन्तित और परेशान थे, और सोच रहे थे, क्या करे – मुफ्त बांट दें या क्या करें इनका। क्योंकि इनके रखने का किराया और बढ़ता जाता था। कोई खरीददार नहीं था। और सोमवार की सन्ध्या की बात है, एक खरीददार आ गया। और वह इतना आन्दोलित हो गया उन सबको देखकर – पैंट-पतलून को, जो बिक नही रहे थे कि उसने कहा, 'मै सब खरीदता हूँ, और मुह-मांगा देता हूँ जो तुम कहो; चुकता लाट खरीदता हूँ! लेकिन एक शर्त है कि तीन दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी – आज सोमवार है; मगल, बुद्ध, बृहस्पति– बृहस्पति की शाम पांच बजे तक। मुझे अपने परिवार से पूछना पड़ेगा, क्योंकि सभी का साझेदारी का धन्धा है। तो मै तार करूँगा। मेरे परिवार के लोग बाहर हैं। तीन दिन बाद, ठीक पाच बजे तक अगर मेरा इनकार का तार आ जाए, तो सौदा कैन्सिल; अगर इनकार का तार न आये, तो सौदा पक्का। जो तुम्हारा दाम है, हिसाब तैयार रखो, मै दो-चार दिन में सब सामान उठवा लूगा।'

फाँसी लग गयी। अब वे दोनो बैठे हैं, और एक-एक दिन गुजरने लगा। तीसरा दिन भी आ गया। अब चार वज गये।

अभी तक कुछ नही हुआ, तो उनकी सास अटकी है कि कही ऐसा न हो कि पांच के पहले टेलिग्रामवाला कैन्सिलेशन का तार लिये द्वार पर दस्तक दे दे।

फिर साढ़े चार बज गये। फिर पौने पाँच . . . ! अब तो जीना बिलकुल मुश्किल हुआ जा रहा है। और ठीक पौने पाँच बजे तारवाले ने दस्तक दी। उसने कहा, 'टेलिग्राम !'

दोनों की साँस वहीं रुक गयी। अब कोई से उठते न बने। आखिर ताकत लगाकर मुल्ला नसरुद्दीन उठा; बाहर गया। पैर चलते नहीं, हाथ कंप रहे हैं; पसीना छूट रहा है। पण्डित जी तो आँख बन्द किये वहीं राम-स्मरण करते रहे।

मुल्ला ने जाकर तार खोला, हाथ कप रहे है, और जोर से खुशी से चीखा 'पण्डित रामशरण दास! यॉर फादर हैज डाइड— ए गुड न्यूज।'

बाप का मरना भी किसी क्षण में गुड न्यूज हो सकता है, एक सुखद समाचार— कि पिता चल बसे।

दोनों प्रसन्न हो गये। वह जो सामान बिकना है . . .।

क्या दुख है और क्या सुख निर्भर करता है परिस्थिति पर, व्याख्या पर। जो सुख है, वह दुख-जैसा मालूम हो सकता है। जो दुख है, वह सुख-जैसा मालूम हो सकता है। किसी से प्रम है; और गले लगे खड़े हैं! कितनी देर सुख रहेगा यह गले लगना? अगर वह छोड़ने से इनकार ही कर दे, तो दो चार-पाँच मिनट में आप अपनी गर्दन हिला कर बाहर होना चाहेंगे। लेकिन हाथ जंजीरों की तरह जकड़ जायें, तो जो बड़ा सुख मालूम हो रहा था— कितना फूल की तरह कोमल था, वह पत्थर की तरह दुख हो जायेगा। यही दुख हो गया है परिवार-परिवार में कि जो आलिंगन था किसी क्षण, वह अब जंजीर हो गयी है। अब उससे छूटने का उपाय नहीं है।

महावीर कहते हैं, सुख भी दुख का ही एक रूप है। और यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। जैसे हम कहते हैं कि गर्मी और सर्दी दो चीजें नहीं हैं। हमको दो चीजें मालूम पड़ती हैं। वैज्ञानिक कहता है, वे एक ही ताप की दो डिग्रियां हैं। एक ही चीज हैं गर्मी और सर्दी। अन्धेरा और प्रकाश एक ही चीज हैं, एक ही चीज की दो डिग्रियाँ है। जो आपको गर्मी मालूम पड़ती है, वह सर्दी मालूम पड़ सकती है, जो सर्दी मालूम पड़ती है,वह गर्मी मालूम पड़ सकती है। ये निर्भर करता है कि किस हालत में आप हैं। अगर आप एयर-कंडिशॅन्ड कमरे से बाहर आयें, तो आपको गर्मी मालूम पड़ती है। जो वहाँ खड़ा है, उसको गर्मी का कोई पता नहीं है। आप धूप से आ रहे हैं एयर-कंडिशॅन्ड कमरे में, तो आपको बड़ा शीतल मालूम पड़ता है। जो वहाँ बैठा है, उसे कुछ पता नहीं कि शीतलता है। सापेक्ष है। सुख-दुख भी सापेक्ष घटनाएँ हैं भीतर।

महावीर कहते हैं, जो दोनों को सम भाव से सहन कर लेता है; जो न उत्तेजित होता दुख में और न उत्तेजित होता सुख में; जो दोनों का सम भावी साक्षी हो जाता है, वही भिक्षु है।

'जो हाथ, पांव, वाणी और इन्द्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म में रत रहता है, जो अपने आपको भलीभांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जानने वाला है, वही भिक्षु है।'

दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।

निश्चित ही जैसे-जैसे साक्षी-भाव बढ़ता है जीवन में, संयम बढ़ता है, तब हाथ भी अकारण नहीं हिलता, तब आँख भी अकारण नहीं उठती, तब जीवन का रंच-रंच विवेकपूर्ण हो जाता है। तब आप वही देखते हैं, जो देखना चाहते हैं। तब आप वही करते हैं, जो करना चाहते हैं।

बुद्ध के पास एक आदमी बैठा है सामने और बैठकर अपने पैर का अँगूठा हिला रहा है। बुद्ध बोलना बन्द कर देते हैं और कहते हैं, 'मित्र, यह अँगूठा क्यों हिलता है?' उस आदमी का अँगूठा, जैसे ही बुद्ध ये कहते हैं, रुक जाता है। रोकने की जरूरत नहीं पड़ती, होश आ जाता है; उसे खुद ही ख्याल आ जाता है। वह कहता है, 'छोड़िये भी, आप भी कहाँ की बात में पड़ गये। ये तो यों ही हिलता था, मुझे कुछ पता ही नहीं था।'

बुद्ध ने कहा, 'तेरा अँगूठा, और तुझे पता न हो और हिलता रहे, तो तू बड़ा खतरनाक आदमी है। तू किसी की गर्दन भी काट सकता है, तेरा हाथ हिल जाए। तेरा अंगूठा और तुझे पता नहीं है, और हिलता है, तो तू मालिक नहीं है। होश संभाल।'

तो महावीर कहते है : हाथ, पाव, वाणी, इन्द्रियाँ जिसकी सभी संयमित हो गयी हैं, जिसके विवेक ने सभी चीजो की मालकियत आत्मा को दे दी है; और अब कोई भी इंद्रिय अपने ढंग से, अपने-आप कही नहीं जा सकती; आपकी बिना मर्जी के रोआं भी नही हिल सकता.....।

जो सदा अध्यात्म में रत है; जिसका जीवन, जिसकी चेतना, जिसकी ऊर्जा प्रतिपल एक ही बात की खोज कर रही है कि 'मैं कौन हूँ?' जो हर अनुभव से अनुभोक्ता को पकड़ने की चेष्टा में लगा है। जो हर घड़ी बाहर से भीतर की तरफ मुड़ रहा है। जो हर अवसर को बदल लेता है और चेष्टा करता है कि हर अवसर में मुझे मेरा स्मरण सजग हो जाए। जो हर स्थिति में आत्मस्मृति को जगाने की कोशिश में लगा है। जो भीतर के दिये को उकसाता रहता है ताकि वहाँ ज्योति मद्धिम न हो जाए, और बाहर का कितना भी अन्धेरा हो, भीतर के प्रकाश को आच्छादित न कर ले। ऐसे व्यक्ति को महावीर भिक्षु कहते हैं।

'जो अपने को सब भांति समाधिस्थ करता है, सूत्रार्थ को जाननेवाला है, वही भिक्षु है।'

समाधि शब्द बड़ा अद्भुत है। समाधान शब्द से हम परिचित हैं। समाधि समाधान का अन्तिम क्षण है। जो व्यक्ति सब भांति अपना समाधान खोज लिया है; जिसके जीवन में अब कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न नही है; जो हर तरह से समाधिस्थ है।

यह थोड़ा सोचने-जैसा है। हम सब पूछते चले जाते हैं। जितना हम पूछते हैं, उतने उत्तर मिल जाते हैं। लेकिन हर उत्तर और नये प्रश्न खड़े कर देता है। हजारों साल से आदमी पूछ रहा है। किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। हर प्रश्न कुछ उत्तर लाता है, लेकिन फिर उत्तर से नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं।

कोई पूछता है, किसने बनाया जगत ? कोई कहता है, ईश्वर ने बनाया। अब फिर सवाल ईश्वर का हो जाता है कि ईश्वर कौन है ? क्यों बनाया ? और इतने दिन तक क्या करता रहा, जब तक नहीं बनाया ? और ऐसा जगत किसलिए बनाया, जहाँ दुख ही दुख है ?

हजार प्रश्न खड़े होते है एक उत्तर से। दर्शन शास्त्र, फिलॉसॅफि–प्रश्न, उत्तर– और उत्तर से हजार प्रश्न— इस तरह बढ़ता जाता है वृक्ष ।

धर्म समाधि की खोज है, उत्तर की नहीं। तो धर्म की यात्रा बिलकुल अलग है। प्रश्न का उत्तर नहीं खोजना है, बल्कि प्रश्न गिर जाए, ऐसी चित्त की अवस्था खोजनी है। एक प्रश्न उठता है 'किसने जगत बनाया', अब इसके उत्तर की खोज में आप निकल जायें तो अनन्त जीवन आप चलते रहेंगे ।

लेकिन धार्मिक व्यक्ति, जिसको महावीर भिक्षु कह रहे है– संन्यासी, वह यह नहीं पूछता कि किसने जगत बनाया ? वह कहता है, यह निष्प्रयोजन है। किसी ने बनाया हो, न बनाया हो— मुझे क्या लेना-देना है ! असली सवाल यह नहीं है कि जगत किसने बनाया। असली सवाल यह है कि मै ऐसी अवस्था में कैसे पहुँच जाऊँ, जहाँ कोई प्रश्न न हो; जहाँ मेरा चित्त निस्तरंग हो जाए; जहाँ कोई समस्या न हो।

यह रास्ता बिलकुल अलग है। अगर प्रश्न छोड़ने हैं तो ध्यान करना पड़ेगा। अगर प्रश्नों के उत्तर खोजने है तो विचार करना पड़ेगा। विचार से उत्तर मिलेंगे; उत्तरों से नये प्रश्न मिलेंगे, और जाल फैलता चला जायेगा।

अगर प्रश्न छोड़ने है तो ध्यान करना पड़ेगा। एक प्रश्न उठता है, उसके उत्तर की खोज में मत जाएँ; उस प्रश्न को देखते हुए खड़े रहे; और तब तक खड़े रहें भीतर, जब तक कि वह प्रश्न तिरोहित न हो जाये; आँख से ओझल न हो जाए; परदे से हट न जाए। हर चीज हट जाती है, आप थोड़ी हिम्मत से लगे रहें।

सोचें, आपको पता होगा कि आपके पिता का चेहरा कैसा है। जब तक आपने गौर नहीं किया, तब तक पता है। आँख बन्द करें, हलकी-सी छवि आयेगी। फिर गौर से देखें, आप बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे— पिता का चेहरा अस्त-व्यस्त होने लगा। अपने ही पिता का चेहरा, और पकड़ में ठीक से नहीं आता। और गौर से देखें... रेखाएँ धूमिल हो गयीं, चेहरा हटने लगा। और गौर से देखें... देखते चले जाएँ। थोड़ी देर में आप पायेंगे, परदा खाली हो गया, वहाँ पिता का कोई चेहरा नहीं है।

चित्त से किसी भी चीज को विसर्जित करना हो— गौर से देखना कला है। टु बी अटेन्टिव— पूरा ध्यान उसी पर हो जाए, वह नष्ट हो जायेगी।

ध्यान अग्नि है। वह किसी भी विचार को जला देती है। आप करें और देखें। किसी भी विचार को सोचें मत, सिर्फ देखें। खड़े हो जाएँ और देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें— थोड़ी देर में आप पायेंगे, वह तिरोहित हो गया; वहाँ खाली जगह रह गयी। वह खाली जगह समाधान है। और जब कोई व्यक्ति ऐसी कला से चलते, चलते, चलते उस जगह पहुँच जाता है, जहाँ प्रश्न उठते ही नहीं, खाली जगह रह जाती है, वह समाधिस्थ है।

इस समाधि में आत्मा का अनुभव होता है, क्योंकि इस समाधि में मन नहीं रह जाता। मन है विचार, जब विचार खो गये; मन है प्रश्न, जब प्रश्न खो गये— तब कोई मन नहीं बचता। अ-मन— नो-माइण्ड।

कबीर ने कहा है: अ-मनी स्थिति आ गयी, अब अमृत झरता ही रहता है। जब मन नहीं रह जाता, अ-मनी स्थिति आ जाती है— उसको महावीर कहते हैं 'समाधि।'

इस समाधि को उपलब्ध हो जाना जीवन का परम लक्ष्य है। इस समाधि को उपलब्ध होकर ही आपके भीतर परमात्मा का फूल खिल जाता है। और जब तक वह फूल न खिल जाए, तब तक जीवन से दुख, उत्तेजना, बेचैनी, तकलीफ, चिन्ता, संताप के मिटने का कोई उपाय नहीं है।

उस फूल के खिलने के लिए ही ये सारा आयोजन है।

तो महावीर कहते हैं: वही है भिक्षु, जो शान्त है इतना कि बाहर से उसका कोई सम्बन्ध न रहा। जो अभय है इतना कि बाहर से कोई भी चीज उसे कम्पित नहीं कर सकती। और जो समाधिस्थ है; जिसके भीतर भी प्रश्न उठने बन्द हो गये, वही भिक्षु है।

भिक्षु-सूत्र : ३

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ६ सितम्बर, १९७३

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे,
अन्नायउंछं पुलनिप्पुलाए ।
कयविक्कयसन्निहिओ विरए,
सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू ॥

अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे,
उंछं चरे जीविय नाभिकंखे ।
इड्ढि च सक्कारण-पूयणं च,
चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥

जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में भी मूर्च्छा (आसक्ति) नही रखता, जो लालची नही है, जो अज्ञात परिवारों के यहाँ से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होनेवाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धन्धों के फेर में नही पड़ता, जो सब प्रकार से निःसग रहता है, वही भिक्षु है ।

जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृद्ध है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिन्ता नही करता, जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है ।

साधारण जीवन एक यान्त्रिक प्रवाह है। जैसे हम उसे नहीं जीते, बल्कि जीवन ही जैसे हमें जीता है। वासनाओं का, इच्छाओं का एक धक्का है जो हमें चलाये रखता है। हम चलते हैं, ऐसा कहना उचित नहीं; क्योंकि चलने में न तो हमारा कोई अपना निर्णय है, न चलने मे हमारा कोई संकल्प है, न कोई दिशा है, न कोई गन्तव्य है। जैसे पानी की धार में कोई तिनका बहा जाता हो, ऐसे ही जीवन की धार में हम बहे जाते है। अहंकार के कारण ही हम सोच लेते हैं कि हम अपने जीवन के नियन्ता हैं। थोड़ा भी निष्पक्ष होकर कोई देखेगा, तो जीवन को यन्त्रवत पायेगा।

पैदा हो जाते हैं; भूख है, प्यास है, कामवासना जगती है, महत्त्वाकांक्षा पैदा होती है, फिर चलते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं और एक दिन गिर कर समाप्त हो जाते हैं। यह सारी दौड़ अन्धेरे में, मूर्च्छा मे है। हम उस शराबी की तरह हैं, जो चल रहा है, लेकिन जिसे पता नही कि कहाँ जा रहा है; और जिसे यह भी पता नही कि कहाँ से आ रहा है; और जिसे यह भी पता नही कि क्यो चलने की जरूरत है। नशा है और चले जा रहे हैं।

और ऐसा प्रत्येक आदमी का जीवन एक वर्तुल की तरह है। और सभी आदमियों के जीवन, जो यन्त्रवत है, करीब-करीब एक-से ही घूमते हैं और एक-से ही समाप्त हो जाते हैं। जैसे प्रकृति में ऋतुएँ आती हैं, और फिर घूमकर वे ही ऋतुएँ आ जाती हैं– फिर वर्षा आती है, फिर सर्दी आती है, फिर गर्मी आती है, फिर वर्षा आ जाती है– ऐसे ही हम सबके जीवन में भी बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है; फिर बचपन है, फिर जवानी है, फिर बुढापा है। सब पुराना वर्तुल एक चक्के की भांति घूमता चला जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अचानक अपने विद्यार्थी जीवन की स्मृति से भर गया। भरने का कारण था, जहाँ से गुजर रहा था, वही वह विद्यापीठ था, वह छात्रावास था, जहाँ विद्यार्थी जीवन में नसरुद्दीन रहा था। प्रबल कामना मन को पकड़ गयी कि जाकर देखूं उस कक्ष को, उस कमरे को, जहाँ मैं वर्षों रहा हूँ– कैसा है वह कक्ष अब? वैसा ही है या सब बदल गया है? जाकर उसने द्वार पर दस्तक दी। कोई दूसरा विद्यार्थी वहाँ रह रहा था। भीतर कुछ हलचल हुई। विद्यार्थी ने दरवाजा खोला। विद्यार्थी थोड़ा घबड़ाया हुआ था।

नसरुद्दीन ने कहा, "क्षमा करना, अकारण ही राह से गुजरता था और याद आ गया कि अपने छात्रावास के कमरे को एक दफा हो आऊं वर्षों बाद।"

कमरे के भीतर गया, देखकर उसने कहा कि द सेम फॉर्निचर– वही पुरानी कुर्सी है, वही मेज है। और तब वह गया आलमारी के पास। उसने आलमारी खोली और वहाँ देखा उसने एक अर्धनग्न युवती छिपी है। तो नसरुद्दीन ने कहा, "द सेम ओल्ड रोमान्स– वही पुराना प्रेम भी चल रहा है।"

लेकिन जैसे ही उसने दरवाजा खोला आलमारी का, वह युवक-विद्यार्थी, जो कमरे में रहता था, घबरा गया। और उसने हकलाते हुए कहा कि सर, शी इज माइ सिस्टर। तो नसरुद्दीन ने कहा, "द सेम ओल्ड लाइ– वही पुराना झूठ। सब वही चल रहा है।"

हर आदमी के जीवन में करीब-करीब वही दुहर रहा है, जो हर दूसरे आदमी के जीवन में दुहरा है। लेकिन एक सुविधा है, क्योंकि हमें दूसरे जीवन का कोई पता नहीं।

हमसे पहले कितने लोग पृथ्वी पर हुए हैं! असंख्यात! वैज्ञानिक कहते हैं, जिस जगह पर आप बैठे हैं, कम से कम वहाँ दस आदमियो की लाशें दब चुकी है। पूरी पृथ्वी लाशों से भरी है। सारी जमीन की मिट्टी किसी न किसी आदमी के शरीर का हिस्सा रह चुकी है। लेकिन हमें उनके जीवन का कोई पता नहीं। इसलिए जब आप पहली दफा प्रेम में पड़ते हैं, तो आप सोचते हैं, ऐसा प्रेम पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ।

ऐसा ही प्रेम हुआ है। ऐसा ही अनुभव भी हुआ है दूसरे लोगो को, जब वे प्रेम में पड़े हैं कि बस, ऐसा कभी नहीं हुआ। जब आप सफल होते हैं तो शायद सोचते हैं, ऐसी सफलता की चमक जमीन पर कभी नहीं घटी। या जब आप असफल होते हैं, और उदासी से भर जाते हैं, तो सोचते हैं, शायद ऐसा दुख का पहाड़ कभी नहीं टूटा।

यही सदा होता रहा है। हर आदमी के जीवन में मौसम की तरह चीजें वैसी ही घूमती रही है। लेकिन हमें दूसरे आदमियों का कोई पता नहीं है। इसलिए हर आदमी को लगता है, सब नया हो रहा है।

कुछ भी नया नहीं हो रहा है। बहुत पुराना सूत्र है कि 'सूर्य के नीचे कुछ भी नया नहीं'। मगर प्रत्येक को ऐसा ही लगता है कि सब कुछ नया है।

यह भ्रान्ति है। और जब तक यह भ्रान्ति न टूट जाए, तब तक हम मुक्त होने की चेष्टा में संलग्न नहीं होते। मुक्त होने की चेष्टा पैदा ही तब होती है, जब हमें ऐसा लगता है कि हम एक जाल में फँसे हैं, जैसे कि गाड़ी के चाक से हमें बांध

दिया गया हो और गाड़ी घूमती चली जाती हो, और हम चाक के साथ घूमते चले जाते हैं।

इसलिए पूरब के मनीषियों ने जीवन की इस लम्बी यात्रा को 'आवागमन' कहा है; 'संसार' कहा है। संसार का अर्थ होता है : चाक— द व्हील। जिसमें वे ही आरे वापिस लौट आते हैं, और यह चक्र घूमता चला जाता है।

यह जो चक्र है, जब तक आपको लग रहा है कि आप कुछ नया जी रहे हैं, तब तक इससे छूटने का आपको ख्याल भी पैदा नहीं होगा। जैसे ही आपकी यह प्रतीति सघन हो जाए कि नया कुछ भी नहीं है, वही-वही दोहर रहा है, ऊब पैदा हो जायेगी। और वही ऊब अध्यात्म की तरफ पहला झुकाव बनती है। इसलिए बुद्ध और महावीर तो निरन्तर अपने शिष्यों को कहते थे कि तुम याद करो अपने पिछले जन्मों को। और उन्होंने रास्ते खोजे थे ध्यान के जिनसे पिछले जन्मों की स्मृति सजग हो जाती है।

उसे महावीर 'जाति-स्मरण' कहते हैं। खोजो अपने पिछले जन्मों को, और जब तुम्हारी स्मृति जगेगी, तब तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि तुम जो आज कर रहे हो, ये तुम लाख बार कर चुके हो। यही लोभ, यही काम, यही आकांक्षा, यही दुख, यही सुख तुम इतनी बार कर चुके हो कि अगर याद भी आ जाए, तो मन विरक्त हो जाए। पुनरुक्ति इतनी हो चुकी है कि अब कहीं कोई रस नहीं है।

लेकिन प्रकृति एक खेल खेलती है कि हर जन्म के बाद हमारा पिछले जीवन का पूरा का पूरा स्मृति का संग्रह बन्द हो जाता है। हर नये जन्म के साथ पुरानी स्मृतियों के सग्रह का द्वार बन्द हो जाता है। तब हमें सब फिर नया मालूम होने लगता है। फिर हम अ, ब, स से शुरू करते हैं।

मेरे एक मित्र हैं; डॉक्टर हैं। एक दुर्घटना में ट्रेन से वे गिर पड़े; भीड़ बहुत थी और दरवाजे से लटके हुए खड़े थे। हाथ छूट गया और गिर गये। गिरने से सिर पर भयानक चोट लगी। ऊपर से तो कुछ चोट पता नहीं चलती थी, लेकिन भीतर से सारी स्मृतियां भूल गयीं। खुद का नाम भी याद न रहा। अपनी मां और अपने पिता को भी नहीं पहचान सकते थे। सारी जानकारी, मेडिकल साइन्स का सारा अध्ययन— सब तिरोहित हो गया। फिर से अ, ब, स से सब शुरू करना पड़ा। तीन साल में इस हालत में हो पाये कि ठीक से बातचीत कर सकें, भाषा समझ सकें, अखबार पढ़ सकें। जब गिरे तब उनकी उम्र कोई पैंतीस—छत्तीस वर्ष थी। वे पैंतीस वर्ष तिरोहित हो गये। वे कहां खो गये!

हमारा सारा का सारा बोध तो स्मृति पर निर्भर है। वह जो हमारी स्मृति है,

अगर वह खो जाए, तो सब अतीत खो जाता है। तीन साल के बाद धीरे-धीरे मस्तिष्क स्वस्थ हुआ और पुरानी स्मृतियाँ फिर जगनी शुरू हो गयीं।

जो लोग जीवन के सम्बन्ध में गहन खोज किये हैं, उनका ख़याल है कि मृत्यु इतना बड़ा शॉक है, इतना बड़ा धक्का है कि ट्रेन से गिरने से इतना बड़ा धक्का नहीं लग सकता। उस धक्के में पुरानी स्मृतियों से हमारा सम्बन्ध छूट जाता है। फिर जन्म भी बहुत बड़ा धक्का है। दोनों ही बड़े ट्रॉमैटिक, बड़े धक्के हैं।

जब एक आदमी मरता है तो सारा स्मृतियों का जगत अस्तव्यस्त हो जाता है; सब सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाते हैं; सब तार खो जाते हैं। फिर जब जन्मता है, तब फिर एक धक्का लगता है। ये दो धक्कों के कारण अतीत से हम बन्द हो जाते हैं। और हर बार हमें लगता है कि सब नया हो रहा है।

यह जो नये का भाव है, जब तक न टूट जाए, तब तक जीवन से मुक्ति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। महावीर कहते हैं कि पीछे लौटकर स्मरण करो। और जरा-सी भी स्मृति आनी शुरू हो जाए तो जीवन से रस खोना शुरू हो जाता है, इस जीवन से, जिसे हम अभी जीवन समझते हैं; और एक नया रस, और एक नया संगीत, और एक नयी दिशा खुलने लगती है, जिसे 'मोक्ष' महावीर ने कहा है।

संन्यस्त व्यक्ति का अर्थ है, जिसे इस जीवन में ऊब पैदा हो गयी। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इस जीवन में सुख अनुभव हो, तो आदमी संसारी रहेगा; और इस जीवन में दुख अनुभव हो, तो भी आदमी ससारी रहेगा। सुख और दुख दोनों में ऊब पैदा हो जाये, बोर्डम पैदा हो जाये, तो आदमी संन्यस्त होता है।

बहुत से लोग जीवन के दुख के कारण जीवन को छोड़ कर संन्यास ले लेते है। उनका संन्यास वास्तविक नहीं है; क्योंकि दुख की प्रतीति इसी बात की खबर है कि उनमें सुख की आकांक्षा अभी मौजूद है। हमें दुख मिलता इसलिए है कि हम सुख चाहते हैं। जो दुख के कारण जगत को छोड़ता है, वह सुख के लिए जगत को छोड़ रहा है। और जो सुख के लिए छोड़ रहा है, वह छोड़ ही नहीं रहा है। क्योंकि सुख की आकांक्षा ही संसार है।

बहुत से लोग दुख में संसार छोड़ते हैं-- शायद सौ में निन्यानबे संन्यासी दुख में ही छोड़ते हैं। उनका संन्यास वास्तविक नहीं हो पाता।

'ऊब--' इस शब्द को बहुत याद रख लें; बोर्डम। जो आदमी जगत को इतना व्यर्थ पाता है कि उसके सुख भी उबाते हैं और दुख भी उबाते हैं; दोनों बराबर हो जाते हैं, ओर दोनों में विरसता आ जाती है-- उस व्यक्ति के जीवन की यात्रा नयी होती है।

इस सम्बन्ध में यह भी ख्याल में ले लेना जरूरी है कि आदमी अकेला प्राणी है जगत में, जो ऊब सकता है। कोई दूसरा पशु ऊब नहीं सकता। किसी भैंस को, किसी घोड़े को, किसी सिंह को कभी भी बोर्डम की हालत में नहीं देखा गया है कि वे ऊबे हुए हों। भैंस रोज अपना वही चारा चबाती रहती है, जुगाली करती रहती है, लेकिन ऊबती नहीं। ऊब बिलकुल मनुष्य के जीवन की घटना है। ऊब बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है; बहुत आध्यात्मिक घटना है।

कोई पशु ऊबता नहीं। आप किसी पशु को आँखों में ऊब नहीं देख सकते। पशु जैसे हैं, तृप्त हैं; जहाँ हैं, तृप्त हैं। जो कुछ भी उन्हें जीवन में उपलब्ध हुआ है, जहाँ उन्होंने जीवन को पाया है, उससे रत्तीभर आगे जाने, ऊपर उठने का कोई सवाल नहीं है। वे अपने वर्तुल को पूरा करके समाप्त हो जाते हैं। उन्हें अपनी यान्त्रिकता का कोई पता नही चलता। और जीवन व्यर्थ है, इसका उन्हें कोई होश नही आता।

मनुष्य अकेला प्राणी है, जो ऊब सकता है। और ध्यान रखें, मनुष्य में जितनी प्रतिभा ज्यादा होगी, उतनी ज्यादा ऊब आयेगी। मनुष्य में भी जो बहुत कम विकसित लोग हैं, उनमें ऊब नही दिखाई पड़ेगी। ऊब आयेगी प्रतिभा के विकास के साथ। जितना विचारशील व्यक्ति होगा, जीवन से उतना ऊबेगा, जल्दी ऊबेगा।

बरट्रैंड रसेल ने कहा है कि मैं आदिवासियों को देखता हूँ, उनकी प्रसन्नता देखकर ईर्ष्या पैदा होती है। लेकिन रसेल को ख्याल नहीं है कि आदिवासी इतने प्रसन्न क्यों हैं। आदिवासियो की प्रसन्नता का मौलिक कारण तो यही है कि वे पशुओं के बहुत निकट हैं। अभी भी ऊब पैदा नहीं हुई। अभी भी जीवन से दूर खड़े होकर जीवन के पुरानेपन को, पुनरुक्ति को देखने की सामर्थ्य उनमें नहीं आयी। अभी वे ठीक प्रकृति में डूबे हुए जी रहे हैं।

रसेल को ऊब मालूम होती है। अगर रसेल पूरब के मुल्कों में पैदा हुआ होता, या पूर्वीय जीवन-दृष्टि का उसे कुछ ख्याल होता, तो यह ऊब उसके लिए आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत हो सकती थी। लेकिन दुर्भाग्य से वह पश्चिम में था। रसेल के जीवन में महावीर और बुद्ध-जैसी घटना घट सकती थी— उतनी ही प्रतिभा थी। लेकिन पूरे पश्चिम की हवा, पूरे पश्चिम का तर्क-जाल ऊब तो पैदा कर देता है, लेकिन इस ऊब से ऊपर उठने की कोई कला पश्चिम विकसित नही कर पा रहा है; इस ऊब को भुलाने भर की कला विकसित कर पा रहा है।

इसलिए पश्चिम मनोरंजन के साधन खोजता चला जाता है। मनोरंजन के साधन इस बात की खबर देते हैं कि आदमी ऊबा हुआ है। उसे किसी तरह भुलाओ।

फिल्म है, संगीत है, नाटक है, नृत्य है, शराब है, भोज है, उत्सव है– उसे किसी तरह भुलाओ। उसकी ऊब प्रगट न हो पाये।

तो पश्चिम मनोरंजन के साधन खोज रहा है; उसी अवस्था में है, जिस अवस्था में महावीर के वक्त भारत था; उसी तरह सम्पन्न है; उसी तरह स्वर्ण शिखर पर खड़ा है। लेकिन पूरब ने ऊब की स्थिति में अध्यात्म खोजा, और पश्चिम ऊब की स्थिति में मनोरंजन खोज रहा है। स्थिति एक ही है।

अगर मनोरंजन खोजते हैं, तो आप ऊब से वापिस नीचे गिर जाते हैं। मनोरंजन का अर्थ है– कुछ नया खोज लिया, कुछ नये में रस आ गया और इसलिए भूल गये कि जिन्दगी एक पुनरुक्ति है। इसलिए आप एक ही फिल्म दोबारा नहीं देख सकते। तीन बार तो बहुत मुश्किल है। चौथी बार तो दंड मालूम पड़ेगा। पाँचवीं बार तो आप बगावत कर देंगे।... क्यों? जिन्दगी तो आप रोज वही-वही देख लेते हैं, लेकिन फिल्म आप दोबारा क्यों नहीं देख सकते?

फिल्म का प्रयोजन ही खत्म हो जाता है दोबारा देखने से। क्योंकि फ़िल्म है ही नये का अनुभव देने की चेष्टा ताकि थोड़ी देर के लिए भूल जाए कि जिन्दगी एक पुरानी बकवास है। जिन्दगी की ऊब को तोड़ने के लिए ही तो मनोरजन है। अगर मनोरजन भी ऊब पैदा करे, पुनरुक्त हो, तो कठिनाई हो जायेगी।

इसलिए फैशन रोज बदलता है। और जितना समाज सचेतन होने लगता है, उतना फैशन जल्दी बदलने लगता है। जितना समाज पुराना होता है– प्रकृति के करीब होता है, पशुओं के निकट होता है, उतने फैशन जल्दी नहीं बदलते। लेकिन जैसे-जैसे समाज सजग, सचेत होता है, फैशन रोज बदलते हैं। हर साल कार का मॉडल बदल जाता है– ऊब पैदा न हो।

पश्चिम में वस्तुओं को बदलने के साथ-साथ व्यक्तिओं को बदलने की भी प्रवृत्ति गहरी हो गयी है। वह भी ऊब का ही परिणाम है। हर साल पत्नी भी बदल लेना चाहिए। नये मॉडल उपलब्ध हो जाते हैं। पुराने मॉडल के साथ जीना सिर्फ पुरानी आदतों की वजह से चल रहा है।

मैंने सुना है, एक फिल्म अभिनेत्री ने अपना सत्तरहवाँ तलाक दिया। और जब उसने अठारहवीं शादी की, तो शादी करने के बाद उसे पता चला कि यह आदमी एक दफा पहले भी उसका पति रह चुका है।

जिन्दगी छोटी है, और अठारह विवाह, और सबकी याददाश्त रखना कठिन है, और जिन्दगी इतनी जोर से भागती हुई है। तो व्यक्ति भी बदलो, भोजन बदलो, कपड़े बदलो, फिल्म बदलो– सब कुछ बदलते रहो ताकि ऊब का पता न चले।

लेकिन कितना ही बदलो, ऊब ज़िन्दगी के भीतर छिपी है। क्योंकि ज़िन्दगी पुनरुक्ति है। और कितना ही फिल्म को बदलो, कहानी तो वही रहती है। कोई कहानी में फर्क नहीं आता।

कोई भी फिल्म रामायण से आगे नहीं जा पाती; जा नहीं सकती। वही ट्राइऐन्गॅल—वही राम, रावण, सीता। वही ट्राइऐन्गॅल है। कहानी के थोड़े डिटेल्स हम बदल लेते हैं, लेकिन वही त्रिकोण चलता रहता है : दो प्रेमी हैं; एक प्रेयसी है। रामायण से आगे फिल्म को ले जाना मुश्किल मालूम पड़ता है। वही कथा है—लेकिन कथा के नाम बदल जाते हैं। थोड़े-से विस्तार की बातें बदल जाती हैं, लेकिन मौलिक बात वही चलती चली जाती है।

क्या करियेगा ! जब ज़िन्दगी ही पुरानी पड़ जाती है, तो कहानी कितनी देर नयी रह सकती है, जो ज़िन्दगी से ही पैदा होती है।

पश्चिम और पूरब का भेद यहाँ है। दोनों ऊब की अवस्था में पहुँच गये। जब पूरब ऊब की अवस्था में पहुँचा, तो उसने सोचा कि इस ऊब के पार कैसे जाया जाये ? इस जीवन से कैसे मुक्त हो ? उससे संन्यास का जन्म हुआ। उससे भिक्षु पैदा हुए, जिन्होंने जीवन से अपने को ऊपर उठा लिया।

पश्चिम में भी ऊब की अवस्था आ गयी। इस ऊब को कैसे भूला जाये ? तो पश्चिम में मनोरंजन के साधन पैदा हो रहे हैं। और कुल चेष्टा इतनी रह गयी है कि शराब, एल. एस. डी., मारिजुआना से किसी तरह अपने को भुला कर हम ज़िन्दगी गुज़ार लें। इसलिए आज पश्चिम की सरकारें, विचारशील नैतिक लोग, पुरोहित, पण्डित— सब इस कोशिश में लगे हैं कि नयी पीढ़ियाँ सम्मोहित करनेवाले, बेहोश करनेवाले रासायनिक तत्वों, एल. एस. डी., मरिजुआना से कैसे बचें।

उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। उनकी कोशिश असम्भव है कि सफल हो। जब तक कि पश्चिम में पूरब का संन्यास स्थापित न हो, उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। क्योंकि ज़िन्दगी दुख दे रही है; दुख ही नहीं दे रही है, ज़िन्दगी ऊब दे रही है। उस ऊब को या तो भुलाओ, या ऊब के पार चले जाओ।

ऊब के पार जाने के सूत्र, महावीर, भिक्षु कौन है, इस संदर्भ में कह रहे हैं। उनके सूत्र को हम समझें।

'जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जो लालची नहीं है, जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होनेवाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धन्धों के फेर में नहीं पड़ता, जो सब प्रकार से निःसंग है, वही भिक्षु है।'

मनुष्य की आसक्ति वस्तुओं के कारण नहीं होती, मनुष्य की आसक्ति अपनी ही बेहोश होने की वृत्ति के कारण होती है। आसक्ति बेहोश होने का एक ढंग है। जब भी आप किसी चीज में बहुत आसक्त हो जाते हैं, तब वह चीज आपको नशा देने लगती है। इसे आपने अनुभव भी किया होगा।

अगर आप किसी स्त्री के प्रेम में हैं, तो आपकी चाल बदल जाती है; आप नशे में चलने लगते हैं। कोई भी देखकर कह सकता है आपको कि अब आप प्रेम में पड़ गये हैं। आपके पैर ठीक जगह पर नहीं पड़ते। आपकी आँखें ठीक देखती नही मालूम पड़ती। आपके कान ठीक सुनते मालूम नहीं पड़ते। जिस स्त्री को आप प्रेम करते हैं, अगर हजार लोगों की भीड़ हो, तो नौ सौ निन्यानबे आदमी आपको दिखाई ही नही पड़ते, वही स्त्री दिखाई पड़ती है। अगर वह स्त्री उठ जाये, तो पूरी सभा उठ गयी; वहाँ अब कोई नहीं है। और आप इस तरह जीने लगते हैं कि जैसे अब इस स्त्री के बिना जीना असम्भव है; या इस पुरुष के बिना जीना असम्भव है।

एक नशा है। वह नशा आपको जिन्दगी को भूलने में सुविधा देता है। यह नशा मनुष्यों के आपसी संबंधों में ही होता है, ऐसा नहीं है, वस्तुओं से भी हो सकता है। जो आदमी धन को प्रेम करता है, वह भी नशे में होता है। जैसे-जैसे उसकी तिजोड़ी में संग्रह बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे उसकी चाल अनूठी होने लगती है; वैसे-वैसे उसका सीना फूलने लगता है; वैसे-वैसे वह जमीन पर नहीं होता, आकाश में उड़ने लगता है। जो आदमी राजनीति के नशे में है, पद के नशे में है, वह जैसे-जैसे पदों के करीब पहुँचने लगता है, उसकी हालत देखें, उसकी हालत बिलकुल वही है, जो शराबी की हो सकती है।

सच तो यह है कि शराबी सबसे कमजोर नशे वाला आदमी है। असल में शराब को वही खोजता है, जो और कोई मजबूत नशा नही खोज पाता। जिन्दगी मे बड़े नशे हैं। इसलिए यह हो सकता है कि नेता लोगों को समझा रहा है कि शराब मत पीयो, और उसे पता ही नही कि वह सिर्फ इसलिए नहीं पी रहा है कि उसे नेता होने की सुविधा है। और नेता होने में इतना मजा है, और इतनी बेहोशी है कि वह शराब का काम कर रही है।

आदमी, जैसी जिन्दगी है, इस जिन्दगी में कोई न कोई नशा खोजेगा। वह नशा कोई भी हो सकता है। इसलिए हमने तो इस देश में विद्या तक को व्यसन कहा है। वह भी नशा हो सकती है। वह भी अपने को भुलाने का उपाय हो सकती है। जिस किसी चीज में भी आत्मस्मृति खोती हो, वही नशा है। और जिससे आत्म-स्मृति बढ़ती हो, वही नशे के पार जाना है।

और पृथ्वी पर हजारों साल से लोग समझा रहे हैं कि नशा छोड़ो। नशा

छूटता नहीं, बढ़ता चला जाता है। ऐसा कोई युग नहीं हुआ, जब लोग नशा न कर रहे हों। नशे के उन्होंने बहाने अलग-अलग खोजे, लेकिन वेद से लेकर आज तक आदमी नशा करता ही रहा है। कभी वह सोमरस पीता है। और अल्डुअस हक्सले, पश्चिम का विचारशील अन्वेषक कहता है कि सोमरस एल. एस. डी. जैसी ही चीज है। और वैज्ञानिक खोज में लगे है, तो वे कहते हैं, सोमरस का जो-जो वर्णन ऋग्वेद में दिया है, वह वर्णन ठीक एल. एस. डी. से मिलता-जुलता है। और हम जल्दी, इस सदी के पूरे होते-होते एल. एस. डी. में और सुधार कर लेंगे, तो वह बिलकुल सोमरस हो जायेगा, जिसको पीकर ऋषि-मुनि देवताओं से बात करने लगते थे; और जिसको पीकर वे परम आनन्दित होकर नाचने लगते थे।

हिप्पी वही कर रहे है।

अल्डुअस हक्सले ने तो, बीसवी सदी के बाद जब वैज्ञानिक आविष्कार और गहरे हो जायेंगे और एल. एस. डी. में परिष्कार हो जायेंगे, तो इक्कीसवीं सदी में जो एल. एस. डी. का परिष्कृत रूप होगा, उसको नाम ही 'सोमा' दिया है— सोमरस के कारण। तो उसका नाम 'सोमा' होगा।

आदमी सदा से ही नशे की तलाश करता रहा है; मूर्च्छित होने के उपाय खोजता रहा है। आदमी क्यों मूर्च्छित होना चाहता है, यह सोचना जरूरी है। होने के पीछे कारण है। आदमी अपने को, जैसा वह है, देखता है, तो बड़ी बेचैनी अनुभव करता है। जैसा आदमी है, अगर जागता है, तो बड़ी उदासी, ऊब पैदा होती है। आप जैसे है, अगर आपको पूरा-पूरा अपना दर्शन होने लगे, तो आप बहुत बेचैन हो जायेंगे, और घबड़ा जायेंगे। शायद आप आत्महत्या करना चाहेंगे। आप कहेंगे, इसमें क्या रखा है? मैं क्या कर रहा हूँ? मेरे होने का क्या अर्थ है; क्या प्रयोजन है?

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने से बचता है। अपने से बचने का नाम नशा है। आप चाहे अपने मित्र के पास जाकर गपशप में अपने को भूल जाते हों, चाहे मन्दिर में जाकर आप धर्म-प्रवचन सुनकर उसमें अपन को भूल जाते हों, चाहे होटल में बैठकर नशा कर लेते हो— कुछ भी करते हों; जहाँ भी आप अपने को भूलने की कोशिश कर रहे हैं, वह कोशिश आपको धार्मिक बनने से रोक रही है।

तो महावीर कहते हैं कि भिक्षु वह है, जो उन उपकरणो तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जिनके माध्यम से वह मुक्ति की तरफ जा रहा है। मोक्ष ले जानेवाले जो साधन हैं, उनमें भी जिसकी मूर्च्छा नहीं है। जो उनमें भी बेहोश नहीं होता। जो उनमें भी अपने को खोता नहीं।

लेकिन साधुओं को देखें। अगर साधु सुबह पाँच बजे उठता है ब्रह्म मुहूर्त में और अपनी प्रार्थना करता है– एक दिन न उठ पाये पाँच बजे, तो बेचैन, परेशान हो जाता है। तो वो ब्रह्म मुहूर्त में उठना भी एक मूर्च्छित आदत हो गयी। अगर एक दिन प्रार्थना न कर पाये तो बेचैनी हो जाती है। तो इस बेचैनी में और शराब पीने-वाले की बेचैनी में बुनियादी फर्क नहीं है। एक दिन शराब न मिले तो बेचैनी हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपनी सहेलियों को कह रही थी कि मेरा दुर्भाग्य कि शराबी से मेरा सम्बन्ध हो गया; शराबी से मैंने विवाह कर लिया। लेकिन सहेलियों ने कहा कि विवाह किये तो दो साल भी हो गये, लेकिन तुमने कभी शिकायत न की? उसने कहा कि दो साल वह रोज शराब पीकर आता था, तो पता ही नहीं चला; कल रात बिना पिये आ गया, तो पता चला कि यह आदमी शराबी है। क्योंकि रातभर वह बेचैन और परेशान रहा।

जिस चीज से भी आपका सम्बन्ध ऐसा बन जाये कि उसके बिना आप बेचैन होने लगें, तो आप समझना कि आपने शराब का सम्बन्ध निर्धारित कर लिया, निश्चित कर लिया। जिसके बिना भी आप अपने को मुश्किल में पायें– वह चाहे ध्यान हो, प्रार्थना हो, पूजा हो, तो आप समझना कि आपने धार्मिक ढंग की शराब अपने आस-पास इकट्ठी कर ली।

महावीर कहते हैं, भिक्षु तो वह है, जो अपने साधनों में भी, उपकरणों में भी, जिनके सहारे वह जा रहा है परमगति की ओर, उनमें भी मूर्च्छित नहीं है।

यह तो गहरी बात है। इसका एक स्थूल रूप भी है। क्योंकि आखिर भिक्षु होगा, तो भी वस्त्र थोड़े-से पहनेगा, भिक्षा पात्र रखेगा, कुछ थोड़ी-सी साधन-सामग्री उसके पास होगी। जीवन के निर्वाह के लिए इतना जरूरी होगा। इसमें भी मूर्च्छा पकड़ जाती है। वो जो दो वस्त्र पास में हैं, उनमें भी रस पकड़ जाता है। वह भी खो जाये तो दुख होगा, तो लगेगा लुट गये। उनको भी संभालकर रखता है। उनको भी बचाकर रखता है कि कहीं चोरी न हो जाये।

जापान का एक सम्राट रात को निकलता था अपनी राजधानी देखने कि क्या स्थिति है– वेश बदलकर। वह बड़ा हैरान हुआ। और सब तो ठीक था, जब भी वह जाता तो एक भिखारी को जागते हुए पाता एक वृक्ष के नीचे। आखिर उसकी उत्सुकता बढ़ गयी। और एक दिन उसने पूछा कि रातभर तू जागता क्यों है? तो उस भिखारी ने कहा कि अगर सो जाऊँ और कोई चोरी कर ले तो? वृक्ष के नीचे बैठा हूँ, कोई और तो सुरक्षा है नहीं, तो दिन में सो लेता हूँ। क्योंकि दिन में तो सड़क चलती रहती है, लोग होते हैं; रात तो जगना ही पड़ता है।

सम्राट ने उसके आस-पास पड़े हुए चीथड़ों का ढेर देखा, दो-चार भिक्षा के टूटे-फूटे पात्र देखे, उनके बचाव के लिए वह रातभर जग रहा है ।

भिखारी भी चिन्तित है कि चोरी न हो जाये । साधु भी चिन्तित है कि उसका कुछ सामान न खो जाये । तो उसकी गृहस्थी छोटी हो गयी, सिकुड़ गयी, लेकिन मिटी नहीं । उसके लालच का फैलाव कम हो गया, लेकिन मिटा नहीं ।

और ध्यान रहे, लालच का फैलाव जितना कम हो जाये, लालच उतना ही ज्यादा नशा देता है; क्योंकि इन्टेन्सिटी बढ़ जाती है । यह जरा समझने-जैसा है । जैसे कि सूरज की किरणें पड़ रही हैं, आग पैदा नहीं होती; लेकिन आप एक लेन्स से सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें एक कागज पर, सारी किरणें इकट्ठी हो जायेंगी, आग पैदा हो जायेगी । किरणें तो पड़ रही थीं, लेकिन बिखरी हुई थीं; इकट्ठी पड़ती हैं तो कागज जल उठता है, आग पैदा हो जाती है ।

ध्यान रहे, साधारण गृहस्थ आदमी की वासना की किरणें तो बिखरी हुई हैं । साधु के पास तो ज्यादा सामान नहीं रह जाता, जिस पर वह अपनी वासना को फैला दे; बहुत थोड़ा रह जाता है, इसलिए बहुत इन्टेन्स, बड़ी तीव्रता से वासना इकट्ठी हो जाती है । और कई बार ऐसा होता है कि फैला हुआ गृहस्थ उतना गृहस्थ नहीं होता, जितना सिकुड़ा हुआ साधु गृहस्थ हो जाता है; जकड़ जाता है । थोड़ी जगह वासना इकट्ठी होकर आग पैदा करने लगती है । इसीलिए मनुष्य का मन अनजाने ही, जैसे सहज वृत्ति से सत्य को जानता है . . . ।

अगर आप एक स्त्री को प्रेम करते हैं तो वह बरदाश्त नहीं करेगी कि आप किसी और स्त्री को प्रेम करें । यह सहज है । कोई चेष्टा नहीं है । लेकिन सहज ही दूसरी स्त्री के प्रति आपका जरा-सा भी लगाव उसे कष्ट देगा । अगर आपकी पत्नी किसी दूसरे में जरा ज्यादा उत्सुकता लेती है, तो आपको कष्ट होना शुरू हो जायेगा ।

कारण है । और कारण ये है कि जितनी वासना फैल जाती है, उसकी तीव्रता कम हो जाती है-- तो जो आग पैदा हो सकती है वासना से, वह फिर पैदा नहीं होती ।

इसलिए प्रेमी डरते हैं कि कहीं वासना ज्यादा लोगों पर न फैल जाये । तो सब तरफ से वासना की किरणें एक ही व्यक्ति पर इकट्ठी हों । इसलिए प्रेमी एक-दूसरे को मॅनोपॅलाइज करते हैं; पॅजेस करते हैं एक-दूसरे को बिलकुल अपने पर रोक लेना चाहते हैं-- जरा-सी भी वासना कहीं न जाये ताकि वासना की तीव्रता और चोट आग पैदा कर सके ।

इसलिए इतना भय प्रेमियों को लगा रहता है; और इतनी ईर्ष्या, और इतनी जलन, और इतना उपद्रव पकड़े रहता है ।

इस सबके पीछे कोई बड़ी नैतिकता नहीं है । इस सबके पीछे कोई धर्म नहीं है और कोई समाज नहीं है । इस सबके पीछे मनुष्य का सहज अनुभव है कि वासना अगर बिखर जाये तो कुनकुनी हो जाती है; उसमें आग नहीं रह जाती । अगर वासना बहुत लोगों पर फैल जाय तो फिर उससे गहरे सम्बन्ध निर्मित नही हो सकते । फिर सतह पर ही मिलना हो पाता है ।

साधु अपनी वासना को सिकोड़ लेता है सब तरफ से; घर छोड़ देता; पत्नी छोड़ देता; धन छोड़ देता, लेकिन तब उसकी वासना, जो उसके आस-पास रह जाता है, उस पर केंद्रित होने लगती है ।

यह बड़े मजे की बात है कि बाप नही मिलेंगे ऐसे, जो अपने बेटे के प्रति इतने आसक्त हैं, जितने गुरु मिल जायेंगे, जो अपने शिष्य के प्रति इतने आसक्त हैं । गुरु जितना बेचैन रहता है कि कहीं शिष्य और कही न चला जाये, किसी और को गुरु न बना ले, कही और न भटक जाये— उतना बाप भी चिन्तित नही रहता; उतना बाप भी परेशान नही रहता ।

और निश्चित ही अगर गुरु को संन्यस्त होने का पूरा अनुभव नही हुआ है अभी, तो ही यह हो सकता है । गुरु नहीं है ठीक अर्थों में, तो ही यह हो सकता है । — बुरी तरह शिष्य को जकड़ लेता है, सब तरफ से बाँध लेता है, पंजेसिंह हो जाता है ।

यह न केवल व्यक्तियों के सम्बन्ध में होगा, चीज़ों के सम्बन्ध में भी हो जायेगा । जो थोड़ी-सी चीजें साधु के पास रह जायेंगी, उन पर वह सारा संसार आरोपित करेगा । वही उसका संसार है । आप लाख रुपये की चीज को भी इतना संभाल कर नही रखेंगे, जितना साधु दो कोड़ी की चीज को संभालकर रखेगा ।

महावीर कहते हैं, ऐसी मूर्च्छा अगर हो तो भिक्षु अभी भिक्षु नही है ।

'जो लालची नही है, गृद्ध नहीं है, लोभी नहीं है . . . ।'

लोभ बड़ी सूक्ष्म वृत्ति है । और इसका सम्बन्ध धन से, मकान से, जमीन-जायदाद से नहीं है । इसका सम्बन्ध भीतर की एक गहरी आकांक्षा से है । और वह आकांक्षा है— और ज्यादा, और ज्यादा— किसी भी सम्बन्ध में ।

अगर लाख रुपया आपके पास है, तो आपका लोभ कहेगा— और ज्यादा । अगर आपको उम्र सत्तर वर्ष की मिली है, तो लोभ की वासना कहेगी— और ज्यादा । अगर आपको ध्यान में थोड़ी-सी शान्ति मिल रही है, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी— और ज्यादा । अगर आपको मोक्ष के थोड़े-से दर्शन होने लगे हैं, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी— और ज्यादा ।

लोभ की आकांक्षा का सूत्र है– और ज्यादा; जितना है, उतना काफी नहीं। तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप घर छोड़कर चले गये, दुकान छोड़कर चले गये। 'और ज्यादा' में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरे पास लोग आते हैं; ध्यान कर रहे हैं। उन्हें शांति मिलती है। जब उन्हें शुरू-शुरू में शान्ति मिलती है, वो बड़े प्रसन्न होते हैं। फिर थोड़े दिन बाद आकर वे कहने लगते हैं कि अब ठीक है, यह शान्ति तो ठीक है– अब और आगे क्या? अब कुछ आगे बढ़ायें। आनन्द कब मिलेगा? उनको पता नहीं कि जब 'और ज्यादा' का खयाल छूट जायेगा, तभी आनन्द मिलेगा। वही अड़चन है। क्योंकि 'और ज्यादा' का ख्याल ही दुख देता है। वही बाधा है। और आप 'और ज्यादा' को हर जगह लगा लेते हैं। कुछ भी हो, वह लग जाता है। कहीं भी वह वृत्ति जुड़ जाती है और बेचैनी शुरू हो जाती है।

आपको परमात्मा भी मिल जाये, तत्क्षण जो बात आपके मन में उठेगी, वह यह होगी कि अच्छा, ठीक है– यह तो ठीक, अब और ज्यादा...। आप सोचें, खुद अपने मन के बाबत सोचें कि मिल गया परमात्मा– तृप्ति नहीं होगी।

मन कुछ ऐसा है कि अतृप्त रहना उसका स्वभाव है। लोभ मन की आधारभूत वृत्ति है। जहाँ लोभ मिट जाता है, वहाँ मन मिट जाता है। जहाँ लोभ नहीं वहाँ मन के निर्मित होने का कोई उपाय नहीं है। मन कहता है, जो है यह काफी नहीं है, और ज्यादा हो सकता है।

और वह जो नहीं हो रहा है, उससे पीड़ा आती है; जो हो रहा है, उसका सुख खो जाता है। इसे थोड़ा समझें।

आप अपना दुख इसी वृत्ति के कारण पैदा कर रहे हैं। इसको महावीर कहते हैं गृद्ध-वृत्ति– गीध के जैसी वृत्ति। अगृद्ध होगा भिक्षु। जो भी है, वह कहेगा, इतना ज्यादा है कि मेरी क्षमता नहीं थी वह मुझे मिला। वह हमेशा अनुगृहीत भाव से भरा होगा। एक ग्रैटिट्यूड होगा उसमें।

आप जब तक लोभ से भरे हैं, आपमें अनुग्रह नहीं हो सकता। आपको कुछ भी मिल जाये, तो भी शिकायत ही होगी। आपकी जिन्दगी एक लम्बी शिकायत है। उसमें कभी भी अहोभाव नहीं हो सकता। क्योंकि आप सदा जानते हैं, और ज्यादा मिल सकता था; और ज्यादा मिल सकता था, जो नहीं मिला।

भिक्षु का अर्थ है; संन्यस्त का अर्थ है– ऐसा व्यक्ति, जिसे जो भी मिल जाये, तो वह हमेशा अनुभव करता है कि जो मुझे नहीं मिल सकता था, वह मिल गया; जो मेरी पात्रता नहीं थी, वह मुझे मिल गया; जिसको पाने का मैं अधिकारी नहीं

था, वह मुझ पर बरस गया। वह हमेशा अनुगृहीत है। ग्रैटिटयूड उसका स्वभाव हो जायेगा। जो भी मिल जाये, वह उसे इतनी परम तृप्ति देगा कि आनन्द के द्वार ज्यादा देर तक बन्द नही रह सकते, कि मोक्ष ज्यादा दूर नही रह सकता।

और ध्यान रहे कि संन्यस्त व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश नहीं करता, संन्यस्त व्यक्ति में मोक्ष प्रवेश करता है। मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नही है, जिसमें आप चले गय। अगर ऐसी कोई जगह कहीं होती तो आपमें से कोई न कोई रिश्वत का रास्ता, पीछे का दरवाजा जरूर खोज लिया होता इतने लम्बे समय में। आदमी काफी कुशल है।

लेकिन अच्छा ही है कि मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नही है, नही तो शैतान और चालाक उसपर कब्जा कर लेते; निरीह, सीधे-साधे लोग बाहर रह जाते। जो योग्य होते, वे बाहर रह जाते; जो अयोग्य होते, वे भीतर सिंहासनों पर विराजमान हो जाते। लेकिन मोक्ष में राजनीतिज्ञ नही घुस पाते, चालाक नही घुस पाते; बेईमान नही घुस पाते। उसका कारण यह है कि मोक्ष कोई जगह नही है जिसमें प्रवेश किया जा सके। मोक्ष एक अवस्था है जो आपमें प्रवेश करती है। जब आप तैयार होते हैं, वह प्रविष्ट हो जाती है। ठीक तो कहना यह होगा कि वह कोई अवस्था नही जो आपमें बाहर से आती है—भीतर मौजूद है। जैसे ही 'और ज्यादा' की वृत्ति खो जाती है, उसका अनुभव शुरू हो जाता है।

'और ज्यादा' में उलझा हुआ आदमी उसे नही देख पाता, जो भीतर मौजूद है। सन्तुष्ट, अहोभाव से भरा व्यक्ति दौड़ता नहीं, उसका मन कहीं और जाता नही। वह उससे तृप्त हो जाता है, जो भीतर है।

आदमी का मन किसी भी चीज से तृप्त नही होता। थोड़ी देर सोचें कि ऐसी कौन-सी चीज है, जो आपको मिल जाये, तो आप तृप्त हो जायेंगे।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरा, स्वर्ग पहुँचा, तो उसने सेन्ट पीटर से कहा कि मेरी एक आकांक्षा जीवनभर रही है। एक व्यक्ति से मैं मिलना चाहता हूँ, जो स्वर्ग में है। और मुझे कोई सवाल पूछना है।

सेन्ट पीटर ने कहा कि मिलने का इन्तजाम करवा देंगे, अगर वह व्यक्ति, जिससे तुम मिलना चाहते हो, स्वर्ग में हो तो। नसरुद्दीन ने कहा कि बिलकुल निश्चित है कि वह स्वर्ग में है, आप सिर्फ इन्तजाम करवायें। मैं जीसस की मां मैरी से मिलना चाहता हूँ।

पीटर भी थोड़ा हैरान हुआ कि क्या प्रयोजन होगा! वह भी उत्सुक हुआ। उसने कहा, "क्या मैं भी मौजूद रह सकता हूँ तुम्हारी मुलाकात के वक्त? तुम क्या पूछना चाहते हो आखिर जीसस की माँ से?"

नसरुद्दीन ने कहा, "एक प्रश्न मेरे मन में सदा से अटका है; बस, वही पूछना है।"

जीसस की मां मैरी के पास उसे ले जाया गया। मैरी का भव्य रूप। चारों तरफ गिरती प्रकाश की किरणें। आभा-मण्डल। आनन्द का सागर चारों तरफ। नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा कि मैं तुमसे एक ही सवाल पूछना चाहता हूँ। मेरे मन में सदा यह उठता रहा है, क्योंकि मेरे लड़के सब नालायक निकल गये। मै दुखी रहा हूँ उनकी वजह से। मेरी पत्नी दुखी है अपने बेटों की वजह से। और मैंने पृथ्वी पर ऐसा कोई मां और बाप नही देखा, जो दुखी नही है। मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि तुम्हें तो जीसस जैसा बेटा मिला– जिसे लोग, हजारों-लाखों लोग ईश्वर की प्रतिमा मानते हैं— परमात्मा ही मानते हैं। तो जब तुम जमीन पर थी और जीसस पैदा हुआ और जब जीसस ऐसा प्रभावी हो गया कि लाखों लोग उसे ईश्वर मानने लगे, तब तुम्हारे मन को कैसा हुआ? तुम तो कम से कम तृप्त रही हो?

मैरी ने कहा, "टु बी फ्रैन्क, नसरुद्दीन आइ ऐन्ड माइ हेजबॅन्ड, वी बोथ वेअॅर होपिंग दैट ही गुड बिकॅम ए गुड कारपॅण्टॅर। अच्छा बढ़ई बन जायेगा, ऐसा हम दोनों का ख्याल रहा, आशा थी। और हम दोनों बड़े उदास हुए, जब उसने सब धन्धा छोड़ दिया और फिजूल की बातो में लग गया। बॅट, नसरुद्दीन, डोन्ट टेल इट टु एनि बॉडि, दे वोन्ट बिलीव इट— अब तुम पूछ ही रहे हो तो मैं सच्ची बात कहे देती हूँ कि उस वक्त तो हमारे मन में यही भाव था।"

क्योंकि जीसस का बाप बढई था। और बढ़ई चाहता होगा कि उसका बेटा अच्छा बढई बने। दूर-दूर तक उसकी ख्याति पहुँचे– उसके सामानों की, उसके फर्नीचर की, उसकी बनायी हुई चीजों की। तो मैरी बड़ी सच्ची बात कह रही है। और मैरी-जैसी मां ही कह सकती है इतनी सच्ची बात।

आदमी का मन ऐसा है। उसकी वासनाएँ क्या हैं, चाहता क्या है। अगर परमात्मा भी उपलब्ध हो, तो भी तृप्ति नही होनेवाली। तो भी कुछ अतृप्त रह जायेगा। कही कुछ खटकता ही रहेगा। कही कोई शिकायत मौजूद रह जायेगी।

अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह नहीं है कि आपकी जिन्दगी में शिकायत है। अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह है कि जैसा मन आपके पास है, वह मन शिकायत से भरा ही हो सकता है।

हम पूरे जीवन इन शिकायतों को मिटाने की कोशिश करते हैं। महावीर

कहते है : संन्यस्त वह है, जो शिकायत के मूल आधार को भीतर तोड़ देता है। वह मूल आधार लोभ है, लालच है— 'और ज्यादा' का भाव।

'जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा माग लाता है . . .।'

महावीर का बहुत जोर है कि भिक्षु अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगे। क्योंकि ज्ञात परिवारों से सम्बन्ध निश्चित होने शुरू हो जाते है। और जैसे ही सम्बन्ध बनने लगते हैं, भिक्षु की आकाक्षाएँ सजग हो सकती है। अनजाने, अचेतन मे भी वह आशा कर सकता है कि क्या मिलेगा। तो अज्ञात परिवारो से इसलिए ताकि भविष्य सदा अनजान रहे। जैसे ही भविष्य जाना-माना होता है, मन सक्रिय हो जाता है। भविष्य बिलकुल 'अँनूनोन' रहे। यह भी अन्दाज न हो कि जिस द्वार पर खड़े होकर मैं भीख मागूँगा, वहाँ भीख मिलेगी भी या नही। भीख मिलेगी तो रूखी-सूखी रोटी मिलने वाली है या कुछ मिष्टान्न मिलने वाले है। गाली मिलेगी, अपमान मिलेगा; दरवाजे से हट जाने की आज्ञा मिलेगी . . .।

एक बौद्ध भिक्षु की कथा है कि वह एक ब्राह्मण के द्वार पर भिक्षा मागने गया। ब्राह्मण का घर था, बुद्ध से ब्राह्मण नाराज था। उसने अपने घर के लोगों को कह रखा था कि और कुछ भी हो, बौद्ध भिक्षु भर को एक दाना भी मत देना कभी इस घर से। ब्राह्मण घर पर नही था, पत्नी घर पर थी, भिक्षु को देखकर उसका मन तो हुआ कि कुछ दे दे। इतना शान्त, चुपचाप, मौन भिक्षा-पात्र फैलाये खडा था, और ऐसा पवित्र, फूल-जैसा। लेकिन पति की याद आयी कि वह पति पण्डित है— और पण्डित भयंकर होते हैं— वह लौटकर टूट पड़ेगा। सिद्धान्त का सवाल है उसके लिए। कौन निर्दोष है बच्चे की तरह, यह सवाल नही है, सिद्धान्त का सवाल है— भिक्षु को, बौद्ध भिक्षु को देना अपने धर्म पर कुल्हाड़ी मारना है। वहाँ शास्त्र मूल्यवान है, जीवित सत्यों का कोई मूल्य नही है। तो भी उसने सोचा कि इस भिक्षु को ऐसे ही चले जाने देना अच्छा नही होगा। वह बाहर आयी और उसने कहा . क्षमा करें, यहाँ भिक्षा न मिल सकेगी।

भिक्षु चला गया। पर बड़ी हैरानी हुई कि दूसरे दिन फिर भिक्षु द्वार पर खड़ा है। वह पत्नी भी थोड़ी चिन्तित हुई कि कल मना भी कर दिया। फिर उसने मना किया।

कहानी बड़ी अनूठी है; शायद न भी घटी हो, घटी हो। कहते है, ग्यारह साल तक वह भिक्षु उस द्वार पर भिक्षा मांगने आता ही रहा। और रोज जब पत्नी कह देती कि क्षमा करें, यहाँ भिक्षा न मिल सकेगी, वह चला जाता। ग्यारह साल में पण्डित भी परेशान हो गया। पत्नी भी बार-बार कहती कि क्या अद्भुत आदमी है! दिखता है कि बिना भिक्षा लिये जायेगा ही नही। ग्यारह साल काफी लम्बा

बक्त है। आखिर एक दिन पण्डित ने उसे रास्ते में पकड़ लिया और कहा कि सुनो, तुम किस आशा से आये चले जा रहे हो, जब तुम्हें कह दिया निरन्तर हजारों बार ?

(उस भिक्षु ने कहा, "अनुगृहीत हूँ। क्योंकि इतने प्रेम से कोई कहता भी कहाँ है कि जाओ, भिक्षा न मिलेगी ! इतना भी क्या कम है ? भिखारी के लिए द्वार तक आना और कहना कि क्षमा करो, भिक्षा न मिलेगी, क्या कम है ? मेरी पात्रता क्या है ! अनुगृहीत हूँ। और तुम्हारे द्वार पर मेरे लिए साधना का जो अवसर मिला है, वह किसी दूसरे द्वार पर नहीं मिला है। इसलिए नाराज मत होओ, मुझे आने दो। तुम भिक्षा दो या न दो, यह सवाल नहीं है।")

महावीर कहते हैं, अज्ञात द्वार से। जानी-मानी जगह भिक्षा मिल जायेगी। भिक्षा मूल्यवान नहीं है। भिक्षु के लिए, सन्यस्त के लिए भोजन मूल्यवान नही है, भोजन के प्रति जो उसका रुख है, दृष्टिकोण है, वह मूल्यवान है।

तो अज्ञात द्वार पर,जहाँ कोई अपेक्षा नही है, जहाँ सम्भावना है इनकार की, वहाँ से भिक्षा माँग लाता है जो ।

किसी तरह की अपेक्षा का फैलाव न हो जीवन में, तो संसार बिखर जाता है। हम तो ऐसी अपेक्षाएँ बना लेते है, जिनका हमें पता नही है। अगर आप रास्ते पर मुझे मिलते है, मैं रोज नमस्कार कर लेता हूँ, एक दिन नमस्कार न करूँ तो आप दुखी हो जाते हैं कि इस आदमी ने नमस्कार क्यो नही किया ? . . . क्या मतलब ?

नमस्कार तक की हम अपेक्षा बना लेते है कि कौन करेगा। जो आदमी आपको देखकर रोज मुसकराता है, अगर न मुसकराये, तो आप बेचैन है। तब फिर आदमियो को झूठा मुसकराना पड़ता है। आप देखें कि वे मुस्करा रहे हैं, उन्होंने मुँह फैला दिया—अकारण, कोई कारण नही है। लेकिन आप—नाहक उपद्रव खड़ा करना कोई उचित भी नही है—आप भी मुसकरा रहे है, वह भी मुसकरा रहे है। दो झूठी मुसकराहटें, जिनके पीछे दोनों आदमियों को कोई लेना-देना नही है !

अपेक्षाएँ जीवन को झूठा कर जाती है।

महावीर कहते हैं : न तो खुद झूठे हों, और न दूसरों को झूठा होने का मौका देना, क्योंकि वह भी पाप है। अगर दो-चार दिन तुम एक जगह से भिक्षा माग लाये और पाँचवें दिन गये, तो उस घर के लोग भी सोचेंगे, भिक्षु अपेक्षा रखता है। अगर न देंगे तो दुखी होगा। और अगर न देंगे तो हमारी प्रतिष्ठा को भी चोट पहुँचती है। अगर नहीं देंगे तो हमें भी अच्छा नही लगेगा। तो शायद उन्हें देना पड़े, जबतकि वे नही देना चाहते थे। तो तुम अज्ञात द्वार पर जाना, जहाँ कोई अपेक्षा का सम्बन्ध नहीं है।

'जो संयम-पथ में बाधक होनेवाले दोषों से दूर रहता है,. . . .।'

संयम-पथ पर बहुत-सी बाधाएँ हैं, होंगी ही। उन बाधाओं से जो दूर रहता है। दूर रहने का प्रयोजन इतना है कि अकारण उनमें उलझने की कोई जरूरत नही है।

आप जहाँ रह रहे है, वहाँ चारों तरफ हजारो तरह के लोग है। एक संन्यस्त व्यक्ति अगर आपके गांव में आता है, हजार तरह की बाधाएँ आप मौजूद कर देंगे बिना सचेतन रूप से जान हुए। आप गांव की गपशप जाके उसे सुनाने लगेंगे; किसी की निन्दा, किसी की प्रशसा करने लगेंगे। उस आदमी को भी आप पक्ष-विपक्ष में बाटने लगेंगे।

यदि संयम-पथ का सच में कोई साधक हो, तो इन सारी चीजों से ऐसे दूर रहेगा, जैसे यह सब घटनाएँ उसके आस पास नही घट रही। वह तभी बोलेगा, जब उसकी साधना के लिए सहयोगी हो। अन्यथा चुप होगा। वह किसी चीज में सहमति-असहमति नही देगा, जब तक कि वह उसकी साधना के लिए कुछ सहयोगी न हो। वह व्यर्थ की बातें सुनना भी नही चाहेगा, सुनाना भी नही चाहेगा। वह ऐसी कोई चीज खड़ी नहीं करना चाहेगा, जिससे आज नही कल जाकर परेशानी शुरू हो जाये।

परेशानियाँ बड़ी छोटी चीजों से शुरू होती है।

आपने सुनी होगी, बहुत प्राचीन कथा है। एक सन्यासी जंगल में रहता है अकेला। भिक्षा मांगने जाता है। भिक्षा लेकर आता है तो घर में कभी थोड़ी देर को रोटी रख देता है; भोजन रख देता है। थोडी रोटी भोजन रुक जाता है, तो चूहे धीरे-धीरे घर में पैदा हो गये, आने लगे पड़ोस से, जंगल से, खेतो से। तो किसी मित्र ने सलाह दी— एक भक्त ने— कि ऐसा करो, एक बिल्ली पाल लो। बिल्ली चूहों को खा जायेगी।

सन्यासी को तो जँचा। उसने अगर महावीर का सूत्र पढा होता, तो बिलकुल नही जँचती यह बात। क्योंकि बिल्ली पालने से झंझट ही शुरू होने वाली थी। बिल्ली के पीछे पूरा संसार आ सकता है; क्योंकि पालने की वृत्ति, वो गृहस्थ का लक्षण है। लेकिन बिल्ली पालना उसको भी निर्दोष लगा—– मामला कोई झंझट का नहीं है। कोई संसार तो है नही। बिल्ली से किसी का मोक्ष कभी अटका हो, ऐसा सुना भी नहीं। बिल्ली ने किसी संन्यासी को भ्रष्ट किया हो, इसका कोई इतिहास भी नही।

कोई कारण नहीं था। शास्त्रों में कोई उल्लेख भी नहीं कि बिल्ली मत पालना। शास्त्र भी कितना इन्तजाम कर सकते हैं! संसार बड़ा है, शास्त्र बड़े छोटे हैं। तो सूत्र दिये जा सकते है, लेकिन डिटेल्स, विस्तार में तो कुछ नहीं कहा जा सकता।

संन्यासी ने बिल्ली पाल ली। बिल्ली तो पाल ली, लेकिन अड़चन शुरू हुई। क्योंकि बिल्ली के लिए अब दूध माग कर लाना पड़ता। भक्त ने, किसी ने सलाह दी कि क्यों इतना परेशान होते हो, गाय हम भेंट किये देते हैं, तुम एक गाय रख लो।

संन्यासी ने कहा : गाय तो वैसे भी गऊ-माता है। गऊ-माता की पूंछ पकड़कर कोई मोक्ष भला पहुँचा हो, बाधा तो किसी को नही पड़ी। और वैतरनी पार करनी हो तो गऊ-माता की पूँछ ही पकड़नी पड़ती है। इसमें कुछ अड़चन नही है। बिल्ली तो शायद कुछ शैतान से सम्बन्ध भी रखती हो, गाय तो एकदम शुद्ध परमात्मा से जुड़ी है।

गाय भी रख ली। गाय रखते ही अड़चन शुरू, हुई क्योंकि घास-पात की जरूरत पड़ने लगी। अब रोज़ घास खरीद के लाओ, या माग कर लाओ... किसी भक्त ने

...... और भक्त सदा मौजूद है, जो सलाह देने को तैयार हैं। और बेचारे नेक सलाह देते हैं। उनकी तरफ से कुछ भूल नहीं है।

भक्त ने कहा : इतनी झंझट क्यो करते हो? थोड़ी-सी खेती-बाड़ी आस पास ही कर लो। तो गाय का भी काम चले, तुम्हारा भी काम चले; बिल्ली का भी काम चले।

अब काफी संसार बड़ा हो गया। बेचारे ने खेती-बाड़ी शुरू कर दी। मजबूरी थी, अब ये गाय मर न जाये। दूध की भी जरूरत थी। फिर उस गाय को चराने भी ले जाना पड़ता। फिर खेती-बाड़ी काटनी भी पड़ती। वक्त पर फसल भी बोनी पड़ती। फिर ये उसे थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ने लगा। प्रार्थना-पूजा का समय ही न बचता, ध्यान का कोई उपाय न रहा।

तो एक परम भक्त ने कहा : ऐसा करो कि तुम विवाह कर लो। एक पत्नी रहेगी, साथी-सहयोगी होगी। वह सब देखभाल कर लेगी, तुम अपना ध्यान करना। अब तुम्हें ध्यान का बिलकुल समय ही नही बचा।

साधु को भी बात तो समझ में आयी। क्योंकि इतना उपद्रव फैल गया कि उसको कौन संभाले।

अगर आपने घर बसा लिया तो घरवाली ज्यादा देर दूर नही रह सकती। वह आयेंगी। उसके बिना घर बस भी नही सकता। अड़चन होगी।

उसने शादी भी कर ली। लेकिन शादी से किसी को ध्यान करने का समय मिला है! जो थोड़ा-बहुत मिलता था, गाय-बिल्ली से बचता था, वह भी खो गया।

फिर जब यह साधु मर रहा था तो इसके शिष्यों ने इससे पूछा कि तुम्हारा

कोई आखिरी सन्देश ? तो उसने मरते वक्त कहा कि बिल्ली भूलकर मत पालना ! बिल्ली संसार है !

महावीर कहते है : संयम के पथ पर बहुत सचेत होने की जरूरत है कि कौन-सी चीज बाधा बन जायेगी। आज चाहे दिखाई भी न पड़ती हो। क्योंकि चीजें जब शुरू होती हैं, बड़ी सूक्ष्म होती हैं। धीरे-धीरे उनका स्थूल रूप निर्मित होना शुरू होता है। बहुत सूक्ष्म होती है। किसी ने भिक्षा दी, और आपने धन्यवाद दिया। वह धन्यवाद देने में कही कोई संसार नहीं आ रहा है, लेकिन आ सकता है। उस धन्यवाद में ही संसार आ सकता है।

तो महावीर कहते है, धन्यवाद भी मत देना। भिक्षा किसी ने दी तो न तो सुख अनुभव करना और न दुख। चुपचाप हट जाना जैसे कुछ हुआ ही नही।

धन्यवाद देने तक कभी मनाही करते है, क्योकि वह धन्यवाद भी सम्बन्ध निर्मित करता है। और जिसको तुमने धन्यवाद दिया, उससे तुम्हारा भीतरी एक नाता बनना शुरू हो गया। और अगर बिल्ली से संसार आ सकता है, तो धन्यवाद से भी आ सकता है।

इसलिए महावीर कहते है, होश रखना। कोई भी सूक्ष्म ऐसा कृत्य मत करना जिसके पीछे स्थूल जाल निर्मित हो जाये। और हर चीज के पीछे स्थूल निर्मित हो सकता है। इसलिए संयम का पथ अत्यन्त होश का और सावधानी का, सावचेतता का पथ है।

'जो खरीदने-बेचने और सग्रह करने के गृहस्थोचित धन्धों के फेर में नहीं पड़ता . . .।'

गृहस्थी सवाल नही है, गृहस्थी के कुछ विशेष धंधे है जिनके आस पास गृहस्थी निर्मित होती है। गृहस्थी का मतलब वह स्थूल घर नही है, जहाँ आप रहते हैं; वह पत्नी नहीं है, जहाँ आप रहते हैं; वह बच्चे नही है, जहाँ आप रहते है। गृहस्थी का मतलब है कि आप कुछ अर्थशास्त्र के जगत मे जुड़े है; कुछ इकॅनॉमिक्स के जगत में जुड़े हैं।

मेरे एक मित्र हैं। उनको घर बनाने का बड़ा शौक है। फिर वे संन्यासी हो गये। जब वे सन्यस्त नहीं थे, तब भी वे घर बनाते थे। अपने मित्रों के घर भी बनवा देते थे। छाता लगाकर धूप में खड़े रहते, और बड़े खुश होते थे, जब कोई नयी चीज बनवा देते। उनको एक ही शौक है, कि अच्छे घर। उनमें नयी डिजाइन, नये ढंग, नये प्रयोग। फिर वे संन्यस्त हो गये। कोई दस साल बाद मैं उनके गाँव के करीब से गुजरता था, जहाँ वे संन्यस्त होकर रहने लगे थे।

तो जो मित्र ड्राइव कर रहे थे, उनसे मैंने कहा कि दस मिल का चक्कर तो ज़रूर होगा, लेकिन मैं देखना चाहता हूँ कि वे क्या कर रहे हैं। ज़रूर वे छाता लिये खड़े होंगे।

उन्होंने कहा : आप भी पागल हो गये हैं ! अब वे संन्यस्त हो गये हैं। दस साल हो गये उन्हें संन्यस्त हुए, और अब क्यों छाता लेकर खड़े होंगे ? मैंने कहा : वे ज़रूर खड़े होंगे। फिर भी चलकर देख लें।

आश्चर्य की बात, वे खड़े थे ! आश्रम बनवा रहे थे। छाता लगाये धूप में खड़े थे, आश्रम बनवा रहे थे। वे कहने लगे कि यह ज़रा आश्रम बन जाये तो शान्ति हो। मैंने कहा : यह शान्ति कभी होने वाली नहीं। तुम इसी सब उपद्रव से छूटकर संन्यासी हुए थे। लेकिन उपद्रव बाहर नहीं, उपद्रव भीतर है। पर उन्होंने कहा : वह गृहस्थी की बात थी, यह तो आश्रम बन रहा है।

शंकराचार्य तक अदालतों में खड़े होते हैं, क्योंकि आश्रम का मुकदमा चल रहा है। फर्क क्या है ? आप अपने घर के मुकदमे के लिए अदालतों में खड़े होते हैं; शंकराचार्य अपने आश्रम के मुकदमे के लिए खड़े होते हैं।

लेकिन मुकदमा चल रहा है !

महावीर कहते हैं : गृहस्थोचित धन्धों में— लेन-देन, खरीदना-बेचना— इस तरह की जो वृत्तियाँ हैं उनसे ज़रा भी भिक्षु सम्बन्धित न हो। अन्यथा उसे पता भी नहीं चलेगा, कब छोटे-से छिद्र से पूरा संसार भीतर चला आया।

'जो सब प्रकार से निःसंग रहता है, वही भिक्षु है।'

निःसंगता बड़ा मौलिक तत्त्व है; कठिन भी बहुत है। क्योंकि हम सदा संग चाहते हैं। संग की चाह हममें बड़ी गहरी है— कोई साथ हो। अकेले होने में बड़ा बुरा लगता है। अकेला कोई भी नहीं होना चाहता। आप जब भी अकेले छूट जाते हैं, तब बेचैनी अनुभव करते हैं कि क्या करें, क्या न करें। कुछ सूझता नहीं। अकेले होने में बड़ी मुसीबत है।

एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, लियोपोल गोडवस्की, अनिद्रा से पीड़ित था। और अनिद्रा से पीड़ित लोगों की तकलीफ नींद का न आना नहीं है, रात अकेला छूट जाना है। सारी दुनिया सो गयी पत्नी घुर्राटे ले रही है। बच्चे मजे से सोये हुए हैं। और आप जग रहे हैं। बिलकुल अकेले रह गये। सारा संसार खो गया। धीरे-धीरे रास्ते का ट्रैफिक बन्द हो गया। शोरगुल शान्त हो गया। अब कहीं कोई हिलता-डुलता नहीं। पशु-पक्षी तक सो गये। वृक्ष तक चुप हो गये। अब आप अकेले रह गये। जैसे पृथ्वी समाप्त हो गयी तीसरे महायुद्ध में। सब लाशें पड़ी हैं। और आप अकेले जग रहे हैं।

लियोपोल गोडवस्की के संस्मरणों में लिखा गया है कि उसका लड़का उसके पास रहता था। तो रात को जब उसे बहुत मुश्किल हो जाती— और लड़का बहुत भयंकर सोनेवाला था; ज़ोर से घुर्राटे भरता, और बड़ी गहरी नीद में–अगर कोई भूकम्प हो जाये, तो भी जगे नहीं– तो लियोपोल रात में दो-चार बार उसके पास जाकर कहता, उसे ज़ोर से हिलाता और कहता : क्यो बटा, आज तुमको भी नींद नही आयी क्या ?

वह सो रहा है; घुर्राटे ले रहा है। उसको हिलाता कि क्यों बेटे, आज तुमको भी नीद नहीं आयी क्या ? पहले उसे जगा देता। उसके बेटे ने लिखा है कि मैं चकित था कि ये मामला क्या है ? लेकिन कुल मामला इतना था, आदमी साथ खोजता है। अगर दूसरे को भी नींद नहीं आयी तो हम संगी-साथी हो गये।

दो तो हैं कम से कम।— साथ है।

हम जीवन में जिस वृत्ति से सर्वाधिक ग्रसित हैं, वह है सगी खोजने की, साथी खोजने की। अकेला होना बड़ा कठिन मालूम होता है। क्यो ? . . . कई कारणो से।

(१) एक . जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम दुख का सारा दायित्व उस पर दे सकते हैं। जब कोई सगी-साथी नही है, तो सारा दुख अपने ही हाथो पैदा किया हो जाता है। इसे झेलना बहुत कठिन है।

(२) जब कोई संगी-साथी होता है, तो उसमें हम अपने को भूल सकते है। वह नशे का काम करता है। जब कोई संगी-साथी नही होता, तो भूलने की कोई जगह नही रह जाती।

(३) जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम अपनी झूठी तस्वीरें खड़ी कर सकते हैं। क्योंकि हम अभिनय कर मकते हैं उसके मामने। हम धोखा दे सकते हैं उसको। और उसको धोखा देकर अपने को धोखा दे मकते हैं।

लेकिन, जब कोई सगी-साथी नहीं, कोई दर्पण नही, तो धोखा किसको देना ? आदमी की नग्नता, उसकी पशुता, उसके भीतर जो भी है बुरा-भला – सब सामने आ जाता है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं रहता। उससे दुख होता है; नरक अनुभव होता है। अकेला आदमी अपने को नरक में अनुभव करता है।

महावीर कहते हैं : असंगता भिक्षु का लक्षण है; सग की तलाश ससारी का लक्षण है। अकेले होने में आनन्द; और जितनी देर अकेला होना मिल जाये, उतनी प्रसन्नता। और जितनी देर संग-साथ हो, अनिवार्य हो तो ही, अन्यथा उसको विदा करना। उतने ही देर के लिए, जितना बिलकुल जरूरी हो, संग-साथ ठीक।

अधिक समय असंग बीते। और धीरे-धीरे भीतर असंगता ऐसी बढ़ जाये कि जब कोई मौजूद भी हो, तो भी संन्यासी अपने को अकेला ही अनुभव करे। वह दूसरे को अपने भीतर न ले। वह भीड़ में भी खड़ा रहे, तो भी भीड़ उसमें प्रवेश न कर पाये, वह भीड़ के बाहर बना रहे।

इतने असंग होने की जो साधना है, वही व्यक्ति को आत्मवान बनायेगी। जितना असंग हो सकेगा आदमी, उतना आत्मवान हो सकेगा; और जितना भीड़ में खो जाता है, उतना आत्महीन हो जाता है। आप सब भीड़ में खोने को उत्सुक रहते हैं। आत्महीन होने में सारी जिम्मेवारी हट जाती है।

ध्यान रहे, दुनिया में जो बड़े पाप होते हैं, वे निजी अकेले में नही किये जाते। उनके लिए भीड़ चाहिए। एक हिंदुओ की भीड़ मस्जिद को जला रही है, या मुसलमानो की भीड़ मन्दिर को जला रही है। इस भीड़ में जितने मुसलमान हैं, अगर इनको एक-एक से अलग-अलग पूछा जाय कि क्या तुम अकेले मन्दिर को जलाने की जिम्मेवारी लेते हो? मुसलमान इन्कार करेगा। अगर हिंदू से पूछा जाये कि क्या तुम अकेले इस मस्जिद को आग लगाने का विचार करोगे? वह कहेगा कि नही। लेकिन भीड़ में आसान हो जाता है। क्योकि भीड़ मे मैं जिम्मेवार नही हूँ। जब भीड़ हत्या कर रही हो, तो आप भी दो हाथ लगा देते हैं। इस दो हाथ लगाने में आपकी निजी जिम्मेवारी नही है।

और ध्यान रहे, भीड़ आपको निम्नतम जगत मे ले आती है। क्योंकि जैसा पानी का स्वभाव है एक लेवल पर आ जाना... अगर आप पानी को डाल दें, तो फौरन लेवल बना लेगा। पानी निकाल लें नदी से, नदी फिर लेवल पर हो जायेगी। आपका चित्त भी एक लेवलिंग करता रहता है पूरे वक्त। जब आप हजार आदमियो की भीड़ में खड़े होते हैं, तो हजार आदमियो के चित्त की जो निम्नतम सतह है, वही आपकी सतह हो जाती है। तत्क्षण आप छोटे आदमी हो जाते हैं।

भीड़ में पाप बड़ा आसान है करना। अकेले में पाप करना बहुत कठिन है। क्योंकि अकेले में आपको कोई दूसरे पर जिम्मे छोड़ने का मौका नही होता। तो महावीर कहते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति भीड़ से मुक्त न होने लगे, तब तक आत्मवान नहीं होगा। जैसे-जैसे व्यक्ति अकेला होने लगता है, वैसे-वैसे बुराई गिरने लगती है। और जिस दिन व्यक्ति बिलकुल अकेले होने में समर्थ हो जाता है, तो महावीर कहते है, वह असंग स्थिति कैवल्य का जन्म बन जाती है।

'जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृद्ध है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिन्ता नही करता, जो ऋद्धि, सत्कार, पूजा और प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है।'

'जो जीवन की चिन्ता नहीं करता . . . ।'

जो जीता है, लेकिन चिन्ता निर्मित नहीं करता ।

हम जीते कम है, चिन्ता ज्यादा करते है । अगर ऐसा हो जाये, तो क्या होगा? अगर ऐसा न हुआ होता, तो कितना अच्छा होता ! हम इस तरह की चिन्ताएँ अतीत के प्रति भी निर्मित करते हैं, भविष्य के प्रति भी । चिन्ताएँ इतना हमें पकड़ लेती है कि जीने की जगह ही नही बचती; स्पेस भी नही बचती, जिसमें हम चल सकें और जी सके ।

आप अपने मन को सोचें । कल आपने किसी से कुछ कहा, आप सोचते हैं, न कहा होता । कोई अर्थ है? जो कहा, वह कहा । उसको न कहने का अब कोई उपाय नही । लेकिन सोच रहे हैं– अगर न कहा होता । और चिन्तित हो रहे है । कल क्या कहना है, उसके लिए चिन्तित हो रहे है ।

और ध्यान रहे, जो भी आप तय करके जायेंगे । वह आप कल कहने वाले नही है, क्योंकि जिन्दगी रोज बदल जाती है। और आप जो भी तय करते है, वह सब बासा और पुराना हो जाता है । जिन्दगी तो नया, प्रतिपल परिवर्तनशील धारा है । वह नया प्रतिसंवेदन चाहती है । वो जो आप तय करके जाते हैं, बंधे हुए उत्तर हो जाते हैं । बंधे हुए उत्तर दिक्कत दे देते है ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के गाव में सम्राट आ रहा है । और गांव का वह प्रतिष्ठित आदमी था । तो गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हीं उसका स्वागत करना । लेकिन नसरुद्दीन, जरा ख्याल रखना, कुछ ऐसी-वैसी बात मत कर देना । सम्राट है, नाराज न हो जाये ।

तो नसरुद्दीन ने कहा . फिर बेहतर यही होगा कि तुम मुझे बता ही दो कि मै क्या कहूँ । जिस में कि गलती का कोई सवाल ही न रहे । उधर दरबारियों ने पूरा इन्तजाम कर लिया; सम्राट को कहा कि आप दो ही सवाल पूछना इस आदमी से । और ये दो ही जवाब देगा । ज्यादा झंझट खड़ी नही करनी है । तो आप इससे पूछना कि तुम्हारी उम्र क्या है? तो यह अपनी उम्र बता देगा । इसकी उम्र सत्तर साल है । और फिर आप इससे पूछना कि तुम धर्म में कब से रुचि ले रहे हो? कब से तुम मौलवी, मुल्ला हो गये हो? यह बीस साल से धर्म में रुचि ले रहा है। तो यह कहेगा, बीस साल से । बस, ऐसे औपचारिक बातें पक्की कर लेना ।

नसरुद्दीन को भी समझा दिया गया । लेकिन सब गड़बड़ हो गयी बात । क्योंकि नसरुद्दीन ने बिलकुल तय कर लिया कि पहले का उत्तर सत्तर साल, दूसरे का उत्तर बीस साल । सम्राट गलती कर गया । उसने दूसरा सवाल पहले पूछ लिया । उसने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम धर्म में कितने दिन से रुचि ले रहे हो? कब

से तुम मुल्ला हो ? नसरुद्दीन ने कहा : सत्तर साल से ! और सम्राट ने पूछा : और तुम्हारा जन्म कब हुआ ? तुम्हारी उम्र कितनी है ? नसरुद्दीन ने कहा : बीस साल !

सम्राट ने कहा : नसरुद्दीन, तुम पागल तो नहीं हो ? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तो ठीक ही जवाब दे रहा हूँ, पागल वह है जो गलत सवाल पूछ रहा है।

जिन्दगी रोज बदल रही है। आपकी आज की चिन्ता कल काम नहीं आयेगी। और अगर आप बहुत मजबूत होकर बैठ गये, तो आप कल पायेंगे कि उत्तर ही सब गलत हुए जा रहे हैं। क्योंकि सवाल ही नये हैं।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वह है, जो चिन्ता नहीं करता। जो बीत गया, उसे जान लेता है कि बीत गया। जो नहीं आया, जानता है अभी नहीं आया। जो सामने है, उसमें जीता है।

और ध्यान रहे, जो सामने है, उसमें जो जी लेता है उससे भूलें नहीं होतीं। भूलें होती ही इसलिए हैं कि हम 'यहाँ' तो मौजूद नहीं होते, जहाँ जीना है। या तो पीछे होते हैं, या आगे होते हैं। हम 'यहाँ' बेहोश होते हैं। जो न पीछे है, न आगे है—जो निश्चिन्त है, वह 'यहाँ' है। अपनी पूरी चेतना के साथ 'यहाँ' मौजूद है, उससे भूलें नहीं होंगी।

चिन्ताओं से भूलें नहीं मिटती, चिन्ताओं के कारण भूलें होती हैं। इसलिए अक्सर यह होता है कि विद्यार्थी परीक्षाभवन में जाता है और सब गड़बड़ हो जाता है। बाहर तक उसे सब मालूम था कि क्या क्या है। परीक्षाभवन में बैठते ही सब अस्त व्यस्त हो गया। परीक्षाहाल से निकलते ही फिर सब ठीक हो जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। परीक्षा का हाल बड़ा चमत्कारी है। और बाहर आकर उसको ठीक-ठीक उत्तर आने लगते हैं। और पहले भी आ रहे थे। और एक तीन घण्टे के लिए सब गड़बड़ हो गया, क्या कारण है ?

तीन घण्टे वह इतना चिन्तित हो गया, . . . इतना चिन्तित हो गया कि उस चिन्ता के कारण जो सामने है, उससे सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता। तीन घण्टे पहले इतनी चिन्ता नहीं थी। तीन घण्टे के बाद फिर चिन्ता नहीं रह जायेगी।

चिन्ता हमारे जीवन को विकृत कर रही है। और हम सीधे सम्बन्धित नहीं हो पाते। समस्याएँ हल नहीं होतीं, उलझती चली जाती हैं।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है जो चिन्ता नहीं करता, जो जीवन की चिन्ता नहीं करता। जीवन जैसा आता है,उसके साथ जो भी स्पॉन्टेनियस, सहज-स्फूर्त घटना घटती है, घटने देता है। न तो पीछे के लिए पश्चात्ताप करता है, और न आगे के लिए योजना करता है। जिसने अतीत भी छोड़ दिया, और जिसने भविष्य भी त्याग दिया। जो शुद्ध वर्तमान में खड़ा है, वही भिक्षु है।

'जो ऋद्धि, सत्कार, और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है . . .'

मोह पकड़ता है, क्योंकि जैसे ही व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश करता है, अनेक घटनाएँ घटनी शुरू हो जाती हैं। उन घटनाओं में अगर थोड़ा-सा भी ऋद्धि, चमत्कार, सिद्धि का आग्रह बना रहे, तो जीवन मदारी का जीवन हो जाता है। मोक्ष की तरफ जाने के बजाय आदमी मदारी की तरफ जाना शुरू हो जाता है।

बहुत घटनाएँ घटती हैं। क्योंकि जीवन में बड़ी पर्तें छिपी हैं; बड़े रहस्यमय लोक छिपे हैं। बड़ी शक्तियाँ हैं, जो आपके पास हैं। जैसे ही आप भीतर प्रवेश करेंगे, वे शक्तियाँ सक्रिय होना शुरू होंगी।

रामकृष्ण के आश्रम में एक सीधा-सादा आदमी था कालू उसका नाम था। वह बड़ा सरल था। वह इतना सरल था और इतना ग्राहक था, जिसका हिसाब नहीं। उसका मस्तिष्क सीधा खुला था। विवेकानन्द साधना शुरू किये तो एक दिन विवेकानन्द को ध्यान लगा– पहली दफा। ध्यान लगते ही विवेकानन्द को ऐसा लगा कि मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं चाहूँ तो किसी का भी विचार प्रभावित कर सकता हूँ। वो कालू बेचारा निरीह, सीधा आदमी था। उसका याद आया विवेकानन्द को कि कालू से चाहो तो कुछ भी करवाया जा सकता है। और किसी में तो अड़चन भी होगी, क्योंकि लोग चालाक हैं; बाधा डालेंगे– कालू सीधा है। कालू अपनी पूजा कर रहे थे। वह अपने कमरे में सभी तरह के देवी-देवता रखे थे– सैंकड़ों; और सभी की पूजा करते थे। उनको कोई छ-आठ घण्टे सभी को फूल रखने में और घण्टी हिलाने में लग जाते। वे पूजा कर रहे थे। घण्टी की आवाज़ आ रही थी।

विवेकानन्द ने कहा : कालू, बाध एक पोटली सब देवी-देवताओं की और फेंक गंगा में। कालू ने बाधी पोटली; चले है गंगा की तरफ। वहाँ से रामकृष्ण स्नान करके आ रहे थे। तो उन्होंने कहा . रुक, कहाँ जा रहा है? उसने कहा कि बस, ऐसा भाव आ गया . . .।

"यह तेरा भाव नहीं है। तू वापिस चल।"

जाकर विवेकानन्द का दरवाज़ा खटखटाया और कहा कि बस, यह तू क्या कर रहा है? अगर ऐसा ही तुझे करना है तो तेरे ध्यान की चाबी मैं अपने हाथ में ले लेता हूँ।

जैसे ही व्यक्ति के जीवन में भीतर की ऊर्जाएँ जगनी शुरू होती हैं, बड़ा भरोसा आना शुरू होता है। और उस भरोसे में आदमी कर सकता है वह सब जो . . . अब इस मुल्क में कई चमत्कारी बहुत-से तरह के काम करते दिखाई पड़ रहे हैं। महावीर

उनमें से किसी को भी संन्यासी नहीं कहेंगे । सच तो यह है कि वे संन्यास का दुरुपयोग कर रहे हैं । कोई तावीज निकाल रहा है । किसी के हाथ से भस्म गिर रही है । कोई घड़ियाँ बांट रहा है । मिठाइयाँ आ रही हैं; हाथों में प्रगट हो रही हैं ।

यह सब हो सकता है । इस सबके होने में जरा भी अड़चन नहीं है; बड़े मूल्य पर होता है लेकिन । संन्यास खो जाता है, मदारीपन हाथ में रह जाता है ।

तो महावीर कहते है, भिक्षु वही है, जो ऋद्धि-सिद्धि से बचे; जो सत्कार, पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ दे। क्योंकि तब बड़ा सत्कार मिल सकता है क्षुद्र बातो से।

हमारे आसपास जो भीड़ खड़ी है, वह क्षुद्र बातों की तो आकाक्षा करती है। अब यह क्या बड़ी आकाक्षा है – किसी के हाथ से राख गिरने लगे; बस, आप चमत्कृत हो गये । साधु के पास आप गये । उसने हाथ बन्द किया–खुला हाथ था, खाली आपने देखा था– बन्द किया और एक तावीज आपको भेंट कर दिया । बस, मोक्ष आपको भी मिल गया; साधु को भी मोक्ष मिल गया !

न तो कोई ज्ञान से प्रभावित होता है, न कोई जीवन से प्रभावित होता है । लोग क्षुद्र चमत्कारो से प्रभावित होते हैं । लोग क्षुद्र है; उनकी क्षुद्र वासनाएँ है । उन क्षुद्र वासनाओं से उनका तालमेल बैठता है ।

असल में जब आप एक आदमी के हाथ से तावीज को प्रगट होते देखते हैं, तो आपको लगता है, जो तावीज प्रगट कर सकता है शून्य से, वह मेरी शून्य में भटकती सारी वासनाओं को भी चाहे तो पूरा कर सकता है । लड़का नहीं है मुझे; एक लड़का पैदा हो सकता है । जब तावीज निकल सकता है शून्य से, तो लड़का क्यो नही निकल सकता ! और अभी मुझे असफलता लगती है हाथ; सफलता क्यों नही आ सकती है, जब शून्य से तावीज निकल सकता है ।

आपकी भटकती हुई वासनाएँ हैं, जो शून्य में हैं; जिनको कोई पूरा करने का उपाय नहीं दिखता । जब भी आप किसी आदमी के पास शून्य से कुछ प्रगट होते देखते हैं, तब आपको भरोसा पड़ता है । तब आप चरणों पर गिर जाते है ।

कोई भी व्यक्ति धर्म को नमस्कार करने की तैयारी नही दिखाता । इसलिए महावीर के भिक्षुओं को कभी भी आज्ञा नही रही है कि वे किसी तरह का भी चमत्कार करें । बुद्ध के भिक्षुओं को भी आज्ञा नहीं रही कि वे किसी तरह का चमत्कार करें। हो सकता है, शायद बुद्ध और महावीर के भिक्षुओं का प्रभाव इस देश पर इसीलिए ज्यादा नही पड़ सका। क्योंकि मदारी होने की उन्हे आज्ञा नही है, निषेध है । और निषेध कीमती है ।

काश, हिन्दू संन्यासियों को भी इसी तरह का निषेध साफ-साफ हो। और हिन्दू मन में भी यह बात साफ बैठ जाये कि चमत्कार दिखाता ही वह आदमी है, जो किसी तरह पूजा पाना चाहता है; प्रतिष्ठा पाना चाहता है; जो आपकी क्षुद्र वासना का शोषण कर रहा है। तो जिन्हे हम अभी महात्मा कहते हैं, उन्हे हम महात्मा न कह पायें। और जिन्हें अभी हम पहचान भी नहीं पाते, और जो महात्मा है,उनकी पहचान, उनकी प्रतिभिज्ञा होनी शुरू हो जाये।

'जो स्थितआत्मा है।'

जो हर स्थिति में थिर है, और जिसे हिलाने का कोई उपाय नही है।

'जो निस्पृही है...।'

जिसकी कोई स्पर्धा नही; कोई स्पृहा नहो, कोई महत्त्वाकाक्षा नही। जो न किसी से जीतना चाहता है, न किसी से हारना चाहता है। जो न कही पहुँचना चाहता है, न जिसका कोई लक्ष्य है इस संसार की भाषा में। जो किसी का प्रतियोगी नही है-- वही भिक्षु है।

वस्तुत., प्रतियोगिता अहकार का ज्वर है। और जब तक अहकार है, तब तक प्रतियोगिता रहेगी। जिनको हम साधु-महात्मा कहते है, वे भी बड़े प्रतियोगी हैं। एक-दूसरे से प्रतियोगिता चलती रहती है। किसकी प्रतिष्ठा बढती है, किसकी घटती है; कौन ज्यादा सम्मान को प्राप्त होता है, कौन कम सम्मान को प्राप्त होता है-- उसकी सबकी चेष्टा चलती रहती है।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है, जिसकी कोई प्रतिस्पर्धा नही है। जो न-कुछ होने को राजी है। और जो न-कुछ ही मर जाये, तो उसे ज़रा-सी भी चिन्ता पैदा न होगी। और जो सब-कुछ भी हो जाये, तो भी उसमें कोई गर्व निर्मित न होगा। जो सिंहासन पर हो तो ऐसे ही होगा, जैसे सूली पर हो। सूली और सिंहासन पर जो समभाव से हो सके, ऐसा निस्पृही, प्रतिस्पर्धारहित, समभावी व्यक्ति सन्यस्त है। वही भिक्षु है।

भिक्षु-सूत्र : ४

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ६ सितम्बर, १९७३

न परं वइज्जासि अयं कुसीले,
जेणं च कुप्पेज्ज न तं वएज्जा ।
जाणिय पत्तेयं पुण्ण-पावं,
अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू ।।
न जाइमत्ते न य रूवमत्ते,
न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता,
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ।।
पवेयए अज्जपयं महामुणी,
धम्मे ठिओ ठावयई पर पि ।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंग,
न यावि हासंकुहए जे स भिक्खू ।।
तं देहवासं असुइं असासयं,
सया चए निच्चहियट्ठियप्पा ।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधणं,
उवेइ भिक्खू अपुणागमं गइ ।।

जो दूसरों को 'यह दुराचारी है' ऐसा नही कहता, जो कटु वचन— जिससे सुननेवाला क्षुब्ध हो— नही बोलता, 'सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मो के अनुसार ही सुख-दुख भोगते है।' —ऐसा जानकर जो दूसरों की निन्द्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है, जो अपने-आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नही बनाता, वही भिक्षु है ।

जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य) का अभिमान नही करता; जो सभी प्रकार के अभिमानो का परित्याग कर केवल धर्म-ध्यान में ही रत रहता है, वही भिक्षु है ।

जो महामुनि आर्यपद (सद्धर्म) का उपदेश करता है; जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश) को छोड़ देता है; जो किसी के साथ हंसी-ठट्ठा नही करता, वही भिक्षु है ।

इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखनेवाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बंधनो को सर्वथा काटकर अ-पुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।

जीवन को बदलने वाले तीन सूत्र समझ लेने जरूरी है। एक : एक भी सद्गुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे सद्गुण अपने-आप आना शुरू हो जाते हैं। एक भी दुर्गुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे दुर्गुण आना शुरू हो जाते हैं। एक सद्गुण या एक दुर्गुण काफी है अपने सजातीय सभी बन्धुओं को आपके जीवन में बुला लेने के लिए। सद्गुणों में या दुर्गुणों में एक पारिवारिक सम्बन्ध है। एक सदस्य आ जाता है, तो शेष आना शुरू हो जाते हैं। किसी को जीवन में दुर्गुण साधने हों, तो सभी को साधना जरूरी नहीं है – एक को साध लेना काफी है। शेष अपने से सध जाते हैं। और यही सद्गुणों के सम्बन्ध में भी सच है। एक सद्गुण जीवन में आधार ले ले, उसकी जड़ें जम जायें–, तो शेष सारे सद्गुण छाया की तरह अपनेआप चले आते हैं। बहुत को साधने वाला भटक जाता है; एक को साधने वाला सभी को साध लेता है। उपनिषदों ने कहा है, महावीर ने भी कहा है . एक के सध जाने से सब सध जाता है। यह जीवन-रूपान्तरण का एक आधारभूत नियम है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा है; और जज उससे पूछता है : "नसरुद्दीन, तुम शराब पीते हो?"

नसरुद्दीन कहता है : "नहीं, कभी नहीं।"

"तुमने कभी चोरी की है?"

नसरुद्दीन कहता है, "नहीं, कभी नहीं।"

"तुम कभी परायी स्त्री के साथ सम्बन्धित हुए हो? व्यभिचार किया है?"

नसरुद्दीन कहता है : "भूल कर भी नहीं। सोचा भी नहीं।"

"किसी को धोखा दिया है? बेईमानी की है?"

नसरुद्दीन इनकार करता चला जाता है। आखिर में जज पूछता है :"क्या नसरुद्दीन, तुम्हारे जीवन में एक भी दुर्गुण नहीं?"

तो नसरुद्दीन कहता है : "श्योर, देअर इज़ वॅन, आइ जस्ट टेल लाइज़ – सिर्फ झूठ बोलना!

. . . और वह जो उसने सद्गुणों की सारी व्याख्या की है, वह सब मिट्टी में मिल जाती है।

एक सभी को डुबा देता है; एक सभी को उबार भी देता है। इसलिए व्यक्ति को बहुत की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर अपना आधारभूत दुर्गुण खोज लेना चाहिए।

गुरजियेफ अपने शिष्यों से कहता था : तुम्हारे जीवन की जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे तुम पकड़ लो, क्योंकि वही सीढ़ी बन जायेगी। जो सबसे बड़ी कमजोरी है,

उसे पकड़ लो और उस कमजोरी को मिटाने में लग जाओ । या वह कमजोरी जिससे मिट जायेगी, उस गुण को साधने में लग जाओ – तुम्हारा पूरा जीवन रूपान्तरित हो जायगा ।

हमें इस सूत्र का पता नही है चेतन रूप से, लेकिन अचेतन रूप से भलीभाँति पता है । और हम इसका एक उपयोग करते है, जो आत्मघाती है । वह उपयोग हम यह करते हैं कि व्यक्ति अपनी मौलिक कमजोरी से नही लड़ता अपनी क्षुद्र कमजोरियों से लड़ता रहता है ।

उनके बदलने से कुछ बदलाहट न होगी । जब तक आप अपनी आधारभूत कमजोरी से लड़ना नही शुरू कर देंगे, तब तक जीवन नही बदलेगा । आप क्षुद्र कमजोरियों को बदल सकते है, उनसे कोई अन्तर नही पड़ता । एक आदमी शराब पीना छोड़ सकता है; सिगरेट पीना छोड़ सकता है; मांसाहार छोड सकता है; ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है; प्रार्थना-पूजा कर सकता है, लेकिन अगर उसकी मौलिक कमजोरियो के साथ इनका कोई सम्बन्ध नही है, तो उसका जीवन बिलकुल बदलेगा नही ।

कितने लोग हैं जो शराब नही पीते हैं । लेकिन शराब न पीने से कोई मोक्ष उपलब्ध नही हो गया है । अगर आप भी नहीं पीयेंगे, तो उनसे कुछ बेहतर हालत में तो नही पहुँच जायेंगे, जो नही पीते है । कितने लोग है जो मांसाहार नही करते । लेकिन मांसाहार न करने में उन्हे कोई आत्मा का ज्ञान नही हो गया है । आप भी छोड़ देंगे, तो भी क्या होगा ?

मैं यह नही कह रहा हूँ कि आप मत छोड़ना । मैं यह भी नही कह रहा हूँ कि आप शराब पिये जायें और मांसाहार करते जायें । मैं यह कह रहा हूँ कि आप अपने जीवन में मौलिक को पकड़ें, जिससे क्रान्ति होगी । अगर मौलिक को, मूल को नही पकड़ा और पत्तो को काटते रहे, और जड नही काटी, तो एक पत्ता काटने से चार पत्ते पैदा हो जाते है । तो एक दुर्गुण आदमी काटता है – अगर वह आधारभूत नही है, जड़ मे नहीं है, तो दस नये दुर्गुण पैदा हो जाते है । और आप पत्तो से लड़ते रहे जीवन भर, समय खो जायेगा । जीवन में जड़ को खोजना जरूरी है ।

और दूसरा सूत्र ख्याल में ले लेना जरूरी है कि हर व्यक्ति की कमजोरी अलग है; दुर्गुण अलग है, इसलिए किसी की नकल करने से कुछ भी न होगा । हर व्यक्ति की कमजोरी मौलिक रूप से भिन्न है । वही उसका व्यक्तित्व है । और इसलिए हर व्यक्ति को कुछ भिन्न गुण साधना पड़ेगा, जो उसकी मौलिक कमजोरी को काट दे और जीवन को बदल दे । इसलिए किसी का अनुकरण, अन्धानुकरण काम का नही है । जीवन का सचेत विश्लेषण चाहिए ।

कोई आदमी है, क्रोध जिसकी मौलिक कमजोरी है। जिसकी मौलिक कमजोरी क्रोध है, वह दान देता रहे, लोभ न करे, ब्रह्मचर्य साध ले – कोई अन्तर न पड़ेगा। बल्कि बड़े मजे की बात है कि क्रोधी आदमी ब्रह्मचर्य आसानी से साध लेगा। क्रोधी आदमी लोभ को छोड़ सकता है। क्रोधी आदमी क्रोध के पीछे अपना जीवन छोड़ सकता है, लोभ क्या है! वह क्रोध के पीछे खुद सब कुछ नष्ट कर सकता है; दान दे सकता है, सन्यास ले सकता है; साधु हो सकता है, नग्न खड़ा हो सकता है– सब त्याग कर सकता है। लेकिन उसका त्याग बाहर-बाहर हो जायेगा, जब तक कि उसका क्रोध नही चला जाता।

लोभी आदमी सब छोड सकता है – लोभ को छोड़कर। और सब छोड़ने में भी लोभ बच जायेगा। और त्याग के द्वारा भी वह भविष्य में, अगले जन्म में, मोक्ष में, स्वर्ग में कुछ कमाने की आकाक्षा रखेगा। छोड़ने मे भी लोभ बच रहेगा।

अहंकारी व्यक्ति सब छोड़ सकता है। इसीलिए छोडेगा ताकि अहंकार मजबूत होता चला जाये; सघन होता चला जाये। अहकारी आदमी तो,धन आप उससे कहें,छोड़ सकता है अगर अहकार बढता हो। पद कहे, छोड़ सकता है अगर अहंकार बढ़ता हो। सिंहासन पर लात मार सकता है अगर लात मारने से अहकार बढ़ता हो। लेकिन अहकार को जरा-सी चोट पहुँचती हो, तो कठिनाई हो जायेगी।

मैंने सुना है कि हॉलीवुड मे ऐसा हुआ, एक बड़ी फिल्म अभिनेत्री विवाह करने के तीन घण्टे के भीतर अपने वकील के पास पहुँच गयी। और जाकर उसने कहा कि तलाक का इन्तजाम कर दो। वह वकील बोला कि हॉलीवुड के इतिहास में भी ऐसा पहले नही हुआ! तीन घण्टे .... ! अभी जो मेहमान तुम्हारे विवाह मे शरीक हुए थे, वे घर भी नहीं पहुँच पाये है। चर्च मे जो दिये जले थे विवाह की खुशी में, वे अभी जल रहे हैं, अभी बुझे नही। इतनी जल्दी क्या है? इतनी जल्दी ऐसा कौन-सा उपद्रव हो गया तीन घण्टे के भीतर?

उस स्त्री ने कहा, "इन द चर्च ही साइन्ड हिज नेम इन बिगर लेटर दैन माइन!"

पति ने मुझसे बड़े अक्षरो में हस्ताक्षर किये हैं। ये उपद्रव शुरू हो गया। इस आदमी के साथ बन नही सकता। अहंकार बड़े अक्षर भी बर्दाश्त नही कर सकता। सिंहासन छोड़ सकता है। अगर अहंकार तृप्त होता हो, तो सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन अगर अहंकार टूटता हो, तो रत्ती भर का फर्क असम्भव है।

साधक को पहले यह खोज लेना चाहिए, उसकी मौलिक कमजोरी क्या है; उसकी बीमारी क्या है। यह निदान आवश्यक है। क्योंकि अगर ठीक बीमारी का पता ही न हो, तो ठीक औषधि कभी नही मिल सकती। निदान आधी चिकित्सा है।

ठीक डायग्नोसिस आधा इलाज है। अगर आपको ठीक से पकड़ में आ जाये कि आपकी कमजोरी क्या है, आपकी पीड़ा, आपका दुर्गुण क्या है, तो उसी दुर्गुण के आसपास सारे दुर्गुण इकट्ठे हैं। और जब तक उस दुर्गुण से ऊपर उठने की व्यवस्था न बने, तब तक सद्‌गुणों का आगमन शुरू न होगा। और बीच में आप जन्मों-जन्मों तक चेष्टा कर सकते हैं। वह चेष्टा वैसे ही है जैसे कोई टी. बी. से बीमार है, उसका कैन्सर का इलाज चल रहा है; कि कोई कैन्सर से बीमार है, और उसका कुछ और इलाज चल रहा है। जब तक चिकित्सा-विधि, औषधि बीमारी से संयुक्त न होती हो, तब तक कुछ भी करना खतरनाक है। तब तक तो बेहतर कुछ न करना है। क्योंकि बीमारी तो बीमारी रहेगी ही, गलत औषधि और बड़ी बीमारी हो जायेगी।

मैं साधुओ को देखता हूँ, साधकों को देखता हूँ, उन्हे अपनी बीमारी का कोई बोध ही नही है। और वे लड़े चले जा रहे हैं; औषधि लिये चले जा रहे हैं; साधना किये चले जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि क्या मिटाना है। और उन्हें यह भी पक्का नही है, कि क्या प्रगट करना है। इसलिए बहुत कोशिश के बाद भी कोई परिणाम नही होता।

तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है, और वो यह है कि आपके भीतर जो बुनियादी रोग होगा, वही आपको दूसरे लोगों में दिखाई पड़ेगा; खुद में दिखाई नहीं पड़ेगा। बीमारी बच ही सकती है, जब तक छिपी रहे। प्रगट हो जाये, तो मिटनी शुरू हो जाती है। जैसे जड़ें तभी तक सक्रिय होनी हैं, जब तक जमीन में दबी रहें; जैसे ही जमीन के बाहर आयीं कि मरनी शुरू हो गयी।

जड़ को जमीन के बाहर निकाल लेना उसकी मौत का आयोजन है। आपके भीतर भी जो बीमारियाँ हैं वह तभी तक चल सकती हैं, जब तक अचेतन के गर्भ में अॅन्कॉन्शस मे दबी रहे; आपको उनका पता न हो। जैसे ही आपके बोध में जड़ें आनी शुरू हुई, कि उनकी मृत्यु शुरू हो गयी। इसलिए कुछ साधनायें तो यह कहती हैं कि बीमारी को मिटाने के लिए कुछ भी नही करना है; सिर्फ बीमारी के प्रति परिपूर्ण होश से भर जाना है।

कृष्णमूर्ति की पूरी साधना, जो भीतर रोग है, उसके प्रति पूरी अवेअॅरनेस, पूरा साक्षात बोध— इतना काफी है। बुद्ध ने भी कहा है कि अपनी बीमारी का पूर्ण स्मरण उससे छुटकारा है। ज्ञान मुक्ति है। क्योंकि जड़ जैसे ही बाहर आती है जमीन के, तभी दिखाई पड़ती है। जब आपके अचेतन के गर्भ से जड़ें बाहर आती हैं, तो दिखाई पड़ती हैं। दिखाई पड़ते ही कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं। इधर जड़ें कुम्हलाईं, उधर उनके पत्तो का फैलाव, शाखाओं का फैलाव, फूलों का फैलाव, सब मरने लगा।

इसलिए यह तीसरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिए: आपको अपनी बीमारी स्वयं में दिखाई नही पड़ सकती। इसीलिए तो वह है। लेकिन जो बीमारी है, उसका

कहीं न कहीं प्रतिफलन होगा । दूसरे लोग दर्पण का काम करते हैं । आपको अपनी बीमारी दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती है । अहंकारी व्यक्ति को सारे लोग अहंकारी मालूम पड़ेंगे । और हरेक लगेगा कि अपनी अकड़ में जा रहा है । और उसको हरेक की अकड़ चोट पहुँचायेगी ।

यह बडे मजे की बात है कि आप, जो आदमी विनम्र होता है, हेम्बॅल होता है, निरहंकारी होता है, उसका इतना आदर क्यो करते है ? आपने कभी सोचा ? सब समाज दुनिया के विनम्र आदमी का आदर करते है; और कहते हैं : 'बड़ा श्रेष्ठ आदमी है, उसको अहंभाव बिलकुल भी नही ।' लेकिन क्यों दुनिया के सभी लोग निरहंकारी का आदर करते है ?

निरहकारी के आदर का बुनियादी कारण आपका अहकार है । क्योंकि निरहंकारी आपको चोट नही पहुँचाता । और आप उसको कितनी ही चोट पहुँचाये, तो भी प्रत्युत्तर नही देता । अहकारी आपको अखरता है । अखरने का कुल कारण इतना है कि आपके भीतर के अहकार को चोट लगती है ।

यह अभिनेत्री, जो अपने पति के बड़े हस्ताक्षर देखकर तलाक देने को तैयार हो गयी, जरूर इसके मन में पति से बड़े हस्ताक्षर करने की वासना छिपी रही होगी । उसी को चोट पहुँची । अन्यथा दिखाई भी नहीं पड़ सकता था । यह ख्याल में भी न आता कि किसने बडे हस्ताक्षर किये है ।

जो दिखाई पडता है, वह कही भीतर छिपा है । जब आपको आस पास के लोग पापी दिखाई पड़ते हैं, तो उनके पाप का जो भी ढग हो, समझना कि वह आपकी बीमारी का निदान है । इस जगत में हर दूसरा व्यक्ति दर्पण है । और अगर हम ठीक से उसमें अपनी छवि देखें, तो हमें अपनी साधना का मार्ग स्पष्ट हो सकता है ।

इसे थोड़ा सोचना आप कि आपको क्या-क्या खामियाँ दूसरे लोगो में दिखाई पड़ती हैं; क्यो दिखाई पड़ती है, और कौन-कौन-सी चीजें चोट की तरह आपके भीतर घाव बनाती हैं, जरा-सी चोट, और आपका घाव भीतर कम्पित और दुख से भर जाता है । कौन-सी चीजें है ? तो वही, जिनमें आप भीतर से रस ले रहे है । लेकिन वह रस अचेतन है ।

जीवन के निदान में यह तीसरा सूत्र बहुत जरूरी है कि जो आपको दूसरो में दिखाई पड़ता हो, दूसरों की फिक्र छोड़कर उसे अपने में खोजने लग जाना । यह तीन बातें ख्याल में लें; फिर हम महावीर के सूत्र में प्रवेश करें । महावीर कहते हैं--

"जो दूसरो को 'यह दुराचारी है' ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन--जिससे सुननेवाला क्षुब्ध हो-- नही बोलता, 'सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के

अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं '— ऐसा जानकर जो दूसरों की निन्द्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिन्ता करता है, जो अपने-आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नही बनाता, वही भिक्षु है।"

बहुत-सी बातें हैं। एक : जो दूसरों को ' यह दुराचारी है ' ऐसा नहीं कहता। कहने का ही सवाल नही है, जो अपने भीतर भी ऐसा भाव निर्मित नही करता कि दूसरा दुराचारी है। क्योंकि कहने से क्या फर्क पड़ेगा? जो अपने भीतर भी ऐसा अनुभव नही करता, यह दुराचारी है।

लेकिन साधुओ के पास जायें। साधुओ की आँखो में आपकी निन्दा के सिवाय और कुछ भी नही। साधुओं को जितना मजा आता है आपकी निन्दा करने में, उतना किसी और बात में नही आता। साधु देखकर ही आपको आनन्द अनुभव करता है कि पापियों के सामन वह पुण्यात्मा मालूम पड़ता है– कि तुम भोगी, कि तुम नारकीय, कि तुम नरक की योजना बना रहे हो, कि तुम कामी, कि तुम शरीर की वासना में डूबे हुए हो, कि तुम ससार मे भटक रहे हो, अज्ञानी। साधु की आँखो में निन्दा का स्वर है। और शायद आप भी उसके पास इसीलिए जाते हैं, शायद आप भी उसको इसीलिए आदर देते हैं कि अपनी निन्दा का स्वर आप वहाँ पाते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। इस जगत मे हर व्यक्ति अपने विपरीत से आकर्षित होता है। जैसे स्त्री पुरुष से आकर्षित होती है; पुरुष स्त्री से आकर्षित होता है। यह आकर्षण जीवन के सभी आयामो में फैला हुआ है। आप अपने विपरीत से आकर्षित होते हैं। भोगी त्यागी से आकर्षित होता है। पापी पुण्यात्मा से आकर्षित होता है। पापी जाता है पुण्यात्मा के पास, लेकिन अगर पुण्यात्मा उसको यह बोध ही न दे कि तू पापी है, तो उसके जाने का मजा समाप्त हो जाये। एक खुजली है, जिसको वह खुजलाता है।

तो जब आप साधु के पास जाते हैं, और साधु आपकी निन्दा करता है, तो चाहे ऊपर से आपको बुरा भी लगता हो, लेकिन भीतर से अच्छा लगता है। यह भीतर से अच्छा लगना एक रोग है—आपका भी और साधु का भी। आप उस साधु के पास शायद जाना पसन्द ही नही करेंगे, जिसके मन में आपके प्रति कोई निन्दा नहीं है। क्योंकि आपको उनके प्रति कोई आदर ही मालूम नहीं होगा। आपको आदर उसी के प्रति मालूम हो सकता है, जिसके द्वारा आपके प्रति अनादर बहता है। जो आपसे ऊँचा मालूम होता है, उसी के प्रति आदर मालूम होता है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि परम साधुओं को लोग पहचान ही नही पाते, सिर्फ उनको पहचान पाते हैं, जो साधु नही हैं। तो साधु के धन्धे की एक व्यवस्था है कि वह आपकी जितनी निन्दा करे, उतना आप उसके निकट जायेंगे।

आकर साधुओं के प्रवचन सुनें । वे जितनी आपको गालियाँ दें और आपकी निन्दा करें, आप उतने ही मुस्कराते हैं, और आप कहते हैं कि बात तो बिलकुल ठीक है । सच में तो यह है कि आप भी अपने को कभी भी इस हालत में नहीं मानते कि ऐसी कोई बुराई है, जो आपने नहीं की है । और जब कोई आपकी निन्दा करता है, तो आपको भी लगता है कि सत्य कह रहा है– आप भला उसके सत्य को मान न पाते हों । जीवन की असुविधाएँ हैं, कठिनाइयाँ हैं–आप पूरा न कर पाते हों। लेकिन उसकी निन्दा से आप भी राजी हैं ।

सच में, आप खुद ही आत्मनिंदा से, सेल्फ कॉन्डेमनेशॅन से इतने भरे हैं कि जो भी आपकी निन्दा करता है, उससे आप राजी हो जाते है । लेकिन महावीर साधु की व्याख्या में पहली बात यह कहते हैं कि जो, दूसरा दुराचारी है, न तो ऐसा कहता है, न ऐसा मानता है; न ऐसा सोचता है, न ऐसा भाव करता है; दूसरे के सम्बन्ध में बुराई की धारणा छोड़ देता है, ऐसा व्यक्ति साधु है ।

लेकिन ऐसा साधु आपको बहुत अपील नहीं करेगा । जो आपको अपराधी सिद्ध न करे, वह आपको सच ही मालूम न पड़ेगा । अगर कोई साधु आपको समभाव से ले– नीचे-ऊँचे का भाव न करे; आपके कन्धे पर हाथ रख दे; मित्र की तरह आपसे बात करे– आप उस साधु के पास जाना बन्द कर देंगे ।

आप तलाश कर रहे हैं किसी की, जो आपकी निन्दा करे । क्योंकि आप अपनी ही निन्दा में लीन हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, साधु का पहला लक्षण यह है. . . .। अगर यह लक्षण साधु का है, तो सौ में से निन्यानबे साधु, साधु सिद्ध नहीं होंगे । वे आपकी बीमारी का हिस्सा है । आप जो चाहते है, वे कर रहे हैं।

जगत में स्वयं को दुख देने वाले लोगो की बडी लम्बी कतार है। और जहाँ भी उनको दुख मिलता है, वहाँ उनको रस आता है । साधु आपको एक तरह से दुख दे रहा है। क्योंकि वह कह रहा है कि आप निन्दित हैं; पापी हैं । नर्क और नर्क की जलती हुई लपटें जिन्होने विकसित की हैं, जिन्होंने धारणाएँ बनायी है ये, महावीर उन्हे साधु नहीं कह सकते । क्योंकि जब दूसरे को दुराचारी ही नही विचार करता है, तो दूसरे को नर्क में डालने का ख्याल ही क्या !

बरट्रैंड रसेल ने एक किताब लिखी है बड़ी अनूठी : "वाइ आइ ऐम नॉट ए क्रिस्ट्यॅन – मैं ईसाई क्यों नही हूँ" और जो दलीलें दी हैं... और दलीलें तो ठीक हैं, लेकिन एक दलील सच में बहुत महत्त्वपूर्ण है । महावीर भी उससे राजी होते । और वह दलील यह है कि जीसस के मुंह से इस तरह के वचन कहलवाये गये है बाइबिल में. जिनसे ऐसा लगता है कि जीसस लोगों को नर्क में डालने में रस ले रहे हैं– कि

तुम सताये जाओगे; कि तुम छेदे जाओगे; कि कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर से गुजरेंगे; कि अग्नि में तुम पटके जाओगे, कि उबलते हुए तेल में तुम्हें उबाला जायेगा। तुम प्यासे होओगे। आग बरसती होगी। पानी पास होगा। लेकिन तुम्हे पानी पीने को नही दिया जायेगा ।

रसेल यह कहता है कि जीसस के ये जो वचन हैं अगर जीसस ने ही कहे हैं, तो जीसस साधु होने का गुण ही खो देते हैं । क्योंकि साधु दूसरे को ऐसा कष्ट देने की कल्पना भी करे, वह कल्पना भी बताती है कि दूसरे को कष्ट देने में रस है; हिंसा है । दूसरे को बुरा कहना हिंसा है। दूसरे को बुरा मानना हिंसा है। निश्चित ही, जीसस ने ये वचन कहे नही हैं– पीछे जोड़े गये है । क्योंकि जीसस के मर जाने के डेढ़ सौ वर्ष बाद बाइबिल का सकलन शुरू हुआ । जिन लोगो ने सकलन किया, उनकी धारणाएँ है ये ।

मैं यहाँ बोल रहा हूँ; आप इतने लोग यहाँ बैठे है; अगर बाहर आपसे जाकर पूछा जाये कि मैंने क्या कहा– अभी, डेढ सौ बर्ष बाद नही– तो जितने यहाँ लोग हैं, उतने वक्तव्य होगे । और मुश्किल हो जायेगा यह तय करना कि मैंने क्या कहा। क्योंकि आप वही नही सुनते, जो मै कह रहा हूँ । आप वही सुनते हैं, जो आप सुनना चाहते है । आप उसी को चुन लेते हैं, उसी को बड़ा कर लेते हैं, कुछ छोड देते हैं, कुछ बचा लेते है ।

जीसस के आठ शिष्यों ने बाइबिल के आठ वक्तव्य दिये है । वे सब भिन्न-भिन्न हैं; अपना-अपना वक्तव्य है । डेढ सौ साल बाद जो लिखा गया है, वह उन लोगो का है जिन्होने डेढ सौ साल बाद लिखा । वे वे लोग थे जो चाहते थे कि ईसाई होने से स्वर्ग; और जो ईसाई नहीं होता, उसे नर्क । लेकिन रसेल का तर्क सही हे । अगर जीसस ने ही ये वचन कहे है, तो जीसस सारा गुण खो देते हैं । जिन्होंने नर्क सोचा है, उन्होंने सोचकर ही बता दिया कि उनके मन में भीतर गहरी हिंसा छिपी हे । लेकिन साधु इसमे रस लेता है । लेकिन रस का कारण भी समझ लें ।

आप भोग रहे हैं– स्त्री को, महल को, धन को । साधु ने स्त्री छोड़ी, धन छोड़ा, महल छोड़ा — भूखा है, प्यासा है, नग्न है, सड़क पर पैदल चल रहा है । आप सब तरह का सुख भोग रहे हैं; वह सब तरह का दुख भोग रहा है । गणित साफ है । अगर वह कही आगे भविष्य में आपके लिए दुख का आयोजन न कर ले, तो उसे खुद का दुख भोगना मुश्किल हो जायेगा । गणित को साफ कर लेगा वह : अपने लिए भविष्य में सुख का आयोजन; आपके लिए भविष्य में दुख का आयोजन। बात साफ हो गयी। और यह भी पक्का कर लेगा कि तुम जो सुख भोग रहे हो, वह क्षणिक है; ओर मैं जो सुख भोगूंगा स्वर्ग में, मोक्ष में, वह शाश्वत है। और तुम जो सुख भोग रहे हो, वह तो क्षणिक है; लेकिन तुम जो दुख भोगोगे नर्क में, वह अनन्त कालीन है ।

यह बड़े मजे की बात है। क्षणिक सुख के लिए अनन्त कालीन दुख कैसे मिल सकता है? बर्ट्रेंड रसेल ने यह भी तर्क उठाया है। ईसाइयत मानती है कि नर्क जो है, वह इटॅरनॅल है; उसका कभी अन्त नहीं होगा। जो एक दफे नर्क में पड गया, वह पड़ गया। उससे निकलने की कोई जगह नही है। शाश्वत नर्क!

अब ये बड़े मजे की बात है कि क्षणिक सुख, उसके बदले मे शाश्वत नर्क! कहीं साथ नही बैठता। रसेल ने कहा है कि मुझ पर अगर कोई ठीक न्यायोचित व्यवस्था की जाय मेरे पापों की, तो जो मैंने पाप किये हैं वो और जो मैंने सोचे है, अगर वे भी जोड लिये जायें– तो भी मुझे सख्त से सख्त अदालत चार साल, और चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकती। तो अनन्त . . . ! इसमें जरूर देने वालों का कुछ हाथ है। अनन्त नर्क, जिसका फिर कोई अन्त नही होगा!

उलटी बात भी समझ लेने-जैसी है। क्षणिक सुख छोड़ने वाले लोग शाश्वत सुख पायेंगे। क्षणिक को छोड़कर शाश्वत कैसे पाया जा सकता है? आखिर गणित कुछ तो साफ होना चाहिए। सिर्फ क्षणिक सुख भोगने वाले लोग शाश्वत नर्क पायें। क्षणिक सुख छोडने वाले शाश्वत सुख पायें। इसमे देने वालों का, हिसाब लगाने वालो का हाथ है।

जगत में वही मिल सकता है, जो छोड़ा जाता है। सब चीजों के मूल्य अन्ततः समान हो जाते हैं। अगर क्षणिक सुख ही छोड़ा है, तो महावीर कहते हैं, स्वर्ग मिल सकता है। लेकिन वह स्वर्ग भी क्षणिक होगा। अगर मोक्ष चाहिए, तो क्षणिक सुख को छोड़ने से नही मिलने वाला है; शाश्वत आत्मा को जानने से मिलने वाला है। उसका त्याग से कोई सम्बन्ध नही। उसका भोग से कोई सम्बन्ध नही। उसका आत्म-बोध से सम्बन्ध है। शाश्वत जो मेरे भीतर छिपा है, उसको जानने से मेरा शाश्वत से सम्बन्ध जुड़ जायेगा। क्षणिक जो मेरी देह है, उसके माध्यम से जितने भी सम्बन्ध मैं जोडता हूँ, वे भी क्षणिक ही होंगे।

साधु का आधारभूत लक्षण है कि दूसरे में उसे बुरा दिखाई न पड़े। लेकिन क्यो? यह तभी हो सकता है, जब स्वयं के भीतर से बुरा गिर जाये। क्योंकि हमें वही दिखाई पड़ता है दूसरे में, जो हमारे भीतर होता है— मैग्निफाइ होकर दिखाई पड़ता है; खूब बड़ा होकर दिखाई पड़ता है। हमारे चारों तरफ दर्पण घूम रहे हैं। सारा जगत दर्पण है, जिसमें हम ही लौट-लौट कर गूंजते हैं और दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर से दुर्गुणों से शून्य हो जाता है, इन दर्पणो में भी दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है।

लेकिन आप उस तरह के लोग हैं कि अगर दर्पण में आपका कुरूप चेहरा दिखाई पड़े, तो आपको ख्याल आता है कि दर्पण में जरूर कोई भूल है। 'मेरा चेहरा और

कुरूप कैसे हो सकता है !' तो आप दर्पण तोड़ देने को तैयार हो सकते हैं, चेहरा बदलने को नहीं। हम यही कर रहे हैं। चारो तरफ हर सम्बन्ध, जीवन का हर सम्बन्ध प्रतिफलन कर रहा है।

जब आप पाते हैं कि आपको एक बुरी पत्नी मिल गयी, तो आपके ख्याल में नहीं आता कि यह बुरे पति का परिणाम है; यह होने ही वाला है। आप पत्नी बदल सकते हैं; दर्पण बदल सकते हैं, लेकिन हर पत्नी बुरी सिद्ध होगी। वह तो अच्छा है, जिन मुल्कों में पत्नी बदलने की बहुत सुविधा नहीं, तो यह दुख अनुभव नहीं हो पाता कि हर पत्नी बुरी सिद्ध होती है। यह आशा बनी ही रहती है कि यह एक भूल हो गयी है; बाकी इतनी स्त्रियाँ थीं, जो अच्छी पत्नी हो सकती थी। लेकिन जिन मुल्कों में सुविधा हो गयी तलाक की, वहाँ जीवन बड़ी उदासी से भर गया है। हर बार उसी तरह की पत्नी आदमी खोज लेता है, जैसी उसने पहले खोजी थी। क्योंकि खोजने वाला तो बदलता नहीं। तो खोजी जाने वाली चीज भी बदलने वाली नहीं है।

आप कितना ही कुछ भी करे, दर्पण के बदलने से आप बदलने वाले नहीं है। हर दर्पण आपका ही प्रतिफलन देगा। और आप इतने ज्यादा अन्धेरे से भरे हैं कि दर्पण से रोशनी आने का कोई उपाय नहीं है। जब आपको कोई भी दुख चारों तरफ से मिलता है, तो ध्यान रखना– लोग बुरे हैं, इसलिए दुख मिल रहा है– यह धारणा सामान्य आदमी की है। मैं बुरा हूँ, इसलिए दुख पा रहा हूँ– यह धारणा साधु की है। और यही क्रान्ति साधारण व्यक्ति को साधु बनाती है। दूसरो को बदल दू, यह चेष्टा साधारण चेष्टा है। अपने को बदल लूँ, यह साधु का सकल्प है। लेकिन अपने को बदलने का ख्याल ही तब आयेगा, जब हर परिस्थिति में मैं देख पाऊँ अपने को ही; खोज पाऊँ अपने को ही।

'जो दूसरों को 'यह दुराचारी है' ऐसा नही कहता, ऐसा अनुभव भी नहीं करता, जो कटु वचन– जिससे सुननेवाला क्षुब्ध हो– नही बोलता . . .।'

ध्यान रहे, जब भी आप कटु वचन बोलते हैं, तो आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं– चेतन या अचेतन, होशपूर्वक या अनजाने। लेकिन आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं। एक बड़े मजे की बात है, आप कटु वचन बोले और दूसरा क्षुब्ध न हो, तो आप क्षुब्ध हो जायेंगे। आप किसी को गाली दें, और वह मुसकराता रहे, गाली लौट आयी। उस आदमी ने स्वीकार नही की। वह गाली आपकी ही छाती मे तीर बनकर चुभ जायेगी। अगर आप क्षुब्ध करना चाहें, और कोई क्षुब्ध न हो, तो आप बड़ी बेचैनी और बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। और अगर कोई क्षुब्ध हो जाये, तो आप कहते हैं कि क्षुब्ध होने वाले की भूल है, मैंने तो ऐसा कुछ कहा नहीं, और अगर वचन तीखा भी था, तो सत्य था।

हम तो सत्य भी बोलते हैं तभी, जब हिंसा उससे हो सकती है। सत्य भी हम तभी बोलते हैं, जब उसका उपयोग हम छुरी की तरह कर सकें; किसी को काट सकें, चोट पहुँचा सके। हमारे सत्य भी असत्यों से बदतर होते हैं। लेकिन साधु की सदा कोशिश यह होगी कि वह जो भी बोल रहा है, जो भी कर रहा है . . .। वह क्यों कर रहा है; क्यों बोल रहा है ? उसका मूल भीतर क्या है ? किसी को मै क्षुब्ध क्यों करना चाहता हूँ ? किसी को क्षुब्ध करने की वृत्ति क्यो है ?

जब तक आप किसी को क्षुब्ध न कर सकें, तब तक आपको अपनी मालकियत नही मालूम पड़ती। जिसको आप क्षुब्ध कर लेते हैं, उसके आप मालिक हो जाते हैं।

मनसविद कहते हैं कि अगर हिटलर को बचपन में प्रेम मिला होता, तो शायद हिटलर पैदा नही होता। उसे कोई प्रेम नही मिला, तो उसने एक ही कला सीखी दूसरे पर मालकियत की– वह थी हिंसा, घृणा, दूसरे को नष्ट करना।

जब आप किसी को नष्ट करते है तो आपको लगता है, आप मालिक हैं।

ध्यान रहे, दो तरह की मालकियत अनुभव की जा सकती है। या तो आप कुछ सृजन करें, कुछ क्रियेट करें. . .। एक चित्रकार एक पेंण्टिंग बनाता है। पेण्टिंग बनाकर प्रसन्न होता है, क्योंकि उसने कुछ बनाया; और बनाने के माध्यम से वह ईश्वर का हिस्सेदार हो गया। किसी अर्थ में ईश्वर हो गया। ईश्वर ने बनायी होगी यह सारी दुनिया; उसने भी एक छोटी दुनिया बनायी है। एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है। एक सगीतज्ञ एक धुन खोजता है, एक लय बिठाता है। एक नर्तक एक नृत्य को जन्म देता है। वे प्रसन्न होते है; वे आनन्दित होते है– उन्होंने कुछ बनाया। और जिसको वे बना लेते है, उसके मालिक हो जाते है।

वह जो क्रियेटर है, वह जो स्रष्टा है किसी चीज का, वह उसका मालिक है। यह एक उपाय है मालिक होने का। दूसरा उपाय यह है कि किसी चीज को आप तोड़ दें, मिटा दें, नष्ट कर दे – तब भी आप मालिक हो जाते है। न हुए ब्रह्मा, हो गये शिव–लेकिन ईश्वर के हिस्सेदार हो गये। कुछ मिटाया। मिटा सकते हैं आप।

और ध्यान रहे, बनाना बहुत कठिन है, मिटाना बहुत आसान है। एक जीवन को जन्म देना बहुत कठिन है। एक जीवन को नष्ट करने में क्या लगता है ! हिटलर ने लाखों लोगों को मिटा दिया। जितने लोग मिटते गये, उसे लगता गया, वह कुछ है। ईश्वर होने का अनुभव उसे होने लगा होगा। अगर सारी दुनिया को मिटाने की ताकत उसके हाथ में आ जाती, जिसकी वह कोशिश कर रहा था, तो उसे लगता कि अब मेरे सिवा और कोई परमात्मा नही है। 'मै मिटा सकता हूँ !'

धर्म और अधर्म इसी जगह से भिन्न होते है। अधर्म है मिटा कर मालिक बनने

की कोशिश, और धर्म है सृजन करके मालिक बनने की कोशिश। दोनों मालकियत है। लेकिन सृजन प्रेम है, विध्वंस हिंसा है। आप तलवार से ही मिटाते हैं, ऐसा नहीं है; एक छोटा-सा शब्द भी किसी के प्राणों को मिटा सकता है। आँख का एक इशारा, आपके चलने का ढंग; किसी को तोड़ सकता है, नष्ट कर सकता है।

महावीर कहते हैं, साधु वह है जो वचन भी कठोर नहीं बोलता— इतना भी नहीं कि कोई जरा-सा क्षुब्ध हो जाये। और जब भी कोई क्षुब्ध होता है, तब वह अनुभव करता है कि मैंने कुछ किया है, जिससे क्षोभ पैदा हुआ है। और वह अपने द्वारा पैदा किये क्षोभ को हर तरह से मिटाने की कोशिश करता है। ऐसा व्यक्ति अपने चारों तरफ फूल खिलाने लगता है। विनाश की शक्ति सृजन बननी शुरू हो जाती है।

बुद्ध के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे जहाँ से गुजरते, वहाँ वृक्षों में असमय फूल आ जाते। यह तो कहानी है, लेकिन बड़ी सूचक है। बुद्ध-जैसा व्यक्ति, जिसकी सारी ऊर्जा विध्वंस से हटकर सृजन बन गयी, उसका प्रतीक है यह। असमय भी वृक्षों में फूल आ जायें, तो कुछ असम्भव नहीं। इतना ही मतलब है। जहाँ भी यह व्यक्ति जायेगा, वहाँ कुछ खिलेगा बजाये मुरझाने के। इसके होने का ढंग ऐसा हो गया है कि चीजें नाचेंगी, हँसेंगी, प्रसन्न होंगी, प्रफुल्लित होंगी।

महावीर इसी को अहिंसा कहते हैं। आप हो सकता है मांसाहार न करें, पानी छान कर पियें, रात भोजन न करें; आप सब तरह से हिंसा को भोजन से बचा लें। लेकिन तब हिंसा आपके दूसरे पहलुओं में प्रवेश कर जाये। आप कठोर वचन बोलने लगें, कटु वचन बोलने लगें। साधुओं के वचन देखे, अति कठोर मालूम होंगे। उनकी कठोरता भी हमें लगती है कि शायद उनकी अनासक्ति का प्रतीक है; शायद उनकी कटुता उनके सत्य होने का प्रतीक है। यह बात गलत है। इन्हीं कारणों से हमने एक कहावत बना रखी है कि सत्य कटु होता है। यह बात गलत है। क्योंकि जो सत्य कटु हो जाता है, वह कटु होने के कारण ही असत्य हो जाता है।

सत्य से मधुर और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन सत्य बोलने का हकदार वही है, जिसके भीतर माधुर्य का जन्म हो गया है; नहीं तो वह जो सत्य बोलेगा, वह जहर होगा। आप जहर से भरे हैं— आपके भीतर से जो भी निकलेगा, वह जहर बुझा हो जायेगा। आपसे सत्य भी निकल जाये, तो आपसे बच नहीं सकता। वह जहर से बुझा तीर हो जायेगा; और जहाँ जायेगा, वहीं अहित करेगा।

नीत्शे ने तो कहीं व्यंग में कहा है कि असत्य भी मधुर हो, तो हितकर है उस सत्य की बजाये जो कटु है। यह बात समझ में आने-जैसी है। मेरी अपनी धारणा यह है कि असत्य भी अगर पूर्ण माधुर्य से निकले, तो सत्य हो जाता है। और सत्य भी अगर कटुता से निकले, तो असत्य हो जाता है। आन्तरिक माधुर्य ही कसौटी है सत्य और

असत्य की । और कोई कसौटी नहीं है । आन्तरिक माधुर्य उसे ही प्राप्त होता है, जो विध्वंस की सारी क्षमता से शून्य हो गया है । उसकी आत्मा से मधु बहने लगता है । उससे फिर जो भी निकले, वह सत्य है । उससे फिर जो भी निकले, वह प्रेम है । महावीर कहते हैं —

"जो कटु वचन— जिससे सुननेवाला क्षुब्ध हो— नहीं बोलता, 'सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं—' ऐसा जानकर जो दूसरों की निन्द्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिन्ता करता है . . . . .।'

(इस सूत्र को ठीक से समझ लेना चाहिए । क्योंकि महावीर की आधारभूत शिलाओं में यह एक है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भी अनुभव कर रहा है, जो भी कर रहा है, वह उसकी अपनी आन्तरिक कर्मों की शृंखला का हिस्सा है । आप अगर गाली देते हैं, तो यह गाली आपके अतीत से सम्बन्धित है; जिसको आप गाली देते हैं, उससे सम्बन्धित नहीं है । वह सिर्फ निमित्त है । अगर आप प्रेम करते हैं, तो यह भी आपके अतीत-अनुभवों की सार शृंखला है । उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, जिसको आप प्रेम करते हैं । वह सिर्फ निमित्त है । प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, और बाहर केवल निमित्त है ।

जीवन की धारा भीतर से आती है; बाहर तो केवल औषध हैं । लेकिन हम उलटा सोचते हैं । हम सोचते हैं : भीतर से क्या आता है, सब कुछ बाहर है; सब कुछ बाहर से हो रहा है । एक आदमी आपको गाली दे दे, थोड़ा सोचें । आपका मिजाज खराब हो तो गाली बहुत गाली मालूम पड़ेगी । मिजाज अच्छा हो तो गाली बहुत छोटी गाली मालूम पड़ेगी । अगर आप सच में ही आनन्दित हो, ध्यान में मग्न हों, तो गाली गाली मालूम ही नहीं पड़ेगी । और अगर आप नर्क में बैठे हो, दुख और पीड़ा से भरे हो, तो गाली आपके लिए पूरे जीवन को बदलने का आधार हो जायेगी । हिंसा-हत्या में आप उतर जायेंगे ।

गाली में क्या है ! गाली सिर्फ निमित्त है । जो है, वह आपके भीतर है । जैसे हम कुएँ में बाल्टी डालते हैं, कुआँ सूखा हो तो बाल्टी खाली लौट आती है । वैसे ही गाली एक बाल्टी की तरह आपमें जाती है । आप खाली हों तो खाली लौट आती है। आप माधुर्य से भरे हों तो गाली की बाल्टी भी माधुर्य को लेकर ही लौटती है। और आप नर्क की अग्नि से भरे हों, तो लपटें उबलती हुई उस बाल्टी में बाहर आ जाती है । बाल्टी जो लेकर लौटती है, वह बाल्टी का नहीं है; जो लेकर लौटती है, वह आपका है ।

महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपने ही जगत में जी रहा है, जो उसके भीतर है । बाहर से मौके मिलते हैं, उन मौकों को मूल्य मत दो; ध्यान दो भीतर । और

अगर कोई आदमी सुख भोग रहा है; कोई आदमी दुख भोग रहा है; कोई आदमी पाप कर रहा है; और कोई आदमी पुण्य कर रहा है, तो इनसे परेशान मत हो जाओ। वे सभी लोग अपने-अपने कर्मों के अनुसार चल रहे हैं।)

इसमें एक बात और बड़ी सोच लेने-जैसी है। क्योंकि वह विचारणीय हो गयी है इस सदी में -- ईसाइयत के कारण। ईसाइयत ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि दूसरे को, जो दुखी है, उसकी सेवा करो। उसके दुख को मिटाओ। उसके दुख को कम करो। दूसरे का सुख बढ़ाओ। ऐसी सेवा की धारणा ही धर्म है।

ईसाइयत के प्रभाव में . . . राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र, विवेकानन्द, गाँधी, ये सारे लोग ईसाइयत के भारी प्रभाव में थे-- कहना चाहिए, बहुत गहरे अर्थों में ईसाई थे। इन सारे लोगो ने कहा कि सेवा धर्म है। और इन सारे लोगों ने कहा कि अगर कोई दुखी है, तो उसके दुख को मिटाने की कोशिश करो। महावीर कहते हैं कि कोई दुखी है, तो वह अपने कारण से दुखी है। तुम उसका दुख मिटा नही सकते। तुम्हारे दुख मिटाने का कोई उपाय कारगर नही हो सकता।

इसका यह अर्थ नही है कि तुम दुख मिटाने की कोशिश मत करो। यह बहुत सोचने-जैसा सूक्ष्म बिन्दु है। महावीर कहते है कि तुम दूसरे का दुख तो मिटा नही सकते-- इसका यह मतलब नही है कि तुम दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश मत करो। तुम अगर दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश कर रहे हो, तो इससे तुम्हारा अपना दुख मिट सकता है। यह चेष्टा कि तुम दूसरे को सुखी करने का उपाय कर रहे हो, इससे कोई दूसरा सुखी नही हो सकता-- लेकिन यह भाव कि दूसरा सुखी हो, तुम्हें सुख की तरफ ले जायेगा। और यह भाव ही कि दूसरा दुखी न हो, तुम्हारे अपने दुखों से तुम्हे छुटकारा दिलायेगा। दूसरे से इसका कोई सम्बन्ध नही है, सम्बन्ध तुमसे ही है। लेकिन बड़ी भूल हुई।

एक तरफ तो यह हुआ कि जैनो में एक सम्प्रदाय पैदा हुआ तेरापथ, जो कहता है, दूसरे के दुख को मिटाने की कोशिश ही मत करना, क्योंकि महावीर कहते हैं, वह अपना दुख भोग रहा है। इसलिए तेरापंथ ने बड़ी बेहूदी धारणाएँ विकसित की, बेहूदी से बेहूदी, जो धर्म के इतिहास में पैदा हो सकती हैं। अगर कोई आदमी भूखा मर रहा है, तो तुम उसमें बाधा मत डालना। वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। कोई आदमी बीमार है; कोढ़ से सड़ रहा है, तुम सेवा में मत पड़ना। क्योकि तुम क्या कर सकते हो! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है।

बात बिलकुल सच है। वह अपना कर्म-फल भोग रहा है। तुम क्या कर सकते हो! और यह भी सम्भावना है कि तुम उसके कर्म-फल के बीच में व्यवधान बन जाओ और उसको ठीक से कर्म-फल न भोगने दो; तो जो वह अभी भोग लेता, वह उसे

फल भोगना पड़े, जब तुम हट जाओगे। इसलिए तुम चुपचाप अपने रास्ते पर चलना। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, तुम बीच में बाधा मत डालना।

इसलिए तेरापंथ ने अहिंसा के नाम पर एक बड़ा हिंसक रुख पैदा किया। बात तो बिलकुल तर्कयुक्त है कि अगर हर व्यक्ति अपने ही कर्म भोग रहा है, तो आप कौन हैं! और आप क्या कर सकते हैं! तो करने की फिजूल झंझट में क्यो पड़ते हैं? इतनी शक्ति और श्रम अपनी ही साधना में लगायें; दूसरे की तरफ उन्मुख मत हों।

तो तेरापंथ में सेवा का कोई उपाय नहीं है। और सेवा करने वाला अज्ञानी है – पापी भी हो सकता है; क्योंकि दूसरे में दखलअन्दाजी करनी, दूसरे को बाधा डालनी एक तरह का पाप है।

महावीर के तर्क से यह बात निकली है। दूसरी तरफ ईसाइयत का तर्क है, जो कहती है : दूसरे की सेवा करो और दूसरे को सुखी करने की कोशिश करो। तुम सुखी कर सकते हो।

वह भी गलत है। आज तक दुनिया में कोई किसी को सुखी नहीं कर पाया। अक्सर तो यह भी हो जाता है कि सुखी करने की कोशिश मे आप किसी को और दुखी कर देते हैं। और कोई किसी का दुख भी नहीं छीन सकता, क्योंकि दुख आते हैं भीतरी कारणों से। बाहर कोई उपाय नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, ईसाइयत की इस धारणा में एक खतरा और भी छिपा है। और वह यह कि अगर मुझे यह ख्याल आ जाये कि मैं अपने कर्मों से किसी को सुखी कर सकता हूँ और किसी को दुखी कर सकता हूँ, तो इसी का अनुसांगिक तर्क भी है कि दूसरे अपने कर्मों से मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं। तब सारी बात अस्त-व्यस्त हो जायेगी। क्योंकि अगर दूसरे मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं, तो मेरे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। अगर मोक्ष में भी आप पहुँच जायें और मुझे दुखी करने लगें, तो मैं क्या करूँगा? और मोक्ष में भी तो कुछ लोग होंगे ही, जो सेवा भी करना चाहेंगे। क्या करूँगा मैं?

महावीर का तर्क बहुत शुद्ध है। महावीर कहते हैं, दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता, ये तुम्हारी मुक्ति का आधार है। तो ही आत्मा मुक्त हो सकती है, अगर दूसरा बिलकुल असमर्थ है कुछ करने में। नहीं तो आत्मा के मुक्त होने का कोई उपाय नहीं। इसलिए महावीर ने ईश्वर को भी अलग हटा दिया अपनी धारणा से और कहा कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

लोग सोचते हैं कि ईश्वर के बिना मुक्ति कैसे होगी! और महावीर कहते हैं कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह गड़बड़ कर सकता है।

वह परम शक्तिशाली है। उसीने तुम्हे बनाया, वह तुम्हें मिटा सकता है। वह तुम्हें गुलाम कर सकता है। वह तुम्हें मुक्त कर सकता है। उसकी प्रार्थना-पूजा से तुम मुक्त हो सकते हो, तो फिर मुक्ति का कोई अर्थ नही। जो मोक्ष प्रार्थना से मिल सकता है, वह मोक्ष नही है — हो नही सकता। क्योंकि कोई दूसरा जिसे दे रहा है, वह मेरी मुक्ति नही है। और जब दूसरा दे सकता है, तो दूसरा वापिस भी ले सकता है।

इसलिए महावीर ने कहा, जब तक ईश्वर की धारणा है, तब तक जगत में मोक्ष का कोई उपाय नही है। इसलिए ईश्वर को अलग कर दिया बिलकुल, और प्रत्येक व्यक्ति को आन्तरिक रूप से नियन्ता घोषित किया कि तुम जो भी कर रहे हो, जो भी भोग रहे हो, जो भी पा रहे हो, नही पा रहे हो— तुम ही कारण हो।

व्यक्ति मूल कारण है अपने जीवन का, बाकी सब निमित्त है। लेकिन इसका यह अर्थ नही जैसा तेरापथ ने लिया है। जिन्होने तेरापथ की धारणा विकसित की, वे जरूर वे ही लोग होंगे, जो महावीर को ठीक से नही समझ पा रहे हैं।

दूसरे की सेवा करने का भाव,श्रम तुम्हे सुख मे ले जायेगा। दूसरे को दुखी करने से दूसरा दुखी होगा — ऐसा नही, लेकिन दूसरे को दुखी करने की वासना स्वयं का दुख निर्मित करती है।

कृष्ण ने गीता में कहा है कि आत्मा मरती नही। तो अर्जुन को कहा है कि तू मार बेफिक्री से, क्योंकि कोई आत्मा मरती नही। इसलिए अहिंसा का और हिंसा का कोई सवाल हो नहीं उठता। महावीर भी कहते हैं, आत्मा मरती नही, कोई मार सकता नही। पर महावीर हिंसा-अहिंसा का बड़ा सवाल उठाते हैं।

कृष्ण की दलील समझने-जैसी है। कृष्ण कहते हैं, जब कोई मारा ही नही जा सकता, तो लोगो को यह समझाना कि मत मारो, मूढतापूर्ण है। जब मारने का कोई उपाय ही नही है, तो यह कहने का क्या अर्थ है कि मत मारो! और अगर कोई नही भी मार रहा है तो कौन-सा गुण उपलब्ध कर रहा है! क्योंकि मार सकता कहाँ है? जब हम एक आदमी को काटते हैं, तो शरीर ही कटता है। वह मरा ही हुआ है। उसको मारने का कोई उपाय नही है। आत्मा कटती नही।

कृष्ण कहते हैं : न हन्यते हन्यमाने शरीरे— काटो कितना ही, तो भी कटती नही। छेदो तो छिदती नहीं। जलाओ तो जलती नहीं। तर्क कृष्ण का बहुत साफ है कि जब कोई मारने से मरता ही नहीं, मारा नही जाता, तो अर्जुन, तू फिजूल की बकवास में क्यों पड़ा है कि लोग मर जायेंगे? यह अज्ञान है।

बड़ा कठिन है। महावीर भी जानते है कि आत्मा मरती नहीं; आत्मा मिट नहीं सकती। सच तो यह है कि कृष्ण से भी ज्यादा महावीर का मानना है कि आत्मा को

मिटाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि कृष्ण तो कहते हैं, परमात्मा की लीला है कि वह बनाता है और चाहे तो मिटा सकता है। महावीर के लिए तो कोई मिटाने वाला भी नही है। परमात्मा भी नही है। आदमी की तो सामर्थ्य नही है।

आत्मा को न कोई पैदा करता है, और न कोई मिटा सकता है। आत्मा शाश्वत है, अमृत है। फिर भी महावीर कहते हैं– हिंसा और अहिंसा। तो समझ लें इस संदर्भ में।

महावीर कहते हैं कि जब तुम हिंसा करते हो, तो तुम दूसरे को नही मारते, लेकिन हिंसा के भाव से खुद के लिए दुख पैदा करते हो। तुम मारने की धारणा बनाते हो, उस धारणा से ही तुम पीड़ित होते हो। दूसरे के मरने से पाप नहीं होगा। क्योंकि दूसरा मर नही सकता। लेकिन तुमने पाप करना चाहा। तुम पाप के विचार से भरे। तुमने दूसरे को नुकसान पहुँचाना चाहा; उसका जीवन छीन लेना चाहा। तुम नही छीन पाते। यह तुम्हारे हाथ की बात नही है। यह जगत का नियम है। लेकिन तुमने अपनी पूरी कोशिश की। उस कोशिश, उस विचार, उस भावना, उस वासना, उस दुष्ट वासना के कारण तुम अपने लिए दुख पैदा करोगे। हिंसा दुख लायेगी– दूसरे के लिए मृत्यु नही, तुम्हारे लिए दुख। अहिंसा दूसरे को बचायेगी नही, क्योंकि दूसरा बचा हुआ है अपने आन्तरिक जीवन से। कोई उसे बचा नहीं सकता। लेकिन दूसरे को बचाने की धारणा तुम्हारे जीवन में सुख के फूल खिलायेगी।

महावीर कहते है, तुम जो भी करते हो, वह तुम्ही को हो रहा है; और निरन्तर तुम्ही को होता चला जाता है। तो जो दूसरे कैसे हैं– अच्छे या बुरे– इसका विचार नही करना। अच्छे हैं तो अपने कारण, बुरे हैं तो अपने कारण। यह उनकी निजी बात है। इससे दूसरों को कोई लेना-देना नही है। वे नर्क जायेंगे कि स्वर्ग जायेंगे, यह उनकी चिन्ता है। इसमें दूसरों को चिन्ता लेने का कोई कारण नही है।

जो दूसरों की चिन्ता छोड़कर अपने सुधार की चिन्ता करता है. . .।

हम सारे लोग बड़े सुधारक है। हम-जैसा सुधारक खोजना मुश्किल है। हम सारे जगत को ही सुधारने में लगे रहते हैं– सिर्फ अपने को छोड़कर। और अपने को सुधारने का कोई सवाल ही नही है। क्योंकि वहाँ हम सोचते है, सुधरे ही हुए है। सारा जगत बिगड़ा हुआ मालूम पड़ता है। इसलिए सुधारो। इसलिए सुधार करने वाले लोग जितना मिसचीफ पैदा करते है दुनिया में, कोई दूसरा पैदा नहीं करता। ये असली उपद्रवी है। ये किसी को चैन से नहीं रहने देते। ये सभी को बदलने में लगे हैं। ये हर हालत में बदल के रहेंगे। इनका रस सचमुच बदलने में नही है कि कोई अच्छी दुनिया पैदा हो। इनका रस बदलने की प्रक्रिया में है। क्योंकि जब ये बदलते हैं किसी

को, तो तोड़ते है; मिटाते हैं; नया करते हैं। दूसरा खिलौना हो जाता है, ये मालिक हो जाते हैं।

असल में दूसरों को बदलने के लिए जो बहुत आतुर हैं, वे हिंसक है। जो अपने को बदलने को आतुर हैं, वे साधु हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जो अपने को बदल लेता है, उसके पास बहुत-से लोग बदलना शुरू हो जाते हैं। और जो दूसरे को बदलना चाहता है, उसके पास कोई नही बदलता। साधुओं के आश्रम में जाकर देखें, जहाँ बदलने की भयंकर चेष्टा चलती है। वहाँ कोई बदलता दिखाई नही पड़ता।

गान्धी जी अपने आश्रम में ब्रह्मचर्य को बड़े जोर से थोपते थे। लेकिन रोज उपद्रव खड़ा होता था। ब्रह्मचर्य कभी फलित नही हुआ। खुद उनके निजी, प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल उलझ गये। ब्रह्मचर्य मुश्किल था। और गान्धी की चेष्टा भारी थी: जितने जोर से थोपा जा सके ब्रह्मचर्य, उतना थोप देना। लेकिन वह हुआ नहीं। और गान्धी ने जो-जो थोपना चाहा अपने शिष्यों पर, शिष्य ठीक उसके विपरीत चले गये। इधर पिछले तीस साल का इतिहास कहता है। जो-जो उन्होंने चाहा था, शिष्य उसके उलटे गये— सादगी चाही थी, तो भोग पैदा हुआ, चाहा था दीन-दरिद्र, सन्यस्त की तरह रहें, वह नही हो सका। ब्रह्मचर्य का तो कोई सवाल ही नही है।

कहाँ भूल है?

दूसरे को बदला नही जा सकता। असल में जब हम बदलने की बहुत कोशिश करते हैं, तो दूसरे के अहंकार में प्रतिरोध पैदा होता है, रजिस्टेन्स पैदा होता है।

मनसविद कहते है कि दुनिया में अच्छे बच्चे पैदा हो सकते है, अगर मा-बाप अच्छा बनाने की थोड़ी कोशिश कम करें। वे इतना अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं, कि बच्चों को बिगाड़ देते है। इसलिए अच्छे बाप का अच्छा बेटा पाना बड़ा मुश्किल है— कभी बुरे बाप का अच्छा बेटा हो भी जाये।

एक शराबी का बेटा साधु हो जाये, यह हो सकता है। साधु का बेटा शराबी न हो, यह ज़रा मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। खुद महात्मा गान्धी का बेटा, हरिदास, ठीक उलटा गया। और हरिदास कीमती आदमी था; और कीमती था इसीलिए उलटा गया। बाकी मिट्टी के थे। मिट्टी के पुतलों को आप कैसा भी बना दें, ढाल दें, वे कुछ इनकार न करेंगे। लेकिन जिन्दगी इनकार करेगी, लड़ेगी, क्योंकि जिन्दगी का लक्षण प्रतिरोध है।

हरिदास ने इनकार किया। तो हरिदास मुसलमान हो गये; शराब पीने लगे। अपना नाम उन्होंने रख लिया, अब्दुल्ला गान्धी। वह गान्धी के विपरीत जा रहा है। और जाने का कारण गान्धी की चेष्टा में है। गान्धी की पूरी चेष्टा है, गान्धी कहते हैं:

हिन्दू-मुसलमान सब एक हैं। तो हरिदास हो गया मुसलमान। और जब उसे पता चला कि गान्धी पीड़ित हुए, तो उसने कहा कि पीड़ित होने की क्या बात है ? हिन्दू-मुसलमान सब एक, तो पीड़ित होने की क्या बात है? और हरिदास शराब पीने लगा। और गान्धी पीड़ित हुए। बाप पीड़ित होगा ही। और बाप की बड़ी इच्छा थी कि अच्छा बना ले। भली इच्छा है। इच्छा में कुछ बुराई भी नही है। लेकिन विज्ञान का बोध नही है।

तो हरिदास ने कहा, जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, तो मैं क्या करता हूँ, क्या नही करता हूँ, यह मेरी बात है। इससे किसी को क्या लेना-देना ? और इतनी आसक्ति क्यों रखते है मुझ पर वे कि मेरा बेटा है ? यह भी ममत्व है। मेरा बेटा बुरा न हो जाये, इसमें भी अहकार है। मेरा बेटा अच्छा हो, इसमें भी अहकार है।

हरिदास लड़ रहा है एक भले बाप से। सभी हरिदास लड़ते है। भले बाप खतरनाक होते है। क्योंकि वे भला करने की इतनी चेष्टा करते हैं कि प्रतिरोध पैदा कर देते हैं।

महावीर कहते है, साधु दूसरे को बदलने की चिन्ता मे नहीं पड़ता। इसका यह मतलब नही कि उसकी शुभाकाक्षा नही है। लेकिन महावीर गणित को जानते हैं जीवन के। शुभाकाक्षा तभी कारगर हो सकती है, जब आक्रामक न हो। और जब मैं दूसरे को बदलना चाहता हूँ, तो मै आक्रामक हूँ, हिंसक हूँ। आखिर दूसरा दूसरा है। उसकी अपनी निजी जीवन की धारा है। अगर मुझे कुछ ठीक लगता है तो वैसा मैं हो जाऊँ। अगर मेरे होने से वह आन्दोलित और प्रभावित हो तो ठीक, और न हो तो मेरे बश के बाहर है। फिर मैं हूँ कौन ? फिर मैं कौन हूँ कि किसी को ठीक करने का जिम्मा अपने सिर लूं। यह अहकार ही हो सकता है, अच्छे आदमी का अहकार—कि दूसरे को भी मैं मेरे-जैसा बना लूं। लेकिन क्यों? मेरी अपनी आत्मा है, उसकी अपनी आत्मा है। और दोनों की अपनी परम सत्ता है।

महावीर कहते हैं कि जो अपने को बदलने की फिक्र करता है; जो दूसरो की निन्द्य चेष्टा भी हो, उसे लगता भी हो कि बिलकुल गलत हो रहा है, तो भी उसकी निन्दा में नही पड़ता।

एक ही उपाय है साधु के पास—अनाक्रामक जीवन। उसके जीवन की ज्योति ऐसी होनी चाहिए कि कोई प्रभावित हो, तो हो जाये। और कोई पतंगे होंगे ज्योति के तो चले आयेंगे ज्योति की तरफ। और कोई ज्योति फिरे पतंगो के पीछे उनको पकड़ने को, तो पतंगे कोई आते भी होंगे, फिर दुबारा नही आयेंगे। क्योंकि ऐसी ज्योति भरोसे की नहीं है, जो पतंगों का पीछा कर रही है कि आओ। ज्योति का मतलब ही यह है कि वह है तो पतंगे आ जायेंगे।

ज्योति की तरह अनाक्रामक, अनाग्रह से जीता हुआ, अपने को बदलता हुआ, अपने को रूपान्तरित करता हुआ व्यक्ति साधु है।

'जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नही बनाता, वही भिक्षु है।'

ये शर्त ध्यान रखना जरूरी है, क्योंकि गर्व सब तरह से उद्धत होना चाहता है; कई उपाय खोजता है। मै त्यागी हूँ; मैं भोगी नहीं हूँ; मैं ध्यानी हूँ; मैं समाधिस्थ हो गया – ये सारे जाल है जो अहंकार भीतर की तरफ फैलाता है। बाहर की सम्पदा छोड़ दी, तो अब भीतर की सम्पदा पैदा हो रही है। बाहर के खजाने छोड़ दिये, तो अब भीतर के खजाने पैदा हो रहे है।

साधकों के पास जायें, तो वो सब फिक्र रखते है कि कौन किस चक्र तक जाग गया। किसकी कुंडलिनी कितनी जागृत हुई – सहस्रार तक पहुँची या नही पहुँची। वे सब हिसाब करते हैं। एक दूसरे से सर्टिफिकेट मांग रहे है कि मै कहाँ तक पहुंच गया। सिद्ध हो गया कि नहीं हो गया ? क्या प्रयोजन है ?

अस्मिता को निर्मित करना ही असाधुता है। वह किस कारण निर्मित होती है, यह सवाल नही है। उसे निर्मित होने देना कि मै कुछ हूँ, दूसरो से खास, दूसरो से ऊपर ...।

बस, मेरा खास होना ही रोग है। और यह रोग सूक्ष्म है। यह दिखाई नही पड़ता, और बढता चला जाता है। और जैसे-जैसे दूसरे लोग आदर देने लगते हैं, वैसे-वैसे पक्का होने लगता है कि बात ठीक ही है, तभी तो लोग आदर दे रहे हैं। लोग चरणों पर सिर रख रहे है – कुछ हो गया है तभी तो। जरूरी नहीं है। कई लोगों की जरूरत है कि वे चरणो पर सिर रखें। उन्हे बिना रखें चैन नही है। कुछ लोग है जिन्हें झुकने में रस है। उन्हे बिना झुके आनन्द नही आता। आप इसकी फिकर मत करें कि वे आपके लिए झुक रहे है। आप यही जानें कि उनको झुकने में कुछ रस होगा, कोई व्यायाम होगा। वे अपने लिए झुक रहे हैं। यह उनकी अपनी निजी बात है, मुझसे कुछ लेना-देना नही है।

लेकिन वहम पैदा होता है। वहम पैदा हो जाता है, क्योंकि चारो तरफ हजार तरह की बीमारियो से भरे हुए लोग है। वे साधु को उद्धत कर देते है। और एक दफा अहंकार निर्मित होने लगे, तो फिर उसकी कोई सीमा नहीं है। फिर बढता चला जाता है। जैसे-जैसे भरोसा बढ़ने लगता है कि लोग झुक रहे हैं, लोग आदर दे रहे है, जरूर मैं कुछ हूँ, वैसे-वैसे कठिनाई शुरू हो जाती है।

मैने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्री के साथ ट्रेन में बैठा हुआ था। कुछ बात चलाने के सिलसिले उसने पूछा कि जरा आपका हाथ देखूँ। आदमी उत्सुक हो गया।

हाथ दिखाने को सभी उत्सुक हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो भविष्य में उत्सुक न हो। भविष्य में वही उत्सुक नहीं होगा, जिसकी कोई वासना नहीं है। जिसकी वासना है, वह भविष्य में उत्सुक होगा ही। इसलिए हाथ देखने से सुविधापूर्ण मित्रता बनाने का उपाय और नहीं है।

मुल्ला ने हाथ गौर से देखा और उस आदमी का चेहरा देखा, और कहा कि मालूम होता है, यू आर ए बैचलर– आप ब्रह्मचारी हैं।

वह आदमी चकित हुआ। उसने कहा, "अमेजिंग! यह सच है कि मैं अभी तक ब्रह्मचारी हूँ। तुमने कैसे पता लगाया?"

नसरुद्दीन की हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि पता? मनुष्य-स्वभाव का मुझे अनुभव है। और यही तक नही, आइ कैन सी इवन फरदर, यॉर फादर वाज़ ऑल्सो ए बैचलर – यह कुछ नही है, आगे तक देख सकता हूँ कि तुम्हारा बाप भी ब्रह्मचारी था।

ज़रा-सी हिम्मत बढ़ी कि आदमी ने उपद्रव शुरू किया। और चारो तरफ लोग हैं, जो आपकी हिम्मत बढाने को तैयार हैं। आप उनसे सावधान रहना। महावीर यही कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं : साधु, सावधान रहना दूसरे लोगो से, क्योंकि वे अपनी बीमारियो से पीड़ित हैं।

कोई झुकना चाहता है। ढेर लोग हैं, जो इनफिरियॉरिटि कॉम्प्लेक्स से पीडित हैं– जिनको हीनता की ग्रन्थि है। जो सीधे खड़े हो ही नही सकते। जिनको सीधा खड़ा होने में डर लगता है। तो उन्होंने एक डिफेंस मेजर, एक सुरक्षा का उपाय बना लिया है : झुको। झुकने से दूसरा आदमी आक्रमण नही करता। क्योंकि जैसे ही कोई आदमी झुक गया, दूसरे को आक्रमण करने का मज़ा ही चला गया।

तो कुछ लोग झुके हुए ही जी रहे हैं। उनका झुका हुआ होना उनकी बीमारी है। साधु-संन्यासियों को वे मिल जाते हैं। जगह-जगह वे मौजूद हैं। एकदम झुक जाते हैं। फिर कुछ लोगों में अपराध का भाव है, गिल्ट कौम्प्लेक्स है, जो अपने को अपराधी मानते हैं। अकारण भी नही, जीवन में बहुत अपराध हैं। आदमी अपराधों से भरा हुआ है।

तो अपराधी आदमी हमेशा अपने को झुकाना चाहता है। झुकाना एक तरह का कॅन्फेशॅन है, एक तरह की स्वीकृति है कि मैं अपराधी हूँ; पापी हूँ। लेकिन दूसरा आदमी इससे गौरवान्वित समझता है। वह समझता है कि जो आदमी झुक रहा है, वह यह कह रहा है कि तुम ऊपर हो, इसलिए मैं झुक रहा हूँ।

यह आदमी झाड़ के नीचे झुकता है। यह आदमी पत्थर के सामने झुकता

है । यह आदमी नदी के सामने झुकता है । इसका भरोसा मत करना । इसे कुछ प्रयोजन आपसे नहीं है । यह झुकने के बहाने, निमित्त खोजता है । यह किसी को आदर देना चाहता है, क्योंकि यह अपने को आदर नहीं दे पाता । और आदर की एक भूख रह जाती है । किसी को सम्मान देना चाहता है, क्योंकि अपने प्रति सम्मानित नहीं है ।

साधु अपना त्याग, अपनी साधना, तप, इनके कारण उद्धत न हो जाये, अहंकार पोषित न करे; विनम्र बना रहे । विनम्र का मतलब, न-कुछ बना रहे । कुछ भी उसके चारों तरफ होता रहे, वह कभी भी अपने को किसी से श्रेष्ठता की स्थिति में न रखे ।

'जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य) का अभिमान नहीं करता; जो सभी प्रकार के अभिमानों का परित्याग कर केवल धर्म में, ध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है ।'

'जो महामुनि सद्धर्म का उपदेश करता है, जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकलकर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश) को छोड़ देता है, जो किसी के साथ हंसी-ठट्ठा नहीं करता, वही भिक्षु है ।'

यहाँ कुछ बड़ी कीमती और सूक्ष्म बातें हैं । जो व्यक्ति अहंकार से भरा है, वह ध्यान न कर पायेगा । उसकी चिन्तना सदा अहंकार के आस-पास ही घूमती रहेगी । वह सोचेगा और सिंहासनों के लिए, और पदों के लिए, और प्रतिष्ठा के लिए । उसका चित्त अहंकार की ही बढ़ती ... अहंकार की ही सीढ़ियाँ गिनने में लगा रहेगा । ध्यान में तो वही व्यक्ति प्रविष्ट हो सकता है, जिसने अहंकार की सीढ़ियाँ तोड़ दी हैं; जिसको अब अहंकार की यात्रा नहीं है; जिसका अहंकार का पथ बन्द हो गया, और जिसने कहा, इस ओर जाना नहीं है ।

अहंकार में जाने का अर्थ है बाहर जाना। क्योंकि अहंकार की तृप्ति दूसरे कर सकते हैं ।

ध्यान रहे, अगर आप जंगल में अकेले हैं, तो अहंकार की तृप्ति नहीं हो सकती । अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरा चाहिए । इसलिए अहंकार बन्धन है । क्योंकि दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता । अहंकार गुलामी है, क्योंकि दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है—दूसरे की आंख, दूसरे का इशारा, दूसरे का ढंग, दूसरे की बात । इसलिए साधु चिन्तित रहता है– जिसको हम साधु कहते हैं । महावीर उसे साधु नहीं कहते । जिसको हम साधु कहते हैं, वह चिन्तित रहता है कि आपको उसकी किसी

बात में गलती तो नहीं लग रही है, कुछ पता तो नहीं चल रहा है; आप ऐसा तो नहीं सोचेंगे, वैसा तो नहीं सोचेंगे ।

एक तेरापंथी साधु मेरे पास ध्यान करने आये । तो मैंने उनसे कहा कि श्वास काफी तेज लेनी होगी, आप यह मुँह-पट्टी निकालकर ध्यान करें । तो उन्होंने कहा : निकाल तो लूं, लेकिन आप किसी को बताना मत । मुंह-पट्टी तो उन्होंने मजे से निकाल दी । उन्हें कोई अड़चन भी नहीं हुई निकालने में । खुद भी अड़चन हो, तो मेरी समझ मे आती है बात। उन्होंने कहा : मेरी निजी अनुभूति यह है कि मुँह-पट्टी निकालनी मुझे सहायता दे रही है, लेकिन चिन्ता सिर्फ इतनी है कि किसी को पता न चले ।

किसी को पता न चले, यह असाधु की चिन्ता है । साधु को दूसरे से प्रयोजन नहीं है । दूसरा निन्दा ही करेगा । दूसरा सम्मान नहीं देगा । दूसरा सिर नहीं झुकायेगा । पर उसे झुकाने की जरूरत ही कहां है ? प्रयोजन ही नहीं है । साधु की चिन्ता नहीं है कि दूसरा क्या कहेगा । पॅब्लिक ऑपिन्यन असाधु की चिन्ता है । राजनैतिक नेता चिन्ता करे कि दूसरे क्या कहेंगे– समझ में आता है । क्योंकि सारी जिन्दगी दूसरे पर निर्भर है; उसके वोट पर सारी आत्मा टिकी है । लेकिन साधु को दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है । लेकिन हम देखते है, जिसे हम साधु कहते हैं, उसे भी दूसरे से प्रयोजन है । वह भी राजनीति का ही हिस्सा है । धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं रहा है ।

महावीर कहते है : जो अभिमान, अहंकार, दूसरो की धारणा को छोड़ देता है, वही ध्यान की तरफ लीन हो सकता है । क्योंकि अहंकार ले जाता है बाहर, दूसरे के पास; ध्यान ले जाता है भीतर, अपने पास । साधु वही है, जो ध्यान में लीन है । असाधु वही है, जो अभिमान में लीन है । ध्यान और अभिमान विपरीत आयाम हैं ।

'जो महामुनि आर्यपद का उपदेश करता है, सद्धर्म का उपदेश करता है . . .।'

और महावीर सद्धर्म किसे कहते है ? महावीर सद्धर्म उसे कहते है, जो स्वयं अनुभूत है । अन्यथा पांडित्य है । अन्यथा उधार है, बासा है ।

सत्य बासा नहीं हो सकता। सत्य उधार नहीं हो सकता । और अगर उधार है, तो सत्य नहीं होगा । आप गीता कंठस्थ कर ले सकते है, लेकिन आप गीता को कंठस्थ करके जो लोगों को उपदेश देंगे, वह सद्धर्म नहीं होगा– जब तक आप कृष्ण न हो जायें । जब तक गीता आपसे सहज– स्फूर्त न होने लगे, तब तक सद्धर्म नहीं होगा । सद्गुरु जहाँ नहीं है, वहाँ सद्धर्म नहीं हो सकता ।

तो साधु का लक्षण है कि उधार को न समझाये; बासे को न समझाये; पिटे-पिटाये को न समझाये; कचरे को न समझाये। वह कचरा कभी बहुमूल्य रहा होगा– कभी, जब पहली दफे जन्मा था। लेकिन हमारी हालते ऐसी हैं...:

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हर सर्दियों में वही कोट पहनता है। ऐसा लोग पचास साल से देख रहे हैं। वह कोट इतना गन्दा हो गया है। उससे ऐसी बास आती है। थेगड़े निकल गये हैं। बिलकुल खण्डहर है कोट के नाम पर। आखिर एक दिन मित्र ने कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हारे बाप को भी हमने देखा है। क्या शानदार आदमी थे! क्या कपड़े पहनते थे! दूर-दूर से कपड़े मँगवाते थे! और तुम यह कोट ही पहन रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा कि लो, यह वही कोट तो है जो मेरे बाप पहनते थे!

महावीर जब कुछ कहते हैं तो वह जीवित है। जब जैन पण्डित दोहराता है, तो मुर्दा है– वही कोट है, माना।

महावीर कहते हैं, सद्धर्म का उपदेश करता है साधु। सद्धर्म से अर्थ है– जिसे जाना हो, जिया हो; जो जीवन्त हो गया हो; जो सत्य बन गया स्वय के लिए। जो स्वयं के लिए सत्य नही है, वह दूसरे के लिए सत्य कैसे हो सकता है? जो मेरे लिए बासा है, वह आपके लिए और भी बासा हो गया। एक हाथ और चल गया। लोग दूसरे के जूते में पैर डालना पसन्द नही करते! उधार जूता कौन पहनना पसन्द करेगा? लेकिन लोग दूसरे की आत्माएं पहन लेते हैं। जूते तक से डरते है, लेकिन आत्माएं पहनने में उन्हे कठिनाई नही होती।

साधु नहीं पहनेगा। साधु खोज करेगा। और निश्चित ही, जब कोई अपने भीतर धर्म की लकीर की खोज कर लेता है, वह वही होगी जो महावीर की है, बुद्ध की है, कृष्ण की है। उसमें कोई भेद नही होनेवाला है। लेकिन वह खोज अपनी होनी चाहिए।

हम सब ऐसे है, जैसे छोटे बच्चे हों। उनकी गणित की किताब होती है, पीछे उत्तर लिखे होते हैं– जल्दी से किताब उलटाकर पीछे देख लेते है। उत्तर तो हाथ में आ जाता है, लेकिन विधि हाथ में नहीं आने से उत्तर का क्या मूल्य! और बच्चे उत्तर के हिसाब से विधि भी बना कर लिख देते हैं। मगर वह हमेशा गलत होती है– होगी ही। विधि की खोज जरूरी है, उत्तर तो अपने आप आ जाता है।

सद्धर्म का अर्थ है: जिसने विधिपूर्वक स्वयं की साधना से जाना है; जो उसका ही उपदेश करता है, जो उसने जाना है।

ध्यान रहे, जगत में अधर्म कम हो जाये, अगर वे लोग उपदेश करना बन्द कर दें जिन्होंने स्वयं नहीं जाना है। उनके कारण बड़ा उपद्रव है। दुनिया में अधर्म अधार्मिक लोगों के कारण नहीं है, मरे-मराये धार्मिक लोगों के कारण है। जिनके पास कोई जीवन की ज्योति नहीं है; जो भीतर अन्धेरे से भरे हैं और जिनकी चर्चा में प्रकाश के शब्द तैरते रहते हैं; जिनके भीतर मृत्यु है और अमृत की बात करते हैं, उनसे अधर्म चलता है — अधार्मिक लोगों से नहीं चलता, झूठे धार्मिक लोगों से चलता है।

जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरो को धर्म में स्थित करता है— वह शर्त है, 'जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकलकर सदा के लिए कुशील लिंग को छोड़ देता है...' यह कुशील लिंग महावीर की समझने-जैसी बात है। महावीर कहते हैं कि तुम जो भी पहनते हो वेश-भूषा, वह अकारण नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन है; भीतर वासना है उससे।

एक वेश्या निकलती है सड़क पर, उसके कपड़े आमन्त्रण देते हुए होते हैं। वह अपने शरीर को बेचने निकली है; शरीर को ढापती नहीं कपड़ों से, उघाड़ती है। उसके कपड़े ढापने का काम नहीं करते, प्रगट करने का काम करते हैं; शरीर को उछालते हैं। वेश्या वैसे चले, समझ में आता है। लेकिन एक स्त्री, जो कहती है, मै अपने पति के लिए ही हूँ और सिवा मेरे पति के मेरे मन में कोई भी नहीं, वह भी वेश्या की तरह शरीर को उभार कर सड़क पर चलती है, तो समझने में अड़चन मालूम होती है।

क्योंकि वेश्या बाज़ार मे खड़ी है, उसे ग्राहक को आमन्त्रित करना है। यह गृहिणी क्यों बाज़ार में वेश्या की तरह खड़ी है? कहीं अनजाने में, अचेतन मे यह भी वेश्या है। इसका पति के साथ, एक के साथ सम्बन्ध ऊपरी है; ऊपर-ऊपर है; चेतन में है, अचेतन में नहीं है। अचेतन में ये अभी भी दूसरे पुरुषो में उत्सुक है। दूसरे पुरुष आकर्षित हो तो इसे अच्छा लगता है। इसकी चाल तेज़ हो जाती है। कोई इसमें आकर्षित न हो तो यह धीमी हो जाती है। दूसरो का निमन्त्रण इसके भीतर कहीं छिपा है।

महावीर कहते हैं, हम जो भी पहनते हैं, जिस ढंग से उठते-बैठते हैं, उस सब में हमारी वासना भीतर काम करती है। तो महावीर उस वेश को कुशील लिंग कहते हैं। जिससे शील पैदा न होता हो।

तो वस्त्र भी ऐसे हों, जो न तो खुद में वासना जगाते हों और न दूसरे में वासना जगाते हों। उठना-बैठना भी ऐसा हो, जो शरीर को उभारता न हो; आत्मा को प्रगट करता हो। लेकिन वासना से भरा हुआ चित्त जानता भी नहीं— अनजाने सब चलता है।

फ्रायड ने काफी विश्लेषण किया है। फ्रायड तो कहता है, हमारी कारें, लम्बी कारें; फैलिक हैं। जननेंद्रिय के प्रतीक हैं– कि जब कोई लम्बी कार, जो जननेंद्रिय की तरह लम्बी है, उसमें तेजी से चलता है, तो वह वही आनन्द अनुभव करता है, जो पुरुष स्त्री से सम्भोग में करता है।

यह बड़े मजे की बात है कि नपुसक लोग गाड़ियाँ बड़ी तेजी से चलाना पसन्द करते हैं। फ्रायड के जीवन भर के अनुभवों का सार यह है कि चूंकि नपसक के पास अपनी कामेन्द्रिय नही है, वह किसी प्रतीक-कामेन्द्रिय के साथ जीना शुरू कर देता है। तो पश्चिम में कारें इतनी ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती चली जाती हैं कि आदमी अपनी स्त्री की उतनी फिक्र नही करता, जितनी अपनी कार की देखभाल करता है। एक दफा स्त्री खो भी जाये, तो दूसरी पा लेना बहुत आसान मालूम होता है। कार से मनुष्य का ज्यादा निजी सम्बन्ध हो गया है। पशुओं से सम्बन्ध हो जाते हैं, वस्तुओं से सम्बन्ध हो जाते है। लेकिन हमारी वासना हमारी हर चीज में चलती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनसचिकित्सक के पास गया है, बेचैन है। और चिकित्सक पूछता है, "तुम्हारी परेशानी क्या है?" नसरुद्दीन कहता है कि क्षमा करें, आप बुरा तो नही मानेंगे? और मेरी बहुत निन्दा तो नही करेंगे? मैं एक घोड़े के प्रेम मे पड़ गया हूँ। चिकित्सक ने कहा कि इसमें चिन्ता की कोई ऐसी बात नही है। बहुत लोग पशुओ से स्नेह-भाव रखते हैं। मैं खुद ही अपने कुत्ते को बहुत प्रेम करता हूँ। नसरुद्दीन ने कहा, "आप समझे नही, आइ लव माइ हॉर्स वेरी रोमान्टिकली, जस्ट लाइक वन वुड लव ए वुमन – मैं ऐसे ही प्रेम करता हूँ रोमान्स से भरा हुआ, जैसे कोई किसी स्त्री को प्रेम करे।"

चिकित्सक थोड़ा-सा चिन्तित हुआ। फिर भी उसने अपना प्रोफेशनल, व्यावसायिक थिर स्थिति बनाये रखी। और उसने कहा, "यह जो घोड़ा है, नर है या मादा?"

नसरुद्दीन ने कहा, "फिमेल ऑफकोर्स! वॉट डू यू थिंक, ऐम आइ फूल? – क्या मै कोई मूर्ख हूँ? मादा ही है!"

घोड़े को प्रेम करने में उसे मूर्खता नही मालूम पड़ रही है, लेकिन नर घोड़े को प्रेम करने में मूर्खता मालूम पड़ रही है।

गहरा अचेतन कामवासना को, सारे जगत को, दो हिस्सो में बांट देता है: स्त्री और पुरुष– सारे जगत् को। जिन चीजों से आप प्रभावित होते हैं, उनमें कुछ स्त्रैण होता है अगर आप पुरुष हैं। अगर आप स्त्री है, तो उनमें कुछ पुरुष-तत्त्व होता है तब आप प्रभावित होते हैं। पुरुष और स्त्री की पसन्दगियों में विपरीत मौजूद होता है। हर

चीज में मौजूद होता है। इसलिए पुरुष एक जीप को उतना पसन्द नहीं करता, जितना एक सुकोमल, ठीक से ढाली हुई कार को पसन्द करता है। जीप पुरुष-जैसी मालूम पड़ती है। ठीक से ढाली हुई गाड़ी, जिसके अंग गोल हैं स्त्रैण मालूम पड़ती है।

महावीर कहते हैं कि हमारा प्रत्येक कृत्य हमारी वासनाओं से प्रभावित होता है। साधु वही है, जो सब भांति कुशील लिंग छोड़ देता है। जो सब भांति अपने व्यवहार–वस्त्र, उठने-बैठने, भोजन, अपनी पसन्दगी, नापसन्दगी–हर चीज में से कामवासना के तत्त्व को अलग कर लेता है; शील के तत्त्व को स्थापित करता है।

'जो किसी का हंसी-मजाक नहीं करता . . . ।'

यह थोड़ा समझने-जैसा है, क्योंकि फ्रायड ने इसपर बड़ा काम किया। फ्रायड की खोज यह है कि हम किसी का हंसी-मजाक तभी करते हैं, जब हम परोक्ष रूप मे उसे नुकसान पहुँचाना चाहते हैं। हमारा हंसी-मजाक भी हमारी हिंसा का हिस्सा है। जो बात आप सीधे नही कह सकते किसी से, वह आप मजाक में कहते हैं। मजाक मे क्षमा कर दी जायेगी। क्योंकि आप कह सकते हैं, 'सिर्फ मजाक था, ऐसी कोई बात नही थी। सिर्फ मजाक कर रहा था' क्षम्य हो जायेगा। अगर सीधा आप कहते हैं तो अक्षम्य हो सकता है; उपद्रव हो सकता है।

हमारा मजाक भी अकारण नही होता, उसके पीछे मानसिक कारण होते हैं। कल ही मुझसे कोई पूछ रहा था कि यूरोप में यहूदियो के सम्बन्ध में सबसे ज्यादा मजाक प्रचलित है, जैसे भारत में सरदारो के सम्बन्ध मे सबसे ज्यादा प्रचलित हैं। उस मित्र ने मुझसे पूछा कि ऐसा क्यो है? यहूदियो के सम्बन्ध मे इतने मजाक क्यों प्रचलित हैं यूरोप मे? तो मैंने कहा, उसका कारण है। यहूदियो मे कई क्षमताएँ हैं। और उनसे ईर्ष्या पैदा होती है। और उस ईर्ष्या का बदला मजाक से लिया जाता है। यहूदी से अगर आप धन में प्रतिस्पर्धा करें– आप जीत न पायेंगे। अगर यहूदी से आप चालाकी मे प्रतिस्पर्धा करें– आप हारेंगे।

पिछले सौ वर्षों मे यहूदियो ने सर्वाधिक नोबुल प्राइज जीते हैं। इस सदी के तीन बड़े मस्तिष्क, जो किसी भी सदी के बड़े मस्तिष्क हो सकते हैं–आइन्स्टीन, फ्रायड और मार्क्स तीनो यहूदी हैं। यहूदी से ईर्ष्या पैदा होती है। ईर्ष्या का बदला लेने का सीधा कोई उपाय नही दिखाई पड़ता। मजाक से बदला लिया जाता है।

मजाक एक बदला है। उससे यहूदियो के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता, जो मजाक कर रहे हैं, उनके सम्बन्ध में पता चलता है। सरदारों से भी कई लोगों को कई तरह की पीड़ा है। ज्यादा शक्तिशाली भी मालूम पड़ता है। ज्यादा पुरुषोचित भी मालूम पड़ता है। जीतने का उपाय भी कम दिखाई पड़ता है। गुजराती के सम्बन्ध में तो कोई मजाक करे! कोई कारण नही है। कारण होने चाहिए।

मज़ाक हमारा बदला है । वह हम उससे लेते हैं, जिसके पीछे कोई पीड़ा सरक रही है । और उस पीड़ा को सीधा हल करने का उपाय नही होता, तो हम व्यग निर्मित करते है ।

लेकिन साधु, महावीर कहते है, किसी का हंसी-ठट्ठा नही करे । उसका प्रयोजन क्या है ? उसका प्रयोजन यह है कि उसकी किसी से प्रतिस्पर्धा नही है; प्रतियोगिता नही है । इसलिए कोई छिपा हुआ बदला लेने का सवाल भी कहाँ है ! यह महावीर की बड़ी अन्तर्दृष्टि है, जो फ्रायड के पहले कोई भी ठीक से पकड़ नही पाया ।

दुनिया के किसी भी धर्मशास्त्र में, साधु हंसी-मजाक न करे किसी का, ऐसा नियम नहीं बनाया । सिर्फ महावीर ने कहा कि साधु किसी से . . . ।

जरूर महावीर को बड़ी गहरी प्रतीति है कि आदमी किसी के प्रति जब व्यंग करे तो, करने का कारण भीतर छिपी हुई कोई हिंसा होती है । आप अपनी ही देखना, जब आप किसी का मजाक करने लगें, तो आप क्या चाह रहे हैं भीतर ? आप उसको किसी तरह नीचे दिखाना चाहते हैं । और नीचे दिखाने का कोई सीधा रास्ता नहीं पा रहे हैं, इसलिए उलटा रास्ता पकड़ रहे है ।

साधु अपनी हंसी-मजाक कर सकता है; अपने प्रति व्यग कर सकता है । महावीर ने जरूर बर्नार्ड शॉ को साधु कहा होता । बर्नार्ड शॉ एक दिन थियेटर में खड़ा है । उसका नाटक पूरा हुआ है । नाटक अद्भुत था और सिर्फ एक आदमी को छोड़कर पूरा हाल तालियाँ बजाया और प्रशसा के स्वर से स्वागत किया । तभी वह आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा, "शॉ, योर प्ले स्टिंग्स– सड़ा हुआ है तुम्हारा नाटक, और बदबू आती है । एक क्षण को सन्नाटा हो गया । लोग भी चौक गये कि अब क्या होगा ।

शॉ ने कहा, "आइ कम्प्लीटलि अॅग्री विद् यू, बट वॉट वी टू कैन डू अगेंस्ट दिस ग्रेट मेजॉर्टी – मै राजी हूँ तुमसे । पूरी तरह हूँ, लेकिन हम दो करेंगे भी क्या इतने लोगो के खिलाफ ?"

यह आदमी अपने पर हँस सकता है । अपने पर वही हँस सकता है, जो इतना आश्वस्त है अपने प्रति । दूसरे पर हँसने की चेष्टा, दूसरे को किसी तरह व्यंग के माध्यम से गिराने की चेष्टा क्षुद्र मन का लक्षण है ।

'इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखनेवाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बन्धनों को सर्वथा काटकर अ-पुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है ।'

जहाँ से वापिस नहीं लौटा जा सकता। प्वाइंट आफ नो रिटर्न। उस स्थिति को उपलब्ध हो जाता है, जहाँ से वापिस गिरना नहीं है। ऐसी जीवन-चर्या में जीने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे शरीर से भिन्न होने लगता है। उसे स्पष्ट होने लगता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, और चैतन्य के साथ तादात्म्य जोड़ने लगता है। धीरे-धीरे दीये की खोल छूट जाती है, और सिर्फ ज्योति का स्मरण रह जाता है। इस ज्योति के साथ जब पूरी एकता सध जाती है, तो शरीर को पुनः ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। मुक्त ज्योति—शरीर से मुक्त ज्योति का नाम मुक्ति है।

महावीर कहते हैं, ऐसी ज्योतियाँ लोक के अन्तिम स्तल पर शाश्वत आनन्द में लीन रहती हैं— आखिरी सीमा लोक की। महावीर जगत को दो हिस्सों में बांटते है : लोक और अलोक। लोक : जिसे हम जानते है; जिसका विज्ञान अध्ययन कर सकता है। और अलोक : जिसमें प्रवेश का कोई उपाय नही है।

इस सम्बन्ध में भी महावीर बड़े अद्भुत हैं। क्योंकि अभी-अभी वैज्ञानिकों ने खोज की है कि इस जगत के ठीक विपरीत ऐन्टि-यूनिवर्स होना चाहिए। क्योंकि जगत मे विपरीत के बिना कोई भी चीज़ नही हो सकती। तो हमारा यह जो जगत है, यह जो ब्रह्माण्ड है— सूर्य, चन्द्र, तारो का— इससे ठीक विपरीत प्रक्रिया वाला कोई लोक होना चाहिए, जो इसके ठीक बगल में होगा। लेकिन जिसमें हम प्रवेश नही कर सकते। क्योकि हमारे प्रवेश का सारा ढंग लोक में ही होगा।

महावीर ने पचीस सौ साल पहले दो बाते कही हैं कि एक तो यह लोक है, जिसे हम जानते है; और एक अलोक है, जिसे हम कभी नही जान सकते। लेकिन उसका होना इसलिए जरूरी है कि जगत द्वन्द्व के बिना नही होता। यह जो मुक्त आत्मा है, जो शरीर से छूट जाती है, यह लोक और अलोक के मध्य मे, सीमान्त पर ठहर जाती है। लोक से इसका छुटकारा हो जाता है। यह पदार्थ और शून्य के बीच में अशरीरी-चैतन्य सदा आनन्द में लीन रह जाता है।

यह जो आनन्द की शाश्वत धारा है, यह उन्हें ही उपलब्ध होती है जो क्रमशः अपने को क्षुद्र शरीर से, क्षणभंगुर शरीर से मुक्त करने की चेष्टा में रत रहते है। ऐसी चेष्टा में लगा हुआ व्यक्ति साधु है; और ऐसी चेष्टा की पूर्णता को पा लिया व्यक्ति सिद्ध है।

मोक्षमार्ग-सूत्र : १

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ५ सितम्बर, १९७३

कहं चरे ? कहं चिट्ठे ?
कहमासे ? कहं सए ?
कहं भुंजन्तो भासन्तो
पावं कम्मं न बंधइ ?
जयं चरे जयं चिट्ठे
जयमासे जयं सए।
जयं भुंजन्तो भासन्तो
पावं कम्मं न बन्धइ ।।
सव्वभूयप्पभूयस्स,
सम्मं भयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दन्तस्स
पावं कम्मं न बंधइ ।।
पढमं नाणं तओ दया,
एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही,
किं वा नाहिइ छेय-पावगं ? ।।
सोच्चा जाणइ कल्लाणं
सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा,
जं छेयं तं समायरे ।।

भन्ते ! साधक कैसे चले ? कैसे खड़ा हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोये ? कैसे भोजन करे ? कैसे बोले ? – जिससे कि पाप-कर्म का बन्ध न हो ।

आयुष्मन् ! साधक विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक से सोये, विवेक से भोजन करे; और विवेक से ही बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांध सकता ।

जो सब जीवों को अपने समान समझता है, अपने-पराये, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आस्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इन्द्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म का बन्धन नहीं होता ।

पहले ज्ञान है, बाद में दया । इसी क्रम पर समग्र त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है । भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा ? श्रेय तथा पाप को वह कैसे जान सकेगा ?

सुनकर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है । सुनकर ही पाप का मार्ग जाना जाता है । दोनों ही मार्ग सुनकर जाने जाते हैं । बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे ।

पाप क्या है, पुण्य क्या है, कृत्य जो हम करते हैं, उसमें पाप है या कर्ता में, जो करता है उसमें; चोरी में पाप है या चोर की भावदशा में? दान मे पुण्य है या दानी की अन्तश्चेतना मे? कृत्य महत्त्वपूर्ण है या भीतर का अभिप्राय? और अभिप्राय से भी ज्यादा भीतर की चेतना — मनुष्य के लिए पुराना से पुराना शाश्वत सवाल है।

नीति कृत्य का विचार करती है . क्या न करे, क्या करें। धर्म कर्ता का विचार करना है करनेवाला कैसा हो, कैसा न हो।

जब पहली बार उपनिषदो का पश्चिमी भाषाओ में अनुवाद हुआ तो वहाँ के विचारक बड़े हैरान हुए, क्योंकि उनमे दस आज्ञाओं, टेन कॅमान्डमॅन्ट्स की तरह कोई भी बाते नही हैं। चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो; न करो, या करो—ऐसा कोई आदेश नही है। और यहूदी और ईसाई धर्म तो करने के आदेश पर ही खड़े है। दस आज्ञाए मौजूद है, वे ही आधार-स्तम्भ हैं।

उपनिषदों मे भी उन्होंने सोचा कि कुछ आज्ञाएँ होंगी, लेकिन कोई आज्ञाएँ नही थी। उन्हे लगा कि शायद उपनिषद धर्मग्रन्थ नही है। लेकिन उपनिषद धर्मग्रन्थ हैं। उपनिषद की दृष्टि से कृत्य की आज्ञा देना या न देना नीति का काम है, धर्म का नही। और नैतिक उसे होना पड़ता है जो धार्मिक नहीं है। इस बात को थोड़ा ठीक मे समझ लें।

नैतिकता एक सब्स्टिटयूट है, एक परिपूरक है। जो व्यक्ति धार्मिक नही है, उसे नीति की जरूरत है। जो व्यक्ति धार्मिक है, उसे नीति की कोई भी जरूरत न रही।

इसका यह अर्थ नही कि वह अनैतिक हो जायेगा। इसका यह अर्थ है कि उसने नीति का इतना मूल स्रोत पा लिया है कि अब ऊपरी व्यवस्था और नियम की कोई आवश्यकता नही रही।

ऐसा समझें, एक अन्धा आदमी है, तो लकड़ी से टटोलकर चलता है। आँख वाला आदमी लकड़ी से टटोलकर नही चलता। क्योंकि लकड़ी से टटोलने की जरूरत है आँख न हो तो। आँख हो तो लकड़ी से टटोलने की जरूरत नही है। अगर अन्धे आदमी को हम समझायें कि जब तेरी आँख ठीक हो जायेगी तो तू लकड़ी फेंक देगा, तो वह बहुत हैरान होगा। वह कहेगा, बिना लकड़ी के मैं चलूंगा कैसे? जीवन भर लकड़ी से ही चला है। लकड़ी उसकी आँख हो गयी है। लेकिन लकड़ी क्या आँख हो सकती है? वह तो बस कामचलाऊ है।

नीति कभी धर्म नही है, कामचलाऊ लकड़ी है जो अधार्मिक आदमी के हाथ में पकड़ानी पड़ती है। जिसके पास भीतर की आँख नही है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने पड़ते हैं। और जिसके पास भीतर की आँख है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने की कोई भी जरूरत नही है। उसकी भीतर की आँख जहाँ उसे ले जायेगी, वही ठीक है।

यह भारतीय और गैर-भारतीय धर्मों के बीच बुनियादी फर्क है। इस्लाम या ईसाइयत दोनों इस अर्थों में नैतिक धर्म हैं। उनका सारा आधार नीति पर है। जैन बौद्ध और हिन्दू इस अर्थ में अति नैतिक धर्म है, स्युपॅर मॉरेल धर्म हैं। उनका आधार नीति पर नही है। उनकी सारी फिक्र इस बात की है कि भीतर की चेतना परिशुद्ध हो। और अगर भीतर की चेतना परिशुद्ध है, तो आचरण अपने आप परिशुद्ध हो जायेगा।

आचरण को नहीं बदलना है, अन्तरात्मा को बदलना है। आप क्या करते हैं, वह मूल्यवान नही है। आप क्या हैं, वही मूल्यवान है। आपके डूईंग का बहुत मूल्य नही है, आपके बीइंग का, आपके अस्तित्व का मूल्य है। और गलत अस्तित्व हो भीतर और ठीक आचरण हो, तो सिवा पाखण्ड के कुछ भी नही है। और ठीक अस्तित्व हो भीतर, तो गलत आचरण के होने का कोई उपाय नही है।

यह मौलिक भेद है धर्म और नीति का। नीति सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए अधार्मिक समाज मे भी नीति की जरूरत होगी।

सोवियत रूस धर्म से इनकार कर सकता है, नीति से नही। उसको भी नैतिक नियम बनाने पड़े। आदमी कैसा व्यवहार करे, इसकी चिन्ता नास्तिक को भी करनी पड़ेगी। अगर पूरी पृथ्वी भी नास्तिक हो जाये, तो नीति नष्ट नही होगी। नीति तो रहेगी, धर्म नष्ट हो जायेगा। और अगर पूरी पृथ्वी धार्मिक हो जाये, तो नीति की कोई जरूरत न रहेगी। वह ऊपरी खोल की तरह फेंकी जा सकती है।

अगर लोग सच मे भीतर से अच्छे हो, तो बाह्य आचरण, नियम, व्यवस्था की कोई भी आवश्यकता नही है। जितनी हमें बाहर की व्यवस्था करनी पड़ती है, उतनी ही खबर मिलती है कि भीतर हम विकृत और रुग्ण हैं। वह जो सड़क पर खड़ा हुआ पुलिस का सिपाही है, अदालत में बैठा हुआ मजिस्ट्रेट है, वह आपकी वजह से वहाँ बैठा है; चूकि आप गलत है। अगर लोग ठीक हों तो पुलिस वाले और मजिस्ट्रेट की कोई जरूरत नही। वह विदा हो जायेगा। उसे रखना फिजूल हो जायेगा; व्यर्थ हो जायेगा। कानून इसलिए हैं कि आप गलत हैं।

लाओत्से ने कहा है: नीति का जन्म तभी होता है, जब धर्म खो जाता है। जब भीतर का ताओ नष्ट हो जाता है, तो बाहर आचरण का हमें इन्तजाम करना पड़ता है। जब प्रेम नहीं होता तो कर्तव्य को जगह देनी पड़ती है।

एक बेटा अपनी मा की सेवा कर रहा हो। अगर यह प्रेम के कारण है तो बेटा यह कभी भी नहीं कहेगा कि मेरा कर्तव्य है, इसलिए मैं मां की सेवा करता हूँ। प्रेम के लिए ड्यूटी और कर्तव्य से ज्यादा कुरूप और भद्दा कोई शब्द नही है। प्रेम इसलिए सेवा करता है कि सेवा आनन्द है। जब प्रेम नहीं रह जाता, तो फिर बेटे को समझाना पड़ता है कि तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम मा की सेवा करो– तुम्हारी मा है; उसने तुम्हें जन्म दिया है, उसने तुम्हें बड़ा किया है; कि बूढे बाप के पैर दबाओ, यह तुम्हारा कर्तव्य है। और जब भी आप कहने लगते हैं 'मेरा कर्तव्य है' तब आप समझना कि भीतर का प्रेम खो गया।

एक पति कहता है कि मैं पत्नी के लिए काम कर रहा हूँ; नौकरी कर रहा हूँ; धन कमा रहा हूँ– क्योंकि कर्तव्य है, ड्यूटी है। इसका अर्थ हुआ कि प्रेम समाप्त हो गया। जो पति प्रेम मे है वह यह भूलकर भी सोच भी नही सकता कि यह कर्तव्य है। वह कहेगा यह मेरा आनन्द है। जिसे मैं प्रेम करता हूँ, उसके लिए मैं सब कुछ करूँगा। यह मेरा आनन्द है, कर्तव्य नही – करने योग्य नही है, यही मेरा रस है। अगर मैं न करूँ तो दुखी होऊँगा, करता हूँ तो आनंदित हूँ।

कर्तव्य वाले आदमी को अगर मौका मिल जाये कर्तव्य से बचने का, तो वह सुखी होगा। तो अगर वह नर्स को खोज सके मा की सेवा के लिए, तो नर्स को लगाना पसन्द करेगा– क्योंकि कर्तव्य ही है। और नर्स कर्तव्य आपसे ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकेगी — ट्रेन्ड है, प्रशिक्षित है। अगर मां अपने बेटे को इसीलिए पाल रही है, क्योंकि कर्तव्य है, तो उचित होगा कि वह दाई को रख ले। दाई वह रख हो लेगी। वह अपने स्तन से दूध भी नही पिलाना पसन्द करेगी —— एक काम है, जो कोई और भी कर सकता है।

प्रेम काम नही है। उसे कोई दूसरा नहीं कर सकता। प्रेम है तो हम किसी दूसरे को नही रख सकते। प्रेम हम खुद ही करेंगे, वह कर्तव्य नही है। वह हमारे प्राणों का भीतरी स्वर है, वह बाहरी व्यवस्था नही है।

धर्म प्रेम की तरह है; नीति कर्तव्य की तरह है। इसलिए नीति करने की भाषा में बोलती है– यह करो, यह मत करो। और धर्म होने की भाषा मे बोलता है– ऐसे हो जाओ, और ऐसे मत हो जाओ।

महावीर के ये सूत्र धर्म के सूत्र हैं। इन्हें समझने के पहले यह ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जोर बीइंग पर है, अन्तरात्मा पर है–कर्म पर, कृत्य पर नही है। इसलिए महावीर से जब पूछा जाता है, तो वे यह नही कहते कि यह-यह काम मत करना। वे यह कहते हैं, इस भांति की चेतना हो जाना। बस, पाप कर्म अपने-आप बन्द हो जायेंगे।

सन्त अगस्टीन से किसी ने पूछा है कि मैं क्या करूं कि पाप न हो, क्या करूँ कि पुण्य हो? तो अगस्टीन ने कहा कि अगर मैं कर्तव्यों को गिनाने बैठूं तो बड़ी लम्बी फेहरिस्त हो जायेगी : यह करो, यह मत करो। अगर एक-एक कर्तव्य को विस्तार से गिनाने बैठूं तो फेहरिस्त का कभी अन्त नही होगा। और कितनी ही बडी फेहरिस्त हो, फिर भी तुम उसके भीतर से तरकीब निकाल लोगे जो तुम्हें करना है उसकी।

इसलिए कानून किसी को अपराध से नही रोक पाता। कानून के बीच से हमेशा रास्ता निकल आता है अपराध करने का। असल में कानून लोगो को सिर्फ कुशल अपराधी बनाता है। अकुशल अपराधी पकड़े जाते हैं, कुशल अपराधी सिंहासनो की यात्रा करते रहते हैं। कानून सिर्फ आपको समझदार बनाता है; चालाक बनाता है; होशियार बनाता है—गैर-अपराधी नही बनाता।

अगस्टीन ने उस आदमी को कहा इसलिए तुझे मैं एक ही बात कह दूं, क्योंकि लम्बी फेहरिस्त मे कुछ न होगा। अगर तू प्रेम कर सकता है, तो फिर तू जो भी करेगा, वह ठीक होगा। और अगर तू प्रेम नही कर सकता, तो तू जो भी करेगा, वह गलत होगा।

अगस्टीन कह रहा है कि प्रेम एकमात्र नियम है। बात वही है, क्योंकि प्रेम कृत्य नही है, भीतरी अवस्था है। आपके कृत्य से प्रेम का पता नही चलता, आपके होने के ढग से ही पता चलता है कि आप प्रेमपूर्ण हैं या नही।

आप कितने ही कृत्य करे, तो भी प्रेम को आप भर नही सकते। अगर प्रेम खो गया है, तो कितनी ही भेट लायें प्रेयसी के लिए और कितना ही इन्तजाम करे, कितना ही अच्छा मकान बनायें, बगीचा लगायें— सब साधन-सुविधाएँ जुटायें— अगर प्रेम खो गया है, तो कोई भी चीज परिपूरक नही हो सकती। बड़े से बड़ा मकान, बड़े से बड़ी गाड़ी, बड़े से बड़ी व्यवस्था, नौकर-चाकर कुछ भी पूरा नही कर सकते। और अगर प्रेम है, तो सडक पर भीख भी आप माँगते हों, तो भी घटना घट सकती है।

प्रेम आन्तरिक है। आपके करने से उसका सम्बन्ध नहीं है, आपके होने के ढंग से सबध है। इसलिए प्रेम धर्म के निकटतम है। और अगर जीसस ने कहा है कि लव इज़ गॉड— ईश्वर प्रेम है, तो उसका अर्थ यही है कि हमारे जीवन मे प्रेम-जैसे आन्तरिक है, ऐसी ही आन्तरिकता जब ईश्वर की हमारे भीतर होनी शुरू हो जाये तो हम धर्म के जगत में प्रवेश करते हैं।

सूत्र को लें।

'भन्ते!'

कोई पूछता है महावीर से, कोई जिज्ञासा करता है —

'भन्ते ! साधक कैसे चले ? कैसे खड़ा हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोये ? कैसे भोजन करे ? कैसे बोले ? — जिससे पाप-कर्म का बन्ध न हो।'

पूछने वाला कृत्यो के सम्बन्ध में पूछ रहा है। कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे सोये, कैसे भोजन करे, कैसे बोले ? यह सब कृष्ण से अर्जुन ने पूछा है गीता में कि स्थितप्रज्ञ की भाषा क्या है ? वह कैसे बोलता है ? समाधिस्थ का व्यवहार क्या है ? वह कैसा व्यवहार करता है ? ऐसा ही कोई साधक, कोई जिज्ञासु महावीर से पूछ रहा है कि हम क्या करें? जोर, ध्यान दे, करने पर है: हम क्या करें, जिससे कि पाप-कर्म का बन्ध न हो।

पाप-कर्म के बन्ध से अर्थ है जिससे मैं बधूँ न, गुलाम न होऊँ; जिससे मैं कारागृह मे बन्द न होऊँ, जिससे मेरी आन्तरिक स्वतन्त्रता नष्ट न हो; जिससे मैं भीतर खुले आकाश मे विचरण कर सकूँ; मुझे कोई बाँधे न; कोई भी घटना मुझे बाँधे न; मैं मुक्त रहूँ, मेरा भीतरी मोक्ष नष्ट न हो।

यह समझ लेने-जैसा है कि आदमी की गहनतम आकाक्षा स्वतन्त्रता की है: गहनतम आकाक्षा मुक्ति की है। और जहाँ भी आप पाते हैं कि आपकी स्वतन्त्रता में बाधा पडती है, वहीं कष्ट शुरू हो जाता है।

इसलिए जो भी आपकी स्वतन्त्रता मे बाधा डालते हैं— वे चाहे मित्र ही क्यों न हो— वे दुश्मन की भाति मालूम होने लगते हैं। जिनसे आप प्रेम करते हैं, अगर वे भी आपके जीवन मे बाधा बन जाये और परतन्त्रता लाये, तो प्रेम कड़वा हो जाता है; जहरीला हो जाता है और पॉइज़न हो जाता है। फिर उस प्रेम से रस नहीं बहता। फिर उस प्रेम में दुख और पीडा मर्माविष्ट हो जाती है।

जगत में ऐसा कुछ भी नही है जो आपको सुख दे सके, अगर आपकी स्वतन्त्रता को नष्ट करता हो। इसलिए मनीषियों ने कहा है कि मोक्ष परम तत्त्व है, । इसका अर्थ आप समझ लेना। इसका अर्थ हुआ . टु बी फ्री— टॉटॅली फ्री, समग्र रूप से मुक्त। जहाँ कोई चीज बाधा नही बनती, और जहाँ मैं अपने निज-स्वभाव में पूरी तरह रह सकता हूँ। जहाँ कोई मजबूरी नही है।

ऐसे चित्त की दशा ही मनुष्य की खोज है।

तो न धन से पूरी होती वो खोज— क्योंकि धन भी चारों तरफ दीवाल बन जाता है। वह भी मुक्त कम करता और बांधता ज्यादा है।

धनी आदमी को देखें। वह धन से मुक्त नहीं मालूम पड़ता; धन से और भी बंधा हुआ मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नही है कि आप गरीब है तो धन से मुक्त होंगे। गरीब तो और भी मुक्त नही हो सकता। जो नहीं है धन उसके पास, वह उसे बाँधे रहता है।

तो दुनिया मे गरीब और अमीर नही हैं। दुनिया में धन के आकांक्षी और जिनको धन उपलब्ध हो गया, धनिक– दो तरह के लोग हैं। एक जिनको धन अभी उपलब्ध नही हुआ– ऐसे धनी, और एक जिनको धन उपलब्ध हो गया है– ऐसे धनी। गरीब तो खोजना बहुत मुश्किल है, गरीब का मतलब ये है कि जिसे धन की आकांक्षा ही नहीं है; जो धन की दौड़ में ही नही है। लेकिन वैसा गरीब सम्राट हो जाता है। धन मिल जाता है तो धन मुक्त नही करता दिखाई पड़ता; और भी बाँध लेता है– कसकर बाँध लेता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गाँव में एक अमीर आदमी था। और जैसा कि अमीर आदमी होते हैं– महाकृपण था। कपड़े भी कभी धोता था, इसमे शक था; क्योकि धोने से कपड़े जल्दी नष्ट हो जाते। घर में बीमारी आ जाये तो इलाज नहीं करवाता था! क्योकि बीमारी तो अपने से ही ठीक हो जाती है, इलाज तो नाहक पैसे का खर्च है! उसने सब तरह के सिद्धान्त बना रखे थे जो उसके पैसे को बचाते थे।

फिर गाँव में एक जादूगर, एक मदारी आया और उसकी बड़ी चर्चा फैली कि वह बड़े गजब के खेल दिखा रहा है। उसके खेल का नाम था: दि मिरेकल– चमत्कार। आखिर उस कंजूस को भी मन मे खेल देखने का ख्याल उठने लगा। लेकिन मन में बड़ी पीड़ा होती थी, क्योकि पत्नी कहती थी, अगर तुम गये तो मैं भी जाऊँगी, बेटा कहता था, अगर तुम गये तो मैं भी जाऊँगा। तो तीन रुपये का खर्च था—एक रुपया टिकट था एक-एक आदमी का।

तो तीन रुपये के मारे वह बड़ा परेशान था। मगर रोज खबरे आतीं कि बड़ा चमत्कार हो रहा है, बड़ा अद्भुत जादू है, ऐसा कभी देखा नही। तो उसकी जिज्ञासा बढ़ती गयी। आखिर संयम टूट गया। आखिरी दिन जब कि वह मदारी जाने वाला था, वह भी पहुँच गया अपनी पत्नी, बच्चे को लकर। क्यू में खड़ा हो गया।

नसरुद्दीन भी यह देखकर कि कंजूस तीन रुपये खर्च करने जा रहा है, उसके पीछे-पीछे गया। वह भी क्यू मे खड़ा हो गया कि क्या होता है। जब कंजूस पहुँचा खिड़की पर तो उसने मोल-भाव करना शुरू किया। खिड़की पर बैठी लड़की ने बहुत बार कहा कि मोल-भाव का सवाल ही नही है, तुम्हें देखना हो तो तीन रुपये खर्च होंगे। और अब देर मत करो, पहली घण्टी हो चुकी है।

वह बार-बार खीसे में हाथ डालता और बाहर निकाल लेता। वह कहता कि आखिर डेढ़ रुपये मे नहीं हो सकता क्या? और अब क्यू मे कोई भी नही है, हम तीन ही बचे है; एक मुल्ला नसरुद्दीन भर पीछे खड़ा है।

उस लड़की ने कहा : अब आप टिकट लेते है या मै खिड़की बन्द करूँ? आखिर

उसने तीन रुपये . . . उसकी आँखों में आंसू भी आ गये। उसने तीन रुपये निकालकर दिये। नसरुद्दीन ने कहा . नाउ आइ कैन गो टु माइ होम, आइ हैव सीन द मिरेकल– अब मुझे अन्दर जाने की कोई जरूरत ही नहीं है, चमत्कार तो मैंने देख ही ली।

धन भी पकड़ लेता है; प्रेम भी जिसे हम कहते हैं, वह भी पकड़ लेता है और जकड़ लेता है। हम जीवन में जो कुछ भी करते हैं, वह सब हमें गुलाम ही किये चला जाता है।

जिज्ञासु महावीर से पूछता है कि वह कौन-सी कला है – किस ढंग से उठें, बैठें, चलें, व्यवहार करें कि कोई बन्धन हमें न बांधे।

'पाप-कर्म' बन्धन का पुराना नाम है। वह पुरानी भाषा है : जिससे हमारी स्वतन्त्रता नष्ट न हो और हम उस अवस्था में पहुँच जायें, जहाँ हम परम स्वतन्त्र हैं। वही आनन्द है। इसलिए महावीर ब्रह्म को भी परम अवस्था नहीं कहते– मोक्ष को परम अवस्था कहते हैं। क्योंकि जहाँ ब्रह्म भी मौजूद हो, दूसरा भी मौजूद हो, वहाँ थोड़ा बन्धन होगा। जहाँ कोई भी न रह जाये, जहाँ सिर्फ स्वयं का होना ही आखिरी स्थिति है, उस कैवल्य को कैसे पाया जाये ? लेकिन पूछने वाला पूछ रहा है कर्म की भाषा में। जिज्ञासु कर्म की भाषा में ही पूछेगा। महावीर ने उससे कहा :

'आयुष्मन् ! साधक विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक से सोये, विवेक से भोजन करे, विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बाँधता।'

यहाँ एक क्रान्तिकारी फर्क हो गया। महावीर का ज़ोर कैसे चले, इसपर नहीं है, कैसे बैठे– इस पर नहीं है, कैसे उठे– इस पर नहीं है। सभी क्रियाओं के बीच उन्होंने विवेक को जोड़ दिया विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे।

उठने-बैठने का मूल्य नहीं है, विवेक का मूल्य है। और 'विवेक' महावीर का कीमती शब्द है। विवेक से महावीर का अर्थ है अवेयरनस – होश। लेकिन जैन परम्परा उसे बड़ा गलत समझी। जैन परम्परा ने विवेक का शाब्दिक अर्थ लिया है : डिस्क्रिमिनेशन। जैन परम्परा ने सोचा कि भेद करके चलें कि यह गलत है, यह न करूँ; और यह ठीक है, यह करूँ। यह विवेक का अर्थ लिया।

अगर ये विवेक का अर्थ लिया तो जिज्ञासु की और परमज्ञानी की भाषा में कोई फर्क ही नहीं हुआ। जिज्ञासु भी यही पूछ रहा था। इसलिए पण्डितों को भी लगा कि अर्थ यही होगा महावीर का कि 'विवेक से चले' इसका मतलब यह कि देखके चले कि जमीन पर कोई कीड़ा-मकोड़ा तो नहीं चल रहा है, हरी घास तो नहीं उगी है।

'विवेक से सोये' : देखकर सोये कि कोई स्त्री तो कमरे में मौजूद नहीं है।

'विवेक से भोजन करे' देख ले कि जो भोजन दिया गया है, वह सब तरह से शुद्ध है। शुद्ध हाथों से बनाया गया है। और उसमें कोई अशुद्धि तो नहीं है।

एक अर्थ में पण्डितों ने जो अर्थ लिया, वह ठीक मालूम पड़ेगा। क्योंकि साधक ने जो पूछा था, जिज्ञासु ने जो सवाल उठाया था, अगर महावीर उसी तल पर जवाब दे रहे हैं, तो पण्डितों ने जो अर्थ किये हैं जैन परम्परा में, वे ठीक हैं। लेकिन जहाँ अज्ञानी पूछता है और ज्ञानी उत्तर देता है, वहाँ डायमेनशन, आयाम बदल जाते हैं; अज्ञानी की भाषा और ज्ञानी की भाषा में बुनियादी अन्तर हो जाता है। जहाँ अज्ञानी की भाषा बहिर्मुखी होती है, ज्ञानी की भाषा अन्तर्मुखी हो जाती है।

इसमें समझ लेना यह है कि सारी क्रियाओं के बीच जिस बात पर जोर है, वह विवेक है। क्रियाएँ गौण हैं, विवेक महत्त्वपूर्ण है। और विवेक का अर्थ डिस-क्रिमिनेशन नहीं है, भेद नहीं है। विवेक का अर्थ होश है, अमूर्च्छा है, अप्रमाद है, जागरुकता है। अगर विवेक का अर्थ भेद है सही और गलत में, तो बात बाहरी हो गयी कि मैं चोरी न करूँ, दान करूँ। लेकिन अगर विवेक का अर्थ आन्तरिक जागरुकता है, तो बाहर भेद करने का कोई सवाल नहीं है– भीतर मैं जागरुक रहूँ। अगर भीतर मैं जागरुक हूँ, तो चोरी होगी ही नहीं– नहीं करने का सवाल नहीं है। दान होगा– करने का सवाल नहीं है।

विवेक से जागा हुआ व्यक्ति बाँटता ही रहता है। बाँटना उसका आनन्द हो जाता है। विवेक से जीता हुआ व्यक्ति दूसरे से छीनने का सोच भी नहीं सकता– क्योंकि दूसरे के पास न छीनने को कुछ है, न दूसरे से कुछ छीना जा सकता है। और छीनने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जो भी हो सकता है, वह मेरे भीतर स्वयं मौजूद है। विवेक से जागा हुआ व्यक्ति अपनी अपार सम्पदा को देखता है।

इस अपार सम्पदा का मालिक चोरी करने जायेगा, किसी से छीनेगा, झपटेगा– यह सवाल ही नहीं उठता है। और इस विवेक में एक महत्त्वपूर्ण बात दिखाई पड़नी शुरू होती है कि जो मैं देता हूँ, उसी का मैं मालिक हूँ; जो मैं दे सकता हूँ, वही मेरी सम्पदा है; जो मैं रोक लेता हूँ, उसका मैं मालिक नहीं हूँ।

इसलिए ध्यान रहे, जो भी आप दे पाते हैं, आप सिर्फ उसके ही मालिक हैं। दान ही खबर देता है कि आप मालिक थे। कंजूस मालिक नहीं है अपने धन का, धन ही कंजूस का मालिक है। जो दे सकता है, आनन्द से दे सकता है! ध्यान रहे, सामान्य आदमी आनंद से ले सकता है, दे नहीं सकता। देने में पीड़ा है, लेने में सुख है। लेकिन अगर लेने में सुख है और देने में पीड़ा है, तो आपका जीवन पूरा का पूरा पीड़ा से ही भरा रहेगा।

जैसे ही व्यक्ति के जीवन में क्रान्ति घटित होती है, होश आता है, सारे नियम बदल जाते हैं। लेने की जगह देना नियम हो जाता है। लेने में सुख नहीं, देने में सुख शुरू हो जाता है। इसलिए चोरी का तो प्रश्न नहीं है। दूसरे को नुकसान

पहुँचाने का सवाल नहीं है। क्योंकि हम नुकसान दूसरे को इसीलिए पहुँचाना चाहते हैं कि हम भयभीत हैं कि दूसरा हमें नुकसान न पहुँचा दे।

मेक्येवली ने कहा है कि इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना, क्योंकि पहले आक्रमण कर देना सुरक्षा का सुगमतम उपाय है, एकमात्र डिफेन्स है जगत में। जहाँ हम खड़े हैं अन्धेरे में, वहाँ पहले हमला कर देना, इसके पहले कि कोई हमला करे।

इसके पहले कि कोई मुझसे छीन ले, मैं छीन लूँ, इससे पहले कि कोई मुझे दुख दे, मैं उसे दुख दे दूँ– यही इस अन्धेरे मे चलती हुई व्यवस्था है। जैसे ही कोई भीतर होश से भरता है, ये सारी व्यवस्था बदल जाती है : इसके पहले कि कोई मुझसे छीने, मैं दे दूँ, और देने से आनन्दित हो जाऊँ।

जीसस ने कहा है कोई अगर तुम्हारा कोट छीने, तो तुम कमीज भी दे देना। और कोई अगर तुमसे एक मील बोझ ढोने को कहे, तो तुम दो मील तक चले जाना।

जीसस के इस वचन को ईसाइयत ठीक से समझ नही पायी। यह वचन जीसस को भारत से ही मिला। यह वचन बौद्ध विश्वविद्यालयों की हवा से जीसस को मिला। और इसके पीछे दान का सवाल नही है, इसके पीछे होश का सवाल है। जितना होशपूर्ण व्यक्ति हो, उतना छीनने मे मुक्त हो जाता है और देने मे सरल हो जाता है।

महावीर का ध्यान रखे। चलें, खड़े हो, बैठें, सोये, भोजन करें, बोलें– यह सब गौण है। सबके भीतर एक शर्त है . विवेक से। अगर विवेक सध जाये, तो सब सध जायेगा।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को उसके चिकित्सक ने कहा कि तू शराब पीना बन्द कर दे। अब नशा बहुत ज्यादा बढने लगा है।

. . . गया था चिकित्सक के पास। तो हाथ जब चिकित्सक ने उसका अपने हाथ में नाड़ी देखने को लिया, तो उसका हाथ इतना कँप रहा था कि उसके चिकित्सक ने कहा कि मालूम होता है, जरूरत से ज्यादा पीने लगे हो! बहुत पी रहे हो! हाथ इतना कँप रहा है!

नसरुद्दीन ने कहा : कहाँ पी पाता हूँ! ज्यादा तो जमीन पर ही गिर जाती है। तो चिकित्सक ने कहा : अब बहुत हो गया, अब रुको। तुम्हारे गिरने का वक्त करीब आया जा रहा है। तुम यह शराब बंद करो, इसी से नशा हो रहा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं थोड़ा वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी हूँ। पक्का नहीं कि नशा किस बात से हो रहा है, क्योंकि मैं शराब में सोडा मिलाकर पीता हूँ। पता नहीं, सोडा से हो रहा हो।

चिकित्सक ने कहा : क्या तुम पागल हो गये हो, नसरुद्दीन ?

नसरुद्दीन ने कहा : मुझे कुछ दिन का वक्त दो। मेरे पास जरा वैज्ञानिक बुद्धि है, मैं प्रयोग करके देख लूँ।

तो उसने एक दिन ब्रान्डी में सोडा मिलाकर पिया। फिर दूसरे दिन उसने व्हिस्की में सोडा मिलाकर पिया। फिर तीसरे दिन तीसरी तरह की शराब में सोडा मिलाकर पिया। ऐसे सात दिन उसने देखा कि हर हालत में नशा होता है— और एक ही कॉमन एलिमेन्ट है, सोडा।

तो उसने चिकित्सक को जाकर कहा कि तुम गलती में हो, और जिसने भी तुमको कहा कि शराब में नशा होता है, वह नासमझ है। मैंने हर हालत में, हर चीज में सोडा मिलाकर पीकर देख लिया है। लेकिन सोडा ही नशे का कारण है। तो अब मैं सोडा छोड़ता हूँ, खाली शराब पीयूँगा।

महावीर ने अनुभव से जाना है कि मूर्च्छा हर कृत्य के पीछे पाप है। हर कृत्य के पीछे मूर्च्छा पाप है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत मूल्यवान नहीं है। उसके पीछ मूर्च्छा है, बेहोशी है। वही बेहोशी उपद्रव है। बेहोशी का कारण कोई भी हो सकता है।

मैं एक बहुत बड़े सिने-दिग्दर्शक सी. बी. डिम्बाएल का जीवन पढ़ता था। उसने बड़े अनूठे चित्र निर्मित किये हैं। अरबों रुपये के खर्च से एक-एक दृश्य बनाया। मरते वक्त डिमायल का ख्याल था कि एक दृश्य और मैं ले लूँ— जगत की सृष्टि का दृश्य, जब परमात्मा छ दिन में जगत बनाता है— कैसे बनता है जगत। अरबों-खरबों डालर का खर्च था! लेकिन उसने हिम्मत की और स्पेन में एक घाटी खरीदी। और उस एकान्त निर्जन घाटी में अरबों रुपयों का वैज्ञानिक इन्तजाम किया; दस मिनट की व्यवस्था की कि कैसे प्रकाश पैदा होता है। फिर कैसे पृथ्वी का जन्म होता है। फिर कैसे पौधे पैदा होते हैं। फिर कैसे जीवन का अवतरण होता है— और छ दिन में परमात्मा कैसे प्रकृति को पूरा निर्मित करता है।

जगत का, विश्व का जन्म ! ये इतना खर्चीला मामला था, और दस मिनट में अरबों डालर का खर्च था। और एक ही बार यह हो सकता था। अगर इसका दोबारा फिर से चित्र लेना पड़े अगर एक दफे में फिल्म गलत हो जाये, कैमरामैन भूल-चूक कर जाये, तो फिर दस गुना खर्च होगा। और बड़ा उपद्रव था।

इसलिए डिमायल ने चारों तरफ पहाड़ियों पर चार कैमरामैन के समूह खड़े किये; और सबको हर हालत में चेतावनी दी कि सब चित्र लेना ताकि कोई भूल-चूक न हो जाये। एक ही बार में यह घटना हो जानी चाहिए।

फिर जन्म हुआ उस वैज्ञानिक व्यवस्था से प्रकाश का। खुद डिमायल रोने लगा, इतना अद्भुत दृश्य था; कँपने लगा; आनन्द विभोर हो गया। और जब दृश्य पूरा हुआ दस मिनट के बाद,तो उसने पहला काम किया कि पहले कैमरामैन को फोन किया और पूछा कि क्या हालत है? उस कैमरामैन ने कहा कि क्षमा करें, मैं इतना शर्मिन्दा हो रहा हूँ कि क्या कहूँ। मैं तो भूल ही गया। दृश्य इतना अद्भुत था कि मैं देखने में लग गया, चित्र तो ले नहीं पाया।

डिमायल की जैसी आदत थी, उसने दो-चार भद्दी गालियाँ दीं और उसने कहा कि मुझे पता ही था कि यह उपद्रव होने वाला है, इसलिए मैंने चार इन्तजाम किये।

दूसरे को फोन किया। उसने कहा कि सब ठीक था, लेकिन फिल्म चढ़ाना भूल गये। ये तो जब दृश्य खत्म हो गया, कैमरे में झांका तो पता लगा कि हम नाहक ही शटर दबाते रहे, फिल्म तो थी ही नहीं।

अब तो डिमायल का हृदय धड़कने लगा कि यह तो बहुत मुश्किल मामला दिखता है।

तीसरे को डरते हुए फोन किया। तीसरे ने कहा कि क्या आपको कहूँ, मर जाने का मन होता है। सब ठीक था; फिल्म ठीक चढ़ी थी, कैमरा बिलकुल तैयार था– लेन्स से टोपी उतारना भूल गया। दृश्य ही ऐसा था डिमायल कि हम क्या करें।

चौथे को तो उसे भय होने लगा फोन करने में। लेकिन जब चौथे को फोन किया तो आशा बंधी। उसने कहा, "हल्लो सी. बी."– चौथे आदमी ने कहा। उसकी आवाज से ऐसा लगा कि कम से कम इसने ठीक अवस्था में चित्र ले लिया होगा। तो डिमायल ने पूछा कि कोई गड़बड़ तो नहीं? उसने कहा कि बिलकुल नहीं, सब ठीक है। उसने कहा, "ऐसा ठीक कभी नहीं था, जैसा ठीक अब है।"

"फिल्म चढ़ी है?"

"बिलकुल फिल्म चढ़ी है।"

"तुमने टोपी अलग कर ली लेन्स की?"

"बिलकुल अलग है।"

डिमायल ने कहा, "धन्यवाद परमात्मा का!"

उस चौथे आदमी ने कहा, "रिलेक्स सी. बी., जस्ट गिव ए हिन्ट; वेन यू आर रेडी, वी आर रेडी– बस, जरा इशारा करो, हम बिलकुल तैयार हैं।"

पता चला वो चौथे आदमी में जो जान मालूम पड़ रही थी, वह नशा किये

था। वह शराब पिये हुए थे। अभी उनको ये पता ही नहीं था कि वो दृश्य हो चुका!

महावीर जीवन की सारी भूल, सारे पाप के पीछे मूर्च्छा, बेहोशी को.....।

बेहोशी का कारण कुछ भी हो। चाहे उत्तेजना आ जाये, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। क्रोध आ जाये, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। कामवासना आ जाये, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। लोभ पकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। अहंकार पकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है।

एक तत्त्व ख्याल में रखने-जैसा है कि जब भी कोई बुराई पकड़नी है, तो उसमें एक अनिवार्य भीतरी शर्त है कि आप बेहोश होने चाहिए। आपने क्रोध में देखा होगा कि आप ऐसा काम कर लेते हैं जो आप कभी कर नहीं सकते थे। बाद में पछताते हैं, रोते हैं, सोचते हैं, यह कैसे किया? लेकिन वह किया इसलिए कि आप उस वक्त होश में नहीं थे।

लोभ में आदमी कुछ भी कर लेता है। अहंकार में आदमी कुछ भी कर लेता है। कामवासना से भरा हुआ आदमी कुछ भी कर लेता है। विक्षिप्तता पकड़ लेती है। महावीर का निदान यह है कि आप जब भी बुरा करते हैं, तो क्या बुरा करते हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है– उस बुरे करने के पीछे एक अनिवार्य बात है कि आप होश में नहीं होते।

इसलिए कृत्यों को बदलने का कोई सवाल नहीं है। भीतर से होश सँभालने का सवाल है और मूर्च्छा छोड़ने का सवाल है। उठते, बैठते, सोते, भोजन करते– होशपूर्वक करना।

आप चलते हैं– आपका चलना बेहोश है। आपको चलते वक्त बिलकुल पता नहीं होता कि आप चल भी रहे हैं। चलने का काम शरीर करता है। यह ऑटोमैटिक है, यान्त्रिक है।

चलने का भी छोड़ दें। एक आदमी साइकिल चला रहा है– उसे पता भी नहीं होता है कि वह चला रहा है। आप अपनी कार चला रहे हैं– आप कहाँ मुड़ जाते हैं, कब घर के दरवाजे पर आप आ जाते हैं, कब अपने गैरेज में चले जाते हैं, इस सबके लिए आपको सोचने की जरूरत नहीं है। इस सबका होश भी रखने की जरूरत नहीं है। यह सब होता है रोज़ की यान्त्रिकता से। अगर बीच में कोई एक्सिडेन्ट होने की अवस्था आ जाये, तो क्षण भर को होश आता है, अन्यथा यन्त्रवत सब चलता रहता है।

आपने कभी देखा, आप कार चलाते हो और अचानक एक्सिडेन्ट होने की हालत आ जाये, तो एक झटका लगता है नाभि पर, सारा शरीर का यन्त्र हिल

जाता है। विचार बन्द हो जाते हैं। एक सेकेण्ड को होश आता है, अन्यथा सब बेहोशी में चलता चला जाता है।

हमारी ज़िन्दगी पूरी बेहोशी में चलती चली जाती है। जैसे हम सोये हुए चल रहे हों। हमें पता ही नहीं होता, हम क्या कर रहे हैं। बस, यन्त्रवत करते चले जाते हैं। रोज वही करते हैं, फिर वही रोज़ करते चले जाते हैं। ठीक वक्त पर भोजन कर लेते हैं; ठीक वक्त पर सो जाते हैं, ठीक वक्त पर प्रेम कर लेते हैं; ठीक वक्त पर स्नान कर लेते हैं। सब बंधा हुआ है। उस बंधे में आपको सोच-विचार की, होश की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

इस अवस्था को महावीर सोयी हुई अवस्था कहते हैं, एक तरह से हिप्नोटाइज्ड-नशे में। और महावीर कहते हैं, यही पाप का मूल कारण है। इसलिए जो भी हम करते हैं, उस करने में होश न होने की वजह से हम बंधते हैं। हम प्रेम करें तो बंध जाते हैं। हम धर्म करें तो बंध जाते हैं। हम मन्दिर जायें तो गुलामी हो जाती है, हम न जायें तो गुलामी हो जाती है।

हम जो कुछ भी करें- मूर्च्छा से गुलामी का जन्म होता है। मूर्च्छा गुलामी की जननी है। इसलिए महावीर कहते हैं : विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से सोये, विवेक से भोजन करे, विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांधता।

प्रत्येक कृत्य में विवेक समाविष्ट हो जाये। प्रत्येक कृत्य की माला मनके की तरह हो जाये और भीतर विवेक का धागा फैल जाये। चाहे किसी को दिखाई पड़े या न पड़े, लेकिन आपको विवेक भीतर बना रहे।

कैसे करेंगे इसे? इसे आसान होता है, अगर कोई कृत्य बदलने को कह दे। कह दे कि दुकान छोड़ दो, मन्दिर में बैठ जाओ – समझ में आता है, सरल बात है, क्योंकि छोड़ने वाला तो बदलता नहीं है। वह तो पकड़ने वाला ही बना रहता है।

मकान छोड़ देते हैं, मन्दिर पकड़ लेते हैं। पकड़ने में कोई फर्क नहीं आता। मुट्ठी बंधी रहती है। धन छोड़ते हैं, त्याग पकड़ लेते हैं। गृहस्थ का वेश छोड़ते हैं, साधु का वेश पकड़ लेते हैं। पकड़ना जारी रहता है। मूर्च्छा में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

ऊपरी चीजें बदल जाती हैं; लेबेल बदल जाते हैं; नाम बदल जाते हैं- भीतर की वस्तु वही की वही बनी रहती है। इसलिए बहुत आसान है कि कोई हमसे कह दे कि हिंसा मत करो। मांसाहार मत करो। रात पानी मत पीओ। बिलकुल आसान है, छोड़ देते हैं।

लेकिन कोई हमसे कहे, चौबीस घण्टे होश रखो। यह बड़ा कठिन है। एक सेकेण्ड होशपूर्वक जीना अत्यन्त दुभर है। अत्यन्त दुभर! अगर आप कोशिश करें पाँच मिनट रास्ते पर चलने की कि मैं होशपूर्वक चलूँगा, तो आप पायेंगे कि एक सेकेण्ड भी नही चल पाये, दो कदम भी नही उठा पाये कि मन कही और चला गया। आप फिर यन्त्र की भाति चलने लगे।

भीतर से इस यान्त्रिकता को तोड़ने का सवाल है। भीतर यह यंत्रवतता न रह जाये। कुछ भी हो मेरे जीवन मे– हाथ भी हिले, आँख भी झपके, तो मेरी जानकारी के बिना न हो। मैं होश से भरा रहूँ, तो ही हो।

कठिन होगी। तपश्चर्या होगी। और बडी चेष्टा के बाद ही, वर्षों और जन्मो की चेष्टा के बाद ऐसी क्षमता भीतर आनी शुरू होती है, ऐसा इन्टिग्रेशन और क्रिस्टलाइज़ेशन होता है, जब आदमी होशपूर्ण होता है।

गुरजियेफ पश्चिम मे एक महत्त्वपूर्ण सन्त था अभी, इस सदी मे। मरने के कुछ दिन पहले उसने डेढ सौ मील की रफ्तार से कार चलायी और जानकर दुर्घटना की। दुर्घटना भयंकर थी; जानकर की गयी थी। एक चट्टान, एक वृक्ष मे आकर टकरा गया। कोई डेढ़ सौ फ्रैक्चर हुए। पूरे शरीर की हड्डी-हड्डी टूट गयी। कुछ बचा नही साबित। लेकिन वह पूरे होश में था, होश नही खोया था। तो जब उसके मित्रो ने, शिष्यों ने पूछा कि यह आपने क्या किया? डेढ़ सौ मील की रफ्तार से गाड़ी चलाने का कोई कारण न था इतने सकरे रास्ते पर। कोई प्रयोजन भी नही था। कोई जल्दी भी नही थी।

तो गुरजियेफ ने कहा कि यह सब जानकर किया गया है। मैं मरने के पहले यह देखना चाहता था कि मेरा शरीर चकनाचूर हो जाये, तो भी मेरा होश न खोये। अब मैं निश्चिन्त हूँ। अब मरते वक्त मौत मेरा कुछ भी नही बिगाड़ सकती– मेरा होश कायम रहेगा। इससे ज्यादा मौत क्या करेगी! सारा शरीर टूट गया है, लेकिन एक क्षण को होश नही खोया है!

गुरजियेफ का शिष्य आंसपेन्सकी ने भी मरते वक्त अपने मित्रो को अपने साथ लिया और कार से यात्रा पर निकल गया। कहीं रुके ही नही। रात आ जाये, तो भी गाड़ी चलाता रहे। आखिर उसके मित्रों ने कहा . यह क्या कर रहे हो? तीन दिन हो गये, न तुम रुकते, न तुम सोते।

तो आँसपेन्सकी न कहा कि मै जागते हुए ही मरना चाहता हूँ। नींद में पता नही मै मौत के वक्त ठीक होश रख सकूँ, न रख सकूँ। तो मैं चलते ही रहना चाहता हूँ इस कार में; चलाते ही रहना चाहता हूँ इसको। मै मरना चाहता हूँ जागता

हुआ ताकि मुझे पक्का पता हो कि जब मौत आयी, तो मैंने भीतर होश जरा भी नहीं खोया।

महावीर इस विवेक को कह रहे हैं। उनका विवेक कोई नैतिक बात नही है, एक बड़ी यौगिक प्रक्रिया है। आप कुछ भी करते हैं, आपको पता नही होता। आप बैठे हैं, आपका पैर हिल रहा है कुर्सी पर। आप कोई कारण बता सकते है, क्यो हिल रहा है? अगर आपको मैं कहूँ कि आपका पैर हिल रहा है, आप नाहक पैर हिला रहे है– क्योंकि चल नही रहे हैं, बैठे है, तो पैर क्यों हिला रहे है? तो पैर रुक जायेगा। क्योंकि आपको होश आ गया। लेकिन कारण आप भी नही बता सकते।

महावीर कहेगे कि अगर कुर्सी पर बठकर पैर ही हिल रहा है, तो होशपूर्वक ही हिलाओ, जानते हुए हिलाओ कि कोई कारण है। कारण जरूर है वहाँ – एक बेचैनी है भीतर। वह बेचैनी पैर से बह रही है। आप बैठे हैं, तो करवट ही बदलते रहेगे बैठे हुए। वह बेचैनी करवट बदल रही है। भीतर एक बेचैनी का विक्षिप्त ज्वर चल रहा है। कोई चैन नही है।

इस बेचैनी को जानो और निकालो – लेकिन होशपूर्वक। इसको बेहोशी में मत बहने दो। क्योंकि यह बेहोशी में अगर बह रही है, तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम न तो अपने मालिक हो, न अपने कृत्यो के मालिक हो सकते हो। क्योंकि जो इतने छोटे कृत्यों का मालिक नही है, वह सोचे कि मैं चोरी नही करूँगा, मैं क्रोध नही करूँगा, मैं हत्या नही करूँगा, उसका आप भरोसा मत करना।

आप कभी सोचते है कि आप हत्या करगे? आप कभी नहीं सोचते। जिन्होंने हत्या की है, उन्होंने भी करने के पहले कभी नही सोचा था कि हत्या करेंगे।

मनोवैज्ञानिको का कहना है कि जो लोग निरन्तर सोचते रहते है कि हत्या करेंगे, वे हत्या नही करते। अक्सर वे लोग हत्या करते है, जिन्होंने कभी सोचा ही नहीं। लेकिन किसी ज्वर के क्षण में, विक्षिप्तता के क्षण में घटना घट जाती है। वे किसी की गर्दन दबा देते हैं। दबाने के बाद ही उनको पता चलता है कि यह क्या कर बैठे! यह क्या हो गया!

लेकिन, यह आप भी कर सकते हैं। क्योंकि जिन्होंने किया है, वे आप ही जैसे भले लोग थे। उनमें कोई अन्तर नही था करने के पहले। करने के पहले वे भी भरोसा नहीं कर सकते थे कि उनसे और हत्या हो सकती है! लेकिन उनसे हो गयी। आप से भी हो सकती है।

होने का सारा कारण मौजूद है – क्योंकि आप बेहोश हैं। आप जा रहे हैं,

आपने कभी चोरी नही की, लेकिन आपको लाख रुपये के नोट रखे हुए दिखाई पड जायें, चोर जो भीतर सोया है, फौरन जग जायेगा। वह आपको हजार दलीलें दे देगा। वह हजार विधियाँ खोज लेगा। वह दलीले फिर बुद्धि को समझाने के लिए हैं ताकि होश न रह जाये, ताकि बुद्धि सो जाये। चोरी आपसे हो जायेगी। यह जो चोरी है, यह आप किसी भी क्षण कर सकते हैं। आप कहेंगे कि मैं नही कर सकता। उसका कारण है कि पाँच रुपये का नोट रहा होगा, पाँच लाख नही रहे होगे। पाँच रुपये के नोट की आप चोरी नहीं करते — उतना आपकी मूर्च्छा लिए काफी नही है। हर आदमी की चोरी की सीमा है। गरीब आदमी पाँच रुपये की कर लेता है, अमीर आदमी पाँच लाख की करता है। और अमीर आदमी है, पाँच करोड़ की करता है। वो पाँच करोड़ की चोरी करनेवाला पाँच की चोरी नही करता, इससे आप यह मत समझ लेना कि अचोर है। पाँच रुपये की चोरी करनेवाला पाँच कौड़ी की नही करेगा, इससे आप यह मत समझना कि वह अचोर है।

तब तक चोरी नही मिटेगी, जब तक मूर्च्छा नही मिटती। यह हो सकता है कि आपकी चोरी की कीमत हो कि कितनी कीमत पर आप चोरी करेंगे। छोटे आदमी छोटी चोरी करते हैं, बड़े आदमी बड़ी चोरी करते हैं। छोटे आदमी बहुत-सी चोरी करते है— क्योंकि छोटी-छोटी करते है। बड़े आदमी थोड़ी चोरी करते है; कभी करते हैं, एकाध करते हैं — लेकिन बड़ी करते हैं। वह सब पूरा कर लेते है। पूरी जिन्दगी की चोरी एक दफा में निपटा लेते हैं।

हर आदमी की कीमत है। और कीमत परिस्थिति पर निर्भर है, आपके होश पर निर्भर नही है। आप सभी तरह के पाप कर सकते हैं, जो किसी मनुष्य ने कभी किये हो।

इसे ध्यान मे रखें। हर आदमी के भीतर पूरी मनुष्यता बैठी हुई है। जो पाप कभी भी हुआ है इस पृथ्वी पर, वह आप भी कर सकते हैं। उनकी बात भी सही है — जो पुण्य इस पृथ्वी पर कभी भी हुआ है, वह आप भी कर सकते हैं। आपके भीतर चगेजखान बैठा है और महावीर भी बैठे हैं। दोनों की मौजूदगी है। और दोनो की मौजूदगी इस बात पर निर्भर करती है कि कौन सक्रिय हो जायेगा।

मूर्च्छा बढती चली जाये तो आप चगेजखान की तरफ गिरने लगते हैं। होश बढ़ने लगे तो महावीर की तरफ उठने लगते हैं। परम होश के क्षण मे वही आपके भीतर से भी होगा जो बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को हुआ है। परम बेहोशी के क्षण मे वही आपसे होगा जो हिटलर से, नेपोलियन से, सिकन्दर से, चगेजखान से, तैमूरलंग से हुआ है।

आपके भीतर दोनों छोर मौजूद हैं। और ये जो सीढ़ियाँ हैं बीच की, ये होश या मूर्च्छा की सीढ़ियाँ हैं। नीचे की तरफ उतरें तो मूर्च्छित होते चले जाते हैं। ऊपर की तरफ उठें तो होश से भरते चले जाते हैं। होश से भरते चले जायें तो आप ऊपर उठते हैं। यह महावीर की मौलिक आधारशिला है।

'जो सब जीवों को अपने समान समझता है, अपने-पराये, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आस्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म का बन्धन नहीं होता।'

जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे सभी जीवों के भीतर वही ज्योति दिखाई पड़ने लगती है, जो मेरे भीतर है। जैसे-जैसे बेहोशी बढ़ती है, खुद के भीतर भी आत्मा का पता नहीं चलता— दूसरों के भीतर तो पता चलने का कोई सवाल ही नहीं है। जो मैं अपने भीतर जानता हूँ, वही मुझे दूसरों के भीतर भी दिखाई पड़ सकता है।

ज्ञान का पहला चरण भीतर घटेगा। फिर उसकी किरणें दूसरों पर पड़ती हैं। मुझे यही पता नहीं है कि मेरे भीतर कोई आत्मा भी है। इतना बेहोश हूँ कि जो भीतर मौजूद है, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। आँखों पर धुन्ध है, नशा है। धुआँ घिरा है भीतर, कुछ दिखाई नहीं पड़ता— लेकिन हम चले चले जाते हैं।

मैंने सुना है, एक दिन जोर की वर्षा हो रही है और मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को लेकर कहीं जा रहा है। गाड़ी चला रहा है। वर्षा इतनी ज़ोर की है, लेकिन उसने वाइपर नहीं चलाया। तो उसकी पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन, वाइपर तो चला लो, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नसरुद्दीन ने कहा, "कोई मतलब नहीं, क्योंकि मैं चश्मा घर ही भूल आया हूँ। मुझे वाइपर ही नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिए वाइपर चले, न चले, मुझे क्या फर्क पड़नेवाला है!"

और ज़ोर से गाड़ी भगाये जा रहा है। एक पुलिसवाला उसको रोकता है और पूछता है कि क्या तुम पागल हो गये हो? इतनी ज़ोर से गाड़ी भगा रहे हो! इतना धुन्ध छाया हुआ है और वाइपर तुम्हारे चल नहीं रहे।

नसरुद्दीन कहता है कि ऐक्सिडेन्ट होने के पहले मैं घर पहुँच जाना चाहता हूँ, इसलिए तेज़ी से जा रहा हूँ।

मूर्च्छा में ऐसा ही हो रहा है। और आप जो भी कर रहे हैं, सुरक्षा ही के लिए कर रहे हैं। वह तेज़ी से चला रहा है, ताकि ऐक्सिडेन्ट होने के पहले घर पहुँच जाये। जो आपके भीतर अगर ऐसी घनी मूर्च्छा है, जहाँ कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है, जहाँ खुद का होना नहीं दिखाई पड़ रहा है— वहाँ दूसरे का होना दिखाई पड़ने का तो कोई

सवाल ही नही है। आपको अपना पता नही है, दूसरे का पता तो कैसे हो सकता है !

आत्मज्ञान समस्त ज्ञान का आधार है, स्रोत है। तो महावीर कहते हैं, 'सब जीवों को अपने समान समझता है. . . . . ।' यह होश के बाद ही होगा।

'जो अपने-पराये को समान दृष्टि से देखता है. . . ।'

क्योंकि जैसे ही होश निर्मित होना शुरू होता है, यह साफ हो जाता है कि न कोई अपना है, और न कोई पराया है। क्योंकि अपने-पराये के सब सम्बन्ध मूर्च्छा में निर्मित हुए थे। किसी को अपना कहा था– क्योंकि वह मेरी मूर्च्छा को भरता था, मेरे स्वार्थ को पूरा करता था; मेरे शोषण का आधार था। किसी को पराया कहा था– क्योंकि वह बाधा डालता था। कोई मित्र था– क्योकि सहयोगी था। कोई दुश्मन था– क्योंकि बाधक था।

लेकिन जैसे-जैसे होश बढ़ता है, यह साफ होने लगता है कि न कोई सहयोगी हो सकता है, न कोई बाधक, न मुझे कोई सुख दे सकता है, न दुख– इसलिए न कोई मित्र हो सकता है, और न कोई शत्रु। तो अपना-पराया समान होने लगता है।

'जिसने आस्रवों का निरोध कर लिया है . . ।'

जैसे ही होश बढता है, पाप ग्रहण करना बन्द हो जाता है। अभी तो हम आतुर होते हैं। कही से खबर हमे मिल जायें पाप की, तो हम एकदम आकर्षित होते हैं। हमारी सारी चेतना जैसे पाप के लिए तैयार बैठी थी। पाप मे हमे रस है।

अखबार देखते हैं: कही हत्या, कही लूट, कही किसी की पत्नी भाग गयी किसी के साथ– एकदम अटक जाते हैं। बिना पढे फिर आगे नही बढा जाता। जिस फिल्म मे सभी कुछ शुभ हो, उसे देखने कोई जायेगा ही नही। अशुभ हमे खींचता है। जिस कहानी में सिर्फ सन्तों की चर्चा हो, उसमे कुछ कहानी-जैसा न रह जायगा।

ऑस्कर वाइल्ड ने कहा है अच्छे आदमियो का कोई चरित्र ही नही होता। उसने ठीक कहा है। अच्छे आदमी का कोई चरित्र नही होता, चरित्र बुरे आदमी का होता है। इसलिए अच्छे आदमी के आसपास कहानी खड़ी नहीं हो सकती– चरित्र ही नही है ! बुरे आदमी के आसपास कहानी खडी होती है।

अच्छा आदमी निश्चरित्र होता है, ऐसा समझना चाहिए– शून्य होता है; खाली होता है। कुछ घटना उसके आसपास घटती नही। न हत्या होती है, न चोरी होती है, न बेईमानी होती है– कुछ नही होता। वह खाली होता है, जैसे न होता, तो भी कोई फर्क नही पड़ता। अच्छा आदमी हट जाये तो कोई फर्क नही पड़ता। क्योंकि अच्छा आदमी कुछ कर ही नहीं रहा है।

महावीर कहते हैं : जैसे ही होश बढ़ना शुरू होता है, वैसे ही पाप के प्रति जो हमारा प्रबल आकर्षण है, जो आस्रव है, जो हमें खींच रहा है और हम खिंचे जा रहे हैं– वह गिरने लगता है। पाप के प्रति हमारी रुचि क्षीण होने लगती है। आप चाहे पाप न कर रहे हों, लेकिन कोई पाप करता है, उसमें आपका रस है। वह रस भी पाप करने-जैसा ही है। वह पाप है प्रॉक्सि के द्वारा। दूसरे के माध्यम से आप पाप का मजा ले रहे हैं।

आपने देखा, फिल्म देखते वक्त आप आइडेन्टिफाइड हो जाते हैं किसी पात्र से, आप एक हो जाते हैं किसी पात्र से। और वह पात्र आपके जीवन को जीने लगता है। आप अपने भीतर से जो निकालना चाहते थे और नहीं निकाल पाये हैं, वह आप उस पात्र में निकालते हैं। यह प्रॉक्सि से जीवन है। यह अभिनेता के माध्यम से आप काम कर रहे हैं। इसमें आपका निकास होता है– मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कॅथारसिस होता है। वे ठीक कहते हैं। अगर आप खून से भरी फिल्म, हत्याओं से भरी फिल्म देखकर घर लौटते हैं, तो आपकी खुद की हत्या करनेकी वृत्ति और खून करने की वृत्ति थोड़ी-सी राहत पाती है। किसी के द्वारा आपने यह काम कर लिया। घर आप हलके होकर लौटते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का तो कहना है कि यह फिल्में आपमें हत्या बढ़ाती नहीं, कम करती हैं। उनकी बात में सत्य हो सकता है। क्योंकि ये आपको थोड़ा-सा हत्या करने का मौका दे देती हैं– और बिना किसी झंझट के, बिना किसी अपराध में फँसे। थोड़े-से पैसे फेंककर और तीन घण्टे अपराध करके आप घर वापस आ जाते हैं।

क्या आपने देखा है, अगर फिल्म में कोई अश्लील, कामुक दृश्य हो, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। उसका अध्ययन नहीं किया गया– किया जाना चाहिए। लोगों पर यन्त्र लगाये जा सकते हैं, जो उनके मस्तिष्क की खबर दें। जब कोई नग्न स्त्री चित्र में आती है, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। वह कामोत्तेजना एक तरह का सम्भोग है– प्रौक्सी..... ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक फिल्म में बैठा हुआ है। खूब पी गया है। पहला शो खत्म हो गया है, लेकिन वह वहाँ से हटता नहीं। नौकर आकर उसे कहते हैं कि यह शो खत्म हो गया है। वह कहता है, दूसरी टिकट लाकर यहीं दे दो। दूसरा शो भी खत्म हो गया। वह कहता है, तीसरी टिकट भी लाकर.....। मैनेजर भागा हुआ आता है.....
"आप होश में हैं, नसरुद्दीन ?"

नसरुद्दीन कहता है कि जरा कुछ कारण है ।

मैनेजर पूछता है, "कारण क्या है ?"

"फिल्म में एक दृश्य है कि कुछ स्त्रियाँ कपड़े उतारकर तालाब में कूदने की

तैयारी कर रही है। वो बिलकुल उन्होंने कपड़े उतार दिये हैं। आखिरी कपड़ा उतारने को रह गया है और तभी एक रेलगाड़ी दृश्य को ढाँप लेती है। पानी में कूदने की आवाज़ आती है, लेकिन तब तक उस रेलगाड़ी ने सब गड़बड़ कर दिया.....। वे पानी में खड़ी हैं। वह रेलगाड़ी चली गयी।"

नसरुद्दीन कहता है, "कभी तो रेलगाड़ी लेट होगी। मैं यहाँ से हटने वाला नहीं हूँ, कब तक ठीक वक्त पर आती चली जायेगी! एक सेकेंड भी लेट हो गयी कि....!

आदमी पाप के लिए बिलकुल आतुर है। महावीर इस पाप की आतुरता को 'आस्रव' कहते हैं। जैसे होश बढ़ता है, वैसे ही ये आस्रव क्षीण होने लगते हैं।

'जो चंचल इन्द्रियों का दमन कर चुका है ...।'

यह 'दमन' शब्द समझ लेना ज़रूरी है। क्योंकि जिन अर्थों में महावीर ने ढाई हज़ार साल पहले इसका उपयोग किया, उस अर्थ में आज इसका उपयोग नहीं होता। दमन का आज अर्थ होता है, रिप्रेशन। और फ्रायड ने इसका अलग अर्थ साफ कर दिया है : किसी चीज़ को दबा लेने का नाम दमन है।

महावीर के लिए दमन का अर्थ था : किसी चीज का शान्त हो जाना। दमन का अर्थ है : शान्त हो जाना। दमन का अर्थ है, कोई चीज़ इतनी शान्त हो गयी कि अब आपमें हिलती-डुलती नहीं। महावीर के लिए दमन का अर्थ दमन नहीं था, रिप्रेशन नहीं था। महावीर के लिए अर्थ था : किसी चीज़ का बिलकुल शान्त हो जाना, निर्जीव हो जाना।

तो जिसकी चचल इन्द्रियाँ इतनी शान्त हो गयी हैं। वो जैसे ही होश बढ़ता है, चंचल इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। उनकी चंचलता हमारी बेहोशी के कारण है। जैसे हवा चलती है तो वृक्ष के पत्ते कंपते हैं; हवा रुक जाती है तो पत्ते रुक जाते हैं। आप पत्तों को रोक कर हवा को नहीं रोक सकते। कि एक-एक पत्ते को पकड़ कर रोकेंगे? और पत्ते आप पकड़ कर रोक भी लें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा-- हवा चल रही है। पत्तों को रोकना बिलकुल पागलपन होगा, क्योंकि हवा धक्के मारती ही रहेगी। हवा रुक जाये, पत्ते रुक जाते हैं।

आपकी इन्द्रियाँ चंचल हैं, क्योंकि भीतर मूर्च्छा है-- हवा चल रही है। मूर्च्छा में चंचलता होगी। सिर्फ होश में स्थिरता हो सकती है। तो जैसे ही भीतर की हवा चलनी बन्द हो जाती है, इन्द्रियाँ थिर हो जाती हैं। कोई इन्द्रियों को थिर करके मूर्च्छा से नहीं ऊपर उठता, लेकिन मूर्च्छा से ऊपर उठ जाये तो इन्द्रियाँ थिर हो जाती हैं।

'चंचल इन्द्रियो का जो दमन कर चुका है .....।'

जो पार हो चुका है इन्द्रियों की अशान्ति के, और इन्द्रियाँ शान्त हो गयीं-- उसे पाप-कर्म का बन्धन नहीं होता ।

'पहले ज्ञान है, बाद में दया ।'

'पढ़मं नाण तओ दया'

यह सूत्र बड़ा अद्भुत है । और जैन इस सूत्र को बिलकुल भी नहीं समझ पाये' या बिलकुल ही गलत समझे । इस सूत्र से क्रान्तिकारी सूत्र खोजना कठिन है-- पहले ज्ञान बाद में दया ।

महावीर कहते हैं: अहिंसा पहले नहीं हो सकती-- पहले आत्मज्ञान है । पहले भीतर का ज्ञान न हो, तो जीवन का आचरण दयापूर्ण नहीं हो सकता. अहिंसापूर्ण नहीं हो सकता । क्योंकि जिसके भीतर ज्ञान का ही उदय नहीं हुआ. उसके जीवन में हिंसा होगी ही । वह लक्षण है । इसे हम ठीक से समझ लें ।

एक आदमी को बुखार चढ़ा है । शरीर का गर्म हो जाना लक्षण है, बीमारी नहीं है । लेकिन कोई नासमझ यह कह सकता है कि ठंढे पानी से इसको नहलाओ ताकि इसकी गर्मी कम हो जाये; बीमारी ठीक हो जायेगी । बुखार बीमारी नहीं है, बुखार तो केवल लक्षण है । बीमारी तो भीतर है । उस बीमारी के कारण शरीर उत्तप्त है । क्योंकि शरीर के कोष्ठ आपस में लड़ रहे हैं । शरीरमें एक संघर्ष छिड़ा है । शरीर में कोई विजातीय जीवाणु प्रवेश कर गये हैं और शरीर के जीवाणु उन जीवाणुओं से लड़ रहे हैं । उस लड़ने के कारण गर्मी पैदा हो गयी है । शरीर एक कुरुक्षेत्र बना है । उस कुरुक्षेत्र में शरीर उत्तप्त हो गया है ।

उत्तप्तता बीमारी नहीं है । उत्तप्तता केवल बीमारी की खबर है । और उत्तप्तता शुभ है, क्योंकि वह खबर दे रही है कि कुछ करो-- जल्दी करो । ठंढे पानी से उसको ठंढा किया जा सकता है, लेकिन इससे बुखार के मिटने की सम्भावना कम' मरीज के मिट जाने की सम्भावना ज्यादा है ।

लक्षणों से लड़ना अज्ञान है । आप हिंसक हैं, क्योंकि भीतर कोई मूर्च्छा है । हिंसा लक्षण है, बीमारी नहीं । आप चोर हैं, दुष्ट हैं, कामुक हैं, पापी हैं-- ये लक्षण हैं । इनसे लड़ने की कोई जरूरत नहीं है । इनसे जो लड़ता है, वह भटक जायेगा । उसने चिकित्सा-शास्त्र का प्राथमिक नियम भी नहीं समझा । यह केवल खबर दे रहे हैं कि भीतर आत्मा सोयी हुई है-- बस, इतनी खबर दे रहे हैं । आत्मा को जगाओ, ये बदल जायेंगे ।

अहिंसक होने से कोई आत्मज्ञानी नहीं होता, आत्मज्ञानी होने से अहिंसक होता है । पहले ज्ञान, फिर दया । लेकिन जैन इसको बिलकुल ख्याल में नहीं ले पाये ।

वे 'पहले दया, फिर ज्ञान' की पूरी कोशिश कर रहे है। पहले अहिंसा साधो, आचरण साधो, व्रत-नियम साधो -- सब तरह से बाहर की पहले व्यवस्था करो, फिर भीतर की। वे कहते हैं कि पहले बाहर और फिर भीतर। और महावीर कहते हैं : पहले भीतर और फिर बाहर।

बाहर अटक जाना साधक के लिए सबसे खतरनाक है। क्योंकि वह अटकाव इतना लम्बा है कि जन्मों लग सकते हैं और उसमे छुटकारा न हो-- और छुटकारा होगा नही।

हिंसा को बाहर से रोको, बुखार को बाहर से रोको -- बुखार दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जायेगा। और जब दूसरी तरफ से निकलेगा तो ज्यादा खतरनाक होगा। पहला निकलना नैसर्गिक था, दूसरा विकृत, परवर्टेड होगा।

कामवासना को बाहर से रोक लो, कामवासना दूसरी तरफ से निकलनी शुरू हो जायेगी। यह दूसरी तरफ से निकलना रोगपूर्ण होगा। पहला तो कम से कम प्राकृतिक था-- यह अप्राकृतिक होगा।

कामवासना से लड़ने से कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नही होता, लेकिन स्वयं का बोध आना शुरू हो जाये -- ब्रह्मचर्य उसकी छाया की तरह पीछे आने लगता है।

आचरण छाया है। छाया को खींचने की कोशिश मत करो। उसे कोई भी खींच नही सकता। आप जहाँ होओगे, वहाँ छाया पहुँच जायेगी। अगर आप आत्मा मे हो, तो छाया आत्मिक हो जायेगी। अगर आप शरीर में हो, तो छाया शारीरिक होगी। फिर आप कुछ भी करो, आपके करने से कोई फर्क नही पड़ता। इसलिए मौलिक करने की जो बात है, गहरी करने की जो बात है, वह आत्मज्ञान है।

महावीर कहते है, वह विवेक से फलित होगा। जितना भीतर होश जगेगा, उतनी भीतर की प्रतीति होगी। वही ज्ञान है।

पहले ज्ञान, बाद मे दया। इसी क्रम पर-- यह क्रम बहुत मूल्यवान है-- त्यागी अपनी सयम यात्रा पूरी करता है। इसी क्रम पर-- पहले ज्ञान फिर दया। लेकिन आदमी होशियार है, और अपने मतलब की बातें निकालता रहता है और गणित बिठाता रहता है।

इस सूत्र को बदलना तो बहुत मुश्किल है।

मै एक जैन मन्दिर मे गया। एक मुनि को बड़ी इच्छा थी कि मुझसे मिलें। वो आ नही सकते थे मिलने क्योंकि उनके आसपास जो गृहस्थो का जाल है, कारागृह है, वह उन्हे आने नही देता।

यह बड़े मजे की बात है। मुनि जाता है मुक्त होने– एक गृहस्थी से छूटता है, पचीस गृहस्थियों के चक्कर में फँस जाता है।

वो मुनि ने खुद मुझे खबर भेजी कि मैं आ नहीं सकता, क्योंकि श्रावक बाधा डालते हैं। वे कहते हैं, आपको जाने की क्या जरूरत ? तो मैंने कहा कि मैं खुद आऊँगा, क्योंकि मुझे बाधा डालने वाला कोई भी नही है। मैं श्रावकों को बाधाएँ डालता हूँ, मुझे बाधा डालनेवाला कोई नही है।

मैं गया। पर मैंने उनसे कहा कि आप भ्राति में है कि श्रावक आपको बाधा डालते है। श्रावकों से आप डरते है– उसका कुछ कारण है। और कारण यह है कि आप उनमे साफ क्यों नही कहते कि मुझे पता नही है, मैं पूछने जाना चाहता हूँ। श्रावकों को आप यही समझाये जा रहे हैं कि मुझे ज्ञान उपलब्ध हो गया है– और ज्ञान उपलब्ध नही हुआ है। इसलिए मुझसे मिलने आना चाहते हैं।

वे कहने लगे, जोर से मत बोलिये। वे लोग पास ही बैठे हैं। वो सब दरवाजे पर बैठे सुन रहे हैं।

वे आपको नही बाँधे हुए है– आपका भ्रान्त अहंकार कि आपको ज्ञान हो गया है। और उनके पीछे तख्ती लगी है– " पढम नाणं तओ दया "। मैंने कहा, यह पीछे तख्ती किसलिए लगा रखी है ? तो उन्होने क्या व्याख्या की, वह मैं आपको कहना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि नही, इसका मतलब यह है कि पहले शास्त्र-ज्ञान– पहले पढ कर शास्त्र से जानना पड़ेगा और फिर अहिंसा साधनी पड़ेगी।

महावीर विवेक के सूत्र की बात कह रहे हैं। इसमें शास्त्र का कही कोई सम्बन्ध नही है। और महावीर शास्त्र की बात तो कह ही नही सकते, क्योंकि महावीर-जैसा शास्त्र-विरोधी आदमी ही नही हुआ। महावीर हिंदू धर्म के विपरीत गये– सिर्फ इसलिए कि हिंदू धर्म शास्त्रवादी धर्म हो गया। वेद परम हो गया। तो महावीर अवैदिक हैं। वे कहते है, वेद परम नही है। जो आदमी कहता है, वेद परम नही है, वह शास्त्र को परम नही कह सकता। और शास्त्र-ज्ञान से कही ज्ञान हुआ है ?

तो मैंने उनसे पूछा कि शास्त्र तो आप पढ़ चुके है, ज्ञान हो चुका ? अगर हो चुका तो आपकी व्याख्या ठीक है, और अगर ज्ञान नही हुआ तो व्याख्या में भूल है।

महावीर सीधा कह रहे हैं कि पहले ज्ञान, फिर दया। पहले भीतर का होश– अवेअरनेस, अप्रमत्तता, जागरुकता, सावधानी– फिर बाहर का आचरण अपने आप साथ-साथ चलने लगता है। जो हमें दिखाई पड़ जाये कि गलत है, वह बन्द हो जाता है जीवन से। जो हमें दिखाई पड़ जाये कि सही है, वह होना शुरू हो जाता है।

और अगर आपको पता चलता है कि क्या सही है और क्या गलत है, फिर भी गलत आप करते हैं और सही नही करते, तो उसका मतलब है : वह शास्त्र-ज्ञान है ज्ञान नही। और शास्त्र-ज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक हो सकता है, क्योंकि उसमें भ्रांति होती है कि मैं जानता हूँ। बिना जाने लगता है कि मैं जानता हूँ।

इसलिए पण्डित पापी से भी ज्यादा भटक जाता है। और पापी तो कभी-कभी मोक्ष में पहुँच जाते सुने हैं, पण्डित कभी नहीं पहुँच पाता। हालाकि पण्डित गणित बिठाता रहता है। और हर गणित जिसको वह दूसरे से सरल करता है, जिससे वह हल करता है पहले को, जिस दूसरे गणित से हल करता है– वह दूसरा पहले से भी ज्यादा उपद्रव मे ले जाता है। फिर उसको दस तरकीबें और दस तर्क और खोजने पड़ते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है ट्रेन से अपनी पत्नी के साथ। ट्रेन भागी जा रही है साठ-सत्तर मील की रफ्तार से। एक खेत में, एक पहाड़ की खाई के करीब, एक भेड़ों का बड़ा भारी झुंड है। पत्नी कहती है, "कितनी भेड़ें हैं?"

नसरुद्दीन कहता है, "ठीक सतरह सौ चौरासी!" पत्नी कहती है, "क्या कह रहे हो? इतनी शीघ्रता से तुमने गिन भी लिया? ठीक सत्तरह सौ चौरासी?"

नसरुद्दीन ने कहा कि सीधा गिनना तो सम्भव नहीं है– इट इज़ इम्पॉसिबॅल टु काउन्ट डाइरेक्टली। आइ डिड इट इनडाइरेक्टली– मैंने जरा ये परोक्ष रूप से किया। पत्नी ने उससे पूछा कि वह कौन-सा परोक्ष रूप?

तो नसरुद्दीन ने कहा, "एक छोटा से छोटा बच्चा भी जानता है। ईवॅन ए स्कूल बॉइ नोज़ द ट्रिक. फर्स्ट काउन्ट द लेग्ज़– देन डिवाइड देम बाई फोर– पहले पैर गिन लो, फिर चार से भाग दे दो। पहले मैंने पैर गिने, फिर चार से भाग दे दिया। ठीक सत्तरह सौ चौरासी भेड़े हैं!

पण्डितों के सारे गणित ऐसे हैं। जिस बात से वे पहले उपद्रव को हल करते है, वह और भी ज्यादा उपद्रव के है। फिर उनसे और पूछिये तो वे और चार तर्क खड़े कर देते हैं। एक रेशनॅलाइज़ेशॅन का जाल है। वे खड़ा करते चले जाते हैं। लेकिन उससे मूल भूल मिटती नहीं। हाँ, जो नही समझ पाते हैं गणित को, उनको शायद चमत्कार हो जाता हो। शायद वे सोचते हों कि जरूर कोई रहस्य होगा, जभी तो इतना गणित हल हो रहा है। लेकिन पहली, प्राथमिक भूल मिटती नही।

बुनियादी भूल यह है कि कोई भी चरित्र पैदा नहीं होता बोध के बिना। अगर बोध के बिना चरित्र पैदा करने की कोशिश की, तो चरित्र थोथा और पाखण्ड होगा– हिपॉक्रिसी होगा। और ऐसा चरित्र नरक भला ले जाये, मोक्ष नही ले जा सकता।

और ऐसा चरित्र यहाँ भी पीड़ा देगा; यहाँ भी कष्ट देगा— क्योंकि झूठा होगा, जबरदस्ती होगा।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि ज़िन्दगी भर हमने कोई चोरी नहीं की; बेईमानी नहीं की— लेकिन कैसा नियम है जगत का कि चोर और बेईमान धनपति हो गये हैं; आनन्द लूट रहे है ; कोई पद पर है; कोई प्रतिष्ठा पर है; कोई सिंहासन पर बैठा हुआ है— और हम ईमानदार रहे और दुख भोग रहे हैं !

उनको मैं कहता हूँ कि तुम सच्चे ईमानदार नही हो। नही तो ईमानदारी से ज्यादा सुख तुम्हे महल में दिखाई पड़ नही सकता था। तुम्हारी ईमानदारी पाखण्ड है। तुम भी बेईमान हो, लेकिन कमज़ोर हो। वह बेईमान ताकतवर है। वह साहसी है। वह कर गुज़रा, तुम बैठे सोचते रह गये। तुम सिर्फ कायर हो, पुण्यात्मा नही हो। तुममें बेईमानी करने की हिम्मत भी नहीं है, लेकिन बेईमानी का फल मिलता है, उसमे रस है। तुम चाहते हो कि बेईमानी न करूँ और महल हमें मिल जाये। तब तुम ज़रा ज्यादा माँग रहे हो। बेईमान बेचारे ने कम से कम बेईमानी तो की; कुछ तो किया; दाँव पर तो लगाया ही ; झंझट में तो पड़ा ही— वह जेल मे भी हो सकता है। उतनी उसने जोखम ली।

जोखम हमेशा हिम्मतवर का लक्षण है। तुम सिर्फ कमज़ोर हो, और कमज़ोरी को तुम ईमानदारी कह रहे हो। तुम नहीं कर सकते बेईमानी , इसका मतलब यह नही है कि तुम ईमानदार हो। इसका कुल मतलब इतना है कि तुममें साहस की कमी है। अगर तुम ईमानदार होते, तो तुम कहते कि बेचारा महलों में सड़ रहा है। बेईमानी करके देखो यह फल मिला कि महलो मे सड़ रहा है; कि सिंहासन पर सड़ रहा है। तुम्हे दया आती । और तुम आनन्दित होते ।

लेकिन एक बड़े मज़े की बात है कि बेईमान कभी ईमानदारो की ईर्ष्या नही करते। यह बड़े मज़े की बात है। और ईमानदार हमेशा बेईमानों की ईर्ष्या करते है। इससे बात साफ है कि वह जो ईमानदार है— झूठ है, धोखा है। उसकी ईमानदारी ऊपरी कवच है— उसका आन्तरिक प्रकाश नही है। और वह जो बेईमान है, वह कम-से कम सच्चा है; साफ है— कम से कम जटिल नही है; उलझा हुआ नही है।

भला आदमी . . . उसका भला होना ही इतना बड़ा आनन्द है कि वह क्यो ईर्ष्या करेगा— दया कर सकता है। लेकिन् आप सब भले आदमियो को ईर्ष्या करते पायेंगे। वे समझते हैं कि अपनी भलाई की वजह से वे असफल हो गये है।

भलाई की वजह से दुनिया में कोई कभी असफल नही होता और बुराई की वजह से दुनिया में कोई सफल नही होता। सफलता का कारण है : बुराई के साथ कोई साहस जुड़ा है; कोई सचाई जुड़ी है; यह ज़रा समझ ले। असफलता

का कारण है : भलाई के साथ कोई कमज़ोरी, कोई कायरता, कोई नपुंसकता जुड़ी है।

बेईमान अपनी बेईमानी में जितना साहसी है, ईमानदार अपनी ईमानदारी में उतना साहसी नहीं है, वह साहस प्राण ले लेता है, उसकी कमी सब गड़बड़ कर जाती है। जगत में सफलता ऑथेन्टिक, प्रामाणिक को मिलती है, चाहे वह प्रामाणिक अपनी बेईमानी में ही क्यों न हो; निष्ठावान को मिलती है, चाहे उसकी निष्ठा गलत में ही क्यों न हो।

सत्य भी कमज़ोर है अगर निष्ठा उसके पीछे नहीं है। लेकिन पाखंडी . . . . .। यह तो आप पक्का जानते हैं कि आपको बेईमान पाखण्डी मिलना मुश्किल है : कि ऊपर-ऊपर बेईमानी और भीतर-भीतर ईमानदार। कभी आपने ऐसा कोई पाखण्डी देखा है . कि ऊपर-ऊपर बेईमानी, ऊपर-ऊपर चोरी, असत्य— भीतर-भीतर सब ठीक।

नहीं, अधर्म में कोई पाखण्डी होते ही नहीं। सिर्फ धर्म में पाखण्डी होते हैं। भीतर बेईमानी, चोरी, बदमाशी— सब। बाहर-बाहर अच्छा, कपड़ों पर सब रंग-रोगन। भीतर सब गन्दगी इस पाखण्ड, इस द्वन्द्व, इस आन्तरिक और बाह्य के विरोध के कारण, जिसको हम भला आदमी कहते हैं, वह असफल होता है।

सफलता उसको मिलती है जो एकजूट है। और मैं कहता हूँ कि बुराई तक सफल हो जाती है अगर एकजूट हो। तो जिस दिन भलाई एकजूट होती है, उसकी सफलता का तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता! सारा जगत उसके विपरीत हो जाये, तो भी उसकी सफलता का कोई मुकाबला नहीं हो सकता। लेकिन हम हमेशा बुरे में निष्ठावान होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक कुत्ता बेचना चाहता है। बाजार में खड़ा है। कुत्ता बड़ा खूबसूरत है; बड़ा शानदार है; देखने में बड़ा ताकतवर है। एक आदमी खरीदने आता है। मुल्ला कहता है कि तीन सौ रुपया।

वह आदमी कहता है कि ज़रा ज्यादा दाम बता रहे हैं—! दिस इज़ टू मॅच।

मुल्ला नसरुद्दीन कहता है, "पहले इस कुत्ते को तो देखो ठीक से। दिस डॉग इज़ ऑल्सो टू मॅच! इस कुत्ते की शान देखो! इसका सौंदर्य देखो!"

वह आदमी कहता है, "शान और सौंदर्य तो ठीक है, इनसे कोई आखिरी काम नहीं निकलता। इज़ दिस डॉग फेथफुल ऑल्सो— क्या यह कुत्ता ईमानदार भी है; निष्ठावान भी है?"

नसरुद्दीन ने कहा, "वह तो बात ही मत करो! डोन्ट टॉक अॅबाउट हिज़ फेथफुलनेस। आइ हैव सोल्ड हिम सेवॅन टाइम्स, हि कम्स बैक बिदिन ट्वेल्व

आवर्स — इसकी निष्ठा की तो बात मत करो ! सात दफा बेच चुके, बारह घण्टे में वापिस आ जाता है । इसकी तुम फिक्र ही मत करो । मालिक के प्रति इसकी निष्ठा तो बिलकुल अटूट है !"

जहाँ हम जी रहे हैं, वहाँ अगर दुख है, पीड़ा है और हम सोचते हैं कि हम शुभ हैं, धार्मिक हैं, तो समझना कहीं भूल हो रही है । धार्मिक व्यक्ति को पीड़ा होती ही नहीं, हो नहीं सकती । वह असम्भव है । शुभ के साथ दुख का कोई सम्बन्ध ही नहीं है । और अगर दुख है, तो समझना कि सुख झूठ है, धोखा है । महावीर इसीलिए कहते हैं– पहले ज्ञान, बाद में दया ।

'इसी क्रम पर त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है ।' यही क्रम है, पहले ज्ञान फिर दया । पहले आन्तरिक बोध, पहले भीतर का दिया जले, फिर आचरण में प्रकाश ।

'भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा ? श्रेय तथा पाप को वह जान ही कैसे सकेगा ?' जिसके भीतर का दिया बुझा हुआ है, उसे कैसे पता चलेगा क्या, प्रकाश है और क्या अन्धेरा है ? क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है ? कहाँ जाऊँ, कहाँ न जाऊँ ? उसे दिशाओं का कोई भी पता नहीं हो सकता है । इसलिए विवेक, होश पहली शर्त है ।

'सुनकर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है । सुनकर ही पाप का मार्ग जाना जाता है । दोनों ही मार्ग सुनकर जाने जाते हैं । बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे, फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे ।'

यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए । और महावीर की परम्परा में इसका बड़ा मूल्य है । इतना मूल्य है कि महावीर ने अपने साधक को 'श्रावक' कहा है ।

श्रावक का अर्थ है . ठीक सुननेवाला– राइट लिसनॅर । हम सभी सुनते हैं । इसलिए महावीर कुछ ज्यादती करते मालूम पड़ते हैं । वो ठीक सुनने का क्या मतलब ? जिसके कान ठीक हैं, वह ठीक सुननेवाला है । कान खराब हो तो ठीक सुननेवाला नहीं है ।

लेकिन महावीर कहते हैं : ठीक सुननेवाला वह है, जो सुनते समय विचार का बिलकुल ही त्याग कर देता है। जो सिर्फ सुनता है। जिसकी सारी ऊर्जा और सारी चेतना सुनने में लग जाती है । जो सुनते वक्त न तो पक्ष सोचता है, न विपक्ष सोचता है । न तो कहता ठीक, न कहता गलत । न कोई तर्क खड़े करता, न भीतर द्वन्द्व करता । न अपने शास्त्रों से मिलाता, न अपने अतीत के साथ तुलना करता । जो सुनते वक्त एक शून्य की भांति हो जाता है ।

इसका यह मतलब नहीं है कि सुनकर वह अन्धा हो जाता है। महावीर कहते हैं, पहले सुन ले साधक पूरा, फिर सोचे। लेकिन सुनने की घटना पहले घट जाये। आमतौर से ऐसा नहीं होता है। जब आप सुनते हैं, तभी आप सोचते रहते हैं। और आपका सोचना सुनने को विकृत कर देता है। फिर जो आप सुनकर जाते हैं उसमें जो कहा गया है वह शायद ही होता है। आपने जो जोड़ लिया वही होता है। आपकी व्याख्याएँ सम्मिलित हो जाती हैं।

आपका मन अगर सम्मिलित हो जाये; आपके अतीत का कचरा, आपकी स्मृतियाँ अगर सुनते वक्त हमला बोल दें, तो जो भी आपने सुना वह अशुद्ध हो गया। उस अशुद्ध के आधार पर कोई साधना के जगत में जा नहीं सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं : पाप भी सुनकर जाना जाता है, पुण्य भी सुनकर जाना जाता है।

प्राथमिक चरण में, जहाँ हम अन्धेरे में खड़े हैं, हम उनसे ही सुनेंगे, जो प्रकाश में पहुँचे हैं। पहली आवाज इस अन्धेरे में हमें सुनाई पड़ेगी उनकी, जो कि प्रकाश को उपलब्ध हो गये हैं। उनकी आवाज के सहारे हम भी बाहर जा सकते हैं। लेकिन पहले सुन लेना, बिलकुल ठीक से सुन लेना जरूरी है।

हम अगर रेडिओ भी सुनने बैठते हैं, तो ठीक से ट्यूनिंग करते हैं। दो-तीन स्टेशन एक साथ लगी हो, तो आप नहीं मानेंगे कि आप जो सुन रहे हैं, वह ठीक है। रेडिओ के साथ हम जितनी समझदारी बरतते हैं, उतनी अपने भीतर नहीं बरतते। वहाँ कई स्टेशन एक साथ लगे रहते हैं।

अब मैं बोल रहा हूँ– आपके भीतर कई स्टेशन साथ में बोल रहे हैं। कुछ आपने पढ़ा है, वह बोल रहा है। कुछ और सुना है, वह बोल रहा है। किसी धर्म को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। किसी गुरु को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। और आप तो बोल ही रहे हैं निरन्तर! और आप कोई एक नहीं है, आप पूरी एक भीड़ हैं! आपके भीतर बाजार है– शेयर मार्केट, जो भीतर चल रहा है। वहाँ कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है कि क्या हो रहा है।

महावीर कहते हैं : श्रवण, शुद्ध श्रवण। जब मन बिलकुल शून्य है। सिर्फ सुन रहा है, सोच नहीं रहा है और पूरी तरह आत्मसात कर रहा है, जो कहा जा रहा है ताकि एक दफा पूरा का पूरा भीतर साफ हो जाये– फिर सोच लेंगे; फिर अपनी बुद्धि का पूरा प्रयोग कर लेंगे।

इसलिए महावीर अन्धश्रद्धा के आग्रही नहीं हैं। कोई यह न समझे कि महावीर कहते हैं : जो मैं कहता हूँ, वह मान लो। महावीर कहते हैं : सुन लो। मानने

की जल्दी नहीं है। न मानने की भी जल्दी मत करो। पहले सुन लो ताकि तुम न्याय कर सको। और फिर पीछे सोच लेना।

'सुनकर कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुनकर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनो ही मार्ग सुनकर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।'

अन्तत., आचरण के पहले, साधना में उतरने के पहले निर्णय करे। लेकिन वह निर्णय तभी किया जाये, जब शुद्ध श्रवण घट चुका हो। इसलिए महावीर ने कहा कि चार तीर्थ हैं जिनसे मोक्ष जाया जा सकता है: श्रावक, श्राविका, साध्वी, साधु। चार तीर्थ हैं।

यह बडे मजे की बात है कि महावीर ने कहा कि अगर कोई ठीक से भी सुन ले, तो भी मोक्ष जा सकता है। ठीक सुनना भी एक बड़ी आन्तरिक घटना है। कृष्णमूर्ति बहुत ज़ोर देते हैं . राइट लिसनिंग– ठीक से सुनो। पर उनके सामने लोग बैठे है, जो नोट करते रहते हैं। वे सुनेंगे कैसे! उनकी फिक्र इसमें है कि नोट करने मे कोई चूक न जाये, घर जाकर फिर. . .। जिन्दा आदमी बोल रहा है, वो नोट कर रहे हैं।

एक सज्जन को मैं यहाँ भी देखता हूँ, वे नोट करते रहते है। वे लेखक हैं। वे किताबें लिखते हैं। उनको यहाँ सुनने से मतलब नहीं है। उनको कुछ समझने से भी मतलब नही है। उन्हे यहाँ से कुछ इकट्ठा कर लेना है, जिसको जाकर वे किताब में लिख देंगे। आपको सुनने का एक क्षण मिले, उसको आप गवाँ देते हैं। आप कुछ और कर रहे हैं, जब सुना जा सकता था। और जब सुना नही जा सकेगा, तब आप सोचेंगे। सब विकृत हो जायेगा!

महावीर कहते हैं कि अगर कोई ठीक से सुन ले, श्रावक हो, तो भी सीधा मोक्ष जा सकता है। उनकी आवाज़ ठीक से सुन ले, जो प्रकाश मे उठ गये है– तो उस आवाज़ की दिशा को पकड़ कर. . .।

ध्यान रखें, यह बड़ा फर्क है। क्या कहा गया है, वह उतना मूल्यवान नही है। किस दिशा से आवाज़ आयी है, उस दिशा को पकड़कर श्रावक भी मुक्त हो सकता है।

आप अन्धेरे मे खड़े हैं और एक आवाज आती है। आवाज़ में क्या कहा गया है, वो उतना सवाल नही है– आवाज किस दिशा से आती है, अगर उस दिशा को आप पकड़ लें, तो थोड़ी ही देर में अन्धेर के बाहर हो जायेंगे।

महावीर और बुद्ध या कृष्ण के वचन अर्थों से नही समझे जाते, दिशाओं के

बोध . . . । जब महावीर बोलते हैं, तो किस दिशा से बोलते हैं ? कहाँ से, किस महा-शून्य से वह आवाज आती है ? उस दिशा को आप पकड़ लें, आप महाशून्य के पथ पर चल पड़ें । और फिर, फिर आप सोचें, आचरण करें, निर्णय करें— क्या श्रेय है, क्या अश्रेय है ।

जो नासमझ है, वे जल्दी निर्णय कर लेते हैं । जो समझदार हैं. वे प्रतीक्षा करते हैं; आत्मसात हो जाने देते हैं; खून-हड्डी में मिल जाने देते हैं उस आवाज को । ताकि दिशा का बोध होने लगे । और दिशा का बोध असली बात है ।

महावीर मूल्यवान नहीं है, किस दिशा से महावीर की आवाज आ रही है, वह मूल्यवान है । अगर वह दिशा आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाये, तो आप समझेंगे कि यह दिशा वही है, जहाँ से क्राइस्ट की आवाज आती है, कृष्ण की आती है, मुहम्मद की आती है । लेकिन अगर आप शब्दों को पकड़ें, तो शब्द अलग हैं । क्योंकि मुहम्मद अरबी बोलते हैं; महावीर प्राकृत बोलते हैं, कृष्ण संस्कृत बोलते हैं, जीसस हिब्रू बोलते हैं । वे आवाज़ें बड़ी अलग-अलग हैं ।

पण्डित आवाजों से उलझ जाते हैं । श्रावक दिशा के बोध से भर जाता है और उस दिशा में सरकने लगता है । अगर आप ठीक सुनें तो आपके भीतर रेडार पैदा हो जाता है । उस रेडार में पकड़ आने लगती है, कौन-सी दिशा ।

महावीर मूल्यवान नहीं हैं। कहाँ से आती है यह आवाज; कौन बोलता है महावीर के भीतर से, कौन-सा महाशून्य, कौन-सा महासत्य— उस तरफ आप हटने शुरू हो जाते हैं एक-एक कदम । जल्दी ही आप पायेंगे, अन्धेरे के बाहर आ गये हैं, महाप्रकाश आपको चारों ओर से घेरे हुए है ।

मोक्षमार्ग-सूत्र : २

तृतीय पर्यूषण व्याख्यानमाला; बम्बई; ९ सितंबर, १९७३

जो जीवे वि न जाणेइ,
अजीवे वि न जाणइ ।
जीवा जीवे अयाणंतो,
कहं सो नाहिइ संजमं ? ।।

जो जीवे वि वियाणाइ,
अजीवे वि वियाणइ ।
जीवा जीवे वियाणंतो,
सो हु नाहिइ संजमं ।।

जया गइ बहुविहं,
सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पाव च
बध मोक्खं च जाणइ ।।

जया पुण्णं च पावं च
बंधं मोक्खं च जाणइ ।
तया निव्विंदए मोए
जे दिव्वे जे य माणुसे ।।

जो न तो जीव अर्थात् चेतनतत्त्व को जानता है, और न अजीव अर्थात् जड़तत्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जाननेवाला साधक, भला किस तरह सयम को जान सकेगा?

जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भलीभाँति जाननेवाला साधक ही संयम को जान सकेगा ।

जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है ।

जब (साधक) पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य संम्बन्धी काम-भोगों की व्यर्थता जान लेता है – अर्थात् उनसे विरक्त हो जाता है ।

आत्मा का शरीर के पीछे छाया की तरह चलना असंयम है । आत्मा का प्रवाह शरीर की तरफ जाने से रुक जाये, ठहर जाये, आत्मा में ही फिर लीन हो जाये; और आत्मा गुलाम न रहे, मालिक हो जाये– उस अवस्था का नाम संयम है ।

इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि महावीर की पूरी साधना-पद्धति संयम की ही पद्धति है । संयम का अर्थ शरीर को दबा रखना नही है; क्योकि जिसे हम दबाते हैं, उससे हम दब भी जाते हैं ।

अगर किसी व्यक्ति की छाती पर आप बैठ जायें उसे दबाकर, तो आप छाती पर बैठे हैं, यह सच है, और वह नीचे आपके दबा है, यह भी सच है– लेकिन आप वहाँ से हट भी नहीं सकते । क्योकि आपके हटते ही वह व्यक्ति मुक्त हो जायेगा । तो जहाँ वह पडा है, वही आप भी पडे रहेगे । उसे दबाये रखने का अर्थ होगा कि आप भी उससे रत्ती भर आगे नही जा सकते ।

इसलिए जो व्यक्ति शरीर को दबा लेते है, वे शरीर के मालिक तो नही होते, मालकियत के वहम में होते हैं । और जहाँ शरीर को दबाये रखते है, वही उनकी आत्मा भी रुकी रह जाती है; अटकी रह जाती है । इसलिए तथाकथित साधु शरीर से बधा हुआ होता है उसी तरह, जैसा तथाकथित गृहस्थ बधा होता है ।

घर से बधे हुए आदमी का नाम गृहस्थ है । घर है आपका शरीर, जहाँ चेतना आवास कर रही है। फिर इस शरीर की मालकियत भोग के लिए हो आपके ऊपर या योग के लिए हो आपके ऊपर– दोनो ही स्थितियो का नाम असंयम है ।

संयम का अर्थ है मेरे भीतर ऐसे साफ हो जाये मेरी चेतना; शरीर साफ हो जाये, दोनों के बीच कोई सेतु न रह जाये, कोई सम्बन्ध न रह जाये–न भोग का और न योग का । इसलिए महावीर 'योग' शब्द का उपयोग नही करते हैं । बल्कि बड़ी हैरानी होगी आपको जानकर कि महावीर योग शब्द का अर्थ मनुष्य का परमात्मा से जुड़ जाना, ऐसा नही करते, जैसा पतजलि करते हैं ।

महावीर कहते हैं, योग का अर्थ है, ससार और मनुष्य का शरीर से जुड़ जाना। इसलिए महावीर ने परम स्थिति को 'अयोगी' कहा है– जहाँ सम्बन्ध टूट जाता है । योग का अर्थ है जोड़ । तो जब तक शरीर और आत्मा जुडे है,तब तक योग की अवस्था है । जिस दिन शरीर और आत्मा का सम्बन्ध छूट जाता है, टूट जाता है सेतु बीच से उस दिन 'अयोग !'

इसलिए महावीर ने अयोग को परम अवस्था कहा है, जहाँ कोई सम्बन्ध नही रह जाते, सब जोड़ टूट जाते हैं।

इस अयोग को साधने के लिए दमन, दबाना मार्ग नही हो सकता। इस संयम को साधने का मार्ग बोध होगा, ज्ञान होगा--महावीर ने कहा : विवेक होगा---इस बात का ठीक-ठीक बोध कि शरीर अलग है और मैं अलग हूँ।

जिस व्यक्ति को यह बोध हो जाता है, वह न तो शरीर को भोगता है और न शरीर को दबाता है। वह शरीर से कोई सम्बन्ध ही स्थापित नही करता। अगर वह, भोजन भी करता है, तो शरीर ही भोजन करता है-- वह भीतर देखता ही रहता है। अगर वह बीमार पड़ता है, तो शरीर ही बीमार पड़ता है-- वह भीतर देखता ही रहता है। वह हर हालत में अयोग में ठहरा रहता है। वह भीतर साक्षी बना रहता है। शरीर जिये कि मरे, कि भूखा हो कि पेट भरा हो, कि शरीर को सुविधा हो कि असुविधा हो-- सभी कुछ शरीर को हो रहा है। इस ससार में जो भी हो रहा है, वह शरीर के साथ हो रहा है, मेरे साथ नहीं हो रहा है।

मेरे और शरीर के बीच फासला, स्पेस पैदा हो जाये-- उस फासले का नाम संयम है। न तो भोगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से भोगता है। और जिस माध्यम से हम भोगते हैं, उससे हम जुड जाते है। और न तथाकथित योगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से लडता है। और जिससे हम लड़ते है, उससे भी जुड़ जाते है।

मित्र से भी सम्बन्ध हो जाते हैं, शत्रु से भी। शत्रुता सम्बन्ध का एक नाम है। जैसे मित्रता एक सम्बन्ध है, वैसे शत्रुता एक सम्बन्ध है। तो जो शरीर से मित्र-भाव रखे हुए है, भोग रहे है, वे भी बंधे है; जो शरीर से शत्रु-भाव रखते है, वे भी उतने ही बंधे है। एक का बन्धन प्रेम का है, एक का बन्धन घृणा का है-- लेकिन बन्धन मौजूद है।

महावीर संयम तब कहते हैं, जब कोई बन्धन न रहे-- न मित्रता के, न शत्रुता के। न शरीर में कोई रस है, न शरीर से कोई विरसता है। न शरीर से कोई राग है, न कोई विराग है। शरीर अलग है, मैं अलग हूँ-- ऐसी स्पष्ट प्रतीति का नाम संयम है।

शरीर में हम जन्मों-जन्मों से रह रहे हैं, लेकिन हमें इस बात का पता नही कि शरीर मे हम रह रहे हैं। शरीर के साथ हमारा तादात्म्य, आइडेन्टिटि हो गयी है; हम जुड़ गये हैं। ऐसा लगने लगा है, मैं शरीर हूँ। यन्त्र के साथ चैतन्य जुड़ गया और एक हो गया है!

महावीर कहते है, यह योग ही संसार है। इस योग के पार हो जाना ही मुक्ति

है, विमुक्ति है; परम आनन्द और परम सत्य की प्रतीति है। शरीर में हम कितना ही जिये हों, इससे कुछ भी न होगा। बच्चे तो बंधे ही होते हैं– उनका बधा होना स्वाभाविक है– बूढ़े भी बंधे होते हैं ! भोगी तो बंधे होते हैं– उनका बंधा होना स्वाभाविक है– जिनको हम योगी मानते है, वे भी बंधे होते हैं !

भोग का एक तरह का असयम है, योग का दूसरी तरह का असंयम है। संयमी वह है, जिसने असंयम की सम्भावना ही तोड़ दी। सम्भावना है शरीर से जुड़े होना। सम्भावना है शरीर और अपने को एक मान लेना। यह एकता जितनी गहरी हो जाये, उतना असंयम होगा। यह एकता जितनी कम हो जाये, उतना संयम होगा। और जिस दिन यह एकता बिलकुल टूट जाये और साफ हो जाये– जैसा कि पुरानी कथाएँ कहती है कि हस जैसे पानी और दूध को अलग-अलग कर लेता है– जिस दिन हमारा विवेक शरीर और चेतना को अलग-अलग कर ले हस की तरह, उस दिन सयम की अंतिम सीढ़ी उपलब्ध होती है; मंजिल उपलब्ध होती है।

इसलिए ज्ञानियों ने आत्मा को हस भी कहा है; विवेक को, चेतना को हस भी कहा है; और जो व्यक्ति इस स्थिति को पैदा हो जाता है, उसे परमहंस कहा है। परमहंस का अर्थ है कि जिसने अपने भीतर हंस की तरह दूध और पानी को अलग-अलग कर लिया।

हंस करता है या नही, पता नही – कविता की बात है ! लेकिन आदमी कर सकता है। और दूध और पानी चाहे अलग न भी किये जा सके– क्योंकि दूध और पानी दोनो ही एक तल के पदार्थ है– शरीर और चेतना अलग किये जा सकते है, क्योंकि अलग है ही। दोनों का आयाम अलग। दोनों का ढग अलग। दोनों का होना अलग। दोनों का मिलना ही चमत्कार है, दोनो का अलग होना तो बड़ा सरल है। आपने बड़ी मेहनत की है दोनो को एक कर लेने की, तब भी एक नही हो गये है। सिर्फ भ्रान्ति है एक हो जाने की। सिर्फ ख्याल है एक हो जाने का। इसलिए महावीर कहते है, बन्धन सिर्फ मन के है, भाव के है– प्रॅजॅक्शन हैं। वस्तुतः कोई बन्धन नही है।

लेकिन आदमी बूढ़ा हो जाये, जीवन के सब दुख-सुख भोग लें, तो भी शरीर की वासना खीचती ही चली जाती है। अक्सर तो ऐसा होता है कि बूढा होते-होते आदमी और भी कामवासना से भर जाता है।

इसलिए कोई उम्र से ही कभी मुक्त नही होता; और न उम्र से कोई कभी ज्ञानी होता है; और न उम्र से कभी कोई अनुभवी होता है। उम्र से तो कोई भी कितना ही बूढ़ा हो जाये, लेकिन जीवन की प्रौढ़ता उम्र से नही आती। और कितना ही आपको अनुभव हो जाये जीवन का, अनुभव अकेला आपको कहीं भी नहीं ले जाता– हो सकता

है और गर्त में ले जाये; क्योंकि जितना हमें अनुभव होता जाता है, उतनी ही हमारी आदत भी मजबूत होती जाती है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन का जवान लड़का है। बीस वर्ष उसकी उम्र है, लेकिन थोड़ा शर्मीला है। न तो ज्यादा बोलता है, न ज्यादा लोगों से मिलता-जुलता है। और उसकी उम्र में जो स्वाभाविक है कि लड़कियों के पीछे घूमे, वह भी नहीं करता है– बन्द अपनी किताबों में, द्वार बन्द किये रहता है।

लेकिन एक दिन सांझ वह अपने कपड़े पहनकर, ठीक सज-धज के नीचे उतरा सीढ़ियों से और उसने बूढे नसरुद्दीन से कहा कि पिता जी, अब बहुत हो चुका ! और अब मैं वही करूँगा, जो मेरी उम्र में सभी लोग कर रहे हैं। और मैं शहर की तरफ जा रहा हूँ सुन्दर लड़कियों की तलाश मे। और आज मैं खूब डटकर भी पियूगा ताकि मेरा यह सारा सकोच और यह मेरी सारी जड़ता टूट जाये। और आज तो अभियान और दुस्साहस की रात है। आज जो भी हो सकता है, वह मैं करूँगा। जो भी मेरी उम्र के लोग कर रहे हैं, वह मैं करूँगा। और ध्यान रहे, डोन्ट ट्राइ ऐन्ड स्टॉप मी– कोशिश मत करना मुझे रोकने की !

नसरुद्दीन उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, ट्राइ ऐन्ड स्टॉप यू, होल्ड ऑन माइ ब्वाइ, आइ ऐम कमिंग विद यू–दृढ़ रहना अपने ख्याल पर, मैं तेरे साथ आ रहा हूँ। रोकने का कोई सवाल ही कहाँ। है !

बाप भी बेटों से बहुत भिन्न नहीं है ! बूढा होकर भी आदमी वहीं भटकता रहता है, जहाँ जवान भटकता है। जवान का भटकना क्षम्य है, बूढे का भटकना बिलकुल अक्षम्य हो जाता है।

लेकिन कोई सिर्फ बूढा होकर मुक्त नहीं हो पाता वासना से। कोई हो भी नहीं सकता। वासना से तो केवल वे ही मुक्त होते हैं, जो विवेक में गति करते हैं। उम्र की गति से वासना से मुक्त होने का कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीर बूढा हो जाये, वासना कभी बूढी नहीं होती– मरते दम तक पकड़े रखती है। वासना तो बूढ़ी होती है तभी, जब विवेक जगता है। विवेक वासना की मौत है !

इसलिए बूढा आदमी वासना को पूरा करने में अक्षम हो जाता है, लेकिन वासना मन को घेरे रखती है–घेरे रखती है; घूमती रहती है। और जवान की वासना में तो एक सौन्दर्य भी होता है, बूढे की वासना बड़ी कुरूप हो जाती है और गन्दी हो जाती है। हो ही जायेगी, क्योंकि शरीर अब साथ अपने आप छोड़ रहा है। शरीर अपने आप आत्मा से अलग हो रहा है। लेकिन वासना के कारण बूढ़ा आदमी अपने शरीर को अभी भी जकड़े हुए है। मृत्यु करीब आ रही है, और शरीर आत्मा से टूट जायेगा।

अगर जीवन ठीक से विकसित हो तो मृत्यु का क्षण मोक्ष का क्षण भी बन सकता है। अगर उम्र ही न बढ़े और शरीर ही न पके— बोध भी पके, विवेक भी पके और भीतर समझ भी बढ़ती चली जाये, और साक्षी-भाव भी गहन होता चला जाये जीवन के अनुभव कोरे अनुभव न रहे, उनके पीछे विवेक का जागरण भी निर्मित होता चला जाये, तो मृत्यु के पहले ही व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

और जब कोई व्यक्ति मृत्यु के पहले जान लेता है कि मैं शरीर से पृथक हूँ, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे पुराने वस्त्र बदले जा रहे हों। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे ऊपर का कचरा झड़ रहा हो और भीतर का सोना निखर रहा हो। तब मृत्यु एक मित्र है एक अग्नि की भाँति, जो जलायेगी कचरे को और बचायेगी मुझे।

और जो व्यक्ति जीवन में वासना से इतना भरा है कि विवेक को जगने का मौका नहीं दिया; और जो हर क्षण हर तरह से शरीर के साथ अन्धा होकर चलने को राजी है, वह मरते वक्त बहुत पछतायेगा; बहुत पीड़ित होगा। क्योंकि जब मृत्यु छीनने लगेगी शरीर को, तब उसकी पीड़ा का अन्त नहीं रहेगा। क्योंकि उसने अपने को शरीर ही जाना है।

मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है, हमारे अज्ञान में दुख है। क्योंकि हम शरीर से अपने को जोड़े हुए हैं। और जब शरीर मिटने लगता है, तब हम चीखते-चिल्लाते हैं कि मैं मरा।

मैं कभी भी नहीं मरता हूँ! मेरे मरने का कोई उपाय नहीं है! लेकिन जिससे मैं अपने को एक समझ रखा है, जब वह टूटता है, मिटता है, तो लगता है; मैं मर रहा हूँ। मृत्यु केवल उनके लिए दुख है, जो विवेकशून्य हैं। जो विवेकपूर्ण हैं, उनके लिए मृत्यु भी एक आनन्द है।

महावीर के ये सूत्र . 'संयम क्या है'—उसकी व्याख्या में है। एक-एक सूत्र को समझने की कोशिश करें।

'जो न तो जीव अर्थात् चेतनतत्त्व को जानता है, और न अजीव अर्थात् जड़तत्त्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जाननेवाला साधक, भला किस तरह संयम को जान सकेगा?'

'जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भलीभांति जाननेवाला साधक ही संयम को जान सकेगा।'

मनुष्य दोहरा अस्तित्व है। एक है परिधि— जहाँ शरीर है, पदार्थ है, मिट्टी का जोड़ है, और एक है भीतर का बोध, चैतन्य, प्रकाश— जो पदार्थ नहीं है, जो

परमात्मा है। मनुष्य इस दो का जोड़ है। और जब तक साफ न हो जाये कि शरीर कहाँ समाप्त होता है और कहाँ मैं शुरू होता हूँ; और यह बात प्रतीत न हो जाये कि शरीर पृथक है और मैं पृथक हूँ, तब तक, महावीर कहते हैं, संयम असम्भव है।

जो जीव को और अजीव को अलग-अलग नहीं जानता; क्या मेरे भीतर सिर्फ पदार्थ है और क्या मेरे भीतर चैतन्य है, इसकी जिसे प्रतीति नहीं; जिसने भीतर प्रकाश को जलाकर यह नहीं देख लिया कि मैं दो हूँ; और जिसे साफ नहीं हो गया है कि परिधि मेरी नहीं है, परिधि संसार से मुझे मिली है, और मैं सिर्फ भीतर बसा हुआ अतिथि हूँ, मेहमान हूँ, और यह घर सदा रहने वाला नहीं है, बहुत बार इस घर में मैं रहा हूँ, बहुत-से घर मुझे मिले हैं और छूट गये हैं. . .!

रोशनी चाहिए भीतर। उस रोशनी में ही यह भेद, यह भिन्नता स्पष्ट हो सकती है। हम अन्धेरे में चल रहे हैं, जहाँ कुछ भी रेखाएँ नहीं दिखाई पड़ती। अन्धेरे का मतलब ही होता है, जहाँ भेद दिखाई न पड़े।

इस कमरे में अन्धेरा छा जाये, तो उसका क्या अर्थ है? उसका इतना ही अर्थ है कि मैं देख न पाऊँगा कि कौन कौन है, क्या क्या है। कहाँ कुर्सी समाप्त होती है, कहाँ आप शुरू होते हैं। कहाँ आप समाप्त होते हैं, कहाँ आपका पड़ोसी शुरू होता है।

अन्धेरे का मतलब है, जहाँ भेद खो जायेंगे और जहाँ सीमाएँ दिखाई न पड़ेंगी। अन्धेरा सारी सीमाओं को तोड देता है और अपने में लीन कर लेता है।

प्रकाश का क्या अर्थ है? प्रकाश का अर्थ है, जहाँ सीमाएँ फिर उभर आयेंगी। कुर्सी कुर्सी होगी, बैठनेवाला बैठनेवाला होगा। घर घर होगा, मेहमान मेहमान होगा। घर के भीतर ठहरने वाला अलग होगा, घर की दीवालें अलग होंगी। प्रकाश चीजों को प्रगट कर देता है – उनकी सीमाएँ, उनके लक्षण, उनके भेद। अन्धेरा सब सीमाओं को तोड़ देता है।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन युवा था; और एक रात बड़ा सज-धज कर तैयार था और अपनी लालटेन साफ कर रहा था। तो उसके पिता ने पूछा कि नसरुद्दीन, लालटेन क्यों साफ कर रहा है? क्या इरादे हैं? उसने कहा कि मैं जरा जा रहा हूँ अभिसार को। पत्नी की तलाश आखिर मुझे भी करनी होगी! तो मैं जरा पत्नी की तलाश पर जा रहा हूँ।

उसके पिता ने कहा कि पत्नी की तलाश हमने भी की थी, बाकी लालटेन लेकर हम कभी न गये! यह लालटेन किसलिए ले जा रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा कि देखें, दैट काउन्ट्स फौर इट; लुक ऐट यॉर वुमॅन

माइ मदर ! अन्धेरे में ढूंढोगे तो ऐसा ही पाओगे । यह भूल मैं नही करनेवाला हूँ । मैं ठीक प्रकाश में चीजें खोजना चाहता हूँ !

भीतर भी हम अन्धेरे में ही खोज रहे है । और अगर हमें वहाँ कुछ भी नही दिखाई पड़ता . . . ।

कभी आपने आँख बन्द करके भीतर देखा है ? सिवा अन्धेरे के कुछ भी नही दिखाई पड़ता ।

लोग मेरे पास आते हैं । वे कहते हैं कि आप कहते हैं, भीतर देखो । लेकिन भीतर देखें कैसे ? आँख बन्द करते है, वहाँ अन्धेरा है । वहां कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता । देखना क्या है ?

रोशनी बाहर है, अन्धेरा भीतर है । बाहर सब दिखाई पड़ता है, भीतर कुछ दिखाई नही पड़ता । और बाहर हमने रोशनी को बढाने के बड़े उपाय कर लिये हैं । कभी आदमी गहन अन्धकार में था, गुहाओं में था । फिर आग खोजी तो गुहाओं का अन्धरा मिट गया । फिर विकास होता चला गया । फिर आज बिजली है और रातें रातों-जैसी नही रह गयी है, दिन से भी ज्यादा प्रकाशवान हो गयी हैं ।

बाहर हमने प्रकाश की बडी खोज कर ली है । बाहर भी ऐसा ही अन्धेरा था। पर हमने वहाँ रात मिटा दी । भीतर हम प्रकाश की कोई खोज नही करते हैं, अन्यथा वहाँ भी प्रकाश की सम्भावना है । जहाँ-जहाँ अन्धेरा है, वहाँ-वहाँ प्रकाश हो सकता है । अन्धेरे का मतलब ही यह है कि जहाँ प्रकाश हो सकता है, इसकी सम्भावना है ।

सारी साधना-पद्धतियाँ भीतर की अग्नि खोजने का प्रयास है । भीतर रोशनी कैसे जले । भीतर कैसे थोड़ा-सा प्रकाश और थोड़ी-सी किरणें पैदा हो जायें ताकि वहाँ भी चीजें साफ हो सके कि क्या क्या है ।

अभी तो हम आँख बन्द करके बैठ जाते है तो कुछ दिखाई नही पड़ता । और अगर कुछ दिखाई भी पड़ता है तो वह बाहर का ही होता है— कोई मित्र की तस्वीर, कोई याददाश्त, कोई घटना, बाजार, दुकान । आँख भी बन्द करते हैं तो आँख बन्द होती नही, चित्त तो बाहर की तरफ ही खुला रहता है ।

बन्द आँख में भी तस्वीरें बाहर की ही चलती हैं—तो हम भीतर नही हैं । और इसका इतना अभ्यास हो गया है कि हम यह बात ही भूल गये हैं कि भीतर भी ऐसा कोई क्षण हो सकता है, जब बाहर की कोई तस्वीर न चलती हो; जब बाहर का कोई प्रतिबिम्ब न बनता हो; जब बाहर से हमारा सम्बन्ध ही छूट जाता हो और हम निपट भीतर होते हो ।

शुरुआत में अन्धेरा अनुभव होगा। क्योंकि बाहर की रोशनी ने आँखों को बाहर की रोशनी का आदी कर दिया है।

और ध्यान रहे, बाहर की रोशनी को भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। आप दिये को भीतर नहीं ले जा सकते; न बिजली को भीतर ले जा सकते हैं। बाहर की कोई रोशनी भीतर काम न देगी, क्योंकि भीतर के अन्धेरे का गुण-धर्म अलग है। बाहर का अन्धेरा और तरह का अन्धेरा है, और बाहर के अन्धेरे को मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। भीतर का अन्धेरा और तरह का अन्धेरा है– उसे मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। उस प्रकाश का गुण-धर्म अलग होगा।

इसलिए बाहर का प्रकाश तो भीतर लाया नहीं जा सकता, एक बात। और बाहर के प्रकाश के कारण भीतर हमें गहन अन्धेरा मालूम पड़ता है, क्योंकि प्रकाश की हमें आदत हो गयी है।

कभी आप एक अन्धेरे रास्ते से जा रहे हैं और अचानक एक कार निकल जाये तीव्र प्रकाश के साथ, तो कार के निकल जाने के बाद रास्ता और भी अन्धेरा हो जायेगा – जितना कार के निकलने के पहले भी नहीं था। वह तीव्र रोशनी आपकी आँखों को भटका जायेगी। और उस तीव्र रोशनी की तुलना में बाद मे अन्धेरा बहुत भयंकर मालूम होगा।

ध्यान रहे, आदिम मनुष्य को भीतर इतना है अन्धेरा नहीं मालूम होता था, जितना आधुनिक मनुष्य को मालूम होता है। बाहर काफी रोशनी है। आदिम मनुष्य के लिए बाहर भी अन्धेरा ही था, या बहुत कम रोशनी थी। भीतर इतना अन्धेरा नहीं मालूम होता था। जितना मनुष्य की सभ्यता बाहर के जगत में विकसित होती चली जाती है, उतना ही भीतर का अन्धेरा घना मालूम होता है। वह घना हो नहीं रहा है, तुलना में घना मालूम होता है। क्योंकि हमारे सभी अनुभव सापेक्ष हैं।

तो जिस व्यक्ति को भीतर के प्रकाश की खोज करनी है, उसे दो काम करने होंगे। पहला तो, उसे भीतर के अन्धेरे के प्रति आंखो को राजी करना होगा, ऐडजॅस्ट करना होगा।

चोर अन्धेरे मे ज्यादा देख पाता है आपकी बजाय– अन्धेरे का अभ्यास करता है। और आप भी जब कमरे में आते हैं – अन्धेरे कमरे मे बाहर से – तो बिलकुल अन्धेरा मालूम पड़ता है। थोड़ी देर बैठें, कुछ न करें– कुछ करने की जरूरत नहीं, सिर्फ बैठें और आँखों को ऐडजॅस्ट होने दें, समायोजित होने दें– थोड़ी ही देर में अन्धेरा कम मालूम होने लगेगा, थोड़ी ही देर में थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जायगा।

अगर आप यह अभ्यास रोज करते चले जायें,जो कि चोर को करना पड़ता है, तो आपको इतना अन्धेरा मालूम नहीं होगा कि आप किसी चीज से टकरायें। आप बिलकुल अन्धेरे कमरे में भी बिना टकराये चल सकेंगे, उठ सकेगें, काम कर सकेंगे। थोड़े-से आँख के अभ्यास की जरूरत है ताकि आँख अन्धेरे मे देखने लगे।

ध्यान रहे, अन्धेरा उतना ही मालूम होता है, जितना हमारा अभ्यास कम है। तो जिन्हे भीतर की रोशनी खोजनी हो उन्हे भीतर के अन्धेरे के लिए थोड़े दिन राजी होना पड़ेगा। जल्दी नही करनी है, आँख बन्द करके ही बैठा रहना चाहिए।

जापान मे झेन फकीर और झेन गुरु अपने शिष्यो को कहते हैं कि तुम कुछ मत करो– क्लोज द आइज ऐंड जस्ट सिट। मन्त्र भी मत पढ़ो,किसी भगवान का स्मरण भी मत करो। किसी मूर्ति, प्रतिमा के आसपास भी मन को मत घुमाओ। क्योंकि यह भी सब बाहर की ही रोशनियाँ हैं। तुम सिर्फ आँख बन्द करो और बैठो। छे महीने, साल भर झन गुरु के पास जो साधक होता है, उसको एक ही साधना करनी होती है कि वह दिन मे घण्टो बैठा रहे– कुछ न करे।

पहले करने का बहुत मन होता है, क्योकि बिना किये आपको लगता है, जिन्दगी बेकार जा रही है। हालांकि जिन्दगी बेकार जा रही है करने मे। न करने से किसी की जिन्दगी बेकार क्या जायेगी ! जिन्दगी बेकार जा ही रही है– कुछ भी करो ! लेकिन ऑक्युपाइड, व्यस्त रहने से ऐसा लगता है, कुछ हो रहा है, वहम बना रहता है कि कुछ हो रहा है, कुछ कर रहे हैं। खाली बैठने में बेचैनी लगती है।

खाली बैठना साधक की पहली क्षमता है – कि वह बिना कुछ किये बैठा है। मन कई बार कहेगा, कुछ करो; क्या बैठे हो ! और मन समझायेगा कि खाली अगर बैठे रहे तो शैतान का कारखाना हो जाओगे।

खाली बैठे लोगो ने आज तक कोई शैतानी नही की, ध्यान रखना। जो काफी कर्मठ हैं, जिनको हम कर्मयोगी कहते हैं– सब उपद्रव उनके कारण हैं। वे खाली नही बैठ सकते, उन्हें कुछ न कुछ करना है। कुछ भी हो, उन्हें कुछ करके दिखाना है। कोई कारण नही है, क्योंकि करके देखनेवाला कोई नही है, न कोई प्रयोजन है। न इस जमीन पर कही रेखा छूट जाती है करने वालो की।

लेकिन बड़ा उपद्रव है। जब तक होते हैं, बड़ा उपद्रव मचा लेते हैं। राजनीतिज्ञ हैं, समाज-सुधारक हैं, क्रान्तिकारी हैं – बस, करने में भिड़े हैं। उनका सारा जोर करने पर है।

झेन गुरु कहते हैं कि तुम कुछ करो मत,साल भर तो न करने की हिम्मत जुटाओ, सिर्फ बैठे रहो। तो झेन साधक छ-छ घण्टे दिन में बैठा रहेगा आँख बन्द किये।

न हिलेगा-न-डुलेगा; क्योंकि उतने में भी मन बाहर जा सकता है। पहले तो बड़ी बेचैनी होगी, सारी ताकत लगायेगा मन कि लगो, कुछ करो। कुछ नही तो कम से कम सोचो। कोई दिवा स्वप्न देखो। कोई योजना करो, कुछ कामना करो— भीतर कुछ तो करो।

लेकिन अगर आप बैठे ही रहे और कुछ न किया, और अगर न करने का साहस दिखा सके, तो थोड़े ही दिन में आप पायेंगे कि भीतर का अन्धेरा कम होने लगा। भीतर कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगा। धूमिल रेखाएँ प्रगट होने लगी।

छ महीने और साल भर का वक्त लग जाता है, जब आदमी को पहली दफा भीतर धूमिल रेखाएँ प्रगट होती है। और जैसे ही यह धूमिल रेखाएँ प्रगट होती है, अहोभाव पैदा होता है, एक आनन्दभाव पैदा होता है कि मै तो बिलकुल अलग हूँ, यह शरीर तो बिलकुल अलग है।

और ध्यान रहे, शास्त्र पढने से यह पता नही चलेगा। बहुत लोग यह कर रहे हैं कि शास्त्र पढ रहे हैं कि आत्मा भिन्न है शरीर भिन्न है मैं आत्मा हूँ; मैं शरीर नही हूँ, इसको शास्त्र में पढ़ रहे हैं। और रोज सुबह बैठकर इसको दोहरा रहे हैं कि मै शरीर नहीं हूँ, मै आत्मा हूँ।

दोहराने का मतलब नही है। दोहराने से कुछ भी न होगा। दोहराने से प्रकाश पैदा नही होता। दोहराने से तो केवल इतनी ही खबर लगती है कि अभी तुम्हे पता नही चला; अभी तुम किसी और की उधार बात दोहरा रहे हो। और तुम दोहरा-दोहराकर इस भ्रम में भी पड़ सकते हो कि तुम्हे ऐसा लगने लगे कि शरीर और आत्मा अलग है। लेकिन यह तुम्हारे प्रकाश का भीतरी अनुभव नही है। इसका कोई मूल्य नहीं है। यह दो कौड़ी का है। तुम जीवन खराब किये।

किसी की मानने की जरूरत नही है। यह तो स्वय अनुभव हो सकता है। लेकिन भीतर के अंधेरे के साथ आँखो का समायोजन करना होगा। और जन्मों-जन्मो से हमारा समायोजन हो गया है बाहर की रोशनी के साथ इसे तोड़ना प्रतीक्षा और धैर्य की बात है।

तो महावीर कहते है : जो न तो जानता कि चेतन क्या है, जो न जानता कि जड़ क्या है, जो जीव-अजीव को नही पहचानता, वह साधक भला किस तरह सयम साधेगा?

लेकिन कितने लोग सयम साध रहे है, जिन्हें कुछ भी पता नही है कि जीव क्या है, अजीव क्या है। जब मैं कहता हूँ, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है तो मेरा मतलब यह नहीं है कि उन्होने शास्त्र से नही सुना है। शास्त्र में लिखा है कि जीव और अजीव भिन्न-भिन्न है। लेकिन शास्त्र से कोई आपका ज्ञान नही निर्मित होता। शास्त्र

मे तो सिर्फ आपका अज्ञान ढकता है – रहते तो आप अज्ञानी हैं; शास्त्र के वचनों में छिप जाते हैं और भ्रान्ति पैदा होती है कि जान लिया।

अज्ञान उतना खतरनाक नहीं है, जितना थोथा ज्ञान खतरनाक है। शास्त्र जितने लोगों को डुबाते हैं, उतनी और कोई चीज किसी को नहीं डुबाती। कई लोग कागज की नाव में बैठकर सागर में उतर जाते हैं।

शास्त्र की नाव कागज की नाव है। उससे तो बेहतर है कि बिना नाव के उतर जाना। क्योंकि नाव का भरोसा न हो तो कम से कम अपने हाथ-पैर चलाने की कुछ कोशिश होगी। और जो बिना नाव के उतरेगा, वह तैरना सीखकर उतरेगा। जो नाव में बैठकर उतर जायेगा– और कागज की नाव में– वह इस भरोसे में उतरेगा कि मुझे क्या करना है, नाव पार कर देगी। वह डूबेगा!

लेकिन कागज की नाव में बैठने को कोई राजी न होगा, शास्त्र की नाव में बैठने को करीब-करीब पूरी पृथ्वी राजी हो गयी है। कोई बाइबिल की नाव में बैठा है, कोई गीता की नाव मे बैठा है, कोई कुरान की नाव में बैठा है; कोई महावीर के वचनों की नाव मे, कोई बुद्ध के वचनो की नाव में।

लेकिन नाव लोगों ने कागज की बना ली है। इसलिए लोग डूब रहे और जगह-जगह दुर्घटनाएं हैं। और धर्म के नाम पर इतना शोरगुल चलता है, लेकिन धर्म का कोई प्रकाश जीवन मे कही भी दिखाई नहीं पड़ता। तो धर्म एक उत्सव हो गया है– कभी-कभी मना लेने की बात; कभी-कभी शोरगुल मचा लेने की बात है कि हम आत्मवादी लोग हैं, कि हम पदार्थ को ही सब कुछ नही मानते, हम आत्मा को भी मानते है। लेकिन मानने से कुछ भी होने वाला नहीं है, जानना जरूरी है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जिसे अभी ये ही पता नहीं है कि आत्मा क्या है और शरीर क्या है, वह संयम नहीं साध सकेगा। लेकिन आप साधुओं से जाकर पूछें। दूसरे साधुओ को छोड़ दें, महावीर के ही साधुओं से जाकर पूछें कि तुम्हे अनुभव हुआ है भीतर कि शरीर कहाँ खत्म होता है और आत्मा कहाँ शुरू होती है? कहाँ सीमान्त है? कहाँ दोनों मिलते है? और कहाँ दोनों मे फासला है? और अगर अनुभव नहीं हुआ है, तो तुम जो संयम साध रहे हो– महावीर तो कहते हैं, ऐसा साधक संयम साधेगा ही कैसे!

लेकिन साधु संयम साध रहे हैं। संयम में उनके कोई कमी नही है। क्या भोजन करना, कितना करना, कब सोना, कब उठना, कितनी सामायिक करनी, कितना ध्यान करना– सब कर रहे हैं; कितना प्रतिक्रमण– सब नियम से चल रहा है, यन्त्रवत। उसमें कही कोई भूल-चूक नही। संयम पूरा चल रहा है।

लेकिन उनका संयम संयम नही है– हो नहीं सकता । क्योंकि महावीर की पहली शर्त ही पूरी नही हो पा रही है ।

लेकिन उनकी कोशिश यह है कि संयम के द्वारा वे जान लेंगे कि शरीर और आत्मा क्या है । और महावीर उलटी बात कह रहे हैं । वे कह रहे हैं, जो जान लेगा कि शरीर और आत्मा क्या है, उसके जीवन मे ही संयम हो सकता है ।

हम चीजों को उलटा लेते हैं । उलटा लेने का कारण है– हम उलटे खड़े हैं । हमें हर चीज उलटी दिखाई पड़ती है । महावीर को भी जब हम देखते हैं, तो हम उनको उलटा देखते हैं । जो पहले है उसे पीछे कर देते हैं, जो पीछे है, उसे पहले कर देते हैं । फिर हमें सुविधा हो जाती है । अगर हम महावीर की बात को वैसा ही रहने दे, जैसी वह है, तो हमारे जीवन को हमें बदलना पड़ेगा ।

क्या फर्क है ?

. . . महावीर कहते हैं, भीतरी बोध पहले होगा, फिर बाहरी संयम होगा ।

हम क्या करते हैं ?

हम पहले बाहरी संयम साधते हैं, फिर सोचते हैं, भीतरी बोध अपने आप आ जायेगा । हमारे लिए बाहर का मूल्य इतना ज्यादा है कि संयम को भी जब हम साधते हैं तो बाहर से ही शुरू करते हैं । हमारी आँखें बाहर से इस तरह ऑब्सेस्ड हो गयी हैं, इस तरह बँध गयी हैं । और हमारी वासनाओं ने हमें बाहर से इस तरह चिपका दिया है कि हम अगर साधना भी करते हैं तो भी बाहर से ही शुरू करते हैं । और साधना शुरू ही हो सकती है भीतर से । बाहर से जो शुरू होगी, वह संसार में ले जायेगी । लेकिन वासनाएँ आदमी को मूर्च्छित कर देती हैं ।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल मे ठहरा हुआ है । वह सांझ को लौट रहा है अपने कमरे की तरफ । एक दरवाजे के भीतर से उसे आवाज सुनाई पड़ती है एक स्त्री और एक पुरुष की– शायद अपना हनीमून मनाने आये होंगे । तो वह दरवाजे पर खड़े होकर सुनता है । तो वह पति अपनी पत्नी से कह रहा है कि तेरे-जैसा सौन्दर्य कभी-कभी सदियों में होता है । मैं चाहूँगा कि इस जगत का सबसे श्रेष्ठ कलाकार तेरी मूर्ति को या तेरे चित्र को निर्मित कर दे ताकि भविष्य की पीढियाँ भी जान सके कि ऐसा सौन्दर्य भी कभी हुआ है ।

नसरुद्दीन ने फौरन दरवाजे पर दस्तक दी । पति ने चिढ़कर पूछा, " कौन है ?"

नसरुद्दीन ने कहा, " द ग्रेटेस्ट पेन्टर ऑव द वॅर्ल्ड, पिकासो !"

जब नसरुद्दीन यह कह चुका तभी उसको ख़याल आया कि मैं क्या कह रहा हूँ वो दरवाजा खुल जायेगा तो पकड़ा जाऊँगा। भागा अपने कमरे में। फिर बहुत सोचता रहा कि ऐसा कैसे हुआ? मैं पिकासो नहीं हूँ!

लेकिन सौन्दर्य की चर्चा। शरीर को देखने का मन। वासना का जग जाना। फिर इस मूर्च्छित अवस्था में आप कुछ भी हो सकते हैं।

तो निकल गया उसके मुँह से कि जगत का सबसे बड़ा चित्रकार! खोलो दरवाजा!

दरवाजा खुलना आकांक्षा है। दरवाजा खुल जाये, वह स्त्री दिखाई पड़ जाये– वह वासना है। उस वासना में उसके मुँह से यह भी निकल गया कि मैं पिकासो हूँ। यह उसने सोचा नहीं था। यह उसने कभी विचारा नहीं था। इसकी कोई योजना नहीं थी। एक क्षण की वासना से तादात्म्य बदल गया।

हम जहाँ-जहाँ वासना से घिरते हैं। वहीं-वहीं हम वही हो जाते हैं, जो होने में हमारी वासना तृप्त होगी। हमारी वासनाएँ हमारे तादात्म्य को निर्धारित करती हैं। अगर आप पुरुष हो गये हैं, तो भी वासना के कारण, अगर स्त्री हो गये हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप मनुष्य हो गये हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप कीड़े-मकोड़े थे, पशु-पक्षी थे, तो भी वासना के कारण।

जहाँ हमारी वासना सघन हो जाती है– महावीर, बुद्ध और कृष्ण कहते हैं– उस सघनता के कारण हम वैसा ही रूप ग्रहण कर लेते हैं। हम वही हो जाते हैं, जो हमारी वासना हो जाती है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि मनुष्य के शरीर की जो घटना है . . .।

जैसा डार्विन ने कहा था कि मनुष्य इसलिए इस तरह विकसित हो रहा है कि प्रकृति में एक संघर्ष है, उसमें श्रेष्ठतम बच जाता है– सरवाइवल ऑव दि फिटेस्ट। वह जो सबसे ज्यादा ताकतवर है, वह बच जाता है। लेकिन इधर डार्विन के बाद जो काम हुआ है विकासवाद पर, उसमें हालतें बिलकुल बदल गयी हैं। नये विकासवादी कहते हैं कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रेष्ठ बच जाता है। आप ये भला कह सकते हैं कि जो बच जाता है, उसको आप श्रेष्ठ कहने लगें। लेकिन श्रेष्ठ के बचने कोई प्रमाण नहीं मिलता।

और आदमी का विकास संघर्ष के कारण नहीं दिखाई पड़ता, भीतरी वासना के कारण दिखाई पड़ता है– बाहरी संघर्ष के कारण नहीं। आँखें इसलिए शरीर पर प्रगट हुई हैं कि आदमी देखने की वासना से भरा हुआ है। वह देखने की वासना जब प्रगाढ़ हो जाती है तो तीर की तरह भीतर से छेद देती है और आँखें निर्मित होती

है। और आदमी सुनने की वासना से भरा हुआ है, इसलिए कान निर्मित होते हैं। आदमी छूने की वासना से भरा है, इसलिए शरीर निर्मित होता है।

जो-जो वासना भीतर प्रगाढ़ है, उसके अनुरूप पदार्थ चारों तरफ़ आत्मा के इकट्ठा हो जाता है। लेकिन यह बड़ी पुरानी खोज है महावीर, बुद्ध और कृष्ण की कि आदमी का जन्म उसकी वासना से हो रहा है; उसके तादात्म्य उसके रूप, नाम, उसकी भीतरी वासना से निर्धारित हो रहे हैं।

आप जो भी हैं, वह अपनी वासना के फल हैं। इस वासना को अगर आप बल देते चले जाते हैं, तो आप इसी चक्कर में घूमते चले जायेंगे; यही वर्तुल बार-बार घूमता रहेगा; आप पुनरुक्त होते रहेंगे। लेकिन अगर इस वर्तुल से बाहर होना है, तो भीतर से वासना का जो सम्बन्ध है शरीर से, उसे थोड़ा शिथिल करना होगा।

आप इस बुरी तरह जुड़ गये हैं कि बीच में जरा-सी जगह भी नहीं है कि फर्क दिखाई पड़ सके कि मैं कौन हूँ। इस फ़र्क को देखने के लिए थोड़ी-सी शिथिलता बन्धनों की चाहिए। लेकिन हम तो बन्धन के लिए बड़े आतुर रहते है। असल में बन्धन जब तक न मिल जाये तब तक हमको चैन नही होती। बन्धन मे हमें बड़ी सुविधा मालूम पड़ती है। जब तक बन्धन न हो, तब तक हम परेशान होते हैं, जैसे ही बन्धन निर्मित हो जाये, हम व्यस्त हो जाते हैं।

मैंने सुना है, एक मुसलमान फकीर एक ट्रेन में सफ़र कर रहा है। सारी जगहे भरी हुई हैं। कई लोग खड़े भी हुए हैं। और तभी एक स्त्री, गर्भिणी, आकर खड़ी हो गयी है। वह मुसलमान फ़कीर के बिलकुल बगल में खड़ी है। बाजार से कुछ रस्सियाँ खरीद कर लायी है, तो रस्सियो का बन्डल उसके हाथ में है। फ़कीर आँख बन्द कर लेता है उसे देखकर। उसका पड़ोसी यात्री कहता है कि तुम क्या सो गये हो या तबियत खराब है? तो वह फ़कीर कहता है कि नही, यह बात नही। मैं किसी स्त्री को खड़े हुए देखना ट्रेन में नफ़रत करता हूँ! इसलिए आँख बन्द कर ली है—न देखेंगे, न यह ख़याल उठेगा कि स्त्री खड़ी है और मैं बैठा हूँ। तो उस आदमी ने कहा कि अगर तुम इतने दयावान हो, तो उठकर उसको जगह क्यो नही दे देते? तो उस फ़कीर न कहा, मेरे गुरु ने कहा है कि जहाँ भी बंधन की कोई व्यवस्था दिखाई पड़े, वहाँ जरा सावधान रहना। और वह स्त्री जो हाथ मे रस्सी का बन्डल लिये है, उससे मैं बोल भी नहीं सकता; उसकी तरफ़ मैं देख भी नहीं सकता।

बहुत-से साधु यही कर रहे है। जहाँ-जहाँ उन्हें बंधन की सम्भावना दिखाई पड़ती है, वहाँ वे देखते नहीं; वहाँ से भाग खड़े होते हैं। लेकिन बंधन बाहर नहीं है, जिससे भागा जा सके; जिससे आँख बन्द की जा सके। बन्धन तो भीतर की वासना

में है कि मैं बंधना चाहता हूँ। और स्त्री से बचना आसान है, लेकिन अपने ही शरीर से बंधा हुआ हूँ, उसी बन्धन में सारा संसार उपस्थित हो गया है।

मेरा बन्धन मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। मेरा संसार भी मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। बाहर तो सब एक्स्टेन्शन्स हैं। लेकिन बुनियादी संसार मेरे भीतर है। और वहाँ से तोड़ने की बात है।

यह तोड़ना – महावीर के हिसाब से– एक भेद, एक विवेक, एक बोध का परिणाम है। वह बोध भीतर रुकने की क्षमता से, अँधेरे में रुकने की क्षमता से, धैर्यपूर्वक अन्धेरे में डूबे रहने की क्षमता से, प्रतीक्षा करने से अपने आप पैदा होना शुरू हो जाता है।

ध्यान रहे, चेतना का अपना प्रकाश है। हम इस जगत में जहाँ-जहाँ चीजों पर देखते हैं, वहाँ-वहाँ हमारी चेतना प्रकाश डालती है; रोशनी डालती है। यह रोशनी सिर्फ सूरज की नहीं है। सूरज की रोशनी काफी नहीं है। हमारी चेतना भी रोशन करती है हर चीज को, जिसे हम देखते हैं। हमारी आँखों से भी रोशनी बाहर जाती है।

और यह कोई मैटाफिजिकल, कोई पारलौकिक सिद्धान्त नहीं है। अब तो विज्ञान इसके समर्थन में है कि जब भी आप देखते हैं, तो आपकी जीवन-ऊर्जा जिन चीजों पर आप फेंकते हैं, उनको रोशन करती है। उनके भीतर गति भी शुरू हो जाती है। और देखकर आप अपनी रोशनी को पदार्थ से जोड़ते हैं।

अगर कोई व्यक्ति न देखने की साधना करे: कुछ समय तक देखे ही नहीं– आँख को बन्द ही रखे; सुने ही नहीं– कान को बन्द ही रखे; छूए ही नहीं–हाथ को बन्द ही रखे, तो जो ऊर्जा इन इन्द्रियों से बाहर जा रही थी, वह सारी की सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी होने लगेगी, सघन होने लगेगी। उस सघनता में एक घड़ी आती है, जब भीतर का प्रकाश-बिन्दु पैदा हो जाता है।

यह प्रकाश-बिन्दु वैसा ही है, जैसे हम सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें तो आग पैदा हो जाये। जैसे ही भीतर की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं, भीतर की आग जल जाती है। लेकिन प्रतीक्षा चाहिए। और कोई समय पक्का नहीं हो सकता कि किसको कितनी देर लगेगी– इन्टेन्सिटि पर, तीव्रता पर निर्भर करेगा।

कोई एक क्षण में भी इस भीतर के प्रकाश को उपलब्ध हो सकता है अगर बाहर से अपने को पूरा का पूरा रोक ले। इस रोक लेने की विधि का नाम ही 'ध्यान' है। इस रोक लेने की विधि को 'सामायिक' महावीर ने कहा है।

सामायिक शब्द बड़ा बहुमूल्य है, ध्यान से भी ज्यादा बहुमूल्य है। क्योंकि ध्यान में थोड़ी-सी भ्रान्ति हो सकती है। सामायिक-जैसा शब्द सारी दुनिया की किसी भाषा में नही है। जब भी हम कहते है 'ध्यान', तो ऐसा लगता है, किसी चीज पर ध्यान।

मेरे पास लोग आते है–उनसे मै कहता हूँ, 'ध्यान करो!' तो वे कहते है, 'किस चीज पर ध्यान करें?' तो ध्यान लगता है बहिर्मुखी है। अंग्रेजी में शब्द है, मेडिटेट– उसका मतलब ही होता है, किसी चीज पर। तो किसी से कहो, मेडिटेट करो, तो वह पूछता है, ऑन वॉट– ओम् पर? राम पर? क्राइस्ट पर? मेरी पर? ... किसपर?

महावीर ने ध्यान शब्द का उपयोग नही किया, क्योंकि ध्यान मे भ्रान्ति है। ध्यान का मतलब ही होता है, किसी चीज पर ध्यान बाहर हो गया। महावीर ने कहा; सामायिक। सामायिक शब्द उनका अपना है। 'समय' आत्मा का नाम है महावीर के लिए। समय का अर्थ है: आत्मा और सामायिक का अर्थ है, आत्मा में होना– टुवी इन वनसेल्फ।

ध्यान उतना मूल्यवान शब्द नही है। लेकिन महावीर को माननेवाले भी सामायिक करते वक्त ध्यान कर रहे है, सामायिक नही; नमोकार मन्त्र पढ़ रहे है– यह ध्यान हुआ, सामायिक नही हुई। महावीर-स्वामी का नाम जप रहे है– यह ध्यान हुआ, सामायिक न हुई।

महावीर कहते है: भीतर की वैसी अवस्था, जब तुम ही तुम रह गये– यू अलोन; जहाँ न कोई शब्द है, न कोई ध्वनि है, न कोई रूप है। जहाँ कुछ भी बाहर का नही है। जहाँ कुछ भी पराया नही है। जहाँ कुछ भी अन्य नही है। जहाँ तुम्हारा होना, अकेला होना है। जहाँ होना मात्र रह गया है– जेस्ट बिइंग– उस अवस्था का नाम सामायिक है।

यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि सामायिक की नही जा सकती। आप सामायिक मे हो सकते है, सामायिक कर नही सकते– क्योंकि करने का मतलब ही होगा कि बाहर चले गये। कृत्य बाहर ले जाता है।

तो सामायिक कोई क्रिया नही है। सामायिक एक अवस्था है– अपने मे डूबने की अवस्था; अपने मे बन्द हो जाने की अवस्था; अपने को सब तरफ से तोड लेने की, अलग कर लेने की अवस्था।

इसके लिए कोई जंगल जाना जरूरी नही है। जहाँ आप है, वही यह कला आप सीख सकते है। लेकिन थोड़ा-सा अभ्यास करें। घड़ी-दो-घड़ी रोज आँख बन्द कर लें

और भीतर के अन्धेरे में जियें। थोड़े ही दिनों में, बिना कुछ और किये, सिर्फ़ भीतर के अन्धेरे में रहने की क्षमता विकसित करते-करते आप अचानक पायेंगे कि बीच-बीच में जैसे झपकी लग जाती है; आप अपने में डूब जाते हैं क्षण भर को।

और वह क्षण भी अपने में डूबना इतना आह्लादकारी है कि आप अनन्त-अनन्त जन्मों के सुख उसके लिए छोड़ सकते हैं। ज़रा-सी झपकी भीतर; ज़रा-सी देर के लिए डूब जाना; एक क्षण के लिए जगत से टूट जाना; शरीर से अलग हो जाना और अपने में डूब जाना -- वह डुबकी एक दफा आपको मिलनी शुरू हो जाये, फिर संसार को छोड़ना नहीं पड़ता, संसार कचरा मालूम होने लगता है।

छोड़ना तो उसे पड़ता है, जिसमें मूल्य मालूम पड़े। कचरे को कोई नहीं छोड़ता। आप घर के बाहर जाकर रोज चिल्ला कर घोषणा नहीं करते कि आज फिर कचरे का हम त्याग कर रहे हैं। हाँ, जब आप सोने का त्याग करते हैं, तब आप ज़रूर खबर चाहते हैं कि छपे-- क्योंकि सोना आपके लिए कचरा नहीं है।

लेकिन जैसे ही भीतर के सोने का पता चलता है, बाहर का सब सोना कचरा हो जाता है। और एक क्षण के लिए भी वैसी सुरति बँध जाये, वैसी स्मृति जग जाये, वैसी सामायिक हो जाये, तो उसके बाद शास्त्रों में नहीं खोजना पड़ता, आप खुद जानते हैं कि शरीर और मैं अलग हूँ।

एक किरण इस बोध की कि मैं शरीर से भिन्न हूँ, मैं चैतन्य हूँ और शरीर पदार्थ है-- महावीर कहते हैं-- फिर संयम बिलकुल आसान है। फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है। अभी संयम को साधना मुश्किल है, फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है। अभी ग़लत से बचना मुश्किल है, फिर ग़लत को करना इससे भी ज्यादा मुश्किल हो जायेगा।

'जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भली भांति जाननेवाला साधक ही संयम को जान सकेगा।'

संयम के दो अर्थ हैं। एक संयम का बाहरी अर्थ कि जो ग़लत है, वह न हो। और एक संयम का भीतरी अर्थ कि जो मेरी सत्ता है, उसमें मेरा होना हो जाये। संयम का अर्थ है : बैलेन्स की, संतुलन की आख़िरी अवस्था, जहाँ दोनों तराजू के पलड़े बिलकुल एक रेखा में आ जाते हैं और तराजू का कांटा ज़रा भी कंपन नहीं दिखाता। संयम का अर्थ है : बैलेन्स की आख़िरी अवस्था, जहाँ कोई कंपन नहीं रह जाता।

असंयम में कंपन है। इसलिए असंयमी चित्त हमेशा कंपित होता रहता है-- कभी इस तरफ़, कभी उस तरफ़; कभी यह चाहता है, कभी वह चाहता है। और असंयमी चित्त चाहता ही रहता है और कभी शान्त नहीं हो पाता। चाह का कोई अन्त

नहीं, चाह कंपाती जाती है। कंपाना एक दुख में डुबा देता है। क्योंकि कम्पन एक पीड़ा है, एक तरह का बुखार है।

स्वस्थ चेतना कपेगी नहीं, अकम्पित होगी। माग चलती ही चली जाती है मन की और मन कपता चला जाता है। वासना के झोंके हिलाते ही रहते हैं– जड़ों तक को हिला देते हैं। और अपेक्षाएँ बढ़ती ही चली जाती है। और कुछ भी मिल जाये, शान्ति नहीं मिलती– क्योंकि मिलते ही वासना आगे बढ़ जाती है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन उदास बैठा है। कुछ मित्र मिलने आये हैं। वे पूछते हैं कि नसरुद्दीन, बड़े उदास हो, क्या कारण आ गया? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, कारण तो ऐसा कुछ खास नहीं, लेकिन दो सप्ताह पहले मेरे चाचा मर गये! बड़े गजब के अच्छे आदमी थे; भले आदमी थे और असमय मर गये। अभी कोई मरने का वक्त था! अल्लाह उनकी आत्मा को शान्ति दे! लेकिन मरने के पहले पाँच हजार रुपया मेरे नाम वसीयत कर गये। फिर एक सप्ताह पहले मेरे मामा मर गये! बड़े अच्छे आदमी थे। और अभी तो जिंदगी बहुत थी, लेकिन असमय में परमात्मा ने उनको उठा लिया। भले आदमियों को परमात्मा जल्दी उठा लेता है। और मरने के पहले पन्द्रह हजार रुपया मेरे नाम कर गये। . . ऐन्ड दिस वीक नथिंग!

और यह सप्ताह पूरा गुजर रहा है, अभी तक कुछ भी नहीं हुआ– इसलिए उदास हूँ!

चाह दूसरे की मौत से भी शोषण करती है। वासना बस अपने लिए जीती है। सारी दुनिया भी मर जाये, मिट जाये, तो भी वासना अपने लिए जीती है। वासना एक तरह की विक्षिप्तता है।

और उसका कोई अन्त नहीं है। कितना ही मिल जाये, हमेशा उदास होगी। क्योंकि जितना मिल सकता है, उससे ज्यादा की कामना की जा सकती है। आपकी कामना की कोई सीमा नहीं है। संसार की सीमा है, आपकी कामना की कोई सीमा नहीं है। आप सदा और ज्यादा के लिए सोच सकते हैं, इसलिए दुखी होंगे।

संयम का अर्थ है ऐसा चित्त, जो मांगता ही नहीं, जिसकी कोई माग नहीं है; जो अपने भीतर है, जो डोलता ही नहीं, जो डोलकर कहीं भी नहीं जाता कि यह मिल जाये, वह मिल जाये– यह मिले, वह मिले; जिसकी कोई माग नहीं है; जिसकी कोई वासना नहीं है। लेकिन यह किस व्यक्ति की होगी?

महावीर कहते हैं, उसी व्यक्ति की जो शरीर को और अपने को अलग जान लेता है। क्यों? शरीर और अपने को अलग जानने से वासना क्यों मिट जायेगी?

क्योंकि सारी वासनाएँ शरीर की हैं, आत्मा की कोई वासना है ही नहीं। और जिस दिन आपको पता चल जाये कि शरीर की वासनाओं के लिए मैं परेशान हो रहा था और उसे खो रहा था जो मेरी निजी सम्पदा है– जहाँ परम आनन्द है; जहाँ परम प्रकाश है और जहाँ अमृत का झरना है– उसे मैं खो रहा था क्षुद्र शरीर के पीछे चलकर, उसकी वासनाओं में पड़कर– वासना गिर जायेगी।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप शरीर की हत्या कर देंगे; मार डालेंगे। लेकिन अब शरीर को आप उतना दे देंगे, जितना शरीर के चलने के लिए जरूरी है। आवश्यकता और वासना का यही फर्क है।

आवश्यकता नहीं बाधती, वासना बाधती है। आवश्यकता का मतलब है; शरीर यन्त्र है, उसके लिए जरूरी है– जैसे कार को पेट्रोल जरूरी है और तेल देना जरूरी है। और यन्त्र की जो भी जरूरत है, उसको पूरा कर देना जरूरी है। न कम देने की जरूरत है, न ज्यादा देने की जरूरत है। जितना जरूरी है, उतना ही देने की जरूरत है।

जिसकी वासना हट जाती है, वहाँ आवश्यकता रह जाती है। आवश्यकता में कोई पीड़ा नहीं है। आवश्यकता जरूरत है। और जरूरत भी तभी तक– महावीर कहते हैं– रहेगी, जब तक पिछले कर्मों का जो मोमेन्टम है, वह पूरा नहीं हो जाता। और जैसे ही पिछले कर्मों की पूरी की पूरी गति समाप्त हो जाती है और पिछले सारे कर्म झड़ जाते हैं— शरीर से सम्बन्ध अलग हो जायेगा। फिर उसे भोजन देने की भी कोई जरूरत नहीं है। फिर शरीर से छुटकारा सहज हो जायेगा। उस यन्त्र की कोई जरूरत न रही। हमने उसे छोड़ दिया।

शरीर और मैं अलग हूँ, इसका बोध ही काफी है कि हमारी वासनाएँ एकदम निर्जीव हो जायें। मैं शरीर हूँ, यही वासना का प्राण है; वासना का केन्द्र है।

'जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है।'

और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर की भेद-रेखा को पहचान लेता है, वह यह भी जान लेता है कि क्या है पुण्य और क्या है पाप– क्या है बंध, क्या है मोक्ष।

क्यों? जैसे ही मुझे पता चलता है कि मैं अलग और शरीर अलग, तब शरीर की मानकर चलना पाप और अपनी मानकर चलना पुण्य; तब शरीर की मानकर चलकर पाप करने से बन्धन का जन्म, और अपनी मानकर चलने से मोक्ष का जन्म।

क्योंकि शरीर की मैं जितनी मानूं उतना वह मनाता है। हम जितने दबें, उतना

वह दबाता है । हम जितना अनुसरण करें, उतना वह आश्वस्त हो जाता है कि तुम सदा पीछे आते हो । जितना हम अपने में लीन होने लगें, उतना ही धीरे-धीरे शरीर को पता चलने लगता है कि मेरी मालकियत विर्सजित हो गयी; अब मैं मालिक नहीं हूँ । धीरे-धीरे वह आपके पीछे आने लगता है । और जिस दिन शरीर आपके पीछे आता है, और आपके भीतर का स्वामी, आपके भीतर का मालिक प्रगट हो जाता है-- महावीर कहते हैं उस अवस्था को मुक्त ।

एक बंधा हुआ मन है जो चलता चला जाता है बिना सोचे-समझे कि वह क्या मांग रहा है । कभी आप विचार करते हैं बैठकर कि आपका मन आपको कहाँ-कहाँ ले जाता है; क्या-क्या करवाता है । ऐसा कोई पाप नहीं, जो आप छोड़ते हों । मनसविद कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने वे सब पाप मन में न किये हों, जो मनुष्यता ने पूरे इतिहास में किये हैं ।

मन में आप सभी पाप कर लेते हैं । हत्या कर लेते है, व्यभिचार कर लेते हैं, चोरी कर लेते हैं-- ऐसा कुछ नहीं है जो आप छोड़ देते है, जहाँ तक मन का सम्बन्ध है । शरीर से नहीं कर पाते, क्योंकि बहुत उपद्रव बाहर है । अगर आपको पूरी छूट हो तो आप जरूर करेंगे ।

कभी सोचें कि अगर आपको पूरी स्वतन्त्रता हो, शक्ति हो और आपको कोई बाधा देनेवाला न हो और न कोई दण्ड देनेवाला हो, तो आप कौन-सा पाप है जो नहीं करेंगे ? आप सभी पाप कर लेंगे ।

इसीलिए पद भ्रष्ट करता है । क्योंकि शक्ति हाथ मे आती है तो जो-जो पाप नहीं किये, उनको करने की वृत्ति हाथ मे आती है ।

लार्ड ऐक्टन ने कहा है : पावर करप्ट्स ऐन्ड करप्ट्स ऐक्सोल्यूटली । वह ठीक कहा है कि शक्ति आदमी को दुराचारी बनाती है, और बुरी तरह दुराचारी बनाती है । लेकिन सच बात ऐक्टन के वचन में नहीं है । सच बात यह नहीं है कि शक्ति किसी को दुराचारी बनाती है । दुराचारी लोग है, शक्ति सिर्फ़ अवसर देती है ।

तो आप देखें, जो राजनीति के पद पर है उसके आलोचक, उसके विरोधी उसकी निन्दा करते हैं कि वह भोग रहा है, पैसा लूट रहा है, रिश्वत ले रहा है, स्त्रियाँ रख हुए है, व्यभिचारी है-- सब कर रहा है ।

यह जो विरोधी कह रहा है, इससे आप इस भ्रान्ति में पड़ जाते हैं कि यह ऐसा काम नहीं करेगा । इसके पास शक्ति नहीं है । जब यह ताकत में जायेगा, यह सब वही काम करेगा जो ताकत में पहलेवाले आदमी ने किये थे ।

यह बड़े मज़े की बात है कि ताकत में जाते ही आदमी अपने दुश्मनों-जैसा हो जाता है — किसी को भी शक्ति में बिठा दें। क्यों ऐसा होता है?

इसका कारण है, हर आदमी मन से तो करना ही चाहता है— सदा करना चाहता है। यह विरोध भी इसीलिए कर रहा है कि तुम कर रहे हो और मुझे मौका नही मिल रहा है। एक मौका हमें भी दो। इसके विरोध का इतना ही मतलब है— अब तुम काफ़ी कर लिये।

लेकिन यह आपसे ऐसा कह नही सकता। शायद इसको भी साफ़ नही है कि यह ऐसा ही करना चाहता है। इसके भी कॉन्शस, चेतन में यह बात नही होगी। यह तो अभी यही चाहता है कि जनता कि सेवा करनी है, जगत का उद्धार करना है, समृद्धि बढ़ानी है, गरीबी मिटानी है— सब करना है। अभी शायद चेतन मन इसका भी यही कह रहा है। लेकिन अचेतन का इसे भी पता नही है कि इन सब बातो के पीछे अचेतन वृत्तियाँ वही हैं। क्योंकि जो इसके पहले बैठे हैं, वे भी इसीलिए वहाँ तक पहुँचे हैं।

पहुँचते ही सारी चीज बदल जाती है। सिंहासन पर बैठते ही दूसरे आदमी से मिलन होता है। जिसको हम जानते थे सिंहासन के पहले, वह आदमी खो ही जाता है। यह क्यों होता है? और इतना अनिवार्य रूप से होता है कि इसमें अपवाद नही है।

यह इसलिए होता है कि सिंहासन के नीचे हर आदमी के अचेतन में वे ही वासनाएँ हैं। मौका नही है, धन नही है, ताकत नहीं है कि जो भी करना चाहता है वह कर सके, इसका उपाय नही है। तो अपने मन को समझा लेता है कि जो वह नही कर सकता, वह करने योग्य नही है।

ध्यान रहे, अंगूर खट्टे है, ऐसा समझा लेता है। जहाँ तक पहुँच नही होती है— वह बात करने योग्य ही नही है। लेकिन शक्ति इसे मिल जाये तो जो-जो सोया था, जो-जो दबाया था, वह सब प्रगट हो जायेगा। शक्ति हाथ मे आते ही सब सक्रिय हो जायेगा। वैसे ही, जैसे एक बीज पड़ा है जमीन में और पानी न हो, तो बीज पड़ा रहेगा— पानी पड़ा कि अंकुर फूटा। बीज मे अकुर छिपा था, तैयार था, पानी की प्रतीक्षा थी— ठीक मौका और पानी मिलने पर प्रगट हो जायेगा।

शक्ति, पद, सामर्थ्य, धन लोगों को बिगाड़ता है— इसलिए नही कि धन किसी को बिगाड़ सकता है। लोग बिगड़ने के लिए बिलकुल तैयार है, सिर्फ धन की प्रतीक्षा है। संयोग आते ही बिगड़ जाते है। और मैं कहता हूँ यह निरपवाद रूप से होता है— विदाउट एक्सेप्शन। क्यों? क्या ऐसा कोई भी आदमी नही है जिसकी कोई दबी वासना न हो, और जो पद पर पहुँचे और पद उसे बिगाड़े नही?

ऐसे आदमी हैं। लेकिन ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता—क्योंकि पद पर जाने का कोई धक्का ही नहीं रह जाता। धक्का तो भीतर की वासना से आता है। ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता। और यहाँ कोशिश करनेवाले जहाँ नही पहुँच पाते, बिना कोशिश करनेवाला कैसे पद पर पहुँच पायेगा?

उसका कोई उपाय नही है। जो पद से व्यभिचारित नही होता, वह पद तक नही पहुँच पाता। उसके पहुँचने का कोई कारण नही है। और जो व्यभिचारित हो सकता है, वही पहुँचने की कोशिश करता है। और जितना ज्यादा तीव्र वेग हो दबी हुई वासना का, उतनी तीव्रता से पहुँचने की कोशिश करता है। दबे वेग शक्ति बन जाते हैं।

महावीर कह रहे है कि आप अगर अवसर से दूर है— इसका नाम संयम नहीं है। स्त्री पास नही है— आप ब्रह्मचारी हैं। धन पास नहीं है— आप सादगी से जी रहे हैं। किसी को मार नही सकते, क्योंकि डरते है। क्योंकि मार वही सकता है, जो पिटने को तैयार है।

आप ध्यान रखना, जो पिटने को तैयार नही है, वह मार नही सकता। मारने की क्षमता उसी में आती है, जो पिटने के लिए बिलकुल तैयार है। आप पिटने को तैयार नहीं है, इसलिए मार नही सकते— तो सोचते हैं, अहिंसक हैं।

आदमी ऐसा है कि अपनी सब वृत्तियों के लिए रेशनेला इजेशन खोज लेता है। कायर अपने को अहिंसक कहता है। क्योंकि कायरता तो बड़ा दुख देती है कि कोई कहे कि मैं कायर हूँ। कायर अपने को अहिंसक कहता है कि मैं हिंसा नही करना चाहता।

इसलिए बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर खुद क्षत्रिय थे, जैनो के बाकी तेईस तीर्थंकर भी क्षत्रिय थे— सब क्षत्रिय घरो से आये चौबीस तीर्थंकर। और उनको माननेवाले सब वणिक है, बनिया हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है! इसमे कोई तालमेल नही दिखाई पड़ता। चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हो जिनके, उनके सब माननेवाले दुकानदार हो, इसमे जरूर कोई न कोई बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

असल में अहिंसा की बात कायरों को ठीक लगी— रेशनेलाइजेशन। उनको जंची कि यह बात बिलकुल ठीक है : कायर के कायर रहो और अहिंसक भी हो जाओ। कोई कुछ कह भी नहीं सकता कि तुम कायर हो। कायरता को छिपाने के लिए अहिंसा का सिद्धान्त— इससे सुन्दर और क्या हो सकता था! जो-जो डरते थे, भयभीत थे, वे अहिंसा के भीतर खड़े हो गये। अहिंसा उनके लिए कवच बन गयी।

लेकिन अहिंसा उसी के जीवन मे फल सकती है जो कायर नहीं है। क्योंकि

अहिंसा आख़िरी वीरता है। हिंसा बड़ी वीरता नहीं है। दूसरे को मारने की तैयारी इसी बात की घोषणा है कि मैं कहीं मार डाला न जाऊँ। वह एक डर का ही हिस्सा है। कोई मुझे मार न दे, इस डर से मैं पहले ही मार देता हूँ।

हिंसक भयभीत व्यक्ति है। हिंसक पूरा बहादुर नहीं है, उसकी बहादुरी अधूरी है। वह डरा हुआ है कि मुझे मार न डाला जाये। इस भय से ही उसकी हिंसा है। आपके हाथ में तलवार है, वह तलवार खबर देती है कि आप भीतर कहीं डरे हुए हैं। वह डर हिंसा बन सकता है।

लेकिन अगर कोई व्यक्ति डरा ही हुआ नहीं है, तो ही दूसरे को मारने का खयाल विदा होता है। जब मैं इतना निर्भय हूँ कि मुझे कोई मारे तो भी मुझे मार नहीं सकता, भीतर मैं अमृत हूँ— तो फिर दूसरे को मारने का कोई सवाल न रहा।

अहिंसा आख़िरी वीरता है। लेकिन जगत में बड़ी विडम्बना है: जो आख़िरी वीरता है, वह प्राथमिक कायरता का कवच बन गयी है। ऐसा रोज हो रहा है। सभी सिद्धान्तों के साथ ऐसा हो रहा है। झूठ आप बोल नहीं सकते, क्योंकि फमने का डर है। तो आप सच बोलते हैं, लेकिन वह सच निर्जीव है। उसके पीछे कोई आत्मा नहीं है। वह कायर का सत्य है।

यह जो हम इस भांति संयम साध लेते हैं, यह संयम हमें मोक्ष तक तो नहीं ले जाता, हमें संसार से ऊपर भी नहीं उठाता, हमें संसार के भीतर ही बांध रखता है— एक कैप्सूल में। हम अपने ही संयम के कैप्सूल में बंद हो जाते हैं। न हम संसार को भोग पाते हैं— क्योंकि भोग भी शायद कभी संयम का मार्ग बन जाये। क्योंकि भोगते-भोगते भी आदमी को ऊब पैदा होती है। जिस चीज को हम बार-बार भोगते हैं, उससे ऊब पैदा हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बड़ी नाराज थी एक दिन, क्योंकि नसरुद्दीन ने थाली नीचे फेंक दी भोजन के समय। नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा, "यह तुम क्या कर रहे हो?"

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे मार डालेगी! रोज भिण्डी का साग!

पर उसकी पत्नी ने कहा, "कैसी बात कर रहे हो? सोमवार को तुमने कहा था कि साग बहुत अद्भुत है। और मंगलवार को भी तुमने कहा कि साग अच्छा बना है। और बुधवार को भी तुमने पसन्द किया और बृहस्पतिवार को भी पसन्द किया; शुक्रवार को भी पसन्द किया— और आज शनिवार है, और आज अचानक तुम कहने लगे कि मार डालेगी!"

सोमवार को जो पसन्द है, मंगलवार को कम पसन्द हो जायेगा। बुधवार को और कम पसन्द हो जायेगा। अनुभव भी उबा देता है। शनिवार को थाली फेंकने की नौबत आ जायेगी। जो स्वादिष्ट भोजन था, वह जहर-जैसा मालूम पड़ने लगेगा।

लेकिन पत्नी यह कह रही है, उसकी बात बड़ी तर्कपूर्ण है। वह यह कह रही है कि जब तुमको छ दिन जो चीज पसन्द थी, तो आज अचानक सात दिन का तुम अपना मन कैसे बदल रहे हो? तुम तर्क संगत नही हो। जो चीज छ दिन पसन्द थी, वह सातवें दिन और भी ज्यादा पसन्द होनी चाहिए।

नही, मन ऊब जाता है। इसलिए पति-पत्नी एक दूसरे से ऊब जाते है। निरन्तर एक का ही अनुभव उबाने वाला हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि जब तक पति-पत्नी जगत में है, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। जब तक विवाह है, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। वे शायद ठीक ही कहते है, क्योंकि विवाह उबाता है। ऊब से आदमी यहाँ-वहाँ भागता है, उससे व्यभिचार पैदा होता है।

अब यह बड़ी मुश्किल की बात है – मनसविद कहते है कि वेश्याएँ विवाह की सस्था का अनिवार्य अंग है। और जब तक विवाह है तब तक वेश्याएं होंगी। और अगर वेश्याओं को मिटाना तो ध्यान रखना, विवाह मिट जायेगा। विवाह ही मिट जाये तो ऊब मिट जाये, ऊब मिट जाये तो फिर कोई सवाल नही है। लेकिन विवाह के साथ वेश्या जुड़ी हुई है।

जिन्दगी बड़ी अजीब है और बड़ी जटिल है। तो जो आदमी भोग से भी अपने को रोक लेता है और आत्मज्ञान को भी उपलब्ध नही होता, वह तो सयम की आखिरी सम्भावना भी बन्द किये दे रहा है। एक सम्भावना तो यह है कि वह दुख मे पड़े, नर्क मे उतरे और भोगे, और भोग-भोगकर परेशान हो जाये– इतना परेशान हो जाये कि वह परेशानी ही उसे बाहर निकालने लगे। और दूसरा उपाय यह है कि वह भीतर के प्रकाश को जलाये, शरीर और आत्मा को पृथकता से देखे– उस पृथकता के कारण शरीर की वासना गिर जाये। या फिर शरीर में कोई इतना जीये कि ऊब जाये, ऊब से संयम का जगत शुरू हो।

लेकिन जिसको हम संयमी कहते हैं, वह दोनों से बच जाता है। न तो वह आत्मज्ञान को उपलब्ध हो रहा है, न तो भोग के नर्क से गुजर रहा है ताकि नर्क छोड़ने-जैसा मालूम पड़ने लगे। वह रुका हुआ है। उसने अपने चारों तरफ़ एक कारागृह बना लिया है अपनी कायरता का, अपने डर का, भय का। वह उसमें बन्द है।

इस भय में बन्द आदमी को मोक्ष से सर्वाधिक दूर समझना। भोगी भी इतना दूर नहीं है। यह जो तथाकथित योगी है, इससे ज्यादा दूर मोक्ष से कोई भी नहीं। भोगी भी इससे थोड़ा क़रीब है। क्योंकि आज नहीं कल, जिन्दगी का अनुभव ही उसे बार-बार दुख देकर बता देगा कि यह जिन्दगी कुछ सार्थक नहीं है। लेकिन इस संयमी को, तथाकथित संयमी को जिन्दगी में जो-जो गलत है, उसका रस बना ही रहेगा। वह ग़लत का रस इसके संयम से पैदा हो रहा है। क्योंकि जिस-जिस चीज़ को आप रोकते हैं, उस-उसमें रस पैदा हो जाता है।

आदमी के अधिक पापों का कारण संयम की शिक्षा और नीति की शिक्षा है। जिन-जिन पापों से आदमी को रोकने के लिए कहा जाता है, उन-उन में रस आ जाता है। ज़रा फिल्म में लगा दें कि ओनली फॉर एडॅल्ट्स– सिर्फ वयस्कों के लिए, फिर जिनकी मूंछ की रेखा भी नहीं आयी, वह भी दो आने की मूंछ खरीदकर लगाकर क्यू में खड़े हो जाते हैं। फिर पत्रिकाएँ निकलती हैं– 'ओनली फॉर मेन'। सिर्फ औरतें पढ़ती हैं उस पत्रिका को, आदमी पढ़ते ही नहीं। 'ओनली फॉर वुमेन'– आदमी पढ़ेगा ही, स्त्रियाँ उसकी फिकर नहीं करतीं। क्योंकि वे उसे जानती हैं कि स्त्री में क्या होने वाला है।

जहाँ निषेध है वहाँ रस पैदा हो जाता है। जिस चीज़ में रस पैदा करना हो उसका निषेध करना ज़रूरी है। आप बड़े हैरान– होंगे इसको मैं जिन्दगी की बिडम्बना कहता हूँ। और यह समझ में न आये तो बड़ी अड़चन हो जाती है। आपके सब तथाकथित साधु-सन्त आपकी जिन्दगी में जो-जो गलत चल रहा है, उसके लिए जिम्मेवार हैं। क्योंकि वे निषेध किये चले जाते हैं और रस पैदा किये चले जाते हैं। और जिस चीज़ का निषेध कर दो, बहुत निषेध करो, उसमें शक होने लगता है कि ज़रूर कोई बात होनी चाहिए।

बाप बेटे को समझाता है, सिगरेट मत पीना। अभी बेटे को ख़याल ही नहीं आया था। सच तो यह है कि अगर बेटे अपने पर ही छोड़ दिये जायें तो हज़ारों साल लग जायेंगे उनको सिगरेट खोजने में। क्योंकि धुआँ बाहर-भीतर करना इतनी नालायकी का काम है– इसको कौन करना चाहेगा! और किसलिए करना चाहेगा! इसमें कुछ भी तो अर्थ नहीं मालूम पड़ता।

लेकिन चारों तरफ़ समझानेवाले लोग हैं कि धूम्रपान वर्जित है, सिगरेट मत पीना! बाप यह भी कहता है : क्या करूँ, मेरी तो खराब आदत कि मैं पीने लगा, बाकि तू मत पीना! बेटे को रस शुरू होता है कि ज़रूर कुछ न कुछ मामला है।

जो भी चीज़ रोकी जाती है, उसमें कुछ होना चाहिए। नहीं तो रोकेगा कौन!

क्यों रोकेगा ! और ये सारे समाज के पंडे– पुरोहित क्यों इसके खिलाफ़ पड़ेंगे अगर कुछ भी नही है ! आखिर साधु-संन्यासी अपनी आत्मा की बात छोड़कर क्यों समझाते रहे हैं लोगों को कि धूम्रपान मत करो, सिगरेट मत पिओ ; यह मत करो . . . । जरूर सिगरेट मे कोई आनन्द होना चाहिए कि इतने लोग दीवाने हैं करने को । और इतना समझानेवालों के बाद भी कोई रुकता नही . . .कोई रुकता नही ! एक आदमी को नहीं बदल पाते इतना समझाकर !

तो बच्चे को भी यह दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इतने लोग धुआँ बाहर-भीतर कर रहे हैं । अरबो रुपयों की सिगरेट-बीड़ी पीयी जा रही है । और इतने हजारो साल से साधु-सन्त समझा रहे हैं, कोई इनकी सुनता नही । जरूर साधु-सन्तो में उतना रस नही है, जितना इस धूम्रपान मे है ।

पहली दफा जब बच्चा सिगरेट पीता है तो जरा भी रस नही आता । वमन भी हो सकता है, खाँसी आ सकती है, आँख मे आँसू आ जायेंगे– क्योंकि बात ही बेहूदी है । लेकिन वह देखता है कि कोई सुख बिना दुख के तो मिलते नही . . तप के बिना । तो थोड़ी साधना करनी पड़ेगी; अभ्यास करना पड़ेगा । बिना अभ्यास के कहीं कुछ हुआ है ! और जब इतने लोग पा चुके इस अवस्था को . . . धूम्रपान का मोक्ष– मैं भी कोशिश किये चला जाऊँ ।

फिर वह अभ्यस्त हो जाता है । नर्क के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है आदमी ! दुख के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है ! और जब अभ्यस्त हो जाता है तब एक बड़ी मजेदार घटना घटती है : एक कन्डिशनिंग हो जाती है । धूम्रपान एक कन्डिशनिंग है । एक सस्कार आबद्ध हो गया । और सारी दुनिया उसमें रस देखती है । जो पीते हैं, वे भी रस देखते हैं; जो नही पीते हैं, वे भी रस देखते हैं । तो सारी दुनिया की हवा उसको राजी कर देती है कि इसमें जरूर रस है । और अगर मुझे नहीं दिखाई पड़ता, तो अपनी ही बुद्धि की भूल है । थोड़ा अभ्यास . . . ! वह कर लेता है अभ्यास । जब अभ्यास हो जाता है, तो रस तो बिलकुल नही मिलता, लेकिन अब न पिये तो दुख मिलता है ।

गलत का यही आधार है । अगर आप करे तो कोई सुख नहीं पाते, न करें तो दुख पाते हैं । क्योंकि न करें तो एक आदत, एक तलफ, एक बेचैनी कि कुछ करना था वह नही किया . . . । तब फिर इस दुख से बचने के लिए आदमी पीये चला जाता है ।

हमारे जीवन के अधिक पाप, हमारे चारो तरफ़ पाप के खिलाफ़ जो चर्चा है, उससे पैदा हुए हैं । और जब तक ये चर्चा बन्द नहीं होती, तब तक उन पापो को हटाने का कोई उपाय नही है ।

अभी कल ही मैं देखा अखबार में कि दिल्ली में साधु-संन्यासियों ने एक सम्मेलन किया अश्लील पोस्टरों के खिलाफ़।

साधु-संन्यासियों को क्या प्रयोजन अश्लील पोस्टरों से ? इनको क्या अड़चन है ?

कोई अश्लील पोस्टर देख रहा है, यह उसकी निजी स्वतन्त्रता है। और उसे कोई रस आ रहा है तो वह हक़दार है उस रस को लेने का। तुम्हें रस नहीं आ रहा—तुम साधु-संन्यासी हो गये हो, तुमने सब छोड़ दिया। लेकिन अब भी तुम. . .अब भी तुम परेशान क्यों हो?

जरूर ये साधु-संन्यासी भी अश्लील पोस्टर देखते होंगे। इनको पीड़ा क्या हो रही है? और ये अपना मोक्ष, सामायिक, ध्यान छोड़कर इस तरह के सम्मेलन क्यों करते हैं? इतनी अड़चन क्यों उठाते हैं?

यह बड़े मजे की बात है कि 'अश्लील पोस्टर होने चाहिए' इसका कोई सम्मेलन नहीं करता, और वे चलते हैं। और यह सम्मेलन करते रहे हजारों साल से, कोई रुकता नहीं। अश्लील पोस्टर में ये साधु-संन्यासी रस को बढ़ाते हैं, कम नहीं करते। ये जिम्मेवार हैं।

अश्लील पोस्टर हट जायेंगे उस दिन, जिस दिन हम कह देंगे, यह व्यक्ति की निजी बात है कि वह नग्न चित्र देखना चाहता है, मजे से देखे। नग्न चित्रों को न तो ज़मीन के नीचे दबाकर बेचने की जरूरत है, न छिपाकर रखने की जरूरत है। नग्न चित्रों को तो प्रगट कर देने की पूरी जरूरत है कि लोग देखकर ही ऊब जाये कि अब कब तक देखते रहें।

मैंने सुना है कि एक सर्जन एक आर्ट एग्जिबिशॅन में गया एक चित्र खरीदने। चित्र का उसे शौक था। प्रदर्शनी में बड़े-बड़े चित्रकारों की पेंटिंग्स थी— सब उसे दिखायी गयी, पर उसे कोई जची नहीं। तब जो उसे दिखा रहा था, गाइड, उसने कहा, "फिर ऐसा करिये, आप अन्डर ग्राउन्ड पेंटिंग्स देखें। आपको ये कुछ जच नहीं रही हैं, तो इस प्रदर्शनी में छिपा हुआ हिस्सा भी है जहाँ सिर्फ़ न्यूड्स, नग्न स्त्रियों के चित्र हैं— वे आपको जरूर जंचेंगे।"

तो उसने कहा, "छोड़ो! मैं सर्जन हूँ मैं इतनी नग्न स्त्रियाँ देख चुका हूँ कि अब मैं डरता हूँ, जब फिर से मुझे नग्न स्त्री देखनी पड़ती है। नग्न स्त्रियाँ देख-देखकर मेरा न केवल नग्न स्त्रियों को देखने में रस खत्म हो गया है— मेरा सारा रोमांस, स्त्री के प्रति मेरा आकर्षण, काम वासना का उद्दाम वेग, वह सब शिथिल पड़ गया है।"

कपड़े ढांक-ढांककर हम शरीर में आकर्षण बढ़ा रहे हैं। जिस दिन दुनिया नग्न होगी, उस दिन कोई नग्न पोस्टर लगाने की जरूरत नहीं रह जायेगी। नग्न पोस्टर तरकीब है। इधर कपड़े से ढांको, तो फिर उघाड़कर दिखाने में रस आना शुरू हो जाता है। आदमी जब तक इस पूरे भीतरी उलझाव को, उपद्रव को न समझ ले, तब तक जीवन में सयम की जगह संयम के नाम पर एक कारागृह पैदा हो जाता है।

या तो भोग के अनुभव से गुजरो ताकि ऊब जाओ; और या फिर भीतर के विवेक को जगाओ ताकि शरीर की पकड़ खो जाये। इन दोनों से बचकर साधु तीसरे काम में लगा रहता है।

ये साधु जो सम्मेलन करते हैं कि अश्लील पोस्टर नही होने चाहिए, इनको जरूर कुछ बेचैनी है। बेचैनी यह है कि तुम सब मजा ले रहे हो! और ये बेचारे बड़े परेशान हैं। इनकी परेशानी का अन्त नही है।

अगर ये सच में ही सयम को उपलब्ध हुए होते और अगर इनको पता चला होता कि आत्मा और शरीर अलग है तो ये कहते कि– ठीक है, ये शरीर के नग्न चित्र हैं शरीर कोई आत्मा नही है– इसमें चिन्ता की क्या बात है?

लेकिन ये ज्ञानी भी, अगर स्त्री इनको छू ले, तो हटकर खड़ा हो जाता है। और यह कहता रहता है कि शरीर और आत्मा अलग है! और स्त्री का शरीर, तो बहुत दूर, उसका कपड़ा छू जाये तो भी इसमें रोमान्च पैदा होता है। ये हटकर खड़ा हो जाता है।

जो साधु स्त्रियो को अपने पैर नहीं छूने देता, स्त्रियाँ उसमें बड़ी उत्सुक होती हैं कि जरूर गजब का आदमी है! स्त्री उसी आदमी में उत्सुक होती है जो स्त्रियों में उत्सुक न हो। क्योंकि तब उसे लगता है कि जरूर अद्भुत है!

तो साधु स्त्री को पैर न छूने दे, पास न आने दे तो स्त्री भी मानती है, महात्मा पूरा है। लेकिन ये महात्मा को अभी इतना भी पता नहीं चल रहा है कि स्त्री की आत्मा तो कुछ स्त्री होती नहीं; पुरुष की आत्मा कोई पुरुष होती नहीं– शरीर ही में स्त्री और पुरुष होते हैं। और शरीर में भी क्या रखा है?

स्त्री-पुरुष का भेद क्या है? अगर जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहता है, बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके शरीर में दोनों ही अंग होते हैं– स्त्री-पुरुष के। कोई तीन सप्ताह बाद फ़र्क होना शुरू होता है। फ़र्क भी बड़ा मजेदार है। फ़र्क वही है जो शीर्षासन में होता है। पुरुष की इन्द्रियाँ बाहर आ जाती हैं, वे ही इन्द्रियाँ स्त्री में भीतर की तरफ मुड़ जाती हैं– जैसे कोट के खीसे को आप उलटा कर लें। बस, इतना फ़र्क है!

जरा भी फ़र्क़ नहीं है। जो शरीर की चमड़ी बाहर लटक जाती है वह पुरुष की इन्द्रिय बन जाती है, वही चमड़ी भीतर की तरफ़ सरक जाती है तो स्त्री की इन्द्रिय बन जाती है। बस, इतना ही फ़र्क़ है : कोट का पॉकेट उलटा या सीधा !

लेकिन ये शरीर का जिनको अनुभव हो रहा है कि शरीर-आत्मा अलग हैं, उनको भी इतने फ़र्क़ में इतना रस मालूम पड़ता है। वह रस उनके रोग की ख़बर देता है। उन्होंने जबरदस्ती अपने को रोक लिया है, कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ।

जबरदस्ती मुक्त नहीं कर सकती, सिर्फ़ समझ, अण्डरस्टैंडिंग, होश मुक्त कर सकता है।

महावीर कहते हैं : जब कोई व्यक्ति अपने इस आन्तरिक भेद को जान लेता है तब पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष सभी जान लिये जाते हैं। जब पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष जान लिये जाते हैं, तब देवता और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों की व्यर्थता स्पष्ट हो जाती है। उनसे विरक्ति सहज फलित होती है।

यह ज़रा समझने-जैसा है। क्योंकि जो आदमी जबरदस्ती दमन के द्वारा अपने को संयमी बना लेता है, भीतर पूरा अन्धेरा रहता है, बाहर-बाहर इन्तज़ाम कर लेता है अपने को रोकने का, इसकी वासना... इस जगत् से भला यह अपनी वासना को भीतर रोक ले, दूसरे जगत में संलग्न हो जाती है। यह स्वर्ग की कामना करने लगता है।

आपको पता होगा, कथाएँ हैं कि जब भी कोई ऋषि-मुनि अपनी तपश्चर्या में पूर्ण होने लगता है तो इन्द्र का सिंहासन डोलने लगता है।

यह बड़े मजे की बात है कि इन्द्र का सिंहासन किसी ऋषि-मुनि के तपस्या में ऊपर उठ जाने से क्यों डोलता है ? इसमें क्या सम्बन्ध है ? और इन्द्र के सिंहासन में ऐसा क्या ऋषि-मुनि को रस हो सकता है ? और इन्द्र इतना भयभीत क्यों होता है कि एक कॉम्पिटीटर, एक प्रतियोगी पैदा हो गया ? और इन्द्र वहाँ कर क्या रहा है— सिवा नाच-गाने, पीने के और वहाँ कुछ हो नहीं रहा है !

स्वर्ग का मतलब है : जहाँ इस संसार के सब दुख काट दिये हैं, और इस संसार के सब सुख अपनी पराकाष्ठा में रख दिये हैं। स्त्रियाँ वहाँ सोलह साल पर रुक जाती हैं, उससे ज्यादा उनकी उम्र नहीं बढ़ती।

यहाँ भी कोशिश तो बहुत करती हैं। मजबूरी है, कितनी ही कोशिश करो, शरीर तो उम्र पा ही लेता है। लेकिन वहाँ वह कोशिश सफल हो गयी है। स्वर्ग में सोलह वर्ष पर सारी अप्सराएँ रुक गयी हैं— उससे ज्यादा उम्र नहीं होती।

शरीर स्वर्ण-कांचन के पारदर्शी हैं। ट्रान्सपेरेन्ट कपड़े ही नहीं हैं—'सी

थ्रू' कि कपड़ों के पीछे से देख लो, शरीर भी 'सी थ्रू', पारदर्शी है; सब दिखाई पड़ेगा। कल्पवृक्ष है– जिनके नीचे जो ऋषि-मुनि तपश्चर्या करके पहुँच जाते हैं, वे बैठे हैं। जो भी वासना करो, तत्क्षण पूरी हो जाती है। यहाँ संसार में समय लगता है। कोई वासना करो, मेहनत करो, उपद्रव करो, भारी दौड़-धूप करो– जब तक पहुँचो, अधमरे हो चुके होते हैं। वो वासना भोगने की क्षमता उस वासना को प्राप्त करने की चेष्टा में ही नष्ट हो गयी होती है। लेकिन वहाँ स्वर्ग में कल्पवृक्ष के नीचे वासना का उठना और पूरा होना तत्क्षण है– युगपत् है सिमॅल्टेनियॅस!

किन्होंने ये स्वर्ग-कामना की है? किन्होंने यह स्वर्ग बनाया है? किनके सपनों का ये साकार रूप है? संयमी का? तो इसका मतलब हुआ कि यहाँ स्त्रियाँ छोड़ो ताकि वहाँ बेहतर स्त्रियाँ मिल सकें। कहाँ क्षुद्र धन की खोज में पड़े हो, कल्पवृक्ष की खोज करो।

तो भोगी कौन है?

दो तरह के भोगी हुए : एक जो नासमझ हैं, क्षुद्र के पीछे दौड़ रहे हैं, एक जो समझदार है,जो शाश्वत के पीछे दौड़ रहे हैं– जो ज्यादा चालाक हैं; ज्यादा होशियार हैं। महावीर इसको संयमी नहीं कहते।

महावीर कहते हैं कि अगर यहाँ किसी ने अपने को दबाया, तो वह किसी परलोक में भोगने की कामना से भर जायेगा। और यह कामना इतनी बेहूदी हो सकती है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। एक धर्म में केवल वहाँ हूरों और स्त्रियों का इन्तजाम है, वहाँ गिल्मो, खूबसूरत लड़कों का भी इन्तजाम है– बहिश्त में। क्योंकि जब वह धर्म पैदा हुआ तो उस देश में होमो-सेक्सुआलिटी प्रचलित थी। और पुरुष पुरुषों से भी प्रेम कर रहे थे। जब वह धर्म पैदा हुआ तो उसको अपने स्वर्ग में यह भी इन्तजाम करना पड़ा कि वहाँ हूरें तो हैं ही खूबसूरत, लेकिन गिल्मे, लौंडे भी वहाँ उपलब्ध हैं।

जिनके मन से ये वासना उठती होगी, इनको महावीर संयमी किस हालत में कह सकते हैं! यह संयम नहीं है। ये तो यहाँ दबाना और वहाँ इसको पाने की कोशिश है। ये तो दमित वासना का विकृत रूप है। इसलिए महावीर कहते हैं, स्वर्ग का आकांक्षी वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति नहीं है। मोक्ष का आकांक्षी धार्मिक व्यक्ति है।

यह जरा समझने-जैसा है कि महावीर स्वर्ग और नर्क को तो आपका ही फैलाव मानते हैं। उसमें कोई बहुत फ़र्क़ नहीं है। नर्क वह जगह है जहाँ आप दूसरों को भेजना चाहते हैं और स्वर्ग वह जगह है जहाँ आप जाना चाहते हैं। और कोई फ़र्क़ नहीं है।

महावीर कहते हैं कि मोक्ष वह जगह है जहाँ आप हैं– अभी भी, इस क्षण भी।

जो आपका स्वभाव है। वह कोई स्थान नहीं है, एक आन्तरिक बोध की अवस्था है। इसलिए उस अवस्था को हम 'बुद्धत्व' कहते हैं।

जहाँ बोध पूरा जग गया, वहाँ बुद्धत्व है।

'जब साधक पुण्य, पाप, बन्ध, और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों की व्यर्थता को जान लेता है।

तो देवता भी व्यर्थ ही भटक रहे हैं। इन्द्र भी इन्द्रियों के पार नहीं है। इसीलिए हमने उसको 'इन्द्र' नाम दिया है कि वह इन्द्रियों का सबसे श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रियों को भोगने की जो पराकाष्ठा है, वह इन्द्र है।

और बड़े मज़े की बात है उसने भी बड़ी तपश्चर्या से यह अवस्था पायी है। इसलिए जब भी कोई दूसरा वैसी तपश्चर्या करने लगता है, इन्द्र घबड़ा जाता है। तब वह क्या करता है, तब वह उर्वशी को या किसी और अप्सरा को भेजता है कि जाकर जरा इस साधु महाराज को थोड़ा डिगाओ, इन्हें थोड़ा हिलाओ, मेरा सिंहासन हिल रहा है– इन्हें थोड़ा हिलाओ तो मेरा सिंहासन थिर हो जाये। यह आदमी प्रतियोगी मालूम पड़ता है।

और बड़ा मजा यह है कि अप्सराएँ साधु-महात्माओं को डिगा जाती हैं। ये उसी साधु-महात्मा को डिगा सकती हैं, जिसने भीतर के बोध से संयम को नहीं पाया है, जो भीतर तो अँधेरे में खड़ा है, जिसने बाहर से ज़बरदस्ती थोप लिया है।

तो आप स्त्रियों से बच सकते हैं थोपकर, अप्सराओं से नहीं बच सकते; क्योंकि अप्सराएँ बाहर खड़ी नहीं होतीं, मन में खड़ी होती हैं। अप्सराएँ कल्पना के रूप हैं। इसलिए जो साधु जिस चीज का दमन करता है, उसी के सपने आने शुरू हो जाते हैं।

अब यह बड़े मज़े की बात है, जिन समाजों में . . . जैसे यहूदी हैं, वे अपने साधु को भी विवाह का मौका देते हैं। तो एक भी यहूदी सन्त के जीवन में ऐसा उल्लेख नहीं है कि जब वह परमज्ञान के पास आया, तो अप्सराओं ने उसे परेशान किया। करने का कोई कारण नहीं है। अप्सराएँ पहले ही काफ़ी परेशान कर चुकी हैं। अब कोई अप्सरा परेशान नहीं कर सकती।

तो यहूदी धर्म एक बहुत वैज्ञानिक बात मानता है कि उसके पुरोहित तो शादी-सुदा होने ही चाहिएँ, उसका सन्त तो शादी-सुदा होना ही चाहिए, नहीं तो वह स्त्रियों के पार नहीं जा पायेगा। और तब फिर आखिर में स्त्रियाँ सताती हैं।

जिन-जिन धर्मों ने स्त्री से बचने को संयम का प्राथमिक चरण बना दिया, उन-उन धर्मों में स्त्रियाँ सताती हैं। निश्चित ही कोई कारण है।

कारण साफ है : जो दबाया जाता है बाहर से, वह भीतर से उभरना शुरू हो

आता है। जिसे हम बाहर से छोड़ देते हैं, वह भीतर कल्पना में, स्वप्न में पकड़ लेता है। वह वहाँ सताने लगता है। अप्सराएँ कहीं आती नहीं बाहर से। उनके घुंघरू ऋषियों को ही सुनाई पड़ते हैं। उन्हीं के पास ग्वाले अपनी गायें चरा रहे हैं, उनको सुनाई नहीं पड़ते; उनको दिखाई नहीं पड़तीं वे अप्सराएँ— ऋषि ही परेशान होते हैं।

दमित वासना विकृत होकर स्वप्न बन जाती है। जो अपने को उपवास की साधना में लगा देते हैं बिना भीतर के ज्ञान के, उनको भोजन सताने लगता है। उनके सारे स्वप्न भोजन से भर जाते हैं। आप ज़रा किसी दिन उपवास करके देखें, बात साफ़ हो जायेगी। दिन में उपवास करें, रात सम्राट, जो अब बचे ही नहीं, वे आपको निमंत्रण देंगे— राज-भोज! वहाँ छप्पन प्रकार के व्यंजन आपके लिए तैयार हैं।

ये छप्पन प्रकार के व्यंजन ऋषि-मुनियों ने देखे नहीं, सिर्फ़ उपवास में इन्हें दिखाई पड़े हैं। यह कहीं है नहीं। फिर उनका रंग और उनकी सुगन्ध—— बात ही और है! वह अलौकिक है। वह इस लोक की है नहीं। इस पृथ्वी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

दमित चित्त विकृत हो जाता है। महावीर की साधना में कहीं भी दमन नहीं है— बोधपर जोर है, विवेक पर ज़ोर है, जागरूकता पर ज़ोर है।

लेकिन यह हुआ नहीं है। उनकी परम्परा में जो हुआ है, वह दमन है। और जितना उनके पीछे चलनेवालों ने दमन किया, इस ज़मीन पर किसी दूसरी धार्मिक परम्परा ने नहीं किया। जितना दमित जैन साधु है, उतना दमित कोई भी नहीं है।

दमन आसान है, जागरण कठिन है। जो आसान है वह हम कर लेते हैं, जो कठिन है उसे बाद के लिए पोस्टपोन करते चले जाते हैं। लेकिन जब तक वह कठिन न हो जाये, तब तक सब किया हुआ व्यर्थ है। उससे कोई मोक्ष की तरफ नहीं जाता— और नये जन्मों के बन्धन की तरफ़ उतर जाता है।

मोक्षमार्ग-सूत्र : ३

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; १० सितम्बर, १९७३

जया निव्विदए भोए
जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं,
सब्भिन्तर बाहिर ॥

जया चयइ संजोग,
सब्भिन्तरं बाहिरं ।
तया मुण्डे भवित्ताणं,
पव्वयइ अणगारियं ॥

जया मुण्डे भवित्ताणं,
पव्वयइ अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठ
धम्मं फासे अणुत्तर ॥

जया संवरमुक्किट्ठ,
धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं,
अबोहिकलुसं कड ॥

जया धुणइ कम्मरयं,
अबोहिकलुस कड ।
तया सव्वत्तग नाण
दसण चाभिगच्छइ ॥

जब देवता और मनुष्य सबन्धी समस्त काम-भोगों से (साधक) विरक्त हो जाता है, तब अन्दर और बाहर के सभी सांसारिक सम्बन्धों को छोड देता है ।

जब अन्दर और बाहर के समस्त सासारिक सम्बन्धो को छोड देता है, तब मुण्डित (दीक्षित) होकर (साधक) पूर्णतया अनगार वृत्ति (मुनिचर्या) को प्राप्त करता है ।

जब मुण्डित होकर अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब (साधक) उत्कृष्ट सवर एव अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है ।

जब (साधक) उत्कृष्ट संवर एव अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब (अन्तरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को झाड़ देता है ।

जब (अन्तरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को दूर कर देता है, तब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है ।

काम-भोग से विरक्ति महावीर के साधना-पथ की अत्यन्त अनिवार्य भूमिका है। कामवृत्ति का अर्थ है, मैं अपने से बाहर जा रहा हूँ। कामवृत्ति का अर्थ है, मेरा सुख किसी और में निर्भर है। कामवृत्ति का अर्थ है, मैं स्वयं अपने में पर्याप्त नहीं हूँ, कोई और मुझे पूरा करने को जरूरी है।

साफ है कि कामवृत्ति से घिरा हुआ व्यक्ति कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। जब तक दूसरा मेरे सुख का कारण है, तब तक दूसरा ही मेरे दुख का कारण भी होगा। और जब तक दूसरा मेरे जीवन का कारण बना है, तब तक मैं स्वतंत्र नहीं हूँ।

जब तक हम दूसरे पर निर्भर रहे चले जाते हैं, तब तक स्वतन्त्रता का कोई स्पर्श भी नहीं हो सकता। इसलिए कामवृत्ति मौलिक बन्धन है। और जो कामवृत्ति से विरक्त हो जाता है, वह अनिवार्यतः अपनी ओर मुड़ना शुरू हो जाता है। लेकिन लोग काम-वृत्ति से विरक्त क्यों नहीं हो पाते? सुख की झलक दिखाई पड़ती है, सुख कभी मिलता नहीं; दुख काफी मिलता है। लेकिन सुख की आशा में आदमी झेले चला जाता है।

इस बात को थोड़ा ठीक से, गौर से देख लेना जरूरी है कि हम जीवन की इतनी पीड़ाएँ क्यों झेले चले जाते हैं। आशा में कि आज सुख नहीं मिला, कल मिलेगा, इस व्यक्ति से सुख नहीं मिला, दूसरे व्यक्ति से मिलेगा; इस सम्बन्ध से सुख नहीं मिला तो दूसरे सम्बन्ध से सुख मिलेगा। लेकिन सुख दूसरे से मिल सकता है, यह हमारी स्वीकृत धारणा है। और यही धारणा सबसे ज्यादा खतरनाक धारणा है।

सुख दूसरे से कभी किसी को नहीं मिला। कभी यह घटना ही इतिहास में नहीं घटी कि कोई दूसरे से सुखी हो गया हो। हाँ, दूसरे से सुख मिलने की आशा बांधे हुए व्यक्ति बहुत दुखी जरूर होता है। लेकिन फिर भी आशा बँधी रहती है। हम भविष्य में ताकते रहते हैं, झाँकते रहते हैं।

यह आशा जब तक न टूट जाये जीवन के अनुभव से, तब तक विरक्ति का कोई जन्म नहीं है। और जब हम दूसरे से सुख पाने की आशा रखते हैं, तो स्वभावतः जो भी हमारे जीवन में घटित हो, हम दूसरे को ही उसके लिए जिम्मेवार माने चले जाते

हैं। इसलिए खुद की अन्तरजीवन-धारा से सम्पर्क स्थापित नहीं होता। और वही सम्पर्क क्रान्ति ला सकता है।

चाहे सुख हो, चाहे दुख; चाहे सुविधा हो, चाहे असुविधा, हम सदा दूसरे की तरफ आँखें लगाये रखते हैं। यह दूसरे की तरफ लगी हुई आँखेंही कामवृत्ति है। अगर कोई परमात्मा की तरफ भी आँखे लगाये हुए है कि उससे सुख मिलेगा, आनन्द मिलेगा, तो महावीर कहेंगे, वह भी कामवृत्ति है; वह भी कामना का ही दिव्य रूप है– लेकिन कामना ही है।

इस मन की साधारण जकड़ को अपने ही जीवन के अनुभव में खोजना चाहिए। जब भी कुछ घटता है, आप तत्क्षण दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने वकील के पास गयी थी। और उससे बोली कि अब बहुत हो चुका, और अब आगे सहना असम्भव है। अब तलाक का इन्तजाम करवा ही दें।

उसके वकील ने पूछा कि ऐसा क्या कारण आ गया है? तो उसने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन विश्वासघाती है। उसने मुझे धोखा दिया है। निश्चित ही उसके दूसरी स्त्रियों से सम्बन्ध हैं। और, अब और सहना असम्भव है।

वकील ने पूछा, "कोई प्रमाण? क्योंकि प्रमाण की जरूरत होगी। और कैसे तुम्हें पता चला, इसका कोई ठीक-ठीक सबूत, कोई गवाह?"

उसकी पत्नी ने कहा, "किसी गवाह की कोई जरूरत नहीं है। आइ ऐम प्रेटी श्योर दैट ही इज नॉट दि फादर ऑव माइ चाइल्ड – पूर्ण निश्चय है मुझे कि मेरे बच्चे का पिता मुल्ला नसरुद्दीन नही है।"

लेकिन हमारा जैसा मन है, उसमे हम सदा दूसरे को ही जिम्मेवार ठहराते हैं। हम दूसरे को परदे की तरह बना लेते हैं और जो कुछ भी है उसे प्रोजेक्ट करते हैं, उसे परदे पर डालते चले जाते हैं। धीरे-धीरे प्रोजेक्टर तो दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है....।

आप फिल्म गृह में बैठते हैं, तो आप पीछे लौटकर कभी नही देखते जहाँ असली फिल्म चल रही है; परदे पर ही देखते रहते हैं, जहाँ केवल छाया पड़ रही है। प्रोजेक्टर तो आपकी पीठ के पीछे लगा होता है– जहाँ से फिल्म आ रही है, जहाँ से प्रकाश की किरणे आ रही हैं; लेकिन दिखाई परदे पर पड़ती है। आप वहीं देखते रहते हैं। परदा सब कुछ हो जाता है, जो मूल नहीं है।

हर दूसरा व्यक्ति, जिससे हम सम्बन्धित होते हैं, परदे का काम करता है।

भीतर से वृत्तियाँ आती हैं, हम उसपर ढालते चले जाते हैं। इसलिए जो हमारे निकट होते हैं, वे ही हमारे लिए परदा बन जाते हैं। और फिर हम यह भूल ही जाते हैं कि हमारे भीतर कुछ घट रहा है, जो उनमें दिखाई पड़ता है; उनकी आँखों में, उनके चेहरों में, उनके व्यवहार में।

यह सारा जगत एक परदा है और सारे सम्बन्ध परदे हैं और प्रोजेक्टर हमारा अपना मन है। और अगर इस परदे पर हम कुछ बदलाहट करना चाहें तो असम्भव है। अगर कोई भी बदलाहट करनी हो तो पीछे प्रोजेक्टर कोही बदलना होगा, जहाँसे स्रोत है।

धर्म की खोज ही तब शुरू होती है, जब मैं परदे को भूलकर उसे देखना शुरू कर देता हूँ जहाँ से मेरे जीवन का स्रोत है, जहाँ से सारी वृत्तियाँ आ रही है और जग रही हैं। जैसे ही मुझे यह दिखाई पडने लगता है कि मैं ही जिम्मेवार हूँ, सुख और दुख मैं ही पैदा कर रहा हूँ, मेरे सम्बन्ध भी मेरे ही भीतर से आ रहे हैं, दूसरा केवल बहाना है, वैसे ही व्यक्ति कामवृत्ति के ऊपर उठना शुरू हो जाता है।

लेकिन, जीवन के गणित को पकड़ने मे थोड़ी-सी कठिनाई है। एक स्त्री को आप प्रेम करते हैं, दुख पाते हैं, कलह है-- संघर्ष है।

बाइबिल में पुरानी कथा है -- बाइबिल मे दो कथाएँ है एक कथा आपने सुनी है, दूसरी आमतौर से प्रचलित नही है, उसे भुला दिया गया है।

एक कथा है कि परमात्मा ने अदम को बनाया और अदम के साथ ही लिलिथ नाम की स्त्री को बनाया। दोनों को एक-सा बनाया, समान बनाया। बनाकर वह निपटा भी नही था कि दोनों मे झगड़ा शुरू हो गया। झगड़ा इस बात का था कि कौन ऊपर सोये, कौन नीचे सोये। लिलिथ ने कहा : मैं तुम्हारे समान हूँ। मुझे भी परमात्मा ने बनाया है, और उसी मिट्टी से बनाया है जिस मिट्टी से तुम्हे बनाया। और मेरे भी प्राणो मे श्वास डाली और तुम्हारे प्राणों में भी श्वास डाली; हम दोनों एक के ही निर्माण है और एक ही मिट्टी और एक ही प्राण से बने हैं। तो नीचे-ऊपर कोई भी नही है।

यह कलह इतनी बढ़ गयी कि इस कलह को सुलझाने का कोई उपाय न रहा। तो लिलिथ ने परमात्मा से प्रार्थना की कि मुझे अपने में विलीन कर लो। लिलिथ विलीन हो गयी। फिर दूसरी कथा यह है कि फिर आदमी अकेला हो गया और अकेले में उसको बेचैनी होने लगी।

आदमी की बड़ी कठिनाई है : अकेला भी नहीं रह सकता और किसी

के साथ भी नहीं रह सकता। अकेला रहे तो लगता है, जीवन में कुछ भी नहीं है और किसी के साथ रहे तो जीवन कलह से भर जाता है।

तो उसको अकेला, उदास, परेशान देखकर परमात्मा ने फिर स्त्री बनायी। लेकिन इस बार उसका ही एक स्पेअर पार्ट, उसकी ही एक हड्डी निकालकर बनायी। ईव, यह दूसरी स्त्री परमात्मा ने बनायी नम्बर दो ताकि कलह न हो।

ये दोनो कहानियाँ बड़ी प्रीतिकर है। पहली कहानी भूला दी गयी है, दूसरी कहानी जारी है। सोचा उसने जरूर होगा कि अब कलह न होगी, क्योंकि मनुष्य की ही हड्डी से बनायी हुई स्त्री है। लेकिन कलह में इससे कोई अन्तर नहीं पडता।

असल में जब भी हम दूसरे पर निर्भर होते हैं, तो कलह शुरू हो चुकी, और दूसरा हम पर निर्भर हो चुका। और जिस पर हम निर्भर होते है, उसके साथ बेचैनी, तकलीफ. . . क्योंकि हमारी स्वतन्त्रता खो रही है, हमारी आत्मा खो रही है।

सभी सम्बन्ध आत्माओं का हनन करते है। जैसे ही हम सम्बन्धित होते है कि मेरी जो निजता थी, मेरा जो अपना होना था, टु बी माइ सेल्फ, वह नष्ट होने लगा। दूसरा प्रविष्ट हो गया। दूसरा भी अपना काम शुरू करेगा। वह चाहेगा कि मै ऐसा होऊँ। और मै भी यही चाहूँगा कि दूसरा ऐसा हो। कलह शुरू हो गयी।

बाइबिल की कथा के हिसाब से पिछले पांच हजार सालो में अदम और उसकी स्त्री, दोनो के बीच जो सम्बन्ध थे, उसमें अदम मालिक था और स्त्री गुलाम थी। यह अदम और ईव की कथा चलती रही। लेकिन अब पश्चिम में ईव ने लिलिथ बनना शुरू कर दिया है। अब वह समान हक माग रही है। दूसरी कहानी आनेवाली सदी में महत्त्वपूर्ण हो जायेगी।

स्त्रियाँ यहाँ तक पश्चिम में दावा कर रही है, जो बड़े महत्त्वपूर्ण है, सही भी है—समानता के दावे. . . । लेकिन जैसे ही समानता खड़ी होती है, कलह कम नही होती और बढ़ जाती है। स्त्रियाँ सोचती है, समानता हो जाये तो कलह कम हो जायेगी।

असल में दो व्यक्ति जब भी सम्बन्धित होंगे और एक-दूसरे पर निर्भर होंगे, और एक-दूसरे को बदलने की कोशिश करेंगे अपने अनुसार, तब कलह होगी ही—क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की आत्मा मे प्रवेश कर रहा है और गुलामी निर्मित करने की कोशिश कर रहा है।

पश्चिम में एक स्त्री, जो कि एक समूह का नेतृत्व कर रही थी, और पुलिस ने उस समूह पर हमला किया और उस स्त्री के पास खड़ी एक स्त्री को चोट लग गयी

और वह रोने लगी, तो उस स्त्री ने कहा : घबडाओ मत, गॉड इज सीइंग एव्हरी थिंग । गॉड शी विल डू जस्टिस । ईश्वर सब देख रहा है– लेकिन शी विल डू ।

ईश्वर को भी 'ही' कहना पश्चिम में स्त्रियों ने बन्द कर दिया है, क्योंकि वह पुरुष सूचक है । परमात्मा भी स्त्री है । और पुरुषों ने ज्यादती की है अब तक उसको पुरुष कहकर ।

कलह आखिरी सीमा पर पश्चिम मे आकर खड़ी है, जहाँ परिवार पूरी तरह टूट जाने को है । लेकिन परिवार पूरी तरह टूट जाये, इससे कलह बन्द नहीं होता, कलह सिर्फ फैल जाता है, एक स्त्री से न होकर बहुत स्त्रियो से होने लगता है ।

सम्बन्ध के भीतर कलह क्यो है, इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है । और सम्बन्ध को हम कैसा ही बनाये, कलह होगी । महावीर का क्या सूत्र है इस कलह के बाहर जाने का ?

महावीर कहते हैं : कलह दूसरे के कारण नही है, कलह मेरी ही कामना के कारण है । अगर ऐसा सम्बन्ध कोई हो सके, जहाँ दोनो ही व्यक्ति कामवृत्ति से भरे हुए नहीं हैं, तो कलह विदा हो जायेगा । अगर जरा-सी भी कामवृत्ति मौजद है, तो कलह जारी रहेगी ।

जो आदमी दूसरे से सुख या दुख पाने की कोशिश कर रहा है, या स्त्री सुख या दुख पाने की कोशिश कर रही है, वे दुख मे और पीड़ा मे, और नर्क में अपने को उतार ही रहे हैं । क्योकि महावीर कहते हैं और सभी ज्ञानियों की सहमति है कि आनन्द का स्रोत भीतर है, दूसरे की तरफ आँख रखना भ्रान्ति है, वहाँ भिक्षा-पात्र फैलाना व्यर्थ है, वहा से न कुछ कभी मिला है और न मिल सकता है ।

इसे हम अनुभव भी करते हैं । लेकिन जब एक स्त्री से दुख पाते हैं; एक पुरुष से दुख पाते हैं, तो हम सोचते हैं कि यह स्त्री गलत है, यह पुरुष गलत है; इतनी बड़ी पृथ्वी है, जरूर कोई ठीक पुरुष, कोई ठीक स्त्री होगी, जिससे मेरा सम्बन्ध हो तो यह पीड़ा नहीं होगी ।

यही सारी भूल का गणित है । और हम कितनी ही स्त्रियों को बदलते चले जाये, तो भी पृथ्वी बड़ी है । और कितने ही पुरुषों को बदलते चले जायें– पृथ्वी बड़ी है । स्त्रियाँ सदा बाकी रहेंगी, पुरुष सदा बाकी रहेंगे, और वह भ्रान्ति कायम रहेगी कि शायद कोई न कोई पुरुष, कोई न कोई स्त्री हो सकती थी, जिससे मेरा सम्बन्ध स्वर्ग बन जाता !

वह कभी नही हुआ है । वह कभी होगा भी नहीं । लेकिन आशा को उपा

है। और वह आशा भटकाये चली जाती है। जब तक यह आशा न टूट जाये, जब तक एक स्त्री का अनुभव स्त्री मात्र का अनुभव न समझ लिया जाये; और जब तक एक पुरुष का अनुभव पुरुषमात्र का अनुभव न बन जाये; जब तक एक सम्बन्ध की व्यर्थता सारे सम्बन्धों को व्यर्थ न कर दे, तब तक कोई व्यक्ति कामवृत्ति से ऊपर नहीं उठता।

हम कभी भी पूरा अनुभव नही कर पाते। पूरा अनुभव कर भी नही सकते। विज्ञान तक, जो कि सार्वभौम-- युनिव्हर्सल नियम खोजने की कोशिश करता है, वह भी पूरे अनुभव नही कर पाता। और सन्देह जो लोग करते हैं, वे किय जा सकते हैं।

डेविड ह्यूम बहुत कीमती विचारक हुआ इग्लैण्ड में, उसने सदेह किया है विज्ञान के ऊपर। विज्ञान कहता है कि कही भी पानी को गर्म करो सौ डिग्री पर, तो पानी भाप बन जायेगा। लेकिन ह्यूम कहता है : क्या तुमने सारे जगत के पानी को भाप बनाकर देख लिया है ? तो जल्दी मत करो! क्योंकि कहीं एसा पानी मिल भी सकता है, जो सौ डिग्री पर भाप न बने। तो यह वैज्ञानिक नही है घोषणा। तुमने जितने पानी को भाप बनाकर देखा है, उतने पानी के बाबत कहो कि यह भाप बन जाता है, सौ डिग्री पर, लेकिन शेष पानी बहुत है। उस पानी के सम्बन्ध में तुम्हारी कोई भी घोषणा अवैज्ञानिक है।

बात तो वह ठीक कह रहा है। विज्ञान की भी सामर्थ्य नही है कि वह सारे पानी को पहले भाप बनाकर देखे। दस पचास हजार बार प्रयोग दोहराया जा सकता है और फिर विज्ञान मान लेता है कि यह असंदिग्ध है; क्योंकि सभी जगह पानी एक ही नियम का पालन करेगा। पानी का स्वभाव सौ प्रयोगों से पकड लिया जाता है। अब सारे पानी को भाप बनाने की जरूरत नहीं है। लेकिन तर्क की तरह तो ठीक कह रहा है ह्यूम। ठीक वही मुसीबत आदमी के मन की भी है।

एक स्त्री का अनुभव स्त्रैण तत्त्व का अनुभव है। लेकिन हम समझते हैं, यह केवल एक व्यक्ति-स्त्रीका अनुभव है। गलत ख्याल है! एक-एक स्त्री उसी तरह स्त्रैण तत्त्व का प्रतीक है, जैसे पानी की एक बूंद सारे जगत के पानी का प्रतीक है; एक पुरुष सारे पुरुष तत्त्व का प्रतीक है। जो फासले हैं, फर्क हैं, वे गौण हैं, मौलिक बात एक पुरुष में मौजूद है।

और एक पुरुष का स्वभाव जिस ढंग से बरतता है, उसी ढंग से सारे पुरुष बरतते हैं। उनमें जो फर्क हैं डिटेल्स के हैं, विस्तार के हैं : कि कहीं किसी नदी का पानी

थोड़ा नीला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा मटमैला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा हरा है, और किसी नदी का पानी थोड़ा शुभ्र है-- ये डिटेल्स के फर्क हैं। इनसे सौ डिग्री पर। पानी गर्म होगा, इसमें कोई भेद नहीं पड़ता।

किसी स्त्री की नाक थोड़ी लम्बी है और किसी स्त्री की नाक थोड़ी छोटी है, और कोई स्त्री थोड़ी गोरी है, और कोई स्त्री थोड़ी काली है-- इसमें कोई फर्क नही पड़ता। और कोई स्त्री हिंदू घर में पैदा हुई है और कोई मुसलमान घर में-- इससे भी कोई फर्क नही पड़ता। उसकी जो मौलिक स्थिति है-- स्त्रैणता--वह वैसी ही है, जैसे सारे जगत का पानी। एक बूंद खबर दे देती है; लेकिन हम जन्मों-जन्मों से अनेक बूंदों का अनुभव करके भी निष्कर्ष नही ले पाते; क्योंकि सारे जगत का पानी तो कायम रहता है।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति एक अनुभव को इतना गहराई से ले और उसको सार्वभौम बना ले, उसको फैला ले पूरे जीवन पर-- वही कामवृत्ति से मुक्त हो पायेगा-- अन्यथा स्त्रियाँ सदा शेष हैं, पुरुष सदा शेष है, सम्बन्ध सदा शेष है; आशा कायम रहती है।

जैसा विज्ञान तय करता है थोड़े-से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम, वैसे ही धर्म भी तय करता है थोड़े से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम। मैं न मालूम कितने लोगों को निकट से अध्ययन करता रहा हूँ। सारे फर्क ऊपरी है, भीतर रत्तीमात्र फर्क नही है। सारे फर्क वस्त्रों के हैं, कहना चाहिए भाषा के, व्यवहार के, आचरण के सब ऊपर हैं। क्योंकि हरेक व्यक्ति का जन्म अलग ढंग से हुआ है, अलग व्यवस्था में, अलग नियम, नीति, समाज-- सब फर्क ऊपरी हैं। जरा चमड़ी के भीतर प्रवेश करो, वहाँ एक ही पानी बह रहा है।

एक का अनुभव ठीक से ले लिया जाये तो हम इस बोध को उपलब्ध हो सकते हैं कि बहुत अनुभवों में भटकने की कोई जरूरत नही। लेकिन कोई चाहे तो बहुत अनुभवों में भी भटके, लेकिन कभी न कभी उसे यह नियम की तरह स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि इतने अनुभव काफी है, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूं। जिस दिन व्यक्ति सोचता है, इतने अनुभव काफी है, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूँ, उस दिन जीवन में क्रान्ति शुरू हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन काफी बूढ़ा हो गया था। वह और उसकी पत्नी अदालत में खड़े हैं। और मजिस्ट्रेट ने कहा कि हद कर दी नसरुद्दीन! अब इस उम्र में तलाक देने का पक्का किया?

नसरुद्दीन ने कहा कि उम्र से इसका क्या सम्बन्ध ?

मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम्हारी उम्र कितनी है ?

नसरुद्दीन ने कहा, कि चौरानबे वर्ष। और उसकी पत्नी से पूछा। उसने शर्माते हुए कहा, चौरासी वर्ष

मजिस्ट्रेट भी थोड़ा बेचैन हुआ। उसने नसरुद्दीन से पूछा, और तुम्हारी शादी हुए कितना समय हुआ ?

नसरुद्दीन ने कहा, कोई अड़सठ वर्ष !

मजिस्ट्रेट बड़े अविश्वास से भर गया, उसने कहा कि करीब-करीब सत्तर साल तुम्हारी शादी को हो चुके हैं, और अब तुम तलाक करना चाहते हो ? सत्तर साल साथ रहने के बाद !

नसरुद्दीन ने कहा, "योर ओनर, बिव एवर वे यू लुक, इनफ इज इनफ़— अब, बहुत हो गया, काफी हो गया। और काफी काफी है।"

आप अपने जीवन मे करीब-करीब पुनरुक्त करते चले जाते हैं चीजो को और इनफ इज इनफ़ कभी भी नही आ पाता। ऐसा कभी अनुभव नहीं होता कि अब काफी है। और जिस व्यक्ति को ऐसा अनुभव हो, उसके जीवन मे विरक्ति की पहली किरण उतरती है। महावीर कहते हैं : 'जब देवता और मनुष्य सम्बन्धी समस्त काम-भोगो से साधक विरक्त हो जाता है, तब अन्दर और बाहर के सभी सामाजिक सम्बन्धो को छोड देता है।'

'विरक्त हो जाता है।' विरक्ति कोई आयोजना नही हो सकती। आप चेष्टा करके विरक्त नही हो सकते। अनुभव की परिपक्वता ही विरक्ति ला सकती है। आप कच्चे में ही विरक्त नही हो सकते। आप जीवन से भागकर और पलायन करके विरक्त नही हो सकते। आप सोचकर, महावीर को पढकर, ज्ञानियो को सुनकर विरक्त नही हो सकते। उतना काफी नहीं है। आपके अनुभव से मेल बैठना चाहिए।

ज्ञानी तो कहते रहे है, कहते चले जाते है, लेकिन आपको कोई फर्क नही पडता। हाँ, आपमें से कुछ नासमझ कभी-कभी बिना परिपक्व हुए, बिना जीवन के अनुभव से विरक्ति को निकाले, किसी की चर्चा, विचार, तर्क से प्रभावित होकर सन्यस्त हो जाते हैं। उनका संन्यास कच्चा है। और उनका संन्यास कभी भी मुक्ति नही बन सकेगा। उनके संन्यास का मूल आधार ही गलत है। वे जीवन से विरक्त होकर सन्यस्त नही बने हैं, बल्कि साधु से आसक्त होकर संन्यस्त बने हैं। इसे थोड़ा ठीक से समझ ले।

साधु में बड़ा प्रभाव है। साधुता का अपना आकर्षण है। साधुता मैगनेटिक है। उससे बड़ा कोई मैगनेट दुनिया में होता नहीं। महावीर खड़े हों तो आप साधु हो जायेंगे।

लेकिन ध्यान रहे, यह साधुता आपके अनुभव से आ रही है या महावीर के आकर्षण से, प्रबल आकर्षण से? अगर महावीर के प्रबल आकर्षण से यह साधुता आ रही है तो विरक्ति को थोपना पड़ेगा। जो महावीर के लिए सहज है, वह हमारे लिए प्रयास होगा।

सहज मोक्ष तक ले जाता है, प्रयास कहीं भी नहीं ले जाता। प्रयास सिर्फ असत्य तक ले जाता है। जिस चीज को भी हमें प्रयास कर-करके थोपना पड़ता है वह झूठ हो जाती है। हमारा पूरा जीवन इसी तरह झूठ हो गया है प्रयास कर-करके।

माँ कह रही है कि मैं तेरी माँ हूँ, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। बाप कह रहा है, मैं तेरा बाप हूँ, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। जिस दिन उसके जीवन में प्रेम का फूल खिलता, उस दिन वह अनायास होता। अभी यह सब प्रयास हो रहा है। और खतरा यह है कि इस प्रयास से वह इतना आवृत हो जायेगा कि उसके जीवन में प्रेम का सहज फूल कभी खिल ही न सकेगा।

इस दुनिया में हजारों में कभी एकाध आदमी प्रेम को उपलब्ध हो पाता है, नौ सौ निन्यानबे नष्ट हो जाते हैं। वे बीज कभी अंकुरित ही नहीं होते, क्योंकि इसके पहले कि बीज से अंकुर फूटता, उनपर जबरदस्ती थोप-थोपकर कुछ चीजें लाद दी गयीं, जिनकी वे चेष्टा करने लगे। फिर चेष्टा इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि सहजता को जन्मने का मौका नहीं रहता।

सहज और चेष्टा में विपरीतता है। एक विरक्ति है, जो आपके अनुभव से आती है—जीवन के दुख का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की पीड़ा का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की व्यर्थता की स्पष्ट प्रतीति आपके ही जीवन और बोध में है। महावीर के वचन और बुद्ध के वचन काम कर सकते हैं कि आपके अनुभव को सही साबित करें, गवाह बन जायें कि आपने अपने जीवन में जो जाना, उनके वचनों से आपको लगा कि ठीक महावीर भी वही कह रहे हैं कि जीवन व्यर्थ है।

यह आपकी प्रतीति पहले थी, महावीर केवल गवाही हैं— इस फर्क को थोड़ा ठीक से समझ लें। वे सिर्फ एक विटनेस हैं। उनका कहना भी आपके ही अनुभव को प्रगाढ़ कर रहा है। तो विरक्ति जो आपमें खिलेगी वह अनायास होगी, सहज होगी। उसकी सुगन्ध अलग है। और अगर महावीर आपको आकृष्ट कर लेते हैं— उनका

आनन्द, उनकी शान्ति, उनका उठना, उनका बैठना, उनका मोहक जादू भरा व्यक्तित्व, वह आपको आकर्षित कर लेता है—तो आप उस आसक्ति में अगर संसार से विरक्त होते हैं, तो आप कच्चे ही टूट जायेंगे और आप बुरी तरह भटकेंगे; क्योंकि आपके पैर के नीचे जमीन नहीं है। और यह विरक्ति झूठी है। सच मे तो यह एक नयी तरह की आसक्ति है। गुरु की आसक्ति है, ज्ञानी की आसक्ति है— तीर्थंकर, पैगंबर, अवतार की आसक्ति है।

और ध्यान रहे, कोई स्त्री क्या आकर्षित करेगी किसी पुरुष को, कोई पुरुष क्या आकर्षित करेगा किसी स्त्री को, जैसा कि एक तीर्थंकर लोगों को आकर्षित कर लेता है। नही कि वह करना चाहता है— उसका होना ही, उसकी मौजूदगी चुम्बक की तरह आपको खींचने लगती है।

जो व्यक्ति किसी से प्रभावित होकर धार्मिक हो जाता है, वह धार्मिक होने का अवसर खो देता है। बहुत सचेत होने की जरूरत है। और जब तीर्थंकर और पैगंबरों के करीब से गुजरने का मौका मिले, तब तो बहुत सचेत होने की जरूरत है. तब बहुत सावधान होने की जरूरत है। नही तो खाई से निकले और गड्ढे मे गिरे। कोई फर्क नही रह जाता। मोह नये ढग से पकड़ लेता है, आसक्ति नये ढग से पकड़ लेती है।

अगर आपके अनुभव मे ऐसी रेखा आ गयी है कि जीवन सिर्फ एक दुख है ...।

बहुत लोगों को लगता है कि जीवन दुख है। लेकिन उनके लगने से विरक्ति पैदा नही होती। क्या कारण होगा? आपको भी बहुत बार लगता है, जीवन दुख है, लेकिन ऐसा नही लगता कि जीवन का स्वभाव दुख है। आपको ऐसा लगता है कि मैं असफल हो गया, इसलिए दुख है; कि ठीक परिवार न मिला, ठीक जगह न मिली, ठीक समय न मिला, सहयोग न मिला, संगी-साथी न मिले, प्रेमी न मिले, मैं असफल हो गया, इसलिए जीवन दुख है।

जीवन दुख है, ऐसा आपको नही लगता। अपनी असफलता मालूम पड़ती है, क्योंकि कई लोगों का जीवन सुख मालूम पड़ता है। यह बड़े मजे की बात है कि अपने को छोड़कर सभी का जीवन लोगों को सुख मालूम पड़ता है। और यह सभी को ऐसा लगता है। खुद को छोड़कर सब लोग लगते हैं कि सुखी है— कैसे मुसकराते, आनन्दित सड़कों पर गीत गाते चल रहे हैं! एक मैं ही दुखी हूँ। मगर यही प्रतीति सबकी है।

बहुत लोग हैं, जो आपको भी सुखी मान रहे हैं। बहुत लोग आपसे ईर्ष्या कर

रहे हैं। ईर्ष्या पैदा ही न हो, अगर यह प्रतीति हो जाये कि सभी लोग दुखी हैं। कोई अपनी गरीबी में दुखी है, कोई अपनी अमीरी में दुखी है। कोई सफलता में दुखी है, कोई असफलता में दुखी है, लेकिन दुख का कोई भेद नहीं है, लोग दुखी हैं।

जीवन दुख है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है। अगर आपको ऐसा लगता है कि मैं दुखी हूँ, तो फिर आप विरक्त नहीं हो सकते, आप नये जीवन की तलाश करेंगे। यही तो हम करते रहे हैं जन्मों-जन्मों से। ऐसे जीवन की तलाश करेंगे– जहाँ सफलता मिले, धन मिले, समृद्धि मिले, यश मिले, पद-प्रतिष्ठा मिले। इस बार चूक गये, कोई हरज नहीं, अगली बार नहीं चूकेंगे।

जीवन व्यर्थ नहीं होता, एक जीवन व्यर्थ होता है– लेकिन हम दूसरे जीवन की तलाश में निकल जाते हैं। पुनर्जन्म का सूत्र यही है कि हमारी वासना जीवन से नहीं छूटती। एक जीवन व्यर्थ होता है तो दूसरे जीवन को पकड़ती है, दूसरा व्यर्थ होता है तो तीसरे को पकड़ती है। अन्तहीन है यह शृंखला।

जब महावीर कहते हैं, जीवन व्यर्थ है या बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है, तो उनका मतलब यह नहीं है कि आपका जीवन दुख है। उनका कहना यह है कि जीवन का स्वभाव, जीवन के होने का ढंग ही पीड़ा है। जब ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे तो जो विरक्ति पैदा होती है, उस विरक्ति से व्यक्ति अन्दर और बाहर के सभी सांसारिक सम्बन्धों को छोड़ देता है।

यहाँ एक और मजे की बात समझ लेना है। महावीर यह नहीं कहते कि सम्बन्धियों को छोड़ देता है, कहते हैं सम्बन्धों को छोड़ देता है। यह जरा गहन है, नाजुक है।

मेरी पत्नी है, तो जब मुझे विरक्ति का अनुभव होगा तो मैं पत्नी को छोड़ दूंगा– यह बहुत गौण और सीधी दिखाई पड़ने वाली बात है, स्थूल है। लेकिन महावीर यह नहीं कहते कि सम्बन्धियों को छोड़ देता है, महावीर कहते हैं, सम्बन्धों को छोड़ देता है।

सम्बन्ध बड़ी अलग बात है। पत्नी वहाँ है, और पत्नी से मैं हजार मील दूर भी हो जाऊँ, तो भी सम्बन्ध के टूटने का कोई मतलब नहीं है। सम्बन्ध बहुत इलास्टिक है; इन्फिनिटली इलास्टिक है। पत्नी दस हजार मील दूर है, तो दस हजार मील दूर तक मेरा सम्बन्ध फैल जायेगा। वह धागा बना रहेगा। उसको तोड़ना मुश्किल है।

पत्नी को चाँद पर भेज दो– कोई फर्क नहीं पड़ता, यहाँ से लेकर चाँद तक

सम्बन्ध का धागा फैल जायेगा। वह कोई भौतिक घटना नहीं है कि उसको कोई अड़चन हो। वह मानसिक घटना है। शायद पत्नी दूर हो, तो सम्बन्ध ज्यादा भी हो जाये।

अक्सर तो ऐसा ही होता है लोगों को। पत्नी को फिर से प्रेम करना हो, तो मायके भेज देना जरूरी होता है। थोड़ा फासला हो, फिर रस भर आता है। थोड़ा फासला हो, फिर आकांक्षा जग आती है। व्यक्ति दूर हो, तो उसकी बुराइयाँ दिखनी बन्द हो जाती हैं, और भलाइयों का ख्याल आने लगता है। व्यक्ति पास हो, तो, बुराइयाँ दिखती हैं और भलाइयाँ भूल जाती हैं।

थोड़ा फासला चाहिए। फासला कभी-कभी हितकर हो जाता है। महावीर कहते हैं, सम्बन्धी नहीं, सम्बन्ध छूट जाते हैं। वह जो मेरे भीतर से निकलता है धागा सम्बन्ध का, वह गिर जाता है। पत्नी अपनी जगह होगी, मैं अपनी जगह होऊँगा। कोई घर से भाग जाना भी आवश्यक नही है; लेकिन बीच से वह जो पति और पत्नी का पागलपन था, वह विदा हो जायेगा। वह जो 'पजेस्' करने की धारणा थी, वह छूट जायेगी। वह जो दूसरे का शोषण करने की व्यवस्था थी, वह टूट जायेगी। दूसरे से सुख या दुख मिलता है, यह भाव गिर जायेगा। पत्नी पहली दफा एक व्यक्ति बनेगी, और मैं भी पहली दफा एक व्यक्ति बनूंगा, जिनके बीच अब खुला आकाश है, कोई सम्बन्ध नहीं; जिनके बीच सम्बन्धों की जजीरें नही है, जो दो निजी व्यक्तित्व है और परिपूर्ण स्वतन्त्र हैं।

जब दो व्यक्ति परिपूर्ण स्वतन्त्र हो जाते हैं, तो छोड़ने या पकड़ने का दोनों ही सवाल नही रह जाते। तब यह भी आवश्यक नही है कि मैं पत्नी के साथ घर मे रहूँ ही और यह भी आवश्यक नहीं है कि मैं पत्नी को छोड़कर चला ही जाऊँ। दोनो घटनाएँ घट सकती हैं। जनक घर में ही रह जाते हैं, महावीर घर छोड़कर चले जाते हैं। यह व्यक्तियों पर निर्भर होगा। लेकिन इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

जो आसक्त व्यक्ति है, उसके लिए यह समझना बहुत कठिन है। आसक्त दो काम कर सकता है : या तो जिससे आसक्त है, उसके पास रहे और अगर विरक्त हो जाये, तो उससे दूर जाये।

आसक्ति जिससे है, उसके हम पास रहना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझें। जिससे हमारी आसक्ति है, हम चाहते हैं चौबीस घण्टे उसके पास रहे, क्षण भर को न छोड़ें। और अक्सर हम अपने प्रेम को इसी में नष्ट कर लेते हैं। क्योंकि चौबीस घण्टे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ रहने का मजा ही खो जायेगा। और चौबीस घण्टे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ सिवा कलह और दुख के कुछ भी न बचेगा।

लेकिन आसक्ति का एक स्वभाव है कि जिससे हमारा लगाव है, उसके पास ही रहे चौबीस घण्टे, एक क्षण को न छोड़ें। विरक्ति जिससे हमारी हो जाये, जिसको हम विरक्ति कहते हैं, मतलब : आसक्ति उलटी हो जाये– तो उसके हम पास नही होना चाहते क्षण भर। उससे हम दूर हटना चाहते हैं।

जो विरक्ति दूर हटना चाहती है, वह आसक्ति का ही उलटा रूप है। वह वास्तविक विरक्ति नही है। क्योंकि नियम काम कर रहा है, नियम वही है कि जिसे हम चाहते हैं, उसके पास और जिसे हम नही चाहते उससे दूर। लेकिन चाह, और चाह के विपरीत जो चाह है, उनमे कोई फर्क नही है।

विरक्ति का अर्थ यह है कि न तो हमे पास होने मे अब फर्क पड़ता है, न दूर होने से फर्क पड़ता है। अब हम पास हो तो ठीक, और दूर हों तो ठीक। दूर हों तो याद नही आती, पास हो तो रस नही आता। न तो दूर होने मे अब कोई रस है और न पास होने मे कोई रस है। तब आप सम्बन्ध के ऊपर उठे। अगर दूर होने मे रस है, तो अभी आसक्ति मौजूद है– सिर्फ उलटी हो गयी है।

तो बुद्ध ने कहा है कि प्रियजनो के पास होने से सुख मिलता है; अप्रियजनो के दूर होने से सुख मिलता है– लेकिन सुख दोनो ही हालत मे दूसरे से मिलता है। प्रियजन दूर जाये तो दुख देते हैं, अप्रियजन पास आये तो दुख देते हैं– लेकिन दुख दूसरे से ही मिलता है दोनों हालत मे।

'प्रिय' का भी सम्बन्ध है, 'अप्रिय' का भी सम्बन्ध है। विरक्ति का अर्थ अप्रिय का पैदा हो जाना नही है; क्योंकि अप्रिय एक सम्बन्ध है। विरक्ति का अर्थ है, सम्बन्ध ही न रहा, निर्भरता न रही, पास हूँ कि दूर हूँ, बराबर है। पास और दूरी मे रंचमात्र का फर्क न रह जाये; निकट हूँ या न निकट हूँ, रंचमात्र का फर्क न रह जाये, तो व्यक्ति सम्बन्ध के ऊपर गया। अब दूसरा मूल्यवान नही रहा। अब मैं अपने लिए मूल्यवान हूँ, दूसरा अपने लिए मूल्यवान है। दूसरे की आत्मा स्वतन्त्र है, मेरी आत्मा स्वतन्त्र है। ऐसी दो स्वतन्त्रताओ का जन्म जब हो जाता है, तो बीच की गुलामी गिर जाती है। महावीर कहते हैं कि . . . सभी सांसारिक सम्बन्धो को छोड़ देता है, अन्दर और बाहर के।

क्योंकि ध्यान रहे, आप उनसे ही नही बंधे हैं जिनके पास है, उनसे भी बधे हैं जिनके आप पास नही हैं। जिस फिल्म अभिनेत्री को आप चित्रपट पर देख लेते हैं, उससे भी बंधे हैं। उससे कोई मुलाकात नहीं है, पहचान नही है, कभी देखा नही है; तस्वीर देखी है– उससे भी बंधे हैं। सपना देखते हैं उसका, उससे भी बंधे हैं।

तो बाहर के ही सम्बन्ध नहीं हैं कि जिस घर में आप बैठे हैं, जो बच्चा आपका है, जो पत्नी आपकी है, पति आपका है, पिता-माँ हैं-- उनसे ही आप बंधे हैं, ऐसा नहीं है। शायद उनका तो आपको कभी स्मरण भी नहीं आता।

ऐसा पति खोजना मुश्किल है, जिसको पत्नी का सपना आता हो! खोज लें तो मुझे आप बताना। पत्नी का सपना आता ही नहीं। पति का भी सपना नहीं आता। सपने तो उनके आते हैं, जिनसे हमारी वासना अतृप्त है। सपने का मतलब ही अतृप्त वासना होती है। जिसको हम नहीं उपलब्ध कर पाते, उसका सपना आता है। जिसे उपलब्ध ही कर लिया, उसके सपने का कोई सवाल ही नहीं है। जिसका पेट भरा है, उसे रात भोजन के सपने नहीं आते। भूखे पेट आदमी को भोजन के सपने आते हैं। जो कमी है, अभाव है, उसका सपना निर्मित होता है।

तो जो आपके पास हैं स्थूल रूप से, जिनसे आप जुड़े हैं, उनसे शायद ज्यादा जोड़ है भी नहीं। लेकिन जिनसे आप नहीं जुड़े हैं, उनसे आपके सपने जुड़े हैं और भीतरी जोड़ है।

एक परिवार आपके आसपास दिखाई पड़ता है, जो वस्तुत: है। और एक परिवार आपके चित्त का है, जो आप बना रखे हैं। जो आप चाहते हैं कि होता। जो आपकी कामना का है। जो कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि पूरा होते ही वह आपकी कामना का नहीं रह जायेगा। पूरा होते ही आप दूसरा परिवार अपने आसपास बसाने लगेंगे। तो एक तो बाहर के सम्बन्धों का जाल है और एक भीतर के सम्बन्धों का जाल है।

बायरन अंग्रेज कवि था, बहुत-सी स्त्रियाँ उसके लिए दीवानी थीं और पागल थीं। जब बायरन को इग्लैण्ड से निष्कासित कर दिया गया, तो अनेक स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली, जिन्होंने उसे देखा भी नहीं था-- तस्वीर देखी थी या कभी दूर से किसी कवि-सम्मेलन में भीड़ में से देखा था। वे अपने निकटतम पति के लिए आत्महत्या करनेवाली नहीं थीं। लेकिन इस आदमी से कोई सम्बन्ध नहीं था, किसी तरह का स्थूल सम्बन्ध नहीं था-- लेकिन मन के सबंध थे। बायरन को उनका पता ही नहीं था, जिन्होंने उसके लिए आत्महत्या कर ली। जो अपने जीवन को दे सकते हैं, जरूर उनके बड़े गहरे भीतरी सम्बन्ध रहे होंगे, उनके सपनों में बायरन समाया रहा होगा।

बाहर के सम्बन्ध हैं, भीतर के सम्बन्ध हैं। आप बाहर के सम्बन्ध से भाग सकते हैं, बहुत आसान है? क्योंकि घर से भाग जाने में कोई बड़ी अड़चन नहीं है। लेकिन भीतर के सम्बन्धों से भागकर कहाँ जाइयेगा? वह तो जब तक विरक्ति पैदा न हो जाये, तब तक भीतर के सम्बन्ध से कोई भी भाग नहीं सकता है, इसलिए साधु हो

जाते हैं लोग, जंगल में बैठे जाते हैं लेकिन मन की गृहस्थी जारी रहती है– और फैल जाती है सच तो; और बड़ी हो जाती है; और रसपूर्ण हो जाती है ।

संसार जितना रसपूर्ण अधूरे भागे साधु को मालूम पड़ता है, उतना गृहस्थ को कभी मालूम नहीं पड़ता । थोड़े दिन छोड़कर देखें, संसार से थोड़े दिन हटकर देखें, और आप पायेंगे कि सब चीजों मे रस आना शुरू हो गया ।

मुल्ला नसरुद्दीन कभी-कभी पहाड़ पर जाता था एकान्तवास के लिए । कभी अपने मालिक को कहकर जाता कि पन्द्रह दिन बाद लौटूंगा और पाँच दिन में लौट आता; और कभी कहके जाता, पाँच दिन मे लौटूंगा और पन्द्रह दिन में लौटता । तो उसके मालिक ने एक दिन पूछा कि मामला क्या है, तुम छुट्टी पन्द्रह दिन की मांगते हो, फिर पाँच दिन मे लौट क्यों आते हो ? जब तय ही करके पन्द्रह दिन का गये, तो तुम्हारा हिसाब क्या है ?

नसरुद्दीन ने कहा , वह जरा एक भीतरी गणित है, आपकी शायद समझ मे न भी आये । पहाड पर मैंने एक छोटा बंगला ले रखा है और एक बूढी बदशक्ल औरत को उसकी देखभाल के लिए रख दिया है । और यह मेरा गणित है । वह इतनी बदशक्ल स्त्री है कि उसके पास बैठने का भी मन नही हो सकता – दाँत बाहर निकले हैं, हड्डी-हड्डी हो गयी है, काफी बूढी है, कुरूप है । यह मेरा नियम है कि जब मै पहाड पर जाता हूँ, तो एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन–धीरे-धीरे उस स्त्री मे भी मुझे सौन्दर्य दिखाई पडने लगता है । और जिस दिन वह स्त्री मुझे सुन्दर मालूम पड़ती है, मैं भाग खडा होता हूँ । मै समझता हूँ : बस, एकान्त पूरा हो गया, अब यहाँ रुकना खतरनाक है ।

तो कभी ऐसा पन्द्रह दिन मे होता है, कभी पाँच दिन मे हो जाता है । तो वह मेरा भीतरी हिसाब है । वह स्त्री मेरा थर्मामीटर है । जैसे ही मुझे लगता है कि इस स्त्री मे भी रस आने लगा है मुझे, मै भाग खड़ा होता हूँ । क्योंकि अब हद हो गयी! अब यहाँ रुकना खतरे से खाली नही है । और अब मैं एकान्त नही चाह रहा हूँ । तो मैं वापिस लौट आता हूँ ।

आप अपने भीतर के संसार का थोडा ख्याल करेंगे तो आपकी समझ में आ जायेगा । बाहर की भीड़ में आप भूले रहते हैं भीतर के संसार को, लेकिन वह आपके भीतर है । वह आपके भीतर काम करता रहता है । और भीतर का संसार भी थोड़ा समय नही लेता । आदमी अगर साठ साल जिये तो बीस साल सोता है; बीस साल सपनों में होता है । बीस साल थोड़ा वक्त नही है । सच तो यह है कि चालीस साल जिस समय वह जागता है,उस समय कितने लोगों से कितना सम्बन्ध बना पाता है–अधिक

समय तो भोजन कमाने में, मकान बनाने में, व्यवस्था जुटाने में, दफ्तर से घर आने और घर से दफ्तर जाने में व्यतीत हो जाता है। अगर हम ठीकसे हिसाब लगायें तो चालीस साल में मुश्किल से चार साल उसको मिलते होंगे, जिनमें वह अपने स्थूल सम्बन्धों में डूबता है; लेकिन बीस साल अपने सूक्ष्म सम्बन्धों में डूबता है, जो उसके स्वप्न का जाल है। उसपर ज्यादा उसकी गहरी पकड़ है और ज्यादा उसे समय और अवसर है।

और ऐसे जब आप अपने स्थूल सम्बन्धों मे डूबे होते हैं, तब भी भीतर आपके सूक्ष्म सम्बन्ध चलते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक जानते है हजारों घटनाओं के आधार पर कि पति पत्नी से सम्भोग करता रहता है, तब भी वह किसी फिल्म अभिनेत्री की धारणा करता रहता है। पत्नी पति से सम्भोग करती रहती है, लेकिन मन में किसी और से सम्भोग करती रहती है। और जब तक उसके मन मे धारणा न आ जाये उसके प्रेमी की या प्रेयसी की, तब तक पति-पत्नी में कोई रस-सम्बन्ध निर्मित नहीं हो पाता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बड़ी अजीब घटना है : बाहर का सम्बन्ध बहुत गौण मालूम पड़ता है और भीतर के सम्बन्ध बहुत गहन मालूम पड़ते हैं।

महावीर कहते है, विरक्त जब कोई होता है, तो बाहर और भीतर के सारे सांसारिक सम्बन्ध छूट जाते हैं। एक ढंग से जैसे जाल हमे पकड़े था, वह गिर जाता है। जैसे मछली जाल के बाहर आ जाती है।

लेकिन अभी तो हम कामवासना मे इस तरह घिरे हुए हैं, कामवृत्ति मे इस तरह डूबे हुए हैं कि हम सोच ही नहीं सकते कि विरक्त आदमी को क्या रस होगा। विरक्त आदमी तो रसहीन हो जायेगा—क्योंकि हम एक ही रस जानते हैं। हमारी हालत वैसी ही है, जैसे नाली का कीड़ा हो; उसे नाली मे ही रस है। वह सोचेगा कि आकाश में उड़ते पक्षी क्यों जीवन व्यर्थ गवां रहे है! नाली मे सारा रस है!

मुल्ला नसरुद्दीन एक व्याख्यान सुनने गया है। एक वैज्ञानिक बोल रहा है। वह मछलियों के सम्बन्ध में कुछ समझा रहा है। और वह कहता है कि मादा मछलियां अंडे रख देती हैं और फिर नर मछलियाँ उन अंडों के ऊपर से गुजरते है और उन अंडों को वीर्यकण दे देते हैं। और तब वह अंडा सजीव हो जाता है।

तो नसरुद्दीन बड़ा बेचैन होता है। आखिर में, जब व्याख्यान खत्म हो जाता है, वह पहुँचता है वैज्ञानिक के पास और उससे कहता है, क्या आपका मतलब है कि मछलियाँ सम्भोग नहीं करतीं?

उस वैज्ञानिक ने कहा, आप बिलकुल ठीक समझे। मादा अंडे दे देती है, पुरुष अंडों को आकर फर्टिलाइज कर देता है। कोई सम्भोग नहीं होता।

तो नसरुद्दीन थोड़ी देर चिन्तित रहा और फिर उसके चेहरे पर चमक आ गयी! उसने कहा कि नाउ आइ अन्डरस्टैन्ड, वाइ पीपॅल कॉल फिशिज पुअॅर फिश-- क्यों लोग को मछली गरीब मछली कहते है, मैं समझ गया। यही कारण है!

वह जो काम में डूबा हुआ है, उसके लिए सारा जीवन दीन-हीन है अगर काम-वासना नही है। तब जीवन मे कोई अर्थ नही दिखाई पड़ेगा। क्योंकि सारा अर्थ ही हमारे जीवन का कामवासना के आधार पर टिका हुआ है। हम सारी चीजों को तौल ही रहे हैं एक ही जगह से।

तो हम सोच भी नही सकते कि महावीर का आनन्द क्या हो सकता है। एक आनन्द ऐसा भी है, जो किसी पर निर्भर नही है और किसी का मुहताज नही है, और किसी की मांग नहीं करता, और किसी के सामने भिक्षा का पात्र नही फैलाता।

एक ऐसा निज मे डूबने का आनन्द भी है। उसकी हमे कोई खबर नही है; उसकी खबर हो भी नहीं सकती। उसकी खबर हमे तभी होगी, जब हमारी आसक्ति शुद्ध दिया बन जाये और हमें दिखाई पड़ने लगे कि हम जो भी कर रहे हैं, वह सब दुख है। और यह प्रतीति इतनी सघन हो जाये कि यह प्रतीति ही हमें ऊपर उठा दे।

और एक क्षण को भी हमें अनुभव हो जाये अपने शुद्ध होने का, जहाँ दूसरे की कोई मौजूदगी नही थी, कल्पना में भी कोई दूसरा मौजूद नही था, हम अकेले थे-- टोटल लोनलीनेस-- एकान्त पूरा भीतर अनुभव हो जाये एक क्षण को भी, तो आपने खुला आकाश जान लिया। फिर आप कामवासना के कारागृह मे लौटने को राजी नही होंगे।

'महावीर कहते है, जब साधक विरक्त हो जाता है, तब अन्दर-बाहर के सभी सांसारिक सम्बन्धों को छोड़ देता है।'

'जब अन्दर और बाहर के समस्त सांसारिक सम्बन्धो को छोड़ देता है, तब दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।"

और जब तक विरक्ति न हो, तब तक दीक्षा का कोई उपाय नही है। दीक्षा का अर्थ है, उस विराट् में इनिशिएशॅन। जब तक आप संसार से जकड़े हुए है, तब तक गुरु से कोई सम्बन्ध नही हो सकता; तब तक गुरु से कोई लेना-देना नहीं है; तब तक आप गुरु के पास भी संसार के लिए ही जाते हैं।

इसलिए जो गुरु आपका संसार बढ़ाता हुआ मालूम पड़ता है, आश्वासन देता है, भरोसा दिलाता है, उसके पास बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। अगर सत्य साईंबाबा-जैसे लोगों के पास लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं, तो उसका कुल कारण इतना ही है कि सत्य साईंबाबा से किसी विरक्ति की आशा नहीं है; आपके आसक्ति के जाल को सघन करने की सम्भावना है। किसी को लड़का चाहिए, किसी को बीमारी मिटानी है, किसी को धन पाना है, किसी को लम्बी उम्र पानी है, किसी को मुकदमा जीतना है— वे सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं।

जिस साधु के पास ज्यादा भीड़ मालूम पड़े, समझ लेना कि उस साधु के पास संसार की घटना घट रही है। अन्यथा साधु के पास ज्यादा भीड़ नहीं हो सकती, होनी मुश्किल है। इस विराट् संसार में बहुत थोड़े-से लोग हैं, जो विरक्त हैं। वे ही लोग साधु के पास हो सकते हैं— चूज़ेन फ्यू। बहुत चुने हुए लोगों का मामला है। गुरु के पास आना बहुत थोड़े-से लोगों का मामला है— करोड़ों में एक!

लेकिन जिस गुरु के पास एक को छोड़कर पूरा करोड़ पहुँच जाता हो, समझना कि वहाँ गुरु मूल्यवान नहीं है, वहाँ इस भीड़ में इकट्ठे हुए लोगों की वासना मूल्यवान है। इतनी बड़ी भीड़ विरक्त नहीं है, नहीं तो यें संसार दूसरा हो जाये। इतनी बड़ी भीड़ गहरी तरह से आसक्त है— इसकी आसक्ति में कोई भी सहारा देता हो।

मेरे पास मित्र आते हैं— भले, शुभ, चाहक— वे मुझसे कहते हैं कि आप कब तक थोड़े-से लोगों को समझाते रहेंगे। आप कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते कि लाखों लोग आ जायें।

मगर जो लाखों लोग चमत्कार के कारण आते हैं, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता; उनसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे मेरे लिए आ ही नहीं रहे हैं। वे किसी और वासना से पीड़ित होकर आ रहे हैं। उनका इनिशिएशॅन, उनकी दीक्षा नहीं हो सकती। भीड़ दीक्षित नहीं हो सकती। बहुत चुने हुए लोग, जिनके जीवन का अनुभव परिपक्व हुआ है और जिन्होंने अपने अनुभव से जाना है कि व्यर्थ है सब कुछ जो हम कर रहे हैं, जिनको यह दिखाई पड़ जाता है कि जहाँ हम हैं वहाँ व्यर्थता है, वे ही उस यात्रा पर निकलने की चेष्टा करते हैं जहाँ सार्थक का जन्म हो सके।

दीक्षा का अर्थ है, इनिशिएशॅन का अर्थ है: यह संसार व्यर्थ हुआ, अब हमारी चेतना किस आयाम में प्रवेश करे? ऐसे लोग द्वार खोजते हैं। तभी गुरु ऐसे लोगों को द्वार दिखा सकता है।

आप मन्दिर में भी जाते हैं, गुरु के पास भी जाते हैं, तो कुछ मांगने जाते हैं, कुछ होने नहीं जाते, चाहते हैं अदालत में मुकदमा जीत जायें; टी. बी. हो गया,

कैन्सर हो गया– दूर हो जाये। कुछ संसार का हिस्सा आपका अधूरा लग रहा है, वह गुरु पूरा कर दे। और जो गुरु आपके संसार के हिस्से को पूरा करता है या करता हुआ दिखाने का धोखा देता है, वह आपका मित्र नहीं है, वह आपका शत्रु है! क्योंकि वह जीवन में आपको धक्का दे रहा है– उसी संसार में। जहाँ से सहज कैन्सर आपको उबा देता। उसका चमत्कार वापस लौटा रहा है। जहां शायद टी. बी. आपको कह देती कि शरीर व्यर्थ है और सड़ा हुआ है, और इसके पार होना उचित है, वहाँ उसका चमत्कार आपको शरीर में वापस भेज रहा है।

चमत्कारी गुरु धर्म की तरफ नहीं ले जाते, वे संसार के ही एजेन्ट हैं। लेकिन उसमें एक सुविधा है, म्युचुअल सम्बन्ध है। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है, उतना अहंकार को तृप्ति मिलती है गुरु के। लगता है मैं कुछ हूँ। और भीड़ इकट्ठी करनी हो तो भीड सिर्फ चमत्कार से इकट्ठी होती है।

ज्ञान से किसी को प्रयोजन नही है, महात्मा से किसी को सम्बन्ध नही है,मदारी की माग है। और जब महात्मा के वेश मे मदारी दिखता है, तो आपकी आत्मा को बड़ी तृप्ति होती है। क्योंकि आशा बधती है कि जो-जो हम नही कर पाये, शायद इस आदमी की कृपा से हो जाये।

एक भी ऐसा राजनीतिज्ञ नही है दिल्ली में, जो किसी न किसी महात्मा के चरणों मे जाकर न बैठता हो। और जो हारे हुए राजनीतिज्ञ हैं, वे तो अनिवार्य रूप से महात्माओं के पास मिलेंगे। अगले इलेक्शन की वे तैयारी कर रहे हैं महात्मा के द्वारा– आशा है! और महात्मा कह रहा है कि मत घबड़ाओ, सब हो जायेगा! जरूरी नही है कि महात्मा कुछ करता हो। जब कहा जाता है, सब हो जायेगा– सौ आदमियो से कहो, पचास को तो हो ही जाता है। न कहते तो भी हो जाता!

यह महात्मा का काम ऐसा है, जैसा इग्लैन्ड में वे कहते हैं कि सर्दी-जुकाम का अगर इलाज करो, तो सात दिन में ठीक हो जाता है; और अगर इलाज न करो, तो एक सप्ताह में ठीक हो जाता है।

एक सप्ताह मे ठीक हो ही जाता है। सवाल यह नही है कि आप इलाज करो कि न करो। अगर मेरे पास सौ लोग आयेंबीमार और उनको मैं कहूँ कि आशीर्वाद, जाओ, ठीक हो जाओगे– पचास तो होते ही हैं। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे कहीं भी न जाते, तो भी होते।

जिन्दगी में आदमी हजारों दफे बीमार पड़ता है, तब मरता है। कोई पहली बीमारी में तो मरता हुआ देखा नहीं जाता। उन्हीं हजारों बीमारियों पर जिनसे आप ठीक होते चले जाते हैं, महात्मा जीते हैं।

मुकदमे में जब लोग लड़ते हैं, तो कोई न कोई जीतता ही है। और अक्सर तो ऐसा हो जाता है कि एक ही महात्मा के पास दोनों पार्टी पहुँच जाती है। वे दोनों को आशीर्वाद दे देते हैं!

मेरे एक मित्र ज्योतिषी हैं। और जब सुब्बाराव राष्ट्रपति के लिए खड़े हुए, तो मेरे वे मित्र सुब्बाराव और जाकिर हुसेन दोनों के पास गये। और जाकिर हुसेन को भी कह आये कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष में साफ है; सुब्बाराव को भी कह आये कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष से साफ है। और दोनों से लिखवा लाये कि यह भविष्यवाणी मैं कर रहा हूँ।

सुब्बाराव हार गये, उनका लिखा हुआ फाड़कर फेंक दिया। फिर जाकिर हुसेन के पास गये और कहा कि देखिये! और जाकिर हुसेन ने कहा कि आपकी भविष्यवाणी बिलकुल सच निकली, आप महान ज्योतिषी हैं! सर्टिफिकेट लिखकर दिया, साथ में फोटो उतरवायी। अब सुब्बाराव तो उनका कोई पता लगाते फिरेंगे नहीं। जो हार गया वह तो फिक्र ही नहीं करता।

वे उस दिन से महान ज्योतिषी हो गये हैं। उनके पास मिनिस्टरों ने आना-जाना शुरु कर दिया है। क्योंकि जो आदमी राष्ट्रपति की घोषणा कर दे ..... और उनके पास सर्टिफिकेट हैं, फोटो हैं– सब प्रमाण हैं। लेकिन भीतरी राज किसी को पता नहींहै कि वे दोनों को जाकर घोषणा कर आये।

लेकिन वासनाओं से भरा हुआ आदमी उसकी पूर्ति की तलाश कर रहा है। वह साधना के माध्यम से भी वासना को ही खोजता है। ऐसा व्यक्ति दीक्षित नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं! अन्दर-बाहर के समस्त सांसारिक सम्बन्ध जब छूट जाते हैं, तब कोई दीक्षित हो सकता है। और दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।

अनगार वृत्ति का अर्थ है . इस जगत मे मेरा कोई घर नहीं है, मैं अगृही हूँ। ये जगत घर नहीं है। दिस वर्ल्ड इज नॉट द होम। यह संसार जो दिखाई पड़ रहा है, यह घर नहीं है। यहाँ मैं बेघरबार हूँ। मेरा घर कहीं और है। चेतना के किसी लोक में मेरा घर है। और यहाँ जब तक मैं घर खोज रहा हूँ और घर बना रहा हूँ, तब तक मैं व्यर्थ समय नष्ट कर रहा हूँ। यहाँ मै विदेशी हूँ। यहाँ मैं एक अजनबी हूँ, एक आउट-साइडॅर हूँ। यह यात्रा है, मंजिल नहीं है।

महावीर कहते है, जब कोई पूर्ण साधक होकर दीक्षित होता है किसी गुरु के माध्यम से, उस द्वार को खटखटाता है जहाँ से असली घर खुलेगा...। लेकिन वह तभी उस द्वार को खटखटा सकता है, जब यहाँ से अनगार वृत्ति हो जाये, इस जगत

में घर खोजने की धारणा खो जाये। इस जगत में जो घर खोज रहे हैं, वे तो नया शरीर खोजते चले जायेंगे। वे जन्मेंगे, फिर मरेंगे— जन्मेंगे, फिर मरेंगे और घर को खोजते रहेंगे।

इस जगत में दो तरह के लोग हैं— वे जो यहाँ घर खोज रहे हैं, और वे जो यहाँ घर नही खोज रहे हैं। जो यहाँ घर नही खोज रहा है, वह अनगार हो गया है। और अनगार होकर यह पात्रता मिलती है कि दूसरा, असली घर खोजा जा सके। वह भीतर है, वह बाहर नही है। उसे बनाने की भी कोई जरूरत नही है, वह मौजूद है। वह मेरे जीवन का मूल उत्स और स्रोत है। उसे कही भी खोजने जाने का कोई सवाल नही है। वह सदा से मौजूद है, सिर्फ मैं भीतर मुड़ूं।

दीक्षा का अर्थ है, वह व्यक्ति, वह गुरु जो तुम्हे भीतर मोड़ दे।

'जब दीक्षित होकर कोई अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब साधक उत्कृष्ट संवर एव अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।'

एक तो धर्म है, जिसे हम शास्त्रो से सुनते हैं, सद्‌गुरुओ से सुनते है, जो प्रचलित है। वह साधारण धर्म है। और जब कोई व्यक्ति दीक्षित होकर भीतर जाता है तो अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है। तो उसे वास्तविक धर्म की खबर मिलती है। इसे हम ऐसा समझें, वह धर्म साधारण धर्म है, जो बाहर हमें दिखाई पड़ता है— चर्च है, मन्दिर है, गुरुद्वारा है, मस्जिद है, कुरान है, बाइबिल है, गीता है, महावीर-बुद्ध के वचन हैं। ये कितना ही सही हों तो भी मूल नही है— मूल से थोड़ा हटकर है, सेकेन्ड हैन्ड है।

वे कुछ भी कहे— वह जो सेकेन्ड हैन्ड है, वह जीवन में क्रान्ति नही ला सकता। और उनसे आप अपने को समझाने की कोशिश मत करना। लोग है, जो अपने को समझा लेते है।

एक दिन एक मित्र आकर मुझसे कह रहे थे, "आइ हैव परचेज्ड ए ब्रैंड न्यू सेकेन्ड हैन्ड कार।"

ब्रैंड न्यू सेकेन्ड हैन्ड कार! बिलकुल नयी सेकेन्ड हैन्ड गाड़ी खरीदी है। अब सेकेण्ड हैण्ड गाड़ी बिलकुल नयी कैसे हो सकती है!

लेकिन आप महावीर के वचन कितने ही समझ लें, कृष्ण को कितना ही पी जायें, वे सेकेन्ड हैन्ड हैं। उनसे वास्तविक धर्म का सम्बन्ध नहीं हो रहा है। वास्तविक धर्म की खबर मिल रही है— सम्बन्ध नहीं हो रहा है। वास्तविक धर्म की तरफ से चुनौती, निमन्त्रण मिल रहा है— सम्बन्ध नहीं हो रहा है। यात्रा करनी पड़ेगी।

तो महावीर कहते हैं, जब कोई दीक्षित होकर भीतर प्रवेश करता है, तब अनुत्तर धर्म—शुद्ध, वास्तविक, मौलिक, निज का धर्म अनुभव होता है।

'जब साधक उत्कृष्ट सवर एव अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब अन्तरात्मा पर से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल सब झड़ जाते है।'

'जब अन्तरात्मा से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल दूर हो जाता है, तब सर्वत्रगामी, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है।'

इसे थोड़ा समझ लें। महावीर और सभी जाननेवालों की यह दृष्टि है कि आपकी अन्तरात्मा शुद्ध ज्ञान है—'प्योर नोइंग'। अगर आपको उस शुद्ध ज्ञान का पता नही चल रहा है, तो उसका कारण है कि आपके आसपास बहुत-से कर्मों का जाल है। जैसे एक दिया जल रहा है, एक लालटेन जली है और कॉच पर कालिमा है, तो प्रकाश बाहर नही आता; अन्धेरा है कमरे में। दिया जल रहा है और कमरे मे अन्धेरा है। लेकिन अन्धेरे का कारण यह नही है कि भीतर ज्योति नहीं है। अन्धेरे का कुल कारण इतना है कि ज्योति बाहर आ सके, इसके बीच में बाधाएँ हैं।

तो धर्म सिर्फ बाधाओ को अलग करने का नाम है। भीतर ज्योति जली हुई है, सिर्फ बाधाएँ गिर जायेंगी। वह जो लैम्प के कॉच पर जम गयी कालिख है, काजल है, वह हट जाये तो प्रकाश प्रगट हो जाये। प्रकाश को किसी से मॉगने नही जाना है, उसे आप लेकर ही पैदा हुए हैं, वही आप है। वह आपका स्वरूप है।

इसलिए महावीर कहते है, जब कोई अनुत्तर धर्म से संस्पर्शित होता है, जब भीतर की निजता का स्वभाव समझ मे आता है और जब भीतर के जीवन की वास्तविकता प्रतीत होती है, और जब भीतर का स्पर्श और स्वाद मिलता है, तो सारे कर्म की जो कालिमा है चारों तरफ से, वह गिर जाती है। वह इसीलिए थी कि हमे भीतर का कोई स्वाद न था—इसलिए बाहर के स्वाद की तड़प थी। और उसके लिए हमने सारे कर्मो का जाल निर्मित किया था। वह इसीलिए थी कि भीतर का आनन्द जाना नही—इसलिए बाहर के सुख की दौड़ थी। उस दौड़ में हमने बड़ी-बड़ी दीवालें खड़ी कर ली थीं। उस दौड़ के लिए हमने बड़े साधन-सामग्री जुटा ली थी। वही सारे सामग्री-साधन हमारे चारों तरफ घिर गये थे और हम भीतर अन्धेरे मे बन्द हो गये थे। रोशनी कहीं दिखाई नही पड़ती थी, और रोशनी सदा भीतर मौजूद थी।

यह जो भीतर की रोशनी है, इसको महावीर कहते है कि जैसे ही कर्म-मल झड़ जाते है, सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है। और तब सब दिशाओं में जानेवाला प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। तब कोई दिशा अन्धेरी नही रह

जाती। और तब कोई कोना अज्ञान से भरा नहीं रह जाता। तब जीवन पूरा प्रकाशोज्वल हो जाता है। तब पूरा जीवन एक सूर्य बन जाता है।

ऐसा महावीर किसी सिद्धान्त के कारण नहीं कह रहे हैं। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं, कोई फ़िलॉसॅफ़र नहीं हैं। यह उनकी कोई हाइपोथिसिस, कोई परिकल्पना नहीं हैं। ऐसा महावीर अपने निज के अनुभव से कह रहे है। वे एक यात्री है, जो उसी रास्ते से गुजरे है, जहाँ से आप गुजर रहे हैं। लेकिन ऐसे यात्री है, जो मंजिल पर पहुँच गये हैं और जो अपने पीछेवाले लोगों को कह रहे हैं कि जिस यात्रा पर तुम चल रहे हो उसमें वर्तुल में मत घूमते रहना, नही तो तुम कहीं पहुँच न पाओगे, घूमते ही रहोगे। सीधी रेखा पकड़ना। और सीधी रेखा पकड़ने के सूत्र दे रहे हैं। और मंजिल दूर नही है!

अगर आसक्ति का वर्तुल टूट जाये, तो मंजिल बहुत निकट है। और आसक्ति का वर्तुल न टूटे, तो मंजिल निकट होकर भी बहुत दूर है।

आप ऐसा समझिये कि इस कमरे में हम एक गोल घेरा खीच दे और आप उस गोल घेरे में घूमते रहे, घूमते रहें– कमरे से बाहर जाना है और घूमते रहे, घूमते रहें– और कोई आपको कहे कि कितना ही चलो, इससे आप कहीं पहुच न पाओगे। लेकिन आप कहोगे कि चलने से आदमी पहुँचता है। अगर मैं नही पहुँच पा रहा हूँ, तो उसका मतलब है कि मैं ठीक से नही चल रहा हूँ। वह आदमी कहेगा, आप ठीक से भी चलो, तो भी जिस रेखा-पथ पर आप चल रहे हो, ठीकसे चलकर भी नहीं पहुँच पाओगे। तो आपको उसकी बात समझ में नही आयेगी। आप कहोगे, यह हो सकता है कि ठीक से चलकर भी न पहुँच पाऊँ, क्योंकि मेरी चाल की गति धीमी है। तो मुझे दौड़ना चाहिए। तो अगर मैं दौड़ूगा तो जरूर पहुँच जाऊँगा–क्योंकि ऐसी कोई भी मंज़िल हो, कितनी ही दूर हो, आख़िर दौड़ने से मिल ही जायेगी। वह आदमी आपसे कहे कि आप दौड़ो, तो भी नही पहुँचोगे, सिर्फ थककर गिरोगे। क्योंकि जिस वर्तुल में आप चल रहे हो, वह वर्तुल बाहर जाता ही नही है। इस वर्तुल को छोड़ो, दरवाज़े को देखो और दरवाज़े से बाहर निकलने की कोशिश करो– तो इतने चलने की जरूरत नही है, दरवाजा बहुत निकट है।

आपका वर्तुल कई बार दरवाज़े के करीब से ही जाता है। बिलकु दरवाज़े के करीब से– लेकिन आप अपने वर्तुल में मुड़ जाते है। कितनी बार आपकी आसक्ति आपको विरक्ति के करीब नहीं ले आती। कितनी बार आपका जीवन आपको आत्म-ज्ञान के करीब नहीं ले आता! और कितनी बार संसार व्यर्थ नहीं होने लगता, लेकिन व्यर्थ होते ही होते आप फिर मुड़ जाते हैं। नयी आसक्ति और वर्तुल फिर वापस निर्मित हो जाता है। दरवाजा बहुत बार करीब आता है, लेकिन छूट जाता है।

यह होता रहेगा । महावीर इसलिए कहते है कि विरक्त के लिए ही द्वार खुल सकता है । आसक्ति जिसे व्यर्थ हुई अनुभव से, वह विरक्त है । जो विरक्त हुआ, वह अब द्वार खोजेगा नया। इस संसार में जिसका कोई घर न रहा, वह हुआ अनगार, अगृही । अब वह असली घर की खोज में लगेगा । यह खोज दीक्षा बन सकती है ।

तो जिन्होंने वह घर पा लिया है , जो उस घर में प्रवेश कर गये हैं– अब वह उनकी आवाज समझने की कोशिश करेगा, उनके इशारे ।

और जो व्यक्ति दीक्षित हो जाता है, उसे अनुत्तर धर्म का अनुभव शुरू होता है । महावीर धर्म का अर्थ करते हैं 'स्वभाव ।' महावीर कहते हैं. जैसे आग का स्वभाव है उष्णता और जल का स्वभाव है नीचे की तरफ बहना, ऐसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है, ज्ञान, बोध, बुद्धत्व ।

जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर मुड़ता है, इस ज्ञान की किरणे उसे घेर लेती है । और इस ज्ञान की किरणों का अनुभव अनुत्तर धर्म का, कभी न जाने गये धर्म का अनुभव है । दूसरों ने जाना है, आपने कभी नहीं जाना है। आपके लिए नयी घटना है, एक मौलिक घटना है । और यह कोई उधार बात नही है अब । अब आपको गीता और कुरान और बाइबिल में खोजने की जरूरत नही है । अब आपको वह मिल गया है, जो जीसस को पता था, कृष्ण को पता था, मुहम्मद को पता था । अब आप वहाँ खड़े हैं, जहाँ खड़े होनेवालों ने बोला है, और बोलकर नम्बर दो के, द्वितीय मूल्य के शास्त्र निर्मित हुए है ।

महावीर कहते है, शास्त्र प्रतिध्वनि है, मूल नही । और जब कोई व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है, तो मूल में प्रवेश करता है । इस व्यक्ति से जो प्रतिध्वनियाँ होंगी, वे ही शास्त्र बन जायेंगे । और जो लोग प्रतिध्वनियो को ही सब कुछ समझकर जी लेते हैं, वे भटक जाते हैं । मूल की खोज जरूरी है । गीता पढ़कर कृष्ण कहाँ थे, उस जगह की खोज करनी चाहिए । महावीर को सुनकर अन्धे की तरह महावीर को मान लेने की जरूरत नही है । महावीर कहाँ थे, उस जगह की खोज की जरूरत है । मोहम्मद को सुनकर मुसलमान बनने से कुछ भी न होगा, मुहम्मद बनना पड़ेगा ।

दुनिया में मुसलमान बहुत हैं, जैनी बहुत हैं, हिन्दू बहुत हैं, ईसाई बहुत हैं– उनसे कुछ भी नही होता । क्राइस्ट को सुनकर क्रिस्ट्यॅन बनना धोखा है, क्राइस्ट बनने की जरूरत है । तो अनुत्तर धर्म उपलब्ध होगा । लेकिन कोई क्राइस्ट नही बनना चाहता । क्रिस्ट्मॅन बनने में सुविधा है, क्योंकि क्रिस्ट्यॅन बनने में सारी जिम्मेवारी क्राइस्ट पर है, हम तो सिर्फ पीछे चल रहे हैं । अगर भटके तो तुम जिम्मेवार ।

और क्रिस्ट्यॅन को बड़ी सुविधाएँ हैं जीवन में – कुछ बदलना नही पड़ता ।

क्रिश्चियन को क्राइस्ट को मानने तक की जरूरत नहीं है। जैन को कहाँ महावीर को मानने की जरूरत है! सिर्फ इतना मानने की जरूरत है कि हम मानते हैं। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। एक रत्ती भर बात मानने की जरूरत नहीं है।

बरट्रैंड रसेल ने लिखा है, तब बायन्ड विन इंग्लैन्ड का प्रधानमन्त्री था। बायन्ड विन निष्ठावान क्रिस्ट्यॅन था और रसेल ने मजाक में लिखा है कि बायन्ड विन निष्ठावान क्रियॅस्ट्न है, हर रविवार चर्च में मौजूद होता है—प्रधानमन्त्री होनेजानेके बाद भी। रोज बाइबिल पढ़कर सोता है। लेकिन, ध्यान रखना, कोई जाकर बायन्ड विन को चाँटा मत मार देना। हालाँकि जीसस ने कहा है कि जो चाँटा मारे, उसके सामने तुम दूसरा गाल कर देना। बायन्ड विन नहीं करेगा तब तुम भूल में पड़ोगे।

वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि चर्च में जाने से क्या होगा! बाइबिल पढ़ने से क्या होगा! बायन्ड विन को भी अगर चाँटा मारोगे तो दिक्कत में पड़ जाओगे। वह गाल आगे नहीं करनेवाला है दूसरा!

क्राइस्ट होना एक बात है, क्रिस्ट्यॅन होना एक बात है। क्रिस्ट्यॅन होना शायद खुद को धोखा देना है, आत्मवंचना है। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो जिन होने की कोशिश करना चाहिए, जैन होने की नहीं। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो महावीर जहाँ हैं, वहाँ पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति भीतर के धर्म का स्पर्श कर लेता है, उसके सारे कर्म-मल गिर जाते हैं। कुछ करना नहीं होता। जैसे यहाँ कोई रोशनी जला दे, तो अन्धेरा समाप्त हो जायेगा। ऐसे ही भीतर की रोशनी जलते ही जीवन का सारा अन्धेरा गिर जाता है। उस अन्धेरे में जितने उपद्रव हमने पाले थे, वे भी गिर जाते हैं। जो भय, जो आसक्तियाँ, जो मोह बनाये थे अन्धेरे के कारण, अन्धेरे के गिरते ही खो जाते हैं।

जैसे इस कमरे में अन्धेरा हो, और आप डरते हैं कि पता नहीं कमरे में कोई छिपा न हो। तो भय है। या आप सोचते हैं कि मेरी प्रेयसी इस कमरे के भीतर होगी, तो आप अन्धेरे में बड़े रस से टटोलकर खोज रहे हैं। फिर रोशनी हो जाये, वहाँ कोई भी नहीं है। तो भय भी खो गया, प्रेम भी खो गया और अन्धेरा भी चला गया। हमने अन्धेरे में जी-जीकर संसार के जो भी सम्बन्ध बनाये हुए हैं, वे ऐसे ही हैं। जिस दिन भीतर की रोशनी होती है— अन्धेरा भी खो जाता है, वे सारे सम्बन्ध और कर्मों का जाल भी गिर जाता है।

महावीर कहते हैं, उस दिन सब दिशाओं को आलोकित करनेवाला प्रकाश जन्मता है। वही सिद्ध की अवस्था है। उसे महावीर ने केवलज्ञान कहा है। वह परम निर्वाण,

परम मुक्त चेतना का अनुभव है। जहाँ सिर्फ ज्ञान ही रह जाता है। जहाँ सिर्फ प्रकाश ही रह जाता है। कोई चीज प्रकाशित भी नहीं रह जाती, सिर्फ शुद्ध प्रकाश रह जाता है। और अनन्त आयामों तक प्रकाश फैल जाता है—जिसके लिए कोई बाधा नहीं रहती। निर्बाध प्रकाश का सागर।

लेकिन विरक्ति से शुरुआत है यात्रा की और निर्बाध प्रकाश के सागर पर अन्त है।

जो विरक्ति में कच्चा है, वह यहाँ तक कभी भी नही पहुँच पायेगा। पहला कदम ही जिसका भटक गया है, उसकी मंजिल कभी आनेवाली नही है। और जो उधार धर्म को ही लेकर चल रहा है, वह भी कभी सत्य तक नही पहुँच पायेगा। धर्म प्रतिध्वनि है जाननेवालों की। मगर हमारी बड़ी अजीब हालत है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक रेलवे स्टेशन के विश्रामालय मे। उसका मित्र पण्डित रामशरण दास उसके पास ही अखबार पढ़ रहा है। नसरुद्दीन कहता है, "पण्डित जी, कागज तो नही है?"

वह अपने खीसे से बिना आँख उठाये एक कागज निकालकर नसरुद्दीन को दे देता है।

फिर थोड़ी देर बाद नसरुद्दीन कहता है, "पण्डित जी, कलम तो नही है?"

तो वह एक कलम निकालकर अपने खीसे मे दे देता है।

नसरुद्दीन कुछ लिखता है; फिर कहता है, "लिफाफा?"

तो पण्डित रामशरण दास लिफाफा दे देते हैं।

फिर वह लिफाफा मे रखकर कहता है, "स्टैम्प?"

तो वे क्रोध में अपनी डायरी खोलकर स्टैम्प नकालकर दे देते हैं। तो वह स्टैम्प लगा देता है। फिर वो कहता है, "पण्डित जी, व्हॉट इज दि ऐड्रेस ऑफ योर गर्ल फ्रेन्ड—तुम्हारी प्रेयसी का पता क्या है?"

वे चिट्ठी लिख रहे हैं। कागज भी उधार, कलम भी उधार, लिफाफा भी उधार, स्टैम्प भी उधार। यहाँ तक भी ठीक। वह प्रेयसी भी उनकी नही है, जिसको वे पत्र लिख रहे हैं। वो भी पण्डित जी की प्रेयसी! और उनकी प्रेयसी का पता पूछ रहे हैं।

करीब-करीब हमारी जिन्दगी ऐसी ही उधार है।

परमात्मा को भी चिट्ठी लिखते हैं, तो वह परमात्मा शंकर का, नागार्जुन

का, वसुबन्धु का। मोक्ष को चिट्ठी लिखने की कोशिश करते हैं, वह मोक्ष महावीर का, बुद्ध का। ब्रह्म की कुछ खोज-खबर लेते हैं— तो वह ब्रह्म कृष्ण का!

किसी और का हमेशा!

प्रेयसी भी अपनी न हो, तो पत्र लिखना व्यर्थ है। परमात्मा अपना न हो, तो सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। इसे स्मरण जो व्यक्ति रखता है, आज नहीं कल उधार से बच जाता है और अपने निज-परमात्मा की खोज करने लगता है। और जिस दिन खोज निज होती है, उसका आनन्द ही और है। क्योंकि तभी उद्घाटन होना शुरू होता है! अन्धेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ यात्रा शुरू होती है।

मोक्षमार्ग-सूत्र : ४

तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला; बम्बई; १ सितम्बर, १९७३

जया सव्वत्तग नाण
दंसण चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोग च
जिणो जाणइ केवली ॥

जया लोगमलोगं च
जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता
सेलेसिं पडिवज्जइ ॥

जया जोगे निरुंभित्ता
सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताण
सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥

जया कम्मं खवित्ताण
सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो
सिद्धो हवइ सासओ ॥

जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।

जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोकरूप समस्त संसार को जान लेता है, तब (आयु समाप्ति पर) मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध कर शैलेशी (अचल-अकम्प) अवस्था को प्राप्त होता है।

जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है—पूर्ण रूप से स्पन्दन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों को क्षय कर—सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त होती है।

जब आत्मा सब कर्मों को क्षय कर—सर्वथा मलरहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के—मस्तक पर—ऊपर के अग्रभाग पर स्थित होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है।

मन एकमात्र बीमारी है। मन को स्वस्थ करने का कोई भी उपाय नहीं है, मन को शून्य करने का जरूर उपाय है। बीमारी मिट सकती है, बीमारी स्वस्थ नहीं हो सकती। साधारणतः लोग कहते है, उनका मन अशान्त है, बेचैन है, परेशान है, तो पूछते हैं, कैसे मन को शान्त करें?

मन कभी भी शान्त नही होता। मन के शान्त होने का कोई उपाय नहीं है। अशान्त होना मन का स्वभाव है। ठीक से समझें तो अशान्ति ही मन है। मन से मुक्त हुआ जा सकता है। मन के पार हुआ जा सकता है। मन को छोड़ा जा सकता है। मन को शान्त नही किया जा सकता। मन के शान्त होने का एक ही अर्थ है, जहाँ मन न रह जाये।

इसका यह अर्थ हुआ: शान्ति और मन का कोई सम्बन्ध कभी भी नहीं हो पाता। जब तक मन है, तब तक शान्ति नहीं और जब शान्ति होती है, तब मन नहीं होता। मन को मिटाना, मन से मुक्त होना, मन के पार होना समस्त साधना का आधारभूत सूत्र है। तो मन को हम ठीक से समझ लें तो महावीर के इन अन्तिम सूत्रों मे प्रवेश हो जाये।

मन है क्या? क्योंकि बीमारी ठीक से न समझी जा सके, निदान न हो पाये, डायग्नोसिस न हो, तो उपचार नही हो सकेगा। निदान आधे से ज्यादा उपचार है। और बिना निदान किये जो उपचार मे लग जाये, हो सकता है बीमारी को और बढ़ा ले, नयी बीमारियों को निमन्त्रण दे दे।

अधिक लोग मन को बिना समझे उपचार करने में लग जाते हैं। ऐसे लोग या तो मन को दबाने लगते हैं या ऐसे लोग मन को मूर्च्छित करने लगते हैं।

मन को दबाना हम सभी जानते हैं। क्रोध आ जाये तो उसे कैसे पी जाना, उसे कैसे घटक जाना गले के नीचे, हम सभी जानते है। क्योंकि जिन्दगी में सभी मौकों पर क्रोध नही किया जा सकता। वासना मन में उठे, तो कैसे उसे पीते रहना, दबाते रहना, वह हम सभी जानते है। क्योंकि हर क्षण वासना को पूरा करने का उपाय नहीं है।

तो मन को हम सभी दबाते हैं। लेकिन इस दबाने से कोई कभी मुक्त होता है! ये दबी हुई जो वृत्तियाँ हैं, ये धक्का मारती रहती हैं; ये भीतर चोट करती रहती हैं और अवसर की तलाश करती हैं। जब भी कमजोर क्षण मिल जायेगा, ये प्रगट हो जायेंगी। ये इकट्ठी होती रहती हैं।

और मनसविद कहते हैं कि जो आदमी बहुत ज्यादा क्रोध को दबाता रहता है, वह एक न एक दिन क्रोध के भयानक भूकम्प से भर जाता है। जो लोग रोज-रोज क्रोध करते रहते हैं, छोटी-छोटी बातों में क्रोध करते रहते हैं, ऐसे लोग बड़े अपराध नहीं कर पाते। ऐसे लोग हत्या नहीं कर सकते। क्योंकि हत्या करने के लिए जितना क्रोध इकट्ठा होना चाहिए, उतना उनके पास कभी इकट्ठा हो नहीं होता। इसलिए अक्सर जो लोग छोटी-छोटी बातों में क्रोध कर लेते हैं, बुरे लोग नहीं होते। और जो आदमी दबाये चला जाता है, वर्षों तक दबाता रहता है, उसके भीतर ज्वालामुखी इकट्ठा हो जाता है। जब भी इसका विस्फोट होगा, तब यह छोटी-मोटी घटना होने-वाली नहीं है। यह कोई महाउपद्रव करेगा।

तो जिनको आप साधारणतः शान्त समझते हैं, वे भयंकर अशान्ति के जन्मदाता हो सकते हैं। तो जो आदमी कभी-कभी क्रोध करता है, उसके क्रोध से जरा सावधान रहना। जो अक्सर करता है, उसके क्रोध का कोई मतलब नहीं है – हवा आयी और गयी।

छोटे बच्चे बड़े अपराध नहीं कर सकते। और उसका कारण यह है कि वे छोटा-छोटा क्रोध करके दिन भर निकाल लेते हैं। इसलिए छोटे बच्चे क्षण भर में क्रोध करेंगे, क्षण भर बाद बिलकुल शान्त हो जायेंगे – जैसे तूफान कभी आया ही न हो। भरोसा ही न आयेगा कि इस बच्चे ने थोड़ी देर पहले एक भयंकर क्रोध किया था। वह मुस्करा रहा है, नाच रहा है, प्रसन्न है। बच्चे से बड़े अपराध की सम्भावना नहीं है।

जो लोग अपने जीवन को सहज प्रगट करते रहते हैं, ये कोई महात्मा तो नहीं हो सकते, लेकिन ये महाअपराधी भी नहीं हो सकते। इनके महाअपराधी होने का कोई उपाय नहीं है।

दमन से महाअपराध पैदा होता है। अपराध से बचना हो जाता है, महाअपराध पैदा हो जाता है; क्योंकि ऊर्जा का एक नियम है कि आप उसे इकट्ठी करके रख नहीं सकते–उबल जायेगी, ओवर फ्लो हो जायेगी। एक सीमा है जब तक आप सँभाल सकेंगे, और फिर संभालने के बाहर हो जायेगी। इस तरह अगर आप सँभालते गये, संभालते गये, तो वह सीमा आ जाती है जहाँ आपके भीतर इकट्ठी शक्ति प्रगट होगी, और अगर वह आपके विपरीत प्रगट हो जाये तो आप विक्षिप्त भी हो सकते हैं।

मनसविद कहते हैं कि पागल आदमी वही है, जिसने बहुत दबाया है। दबाना इतना ज्यादा हो गया है कि अब होश में उसे निकालने का कोई उपाय न रहा। तो उसने होश भी खो दिया है। अब वह बेहोशी में निकाल रहा है। पागलखानों में जो लोग बन्द हैं, वे दमित स्थिति के आखिरी परिणाम हैं।

तो आप दमन कर-करके विक्षिप्त हो सकते हैं, विमुक्त कभी नहीं हो सकते। विमुक्त होना हो तो दबाना कोई रास्ता नहीं है। और जिसे हम दबाते है, हम उससे और ज्यादा बुरी तरह ग्रसित हो जाते है। उसकी जकड़ हम पर बढ़ जाती है।

तो दबाने से तो कोई कभी पहुँचता नहीं, पर मन को बिना समझे बहुत लोग दबाने की कोशिश में लग जाते है। वह सरल दिखता है, सुगम दिखता है, तात्कालिक परिणामकारी दिखता है– लेकिन लम्बे अरसे में भयानक है, खतरनाक है।

दूसरा, कुछ लोग मन को मूर्च्छित करने में लग जाते है। उन्हे लगता है, अगर मन मूर्च्छित हो जाये तो न पता चलेगा, न मन की उद्विग्नता, पीड़ा सतायेगी।

मूर्च्छा के कई उपाय हैं। शराब कोई पी ले तो सीधा उपाय है–केमिकल्स, रासायनिक तत्व शरीर को मूर्च्छित कर देता है। मस्तिष्क भी शरीर का हिस्सा है, वह भी मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छित हो जाने से फिर कुछ दुख, पीडा, तनाव, परेशानी, चिन्ता, सताप– कुछ भी पता नही चलता। लेकिन जो मूर्च्छित हो गया है, वह मिट नही जाता है। होश आयेगा, सारी बीमारियाँ फिर खडी हो जायेंगी।

सारे धर्मों ने शराब का विरोध किया है– इसलिए नही कि शराब में कोई अपने आप मे बुराई है। सारे धर्मों ने विरोध किया है, क्योंकि धर्म जिस बीमारी को मिटाना चाहते हैं, शराब उसे केवल भुलाती है। भुलाने से कोई चीज मिटती नही।

शराब मे अपने आप मे कोई बुराई नही है। बुराई है इसमे कि जो बीमारी मिट सकती थी, उसे हम भुलाकर स्थगित कर रहे हैं, टाल रहे है। वह जीवन मे और गहरी होती चली जायेगी। और एक ऐसी घड़ी आ जायेगी कि हम इतने कमजोर हो जायेंगे बेहोश होते-होते कि बीमारी हमसे सबल होगी और उसे मिटाने का कोई उपाय न रह जायेगा।

लेकिन, शराब अगर अकेली मुर्च्छा की बात होती तो भी ठीक था, बहुत-सी अच्छी शराबें है। धार्मिक शराबें भी है, जिनमें पता ही नहीं चलता कि हम अपने को भुला रहे हैं। एक आदमी बैठा है और राम-राम, राम-राम, राम-राम जप रहा है। आपको पता नहीं होगा कि एक ही शब्द को बार-बार दोहराने से मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जो मूर्च्छा ले आते हैं। एक ही शब्द की ध्वनि बार-बार चोट करती रहे तो ऊब पैदा करती है, उदासी पैदा करती है, तन्द्रा पैदा करती है नीद पैदा हो जाती है।

तो एक आदमी सुबह से बैठकर एक घण्टा अगर राम-राम या ओमकार, या नमोकार करता रहे– एक ही शब्द को दोहराता रहे– तो उस पुनरुक्ति के कारण

मूर्च्छा पैदा हो जाती है। उस मूर्च्छा में और शराब की मूर्च्छा में कोई बुनियादी अन्तर नहीं है। यह ध्वनि के माध्यम से मस्तिष्क को सुलाना है।

छोटे-छोटे बच्चे को माँ यही करती है, लोरी सुना देती है : राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। थोड़ी देर में राजा बेटा सो जाता है। माँ समझती है कि उसके संगीत के कारण सो रहा है, तो गलती में है—राजा बेटा सिर्फ ऊब रहा है। बार-बार कहे जा रहे हो राजा बेटा सो जा— इतनी ऊब पैदा हो जाती है कि इस ऊब से बचने का एक ही उपाय रहता है कि वह नींद में खो जाये। इसको आप ठीक से समझ लें।

ऊब पैदा हो जाती है, तो ऊब से बच्चा भाग भी तो नही सकता। माँ को छोड़कर कहाँ भागे — बिस्तर पर उसको पकड़े बैठी हुई है। उसको छोड़कर बच्चा कहीं जा भी नहीं सकता। जाने का कोई उपाय नहीं है। एक ही भीतरी उपाय है कि नींद में डूब जाये, तो इस उपद्रव से छुटकारा हो।

लेकिन जो लोरी का सूत्र है, वही जिनको हम मन्त्र कहते हैं, उनका सूत्र है। छोटे बच्चे को माँ कह रही है : राजा बेटा सो जा, जरा बच्चा बड़ा हो गया है, वह खुद ही राम-राम, राम-राम, राम-राम जप रहा है। उसका खुद चित्त ऊब जाता है। ऊब से झपकी लग जाती है। नीद में डूब जाता है। यह झपकी थोड़ा फायदा भी कर सकती है, जैसा नीद करती है— स्वस्थ करेगी, थोड़ा ताजा करेगी।

आज पश्चिम में महर्षि महेश योगी के ट्रान्सेन्डेन्टल मेडिटेशन का जोर से प्रचार है। लोरी से ज्यादा नही है वह। जो भी किया जा रहा है, वह सिर्फ इतना है कि एक शब्द दिया जा रहा है, एक मन्त्र दिया जा रहा है—इसे दोहराये चले जाओ। इस दोहराने से तन्द्रा पैदा होती है।

पूरब में इतना प्रभाव नही पड़ रहा है। भारत मे कोई प्रभाव नही है, अमरीका मे बहुत प्रभाव है। कारण? अमरीका ने नीद खो गयी है, भारत में अभी भी लोग सो रहे हैं।

अमरीका में नींद सबसे बड़ा सवाल हो गया है। बिना ट्रैंक्विलाइजर के सोना मुश्किल है। फिर धीरे-धीरे ट्रैंक्विलाइजर का भी शरीर आदी हो जाता है। फिर उनसे भी सोना मुश्किल है। और नींद इतनी ज्यादा व्याघात से भर गयी है कि ट्रान्सेन्डेन्टल मेडिटेशन, भावातीत ध्यान-जैसे प्रयोग फायदा पहुँचा सकते हैं, और नींद आ सकती है।

लेकिन नीद ध्यान नही है, नींद मूर्च्छा है। इसके अच्छे परिणाम भी हो सकते

है। नींद स्वास्थ्यकृत है, स्वास्थ्य को देगी, थोड़ा सुख भी देगी। नीद के बाद थोड़ा हलकापन भी लगेगा। और सचाई तो यह है कि साधारण नीद की अपेक्षा मन्त्र के द्वारा जो नींद आती है, वह ज्यादा गहरी होती है। क्योंकि मन्त्र के द्वारा जो नीद आती है, वह हिप्नोसिस है, वह सम्मोहन है। हिप्नोसिस शब्द का अर्थ भी निद्रा ही होता है— चेष्टा से पैदा की गयी निद्रा; कोशिश से लायी गयी निद्रा; और मन के तन्तुओं को शिथिल करके लायी गयी निद्रा।

आपको रात जब नींद नही आती, तो कारण आप जानते हैं क्या होता है? कारण यह होता है कि मन के तन्तु खिंचे होते हैं, विचार में लगे होते हैं। इतने विचार में लगे होते हैं कि खून दौड़ता ही चला जाता है। इस खून के दौड़ने के कारण नीद मुश्किल हो जाती है। इसलिए बिना तकिये के आप सोए तो नींद नही आती, क्योंकि खून सिर की तरफ दौड़ता रहता है। तकिया आप रख ले तो खून सिर की तरफ नही दौड़ता है, नही दौड़ने के कारण जल्दी नीद आ जाती है।

इसलिए जैसे-जैसे लोग बौद्धिक होते जाते है, वैसे-वैसे तकियों की सख्या बढ़ती जाती है। जंगली आदमी बिना तकिये के सो सकता है। जानवरों को तकिये की कोई फिक्र ही नही है। जगली आदमी भी सोच नही सकता कि तकिये की क्या जरूरत है। बड़ी गहरी नींद सोता है। असल मे विचार न होने से खून की गति मस्तिष्क में वैसे ही कम होती है। लेकिन आपके मन में इतने विचार चल रहे होते हैं कि जब तक विचार चल रहे होते हैं, तब तक खून दौड़ता रहता है। क्योंकि बिना खून दौड़े विचार नही चल सकते।

तो मन्त्र के द्वारा ये विचार बन्द हो जाते है। और मन्त्र पुनरुक्ति है एक शब्द की। एक शब्द के दोहराने से मन के तन्तु शिथिल होने लगते हैं। शिथिल होने से निद्रा आ जाती है। अगर आपको कोई भी एक मोनोटोनस वातावरण दिया जाये, वह नींद के लिए अच्छा होता है। .....मोनोटोनस चाहिए।

आपका सोने का जो कमरा है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बहुत-से रंगों से उसको नहीं रंगना चाहिए। क्योंकि बहुत रंग मन को उत्तेजित करते हैं। एक रंग होना चाहिए— और वह भी मोनोटोनस, जिससे ऊब आये, उदासी आये, तन्द्रा मालूम पड़े। कमरे में ज्यादा चीजें नही होनी चाहिएँ।

और हर आदमी के सोने का रिचुअल होता है। वह उसी को रोज दोहराता है। जैसे छोटे बच्चे हैं— कोई छोटा बच्चा अपनी गुड्डी को हाथ मेर पकड़कर सो जाता है; कोई छोटा बच्चा अपने अंगूठे को मुंह में ले लेता है। वह मोनोटोनस हो गया है। वह रोज वही करता है। अगर आप उसका अंगूठा उसके मुह से निकाल लें, तो उसकी नीद

तोड़ देंगे। वह जैसे ही अंगूठा मुह में डाल लेता है, अंगूठा मन्त्र हो जाता है।वह ऊब हो गयी। वही पुराना अगूठा रोज-रोज– वह सो जाता है।

आप ऐसा मत सोचना कि छोटे बच्चे ही ऐसा करते है। आपका भी क्रियाकाण्ड है। हर आदमी का क्रियाकाण्ड है। सोते वक्त वह वही क्रियाकाण्ड करेगा, उसके बाद नींद आ जायेगी। नीद आ जायेगी, अगर आपने वही क्रियाकाण्ड किया।

इसलिए नये कमरे में नीद नही आती, क्योंकि मोनोटोनी टूट जाती है। नये मकान मे नीद नही आती। नया आदमी कमरे में सो रहा हो तो जरा अड़चन होती है। वही पत्नी सो रही हो, वही पति सो रहा हो, वही घुर्राटा चल रहा हो सदा का– ऊब पैदा होनी चाहिए, नीद का सूत्र है। जरा भी नयी चीज अड़चन पैदा करती है।

तो मन को कुछ लोग दबाकर मूर्च्छित कर लेते है। ऐसे लोग, महावीर जिसको सिद्धावस्था कह रहे है, उस तक कभी भी नही पहुँच सकते। ये दो ढंग है। दबानेवाला विक्षिप्त हो जाता है, सुलानेवाला धीरे-धीरे सुस्त हो जाता है। वह शान्त दिखाई भला पड़ने लगे, लेकिन उसकी शान्ति मुरदा है, मरे हुए आदमी की शान्ति है, मरघट की शान्ति है। वह कोई जीवंत शान्ति नही है, जहाँ भीतर जीवन प्रवाह ले रहा है और अशांति न हो।

इन दो बातों से बचना जरूरी है। लेकिन वही बच सकता है, जो मन का स्वभाव समझ ले।

मन का स्वभाव क्या है ?

मन है विचार की प्रक्रिया। मन कोई यन्त्र नहीं है। मन कोई वस्तु नही है।मन एक प्रवाह है। मन को अगर हम ठीक से समझें तो मन कहना ठीक नही– मनन, चिन्तन, विचारो की धारा, नदी। ये विचार बहे चले जाते हैं। और जब तक ये बहते रहते हैं तब तक आप शान्त नही हो सकते। क्योंकि हर विचार आपको आन्दोलित कर जाता है; हर विचार आपको हिला जाता है।

कम्पित होना संसार में होना है महावीर के हिसाब से। अकम्प हो जाना ससार के बाहर हो जाना है। और हम प्रतिक्षण इसी कोशिश में लगे हैं कि थोड़ा-सा कम्पन मिले। उसे हम सेन्सेशन कहते हैं।

फिल्म..... हमारी पूरी कोशिश यह है कि जिन्दगी ऊब न जाये, तो कुछ नया हो जाये। एक नया वस्त्र भी आप ले आते हैं तो थोड़ी जिन्दगी में रौनक मालूम पड़ती है। एक नयी चीज खरीद लाते है। तो लोग पागल हो गये हैं खरीदने में। बिना किसी फिक्र के चीजें खरीदते चले जाते हैं। क्योंकि हर नयी चीज थोड़ी-सी थ्रिल देती है।

थोड़ा देर को ऐसा लगता है, जिन्दगी आयी। क्योंकि थोड़ी-सी ऊब टूटती है, बोर्डम टूटती है। मन की पूरी कोशिश ये है कि आप नया-नया खोजते रहे रोज।

यह जानकर आप हैरान होंगे कि पूरब के मनीषियों ने पुराने दिनों में इस बात की फिक्र की थी कि समाज बहुत न बदले, चीजें बहुत नयी न हो, घटनाओं में बहुत नयापन न हो ताकि मन को तरंगित होने का कम से कम उपाय हो। वह जो पूरब का समाज स्टैटिक था, स्थिर था, उसके पीछे मनीषियों का हाथ था। आज पश्चिम में ठीक उससे उलटी हालत हो गयी है। हर चीज नयी हो, हर दिन नया हो। दूसरे दिन पुरानी चीज ऊब देने लगती है। सब कुछ नया होता चला जाये।

अमरीका के आकड़े मैं पढ़ता था। कोई भी आदमी एक मकान में तीन साल से ज्यादा नही रहता। यह औसत है। हर आदमी तीन साल के भीतर तो मकान बदल ही लेता है। कार तो आदमी हर साल बदल लेता है। तलाक की संख्या पचास प्रतिशत को पार कर गयी है। सौ विवाह होते हैं तो पचास तलाक हो जाते हैं। इस सदी के पूरे होते-होते जितने विवाह होंगे, उतने ही तलाक होंगे। ये विवाह और तलाक भी मौलिक रूप से नये की खोज है।

मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक चर्च था। और चर्च का पादरी कभी-कभी नसरुद्दीन को शिक्षण दिया करता था। देखता था उसका जीवन तो कभी-कभी समझाता था। एक दिन नसरुद्दीन ने उससे कहा कि आप ठीक ही कहते है, मैने अब पक्का कर लिया है कि आज जाकर मैं अपनी पत्नी से क्षमा मांग लूँगा, और अब किसी स्त्री की तरफ आख उठाकर भी नहीं देखूंगा! बहुत हो गया। और आप ठीक ही कहते थे, लेकिन मैं माना नही। यह मन की दौड़ थी, वासना थी, चलती रही। लेकिन अब उम्र भी हो गयी। तो आज जाकर पत्नी से क्षमा मांग लेता हूँ। सब कॅन्फेशॅन कर लूँगा कि मैं उसे धोखा दे रहा हूँ।

दूसरे दिन सुबह पादरी प्रतीक्षा करता रहा कि कब नसरुद्दीन घर से निकले। नसरुद्दीन बड़ी शान से, बड़ी ताजगी से जोर से कदम रखता हुआ चर्च के पास से निकला। बड़ा प्रसन्न था। तो पादरी ने कहा, "मालूम होता है, नसरुद्दीन, पत्नी ने तुम्हें क्षमा कर दिया!"

नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, पत्नी ने क्षमा तो नही किया, लेकिन अभी बात न करो। दो-चार दिन बाद...!

पादरी ने कहा, "लेकिन ऐसा क्या मामला हुआ है? प्रसन्न तुम बहुत दिखते हो?"

नसरुद्दीन ने कहा, मैंने अपनी पत्नी को कहा कि मैं तुझे धोखा दे रहा हूँ। एक दूसरी स्त्री से मेरा सम्बन्ध है। तो वह बड़ी बेचैन हो गयी और कहने लगी, उसका नाम बताओ। तो नाम बताना तो उचित नहीं था, क्योंकि उस दूसरी स्त्री की इज्जत का भी सवाल है; उसके पति का भी सवाल है; उसके बच्चों का भी सवाल है। तो मैंने कहा कि नाम तो मैं नहीं बता सकूंगा, माफी मांगता हूँ, क्षमा कर दे। तो पत्नी नाराज हो गयी। उसने कहा कि जब तक तुम नाम नहीं बताओगे, मैं क्षमा न करूंगी। और फिर कहने लगी, अच्छा, अगर तुम नहीं बताते तो मैं खुद ही ख्याल कर लेती हूँ। तुम पादरी की पत्नी के प्रेम में तो नहीं हो? और जब मैं चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं-नहीं, पादरी की बहन! और जब मैं फिर भी चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं-नहीं, अब तो पक्का है कि तुम पादरी की लडकी से...!

मैं चुप ही रहा!

तो पादरी ने कहा, "लेकिन इससे तुम इतने प्रसन्न क्यों हो?'

तो नसरुद्दीन ने कहा कि और तो कुछ हल न हुआ, बट शी हैज गिवेन मी थ्री न्यू कॉन्टैक्ट्स। और अभी अब बीच में पड़ो मत!

मन फिर गतिमान हो गया। अब तीन नये पते उसने और बता दिये। इन तीन स्त्रियोंका ख्याल ही नहीं था नसरुद्दीन को।

कई बार आप संयम के करीब पहुँचने लगते हैं और फिर कोई तरंग हिला जाती है। आप सोचते हैं, संयम की इतनी जल्दी भी क्या है, कुछ देर और रुका जा सकता है। और अक्सर लोग मरते क्षण तक संयम नहीं साध पाते। आखिरी क्षण तक भी जीवन हिलोता ही रहता है।

महावीर कहते हैं, जिसे बाहर की स्थितियाँ कम्पित कर देती हैं, आन्दोलित कर देती हैं– आन्दोलन का अर्थ है, जो बाहर जाने को उत्सुक हो जाता है, वह आदमी संसार में है। वह चेतना कभी भी सिद्ध नहीं हो सकती।

महावीर का शब्द है, 'शैलेशी अवस्था', हिमालय की तरह थिर। जहाँ कोई कम्पन न हो। हिन्दुओं ने शिव का घर कैलाश पर बनाया है सिर्फ इसी कारण। कोई कैलाश पर ढूंढने से शिव मिलेंगे नहीं। और अब तो करीब-करीब सारा हिमालय खोज डाला गया है। और कुछ बचा होगा तो चीनी छोड़ेंगे नहीं। वो खोजे ले रहे हैं। और शिव अगर मिलते होते तो आपको ही मिलते, चीनियों को तो कभी मिल ही नहीं सकते।

शिव वहाँ हैं भी नहीं, सिर्फ प्रतीक है कि शिवत्व की जो आखिरी अवस्था है,

वह कैलाश-जैसी थिर होगी। इसलिए महावीर ने शैलेशी अवस्था कहा है उसे। शैलेश-जैसी, हिमालय-जैसी थिर। जहाँ कोई कम्पन नहीं है।

लेकिन अगर वैज्ञानिकों से पूछे तो वे कहेंगे कि यह शब्द ठीक नहीं है, क्योंकि हिमालय कंप रहा है। सच तो यह है कि हिमालय से ज्यादा कंपनेवाला कोई पहाड़ ही दुनिया में नहीं है। विन्ध्याचल है, सतपुड़ा है– ये ठहरे हुए हैं। आल्प्स– ये सब ठहरे हुए हैं, कंप नहीं रहे हैं हिमालय कंप रहा है– उसका कारण है– क्योंकि हिमालय जवान है। विन्ध्या और सतपुड़ा बूढ़े हैं।

भू-तत्त्वविद कहते हैं कि विन्ध्याचल जगत का सबसे पुराना पर्वत है, सबसे बूढ़ा पर्वत है। हमारी भी कहानियाँ कहती हैं कि ऋषि अगस्त्य जब दक्षिण गये, तो वे विन्ध्या से कह गये कि मैं जब तक लौट न आऊँ, तुम झुका रहना, क्योंकि मैं बूढ़ा आदमी हूँ और तुझे चढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है।

उनके लिए ही वह झुका था। लेकिन फिर वे लौट नहीं, उनकी मृत्यु हो गयी दक्षिण में। तब से वह झुका है। कहानी बड़ी मीठी है। वह यह कहती है कि बूढ़ा पहाड़ है, गर्दन झुक गयी है, कमर झुक गयी है।

विन्ध्या सबसे पुराना पहाड़ है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। वह बढ़ नहीं रहा है; घट रहा है। हिमालय रोज बढ रहा है। उसकी ऊँचाई रोज बढ़ती जाती है। उसमें रोज कम्पन है। वह अभी जवान है।

जितना जवान चित्त होगा, उतना कम्पित होगा। अगर चित्त कम्पित ही होता रहता है, तो आपका वार्धक्य शरीर का है – लेकिन चित्त के अर्थों में अभी आप जवान की वासना से भरे हैं। लेकिन महावीर का प्रयोजन है– महावीर को ख्याल भी नहीं होगा कि हिमालय कंप रहा है। उस समय तक इस बात का कोई उद्घाटन नहीं हुआ था कि हिमालय कम्पित हो रहा है और बढ़ता जा रहा है।

रोज कुछ इंच हिमालय ऊपर उठ रहा है जमीन से। अभी जवान है, अभी वह वयस्क नहीं हुआ। अभी बाढ़ रुकी नहीं। लेकिन महावीर का प्रयोजन साफ है, क्योंकि हिमालय-जैसी थिर और कोई चीज जगत में मालूम नहीं पड़ती। ऊपर से देखने पर तो कम से कम हिमालय बिलकुल थिर मालूम होता है।

सब बदल जाता है, हिमालय बदलता हुआ नहीं मालूम होता– इस अर्थ में प्रतीक है। ऐसी चित्त की अवस्था हो जाये, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई कंपन नहीं होती, कोई बढ़ता नहीं, कोई गिरती नहीं। सब ठहर जाता है; जैसे कोई झील बिलकुल निस्तरंग हो जाये; शून्य आकाश हो जहाँ बादल का एक

टुकड़ा भी न तैरता हो; हवा का एक झोंका भी न आता हो—ऐसी अवस्था में चित्त नहीं रह जाता, मन नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में सिर्फ आत्मा रह जाती है।

तो हम ऐसी व्याख्या कर सकते हैं कि जब तक आत्मा कंपती है, उस कम्पन का नाम मन है। मन कोई वस्तु नहीं है, मन सिर्फ कंपती हुई आत्मा का नाम है। और जब आत्मा नहीं कंपती, और ठहर जाती है, स्वस्थ हो जाती है, स्वयं में रुक जाती है, शैलेशी बन जाती है, तब मन नहीं रह जाता। जब मन नहीं रह जाता है तो जो शेष रह जाता है, वहाँ कोई कम्पन नहीं है।

इस अवस्था को पाने के लिए जरूरी होगा कि हम नयी की जो विक्षिप्त तलाश करते हैं, वह न करें। और मन जब मांग करता है नयी उत्तेजनाओं की, तब हम सावधान रहें। और जब मन कहता है, खोजो नये को, तो हम समझें कि मन क्या मांग रहा है। मन मांग रहा है कि मुझे नया ईंधन दो ताकि मैं कंपता रहूँ।

पुराने से मन बड़े जल्दी ऊब जाता है—नये से भी ऊब जायेगा। आज नया है, कल पुराना हो जायेगा। मन की वृत्ति को जो निरन्तर भरता रहे नये से, बिना यह समझे कि मन सिर्फ कंपने की कोशिश कर रहा है, नये कम्पन तलाश कर रहा है—वह आदमी कभी भी समाधि को उपलब्ध नहीं होगा।

और ऐसी अवस्था में हम सदा ही दूसरे पर भटकते रहते हैं। दूसरा ही उत्तेजना दे सकता है। उत्तेजना सदा बाहर से आती है। बाहर से शान्ति के आने का कोई उपाय नहीं है। शान्ति सदा भीतर जन्मती है, उत्तेजना सदा बाहर से आती है। अशान्ति बाहर से आती है, शान्ति भीतर से बहती है। और जब तक हम बाहर लगे हुए हैं...।

मुल्ला नसरुद्दीन युद्ध के दिनों में सेना में भर्ती हुआ था। उसका नया शिक्षण चल रहा था। और उसके कैप्टन ने एक दिन उससे पूछा कि नसरुद्दीन, जब तुम बन्दूक साफ करते हो, तो सबसे पहले क्या करते हो? बन्दूक साफ करने के पहले सबसे पहला काम क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा: "सबसे पहला काम, पहले मैं नम्बर देखता हूँ।" उस कैप्टन ने कहा कि नम्बर से सफाई का क्या सम्बन्ध? नसरुद्दीन ने कहा: "जस्ट टू मेक श्योर दैट दिस इज माइ ओन, आइ एम नॉट क्लीनिंग सम बडी एल्स—यह पक्का करने के लिए कि बन्दूक अपनी ही है, किसी और कि बन्दूक साफ नहीं कर रहे हैं।"

यह जो नसरुद्दीन कह रहा है, बड़ी कीमत की बात कह रहा है। जिन्दगी में

करीब-करीब हम दूसरों की बन्दूके साफ करते रहते है, अपनी बन्दूक तो गन्दी ही रह जाती है। दूसरों की साफ करने के कारण फुर्सत ही नही मिलती कि अपने पर ध्यान चला जाये।

जो व्यक्ति भी उत्तेजनाओं में रसलीन है, वह दूसरों की बन्दूके साफ करने में जीवन बिता देता है। दूसरो को ठीक करने मे, दूसरो को सुधारने में, दूसरो को सुन्दर बनाने में, दूसरों को मित्र बनाने में, दूसरों को अपने निकट लाने में, दूसरों का भोग करने मे– पर सारा जीवन दूसरे पर लगा रहता है। और दूसरे काफी है! दूसरों का कोई अन्त नही है।

सार्त्र ने एक अद्भुत बात कही है। कहा है कि दि अदर इज द हेल– दूसरा नर्क है। बात थोड़ी सही है। हम अपना नर्क दूसरे के ही माध्यम से पैदा करते है। आप खुद अपने नर्क को देखें। आदमी-आदमी का अपना-अपना नर्क है। हर आदमी अपने-अपने नर्क मे जी रहा है। मुसकराहटें तो ऊपर है और धोखे की है, और चिपकायी गयी है, पेन्टेड है– भीतर नर्क है। और हर आदमी अपने-अपने नर्क में जी रहा है, लेकिन वह नर्क आप अकेले पैदा नही कर सकते है; उसके लिए आपको दूसरो की जरूरत है। दूसरों के बिना नर्क पैदा नही हो सकता।

थोड़ा सोचें, क्या आप अकेले नर्क पैदा कर सकते है? दूसरों के बिना नर्क पैदा नही हो सकता। लेकिन, अगर यह सच है कि दूसरों के बिना नर्क पैदा नही हो सकता, तो हम दूसरों के पीछे इतने पागल क्यों है? क्योंकि यह आशा बंधी है कि दूसरो के बिना स्वर्ग भी पैदा नही हो सकता। दूसरे के द्वारा स्वर्ग पैदा हो सकता है, इसी कोशिश में तो हम नर्क पैदा कर लेते है।

स्वर्ग का स्वप्न नर्क को जन्म दे जाता है। सब नर्कों के द्वार पर लिखा है, स्वर्ग। तो जिस दरवाजे पर आप स्वर्ग लिखा देखे, जरा सोचकर प्रवेश करना– क्योंकि नर्क बनानेवाले काफी कुशल है। वे अपने दरवाजे पर नर्क नही लिखते, फिर कोई प्रवेश ही नही करेगा। नर्क के दरवाजे पर सदा स्वर्ग लिखा होता है– वह दरवाजे पर ही होता है। भीतर जाकर, जैसे-जैसे भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे-वैसे नर्क प्रगट होने लगता है।

दूसरे से जो स्वर्ग की आशा करता है, दूसरे के द्वारा उसका नर्क निर्मित हो जायेगा। सार्त्र ठीक कहता है कि दि अदर इज द हेल। पर सार्त्र ने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया कि दूसरा नर्क क्यों है।

वह दूसरे के कारण नर्क नही है। दूसरे में स्वर्ग की वासना ही नर्क का जन्म बनती है। तो बहुत गहेरे में देखने पर मेरी वासना ही कि दूसरे से मैं स्वर्ग बना लूं, नर्क का कारण होती है। और जो व्यक्ति दूसरे में उलझा है, वह सदा कम्पित रहेगा।

आपने कभी देखा कि आपके जितने कम्पन हैं, वे दूसरे के सम्बन्ध में होते हैं? क्रोध के, प्रेम के, घृणा के, मोह के, लोभ के— सब दूसरे के सम्बन्ध में होते हैं। थोड़ी देर को सोचें कि आप इस पृथ्वी पर अकेले रह गये हैं, क्या आपके भीतर कोई कम्पन रह जायेगा? सारा संसार अचानक खो गया, आप अकेले हैं, तो कोई कम्पन नहीं रह जायेगा। क्योंकि कम्पन के लिए दूसरे से सम्बन्धित होना जरूरी है; दूसरे और मेरे बीच वासना का सेतु बनना जरूरी है— तब कम्पन होगा।

आदमी जब गहन भीतर डूबता है आंख बन्द करके, बाहर को भूल जाता है— तो वह ऐसे ही हो जाता है, जैसा पृथ्वी पर अकेला है; जैसे और कोई भी न रहा। सब होंगे— लेकिन जैसे नहीं रहे; मैं अकेला हो गया। इस अकेलेपन में शैलेशी अवस्था पैदा होती है। इस अकेलेपन में, इस नितान्त भीतरी एकान्त में, सब कम्पन ठहर जाते हैं और अकम्प का अनुभव होता है।

सूत्र महावीर का हम लें।

'जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।'

'जब केवलज्ञानी जिन लोक–अलोकरूप समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है और शैलेशी (अचल–अकम्प) अवस्था प्राप्त होती है।

महावीर ने पिछले सूत्र में कहा है कि जब अन्तर प्रकाश का उदय होता है, जब कोई जीवन-ऊर्जा पूरी तरह भीतर की तरफ़ मुड़ जाती है....।

इस भीतर की तरफ़ मुड़ जाने का नाम ही प्रतिक्रमण है। चेतना की दो अवस्थाएँ हैं। एक आक्रमण— दूसरे की तरफ़ जाना; और एक प्रतिक्रमण— अपनी तरफ आना।

तो प्रतिक्रमण कोई क्रिया नहीं है कि आपने बैठकर कर ली। प्रतिक्रमण चेतना का, ऊर्जा का अपनी तरफ लौटना है। यह बड़ी गहन घटना है।

लोग मुझे आकर कहते हैं कि आज प्रतिक्रमण करके आ रहे है। प्रतिक्रमण करके कहीं कोई आता है? प्रतिक्रमण का मतलब ही है कि बाहर आना नहीं, भीतर जाना शुरू हुआ। प्रतिक्रमण ऊर्जा का भीतर की तरफ लौटना है।

आपने देखे होंगे, अनेक इजोटेरिक, गुह्य समाजों ने सांप के प्रतीक को चुना है, जिसमें सांप अपनी पूंछ को पकड़े हुए है। वह सांप का अपनी पूंछ को पकड़ना प्रतिक्रमण है। जब चेतना अपने ही द्वारा अपने को पकड़ लेती है और एक वर्तुल निर्मित हो जाता है, तब प्रतिक्रमण है।

जब तक मैं दूसरे की तरफ ध्यान दे रहा हूँ, तब तक आक्रमण जारी है। और आक्रमण जब तक जारी है, तब तक मैं अपने को व्यर्थ कर रहा हूँ; व्यर्थ खो रहा हूँ–तब तक मैं नष्ट हो रहा हूँ। क्योंकि जितनी ऊर्जा बाहर जा रही है, वह व्यर्थ जा रही है। जब तक भीतर जोड़ न हो जाये ऊर्जा का, जब तक अन्तरसम्भोग न हो जाये, जब तक मैं स्वयं से भीतर न मिल जाऊँ, तब तक आनन्द उपलब्ध नहीं होगा।

दूसरे से मिलकर जो थोड़ा-बहुत सुख उपलब्ध हो सकता है, वह केवल राहत है। वह शक्ति का क्षीण होना है। और जब भी शक्ति भारी हो जाती है और दूसरे के माध्यम से बाहर निकल जाती है, तो हलकापन लगता है।

कभी-कभी, आपको ख्याल होगा कि बुखार जब ठीक होता है, तो बड़ा हलकापन लगता है जैसे उड़ सकते हैं। लेकिन वह हलकापन कमजोरी के कारण लगता है, शक्ति के कारण नहीं। शक्ति भीतर नहीं है, इसलिए बिलकुल हल्के लगते है। बुखार के बाद बिलकुल हलकापन लगता है–जैसे सब शान्त हो गया। दूसरे से मिलकर जिस ऊर्जा का हम व्यय करते हैं, वह बुखारवाला हलकापन है, जहाँ एक उत्तेजना आयी और फिर वह विलीन हो गयी।

अमरीका में मास्टर्स और जॉन्सन ने सम्भोग के सम्बन्ध में बड़े वैज्ञानिक अध्ययन किये हैं। और पहला अध्ययन उनका यह है कि सम्भोग के क्षण में दो व्यक्ति, स्त्री-पुरुष, दोनों ही बुखार की अवस्था में आ जाते हैं, फ़ीवरिश हो जाते हैं। दोनो का शरीर उत्तप्त हो जाता है, गर्मी बढ़ जाती है, टेम्प्रेचर ज्यादा हो जाता है, श्वास जोर से चलने लगती है। शरीर का रोआँ–रोआँ बेचैन और परेशान हो जाता है। कुछ ही क्षणो में दोनो ही उत्तप्त होकर जलने लगते हैं। और जब दोनो का स्खलन हो जाता है, तो इस बुखार से छुटकारा हो जाता है। वापिस लौट आते है।

यह जो बुखार से छूट जाना है, इसमें राहत मिलती है, सुख नहीं मिल सकता। दूसरे से हमारा कोई भी सम्बन्ध ज्यादा से ज्यादा रिलीफ का हो सकता है। स्वयं से सम्बन्ध आनन्द का हो सकता है।

महावीर इस स्वयं से सम्बन्ध को कहते हैं, प्रतिक्रमण। जब चेतना अपने पर लौट आती है। जैसे ही चेतना अपने पर लौटती है, वैसे ही कर्म-मल गिर जाते हैं। क्योंकि कर्म-मल हमने इकट्ठे ही किये थे दूसरे के लिए, दूसरे से सम्बन्धित होने के लिए। इसे हम थोड़ा समझें।

हम बोलते हैं– भाषा हम सीखते हैं। लेकिन भाषा हम सीखते हैं दूसरे के लिए। भाषा का कोई उपयोग अपने लिए नहीं है। भाषा सामाजिक है, दूसरे से

जुड़ने का उपाय है। अगर आप अकेले रह जायँ जगत मे, तो भाषा छूट, जायेगी भाषा की कोई जरूरत नही रह जायेगी। क्योंकि भाषा थी ही दूसरे से जुड़ने के लिए।

आप कार में बैठते हैं कही जाने के लिए, अगर कही जाना ही न हो, तो आप कार के बाहर निकल आयेंगे। और अगर सारा जाना ही बन्द हो जाये, कही जाने का सवाल ही न हो, कोई मंजिल ही न हो, तो कार को आप भूल ही जायेंगे।

आप वस्त्र पहनते हैं ताकि दूसरे को आपकी नग्नता न दिखाई पड़े। लेकिन अगर जगत में कोई भी न हो, आप घने जंगल में हो, जहाँ कोई भी नही है– आप निर्वस्त्र घूमने लगेंगे। वस्त्र की चिन्ता नही रहेगी।

आप घर से निकलते है, आइने में चेहरा देखते हैं। क्योंकि कोई दूसरा आपके चेहरे में गन्दगी न देख ले, कुरूपता न देख ले– अभद्र न मालूम पड़े। लेकिन आप जंगल में अकेले हो– दर्पण पड़ा-पड़ा टूट जायेगा, आप देखना बन्द कर देंगे।

हम जीवन में जो भी कर रहे हैं, वह दूसरे के कारण, दूसरे के लिए। महावीर कहते है, हमने जीवन-जीवन मे जन्मों-जन्मों में, जो भी कर्म इकट्ठे किये है, वे दूसरे से सम्बन्धित होने के लिए। हमारा सारा खेल यन्त्र का है। हमारा सारा शरीर, हमारा सारा मन दूसरे से सम्बन्धित होने का उपकरण है। जब कोई चेतना अपने से सम्बन्धित होती है, यह सारा उपकरण नीचे गिर जाता है। इसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इससे हमारा सम्बन्ध टूट जाता है।

यह जो सम्बन्ध का टूट जाना होता है, तभी सर्वतगामी केवलज्ञान का उदय होता है। तब ऐसे बोध का जन्म होता है, जो सब तरफ फैलता चला जाता है, जिसकी कोई सीमा नही है; जो असीम है। तब भीतर से प्रकाश के वर्तुल चारो तरफ फैलते चले जाते है, अनन्त लोक को घेर लेते हैं। जितना विस्तार है, उसे घेर लेते है। महावीर कहते है, न केवल लोक का, बल्कि अलोक का भी बोध हो जाता है।

मैंने पीछे आपको कहा कि आधुनिक भौतिक शास्त्री एन्टि-यूनिवर्स, अलोक की धारणा के करीब पहुँच गये हैं। और पहुँचना जरूरी हो गया, क्योंकि जगत का एक अनिवार्य नियम समक्ष में आ गया है कि यहाँ द्वद्व के बिना कुछ भी नही होता। यहाँ होने का ढंग विपरीत के द्वारा है। यहाँ सब चीजें विपरीत के साथ मौजूद हैं: अन्धेरा प्रकाश के साथ, जन्म मृत्यु के साथ। तो अकेला यूनिवर्स, अकेला लोक नहीं हो सकता, अलोक भी होगा। इससे विपरीत भी कुछ होगा।

महावीर बड़ी अनूठी बात कहे है। और तब तो उनके पास वैज्ञानिक कोई उपकरण न थे इसको जानने के। निश्चित ही, यह उनके ज्ञान के विस्तार में ही प्रतीत हुआ होगा। क्योंकि वैज्ञानिक के पास तो उपकरण हैं, महावीर के पास तो कोई उपकरण

न थे; कोई प्रयोगशाला न थी स्वयं को छोड़कर। खुद ही प्रयोगशाला थे— इससे ज्यादा तो कुछ भी साथ न था। आँख बन्द करके भीतर देखने के सिवा उनकी कोई और विधि न थी। इस विधि के द्वारा उनको यह प्रतीति हुई कि अलोक भी है, एन्टि-यूनिवर्स भी है।

ठीक उस अलोक के नियम इसके बिलकुल विपरीत होंगे। वह इससे बिलकुल उलटा है। और वह उलटा होना जरूरी है ताकि यह लोक हो सके। क्योंकि द्वन्द्व के बिना जगत में कोई भी अस्तित्व नही है। अगर स्त्रियाँ न हो, तो पुरुष खो जायें; पुरुष न हों, स्त्रियाँ खो जायें।

एक बहुत पुरानी कथा है अरब में कि एक बार लोग बिलकुल सुस्त और काहिल हो गये, और ऐसा समय आया कि सब आलसी हो गये। कोई कुछ करना नही चाहता था। कोई कुछ करता नही था। तो एक मनीषी को पूछा गया कि क्या करें? तो उसने कहा कि तुम एक उपाय करो : सारे पुरुषों को एक द्वीप पर बन्द कर दो और सारी स्त्रियों को दूसरे द्वीप पर बन्द कर दो। बस, सब ठीक हो जायेगा।

पर उन्होंने कहा कि आप पागल हो गये हैं, इससे क्या होगा? स्त्रियों को एक द्वीप पर बन्द कर देंगे, पुरुषों को एक द्वीप पर बन्द कर देंगे— इससे सुस्ती कैसे मिटेगी?

उसने कहा कि तुम इसकी फिक्र छोड़ो— वे दोनो ही नाव बनाने में लग जायेंगे कि दूसरे द्वीप पर कैसे पहुँचें। सुस्ती बिलकुल टूट जायेगी। आलस्य बिलकुल खो जायेगा। उपक्रम आ जायेगा, श्रम शुरू हो जायेगा। पुरुष अकेला नही रह पायेगा, स्त्री अकेली नही रह पायेगी। वे पास आना चाहेंगे। उपद्रव शुरू हो जायेगा। तुम अराजकता पैदा कर दो, तुम दोनों को अलग कर दो।

द्वन्द्व यहाँ इस पृथ्वी पर जीवन का आधार है। तो महावीर कहते है, अलोक और लोक ये दो अस्तित्व की अनिवार्यताएँ हैं। जिस व्यक्ति के भीतर मौन घटित होगा, मन समाप्त हो जायेगा; जहाँ मन समाप्त होता है, वहाँ मौन है। जो भीतर मुनि हो जायेगा, उसको लोक और अलोक दोनों आलोकित हो जायेंगे, दोनों दिखायी पड़ने लगेंगे। जीवन का मौलिक आधार दिखायी पड़ जायेगा कि द्वन्द्व, ड्यूआलिटि, डायलेक्टिक्स, संघर्ष जीवन का आधार है।

और इस जीवन से द्वन्द्व नहीं मिट सकता। कोई चाहे तो अपने भीतर द्वन्द्व के पार जा सकता है। लेकिन बाहर द्वन्द्व नहीं मिट सकता— नये रूप ले लेगा, नये संघर्ष बना लेगा, नये उपद्रव खड़ा करेगा। क्योंकि बिना उपद्रव के जीवन अस्तित्व में नहीं हो सकता। संघर्ष वहाँ अनिवार्य है।

'जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक, तब जिन तथा केवली होकर.....।'

जिन का अर्थ है, जिसने अपने को जीत लिया। अपने को जीतने का अर्थ है, जो दूसरे पर किसी भी अर्थों में निर्भर नही रह गया है। दूसरे की निर्भरता जहाँ पूर्णतया समाप्त हो जाती है, वहाँ, महावीर कहते है, व्यक्ति जिन हुआ। और अपने को जिन कहने का हकदार वही है, जो किसी पर किसी भी कारण से निर्भर नही है। जो अपने में पर्याप्त है। जिसका होना काफी है। जिसकी चेतना किसी की भी तलाश में नही जाती। जो किसी को भी खोजता नही है; और कोई न मिले, तो जरा भी पीड़ा नहीं होती। जो अपने साथ रहकर इतना प्रसन्न है कि उसकी प्रसन्नता में कोई भी कमी नहीं है।

अपने ही साथ जो प्रफुल्ल है, उसे महावीर कहते हैं, जिन। और केवली उसे कहते हैं, जिसे इस ज्ञान का अनुभव हो गया है--जिसकी कोई बाधा नही है, जिस पर कोई अवरोध नही है। जो फैलता ही चला जाता है। जो अनन्त प्रकाश है। भीतर के इस अनन्त प्रकाश का जिसे अनुभव हो गया है। महावीर ने शब्द बडा अनूठा चुना है : केवल-- अॅलोन, अकेला, एकाकी, जहाँ सिर्फ ज्ञान ही रह जाये।

उपनिषदों मे कहा जाता है कि जगत का ज्ञान एक त्रिवेणी है। वहाँ जाननेवाला है, जानी जानेवाली वस्तु है और दोनो के बीच का सम्बन्ध है, ज्ञान। वहाँ तीन हैं।

प्रयाग आप गये होंगे। वहाँ कुम्भ भर का त्रिवेणी पर मेला जुटता है। लेकिन त्रिवेणी बड़ी मजे की है! नदियाँ वहाँ दो हैं, तीसरी, कहते हैं, कभी थी। कभी भी नहीं थी। तीसरी अदृश्य है। सरस्वती अदृश्य है, यमुना और गंगा प्रगट हैं। ये त्रिवेणी प्रतीक है भीतर के संगम का।

इस जगत में जो ज्ञान की घटना घटती है, जो तीर्थ निर्मित होता है ज्ञान का, वह तीन से निर्मित होता है : वस्तु--ऑब्जेक्ट, ज्ञेय; ज्ञाता, जाननेवाला, सब्जेक्ट; और दोनों के बीच निर्मित होनेवाली तीसरी धारा जो दिखाई नहीं पड़ती-- ज्ञान। वह ज्ञान सरस्वती है।

इसलिए सरस्वती ज्ञान की प्रतिमा है। और वह नदी कभी भी नही रही दुनिया में। वह हो नही सकती। उसके होने का कोई कारण नहीं है। अदृश्य उसका स्वभाव है। पदार्थ दिखाई पड़ता है, देखनेवाला दिखाई पड़ता है-- दृश्य दिखाई पड़ता है, द्रष्टा दिखाई पड़ता है, दर्शन दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञाता, ज्ञेय दिखाई पड़ता है-- ज्ञान दिखाई नहीं पड़ता।

मैं यहाँ बैठा हूँ, आपको देख रहा हूँ । मैं हूँ, आप हैं और दोनों के बीच एक सरस्वती बह रही है जो दिखाई नहीं पड़ती— जानने की, ज्ञान की, बोध की, दर्शन की । इन तीनों से मिलकर इस जगत का सारा ज्ञान निर्मित हुआ है ।

महावीर कहते हैं, जब ज्ञाता भी मिट जाये, ज्ञेय भी मिट जाये, केवल सरस्वती रह जाये; वह जो अदृश्य है, वही एकमात्र शेष रह जाये; जो दृश्य हैं, वे दोनों खो जायें । क्योंकि दृश्य पदार्थ है, अदृश्य चैतन्य है ।

अब यह बड़े मजे की बात है, आप जब प्रयाग जाते हैं तो गंगा-यमुना दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती । भीतर एक ऐसा प्रयाग भी है, जहाँ सिर्फ सरस्वती दिखाई पड़ती है— गंगा-यमुना दोनों खो जाती हैं । जहाँ गंगा-यमुना खो जाती हैं, सरस्वती मात्र रह जाती है, उस अवस्था का नाम 'केवल' है ।

जो दिखाई पड़ता है, वह नहीं दिखाई पड़ता वहाँ और जो नहीं दिखाई पड़ता है, वही केवल दिखाई पड़ता है । इस जगत का दृश्य वहाँ अदृश्य हो जाता है और उस जगत का अदृश्य यहाँ दृश्य हो जाता है । इस जगत से वह बिलकुल विपरीत है । यहाँ जो अदृश्य है, वहाँ दृश्य हो जाता है ।

पदार्थ और पदार्थ के जाननेवालों के बीच, दोनों किनारों के बीच एक तीसरी अदृश्य धारा बह रही है ज्ञान की । महावीर कहते हैं, वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है— जो दिखाई नहीं पड़ता । और जब तक तुम उसे न जान लोगे, तब तक तुम अज्ञानी ही रहोगे । केवलज्ञान ही एकमात्र ज्ञान है । वस्तुतः, बाकी सब ज्ञान अज्ञान की टटोलें हैं । अज्ञानी आदमी टटोल रहा है; कुछ खोज रहा है; बना रहा है; सिद्धान्त निर्मित कर रहा है ।

ज्ञानी का अर्थ है, जहाँ दोनों खो गये । द्वन्द्व खो गया और बीच की अदृश्य धारा प्रगट हो गयी । उस अदृश्य धारा का नाम केवल है ।

'जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोक को, समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है; शैलेशी (अचल अकम्प) अवस्था प्राप्त होती है ।'

उस तीसरे में थिर होते ही सारी अस्थिरता खो जाती है । फिर कोई कम्पन नहीं है । फिर कोई चीज हिला नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आकर्षित नहीं कर सकती । फिर कोई चीज डिगा नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आन्दोलित नहीं कर सकती। कोई आमन्त्रण सार्थक न रहा, फिर कोई निमन्त्रण बाहर नहीं बुला सकता ।

फिर कुछ भी नहीं है जगत में, जो मैग्नेट हो । फिर आप अपने ही मैगनेट पर केन्द्र थिर हो गये । अब आप अपने पर हैं— केन्द्रित हो गये । आप खड़े हो गये अपनी

जगह। आप उस जगह आ गये....। गाड़ी का चाक चलता है, लेकिन चाक के बीच में एक कील है, जो नहीं चलती।

और बड़ा मजा यह है कि कील नहीं चलती, इसीलिए चाक चल पाता है। कील भी चलने लगे, तो चाक गिर जाये। कील ठहरी रहती है।

जब तक हम मन के साथ जुड़े होते हैं, हम चाक के साथ जुड़े हैं और जब हम मन से पीछे हटते हैं, शान्त और मौन और शून्य हो जाते हैं, तो हम कील पर ठहर गये। कील पर ठहरा हुआ व्यक्ति, सेन्टर्ड, स्वयं में ठहरा हुआ व्यक्ति– महावीर कहते हैं– शैलेशी है। वह हिमालय बन गया चेतना का। अब उसमें कोई कम्पन नहीं है। अब उसे कोई चीज दुख नहीं दे सकती। क्योंकि अब उसे किसी से सुख की कोई आकांक्षा नहीं है। ऐसा व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो जाता है; या चाहें तो कहें, ब्रह्म को उपलब्ध हो जाता है।

या महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति परमात्मा हो गया। परमात्मा का अर्थ है, ऐसी शैलेशी अवस्था को पा लेना।

'जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है–पूर्ण रूप से स्पन्दन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों का क्षयकर– सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को प्राप्त होती है।'

महावीर के लिए 'सिद्ध' अन्तिम शब्द है। सिद्ध का अर्थ है : वन हू हैज रीच्ड। सिद्ध का अर्थ है, जो पहुँच गया। सिद्ध का अर्थ है, जिसे मंजिल मिल गयी। सिद्ध का अर्थ है, जिसकी यात्रा का अन्त हुआ। सिद्ध का अर्थ है, जिसे अब कहीं जाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ है, जिसे अब कुछ पाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ है, जिसे अब कुछ जानने को न बचा। जो हो सकता था आखिरी इस जीवन में, वह घट गया। बीज फूल तक आ गया। इसके पार कोई यात्रा नहीं है। चेतना अपनी पूरी सम्भावनाओं को वास्तविक कर ली। जो-जो हो सकता था, वह हो गया। अब चेतना में कोई और बीज नहीं बचा, सब बीज प्रगट हो गये।

इस पूर्ण प्रगटावस्था को महावीर कहते हैं, परमात्मा की अवस्था। इसलिए महावीर के लिए एक परमात्मा नहीं है, जितनी चेतनाएँ हैं, उतने ही परमात्मा हैं। अनन्त चेतनाएँ हैं, अनन्त परमात्मा हैं। कुछ हैं, जो बीज में बन्द हैं। कुछ हैं, जो तड़प रहे हैं और बीज को तोड़ रहे हैं। कुछ हैं, जो अंकुरित हो गये हैं और फूलों की तरफ बढ़ रहे हैं। और कुछ हैं, जो फूल हो गये और आखिरी अवस्था को पहुँच गये हैं।

सभी परमात्मा हैं– कुछ बीज में, कुछ अकुर में; कोई वृक्ष में, कोई फूल में। लेकिन उनके स्वभाव में कोई अन्तर नहीं है; स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। अनन्त परमात्माओं की धारणा है महावीर की। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भगवत्ता है।

सिद्धि का अर्थ है : भगवत्ता को पा लेना, भगवान् हो जाना। सिद्धि का अर्थ है : जहाँ अब कोई वासना का सवाल न रहा; जहाँ से पार जाने का कोई उपाय नहीं है; जो आखिरी बिन्दु है जीवन का।

इसी की हम तलाश भी कर रहे हैं। लेकिन जहाँ हम तलाश कर रहे हैं, शायद वह जगह नहीं है जहाँ से इसे पाया जा सके। हम इसी को खोज भी रहे हैं– कोई धन में, कोई पद में, कोई प्रतिष्ठा में, कोई शास्त्र में। लेकिन यह खोज वहाँ हो नहीं सकती, उसे खोजना होगा भीतर। जहाँ भी हम खोज रहे हैं हम गलत खोज रहे हैं। और इसलिए जब हमें नहीं मिल पाता, तो हम इस बात का ख्याल नहीं लेते कि हमारी खोज गलत थी। हम सोचते हैं, हमारा भाग्य गलत था। हम सोचते हैं, कोई चीज बाधा बन गयी।

जब हम एक व्यक्ति में सुख खोजते हैं– नहीं पाते हैं, तो हम सोचते हैं : यह व्यक्ति ही गड़बड़ है, इसीलिए सुख नहीं मिल पा रहा है, किसी और में खोजें। धन में खोजते हैं– नहीं मिलता तो सोचते हैं, पद में खोजें। पद में खोजते हैं– नहीं मिलता है तो सोचते हैं, शास्त्र में खोजें।

लेकिन एक दिशा सदा अछूती रह जाती है– हम कभी नहीं सोचते कि अपने में खोजें। सदा कहीं, किसी और में! जब तक हमें यह ख्याल न आ जाये कि हम कहीं भी खोजें, खोज गलत होगी– जब तक हम अपने में न खोजें। और इसीलिए हमें दूसरों में इतने दोष दिखाई पड़ते हैं। दूसरे में दोष दिखाई पड़ने का कुल कारण इतना है कि जहाँ-जहाँ हम असफल होते हैं, वहाँ-वहाँ दोष खोज कर हम अपने मन को तृप्त कर लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया था। नौकरी के लिए एक दफ्तर में गया। वाचमैन की, पहरेदार की जगह खाली थी। उस मालिक ने कहा कि ठीक है, लेकिन मैं तुम्हें बता दूँ कि हमें किस तरह का व्यक्ति चाहिए। तुम ठीक हो, काम हम दे सकेंगे, लेकिन फिर भी तुम समझ लो। हमें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो चौबीस घंटे सन्देह करे– वाचमैन। कोई भी भीतर आये, तो कभी आस्था और भरोसे से न देखे, चौबीस घंटा सन्देह करे। और चौबीस घंटा लोगों के दोष, भूल-चूक निकालने की कोशिश में लगा रहे। और चौबीस घंटा लड़ने को तत्पर रहे। दुष्ट

स्वभाव हो, कर्कश आवाज हो, भयानक चेहरा हो। और जरा ही कोई उत्तेजना दे दे तो बिलकुल शैतान उसके भीतर प्रगट हो जाये— हमें ऐसा आदमी चाहिए। ठीक है, तुम चल पाओगे।

नसरुद्दीन ने कहा : क्षमा करें— आइ ऐम सॉरी, दिस जॉब इज नॉट फॉर मी, बट आइ विल सेन्ड माइ वाइफ एराउन्ड— यह काम मेरा नहीं है, लेकिन मै अपनी पत्नी को भेज दूंगा। बिलकुल जैसा आप कह रहे है, वैसा ही व्यक्तित्व है उसका! अपने में दोष देख पाना तो बहुत मुश्किल है। वह आदमी कह रहा है— जिसको नौकर रखना है— कि तुम ठीक हो। लेकिन नसरुद्दीन कहता है, यह नौकरी मेरे... मै इसमे नहीं जमूंगा, मेरी पत्नी...!

दोष सदा दूसरे में दिखाई पड़ते है। क्योंकि जो-जो हम पाना चाहते है दूसरे से, वह-वह हमें नही मिलता। वह मिल नही सकता— इसलिए नहीं कि दूसरे में कोई भूल है। वह मिल ही नही सकता— वह वस्तुओं का स्वभाव नही है।

हम दूसरे से प्रेम चाहते है और क्रोध पाते है। इसलिए नही कि दूसरा क्रोधी है। दूसरे से इसका कोई सम्बन्ध नही है। जो भी प्रेम चाहता है, वह क्रोध पायेगा। वह प्रेम की चाह में ही हम दूसरे मे क्रोध पैदा कर रहे है। यह बड़ी मुश्किल बात है; जटिल बात है।

हमारी वासना ही उपद्रव का कारण है। हम जो-जो मांगते है, उससे विपरीत हमे मिलता है। आप खुद अपने जीवन को देखें। जो-जो आपने मांगा है, उससे विपरीत आपने पाया है। लेकिन आप सोचते है कि विपरीत मिला इसलिए कि दूसरी तरफ गलत लोग थे।

नसरुद्दीन के गांव मे पहली दफा टेलीफोन लगा। बूढ़ा आदमी था और प्रतिष्ठित था, और सारे लोग जानते थे, जाहिर था— या कहिये बदनाम था। तो टेलीफोन कम्पनी ने सोचा कि पहले टेलीफोन का उद्‌घाटन नसरुद्दीन करे। उसकी पत्नी तीस मील दूर कही गाव मे गयी थी। तो उसकी पत्नी से मुलाकात उद्‌घाटन मे...।

नसरुद्दीन बामुश्किल राजी हुआ। उसने कहा कि बामुश्किल तो वह गयी है और तुम उसी से मुलाकात करवा रहे हो। और हम किसी तरह थोड़ी शान्ति अनुभव कर रहे थे, तब यह एक उपद्रव टेलीफोन का गांव में आ गया! मतलब यह है कि अब पत्नी से कोई छुटकारा नही— वह बाहर जाये तो भी!

फिर भी लोग नहीं माने तो वह राजी हो गया। आषाढ़ के दिन थे, वर्षा का मौसम था। उसने टेलीफोन हाथ में लिया कंपते हुए, डरते हुए— जैसा कि सभी पति

पत्नी को फोन करते वक्त नर्वस.. हाथ कंपने लगता है। और फिर यह तो पहला टेलीफोन था और उसने कभी टेलीफोन किया नहीं था।

उसका हाथ कंपने लगा। और तभी संयोग की बात, जोर से बिजली कड़की और सामने के वृक्ष पर बिजली गिरी। उसके हाथ से टेलीफोन छूट गया, वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। किसी तरह सँभालकर अपने को उसने उठाया और उसने कहा कि दैट्स ऑल राइट! "दैट्स माइ ओल्ड वुमॅन!"

उसने कहा कि बिलकुल पक्की बात है कि वही बोली है, यही मेरी पत्नी है! वह बिजली का गिरना, उसकी कड़क—वह समझा कि अपनी पत्नी से बातचीत हो रही है। यह हम पहले ही कहे थे कि यह और उपद्रव टेलीफोन का यहाँ मत लगाओ!

तो दूसरे में हम सदा ही खोज पाते हैं— सभी। नसरुद्दीन अति पर हो, आप थोड़े पीछे हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हमारे जीवन की पूरी अड़चन यही है कि सारा दुख हमें कोई दे रहा है। कोई परिस्थिति, कोई व्यक्ति, कोई घटना— लेकिन सदा बाहर से आ रहा है।

महावीर कहते हैं कि बाहर से कुछ भी नहीं आता। हम बाहर से मांगते हैं, उससे विपरीत हमें मिलता है। यह सीधा उत्तर है हमारी माग का। सिद्धावस्था वैसी अवस्था है, जब बाहर से हमारी माग गिर गयी, और हम भीतर तृप्त है। और हम भीतर जैसे हैं, वैसे होने से हम परिपूर्ण तथाता मे हैं : टोटॅल एक्सेप्टेबिलिटि, पूर्ण सन्तुष्टि।

सिद्ध को आप हिला नहीं सकते। आप कहे कि वहाँ हीरे की खदान मकान के बगल में है, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप कहे कि इन्द्र निमन्त्रण देने आया है कि चलो स्वर्ग में, आपकी तपश्चर्या काफी हो गयी, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप उसे किसी भी तरह आकर्षित नहीं कर सकते। आप कुछ भी नहीं दे सकते हैं, जो उसे कम्पित कर दे। आपके पास कुछ भी नहीं है। सारा जगत राख हो गया। इस जगत में कुछ भी मूल्यवान न रहा। सारा जगत निर्मूल्य हो गया।

ध्यान रहे, मूल्य हम देते हैं। जगत में सभी चीजें निर्मूल्य हैं। मूल्य हमारा दिया हुआ है। कितना हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है। किस चीज को हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है।

सारा मूल्य मनुष्य कल्पित है। इसलिए अलग-अलग जगह अलग-अलग मूल्य दिखाई पड़ते हैं। अलग-अलग समाज अलग-अलग चीजों को मूल्य देते हैं। और जहाँ जो चीज मूल्यवान है, वहाँ मूल्यवान है। आपको दो कौड़ी की लगेगी, क्योंकि आपके समाज में आपने उस चीज को कोई मूल्य नहीं दिया है।

मूल्य व्यक्ति देता है । और मूल्य दिये जाते हैं वासना से । सिद्ध के लिए जगत निर्मूल्य है ।

और ध्यान रहे, जब तक जगत में मूल्य है तब तक आप भीतर निर्मूल्य रहेंगे । जब जगत से मूल्य खो जायेगा, तो भीतर मूल्य स्थापित हो जाता है ।

सिद्ध की आत्मा में मूल्य है, और सारा जगत निर्मूल्य है । इसलिए शंकर कहते हैं कि आत्मा ही सत्य है, सारा जगत माया है । माया का मतलब इतना ही है केवल कि वहाँ हमने ही डाला था मूल्य और हमने ही निकाला था । जो हम डालते हैं, वही हम निकालते हैं । हम पहले प्रॅजेक्ट करते हैं मूल्य, और फिर हम मूल्य से आन्दोलित होते हैं । बड़ा खेल है !

महावीर कहते हैं, सिद्ध वह है, जो इस खेल के बाहर हो गया ।

'जब आत्मा सब कर्मों का क्षय कर-- सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के-- मस्तक पर-- ऊपर के अग्रभाग पर स्थित होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है ।'

महावीर कहते हैं : लोक और अलोक, ये द्वन्द्व हैं । जैसा मैंने कहा यमुना और गंगा, ये दो दृश्य हैं और सरस्वती अदृश्य है । लोक और अलोक, मैटर और एन्टी मैटर-- विज्ञान की भाषा में कहें-- ये दो विरोध हैं । इन दोनों विरोधों के बीच, लोक के अग्रभाग पर और अलोक के प्रथम भाग पर सिद्ध चेतना थिर हो जाती है । पदार्थ और अ-पदार्थ, लोक और अलोक--इन दोनों के द्वन्द्व के मध्य में चेतना थिर हो जाती है ।

इस अवस्था का फिर कोई अन्त नहीं है । यह अनन्त अवस्था है । ये टाइमलेस-नेस है । ये शाश्वतता है । इस क्षण से फिर कोई दूसरा क्षण नहीं है । यह क्षण अनन्त है ।

इससे बड़े विचार पैदा हुए, बड़ी चर्चा हजारों साल तक चली है। क्योंकि पश्चिम में वे पूछते हैं कि जब भी कोई चीज शुरू होती है तो उसका अन्त होता है । अगर यह सिद्धावस्था शुरू होती है तो यह अन्त कब होगी ?

महावीर कहते हैं, इसका कोई अन्त नहीं होता, यह सिर्फ शुरू होती है । सिद्धावस्था कि सिर्फ बिगनिंग है, अन्त नहीं है । यह बड़े मजे की बात है । और महावीर की बात समझने-जैसी है । महावीर कहते हैं : संसार का अन्त है, प्रारम्भ नहीं है; सिद्धावस्था का प्रारम्भ है, अन्त नहीं है । और दोनों मिलकर एक वर्तुल बन जाते हैं ।

महावीर कहते हैं, संसार का कोई प्रारम्भ नहीं है, ये सदा से है। इसलिए महावीर स्रष्टा को नहीं मानते, या कभी क्रियेशन हुआ, इसको नहीं मानते; सृष्टि की गयी, इसको नहीं मानते। वे कहते है, संसार सदा से है। इसका कोई प्रारम्भ नहीं है। द वर्ल्ड इज बिगनिंगलेस। सिद्धावस्था का प्रारम्भ है। सिद्धावस्था के प्रारम्भ का अर्थ हुआ कि संसार का अन्त। जैसे ही कोई सिद्ध हुआ, उसके लिए संसार का अन्त हो गया, संसार शून्य हो गया।

तो महावीर कहते हैं : संसार का प्रारम्भ नही है, अन्त है; सिद्धावस्था का प्रारम्भ है, अन्त नहीं है। और दोनों मिलकर वर्तुल को पूरा कर देते हैं।

हम एक बड़ी लकीर को खीचे। इस लकीर को हम दो हिस्सों मे बाँट दें। पहले हिस्से के अग्रभाग पर सिद्धावस्था को रख दें– उसका कोई अन्त नही है, प्रारम्भ है। सिद्धावस्था एक दिन प्रारम्भ होती है, लेकिन उसका अन्त कभी नहीं होता। यह आधी बात हुई, आधा संसार है। उसका प्रारम्भ नही है, उसका अन्त है। दोनों को जोड़ दें तो एक वर्तुल बन जायेगा।

महावीर कहते हैं, ये दोनों घटनाएँ एक ही विस्तार के दो हिस्से है। सिद्ध पहुँच गया वहाँ, जहाँ से फिर कोई रूपान्तरण नहीं– न गिरना, न उठना; न आगे न पीछे।

अनेक दार्शनिकों ने सवाल उठाया है कि जब उसका कोई अन्त नही होगा– इतनी लम्बी, एन्डलेस, अन्तरहित स्थिति होगी– तो हम उससे ऊब नहीं जायेंगे? उससे घबड़ाहट पैदा नही हो जायेगी? उससे आदमी भागना नही चाहेगा?

महावीर कहते हैं कि जब भी हम सोचते हैं, अन्त-रहित, तो हमारा मतलब होता है, बहुत लम्बी है, लेकिन कहीं अन्त होगा। महावीर कहते है, जब मै कहता हूँ, अन्तरहित, तो उसका मतलब ही यह होता है कि जहाँ लम्बाई का सवाल नही है, शाश्वतता का सवाल है, इटरनिटि का सवाल है। तब एक क्षण, जो प्राथमिक क्षण है, वही अन्तिम क्षण है। वहाँ कोई चीज गुजरती हुई मालूम भी नहीं पड़ेगी; वहाँ समय व्यतीत होता हुआ मालूम भी नही पड़ेगा– क्योंकि समय संसार का हिस्सा है।

कालातीत है चेतना की सिद्धावस्था। वहाँ कोई समय नहीं है। इसलिए आपको ऐसा नही लगेगा कि बहुत देर हो गयी सिद्ध हुए। ऐसा कभी नहीं लगेगा। क्योंकि देर का, ड्यूरेशन का कोई सवाल नहीं है। समय वहाँ है नही। वहाँ आपकी घड़ी रुक जायेगी। वहाँ घड़ी नहीं चल सकती।

जीसस से कोई पूछता है, तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में खास क्या बात होगी ? तो जीसस कहते हैं : देयर शैल बी टाइम नो लौंगर– वहाँ समय नहीं होगा ।

समय संसार का हिस्सा है, क्योंकि समय परिवर्तन का हिस्सा है । अगर हम ठीक से समझें, तो परिवर्तन होता है, इसलिए समय का हमें पता चलता है । अगर परिवर्तन न हो, तो समय का पता न चले । जितना ज्यादा परिवर्तन होता है, उतना ज्यादा समय का पता चलता है ।

इसलिए पश्चिम में लोग ज्यादा टाइम कौन्शस हैं– ज्यादा समय का पता चलता है, क्योंकि परिवर्तन बहुत हो रहा है । पूरब में लोग उतने समय से परेशान और पीड़ित नही हैं । अगर जंगल में जायें आदिवासियोंके पास, उसे समय से कोई लेना-देना ही नही है । समय का कोई सवाल ही नही है । समय जैसे है ही नही । सब चीज़ें ठहरी हुई हैं ।

जब परिवर्तन ज़ोर से होता है, तो समय का पता चलता है । जब परिवर्तन धीमा होता है, तब समय भी धीमा हो जाता है । जब परिवर्तन बिलकुल नही होता, तो समय समाप्त हो जाता है ।

अगर ठीक से समझें तो समय का मतलब हुआ, परिवर्तन । परिवर्तन के बीच जो बोध होता है, वह समय है । अन्यथा समय का हमें कोई पता नही होगा । अगर आप एक ऐसी अवस्था में हों, जहाँ कुछ भी न बदले– समझें, इस कमरे में आप बैठे हैं, कुछ भी न बदले, सब चीज़ें थिर हों–तो आपको समय का कोई भी पता नही चलेगा । समय का पता चलता है, क्योंकि चीजें बदल रही हैं । एक बदलाहट से दूसरी बदलाहट के बीच जो खाली जगह है, उसमें ही समय का पता चलता है ।

समय परिवर्तन का बोध है ।

तो महावीर कहते हैं : सिद्धावस्था में कोई परिवर्तन नही है, इसलिए समय भी नहीं है । वहाँ समय का कोई पता नही चलेगा । सिद्ध होते ही समय गिर जाता है, संसार गिर जाता है ।

असल में वासना के गिरते ही परिवर्तन समाप्त हो जाता है । जहाँ तक वासना है, वहाँ तक परिवर्तन है । जहाँ वासना नही है, सिर्फ आत्मा है, वहाँ कोई परिवर्तन नही है । वहाँ शाश्वतता है, इटरनिटि है ।

यह जो सिद्धावस्था है, यही तलाश है हर प्राण की । यही खोज है हर श्वास की । प्राण इसी के लिए आतुर है कि एक ऐसी जगह मिल जाये, जिसके पार पाने को कुछ न बचे । आप कितना ही धन पा लें, ऐसी जगह नहीं मिलती । क्योंकि और

धन पाने को बच रहता है ! कितने ही बड़े पद पर हो जायें, वह पद नहीं मिलता । और पद पाने को बच रहते हैं ! और कितने ही शास्त्र के ज्ञाता हो जायें, कुछ फर्क नहीं पड़ता । और शास्त्र बचे रहते हैं !

इस जगत में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसको पाकर आप कहें, इसके आगे कुछ भी नहीं बचता । आगे बचता ही है ! इसलिए इस जगत की उपलब्धियों में कोई सिद्धावस्था नहीं हो सकती । सिर्फ अन्तर्यात्रा में एक जगह है, जहाँ पाने को कुछ भी नहीं बचता ।

जो अपने को पा लेता है, उसे पाने को कुछ भी नहीं बचता है । और जो अपने को नहीं पाता, उसे पाने को सदा ही बचा रहता है । और जब तक वह अपने को न पा लेगा, तब तक कितना ही भटके, कितनी ही यात्रा करे— यात्रा का कोई अन्त नहीं है । यात्रा मिटती है अपने को पाकर । स्वयं में होकर ही यात्रा समाप्त होती है । जो स्वयं में पूरी तरह हो गया, वही सिद्ध है ।

महावीर इस सिद्ध योग के लिए ही इन सारे सूत्रों को दिये हैं । क्षण भर को आप भी सिद्ध होने का रस ले सकते हैं । क्षण भर को भी रस मिल जाये, तो आपकी खोज शुरू हो जाये । क्षण भर को भी आपका मन न दौड़ता हो, तो एक क्षण को झलक मिलती है सिद्ध होने की । एक क्षण को पता लगता है उसका कि क्या होता होगा सिद्ध को ! पर वह आनन्द भी असिसीम है ! एक क्षण को भी झलक, एक बिजली कौंध जाये भीतर, तो भी आप शुरू हो गये, चल पड़े ।

जिन्हें भी उस स्थान की तलाश हो, जिसके आगे कोई स्थान नहीं और जिन्हें भी वह धन पाना हो, जो छीना नहीं जा सकता, जो नष्ट नहीं होता, जो खोया नहीं जा सकता; जिन्हें भी वह पद पाना हो, जिस पद के बिना आप हमेशा दीन-हीन मालूम पड़ेंगे— चाहे कुछ भी पा लें, आपकी दीन-हीनता चाहे कितने ही सम्राट के वस्त्रों में छिप जाये, दीन-हीनता ही रहेगी— जिस पद को पाकर सारी दीनता मिट जाती है और वस्तुतः व्यक्ति सम्राट होता है . . . !

स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे । जब वे अमरीका गये तो लोगों को बड़ी परेशानी होती थी । क्योंकि वे हमेशा अपने को कहते थे 'राम बादशाह ।' उन्होंने एक किताब लिखी, जिसका नाम है 'राम बादशाह के छ हुक्मनामे— सिक्स ऑर्डर्स फ्रॉम एम्परर राम ।' अमरीका का प्रेसिडेन्ट उनसे मिलने आया था, वह जरा बेचैन हुआ । और उसने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन आप बिलकुल फकीर हैं, और अपने को बादशाह क्यों कहते हैं ?

राम ने कहा, मैं इसीलिए बादशाह कहता हूँ कि मुझे पाने को अब कुछ भी नहीं बचा है । जिसको पाने को कुछ बचा है, वह भिखारी है, अभी वह मांगेगा । जिसको

पाने को कुछ नहीं बचा, वह सम्राट है। मुझे पाने को कुछ भी नहीं बचा है। मैं सम्राट इसलिए अपने को कहता हूँ कि अब इस जगत में कुछ भी नहीं है, जो मेरी वासना का आकर्षण बन जाये। अब मैं मालिक हूँ! मेरे पास कुछ भी नहीं है– लेकिन मैं हूँ! यही मेरी मालकियत है, यही मेरा जिनत्व है।

महावीर कहते हैं, हर व्यक्ति जिनत्व को, सिद्धत्व को खोज रहा है। जैसे हर सरिता सागर को खोज रही है, ऐसे हर चेतना, हर आत्मा सिद्धत्व को खोज रही है। दिशाएँ भटक जायें, मार्ग भूल-चूक से भरे हों, लेकिन खोज वही है। धन में भी हम वही खोज रहे हैं; पद में भी वही खोज रहे हैं; संसार में भी वही खोज रहे हैं; प्रेम में भी वही खोज रहे हैं। हम खोज रहे हैं कुछ और, पर जहाँ खोज रहे हैं, वहाँ वह मिलता नहीं– इसलिए हम पीड़ित हैं; इसलिए हम दुखी हैं।

जिस दिन हमें ठीक दिशा का बोध हो जाये और जिस दिन हम भीतर की तरफ चल पड़ें, और थोड़ी-सी भी भनक पड़ने लगे कानों में सिद्धावस्था की, थोड़ा-सा भी स्वर गूंजने लगे उस अनन्त संगीत का, थोड़ी-सी सुगन्ध आने लगे, थोड़ा-सा प्रकाश स्पर्श करने लगे– फिर इस संसार का कोई मूल्य नहीं है।

जरा-सा संस्पर्श, फिर जादू की तरह खींचने लगता है। एक बार व्यक्ति भीतर की तरफ मुड़ा कि खींच लिया जाता है। फिर केन्द्र खुद ही खींच लेता है। लेकिन उस मुड़ने के लिए ध्यान के क्षण चाहिए। थोड़ी देर के लिए संसार से अपने को बन्द करके भीतर की तरफ खुला छोड़ देना जरूरी है ताकि मौका मिले कि भीतर का चुम्बक आपको खींच सके। थोड़ी देर के लिए भीतर के लिए अवेलेबॅल, उपलब्ध होना चाहिए– कि आप खुले हैं और राजी हैं।

चौबीस घण्टे में एक घण्टा निकाल लें। उस एक घण्टे में कुछ भी न करें, आँख बन्द करके बैठ जायें और भीतर के अन्धेरे से राजी हो। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रकाश आना शुरू होगा। और धीरे-धीरे प्रतिक्रमण शुरू होगा– चेतना भीतर मुड़ने लगेगी। बाहर कोई मार्ग न पाकर भीतर की तरफ मुड़ना अनिवार्य हो जायेगा। और एक किरण आपको मिल जाये सिद्ध होने की एक झलक, फिर आपको कोई रोक न सकेगा। फिर कितने ही संसार चारों तरफ खड़े आपको बुलाते रहें– निर्मूल्य हैं। सब स्वप्न हो गया! जैसे नींद जिसकी टूट जाये, फिर स्वप्न कितना ही मधुर क्यों न रहा हो, वापस नहीं बुला सकता। ऐसे ही, जिसकी तन्द्रा में एक किरण सिद्धावस्था की उतर आये, फिर संसार व्यर्थ है। फिर उसे नहीं बुला सकता।

ऐसी ही चेतना का नाम संन्यस्त चेतना है। संन्यास प्रारम्भ है, सिद्ध होना अन्त है।